विज्ञानने स्वर्ग बना दिया

पूर्ण संख्या — *Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and*
२२९ *Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708

भाग ३९ | मेष, संवत् १९९१ | संख्या १

Vol. 39 | अप्रैल, १९३४ | No. 1.

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, (गणित और भौतिक-विज्ञान)

रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीव-विज्ञान)

श्रीचरण वर्मा, एम० एस्-सी०, (जंतु-विज्ञान)

श्रीरंजन, डी० एस्-सी, (उद्भिज्ज-विज्ञान)

सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌के पदाधिकारी

संवत्‌ १९९०—१९९१ वि०

विशेष द्रष्टव्य

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, लेख एवं सम्पादन सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये ।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत्‌ तथा वैज्ञानिक साहित्य सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्‌, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये ।

विषय-सूची

बजरंगबली गुप्त विशारदने बनारस आजकिपादेवीके श्रीसीताराम प्रेसमें छापा ।
और मंत्री विज्ञान परिषत्‌ प्रयागके लिये वृन्दावन बिहारीसिंहने प्रकाशित किया ।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३९ } प्रयाग, मेष, संवत् १९९१ । अप्रैल, १९३४ { संख्या १

मंगलाचरण

[ले० स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक]

(१)

जय, जय, श्रीश हे, भुवन-भूपति, भूत-पते
जय करुणानिधे, जगत-कारण, सत्य-सते
सुहृद त्रिधामके, सकल-सद्गुण-मन्दिर हे
नितनित दे हमें अमृत-जीवन-ज्योति, हरे

(२)

जब जब धर्मका धरणि पै प्रभु ! ह्रास हुआ
खल खल पापका प्रबल वर्तित त्रास हुआ
जग, सुख-वर्त्मसे विमुख हो, दुख-ग्रास हुआ
तब तब तू हुआ उदय, दुर्नय नाश हुआ

(३)

प्रतिकृतिकी अतः सतत है, प्रभु, आस हमें
अघ-कृत हो जभी जगतमें अति त्रास हमें
निज-परता करें निज नियंत्रित दास हमें
निज-पर-ज्ञानका अणु रहै न उजास हमें

(४)

जग यह किन्तु हे अनघ ! क्यों अघ-युक्त हुआ
अविरत क्यों नहीं, सुखद हे, सुख-भुक्त हुआ
तव पद-प्रेममें सतत क्यों नहीं सक्त हुआ
विविध प्रपंचके प्रभवसे परिमुक्त हुआ ?

(५)

प्रभु, इस प्रश्नका प्रमित उत्तर हो कि न हो
जग समझे नहीं, तुम कभी कुछ दो कि न दो
पर यदि है सही कुछ कहीं, तुम सो कुछ हो
जग सब है वही जगपते ! तुम जो कुछ हो

(६)

सब तव ही स्वतः प्रतत है प्रतिभास प्रभो
बहु गुण रूपसे विवृत, व्यक्त, विवर्तित हो
इस विधि सिद्ध है जगतका जब सत्व विभो
तब जग-भक्ति ही सविध, क्यों तव भक्ति न हो ?

(७)

उस सद भक्तिसे भरित भू प्रभु भूरि करो
सदय स्वशक्तिसे दुरित-उद्भव दूर करो
विनय - निकेत हे, अनयके सब हेतु हरो
पय - धर प्रेमके, - धरणि पै पय - प्रेम झरो

आधुनिक विज्ञानका विकास

संसारको देखनेमें स्वर्ग बना दिया

[लेखक रामदास गौड़]

आधुनिक विज्ञानकी नींवें लगभग ढाई हजार वर्षोंकी है। संसारके प्राचीन वैज्ञानिक एशिया और युरोप दोनोंमें काम करनेवाले निकले। कणाद, नागार्जुन, अर्कमीदिस, चरक, सुश्रुत, अरस्तू, इत्यादिने आधुनिक विज्ञानकी नींवें डालीं। परमाणुवाद, रसायन, जीव-विज्ञान पदार्थ-विज्ञान औषधि-विज्ञान तो इन वैज्ञानिकोंसे भी पुराने हैं, इन्होंने अपनी कृतियोंसे उस समयतकके ज्ञानको बढ़ानेका द्वार खोल दिया और मार्गका निर्देश कर दिया। परन्तु फिर भी उन्नतिकी प्रगति धीमी ही रही। न्यूटनने उसे गुरुत्वाकर्पणके बलसे आगे बढ़ाया। फरेडेने बिजलीकी ताकत लगायी। एडिसन मारकोनी, रैट आदिने देश और कालको संकुचित कर दिया। वैज्ञानिक उन्नति जो पहले लढ़ियेकी चाल भी नहीं चल पाती थी आज बिजलीके पर लगाकर उड़ रही है। भारतकी इस राजधानीमें यदि शाहआलम अपनी कब्रसे आज निकल पड़ें तो वह दिल्लीको पहचान न सकें। रेल, तार, तारवाणी, आकाशवाणी, बिजलीकी बत्तियाँ, बिजलीके पंखे, ट्राम, हवागाड़ी, पैरगाड़ी, हाथकी बत्तियाँ (टार्चेज़), फौंटपेन, बनाव सिंगारकी चीजें, इत्यादि कहाँतक कहूँ, जहाँ कहीं नजर पड़ेगी अद्भुत बातें दीखेंगी। बादशाह समझेगा कि मैं दूसरी दुनियाँमें आ गया हूँ और शायद कुरान मजीदमें जिसे बहिश्त कहा है वह यही है।

इटलीमें एक आदमी पैंतालीस बरस बाद कैदसे छूटा तो बाहर सड़कपर आते ही उसने पैरगाड़ीपर किसीको जाते देखा। उसके मुँहसे चीख निकल गयी, उसने यह न समझा कि मैं यह दृश्य जागतेमें देख रहा हूँ।

परन्तु ऐसा न समझना चाहिये कि इस दरजेकी उन्नति बड़ी आसानीसे हो गयी है। जिन जिनकी बदौलत यह उन्नति हुई है उन्होंने भाँति-भाँतिके कष्ट उठाये, निरन्तर ठोकरें खायीं, अपने सौख्यका बराबर बलिदान करते रहे, अपने प्राणोंकी आहुति दी, तब आजके इस वैभवके दिन हमें देखनेमें आ रहे हैं।

* अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर दिल्लीमें विज्ञान-परिषदके सभापतिपदसे दिये हुए भाषणका एक अंश।

खोजकी कटीली राह

बहुत ही क्षुद्र बातोंसे और जरा-जरासी भूल-चूकसे भी लाभ उठाकर विज्ञानके बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं। परन्तु इसमें उन विद्वानोंकी पैनी निगाहकी बड़ाई है कि जहाँ एक मूर्ख साधारण घटना देखकर उसकी अवहेलना करता है वहाँ उन्हें सत्यकी चमकती ज्योति दिखाई देती है, वे उसका उचित स्वागत करते हैं, उसे पहचानते हैं और उसका ठीक ठीक पता लगाकर संसारको चौंका देते हैं।

विज्ञान ही सत्य है और इस सत्यकी खोजमें विश्वकी विकासवर्ती बुद्धि जिस मार्गसे बराबर चलती गयी है उसमें अपने पद-चिह्न छोड़े हैं, दागबेल डालती गयी है, जगह-जगह मीलोंके पत्थर लगा दिये हैं, अनेक रत्न बटोरकर अपने साथ लेती चली है, उसकी सम्पत्ति बराबर बढ़ती गयी है, उसके रथपर आज बड़ा वैभव संगृहीत है, और वैभवके होते भी रथ बोझल नहीं हुआ है, प्रत्युत उसका वेग पहलेके सुस्त छकड़ेसे बदलकर आज हवागाड़ीका सा हो गया है।

इस राहका पहला मीलका पत्थर

इस मार्गमें सबसे पहला मीलका पत्थर ऑलन्द देशके हारलेम नगरीके लारेंस कष्टरने संवत १४९७में छापेका आविष्कार करके गाड़ा। जंगलमें एक पेड़के नीचे एक दिन बैठे-बैठे उसने अपने नामके दो आरंभिक अक्षर छालसे काटे और कागजपर रख लिये। कुछ समय पीछे जब ओससे कागज ढक गया था उसने उन अक्षरोंको उठा लिया तो देखा कि ओससे छूटा हुआ स्थान उसके नामके अक्षरके रूपके हैं। इसपर उसने लकड़ीके ठप्पे बनाकर अपने नाम

छापे। फिर जस्ते और सीसेके अक्षर ढाले। इस तरह टैप-की छपाईका जन्म हुआ।

संवत् १३५९ में फ्लविओगियाने दिक्सूचक यंत्र बनाकर समुद्रयात्रा सरल कर दी और विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें फ्लौरंसके साल्विनीने पहलेपहल आँखकी ऐनक बनायी। तबसे ऐनकका रोजगार चला।

छोटेसे बालकने दूरबीनको जन्म दिया

ओलन्ददेशीय मध्यपल्ली नगरमें एक चश्मेवाला रहता था। उसका नटखट लड़का नित्य नये ताल लेकर खेला करता था। दो ताल लेकर उस बालकने एक दूसरेकी दूरी ठीक करके उसकी राहसे कुछ दूरकी चीजें देखीं तो बहुत पास और बड़ी दीखीं। बापसे कहा तो बापने लकड़ीके फ्रेममें लगाकर दूरबीनका आरंभ कर दिया। दूसीको तस्कनीके गलीलियो नामक ज्यौतिषीने पूर्णताको पहुँचाया। समुद्र-यात्रामें इससेभी भारी सहायता की। वैसे तो आज ज्यौतिष-विद्याका यह एक बड़ा आधार है और तबसे हजारों तरहके बड़े-बड़े दूरदर्शक यंत्र बने जिन सबमें हर्शलका विख्यात है। स्थूल और दूर दर्शनकी इससे हद हो गयी। इसके सहारे हम अपने विश्वके बाहरतककी झाँकी लेते हैं।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र कैसे बना ?

और सूक्ष्म ? सूक्ष्मके लिये संवत १६७८में ड्रावेलने सूक्ष्मदर्शक या अणुवीक्षण यंत्र बनाया जो आजकल डाक्टरोंका आधार-स्तंभ हो रहा है, जिसने सूक्ष्मताका इतना पता दिया कि आज उसकी सीमा अनन्त हो गयी है। इन दोनों यंत्रोंसे आँखोंकी शक्तिका कल्पनातीत विस्तार हुआ। बड़ेसे बड़ेकी और छोटेसे छोटेकी उसने खोजकी और यद्यपि आज भी 'अणोरणीयान् महतो महीयान्'का पता तो हमारी आँख नहीं लगा पायी है, वह जहाँ था वहीं है, तब भी इस सम्बन्धमें उसकी कल्पनाका बड़ा विस्तार हो गया है और श्रुति भगवतीके अभिप्रायकी गूढ़ता उसे जराजरा समझमें आने लगी है।

बिजलीके चमत्कार

बिजलीकी ज्योति पहलेपहल कृत्रिम रीतिसे सर हम्फ्री डेवीने जगायी। कोयलेके ध्रुवोंसे वोल्टविद्युत दीपक (Arc lamp) पहले उन्हींने बनाया। उसी समय उनके सहायक फरडेने डैनमो तैयार कर दिया कि बिजलीकी अनवरत धारा मिल सके। एडिसनने कोयलेका सूत बनाकर ओषजनहीन काँचके कुंकुमोंके भीतर बिजलीकी धारासे प्रज्वलित कर दिया। यह संवत् १९३७की बात है। आज कोयलेकी जगह अमेरिकाके ही डा० कूलिजके निकाले वुल-फ्रामित तारकी बत्तियाँ प्रकाश देती हैं। ये तार इतने बारीक होते हैं कि एक इंचकी जगहमें १६७ तार बिछाये जा सकते हैं।

इस बिजलीने आग और रोशनी और यांत्रिक शक्तियोंके प्रयोगमें क्रान्ति मचा दी। अब जहाँ जहाँ ताप, प्रकाश, शक्ति गति, किसी रूपमें भी आप काम लेना चाहें बिजली हाजिर है। बटन दबानेकी देर है कि सब काम हो जाता है। और क्यों न हो, गालवनी, वोल्टा, अम्पेर, अर्स्टेड, ओम, फ्रांक-लिन, डेवी, फरडे, एडिसन आदि कोड़ियों बिजलीके आविष्कारकोंका श्रम क्या व्यर्थ जायगा ?

संवत् १८८७में जब फोटोग्राफी आरंभ हुई आठ आठ घंटेतक दृश्यको केमरा एकटक देखता रहता था तब कहीं जाकर चित्र खिंच सकता था। आज पलक भाँजतेमें चित्र खिंचता है। एक मिनिटमें एक हजार चित्र लिये जा सकते हैं। दो वर्ष हुए बैरन शिवने द्रुतकेमरा बनाकर छापा चित्रणके वेगवान विकासका एक प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है।

डोलतेबोलते चित्रोंका आविष्कार

आतशबाजकी चरखी जलती हुई एक टोंटी लेकर वेगसे घूमती है। देखनेमें आता है एक प्रज्वलित चक्र। कारण क्या है ? आँखके भीतरी पटपर एक-एक चित्र एक सेकंडके तीसवें भागतक रहता है। जबतक यह चित्र मिटे तबतक दूसरा चित्र यदि इसका स्थान ले ले तो चित्र स्थायी जान पड़ेगा। मिटने न पावेगा। महाशय आगस्थनल प्रिन्सने डोलते चित्र इसी सिद्धान्तपर बनाये। प्रिंसकी कलाका विकास करके एडिसनने ही सिनेमाको आजकलका पूर्ण रूप दिया है।

जहाँ चाहे आकाशवाणी सुन लीजिये

जैसे रूपका चित्रण करके काल और देशकी दूरी व्यर्थ कर दी गयी उसी तरह शब्दका अनुकरण करके भी देश-कालकी दूरी मिटायी गयी। (टेलीफोन) दूरवाणीका

आविष्कार डा० बेलने किया। अमेरिकामें बैठे बैठे आपसे कोई मित्र आज बातचीत कर सकता है। यह बेलके आविष्कारपर आजकलके विकासका फल है। शब्दोंको वन्दी करके जितनी बार चाहे उतनी बार उनको दोहरानेका यंत्र एडिसनने फोनोग्राफ़ और ग्रामोफोन बनाया। इस विधिसे स्वरके सम्बन्धमें भी देश और कालकी दूरी मिट गयी। तारवाणीसे बिना तारके आकाशवाणी और दूरवाणीका आविष्कार अभी हालका ही विकास है। अब तो इस दूरी तक यह विकास पहुँच रहा है कि कुछ कालमें ऐसा संभव हो जायगा कि फीस देकर दिल्लीमें बैठे-बैठे अथवा विमानपर दिल्लीपर ही मँडलाते हुए महीशूरमें होनेवाले डाक्टर सर सी० वेंकट रमनके व्याख्यान आप सुनें और उनको और उनके किये प्रयोग भी साथहीसाथ देखते रहें। दूरश्रवण दूरचित्रण तो अब व्यावहारिक हो ही गया है।

कवि-कल्पनापर विज्ञानकी विजय
दिन भरमें चारों धामकी यात्रा

दूरदर्शन और दूरचिन्तनको शीघ्रही एक साधारण क्रिया बना करके विज्ञान यह दिखा देगा कि मनुष्यकी साधारण इन्द्रियोंकी पहुँच वहाँतक हो गयी है जहाँतक उसकी कल्पना नहीं पहुँची थी और यद्यपि कल्पनाके बलसे कविकी पहुँच वहाँतक है जहाँ रविकी गति नहीं है तथापि विज्ञानी अपने प्रयोगोंके बलसे वहाँ पहुँच रहा है जहाँ जानेमें कविकी कल्पना भी कभी समर्थ नहीं हो पायी।

गतिका विकास भी अद्भुत हुआ है। पुष्पक विमानकी गति संभवतः घंटेमें एक हजार मीलही रही होगी। आज विमानकी गति घंटेमें तीन चार सौ मीलतक पहुँचानेका प्रयत्न होरहा है। किसी दिन यह संभव हो जायगा कि एक धर्मप्राण यात्री दिल्लीसे प्रातःकाल उड़े, हरिद्वार, बदरिकाश्रम मानसरोवर, अमरनाथ, द्वारकाधीश, रामेश्वर, जगदीश, वैद्यनाथ, विश्वनाथ, अयोध्याजी और मथुराजीके दर्शन करके शामतक दिल्ली वापस आजाय। यदि इतना भी न कर सका तो राकेट विमानद्वारा मंगलग्रहकी यात्रा संभव नहीं हो सकती, और मंगलकी मंगलमयी यात्रा विज्ञानीका आज मुख्य लक्ष्य हो रहा है। तीस बरस पहले इस तरहकी कल्पना हास्यास्पद होती परन्तु आज तो १२ घंटेमें नहीं तो ६० घंटोंमें तो यह हो ही सकता है और आप शीघ्र ही सुनेंगे कि किसी धर्म्मप्राण नरेशने इस तरह की व्योममार्गी तीर्थयात्रा कर डाली है, और संभवतः किसी धार्म्मिक सेठके लिये अपने विमानसे उड़कर हरिद्वारमें नित्य नियमसे प्रातःस्नान कर आया करना एक मामूली सी बात हो जायगी। बेयर्डके दूरदर्शनद्वारा अपने महलमें बैठे बैठे उदयपुर नरेश काशीविश्वनाथकी मंगला आरतीके भव्य दर्शन करके कृतार्थ होंगे, और उस समयकी स्तुति और बाजे भी सुनेंगे। जामनगरेश चाहेंगे तो अपने महलमें बैठेही बैठे काशी विजयनगरमकी कोठीके एम० सी० सी० मैचका तमाशा देखेंगे और सब तरहके शब्द सुनेंगे।

व्यावहारिक विज्ञानकी दौड़

संसारमें व्यावहारिक विज्ञान उन्नतिके मार्गपर सरपट दौड़ा जारहा है, बल्कि तड़िद्वेगसे उड़ा जा रहा है। तात्त्विक या मीमांसात्मक विज्ञान भी बड़े वेगसे अपना रूप बदल रहा है। न्यूटनके सूत्रोंमें ऐन्स्टैनके सापेक्षवादने तो ऐसा परिवर्त्तन कर दिया कि वैज्ञानिक विचारोंमें अद्भुत क्रान्ति हो गयी। देश-काल-वस्तुकी एकताका प्रतिपादन दार्शनिक रीतिपर शंकर और पीछेसे पच्छाही कान्टने किया था। अब वैज्ञानिक ऐन्स्टैनने गणितके सूत्रोंसे उसी तथ्यकी सिद्धि की है। समय बड़े वेगसे पलटा खा रहा है। विचार-संसारमें हम नहीं जानते कि कब कहाँ होंगे।

परमाणु स्वयं एक जगत है

सूक्ष्मताकी खोजमें भी उत्तरोत्तर ऐसी वृद्धि हुई है कि बुद्धि चकरा जाती है। पचास बरस पहले यह बात निश्चित समझी जाती थी कि परमाणु अखंड हैं। अपने वैशेषिक दर्शनमें भी परमाणुकी अखंडता और अक्षरता सिद्ध मानी गयी है। परन्तु आज परमाणुवादमें भी क्रांति हो गयी। परमाणुके खंडन और क्षरण हुए तो एक तिहाई शताब्दी बीत चुकी है। यह भी पुरानी बात हो चुकी है कि एक एक परमाणु अनेक ऋणाणुओंके परिभ्रमणचक्रका नाम है जिसके केन्द्रमें धनाणु हुआ करता है। अब परमाणु स्वयं एक जगत् हो गया है। उसके अगणित खंड हो गये हैं। फिर उन खंडोंकी भी कल्पना हो रही है। संभवतः हमारी प्राचीन कल्पना कि अग्नि भी परमाणुओं से निर्म्मित है सच

ही है। और कणादके अत्यन्त स्थूल परमाणुसे सूक्ष्मताका विकास उस सीमातक पहुँचा है कि कस्मिकाणुओंके सामने कणादका एक एक परमाणु नारंगीके सामने विराट्की एकपाद विभूतिवाले विश्वके समान बड़ा हो गया है।

ताम्बेके पात्र और पवित्री

[ले० 'रसायन']

तांबेके बरतन

हिन्दुओंमें अनन्त कालसे ऐसा विश्वास चला आया है कि जो मनुष्य ताम्बेके घड़ोंमें रखे हुए पानीसे स्नान करता है वह गंगा-स्नानका पुण्य-लाभ करता है और जो उसको पीता है वह गंगाजलका पान करता है। परन्तु यह साफ़ तौरपर लोगोंको बतला दिया जाता है कि ताम्बेके पात्रमें भोजन बनाना या उसमें रखकर खाना अर्थात् ताम्बेके पात्रको जूठा करना सर्वथा अनुचित है और जो ऐसा करता है उसे पाप लगता है। मुसलमानोंमें भी ताम्बेके पात्रोंको साधारणतया व्यवहारमें लाना मना है, उनके मज़हबमें ताम्बा, जबतक उसपर क़लई न हो जाय, मकरूह समझा जाता है। आज हम इस बातपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करेंगे और यह निर्णय करेंगे कि यह न्यायसंगत है अथवा नहीं।

ताम्बेके पात्रमें भोजन बनाना या खाना क्यों मना है ?

रसायन शास्त्रके पढ़नेवालोंको यह मालूम होगा कि ताम्बेके समस्त यौगिक विषैले होते हैं। उनके प्रयोगसे जन्तुओंका मारना बड़ा आसान है, खेतोंमें जब पौधोंपर काले या लाल धब्बे पड़ जाते हैं—जो विशेष प्रकारके जीवाणुओंके दाने होते हैं—तो राख और नीले-थोथेको पानीमें घोलकर उनपर छिड़क देते हैं। ऐसा करनेसे पौधोंका रोग शान्त हो जाता है। नीला थोथा ताम्बेका गंधेत होता है। इसी प्रकार पेरिस-ग्रीन (Paris green) या शेले-ग्रीन (Scheele's green) ताम्बेके दो अन्य यौगिक हैं, जो पोटेटो-बीटिल (Potato-beetles) वा अन्य कीड़े मकोड़ोंको मारनेके काममें आते हैं।

ताम्बेके घड़ोंमें जब पानी भरकर रखा जाता है, तो पानीमें घुली हुई हवा और कर्बन द्विओषिदकी क्रियासे ताम्बेका बहुत सूक्ष्म अंश पानीमें घुल जाता है। यह मात्रा अत्यन्त थोड़ी होती है, जिसका प्रभाव मनुष्यपर तो नहीं पड़ता, परन्तु पानीमेंके जीवाणुओंको मारनेके लिये पर्याप्त होती है। यही कारण है कि ताम्र-घटोंमें रखा हुआ पानी गंगाजलके तुल्य पवित्र समझा जाता है।

अब मान लीजिये कि आप किसी ताम्बेके बर्तनमें खाना बनाना चाहते हैं। तो यह लाज़िमी है कि आप उसे चूल्हे पर चढ़ायेंगे और नमक वग़ैरा कई मसाले भी डालेंगे। यह सब पदार्थ ताम्बेके साथ रासायनिक क्रिया आरम्भ कर देंगे और उसका कुछ अंश घुला लेंगे। यह अंश इतना ज्यादा होगा कि एक नहीं कई आदमियोंके मारनेके लिये काफ़ी होगा। यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि ताम्बेकी इतनी मिकदार क्यों हल हो जाती है। इसके दो कारण हैं—

(१) ऊँचे दरजेकी गरमी का होना।

(२) नमक आदि पदार्थोंका प्रस्तुत होना।

रसायन-शास्त्र जाननेवालोंका अनुभव है कि यदि तापक्रम दस अंश बढ़ा दिया जाय तो रासायनिक क्रियाका वेग दुगुना हो जाता है। इससे स्पष्ट होगा कि तापक्रम बढ़ानेसे ताम्बेके घुलनेका वेग बढ़ जायगा और थोड़े ही समयमें बहुतसा ताम्बा घुलकर, जो चीज़ रांधी जा रही होगी उसे विषैला कर देगा।

दूसरे नमक, खटाई आदि पदार्थ जो डाले जायँगे, उनका प्रभाव पानीसे कहीं अधिक होगा। इस कारणसे भी ताम्बेकी अधिक मात्रा घुल जायगी और पाकको विषैला कर देगी। अतएव स्पष्ट है कि ताम्बेके पात्रोंमें किसी खाद्य पदार्थका रांधना अनुचित और हानिकारक है। ताम्बेके पात्रोंमें चीज़ोंको रखकर खानेमें हर्ज नहीं है, यदि चीज़

सूखी हो और पात्र मुँहसे न लगाया जाय। यदि चीज़ गीली होगी तो उसकी ताम्बेके साथ रासायनिक क्रिया आरम्भ हो जायगी और वह चीज़ बहुत जल्द जहरीली हो जायगी। ताम्रपात्रोंको मुँहसे लगानेमें भी यही दोष है, क्योंकि राल (saliva) ताम्बेको कुछ न कुछ मात्रामें घुला लेगी, जिससे हानि पहुँचेगी, परन्तु यदि ताम्बेके पात्रपर कलई कर दी जाय तो उसमें खाना बनानेमें कुछ हर्ज नहीं है, क्योंकि कलईकी पतली तह ताम्बेको घुलने न देगी और खानेको विषैला न बनने देगी।

पवित्री या तांबे आदिका छल्ला

हिन्दुओंमें यह रिवाज है कि ताम्बे, चाँदी और सोनेके तारोंका बना हुआ छल्ला, जिसे पवित्री भी कहते हैं, कनिष्ठिकामें पहना करते हैं। इसका कारण भी प्रायः यही बताते हैं कि ताम्बा, सोना और चाँदी पवित्र पदार्थ हैं। इनका बदनपर रहना अच्छा है। स्नान करते समय यदि इनसे स्पर्शकरके पानी बदनपर गिरे तो गङ्गा-स्नानका पुण्य होता है। इसी विश्वाससे गलेमें सुवर्ण और रुद्राक्षका रहना श्रेष्ठ समझा जाता है। प्रायः देखा गया है कि स्त्रियाँ दाँतोंमें चोंप जड़वा लेती हैं, जिससे भोजन पवित्र होकर गलेसे उतरे। मरते समय भी यदि सोना मुँहमें पहुँच जाय तो धर्मात्मा हिन्दू समझते हैं कि आत्मा शुद्ध होकर इस लोकसे प्रयाणकर स्वर्गारोहण करेगी। बच्चे जब किसी अशुद्ध वस्तु या अस्पृश्य व्यक्तिको छू लेते हैं तो उनको स्नान करना पड़ता है या गङ्गाजल या सोनेसे स्पर्श किया हुआ पानी उनपर छिड़क दिया जाता है और यह मान लिया जाता है कि वह इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।

पवित्री और सोने और चाँदी आदिकी शुद्ध करनेकी शक्ति वास्तविक है अथवा कल्पित ? क्या आधुनिक विज्ञान इस प्रश्नपर कुछ प्रकाश डालता है अथवा नहीं ? इन्हीं बातोंपर आइये आज विचार करें।

चाँदीमें कीटाणु मारनेकी शक्ति

ताम्बेकी कृमिघ्न या कीटाणुनाशक शक्तिपर तो हम विस्तारसे पहले ही विचार कर चुके हैं। चाँदीकी कीटाणु-नाशक शक्तिपर सोलह बरस हुए कुछ प्रयोग पी. सेल महोदयने किये थे। प्रयोगोंकी चर्चा करतेहुए 'नेचरने' उस साल लिखा था "बहुत कालसे यह हमें मालूम है कि जो पानी ताम्बेकी नलियों या बम्बोंमें बहकर आता है वह कृमिघ्न-गुण-सम्पन्न होता है। हमें इस बातका भी ज्ञान है कि चाँदीको पानीमें डुबोनेसे पानीमेंके कीटाणु मर जाते हैं। इन्हीं बातोंके ज्ञानका उपयोग पी. सेलने पीनेके पानीके जीवाणुशून्य करनेके एक यंत्रमें किया है। कांचकी बोतलको पहले ऊपरतक पानीसे भरो, फिर चाँदीका एक तार उसकी गरदन तक पानीमें लटका दो और १४ दिनतक इसी प्रकार रखी रहने दो। तदनन्तर पानीको फेंक दो। फिर उसमें पानी भरकर तार लटका दो, तो पानी ८ घंटेतक जीवाणुशून्य रहेगा। परीक्षाओंसे पता लगा है कि इस रीतिसे पानीमेंके मोतीझिरे, हैज़े तथा आमातिसारके जीवाणु मर जाते हैं।"

उपर्युक्त उदाहरणसे प्रतीत होगा कि पानीमें चाँदी डुबोकर रखनेसे पानीके जीवाणु मर जाते हैं। हमें आशा है कि कोई सज्जन सोने, रुद्राक्ष और कुश के गुणोंपर भी प्रयोग करके निश्चय करेंगे कि इनका जीवाणुओंपर क्या प्रभाव पड़ता है।

विज्ञानका दुरुपयोग *

कलाका व्यभिचार

[लेखक रामदास गौड़]

पच्छाहीं धर्मोंमें हजरत-मूसा-रचित पाँचों पुराणोंको मूसाई, ईसाई और मुहम्मदी तीनों प्रामाणिक मानते हैं। उसकी पहली पोथी है सृष्टि-पुराण। उसमें लिखा है कि परमात्माने आदिम पुरुष और स्त्रीकी रचना करके उन्हें नन्दनवनमें रखा। उस बागके सभी वृक्षोंके फल खानेकी आज्ञा दी परन्तु दो पेड़ थे जिनके फलोंका खाना वर्जित कर रखा था। एक तो था **विज्ञानका वृक्ष** और दूसरा था **अमर जीवनका**। इस दम्पतीका वैरी था शैतान! उसने स्त्रीको बहकाया और दम्पतीको विज्ञानका फल खिलाही तो दिया। परमात्मा इस आज्ञोल्लंघनसे रुष्ट हुआ और अमृतफल वह न खाने पाये और निकाल दिये गये। इस भगवदवज्ञाका परिणाम अनन्तकालतक मनुष्यको भोगना पड़ा।

इस कहानीको पच्छाहीं धर्मवाले सभी पढ़ते हैं, परन्तु इसका ठीक अभिप्राय मेरी समझमें प्रोफेसर साडीने ही समझा। स्पष्ट है कि मनुष्यने किसी समय अपनेको वैज्ञानिक उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुँचाया था, परन्तु उसने विज्ञानका दुरुपयोग किया और विषयोपभोगमें लगाया। इसीसे उसका पतन हो गया। नहीं तो वह अमर जीवन पा जाता।

आज भी मनुष्य विज्ञानका भयानक दुरुपयोग कर रहा है। पद-पदपर वह इस ईश्वरीय देनको बुरे कामोंमें लगा रहा है। रेलें सुख पहुँचानेको हैं। दुर्भिक्ष पड़े तो पीड़ित देशोंमें अन्नादि पहुँचा सकती हैं। परन्तु सेना विनाशक युद्धसामग्री पहुँचानेका काम इनसे मुख्यतः लिया जाता है। तारकी खबरोंका बड़ा सुभीता है परन्तु जहाँ बहुत आवश्यक है वहाँ बहुधा उपयोग नहीं हो सकता। तार शिकंजेमें कसा हुआ है। डाकद्वारा अच्छे साहित्यका प्रचार हो सकता है। परन्तु वास्तवमें ठगों और हिंसकोंने इससे अपना व्यापार सरल कर रखा है। अनिष्ट साहित्य अधिक जोरोंसे फैलता है। छापेखानेसे इष्ट साहित्यका ही प्रचार होनेसे जगतका भारी लाभ था परन्तु अखबारोंके द्वारा हानि तो पूरी हो रही है और लाभ उतना नहीं हो पाता जितना होना चाहिये। विदेशी लोभी उसपर धन और बलका अंकुश रखकर अपने विरुद्ध लिखने नहीं देता और स्वदेशी लोभी निरंकुश होकर उसे अपने स्वार्थोंका साधन बनाता है। रेल, तार, डाक, छापाखाना ज्ञान-प्रचारके साधन हैं, परन्तु ये प्रायः अनधिकारियोंके हाथमें अधिकार देनेमें अधिक सहायक हो रहे हैं और उपकारकी अपेक्षा अपकार अधिक कर रहे हैं, मुक्तिके बदले मनुष्यको बंधनमें अधिक कस रहे हैं।

कलियुग नहीं, कल-युग

पैरगाड़ी, हवागाड़ी, विमान, यातायातके बड़े अच्छे साधन हैं, परंतु इनसे चोर डाकू और धर्मके शत्रु भी खूब लाभ उठा रहे हैं। यंत्रोंके द्वारा मनुष्योंको सुख पहुँचता है, सही, परन्तु उसकी इन्द्रियाँ शिथिल और शक्तिहीन हो गयी हैं, वह यंत्रोंका दास बन रहा है। कलोंका इतना आत्यंतिक प्रचार हो रहा है कि सहसा निश्चय रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि विरोध बढ़ रहा है, कि यंत्र, यह युग **कलियुग** कहलानेका अधिक अधिकारी है कि **कल युग**। परन्तु इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि आज **कल** ही **कलि**का प्रधान साधन बन रहा है, ईमानसे परिश्रम करके रोटी खानेमें मनुष्यका बाधक हो रहा है। पूँजीपतिको बिना परिश्रम भूखसे अधिक रोटियाँ देता है और धनहीनको बिना परिश्रमका बनाकर उसकी रोटियाँ छीन लेता है। एक मशीन जब एक आदमीके चलानेसे दो सौ आदमियोंका काम कर लेती है, तो एक सौ निन्नानबे अवश्य बेकार हो जाते हैं। उसने उस आदमीको तो केवल मजदूरी दिलायी

* तेईसवें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर दिल्लीमें विज्ञानपरिषत्के सभापतिपदसे दिये हुए भाषणका एक अंश।

और १९९की मजदूरी छीनकर पूँजीपतिकी भरी थैलीमें उँडेल दी। व्यसनी पूँजीपतिने विदेशी सामग्रीमें उसे उड़ाकर विदेशी धनवानोंकी तिजोरियाँ भरीं। इस तरह १९९की रोटियाँ पच्छाहकी तिजोरियोंमें चली गयीं। एककी रोटीपर अब १९९ टूट पड़ेंगे, फिर विरोधकी क्या दशा होगी? अथवा, येही जब समझ जायँगे कि मशीनवाले दोषी हैं तो क्यों न मजूरों और पूँजीपतियोंमें लड़ाई होगी? इस तरह यह कल-युग कलियुगका भारी साधन हो रहा है।

महायंत्र उपपातक हैं

जहाँ मनुष्यकी इन्द्रियाँ काम न दे सकें वहाँ उनकी सहायताके लिये ही यंत्रका काममें आना कल्याणकारी है। जहाँ वह इन्द्रियोंको बलहीन या बेकार बनावें वहाँ उनका प्रयोग अमंगल है। इसीलिये महायंत्रोंकी स्थापनाको मनुने एक उपपातक ठहराया है। परन्तु यंत्रके प्रयोगमें इस तरहका विवेकमय नियंत्रण संसारमें कहीं नहीं है। युगके प्रभावसे लोभने विवेकको खदेड़ दिया है। नोच-खसोटका बाजार गर्म है। चाहे अनाड़ी मनुष्य उससे भूखों मरें, या कट मर जायँ लोभको जरा भी परवा नहीं है। विज्ञानके ही बलसे विषयोपभोगके साधन अनेक बहाने करके बढ़ाये गये और सुलभ कर लिये गये। तरह तरहकी ओषधियों और उपचारोंसे पेटमें स्वादिष्ट भोजन ठूसने और यथेच्छा कामलिप्साकी तृप्तिके उपाय किये गये। सन्ततिनिरोधके बहाने व्यभिचारके छिपानेके साधन विज्ञानके ही बलसे बन गये हैं। कामने अपना जाल बिछाकर संयमी बननेवालोंको फँसा रखा है और प्रकृत यम-नियमका बहिष्कार कर दिया है। सिनेमासे शिक्षाका अच्छा प्रचार हो सकता था परन्तु आज अनिष्ट विज्ञापनबाजी होती है। निर्लज्ज कामोद्दीपन होता है। यह सच है कि इसमें हमारे युवकों युवतियोंको काम मिल गया है। हम सिनेमाके नैतिक पहलूपर विचार न करें तो भी आर्थिक दृष्टिसे यह प्रत्यक्ष है कि सिनेमा तमाशबीनोंको ही नहीं लूटता बल्कि तमाशा करनेवालोंकी भी रोटियाँ छीनता है। थोड़ेसे साहित्य-सेवियों और पात्रोंको कुछ अधिक पारिश्रमिक जरूर मिल जाता है, परन्तु यदि डोलती-बोलती तसवीरोंकी जगह वास्तविक अभिनय हर जगह होता तो कलाको कितनी उत्तेजना मिलती, कितने गुने अधिक लेखक और पात्र नाटकोंमें काम करते, कितने परदे रंगने और चित्रित करने-वालोंको रोजगार मिलता। इस प्रकार हजारोंकी रोटियाँ छीनकर यह कामुक व्यसन आज भारतमें सुरसाकी तरह अपना मुख-विवर बढ़ाये चला जा रहा है और न मालूम कितनी सम्पत्ति इस वैज्ञानिक रोजगारसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे विदेशोंकी ओर बहती चली जारही है। सिनेमाकी मादकतामें चूर आज उसकी सारी हानियोंसे आँख मूँदे हुए हैं, परन्तु एक दिन अवश्य पछताना होगा।

लोभके वश पच्छाहके व्यापारियों और उद्योगियोंने इसलिये वैज्ञानिकोंको नौकर रखा कि वह ऐसी विधियाँ निकालें कि समय, शक्ति और धनके कमसे कम व्ययसे अधिकसे अधिक माल तैयार करे। यह न देखा गया कि माल जब खपतसे अधिक तैयार होगा तो किसके सिर मढ़ा जायगा। ज्यादासे ज्यादा उपजकी होड़ सी लग गयी। पिछड़े हुए देशोंके मत्थे उबारूमाल मढ़ा गया। परन्तु यह कबतक चलता। अन्तमें नौबत यहाँतक पहुँची कि मालकी ढुलाई निकलनी कठिन हो गयी। अमेरिकाने अपने वैज्ञानिकोंकी कृपासे इतना गेहूँ उपजाया कि समुद्रमें डुबोदेनेके सिवा कोई गति न रही। दुरुपयोग किया उद्योगियोंने, पूँजीपति-योंने। परन्तु जब देशका व्यय घटानेको कर्मचारियोंके वेतन काटे गये तो उन वैज्ञानिकोंके सिर भी आफत आयी जिनकी कोशिशोंसे उपज इतनी अधिक हुई थी। प्रिंसिपल किंगने ७ मार्चकी Universities Conference विश्वविद्यालय-सम्मेलनमें कहा कि विश्वविद्यालयोंके कारखानोंको व्यापारिक ढंगपर चलानेकी आवश्यकता नहीं है? भला क्यों? क्या होड़में आप ठहर न सकेंगे? क्या भारतीय शिल्पका उद्धार मंजूर नहीं है?

संसारमें उपज बढ़ानेकी कोशिशमें जब पिछड़े देश भी आगे बढ़ रहे हैं, तो उबारू माल अब किसके मत्थे मढ़ा जायगा, यह अत्यन्त कठिन समस्या उद्योगियों के सामने आकर खड़ी हो गयी है। सारा औद्योगिक संसार इस समस्यासे उपजी मंदीके कारण स्तंभित है।

चीनीके कारखानोंकी धूम

परन्तु भारतके उद्योगियोंकी आँखें नहीं खुलीं। थोड़े

कालके प्रतिज्ञात संरक्षणपर हम दीवाने होगये और खांड़के पीछे चींटियों की तरह लपट गये । मशीनोंकी खड़सालोंपर खड़सालें खुलने लगीं । मिलमशीनवालोंके भाग जगे । अंधाधुंध रुपये लगा दिये गये । अभी कई मिलोंके चलनेकी भी नौबत नहीं आयी है कि मिलोंके बिकनेके विज्ञापन निकलने लगे, गुड़ बेहद महँगा हो गया और बेचारे किसान मीठेको तरसने लगे । मिलोंका चलना ही भारी भूल थी, हमारे देशमें खांड तो युगोंसे घरेलू धंधा रहा है । भूकंपने अनेक बिहारी मिलोंको बरबाद कर डाला और अब गन्नेकी खड़ी फसिलोंको काममें लानेको बैल और चरखीकी खोज है ।

मद, मत्सर, ईर्षा, द्वेष और क्रोधने हिंसाके अद्भुत साधन विज्ञानसे ही निर्माण कराये हैं । डैनामैटसे जमीन खोदवाने और खतरनाक इमारतोंके गिरवानेका काम कभी-कभी लिया जाता है । यह ठीक है । परन्तु उससे अधिक वास्तवमें उससे धनजन-नाशका काम लिया जाता है । युद्धमें हिंसाके लिये कोई वैज्ञानिक साधन नहीं है जिससे लाभ न उठाया जाता हो । यदि समरके समयमें ही विज्ञानका हिंसाकारी दुरुपयोग होता तो कहा जाता कि क्षणिक आवेशमें बैरियोंके बीचमें पारस्परिक घातक व्यापार स्वभावसे ही अनिवार्य्य है । परन्तु लोभ तो उसका हिंसाकारी उपयोग शान्तिके समयमें निरन्तर कराता रहता है । एक-एक गुटने वैज्ञानिक कामोंका इजारा ले रखा है और तथोक्त सभ्यताभिमानी जनतामें सभ्यताके नामपर उनका प्रचार करती रहती है । आरंभमें चीज़ें मुफ्त भी बाँट दी जाती हैं, उनका चस्का लगा दिया जाता है, फिर रोजगार चल निकलता है । लोभने वैज्ञानिक उद्योगोंका इस ढंगपर विस्तार किया है । फल यह है कि आजकलका भारतीय जेंटिलमैन एड़ीसे चोटीतक वैज्ञानिक उद्योगोंसे सजाया हुआ सभ्यताका पुतला है जिसके ऊपरी सजधजके लिये उसकी भीतरी सम्पत्ति चूस ली गयी है । अवैज्ञानिक भारी पाठ्यक्रमके बोझसे लदा हुआ विश्वविद्यालयका छात्र मानसिक परिश्रमके आधिक्यसे भीतरी शक्तियोंका क्षय कर चुका है । उसकी जीवनी शक्ति बहुत कम हो गयी है । उसके भौतिक, दैहिक और मानसिक सम्पत्तिका मनमाना शोषण हुआ है और हो रहा है ।
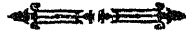
आजकलकी पढ़ाईके ढंगमें सुधार

शिक्षापद्धतिकी नयी योजना

[लेखक—पं० गोपीनाथ शास्त्री चुलॉइट, अध्यक्ष दि इण्डियन रॉयल तत्वज्ञान संचारक सोसायटी, एलिचपुर शहर]

१—उपक्रम

भारतके कोने-कोनेसे आवाज उठायी जारही है कि शिक्षणशैली बदलो ! शिक्षणप्रणालीमें परिवर्तन करो !! मजूरसे लेकर उपाधिधारीतक सभी इस वर्तमान शैलीके ताण्डवसे उकताये हुए नजर आते हैं । ऐसी विकट परिस्थितिको देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आधुनिक क्षिक्षणक्रमको बदलने तथा कई अंगीकृत विषयोंको परिमार्जित करनेकी नितांत आवश्यकता है । समूचे देशमें तत्ववेत्ताओंके सम्मुख यह प्रश्न चक्कर काट रहा है, और इसी विषयपर सभी तत्ववेत्ताओंकी दृष्टि केन्द्रीभूत होरही है कि ऐसी कोई विलक्षण शिक्षणयोजना खोज निकालें जिससे भारतकी बेकारीका प्रश्न हल हो जाय ।

हम यह मानते हैं कि पुरानी प्रणालीके पुनरुज्जीवन करनेके पवित्र हेतुको लेकर ही भारतमें कई आश्रम, विद्यालय, विद्याश्रम, कुलाश्रम, गुरुकुल, ऋषिकुल आदि चल रहे हैं, और नये भी खोले जारहे हैं । इससे आज हम इतना तो अवश्य अभिमानके साथ कह सकते हैं कि प्राचीन वैदिक ऋषि-प्रणीत पंथपर चलनेकी अनुरागिता अब भलीभांति जाग उठी है । कमी केवल इतनीही है कि उसके विधि-विधान आदि व्यवहार चातुर्यमें जिस प्रकार परिवर्त्तन होने चाहिये वैसे अभी नहीं हुए हैं । सच तो यह है कि व्यवहारचातुर्यमें जिन जिन आवश्यकीय योजनाओंकी

परम आवश्यकता है उनकी ओर तत्ववेत्ताओंमेंसे आज-कल समुचित रूपसे जैसा ध्यान दिया जाना चाहिये था वैसा किसीने नहीं दिया। यही कारण है कि हम विफल होते जा रहे हैं। अतः उपर्युक्त कठिन समस्याको हल करनेके लिये वाचकोंके सामने एक 'शिक्षणयोजना' रखता हूँ। और आशा करता हूँ कि पाठक सूक्ष्मतासे, बारीकीके साथ विचारकर अपनी आत्मासे उत्तर मांगें और उस अन्तरात्माकी आज्ञानुसार अविलंब कृतिपूर्ण उपयोगमें लानेके लिये कटिबद्ध हों।

२—नयी योजना

१. पहिली बात तो यह है कि अभिरुचिके मुताबिक विद्यार्थीको शिक्षणदान आचार्योंकी ओरसे होना चाहिये। विज्ञानका यह अटल सिद्धान्त है कि गुप्त रूपसे विद्यार्थीके अंगमें किसी विषयकी विलक्षणता अवश्य रहती है। किसीकी शीघ्र विकसित होती है तो किसीकी समय पाकर; जिसकी परीक्षा विद्यार्थियोंके रहन-सहन, खेल-तमाशे और शारीरिक आन्दोलन प्रक्रियाओंसे की जाती है। अतः अभिरुचिके अनुरूप शिक्षण दिया जाय।

२. विद्यार्थीकी 'विद्या-ग्रहण-कुशलता' जाँचने और इसीकी परीक्षाके लिये परीक्षक द्वारा भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिये। क्योंकि वास्तवमें परीक्षाकी प्रबलता इसीमें है। क्योंकि उसकी स्वाभाविक अंगीकृत विषयकी पिपासा पूरी करना ही उसको धुरंधर बनाना है।

३. अक्षरारंभसे लेकर आचार्य (ग्रेज्युएट्) होनेतक विद्याप्राप्तिमें विद्यार्थीकी एक कौड़ीतक खर्च न होकर उसको ज्ञानलाभका सुयोग होना चाहिये फिर चाहे वह विद्यार्थी धनिक हो या निर्धन।

४. छपी पुस्तकोंकी अपेक्षा हस्तलिखित कॉपी, टीका, टिप्पणी, पुस्तक और पाठप्रणालीपर अधिक जोर दिया जाय।

५. विद्यालय किसी समाज, पंथ या धर्म-भेद-दर्शक न हों, जो ज्ञानोपासनाके सच्चे भूखे हैं—वे सब फिर चाहे किसी पंथ या समाजके हों—उनमें सम्मिलित हो सकें।

६. विद्यालयकी पाठ्य-भाषा हिन्दी और प्रधान भाषा संस्कृत रहे।

७. बालकोंका निवास ब्रह्मचर्याश्रममें हो। और उनको बारह वर्षतक ब्रह्मचारीव्रतमें रहना अनिवार्य रहे।

८. बाल-ब्रह्मचर्याश्रम और बालिका-ब्रह्मचर्याश्रम एक दूसरेसे बिलकुल अलग रहें।

९. आचार्यको पुत्रवत् भावसे तमाम ब्रह्मचारियोंकी परिपालना करनी चाहिये।

१०. विद्यार्थीका कपड़ा-लत्ता, खान-पान, वास्तव्य, अन्य सामान, पुस्तक, कागज, स्याही आदि का खर्च विद्यालयसे हो।

११. नौ वर्षसे अधिक और बारह वर्षके भीतरकी अवस्थावाले विद्यार्थी विद्यालयमें प्रवेश किये जायँ।

१२. जिस विद्यार्थीके पास चौथी कक्षा उत्तीर्ण होनेका प्रमाणपत्र हो, वही विद्यार्थी विद्यालयमें लिया जाय।

१३. उपनयन विद्यालयकी ओरसे होनेके बाद बारह वर्षतक बालकका वास्तव्य विद्यालयमें अनिवार्य हो।

१४. आश्रमके तमाम बालक द्विज नामसे संबोधित किये जायँ।

१५. विद्यार्थियोंके पालकोंसे चन्दा, फीस आदि किसी प्रकारसे भी पैसा वसूल न किया जाय।

१६. प्रति छठे मास या किसी भी तरहसे वर्षमें दो बार विद्यार्थीकी परीक्षा ली जाय।

१७. अनुत्तीर्ण विद्यार्थीको केवल अनुत्तीर्ण विषयमें ही पुनः एक मास पश्चात् परीक्षा देनेका सुयोग दिया जाय।

१८. चारोंही वर्णोंको गुण-कर्म-विभागानुसार अपने अपने कर्ममें कुशलता उत्पन्न करायी जाय।

१९. शारीरिक व्यायाम और बल-सम्पादनका कार्य कुल ब्रह्मचारियोंके लिये अनिवार्य रहे।

२०. कादम्बरी जैसे उपन्यास, नाटक, सिनेमा और अन्य वृत्त-पत्र जिनमें गंदापन हो उपयोगमें न लिये जायँ।

२१. अध्यात्म-बल, शक्ति, प्राणायाम, योग, योग-साधन, योग-सामर्थ्य जो रेडियोसे भी बढ़कर काम देता है उसे वही प्राप्त कर सकते हैं जो स्वतः ब्रह्मचर्यव्रतसे विजय पाकर अमोघ वीर्यशाली हैं। अतः अध्यात्म-बलमें निष्णात किये जानेका प्रबंध रहे।

२२. आयुर्वेदिक-शिक्षण तथा वृक्ष-विज्ञान, जड़ी-बूटी, वनस्पति आदिकी उत्पत्ति, सिद्ध उपयोग, महिमा और जानकारी।

व्यावहारिक शिक्षा

२३. देशी द्रव्योंसे बाटरियाँ बनाना।

२४. दरिद्रनारायण पुरुषको जीवन निर्वाह करनेकी खास खास तरकीबें।

२५. आवश्यक और अनावश्यक उद्योग समझनेकी ख़ास ख़ास बातें।

२६. उद्योगधंधोंका अनुक्रमकोष तथा उसके उपयुक्त देश, काल, परिस्थितिकी क्रिया प्रतिक्रिया।

२७. स्थान, ग्राम, शहर, प्रांतके अनुसार लाभदायक उद्योग-धंधोंका चुनाव।

२८. दुकान, दुकानकी व्यवस्था, दुकानकी सजावट, दुकानकी आवश्यकता तथा दुकानदारीके मूल तत्वोंकी पहचान।

२९. बड़ी दुकान, कारखाना, कंपनी आदिके खोलनेके स्थल और नियम।

३०. मिट्टीके खिलौने बनानेकी क्रिया और उसमें सजावट।

३१. लोहेका प्रवाही रस बनाना, उसके सांचे ढालना आदि।

३२. कांच, बरनी, पेन्सिल, होल्डर, निब, बटन आदि चीजों की बनवटकला।

३३. भूगर्भकी मिट्टीकी पृथक्करणविधि और उसमेंसे धातुतत्वोंको शोधनेकी खास तरकीब।

३४. सेंद्रिय धातुतत्व और निरंद्रिय धातुतत्वकी पहिचान तथा शोधन प्रतिक्रिया।

३५. संगीत, वादन, हलवाई, दरजी, सुनार, सायकल मेकिंग्, मोटर मेकिंग् आदि लगभग सौ कलाओंका शिक्षण।

३६. कौटिल्य अर्थशास्त्रके तमाम तत्वोंका परिचय हरएक विद्यार्थीको अनिवार्य हो।

३७. भूपरीक्षा, भूमिगत-द्रव्य-परीक्षा, धातुपरीक्षा, मोती-परीक्षा, रुई-परीक्षा, चांवल आदि अन्नोंकी परीक्षा, आदि लगभग सौ परीक्षाओंकी रीति।

३८. उष्णता, वायु, चुंबन, प्रकाश, आकर्षण विद्युत आदि अस्सी शास्त्रोंकी हिन्दी भाषाद्वारा जानकारी।

३९. यंत्रस्थितिशास्त्र, यंत्रनिर्माण विधि, स्थितिस्थापकता, दाब, प्रेरणा आदि मूल भूत तत्वों और तरकीबोंका ज्ञान।

४०. घंटोंका हिसाब मिनिटोंमें निपटानेवाली महाजनी-पद्धतिकी कई युक्तियाँ।

४१. मुनीब, मुनीबीपद, मुनीबका स्वामीके प्रति बर्ताव, जवाबदेही तथा कर्त्तव्यपरायणताका ज्ञान।

४२. नौकर और स्वामी, स्वामीके प्रति नौकरके कर्तव्य।

४३. सराफी, किराना, बजाजी, साहूकारी ब्याजबट्टा, देनलेन आदि लगभग ऐसे सौ विषयोंका दुकानदारीके संबंधमें ज्ञान।

४४. देशी उपायोंसे कृषिशास्त्रकी समुन्नतिके साधन।

४५. व्यवसायमें उत्तेजक अन्य उपाय।

साहित्यके प्रति

४६. अकेला भूगोल ही नहीं किन्तु ऐसे कई भूगोल पैदा करनेकी प्रचंड शक्ति जिसमें ओतः प्रोत भरी हुई है ऐसे आकाशीय गोलाका पूर्ण ज्ञान होना।

४७. खगोलके न्यारे न्यारे प्रांत, प्रदेश शक्ति, सामर्थ्य, और आन्दोलन प्रक्रियाओंका ज्ञान प्राप्त कराना।

४८. जितनी हो सके उतनी ऐतिहासिक सामग्रियाँ संग्रह करना, प्राचीन शिलालेख, कीर्तिस्तंभ, ताम्रपत्र, भूमिगत द्रव्योंसे जाँच आदिका ज्ञान।

४९. 'हिन्दीमें वेद-साहित्य, शीघ्रातिशीघ्र तैयार करना जिसमें अकल्पित अनेकों विषयकी सूक्तियाँ तथा तरकीबें भरी पड़ी हैं उसे हिन्दी जगतमें स्पष्टतया दिखाना।

५०. श्रुति, स्मृति, श्रौत, सूत्र, गृह्यसूत्र, आरण्यक, उपनिषद, पुराण, धर्म-शास्त्र आदिके वास्तविक तात्पर्यार्थको बाहर लानेके ढंग बताना।

५१. अर्थसहित वेद-मंत्र कहनेवाला वर्ग तैयार करना।

५२. साहित्यशास्त्र, पद्यरचना, अलंकार, निबंधलेखन आदि भावपूर्ण करनेका ज्ञान देना।

५३. उपरोक्त तमाम बातें कृतिपूर्ण कृतिमें लानेके लिये ट्रेण्ड शिक्षक वर्ग तैयार करना।

५४. अप्राप्य ग्रंथों को बनवाना और प्राप्यका सदुपयोग करना।

५५. उपरोक्त कुल बातें विद्यालयोंमें आवें ऐसा विश्वविद्यालयोंके संचालकोंसे परामर्श करना।

५६. भारत सरकार सभी जगह इस प्रणालीका प्रचार करे ऐसा अनुरोध रखना।

लड़कियोंकी शिक्षा

५७. बालब्रह्मचर्याश्रमकी तरह तमाम नियम बालिका-ब्रह्मचर्याश्रममें लागू रहें।

५८. इनको वेदाधिकार और उपनयन संस्कारका अधिकार हो।

५९. चार वर्षका शिक्षणक्रम पूरा रहे।

६०. कपड़ा सीना, कटिंग करना आदि।

(ब) कसीदा, बेल बूँटा करना, सलमा सितारा आदि।

(क) जरी, कलाबत्तूका कार्य, टोपी बनाना।

(ङ) सूत कातना, बुनना, कपड़े धोना, इस्तिरी करना।

(च) घरकी सफ़ाई सजावट, झाड-बुहार आदि।

(छ) धान्यकी सफ़ाई, चुनना, फटकना।

(ज) व्यंजन बनाना, पाक शास्त्रका पूर्णज्ञान।

(झ) शिशुसांगोपन, बालकोंकी प्रतिपालना।

(ट) घरकी दवाई, औषध-उपचार आदि।

(ठ) नर्सके तमाम काम; प्रसूत कराना आदि।

(ड) पीसना, दलना, बाँटना, कूटना आदि।

(ढ) संगीतका साधारण ज्ञान।

(त) बहीखाता, जमाखर्च, आदि।

(थ) सास, ससुर, ननँद आदिकी सेवा-सुश्रूषा।

(द) स्वामि-भक्ति, सेवा-सुश्रूषाका ज्ञान।

(ध) वेदपाठ, संध्या, प्राणायाम आदि उपरोक्त विषय अनिवार्य रहें।

शिक्षकोंके प्रति

(१) जहाँतक हो सके ब्रह्मचर्यसे रहे।

(२) बीड़ी, तमाखू, आदि नशीली चीजें सेवन न करे।

(३) कमजोर, अंग-व्यंग, रोगग्रस्त न हो।

(४) पुत्रवत् विद्यार्थियोंको समझे।

(५) सिखानेमें सरलता और सुगमता रखे।

(६) व्यापार-विषयमें दक्षताका प्रमाणपत्र हो।

(७) किसी एक विषयका पारंगत हो।

(८) विद्यार्थीकी अभिरुचि जाननेमें पटु हो।

(९) विषयको सुगम और गंभीरतासे समझावे।

(१०) आचार्यकी सलाह, वचनोंको पाले।

उपरोक्त योजनाको अमलमें लाना ही भारतको शक्तिशाली और समुन्नत करना है।

वैज्ञानिकको आश्रयकी आवश्यकता*

[ले० रामदास गौड़]

कवि और साहित्यिकोंको अपनी जीविका और यशके लिये ही आश्रय चाहिये। परन्तु वैज्ञानिकको तो यश और जीविकाके सिवा वैज्ञानिक उपकरण और सामग्री भी चाहिये। अतः उसे तो आश्रयकी अत्यधिक आवश्यकता है। यदि वह यश और जीविकाके प्रश्नको किसी तरह सुलझा भी चुका हो तो भी वैज्ञानिक उपकरणों बिना उसका काम कभी चल ही नहीं सकता। यह सभी जानते हैं कि प्रयोगशाला बिना वैज्ञानिक कोई काम नहीं कर सकता। जिस वैज्ञानिकका किसी प्रयोगशालासे संबन्ध नहीं है वह लुञ्ज है, निकम्मा है। सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन पहले जब कलकत्तेमें अकौंट-जेनरल थे उस समय उन्होंने इंडियन असोसियेशन-फार-सायंसकी प्रयोगशालासे सम्बन्ध कर लिया था और नियमसे वहाँ काम करते थे। कलकत्तेमें यह भारी सुभीता है। यह सुभीता देशमें अन्यत्र भी होना चाहिये। यदि खोजके कामके लिये न हो तो घरेलू उद्योगोंके लिये तो हमें प्रत्येक बड़ी बस्तीमें प्रयोगशाला या सिखानेवाले कारखाने चाहिये। अभी आरंभ करनेके लिये और नहीं तो कमसे कम प्रयागकी हिन्दी विद्यापीठमें यंत्रविज्ञानकी शिक्षा हो और यांत्रिक प्रयोगशाला बने तो यह अभाव दूर हो सकता है और देशका भारी उपकार हो। कोई कहे कि यंत्रोंके लिये पारिभाषिक शब्द पहले गढ़ लो तब यंत्र मँगवाना, तो बड़ी हास्यास्पद बात होगी। यंत्र मँगवाकर और उनका प्रयोग समझ लेनेपर ही उनके लिये शब्दोंका गढ़ा जाना बहुत उपयोगी होगा।

* तेईसवें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर दिल्लीमें विज्ञान-परिषत्‌के सभापतिपदसे दिये हुए भाषणका एक अंश।

छोटे-छोटे कामोंकी शिक्षा

यंत्रोंके साथ-साथ रोजगारी काम भी सिखाये जायँ जिसमें सीखते ही छात्र कुछ न कुछ कमाने लायक हो जाय। उदाहरणकी भाँति यंत्र-रचना, यंत्रनिर्माण, यंत्र-गणित, यांत्रिक-चित्रण, फ़रमें बनाना, लोहे-पीतल-ईस्पातकी ढलाई, लोहा-ताँबा-टीनके काम, औजार बनाना, पानी चढ़ाना, बिजली और गैससे झाल लगाना, कलई करना, किर्रें और चूड़ी काटना, इंजन-मोटर डैनमों आदिका अध्ययन और चालन, ब्रश बनाना, काँचकी फुँकाई, साबुन बनाना, मोमबत्ती बनाना, रंग बनाना, स्याही बनाना, वार-निश रोगन आदि बनाना, यन्त्रोंकी मरम्मत करना, बटन बनाना, हुक बनाना, सेफटीपिन बनाना, निब बनाना, सुई बनाना, आलपीन बनाना, छतरी-ताले-चाकू-कैंची-खिलौने आदि छोटी-छोटी चीज़ें बनाना, लकड़ीके फौंटेनपेन बनाना, पेंसिलें बनाना, बैसिकिलें बनाना और मरम्मत, इत्यादि इत्यादि ऐसे काम हैं कि सीखकर आदमी कुछ-न-कुछ कमाई कर सकता है। ऐसे कामोंके सिवा बड़े-बड़े इंजनोंका, मोटर गाड़ियोंका और मोटरसैकिलोंका चलाना, उनकी मरम्मत उनका निर्माण आदि विषय भी सिखाये जाने चाहिये।

मेस भी विषय विश्वविद्यालयोंके नहीं हैं। इनकी पढ़ाई और शिक्षाका प्रबन्ध इंग्लिस्तानमें भी City & Guilds of London द्वारा होता है। वही संस्था परीक्षाएँ भी लेती हैं। उसकी परीक्षाएँ भारतमें भी होती हैं। सम्मेलनभी वही परीक्षाएँ क्यों न ले और अपने परीक्षा-और शिक्षा-विभागका इस सीमातक क्यों न विकास करे। विद्यापीठकी इस प्रयोगशालामें बिना किसी बंधनके जो कोई फीस दे वही भरती हो जाय और शिक्षा पावे। शिक्षा सिद्धान्ततः ऐसी हो जिससे देशका सर्वतः कल्याणही हो, प्रवेशपानेवालेको आवश्यकता होनेपर पढ़ना लिखना और गणित आदिभी सिखाया जाय। इस व्यावहारिक विद्यालयसे काम करनेवाले निकलें, करानेवाले नहीं, मजूर निकलें बाबू नहीं। जो निकले वह नौकरी न खोजे, रोजगार करे या मज-दूरी। सम्मेलनके विज्ञानविभागके द्वारा यदि यह काम हो जाय तो देश उसका कृतकृत्य हो जाय और उसे इस तरहके काममें अगुआ होनेका श्रेय मिले।

यह कहा जा सकता है कि ऐसी बात सम्मेलनके उद्देश्योंमें नहीं है। मैं नहीं मान सकता कि जहाँ हिन्दीके द्वाराही सब तरहका शिक्षण है और विश्वविद्यालय है वहाँ यह काम उद्देश्यके विपरीत होगा, और यदि हो भी तो सम्मेलन अपने उद्देश्योंमें ऐसे उपयोगी कामको स्थान देनेमें आगापीछा न करेगा और आवश्यकतानुसार उद्देश्यों और नियमोंमें परिवर्धन करेगा।

परन्तु आश्रय केवल सामग्रीका ही न चाहिये। जीविका और प्रोत्साहनके लिये धनका आश्रय भी चाहिये। यश और सम्मानके लिये बड़ोंका विद्वानोंका एवं राजाका भी आश्रय चाहिये। आश्रयकी यही सुविधाएँ अपने देशमें होतीं तो राय, बोस, प्रसाद रमन, साहा प्रभृति जगद्विख्यात विद्वान विदेशी भाषामें अपनी खोजोंके विवरण न प्रकाशित कराते। आश्रयकी ऐसी सुबिधाएँ होतीं तो अद्वैतदर्शी विश्वविख्यात ऐंस्टैन स्वदेशसे निकलकर स्वामीशंकराचार्यके देशमें सहज ही किसी न किसी विश्वविद्यालयमें सम्मान-भागी हो जाता और उसी तरहके अनेक प्रख्यात आचार्य्य आज भारतीय बन जाते। युरोपमें ऐसा आश्रय सुलभ है। हमारे देशमें नहीं। परन्तु हमें नितान्त निराश न हो जाना चाहिये। हमारे देशी नरेशोंमें विज्ञानके प्रेमी मौजूद हैं जो देशकी प्रकृत अवस्था और आवश्यकताको खूब समझते हैं, जो उचित व्यवहारसाध्य योजना देखकर आश्रय बन सकते हैं और सहायता दे सकते हैं। ऐसे समृद्ध देशभक्त भी हैं जो इस कामके मूल्यको समझकर इसमें धन लगा सकते हैं।

हमारी वर्त्तमान आवश्यकताएँ

देशकी वर्त्तमान आवश्यकताएँ छिपी नहीं हैं। हर-एक समझदार आदमी अकुला रहा है कि काम कैसे हो। व्यापारकी मंदी, भयानक बेकारी, घोर दरिद्रता हर आदमीके पीछे अंकुशका काम कर रही है। अमीर, गरीब सभी इसका अनुभव कर रहे हैं। इसका फल यह है कि भली या बुरी, संगठित, वैयक्तिक या सामूहिक औद्योगिक संस्थाएँ देशमें खुल रही हैं। इनकी बिखरी हुई शक्तियोंको बटोरकर एकत्र करनेवाली कोई संस्था चाहिये जिसमें देशके अनुभवी विद्वान और कार्यकुशल लोग मार्गदर्शक हों। सम्मेलनकी विज्ञान-समिति ऐसी ही संस्था बने और इसका ठोस संगठन हो।

वैज्ञानिक विचारोंमें क्रान्ति

ऐंस्टैनका सापेक्षवाद

[ले० प्रो० दत्तात्रेय गोपाल मटंगे, एम्. एस्. सी., एफ़. पी. एस.]

१३-देशकी दूरीको नये ढंगसे नापना

ऐन्स्टैनवाले गणितकी नयी विधि

पिछले अध्यायमें केशव और नारायणके प्रवासका गणित करनेके लिये ऐन्स्टैनकी पद्धतिका उपयोग किया गया है। अब मा० मो० के प्रयोगका गणित भी इसी पद्धतिसे किया जावेगा। इस गणितमें दूरियोंके नापनेकी इकाई १ "प्रवे" (१,८६००० मील प्र०से) रहेगी। मनुष्य-कृत वेग सर्वदा १ मी। से, से बहुत कम रहता है। उदाहरणार्थ, तोपके गोलेका वेग $\frac{३}{५}$ मी०। से, मोटरका वेग $\frac{१}{१४}$ मी से, हवाई जहाजका वेग $\frac{१}{६०}$ मी०।से, होता है। यदि मनुष्यकृतवेगोंको प्रवेके सापेक्ष लिखें, तो वे $\frac{१}{१८६०००}$ प्र।से, से बहुतकम रहेंगे, किन्तु नवीन गणितमें प्रकाशवेगका बारबार उपयोग होनेसे सभी वेगोंका माप प्रवे।से, और दूरियां प्रवे में ली जावेंगीं। इस सूचनामें यह सुविधा है कि यदि हम किसी निश्चित दूरीको प प्रवे कहें, तो इससे आपसे आप पता चल जाता है, कि प्रकाशको उतनी दूर जानेके लिये प से, लगेंगे।

इस प्रयोगमें नावोंके बदलेमें प्रकाशकी किरणें हैं। केशव और नारायण आईनोंके साथ रहनेवाले अवलोकक हैं।

(१) यदि **म→क→म** दूरी २ त प्रवे हो और **म→ब→म** दूरीभी २ **त** प्रवे हो तो नवीन पद्धतिके अनुसार प्रकाशको इस प्रवासमें भी एकही वेगसे जाना चाहिये। इसलिये पहिली किरणको अपने प्रवासमें २त से० लगेंगे। इसका फल यह होगा कि वे किरणें एकही क्षण लौटकर आवेंगीं, जिसके कारण अवलोकन-कर्त्ताको प्रकाशकी धारीमें तीव्रता विषयक कोई परिवर्तन नहीं दीखेगा। इसी प्रकार मा० मो० को अपने प्रयोगमें दीखा था। इसलिये उसका यही कारण है, कि प्रकाशकी किरणें सदा एक ही वेग से जाती हैं।

(२) (अ) अब पृथ्वीके वेगका विचार करते हुए, जो **य** प्र।से है, उस परके आईनोंका वेग भी **य** प्र।से होगा, किन्तु प्रयोगकर्त्ता इसबार आईनोंके साथ न जाकर पृथ्वीकी कक्षाके एक स्थान पर स्थित रहेगा। माधव और केशव दोनोंके मतसे **म→ब** दूरी त प्रवे है।

∴ चित्र ११ में

$$म\,ब = त$$

माधवके मतसे यदि इस प्रवासमें **श** से० लगें तो,

$$ब\,द = य \times श$$

$$\therefore म\,द = \sqrt{त^{२} + य^{२}श^{२}}$$

नवीन पद्धतिके अनुसार प्रकाशका वेग दोनों १ प्र०। से लेते हैं, और चूंकि माधवको ऐसा अनुभव होता है कि **मद** दूरी **श** से० में पूरीकी गयी है, इसलिये उसके मतसे,

$$मद = श \text{ प्रवे}$$

$$\therefore श = \sqrt{त^{२} + य^{२}श^{२}}$$

$$\text{या } श^{२} = त^{२} + य^{२}श^{२} \text{ ——(१४)}$$

$$\text{या } श^{२} - श^{२}य^{२} = त^{२}$$

$$\text{या } श^{२}(१-य^{२}) = त^{२}$$

$$\text{या } श^{२} = \frac{त^{२}}{१-य^{२}}$$

$$\therefore श = \frac{त}{\sqrt{१-य}} \text{ ——(१५)}$$

केशवके मतसे जिस प्रवासके लिये त से० लगे, उसी प्रवासके लिये माधवके मतसे श० से० लगे। $\sqrt{१-य^{२}}$ संख्या १ की अपेक्षा कम है और

$$श\sqrt{१-य^{२}} = त$$

अर्थात् **श** संख्या **त** संख्यासे सांख्यिक मानमें बड़ी है, क्योंकि उसमें जब हम १ से छोटी संख्याका गुणा करते हैं,

तब वह त के बराबर होती है। इसलिये केशवके जगत्‌के सेकंड माधवके जगत्‌के सेकंडोंसे कुछ बड़े हो गये हैं, ऐसा माधवको आपेक्षवेगके कारण मालूम पड़ेगा। (पहलेके नावके उदाहरणमें केशवका जो प्रवास उसके मतसे ८० से० में हुआ था वही माधवके मनसे १०० से० में हुआ; अर्थात् जब केशवकी घड़ी में ४ से० होते हैं, तब माधवकी घड़ीमें ५ से० होते हैं।)

(२) (ब) माधव मब दूरीको त प्रवे मानता है, किन्तु म क दूरीको, मानलें, कि वह थ प्रवे समझता है। म→क जानेके लिये किरण निकला; क परका आईना भी य प्रासे के वेगसे दूर जा रहा है, इसलिये किरणको जानेमें (१-य) प्रासे के वेगसे और लौटनेमें (१+य) प्रासेके वेगसे प्रवास करना पड़ेगा।

$$\text{जानेका समय} = \frac{\text{थ}}{\text{१}-\text{य}} \text{——(१६)}$$

$$\text{लौटनेका समय} = \frac{\text{थ}}{\text{१}+\text{य}} \text{——(१७)}$$

$$\therefore \text{पूरा समय} = \frac{\text{थ}}{\text{१}-\text{य}} + \frac{\text{थ}}{\text{१}+\text{थ}}$$

$$= \frac{\text{थ} \;+\text{थय}+\text{थ}-\text{थय}}{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}$$

$$= \frac{\text{२ थ}}{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}} \text{— (१८)}$$

माधवके मतसे म→ब→म प्रवासमें २ श से० लगे हैं, और क्योंकि दोनों प्रवास एकही समयमें पूरे होते हैं, इसलिये

$$\text{२श} = \frac{\text{२थ}}{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}$$

परन्तु

$$\text{श} = \frac{\text{त}}{\sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}}$$

$$\therefore \frac{\text{२ थ}}{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}} = \frac{\text{२त}}{\sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}}$$

$$\text{(१९)} \therefore \text{थ} = \text{त}\frac{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}{\sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}} = \text{त}\sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}} \text{—(१९)}$$

इसलिये माधवके (सापेक्ष गतिवाले किसी भी अवलोककके) अनुमान इस प्रकार लिखे जा सकते हैं—

(१) उसकी यात्राकी दिशाके समकोण परकी दूरियां ज्योंकी त्यों दीखती हैं।

(२) प्रवासकी रेखापरकी दूरियां संकुचित होकर $\sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}$ अनुपातमें कम हो जाती हैं।

[पहले नावके उदाहरणमें दिखाया जा चुका है कि संकोच प्रमाण $= \frac{\sqrt{\text{न्न}^{\text{२}}-\text{य}^{\text{२}}}}{\text{न्न}}$ यहाँ पर न्न नावका वेग और य लकड़ीके टुकड़ोंका वेग है। यदि ये ही वेग प्रवेके रूपमें लिखें,

$$\text{तो} \frac{\sqrt{\text{न्न}^{\text{२}}-\text{य}^{\text{२}}}}{\text{न्न}} = \sqrt{\left(\frac{\text{न्न}^{\text{२}}-\text{य}^{\text{२}}}{\text{न्न}^{\text{२}}}\right)} = \sqrt{\left(\text{१}-\frac{\text{य}^{\text{२}}}{\text{न्न}^{\text{२}}}\right)}$$

यदि न्न को १ प्रवे कहें तो $\frac{\text{य}}{\text{न्न}} = \text{य}$ प्रवे। से० टुकड़ोंका वेग होगा।

$\therefore$ संकोच प्रमाण $= \sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}$

इसलिये यदि कोई वस्तु य प्रासे के वेगसे दूर जाती हो, तो वेगके कारण उस दूरीमें $\sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}$ के अनुपातसे संकोच हो जावेगा।]

१४—कालकी लम्बाईको नये ढंगसे नापना

ऐन्स्टैनकी नयी पद्धति

पिछले अध्यायमें जिस प्रवासके लिये केशवके मतसे 'त' से० लगे, उसीके लिये माधवके मतसे 'श' से० लगे। उनका सम्बन्ध इस प्रकार है—

$$\text{श} \sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}} = \text{त}$$

अर्थात् केशवका कोई कालान्तर जब 'त' सेकंड है, तब माधवका अनुभूत वही कालान्तर

$$\frac{\text{त}}{\sqrt{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}} \text{ सेकंड होगा।}$$
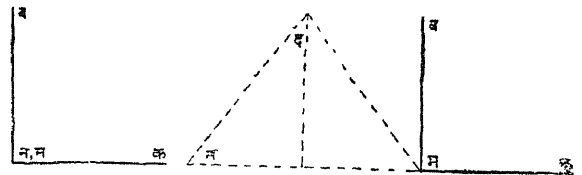
चित्र ११

केशव और नारायणका मत—अब मान लें कि केशव **म** पर है और नारायण उससे **त** प्रवे दूर **क** पर है। इस अन्तरको जानेमें प्रकाशको **त** से० लगेंगे। केशव और नारायणने ऐसा निश्चय किया कि केशव **म**से ठीक १२ बजे एक किरण **क** की ओर भेजेगा। चूँकि **म**की दूरी **त** प्रवे है, इसलिये ज्योंही वह किरण **म** पर पहुँचती है, त्योंही नारायण अपनी घड़ीमें १२ बजाकर **त** सेकंड कर लेता है। जिस समय यह किया जा चुकता है, उस समय दोनोंको निश्चय हो जाता है कि हमारा समय एकसा है और उस विषयमें उनमें मतभेद नहीं रहता।

माधवका मत—माधव सोचता है, कि केशव और नारायण उससे दूर **य** प्रासे के वेगसे चले जा रहे हैं।

उसके मत से **म→क** प्रवासके लिये प्रकाश-किरणोंको $\frac{\text{थ}}{\text{१}-\text{य}}$ से० लगते हैं।

—(समी० १६ देखो)

किन्तु (**म→क→म**) समय

$$\frac{\text{२ थ}}{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}$$ —(समी० १८ देखो)

है। जानेमें जो समय लगता है वह अधिक रहता है।

$$\frac{\text{जानेका समय}}{\text{पूरा समय}} = \frac{\text{थ}}{\text{१}-\text{य}} \times \frac{\text{१}-\text{य}^{\text{२}}}{\text{२थ}}$$

$$= \frac{\text{१}+\text{य}}{\text{२}}$$

केशवके मतसे किरण **म→क** दूरी **त** से० में जाती है, परन्तु चूंकि माधवको मालूम होता है, कि जानेमें समय अधिक लगता है। इसलिये वह समय केशवको भी अधिक मालूम होना चाहिये, यह उसका मत है।

माधव खुदको स्थिर समझता है। वह कहता है—"मेरे मतसे **म→क** और **क→म** प्रवास एकही समयमें नहीं होते। पूरे प्रवासमें जो समय लगता है उसका $\frac{\text{१}+\text{य}}{\text{२}}$ जानेके लिये लगता है। मेरे और केशवके पूरे प्रवासके समयोंका सांख्यिक मान चाहे भिन्न हो, किन्तु उसका $\frac{\text{१}+\text{य}}{\text{२}}$ समय केवल जानेके लिये ही अवश्य लगेगा। केशवके मतसे पूरे प्रवासके लिये २**त** से० ही लगते हैं न? फिर भी उसके जानेका समय $\text{२त} \times \frac{\text{१}+\text{य}}{\text{२}}$ से० $= \text{त} + \text{तय}$ से० ही लगना चाहिये। इसलिये जिस क्षण किरण **क** पर पहुंचेगी उस समय केशवकी घड़ीमें १२ बजकर **त + तय** से० बजेंगे।"

इसलिये यद्यपि केशव और नारायणका विश्वास है, कि उनकी घड़ियोंका समय बराबर है, किन्तु माधवके मतसे, केशवकी घड़ी नारायणकी घड़ी से **तय** सेकंडसे आगे होगी।

दो घड़ियाँ, जो कि **त** प्रवेके अन्तरपर हैं, **य** प्रासे० के वेगसे प्रवास कर रहीं हैं, और एक स्थानपर स्थित अवलोकनकर्त्तासे दूर जा रही हैं, तो उस अवलोकककेपासकी घड़ी उस दूसरी घड़ीकी अपेक्षा **त × य** सेकंड आगे समय बतलाती हुई दीखेगी।

१५-घटनाओंमें देश और कालका भेद

दो प्रकारकी की घटनाओं पर विचार किया जावेगा—(१) प्रवास रूप (२) स्वतन्त्र। एक मनुष्य एक स्थानसे निकलता है—इसे हम पहिली घटना कहेंगे। प्रवास करके किसी दूसरे स्थानको वह पहुँचता है इसे हम दूसरी घटना कहेंगे। इन घटनाओंमें अनुक्रम रहता है और वह कभी नहीं बदलता।

किन्तु एक स्थानपर बन्दूक चली और दूसरे स्थानपर पत्थर गिरे; ये दो घटनाएं बिलकुल स्वतंत्र हैं। इनका अनुक्रम बदला जा सकता है।

जिन दो स्थानोंपर घटनाएं हुई उनके बीचकी दूरीको देशान्तर वा स्थलान्तर कहते हैं और उन घटनाओंके बीचमें जो समय बीतता है, उसे घटनाओंका कालान्तर कहते हैं।

न,म —— क

न - - - - - - - - - - - - म —— क
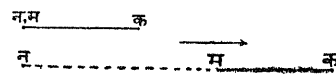
चित्र १२

माधव **म** के ऊपर **न** स्थान पर है। उसने पानीमें एक पत्थर डाला। पानी **य** प्रासे० वेगसे उससे दूर जा रहा है। **श** से० के पश्चात् **क** पर एक मछली एक क्षणके लिये पानीकी सतहके ऊपर आकर फिर छिप गयी। यहाँ पर

पानीमें माधवका पत्थर डालना घटना नं० (१) और मछली-का दिखना घटना नं० (२) है।

केशव म के साथ बहता जा रहा है। उसके मतसे उक्त घटनाओंका स्थलान्तर 'त' प्रवे है, और उनके बीचका कालान्तर 'स' सेकंड है।

माधवके मतसे घटना नं० (१) उसके पास और घटना नं० (२) क पर हुई। जब घटना नं० (१) हुई तब स्थिति चित्र १२ (१) के अनुसार थी और जब घटना नं० (२) हुई तब स्थिति चित्र १२ (२) के अनुसार हो गयी। उसके मतसे स्थलान्तर मक = थ प्रवे और कालान्तर श प्रवे है, ऐसा मानलें तो—

$\therefore$ म न = य × श

माधवके मतसे म क = थ–यश

परन्तु केशवके मतसे मक = त

$\therefore$ थ – यश = त$\sqrt{१–य^२}$

$$\therefore त = \frac{थ - यश}{\sqrt{१–य^२}} \text{——(२०)}$$

इसमें यह ध्यानमें रखनेकी बात है, कि सब निरीक्षक गणित करनेमें उन सब वेगोंका उपयोग कर लेते हैं जिनका उनको ज्ञान है।

मान लें कि केशवको घटना नं० (१) ठीक १२ बजे होती हुई दीखी। उसके स सेकंड पश्चात् त प्रवे दूर क स्थानपर घटना नं० (२) हुई चूंकि क स्थान पर १२ बजकर स से० हुए हैं, इसलिये माधवके मतसे म स्थान पर केशवकी घड़ीमें १२ बजकर स + यत से० होना चाहिये।

किन्तु केशवके कालके सांख्यिक मानमें $\sqrt{१–य^२}$ का भाग देनेपर माधवकी सेकंड संख्या मिलती है जो श मानी गयी है।

$$\therefore श = \frac{स + यत}{\sqrt{१–य^२}}$$

$$\therefore श\sqrt{१–य^२} = स + यत$$

$$\text{किन्तु}\quad त = \frac{थ–यश}{\sqrt{१–य^२}} \text{——(समी० २० देखो)}$$

$$\therefore श\sqrt{१–य^२} = स + य \times \frac{थ–यश}{\sqrt{१–य^२}}$$

$$\therefore श\,(१–य^२) = स\sqrt{१–य^२} + यथ–य^२श$$

$$\text{या}\ श–शय^२ + य^२श–यथ = स\sqrt{१–य^२}$$

$$\therefore स\sqrt{१–य^२} = श–यथ$$

$$\therefore स = \frac{श–यथ}{१–य^२} \text{——(२१)}$$

समीकरण २० और २१में य, श और त, स के पारस्परिक सम्बन्ध बतलाये गये हैं।

इसलिये घटनाओंके कालान्तर और स्थलान्तर अपनी अपनी स्थिति या गतिके अनुसार भिन्न-भिन्न अवलोकक भिन्न-भिन्न पाते हैं।

जब इन संख्याओंका पारस्परिक सम्बन्ध खोजा गया तब $स^२–त^२$ संख्याका मान बहुत ही महत्वका पाया गया। वह इस प्रकार है—

$$स^२ = \frac{(श–यथ)^२}{१–य^२}$$

$$त^२ = \frac{(थ–यश)^२}{१–य}$$

$$\therefore स^२–त^२ = \frac{(श–यथ)^२–(थ–यश)^२}{१–य^२}$$

$$= \frac{(श–यथ + थ–यश)\,(श–यथ–थ + यश)}{१–य^२}$$

$$= \frac{(श + थ)\,(१–य)\,(श–थ)\,(१ + य)}{१–य^२}$$

$$= \frac{(श^२–थ^२)\,(१–य^२)}{१–य^२} = श^२–थ^२ \text{——(२२)}$$

उपरिलिखित गणितसे एक मुख्य अनुमान निकलता है कि

"<u>घटनाओंके कालान्तर और स्थलान्तर चाहे भिन्न-भिन्न पाये जावें किंतु उनके वर्गोंका अन्तर प्रत्येक अवलोकक उतना ही पावेगा।</u>"

इस अन्तरके वर्गमूलके लिये घटनान्तर (संक्षेप 'घ') का उपयोग किया जायगा।

$\therefore$ घ^2 = स^2 − त^2 = श^2 − थ^2 = इत्यादि अर्थात् घ की कीमत सब अवलोकक एकसी पावेंगे। त, स और थ, थ का मूल्य अलग-अलग रहेगा, किन्तु घटनान्तर कोई कहींसे भी नापे, एक बराबर मिलेगा। दो घटनाओंका घटनान्तर एक अवलोकक यदि स और दूसरा श बतलावे तो हम किसको सत्य मानें? उसी प्रकार एक अवलोकन-कर्त्ता स्थलान्तर त और दूसरा थ बतावे तो किसको सत्य-माना जावे? प्रत्येक अवलोकककोे जो सत्य दीखा वही बतला रहा है, किन्तु यदि दोनोंके अवलोकनोंकी जाँच की जावे, और यदि हम उनके स्थलान्तर और कालान्तर लेकर उनके वर्गोंका अन्तर निकालें, तो वह बराबर मिलेगा। वही अन्तर सत्य है। अर्थात् यदि स्थलान्तर और कालान्तरका संयोगकर घटनान्तर निकालें, तो वह प्रत्येक अवलोकककोे एक बराबर मिलेगा। केवल स्थलांतरों और कालान्तरोंके सम्बन्धमें मतभेद रह सकता है, इसलिये उनमेंसे प्रत्येक परम सत्य है, ऐसा नहीं माना जा सकता। जब सभी भिन्न अवलोकन बतला रहे हैं, तब किसको सत्य माना जावे? इसलिये इन सब बातोंका विचार करते हुए मिंन्-कौस्की ने एक बड़े महत्वका विधान किया। वह इस प्रकार है—

"अबसे स्थलान्तर और कालान्तरका स्वतंत्र अर्थ लुप्त हो गया है। वे दोनों घटनान्तरसे निकलनेवाले अनुमान या भास हैं, ऐसाही मानना चाहिये। घटनान्तर ही सार्थक है और वही सत्य है।"

१६—घटनाओंके भेदसे हमने क्या अनुभव किया

यदि सब देशान्तर दूरियां प्रवेके रूपमें, और सब कालान्तर सेकंडोंके रूपमें नापे जावें, तो प्रकाशके प्रवासके सम्बन्धमें निम्नलिखित गणित किया जा सकता है—

म से किरण निकला—घटना नं० १

क पर किरण पहुँचा—घटना नं० २

अर्थात् यदि इन घटनाओंका स्थलान्तर **त** और कालान्तर **स** हो, तो चूंकि ये घटनाएँ प्रकाशके प्रवासके विषय की हैं।

$\therefore$ स = त

$\therefore$ घ^2 = स^2 — त^2 = ०

परन्तु स^2 — त^2 = श^2 — थ^2 — (समी. २३ देखो)

श^2 — थ^2 = ०

अर्थात् भिन्न-भिन्न अवलोकक प्रकाशके प्रवासका स्थलान्तर और कालान्तर भलेही भिन्न-भिन्न बतलावें किन्तु उनके वर्गोंका अन्तर यानी घटनान्तर शून्य रहता है।

प्रकाशका वेग १प्रासे होनेके कारण प्रकाश किरणोंके प्रवासका घटनान्तर शून्य आया, किन्तु अन्तरिक्षमें स्थित किसी भी पदार्थका वेग १२,५०० मी। से.से अधिक नहीं पाया गया है। इस पृथ्वीपर पाये जानेवाले वेग तो सभी १मी। से.से कम होते हैं। इसलिये जब हम किसी जड़ पदार्थके प्रवासका घटनान्तर निकालेंगे, तो कालान्तर (से.) स्थलान्तर (प्रवे) से सदा अधिक रहेगा।

अर्थात् स $>$ त

$\therefore$ घ^2 = स^2 — त^2 = + संख्या

$\therefore$ घ = $\sqrt{\text{धन संख्या}}$

अर्थात् दृश्य जगत्में प्रवासरूप घटनाओंके घटनान्तर सदा धन संख्या मिलते हैं। ऐसी घटनाओंका अनुक्रम सभी अवलोककोंके लिये एकसा रहेगा। इसलिये यदि एक अवलोकक एक घटनाको पहले होती हुई पावेगा, तो सभी अवलोकक उसे पहले होती हुई पावेंगे।

प्रवासकी घटनाओंका अनुक्रम भी निश्चित रहता है, अर्थात् प्रवासकी घटना होनेमें पहली घटना निकलनेको होती है और दूसरी पहुँचनेको। ऐसा नहीं हो सकता कि पहुँचनेकी घटना निकलनेके पहले हो जावे। यदि घटनाएँ स्वतन्त्र हों, तो इस प्रकारके अनुक्रमका होना आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ, बन्दूक छूटने और पत्थर गिरनेकी घटनाओंको लें। बन्दूक छूटनेके बाद भी पत्थर गिर सकता है, और पत्थर गिरनेके बाद भी बन्दूक छूट सकती है। इस तरह इन घटनाओंमें कोई परस्परावलम्बन नहीं है। उनमेंसे कोई भी घटना पहले हो सकती है।

इस प्रकारकी घटनाओंके स्थलान्तर और कालान्तरके सांख्यिक मान निम्नलिखित किसी भी शीर्षमें आ सकते हैं।

(१) स $>$ त; यदि स का सांख्यिक मान त से

बड़ा हो, तो घटनाओंका अनुक्रम सभी अवलोककोंको एकसा मालूम पड़ेगा।

(२) स = त; ऐसी घटना प्रकाशके प्रवासकी घटनाओंके तुल्य है, इसलिये इस दशामें सभीका घटनान्तर शून्य होगा।

(३) स<त; ऐसी दशा में

$$घ^2 = स^2 — त^2 = \text{ऋण संख्या}$$

$$\therefore घ = \sqrt{\text{ऋणसंख्या}}$$

ऋण संख्याका वर्गमूल नहीं निकाला जा सकता। कभी-कभी ऐसी होनेवाली घटनाओंका अनुक्रम उलटा हुआ पाया जा सकता है, पर क्योंकि साधारणतया ऐसी संख्याओंका मान निकालना सम्भव नहीं है, इसलिये इनको निरर्थक ही समझना चाहिये।

इसलिये अनुभवमें आनेवाली घटनाओंके स्थलान्तर कालान्तरसे सर्वदा कम रहते हैं और इसकी अल्पतम मर्यादा **स = त है** जहाँपर स्थलांतर प्रवे में और कालान्तर सेकंडमें नापा गया है। **स**<त के विषयमें अनुमान निरर्थक है।

$$घ^2 = स^2 — त^2$$

$$\therefore स^2 = त^2 + घ^2$$

अर्थात् यदि समकोण त्रिभुज **मकब** में **मब** कालान्तर और **मक** स्थलान्तर दर्शावे तो कब घटनान्तर दर्शावेगा।

घटनान्तरकी अल्पतम मर्यादा **स = त** हो सकती है। प्रकाशकी प्रवास-सम्बन्धी घटनाओंमें या जिन स्वतंत्र घटनाओंमें स = त है, उनमें घटनान्तर शून्य हो जाता है और ब विन्दु क पर पड़ता है।
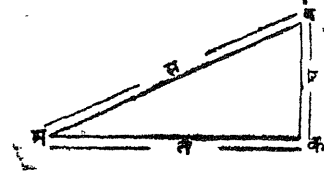
चित्र १३

घटनान्तरकी महत्तम मर्यादा त = ० होनेपर होती है।

$$\therefore घ^2 = स^2$$

$$\therefore घ = स$$

अर्थात् **म क** पर पड़ेगा। निष्कर्ष यह है कि यदि किन्हीं दो घटनाओंका कालान्तर दिया रहे, तो जितना-जितना स्थलान्तर कम होता जायगा, उतनाही उतना कालान्तर बढ़ता जावेगा। अर्थात् यदि **मब** दिया हो और **मक** कम होता जावे, यानी **म क** की ओर खिसकाया जावे तो **ब** उस मर्यादातक ऊपर चला जावेगा जब कि **मब = कब** हो जावेगा। यदि स्थलान्तर दिया हो, तो जितना कालान्तर बढ़ेगा, उतना ही घटनान्तर भी बढ़ेगा।

नहाने धोनेके सिवा और कामोंके लिये साबुन

साबुनके अनेक प्रकार

[लेखक बा० श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०]

(१) साबुन क्या है ?

जब तेज़ाबको किसी धातुपर छोड़ा जाता है तो एक प्रकारका नमक या लवण तैयार होता है। जैसे, गन्धकके तेज़ाबको तपाये तांबेपर छोड़नेसे जो नीला-नीला पदार्थ—नीलाथोथा—प्राप्त होता है वह एक प्रकारका नमक है। अब अगर यही तेज़ाब नमक, शोरे, गन्धक अथवा अन्य कोई खनिज अम्ल न होकर मज्जिकाम्ल हो अर्थात् यह तेज़ाब हो जो साधारण तेलों और चर्बीमें मौजूद रहता है और तांबेके बजाय सैंधकम् (sodium) अथवा पांशुजम् (potassuim) धातु व्यवहारमें लायी जायँ तब इस प्रकारसे जो नमक तैयार होता है उसीको साधारण भाषामें साबुन कहते हैं। 'पांशुजम्' को काममें लानेसे 'मुलायम' (soft) साबुन और सैंधकम्को काममें लानेसे 'सख्त' (hard) साबुन तैयार होता है। इनके अलावा और भी बहुतसी धातुओंके साबुन सम्भव हैं और तैयार भी किये जाते हैं।

(२) और उनका इस्तैमाल

अन्य धातुओंके साबुन क्षार धातुओं (alkali metals)—सैंधकम् और पांशुजम्के बजाय, लोहा, तांबा, पारा, निकेल (nickel), कोबल्ट (cobalt) मांगनीज (manganese) जस्ता (zinc), अल्यूमिनियम् (aluminium) आदि धातुओंके व्यवहारमें लानेसे भी तैयार होते हैं। ये साबुन साधारणतया पानीमें घुलते नहीं हैं । इसलिये ये नहाने धोने आदिके काममें नहीं लाये जा सकते। परन्तु फिर भी ये साधारण नहाने धोनेके साबुनसे कम उपयोगी नहीं होते इन्हें वाटरप्रूफ (बरसाती) कपड़े और पेन्ट (paints) एवं वार्निश (varnish) तैयार करने, उबले हुए तेलों (boiled oils) और वार्निशमें मिलाने, (drier) शोषकके तौरपर इस्तैमाल करने और जहाजों आदिके पैंदोंके ऊपर पालिश करनेके काममें लाया जाता है। इनके अलावा और भी बहुतसे उपयोग हैं।

(३) विभिन्न तेलों और मज्जिकाम्लोंका साबुनोंपर प्रभाव

साबुनके गुण केवल धातुओंपर ही निर्भर नहीं होते उनपर मज्जिकाम्लके गुणोंका भी बहुत असर पड़ता है। 'सख्त' साबुनोंके लिये अशोषक (non-drying) और अर्धशोषक (semi-drying) श्रेणियोंके तेल और मज्जिकाम्ल व्यवहारमें लाये जाते हैं। गुल्लू और गोलेके तेल अशोषक तथा सरसों, तिल, रेंडी, मूंगफली और बिनौलेके तेल अर्धशोषक होते हैं। शोषक तेलों (drying oils) —जैसे अलसी, कुसुम, पोस्ता, रामतिल्ली, और मछलीके तेलोंके साबुन बहुत मुलायम होते हैं चाहे उनमें और सख्त साबुनोंमें पानीकी मात्रा बराबर ही क्यों न हो।

तेल और चर्बीका शोषक, अर्धशोषक एवं अशोषक होना उनमें उपस्थित असम्पृक्त (unsaturated) और सम्पृक्त (saturated) मज्जिकाम्लों पर निर्भर होता है। साबुनकी घुलनशीलता और टिकाऊपन भी इन्हीं अम्लोंपर निर्भर होती है। सम्पृक्त अम्लोंसे यह दोनों ही गुण और अधिक विकसित हो जाते हैं। इसीलिये अजोइक (caproic) और अजिलाकाम्ल (caprolic) अम्लोंके साबुनोंकी तुलनामें (stearic acid) चर्बिकाम्लके साबुन कहीं अधिक सख्त होते हैं। गोलेके तेल साधारण खारी और नमकीन पानीमें भी घुल जाते हैं अस्तु समुद्रमें काममें लाये जानेवाले (marine soaps) साबुन शुद्ध गोलेके तेलसे तैयार किये जाते हैं।

(४) साबुनोंका श्रेणी-विभाजन और इस्तैमाल

मामूली तौरपर साबुनको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) पानीमें घुलनेवाले साबुन और (२) पानीमें न घुल सकनेवाले साबुन। घुल सकनेवाले साबुन सैंधकम्, पांशुजम् और (ammonia) अमोनियासे बनाये जाते हैं। न घुलनेवाले साबुन तांबा, लोहा आदि अन्य धातुओंसे। घुलनशील साबुन भी दो भागोंमें विभक्त किये जाते हैं सख्त साबुन और मुलायम साबुन। इन दोनों प्रकारके साबुनोंकी भी कई श्रेणियाँ हैं। यह श्रेणीविभाजन अधिकतर साबुनोंकी (process of manufacture) निर्माण-पद्धतिके आधारपर किया जाता है। नीचे दी गयी तालिकासे यह श्रेणीविभाजन अधिक स्पष्ट हो जायगा।
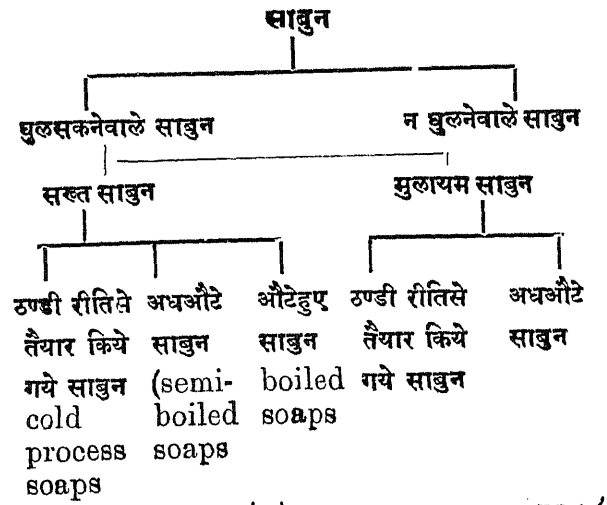
१. घरेलू साबुन — १. घरेलू साबुन

२. स्नान आदिके साबुन (toilet) — २. स्नानादिके साबुन

(अ) पारदर्शक (transparent)

(ब) पिसेहुए (milled)	३–औद्योगिक साबुन (industrial soaps
(स) बिना पिसे हुए (non-milled)	(i) वस्त्रव्यवसाय लायक (textile soaps)
३–औषध-उपचारके साबुन (medicated soaps) जैसे कोलतार, नीम, कार्बोलिक, पारे आदिके साबुन	(ii) गन्धकीकृत साबुन sulphon-ated soaps)
(अ) पिसे हुए (milled)	(iii) बेनज़ीन साबुन ऊनी, सूती कपड़ोंकी खुश्क सफाईके लिये

(ब) बिना पिसे हुए non-milled

४–औद्योगिक साबुन

(१) ऊनी, सूती और रेशमी कपड़ोंकी तैयारीके लिये

(२) धातु और चीनी मिट्टीके बर्तन तथा टाइल्स (tiles) वग़ैरह साफ करनेके लिये।

घुलनेवाले साबुनोंकीही तरह न घुलनेवाले साबुन भी चार भागोंमें बाटे जाते हैं—

साबुन
- घुलनेवाले
- न घुलनेवाले
  - शृंगार, औषधोपचार आदिके साबुन (Medicinal and toilet)
  - शोषक (dryers) पेन्टके काममें आते हैं
  - चूर्णलेप (plasters) और डिसटेम्पर distempers)
  - रोगन करनेके लिये रंगीन चूर्ण लेप coloured pigments
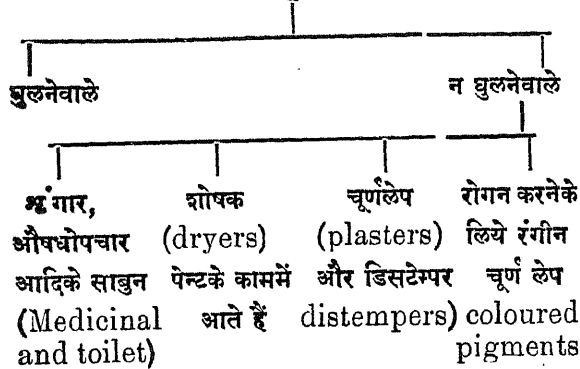
१. पारे और मगनीसम् [magnesium] के साबुन [oleates, palmitates and stearates] औषधियोंके काममें लाये जाते हैं। magnesium stearates) मगनीसम्के साबुनों से चेहरेपर लगाये जानेवाले पाउडर तैयार किये जाते हैं।

२. शोषक औटेहुए (boiled) तेलों और पेन्ट वगैरह तैयार करनेके काममें लाये जाते हैं। इनमें सीसम् (lead) मंगनीस और कोबल्ट तथा (linolic and linoleic acids) अतसीकाम्लके साबुन मुख्य हैं।

३. तीसरी श्रेणीमें केल्सियम (calcium), मगनीसम् और अल्यूमिनियमके साबुन आते हैं। केल्सियम और चर्बिकाम्लसे तैयार होनेवाला साबुन (calcium stearate) दीवारोंपर संगमरमर ऐसी चमक पैदा करनेके काममें लाया जाता है। अल्यूमिनियमके साबुनोंसे बरसाती कपड़े तैयार किये जाते हैं।

४. इस श्रेणीके साबुन तांबे और कोबाल्ट आदि धातुओं तथा (rosin acids) रालके संयोगसे तैयार होते हैं। ये विशेष घोलकोंमें घुल सकते हैं। इनकी सहायतासे चमकदार एवं रंगीन रोगन (lacquers) तैयारहोते हैं। इनसे चीनी मिट्टीके खिलौनों और ऐसी दूसरी चीज़ोंको रँगा जाता है।

हजामत बनानेका साबुन (shaving soap) सख्त साबुनोंकी श्रेणीमें आता है। इसका विशेष गुण स्थायी फेना देना (permanent lather) होता है। इसमें चर्बिकाम्ल तथा सैंधकम् और पांशुजम् दोनोंकेही लवण मौजूद होते हैं। ये साबुन साधारणतया कुछ ऐसे तेलोंके संयोगसे बनाये जाते हैं जिनमें चर्बिकाम्लका अंश कुछ अधिक हो।

५. नित्यके व्यवहारमें आनेवाले साबुन तैयार करना

सख्त साबुन अशोषक और अर्धशोषक दोनोंही प्रकार के तेलोंसे तैयार किये जाते हैं। इस श्रेणीके साबुन तैयार करनेके लिये अधिकतर सैंधकम्काही प्रयोग किया जाता है। कास्टिक सोडा (caustic soda) सैंधकम् धातुका सुलभ यौगिक है। इसकी सहायतासे अच्छा साबुन तैयार होता है। अस्तु साधारणतया सख्त साबुत बनानेके लिये गुल्लू और गोलेके तेल एवं कास्टिक सोडा व्यवहारमें लाये जाते हैं।

मुलायम साबुनोंके लिये अशोषक तेलोंसे काम नहीं चल सकता। इनके लिये अर्धशोषक एवं शोषक तेल व्यवहारमें लाये जाते हैं। सैंधकम्के बजाय अधिकतर पांशुजम्का व्यवहार होता है। कभी-कभी अमोनिया भी काममें लायी जाती है। परन्तु वह केवल विशेष प्रकारके

साबुनोंमेंही। शोषक तेलोंके साथ कभी-कभी कास्टिक सोडासे भी काम चल जाता है। मुलायम साबुन ज्यादातर वस्त्रव्यवसायके काममें आते हैं। सख्त साबुनको पानीमें घुलनेमें कुछ समय लगता है। परन्तु मुलायम साबुन या तो स्वयंही द्रवके रूपमें होते हैं या लेईकीसी शकलके। वे पानीमें बहुत सहूलियतसे घुल जाते हैं। उनमें कभी कभी ५० प्रतिशततक पानी होता है। ऊनी, सूती और रेशमी वस्त्र तैयार करनेमें जो साबुन काममें लाये जाते हैं उन सबमें बहुत ही थोड़ा अन्तर होता है। परन्तु उन सबका पूर्णतया शिथिल (neutral) होना परमावश्यक है।
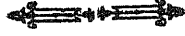
जीवनका विश्वव्यापी पराश्रय

जीवो जीवस्य जीवनम्

[ले० ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान विद्यालङ्कार एम० एस्–सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार तहसील हाटा गोरखपुर]

(१)

"The little fleas which us do tease
Have other fleas to bite 'em,
And these in turn have other fleas,
And so—*ad infinitum*".

परोपजीवन (parasitism) या पराश्रय उस भाँतिके जीवनको कहते हैं जब कोई प्राणी किसी अन्य प्राणीके शरीरपर अथवा उसके भीतर अपना जीवननिर्वाह करे और भोजन-सामग्रीभी उसीसे ग्रहण करे। पहले आक्रमणकारी प्राणीको परोपजीवी (parasite) या पराश्रित कहते हैं और आक्रांत प्राणीको पालक (host) या आश्रय कहते हैं।

पराश्रयी पौधे

सजीव-सृष्टिमें इस प्रकार जीवन-यापन करते हुए अनेक प्राणी और बनस्पतियाँ पायी जाती हैं। (dodder) अमरबेलिसे हमारे पाठक भलीभाँति परिचित होंगे। यह एक साधारण लता है जो स्वभावतः दूसरे पौधोंसे लिपट जाती है। जो आहार-सामग्री इसका आश्रयदाता पौधा पृथ्वी और वायुसे अपने पालन पोषणार्थ संचित करता है उसके अधिकांश भागकी भोग्ता बनकर यह बेलि स्वयं तो शैतानकी आंतकी तरह बढ़ने लगती है और बेचारा पौधा शनैः शनैः जीर्ण-शीर्ण होने लगता है और अंतमें इस बेलिकी कृपासे अकाल ही काल-कवलित हो जाता है। इस भांति इस परोपजीवी बेलिका जीवन सर्वथा अपने पालक पौधेकी दानशीलतापर निर्भर रहता है; वह स्वतः अपनी उदर-पूर्तिके हेतु तनिक भी प्रयत्नशील नहीं होती। बाँदा भी इसी प्रकारकी एक बनस्पति है। कभी-कभी तो प्रकृतिमें पीपल और बरगदके वृक्षभी इसी भाँति जीवन-व्यतीत करते हुए पाये जाते हैं किन्तु साधारणतया वे स्वतंत्रजीवी ही होते हैं। अमरबेलि और बांदा, पीपल, बरगद आदिके परोपजीवन प्रकारमें यह भी एक अंतर होता है कि बाँदा आदि अपने भोजनका कुछ अंश स्वयं भी अर्जन-कर लेते हैं परन्तु अमरबेलिका जीवन पूर्णतया अपने पालकपर ही निर्भर रहता है।

पराश्रयी प्राणी

बनस्पति-संसारके सदृश प्राणि-संसारमें भी हम इस भांतिके जीवनकी बाहुल्यता पाते हैं। इस लेखमें हम उन्हींके विषयमें अपनेको मुख्यतः सीमित रखेंगे। प्राणियोंके लगभग सभी वर्गोंमें हमें इस प्रकारके जीवोंके दर्शन होते

हैं। यहाँतक कि रीढ़दार प्राणियोंमें भी हमें जहाँ-तहाँ ऐसे जीवनका आभास मिलता है। अधःपतित हैग मछलियोंमें (hag-fishes) हमें शिकारी (hereditary) और परोपजीवी (parasitic) प्राणियोंके बीचके लक्षणोंका आभास मिलता है। परन्तु बहुधा निम्न-कोटिके वर्गोंमें ही ऐसे प्राणियोंकी प्रचुरता पायी जाती है क्योंकि उनमें अपने जीवनको आसपासकी परिस्थितिके अनुकूल बनानेकी क्षमता उच्च कोटिके प्राणियोंकी अपेक्षा, अत्यधिक होती है। कुछ वंश तो ऐसे हैं जिनके समस्त प्राणी या अधिकांश परोपजीवन व्यतीत करते हैं। यथा सिस्टोडा, ट्रिमैटोडा, अकैंकोकिफ़ैला आदि।

पराश्रयी प्राणियोंका वर्गीकरण अस्थायी और स्थायी

हम ऊपर इस बातका उल्लेख कर चुके हैं कि पीपल और बरगदके वृक्ष प्रायः स्वतंत्रजीवीही होते हैं परन्तु कभी-कभी वे परोपजीवीभी होते हैं और परोपजीवनकी दशामेंभी वे अपने भोजनका कुछ अंश स्वतः भी संचित कर लेते हैं, शेषांश अपने पालकोंसे ग्रहण करते हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परोपजीवी अनेक (stages) अवस्थाओंमें पाये जाते हैं। कुछ परोपजीवी ऐसे होते हैं जो क्षुधार्त्त होनेपरही अपने पालकके समीप जाते हैं और इष्ट-सिद्धि (क्षुधाशांति) कर लेनेके अनंतर साधारणतः उनसे कोई सरोकार नहीं रखते। जैसे जोंक, खटमल आदि। कुछ प्राणी ऐसे हैं जो डिम्ब-अवस्थासे लेकर वृद्धि-क्रम (development) पर्यंत पालकपर निवास करते हैं तदुपरांत जोंक आदि प्राणियोंकी भाँति व्यवहार करते हैं। ऐसे जीवधारियोंको अस्थायी परोपजीवी (temporary parasites) कहते हैं। मुफ्तखोरीका चस्का लग जानेके कारण इनकी मनोवृत्तियाँ भी सजातीय स्वतंत्र जीवधारियोंसे कुछ-कुछ विभिन्न हो जाती हैं। परोपजीवनकी दृष्टिसे अस्थायी परोपजीवितोंकी अपेक्षा उन प्राणियोंकी अवस्था अधिक उत्कर्षपूर्ण समझी जाती है जो अपने आहार-विहार एवं आत्म-रक्षाके लिये जीवन-पर्यंत अपने पालकोंपर निर्भर रहते हैं। पालक उनके भरण-पोषण और आश्रयका मूलस्थान बन जाता है और वे प्रायः उसीके साथ-साथ रहते भी हैं, इस प्रकारके जीवधारी स्थायी परोपजीवी (stationary parasites) कहलाते हैं।

शिकारी प्राणी

स्वतंत्रजीवियों और अस्थायी परोपजीवियोंके मध्य स्पष्ट सीमा निश्चित करना असंभव है कारण कि अनेक जन्तुओंकी गणना परोपजीवियोंमें तभीतक की जा सकती है जब तक उनके पालक उनकी अपेक्षा दीर्घकाय और अधिक शक्तिवान् होते हैं। किन्तु जब वे अपने समकक्ष एवं अपनेसे छोटे जीवोंका आश्रय लेते हैं तब उन्हें परोपजीवी न कहकर शिकारी (hereditary) कहते हैं। परोपजीवी अपने पालकसे सदा छोटा होता है। असलमें बात यह है कि जब ये प्राणी अपनी शक्ति और पौरुषसे अपनी शिकारको परास्त न कर सके तो छल-बलसे उनके रक्त-मांस आदिका अपहरणकर अपनी उदराग्निको शांति करनेकी बान पकड़ी। अस्तु ! जिस भांति स्वतंत्र जीवधारियों और अस्थायी परोपजीवियोंके बीच क्रमिक अवस्थायें मौजूद हैं, उसी भाँतिकी अवस्थायें अस्थायी और स्थायी परोपजीवियोंके बीचमें भी विद्यमान हैं, अतएव इन पारिभाषिक शब्दोंसे उनकी श्रेणीमात्रका बोध होता है जो सामान्यतः एक दूसरेसे भिन्न होती हैं।

पराश्रयी प्राणियोंके वर्गीकरणका दूसरा दृष्टिकोण

इसके अतिरिक्त परोपजीवियोंका वर्गीकरण इस दृष्टिबिन्दुसे भी किया जाता है कि आया उनकी लूट-खसोटका क्षेत्र पालकोंके शरीरके बाह्यअंगोंतकही सीमित रहता है अथवा भीतर भी। जो प्राणी अपने पालकोंके बाह्यअंगोंपर अथवा उनके भीतर ऐसी दीर्घ गर्तों (cavities) में पाये जाते हैं जो बाहरसे सुगम्य हों, बहिःस्थ (exo-parasite) परोपजीवी कहलाते हैं। इस श्रेणीके अधिकांश परोपजीवी आरथ्रोपाड जातिके होते हैं, इस प्रकारके जीवनके कारण उनकी शारीरिक रचनामें ह्रास-सूचक परिवर्तनोंका उदय हो सकता है परन्तु उनसे उनके पालकोंको प्रायः विशेष क्षति नहीं पहुँचती है, पालकोंको वे उसी दशामें हानिकारक सिद्ध होते हैं जब अन्य रोगोत्पादक

प्राणी उन (बहिःस्थ परोपजीवियों) पर आक्रमण करते हैं। ऐसी दशामें वे रोग-वाहक कहलाते हैं। साधारणतः बहिःस्थ परोपजीवी पालकके निकट आहार प्राप्त करनेके हेतुही आते हैं (जैसे, पिस्सू, खटमल इत्यादि) किन्तु उनमेंसे अधिकांश आयु-पर्यंत पालकोंपर निवास करते हैं और आहार एवं रक्षा-प्राप्तिके अतिरिक्त वहींपर वंश-वृद्धि भी करते हैं।

बहिःस्थ परोपजीवियोंके विपरीत अंतःस्थ (endo-parasites) परोपजीवी ऐसे प्राणी कहलाते हैं जो पालकोंके भीतरी भागोंमें पाये जाते हैं जैसे माँस एवं रक्त-वाहक संस्थान, अस्थियों और मस्तिष्ककी खोल आदि। अंतःस्थ परोपजीवियोंका अपने पालकोंके साथ अधिक दृढ़ और स्थायी संबंध होता है। समस्त स्थायीप्राणी अंतःस्थ नहीं होते जैसे; जूँ, किलवन आदि। यद्यपि बहुतसे अंतःस्थ परोपजीवी अपने स्वतंत्रजीवी पूर्वजोंकी आरंभिक रचनाको अबतक अपनाये हुए हैं तथापि सजीव-सृष्टिमें उच्चकोटिके जिन प्राणियोंने इस भाँतिकी जीवन-शैलीको अपनाया है उनके स्वरूपमें परिस्थिति-परिवर्तनके कारण बड़े-बड़े परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं और कभी-कभी तो उनकी अवस्था बिलकुल और-की-और हो जाती है, ऐसे अधिकांश परिवर्तन उनके ह्रासमय जीवनकी स्पष्ट सूचना देते हैं।

परोपजीवनका परोपजीवियोंपर प्रभाव

अब हम संक्षेपमें कुछ ऐसे परिवर्तनोंका वर्णन करेंगे जो इस भांतिके जीवनके फलस्वरूप प्राणियोंकी आकृतिमें उत्पन्न होते हैं और मुख्यतः परिवर्तित परिस्थितिकी अनुकूलता प्राप्त करनेमें उपयोगी होते हैं। जितनीही उच्चकोटिका प्राणी इस भांतिकी जीवन-विधिको अपनावेगा उतनाही अधिक वह अधोगतिसूचक लक्षणोंका प्रकटीकरण करेगा। अस्थायी प्राणियोंकी अपेक्षा स्थायी प्राणियोंमें ह्रास-सूचक लक्षण अधिक प्रत्यक्ष और अधिक मात्रामें मिलेंगे। उसी भाँति उन प्राणियोंकी शरीर-रचनामें कम परिवर्तन होंगे जो अपनी किशोरावस्था ही भर परोपजीवी रहते हैं और जो प्रौढ़ावस्थामें परोपजीवी होते हैं उनके कहीं अधिक परिवर्तन होते हैं।

गतिविहीन (sedentary) जीवधारियोंकी भाँति परोपजीवियोंमें भी चलने-फिरनेकी शक्तिका ह्रास हो जाता है क्योंकि अब उन्हें आहार-प्राप्ति एवं आत्मरक्षाके साधनोंकी खोजमें इधर-उधर दौड़ना-धूपना नहीं पड़ता है। चलने-फिरनेकी शक्तिके तिरोभूत होतेही उन कार्यके करनेवाले अंगोंकाभी लोप हो जाता है। नवीन परिस्थितियोंके होनेसे नवीन आवश्यकताओंका आविर्भाव होता है और उन्हींकी पूर्तिके लिये नवीन-नवीन अंगोंका आविष्कार होता है, अब हम इन जीवोंमें फन (tentacles), कांटे (hooks), चूसनियां (suckers), रोम (cilia), चंगुल (claws), मोटे बाल (bristles) इत्यादि चिपकाव और पकड़के अंगोंका प्रचार-प्रसार पाते हैं। इन अंगोंके द्वारा परोपजीवी किसी स्थान-विशेषपर दृढ़ता पूर्वक चिपटे रहते हैं। चिपकावके अंग विशेषकर अंतःस्थ परोपजीवियोंमें अतीव उपयोगी होते हैं क्योंकि वे पालकके भीतरी भागोंमें रहते हैं और कभी कभी तो उन्हें पालकोंके आंत्रीय हकोंके दबाव (pressure) का सामना करना पड़ता है। चलने-फिरनेके अंगोंके ह्रासके साथ-साथ ज्ञानेन्द्रियोंका भी ह्रास हो जाता है। हां, स्पर्शेन्द्रियां अवशेष रह जाती हैं जिनकी गणना (protoplasm) जीवन-मूलके प्रधान लक्षणोंमें की जाती है। वात संस्थान भी सारा-का-सारा नष्ट हो जाता है। आरथ्रोपाड वंशके कुछ प्राणियोंका बाहरी कड़ा आवरण (exo-skeleton) भी अत्यंत सरल एवं सूक्ष्म हो जाता है।

प्रायः परोपजीवनका तात्पर्य क्षीण-संवर्तन (reduced metebolism) समझा जाता है जिसके कारण वृद्धिकारण-कारक अंगोंका ह्रास हो जाता है। जैसे श्वासोच्छ्वास और रक्त-वाहक संस्थान, विशेषकर पाचन-प्रणाली जिसके अधःपतनमें पहले-पहल पाचक-ग्रंथियोंका लोप होता है। एसकैरिसके समान कुछ आंत्रीय परोपजीवी पालकके पूर्व-पक्वान्नमें रहते हैं और उसे आत्मीकरण या शोषण करना ही उन जीवोंको शेष रह जाता है, फीतेनुमा (tape-worms) कीड़ोंमें पाचन प्रणालीका ह्रास चरम सीमाको पहुँच जाता है क्योंकि उनमें इसका कहीं चिह्न तक नहीं मिलता। पोषण-सामग्रीका शोषण वे अपने शरीर-पृष्ठसे करते हैं।

स्वतंत्रावस्थामें जिन अंगोंका प्रयोग भोजनको काटने और चबा-चबाकर खानेमें होता था अब वे (piercing organs) बेधक अंगोंमें बदल जाते हैं। अँधेरी गुफाओं और गहरे समुद्रमें रहनेवाले प्राणियोंकी भाँति अनेक परोपजीवी अपने पंखों और चक्षुऐन्द्रियोंका परित्याग कर देते हैं। यही नहीं, उनके सुन्दर शरीरका आकार और उसकी (segmentation) खंडनाका भी बहुधा लोप हो जाता है। अकारक अंगोंकी आवश्यकताही क्या है ?

द्विलिंगीय प्राणी

परोपजीवियोंमें हम द्विलिंगीय (hermaphrodite) प्राणियोंकी भी भरमार पाते हैं अर्थात् नर-मादा जननेन्द्रियाँ उसी प्राणीमें मौजूद होती हैं और वे दोनों एक ही जननेन्द्रिय-छिद्रसे बाहर खुलती हैं। डिम्ब-कोपमें उत्पन्न अंडे गर्भाशयमें उतरकर पड़े रहते हैं और जब ये अंड-प्रणालीद्वारा नीचे उतरते हैं तो शुक्र-ग्राहकमें आकर शुक्राणुओंसे संयोग होता है। शुक्र-ग्राहकमें शुक्राणु प्रायः परस्पर संभोगसे आ जाते हैं; आत्म-गर्भाधान (self-impregnation) भी हो सकता है परन्तु प्रकृतिमें इसकी संभावना बहुत कम होती है। ट्रिमैटोड, सिस्टोड और अल्प-संख्यक निमैटोडमें द्विलिङ्गीय परोपजीवी प्रचुरतासे पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्राणी (couples) 'जोड़ो'में रहनेके अभ्यस्त हो जाते हैं। इनमें लिंग-विभेदका सम्पूर्णतया लोप हो जाता है।

कुछ पराश्रयी प्राणियोंमें विलक्षण परिवर्तन

परोपजीवनके कारण कुछ प्राणियोंमें हमें और भी मनोरंजक एवं विलक्षण परिवर्तनोंके दर्शन होते हैं। श्रीबल्जर ने अभी हालमेंही यह सिद्ध किया है कि बोनेलिया (bonallia) नामक कीड़ेके नवजात शिशु (larvae) लहरवे जब स्वतंत्रजीवी होते हैं तो वे प्रौढ़ावस्थामें पहुँचकर मादा होते हैं और जब वे परोपजीवन व्यतीत करते हैं तो प्रौढावस्थामें नर होकर किसी स्वजातीय स्वतंत्र-जीवी मादाके आश्रयमें जीवन व्यतीत करते हैं; नरोंका जीवन मादाओंकी दानशीलता एवं कमाईपर निर्भर है! "भली नाथ लीला रची ! भलो अलाप्यो राग। नर ओढ़ी सिर ओढ़नी, नारिन बाँधी पाग"। क्रपिडुला (crepidula) नामक प्राणीके स्वतंत्र नवजात शिशु स्वजातिके किसी प्राणीपर परोपजीवीकी भांति स्थैर्य प्राप्त करते हैं। जहाँपर पहले तो वे युवावस्थामें नर होते हैं, तदनन्तर (hermaphroditism) द्विलिंगीयताकी अवस्थाको पार करते हुए अंतमें मादा हो जाते हैं। इस भाँति परोपजीवनका प्रभाव उस प्राणीके (determination of sex) लिङ्ग-निर्धारणपर भी बहुत कुछ पड़ता है।

इन परिवर्तनोंका वास्तविक चमत्कार तो उन्हीं प्राणिवर्गोंमें स्पष्ट रूपसे विदित होता है जिनमें स्वतंत्रजीवी और परोपजीवी दोनों प्रकारके प्राणी पाये जाते हैं। उदाहरणतः इन्टोकांका·मिरैबिलिस (entoconcha mirabilis) एक सीप विशेष होती है जिसका शरीर एक लम्बे थैलेके सदृश होता है और अन्य वर्गके साइनेपटा (synapta) नामी प्राणीके भीतर रहती है। इस परोपजीवीमें जातीय विशेषताओंकी तनिक भी छाप नहीं देख पड़ती है। उसके शरीरमें जननेन्द्रिय और डिम्बोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है तथापि इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह सीप-जातिका प्राणी है। यह बात उनके नवजात बच्चोंके जीवन-इतिहासके अध्ययनसे सिद्ध होती है। निमैहो वर्गके स्फिरुलैरीज (sphaerularies) नामी कीड़ेका जीवन-इतिहास भी कम विस्मय-जनक नहीं है। यह भली-भाँति सिद्ध हो चुका है कि जिसे हम स्फ़िरुलेरिया बाँबाई कहते हैं वह उस प्राणीका सम्पूर्ण शरीर न होकर उसकी योनिमात्र है। लघुकीटके शरीरसे यह योनि पहले-पहल थैलीके रूपमें निकलती है और उत्तरोत्तर आकार-प्रकारमें बढ़ती जाती है। इसके भीतर अँतड़ीके कुछ भाग तथा जननेन्द्रियोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है। परोपजीविताके कारण इसके शेष अंगोंका लोप हो जाता है क्योंकि अब इस प्राणीको उन अंगोंकी आवश्यकता नहीं होती है अपितु उनकी उपस्थिति उसे भार-स्वरूप हो जाती है। प्राणीकी शरीराकृतिमें इतनी सादगी और सूक्ष्मता होते हुए भी चतुर कारीगरने उसकी आत्म-रक्षा और स्वजाति-रक्षाके समस्त साधनोंके जुटानेमें तनिक भी कोताही नहीं की है।

पुनः स्मृति और पुनरावृत्ति

विज्ञान-संसारको यदि यह बात न मालूम होती कि किसी प्राणीकी व्यक्ति-गत वृद्धि एक प्रकारसे उसकी जातिके विकास-क्रमकी सूक्ष्म पुनरावृत्ति होती है, तो असंख्य परोपजीवियोंके विषयमें यह निर्धारण करना कि अमुक प्राणी किस वर्ग अथवा जातिका प्राणी है, अति दुस्तर हो जाता। हम एक उदाहरणद्वारा इस विषयको अधिक स्पष्ट करेंगे। यह उदाहरण (sacculina) सैक्कुलाइना-का है जो एक प्रकारके केंकड़ेका परोपजीवी होता है और उसकी दुमकी ओर अपने जड़ाकार तन्तुओंद्वारा चिपटा रहता है। यह परोपजीवी ह्रासकी चरम-सीमाको पहुँच गया है। इसका शरीर एक थैलेके तुल्य होता है जो पालकके उदरके निचले भागमें एक सूजनकी भाँति दिखाई देता है। इस प्राणीमें पाचन-नलीके स्थानपर जड़ाकार तन्तुही होते हैं जो केंकड़ेके समस्त शरीरमें—यहाँ तक कि नेत्रोंतकमें पसरे रहते हैं और उसके शरीरसे भोजन ग्रहणकर ये तन्तु परोपजीवीको अर्पित करते हैं। जड़ाकार तन्तुओं और जननेन्द्रियोंके अतिरिक्त इस प्राणीमें न माँस-पेशियाँ रह जाती हैं, न स्नायु-संस्थान, न श्वासेन्द्रियाँ, न पाचन-नली और न कोई अन्य इन्द्रिय। प्रौढ़ावस्थामें इस प्राणीके अवलोकनसे यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि वास्तवमें यह प्राणी किस जातिका है। परन्तु गर्भ-विज्ञानके अध्ययनसे यह संबंध अवश्य मालूम हो जाता है। गर्भ-विज्ञानमें हम उस समस्त वृद्धि-क्रमका अध्ययन करते हैं जो अंडेकी आरंभिक अवस्थासे लेकर प्राणीके जन्मतक होती है। सैक्कुलाइना अंडेसे निकलकर एक स्वतंत्रतापूर्वक तैरनेवाला लहरवा (larva) होता है जिसमें माँस-पेशियाँ, स्नायु-संस्थान आदि लक्षण मौजूद होते हैं जो क्रस्टेशिमा समूहकी ओर संकेत करते हैं। तदुपरांत उसके इन लक्षणोंका धीरे-धीरे लोप हो जाता है। अतः इन्टोंकोंका मिरैबिलिस, स्फ्यूलैरिस और सक्कुलाइना आदि इस बातके उल्लेखनीय उदाहरण है कि प्राणियोंका विकास अधोगतिकी ओर भी किस भाँति होता है। गर्भ-विज्ञानकी जानकारीसेही हम ह्रासकी इन श्रेणियोंका पता पा सकते हैं। सन्तानद्वाराही हमें उनकी पूरी जानकारी हो सकेगी।

पराश्रयी बड़े वेगसे बढ़ते हैं

संतानकी निःसीम वृद्धि भी परोपजीवियोंका एक विशेष लक्षण होता है। प्रकृतिमें हम देखते हैं कि जो प्राणी अल्प-जीवी होते हैं या जीवनकी रगड़में जिनकी बहुत कुछ काट-छांट होती है, वे अत्यंत शीघ्र और अत्यधिक मात्रामें प्रजावृद्धि करते हैं। इस बातमें हम प्रकृतिको अतीव सचेत पाते हैं। वह प्रत्येक प्राणी-वर्गको निरंतर स्थिर रखनेका सतत प्रयत्न किया करती है। गरमीके दिनोंमें खटमलकी मादा एक मासमें चारबार अंडेदेती है और प्रति-वार पचास अंडे उत्पन्न करती है। इस भाँति एक खटमल प्रतिमास दो सौ खटमल पैदा करता है। इसके सिवा बनस्पतियोंमें भी हम इस प्राकृतिक नियमका बोल बाला पाते हैं। उसे जब एक पीपलका वृक्ष पैदा करना होता है तब वह लाखों और करोड़ों बीजोंसे काम लेती है। एक वृक्ष उत्पन्न करनेके लिये यद्यपि एक बीज ही पर्याप्त है परन्तु यदि संयोगवश वह बीज नष्ट हो जाय और वृक्ष न पैदा हो सके तो उसके विस्तार-कार्यमें बाधा पड़ती है। अतः जिन प्राणियोंका जीवन निशि-दिन प्रतिकूल अथवा डावांडोल परिस्थितियोंमें बीतता है उनमें, असंख्य प्राणियोंमें दोही एक ऐसे भाग्यवान होते हैं जो जीवनकी रगड़में अंत-तक डटे रहते हैं। यही कारण है कि प्रकृतिने ऐसे जीवोंको सन्तानोत्पादनकी शक्ति-प्रदान करनेमें अत्यंत उदारता दिखाई है।

परोपजीवियोंके नवजात बच्चे शिशुकालमेंही अपने पैतृकोंसे विलग होकर बाहर निकल आते हैं और कुछ समय स्वतंत्र जीवन बिताकर पुनः नये पालककी खोजमें संलग्न हो जाते हैं। नये पालकका खोजना भी जीवनकी सफलताकी कुंजी है क्योंकि कोई प्राणी पूर्ण रूपसे वहीं पनप सकता है जहाँ उसके आहार और रक्षाका समुचित प्रबंध हो। यदि वे अपने पैतृकों-द्वारा आक्रमित पालकका परित्याग न करें और सब-के-सब वहीं ठहर जायँ तो भोजन-सामग्री परिमित होनेके कारण पारस्परिक जीवन-संग्राम आरंभ हो जायगा जिसमें केवल शक्तिशाली प्राणी ही जीवित रह सकेंगे, शेषका अंत हो जायेगा। विजय उसीकी

होगी जिसके पास अस्त्र-शस्त्रकी अधिक शक्ति होगी। "या वसुधाको भाग भरि, भोगत भुज मजबूत। कहा भोगि हैं भूमि ये, कादर क्रूर कपूत"। अतः नवीन पालकका खोज लेनाही श्रेयस्कर मार्ग होता है। पैतृकोंसे अलग होकर ये जीव स्वतंत्रजीवी हो जाते हैं और उसी बीचमें उनकी वृद्धि होती है या काया-पलट (metamorphosis) हो जाती है। प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त करतेही वे पुनः किसी पालकका आश्रय लेते हैं। मानों अपनी पराधीनता और विवशताको भलीभाँति महसूस करते हुए पैतृकों-द्वारा ग्रसित पालकका परित्याग करते समय वे पुनः किसी पालकके पास लौट आनेका संकल्प सूरदासजीके इन शब्दोंमें करते हैं कि—"मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै। जैसे उड़ि जहाजकौ पंछी पुनि जहाज पै आवै।" या विछोहके अवसरपर पालकसे इस भाँति वचनवद्ध हो जाते हैं कि "ऐहैं याही ठौर हम, कहा फिरें जग होत। जैसे पंछी पोतको, उड़ि आवत पुनि पोत।" एक पालकसे दूसरे पालक तकका प्रवास (migration) यद्यपि परोपजीवीके हेतु अतीव उपयोगी होता है तथापि इसके कारण उसकी वृद्धि-क्रमके कुछ अंशका गोपन हो जाता है क्योंकि कभी-कभी उनमें मध्य-पीढ़ियोंका (alternation of generation) उदय हो जाता है जो स्वयं किसी मध्यस्थ (intermediate host) आश्रयदाताकी शरण ले सकती है।

आश्रय-भेदसे पराश्रयियोंके प्रकार

असली परोपजीवी (true parasite) उन प्राणियोंसे भिन्न होते हैं जो बड़े जानवरोंके भीतर रहकर उनके बचे-बचाये भोजनपर अपनी गुज़र-बसर करते हैं। ऐसे प्राणियोंको सहभोजी (commensals) कहते हैं। ये अपने पालकोंको न लाभ ही पहुँचाते हैं और न हानि ही। जैसे मनुष्योंके दांतोंमें पाया जानेवाला स्पाइरोकीट (spirocheats); अनेक जुएँ (lice) जो पक्षियों और स्तनपायी प्राणियोंके रोंओं और बालोंमें पाये जाते हैं इसी श्रेणीके होते हैं। वे अपने आश्रयदाताओंका रक्त-पान नहीं करते हैं और न परमात्माने उनके मुँह ही इसकार्यके सम्पादन-योग्य रचे हैं। वे तो उनके अनुपयोगी (scales) छिलकोंसे ही अपना भरण-पोषण करते हैं। हम उन प्राणियोंको mutualists सहायक कहते हैं जो अपने पालकोंके निकृष्ट एवं हानिकर द्रव्योंको अपने उपयोगमें लाकर उन्हें सहायता पहुँचाते हैं। कभी-कभी दो प्राणियोंमें अतीव घनिष्ट संबंध हो जाता है और दोनों व्यक्ति एक दूसरेको आहार-सामग्री प्रस्तुत करते हैं। वे अन्योन्याश्रयी होते हैं। इस प्रकारकी सहकारिताको सिम्बायोसिस (symbiosis) कहते हैं कि इस भाँतिका जीवन व्यतीत करनेमें प्रायः एक प्राणी और दूसरा हरा पौधा होता है। उदाहरणके लिये हम (hydra viridis) हरे हाइड्राको ले सकते हैं जिसका हरा रंग अनेक छोटे-छोटे पौधोंके कारण होता है जो प्राणीके कोषोंमें समावेशित्व रहते हैं। उच्चकोटिके प्राणियोंकी पाचननलीमें अनेक प्रकारके बैक्टीरिया पाये जाते हैं जो पाचन-क्रियाके शोषणमें बहुत सहायता पहुँचाते हैं। यदि इनकी उपस्थिति उन प्राणियोंको हानि पहुँचाती तो यह परोपजीवी कहे जाते।

ल्यूकार्ट साहब उन प्राणियोंको ऐच्छिक परोपजीवी (facultative parasite) कहते हैं जो साधारणतया शाकाहारी प्राणियोंकी उदर-दरिमें निवासकर उनके संचित भोजनका उपभोग करते हैं। ऐसे जीवोंमें परिस्थित्यनुकूल बननेकी शक्ति पर्याप्त मात्रामें मौजूद होती है। स्वाभाविक पालकके न मिलनेपर किसी और पालकपर निर्वाह कर सकते हैं अथवा स्वतंत्र-जीवन बिता सकते हैं। इनकी संख्या अपार है। ऐच्छिक परोपजीवियोंके बिलकुल विपरीत बाध्य परोपजीवी obligatory parasite होते हैं जिन्होंने जन्मजन्मान्तरके लिये अपने पालकोंकी अधीनताका बीड़ा उठा लिया है। अपनी सत्ता कायम रखनेके लिये उन्हें लगातार किसी-न-किसी पालकके आश्रित रहना ही पड़ेगा। अनायास परिवर्तित परिस्थितिके अनुकूल बननेकी क्षमता उनमें लेशमात्र भी नहीं होती है। उनके पालक परिमित होते हैं। मलेरिया ज्वरके कीटोंकी परिगणना इसी भाँतिके परोपजीवियोंमें होती है।

शास्त्रीजीका यह कार्य्य अत्यन्त अभिनन्दनीय है। हमें तो शास्त्रीजीके ग्रंथों और लेखोंको देखकर ऐसा विश्वास हो रहा है कि वेदार्थ-तत्वको यथार्थ रीतिसे जाननेवाला यदि कोई विद्वान् ज्ञात संसारमें है तो इसी ग्रंथके यशस्वी लेखक हैं। प्रत्येक वेद-प्रेमीको चाहिये कि इनके ग्रंथोंको मँगवाकर ध्यानसे पढ़े। —रा० गौ०

सहयोगी विज्ञान

गर्दन-तोड़ बुखार

महामारीके रूपमें यह रोग फैल रहा है। इसपर अनेक पत्रोंमें लेख निकल चुके हैं। "आज"के २७ चैत्रके अंकमें वैदना श्रीगोपीनाथ भिषग्रत्नने आयुर्वेदीय दृष्टिसे इसपर एक अच्छा लेख दिया है। आपके अनुसार

यह रोग दो प्रकारका देखनेमें आया है। साधारण रूपमें उत्पन्न होकर ऋतु विपर्यय अथवा अन्य कारणोंसे सन्निपातका रूप धर लेता है, और दूसरे प्रारम्भसेही भयानक रूपमें वातोल्वण सन्निपातका उग्ररूप धारण कर लेता है। पहलेवालेकी अपेक्षा दूसरा रूप अधिक भयानक होता है।

पूर्वरूप

रोगका आक्रमण होते ही पहले-पहल रोगीको घबराहट होती है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद सरमें चक्कर आते हैं। पहले या दूसरे दिन और और कभी-कभी तीसरे-चौथे दिन गुद्दी और कमरमें दर्द होने लगता है। कानके नीचे गर्दनकी नस फूल जाती है, कब्ज रहता है, जीभ मैली रहती है और भूख बंद हो जाती है या मर जाती है। फिर ज्वर बढ़ जाता है और इन लक्षणोंमें वृद्धि हो जाती है। गर्दन अकड़ जाती है, जिसे रोगी इधर-उधर नहीं हिला सकता। रोगी बोलनेसे सर्वथा अशक्त हो जाता है, अथवा होश-हवास ठीक रहनेपर भी बहुत कम बोल सकता है। हाथ-पैरों और शरीरके अन्य अंगोंमें हड़फूटन होती है और रोगी पैरोंको अन्दरकी तरफ सिकोड़कर तिरछा हो जाता है। वह पैर फैलाकर नहीं लेट सकता। चक्कर अधिक आते हैं और रोगी हर समय तन्द्रामें रहता है। जम्हाइयाँ अधिक आती हैं, नींद कम आती है, या नष्ट हो जाती है। इसके साथ-ही-साथ ज्वरका वेग अधिक होता है, सन्निपातके लक्षण प्रकट हो जाते हैं।………इस ज्वरमें पैरोंका मुड़ जाना और कमरमें विशेष दर्दवेदना होना मुख्य लक्षण है।………

मैनेन्जाइटिस बात ज्वरके लक्षणोंमें विद्यमान है अतएव वैद्योंके लिये यह एक पुराना रोग है। बात रोगके उपर्युक्त लक्षणोंमें वृद्धि होनेसे सन्निपातका रूप धारण कर लेता है।

कारण

साधारणतया इस रोगके कारण रूक्ष और शीतल आहार, तथा शीतल वायु आदि वही हैं जो साधारण वात रोगके होते हैं परन्तु इस समय यह रोग महामारीके रूपमें एकही साथ बहुतसे मनुष्योंमें फैल रहा है। इसके कारणोंके विषयमें महर्षि आत्रेय चरकमें लिखते हैं कि जब वायु, जल, देश और ऋतुमें विकार उत्पन्न होता है तो इस प्रकारके रोग फैल जाते हैं। इसके साथही वे ऋतुविकारको अधिक भयानक बतलाते हैं।

इनके अतिरिक्त भूकम्प भी महामारीका उत्पादक बतलाना गया है। इस वर्ष ऋतुविकारके लक्षण स्पष्ट ही हैं। वर्षा इस वर्ष कहीं हुई ही नहीं और कहीं आवश्यकतासे अधिक हुई है। शीतका समय बीत जानेपर भी अबतक ठंड पड़ रही है। साथ-ही-साथ भूकम्पने तो इस वर्ष अभूतपूर्व भयंकरता प्रकट कर दी है। इन कारणोंकी उपस्थितिमें किसी-न-किसी महामारीकी उत्पत्तिका अनुमान करना आयुर्वेदज्ञोंके लिये एक साधरणसी बात थी और वर्तमान रोग इस अनुमान तथा चरकके बचनोंकी सत्यताका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यह रोग एक प्रकारकी महामारी है। महामारीसे बचनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करना और महामारीसे रहित स्थानोंमें रहना चाहिये तथा पंचकर्म (स्नेहन, स्वेदना, वमन, विरेचन, वस्ति) द्वारा शरीरकी शुद्धि करके रसायन औषधियोंका सेवन करना चाहिये। च्यवनप्राश इसी प्रकारकी एक रसायन औषधि है। इसके अतिरिक्त आंवला, शुद्ध आँवलासार, गंधक, अभ्रक भस्म इत्यादि औषधियाँ भी इस समय-के लिये विशेष उपयोगी हैं।

इस रोगसे बचनेके लिये, निम्नलिखित बातोंका विशेष ध्यान रखे। ओस और ठंडसे बचे। सरदीके समय छातीपर और गलेसे गर्म कपड़े-का मफलर रखे। आहार सादा, पौष्टिक तथा स्निग्ध खाये और मिर्च, खटाई आदिसे परहेज करे। विशेष आवश्यकताके बिना तीव्र विरेचन न ले। कब्ज हो तो ३ माशेसे ६ माशेतक काली हर्रका चूर्ण गर्म पानीके साथ रातको सोनेके समय खा ले। शक्तिसे अधिक परिश्रम न करे। मल-मूत्रादिके वेगोंको कदापि न रोके। शरीरपर नित्यप्रति या चौथे-पाँचवें दिन सरसोंके तेलकी मालिश करे।

"जयाजी प्रताप" के २९ मार्चके अंकमें डा० दस्तूरने भी बचनेके कुछ उपाय दिये हैं। यथा,

१—कोई मनुष्य इस रोगसे बीमार पड़े तो उसकी सूचना "हैल्थ औफिसर"को दी जाय।

२—साफ व स्वच्छ हवामें सोनेका प्रबन्ध रहे।

३—जबतक यह रोग मिट न जावे तबतक—

(१) गर्म गुनगुने जलमें सादा नमक या (२) एक सेर पानीमें ४-५ रत्ती पुटास परमैंगनेट (गुलाबी दवा) या (३) एक सेर पानीमें एक छटाँक हाइड्रोजिन परऔक्साइडसे गला व नाकको दिनमें दो बार रोजाना धोया करें—सूँघनेके लिये (१) यूकलिप्टसका तेल (२) मिरटौल ग्लाईकोथाइमौलीन इत्यादि काममें लावें।

४—बीमारकोघरमेंही घरके आदमियोंसे अलग कर दिया जावे, सब बच्चोंको वहाँसे हटा दिया जावे और उसकी देख-रेख वृद्ध व प्रौढ मनुष्योंसे करायी जावे, क्योंकि पहले ही यह बतला दिया गया है कि यह रोग प्रौढ़ व वृद्धोंको बहुधा नहीं होता।

५—बन्द हवाके व ज्यादा भीड़-भाड़के स्थानोंसे (जैसे सिनेमाघर, थियेटर इत्यादिसे) जहाँतक हो सके बचे ।

वैद्य श्रीगोपीनाथजी गुप्तने आयुर्वेदिक चिकित्साकी नीचे लिखी विधि दी है । चिकित्सा-विधिके सम्बन्धमें बम्बईके वैद्य श्रीगिरिवर नारायण शर्म्माका विश्वास है कि यदि प्रारंभसे ही यह उपाय किये जायँ तो सौमें नब्बे रोगियों-को लाभ होगा ।

चिकित्सा

इस रोगमें वातप्रधान सन्निपात ज्वरकी चिकित्सा लाभदायक है और रोगीकी अवस्थाके अनुसार दशमूलक्वाथ, दशमूलारिष्ट, बृहत कस्तूर भैरव, रसोनपिण्ड, चिंतामणि चतुर्मुख रस, महानारायण तैल, चन्द्रोदय इत्यादिसे विशेष लाभ होता है । गले, पैर और कमरपर गर्म तेलकी मालिश तथा रेतकी पोटलीकी सेंक करनी चाहिये । गलेके अन्दर तकलीफ हो तो १॥-१॥ माशा सितोपलादि चूर्ण शहदके साथ मिलाकर दिन भरमें ५,६ बार देना चाहिये । —रा० गौ०

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

शिक्षाके माध्यमके सम्बन्धमें मतिभ्रम

दिल्लीमें गत मार्च मासके पहले पक्षमें अखिल भारतीय विश्वविद्यालयोंका सम्मेलन हुआ था । उसी समय हमारा मार्चका अंक छप रहा था । तारसमाचारसे हमें उस समय मालूम हुआ था कि सम्मेलनने उच्च शिक्षाओंके लिये देशी भाषाओंको माध्यम बनाना स्वीकार नहीं किया । हमने समझा था कि देशी भाषाओंको अयोग्य समझा गया । परन्तु वस्तुतः अनेक देशी भाषाओंका होना भारी कठिनाई समझी गयी । मानों भारत जैसे महादेशमें प्रान्तीय भाषाएँ होनी ही नहीं चाहिये । भारतका एक-एक प्रान्त युरोपके कई देशोंसे बड़ा है, और यहाँके एक-एक प्रान्तकी भाषा भारी-भारी आबादियोंद्वारा समादृत है । प्रत्येक प्रान्तमें यदि उस प्रान्तकी भाषामें पढ़ाई हो तो क्या कठिनाई पड़ सकती है यह बात किसी समझदारके दिमागमें सहजमें नहीं आ सकती । परन्तु कहते हैं कि सर मेननको इस विशेष कठिनाईके सिवा अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्धोंकी बड़ी चिन्ता थी । हमारे छोटेसे दिमागमें इतनी भारी बात तो समा नहीं सकती, परन्तु हम तो यह सीधी-सी, बात जानते हैं कि युरोपके डेनमार्क, बेल्जियम सरीखे नन्हें-नन्हें देशोंमें भी अपनी भाषामें पढ़ाई होती है, और ये हैं स्वतन्त्र देश जिनका अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्ध भारत जैसे परतन्त्र देशसे कहीं अधिक महत्त्वशाली है । अस्तु । श्रीसत्यमूर्त्तिद्वारा प्रस्तुत तथा श्रीमहामना मालवीयजी द्वारा अनुमोदित वह देशी भाषाके माध्यम बनाये-जानेवाला प्रस्ताव बहुमतजन्य विरोधसे गिर गया । आजकलके बहुमतके समयमें स्वा-भाविक और स्पष्ट सत्य भी इस तरह ठुकराया जा सकता है ।

सम्मेलनके लिये करनेयोग्य काम

दिल्लीमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन चान्द्र चैत्रके अन्तिम सप्ताहमें हो गया । सम्मेलनकी सेवाएँ व्यापक हैं और उसने जो कुछ हिन्दीके लिये किया है पिछले चौबीस बरसों-का साहित्यिक विकास और प्रचार साक्षी है । परन्तु उसे जनशिक्षाके काममें और अधिक अग्रसर होनेकी जरूरत है । उसका अबतकका जो कुछ काम हुआ है और हो रहा है, उससे लोग थकसे गये हैं । बीसों बरससे उसका कार्य्यक्रम एकसा ही रहा है । इसका विकास होनेसे इसमें फिरसे जान आ जायगी ।

सम्मेलनका सारा कार्य जनताकी शिक्षासे सम्बद्ध रहा है । अब भी हम वही प्रस्ताव करेंगे जिससे उसकी दिशा न बदले परन्तु देशका सर्वाधिक हित हो । देशमें घोर बेकारी छायी हुई है । बाजार मंदा है । पढ़े और बेपढ़े सभी समान रूपसे जीविकाके लिये चिन्तित रहते हैं । उधर देखते हैं कि बाजार विदेशी वस्तुओंसे पटा है, जिसका अर्थ स्पष्ट रूपसे यही है कि हमारा पैसा विदेशी मजूरों और पूँजीपतियोंके पास चला जा रहा है । इसके लिये उत्तम उपाय यह है कि हमारे देशके सभी बेकार उन सब चीजों-की तैयारीमें जुट जायँ जो बाजारमें अधिक खपती रहती हैं । इस तरह बेकारी मिटेगी और जो पैसे हम बाहर भेजते रहते हैं हमारे बेकारोंके पास जायँगे । परन्तु हमारे बेकारोंको काम सीखना पड़ेगा । उनको यह शिक्षा देकर सम्मेलन अपनी और उनकी सत्ताको सार्थक करे ।

सम्मेलन यह शिक्षा कैसे दे ?

बेकारोंको हिन्दी लिखने-पढ़ने और हिसाबके सिवा

कुछ ऐसे कामधंधे सीख लेने चाहियें जिनसे कि वह दिनके छः से आठ घंटेतक श्रम करके कमसेकम चार-छः आने पैसे घर बैठे कमाले और उसका काम थोड़े दामके औजारों-से चल जाय। बिसातियोंकी दूकानपर देखिये तो ऐसी सैकड़ों चीजें हैं जिनके बनानेका अच्छा अभ्यास होनेपर ऐसी कमाई असंभव नहीं है। उस दिन हमने कलकत्तेमें बाबू भोलानाथ वर्म्मनके हिन्दू शिल्पविद्यालयमें देखा कि छात्रोंको ऐसी ही शिक्षा दी जा रही है। वह विद्यालय श्री युगलकिशोर विडलाकी उदारताका फल है। अभी यह विकास पा रहा है। समय पाकर हमारा विश्वास है कि यह बढ़कर अपने आदर्शका पूरा विस्तार करेगा। अभी तो यह नमूना मात्र है (कलकत्तेमें तो ऐसे विद्यालय होने चाहियें महल्ले महल्ले और दूसरे शहरोंमें तो शहर पीछे एक भारी विद्यालय होना चाहिये जो लड़कोंको घरेलू धंधों-की शिक्षा देना जारी रखे।) हम ऐसी स्थिति चाहते हैं कि देशके किसी नवयुवकके लिये नौकरियोंकी खोजमें मारे-मारे फिरना अपमानजनक हो जाय और बाजारमें बिसातीकी दूकानपर विदेशी वस्तु ढूंढ़े न मिले। स्वदेशी मालसे बाजार पट जाय। यह राष्ट्रके भलेके लिये बड़ा भारी काम होगा जिसे सम्मेलन अपने हाथमें लेकर करे तो उसकी परीक्षाओंकी तरह वह काम भी लोकप्रिय हो जाय। सम्मेलन चाहे तो विधिपूर्वक इसे अपने उद्देश्योंमें सन्निविष्ट कर सकता है। अर्थकरी शिक्षा देना पाप नहीं है बल्कि वर्त्तमानकालमें यही हमारा परम उद्देश्य बन जाना चाहिये।

सम्मेलनके विद्यालय

सम्मेलन अपने विश्वविद्यालयमें घरेलू शिल्पशिक्षाको सम्मिलित करले और जैसे हिन्दी-विद्यापीठमें कृषि-शिक्षा उसकी विशेषता है उसी तरह उससे सम्बद्ध विद्यालयोंमें घरेलू शिल्प विशेषता बन जाय। देहातोंके लिये कृषि जैसे उपयोगी है उसी तरह बड़ी बस्तियोंके लिये घरेलू धंधे अत्यन्त लाभकारी हैं। हमने काशीमें चरखेके प्रचारकी कोशिशकी परन्तु जहाँ टिकुलीकी रंगाई, गोटेकी बुनाई आदि छोटे-छोटे कामोंमें चरखेकी अपेक्षा अधिक मजूरी मिलती है वहाँ चरखेका प्रचार असंभव है। बड़ी बस्तियोंमें चरखेके अतिरिक्त घरेलू धंधे ही अधिक सफल हो सकते हैं। इस-लिये जहाँ जहाँ सम्मेलनसे सम्बद्ध विद्यालय हैं जो साहित्यकी परीक्षाओंके लिये छात्रोंको तैयार करते हैं वहां साहित्यके साथ-साथ ऐसे गृह-शिल्पके लिये भी छात्रोंको तैयार करें जिनकी उन बस्तियों और पासके शहरोंको जरू-रत हो। हमने पिछले मासमें श्रीवैद्यनाथ-धामके गोवर्धन-साहित्य-विद्यालयका निरीक्षण किया। इस विद्यालयमें सम्मेलनकी परीक्षाओंके लिये छात्र तैयार किये जाते हैं। पं० शिवराम ओझाके प्रशंसनीय उद्योग और सेठ मदनलाल बजाजकी उपयुक्त उदारताका यह फल है। इसमें शिशु-कक्षासे लेकर मध्यमा परीक्षातककी विधिवत् निरंतर पढ़ाई हुआ करती है। साथ ही छोटे-छोटे गृहशिल्पकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया जा रहा है।

वैद्यनाथ-धाम पहाड़ोंके पास है जहाँ चकमाक पत्थर बहुतायतसे मिलता है। इस विद्यालयके छात्रोंमें संथाल भी हैं। चकमाक पत्थरके टुकड़ोंका संग्रह और उनको एक छोटी पथरीके रूपमें गढ़ना बहुत सरल काम है। यह विद्यालय चाहे तो अपने तत्त्वावधानमें "चकमककी पथरी" यथेष्ट संख्यामें दे। विद्यालयके लिये यह बहुत ही सुभीतेका उद्योग हो सकता है। आजकल दियासलाईके आसन्न दुर्भिक्षके समय इससे बढ़कर न रोजगार है और न अवसर! इसी तरह प्रत्येक विद्यालयको चाहिये कि अपने लिये इसी तरहका अर्थप्रद परन्तु सरल और सुलभ रोजगार चुन करके उसे अपनी विशेषता बना ले।

हम आग कैसे जलावें?

दियासलाईके कारखाने धड़ाधड़ बन्द हो गये और हो रहे हैं। विदेशी दियासलाइयोंसे बाजार भरेगा। ऐसी दशामें जो दरिद्र आदमी दियासलाई खरीद नहीं सकता और विदेशोंसे लुटना भी नहीं चाहता वह आग कैसे जलावे?

दियासलाईकी चाल तो सौ बरससे अधिककी नहीं है। उसके पहले आग कैसे बनाते थे? दियासलाइयोंकी सरलतासे सब लोग वह विधि ही भूल गये। उसका प्रयोग अनेक जगहों में, विशेषतया दक्षिणके जंगलोंमें, आज भी होता है। चकमाक पत्थर बड़ा कठोर पत्थर होता है। उसका एक टुकड़ा लो। देहातोंमें इसे "चकमककी पथरी" कहते हैं। इस पथरीपर लोहेकी मेखसे चोट मारते हैं तो चिनगारियाँ झड़ती हैं। इन चिनगारियोंको गुलपर लेते हैं तो झट सुलग जाता है। गुल क्या है? खराब रुई, चीथड़ा

आदि लेकर शोरेके घोलमें भिगोकर कोयलेके बारीक चूरे-के साथ सान लो और सुखाकर रखलो। चकमक पथरीपर मेखसे बारबार चोट देकर उससे निकलती हुई चिनगारियां उसी गुलपर लो वह तुरन्त सुलग जायगा। फूंकनेसे लौ भी निकलेगी। इसके सिवा लौके लिये गंधककी एक दियासलाईपर वही चिनगारी लो। दियासलाई बल उठेगी। यह दियासलाई कैसे बनाओगे? सनई या सरफुलाई या सींकके बराबर-बराबर दियासलाईकी लम्बाई और मोटाईके टुकड़े काट-काटकर एक-एक गड्डी सौ-सौकी बनाकर मजबूत बाँध लो। उसके एक ओर सब सिरे ठोंककर बराबर कर लो। अब एक चौरस छोटी कटोरीमें इतना गंधक लेकर कोयलेकी आंचपर गलाओ कि पिघलकर पानीसा हो जाय और फैलकर खड़े चावलके डूबने भर गहराई हो। इसीमें सलाईकी गड्डीके बराबरवाले सिरेको लेकर डुबो दो। सौ दियासलाइयां बन गयीं। यह गंधकी दियासलाइयां सौ बरस पहले मेहतर, भंगी बेंचा करते थे। इन्हें दियासलाई इसीलिये कहते थे कि आग या चिनगारीसे छू जानेपर यह दियासलाई बल जाती थी और इसीसे दीये जलाया करते थे। एक "चकमक पथरी" कई-कई पीढ़ियोंतक आग देती रहती थी और दियासलाइयां बड़ी सस्ती चीज थीं। एक पैसेके गंधकमें एक हजार दियासलाई डुबोकर बनायी जाती थी। आजकलकी बनी "माचिज" में वास्तवमें तबकी अपेक्षा अब हम लोग बहुत ज्यादा खर्च करते हैं।

आग जलानेकी और भी विधियां हैं। परन्तु चकमाककी पथरीवाली विधि सबसे उत्तम और सस्ती और बिना जोखिमकी है। —रा० गौ०

साहित्य-विश्लेषण

ऋग्वेद-संहिता, प्रथम पुष्प—

(सरल-हिन्दी-टीका सहित) टीकाकार पं० रामगोबिन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री, पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ, प्रकाशक पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ कृष्णगढ़ सुलतानगंज, (भागलपुर) आकार डबल-क्रौन अठपेजी। प्रथम पुष्प १९२+१२+१४=२१८ पृष्ठ, प्रथम संस्करण ५०००। मू० २)

द्वितीय और तृतीय पुष्पकी समालोचना हम पिछले अंकमें कर चुके हैं। प्रथम पुष्प हमारे पास अब आया है। "वेद रहस्य" नामकी इसकी छोटी-सी भूमिका पढ़नेसे हमें पता चला कि "वेद-रहस्य" नामसे एक विस्तृत भूमिका कुछ काल पीछे निकलनेवाली है जिसमें वेद-सम्बन्धी सभी विषयोंपर विचार किया जायगा। परन्तु भाष्यकारोंने उतावली करके केवल मथितार्थ और टिप्पणियाँ आदि देते हुए भाष्यका निकालना आरंभ कर दिया। परन्तु यह विधि हमें उलटी लगती है। उचित यह था कि भाष्य करनेवाले छहों अंगोंका पूरा अध्ययन करते उपांगोंका तुलनात्मक अनुशीलन करते, फिर अपने गंभीर अनुशीलनका वेदरहस्य निकालते और उसमें अपनी भाष्य-विधि और नीतिपर विचार करनेका औरोंको भी अवसर देते। "मथितार्थ" तो प्रकट करनेका अवसर तब था। भाष्यकारोंका कहना है कि

"पहले अवश्य ही हमारा यह विचार था कि, अपने अनुवादके साथ सायण भाष्य, सायणके विरुद्धार्थत्वादियोंके पक्ष, उनका यथाशक्य निराकरण, स्वर, पदपाठ, विशद हिन्दी व्याख्या, शब्दोंकी व्युत्पत्ति आदि भी प्रत्येक मंत्रपर रखें, परन्तु यह कार्य अतीव श्रम-समय-साध्य था, और ऐसा करनेसे इस पुस्तकका मूल्य इतना अधिक हो जाता कि साधारण जनके लिये यह पुस्तक दुर्लभ हो रहती। इसलिये ऐसा व्यापार वैशद्य करनेका हमने साहस नहीं किया और हमने केवल सायणभाष्यका मथितार्थ लेकर सरल हिन्दीमें मंत्रोंका अनुवाद करना ही उचित समझा। ऐसा ही किया भी।...आगे भी ऐसा ही होगा।"

जनसाधारणमें इस भाष्यको सुलभ करनेके लिये सम्पादकोंने ऐसा भाष्य निकाला जिसमें विद्वानोंको स्वभावतः कम रस आयेगा। पदपाठ, स्वर, निर्वचन आदिसे अर्थमें भारी भेद पड़ जाता है, अतः वेदार्थ करनेमें ये अनिवार्य्य अंग हैं। इनके अभावमें दिये हुए कई अर्थोंमेंसे शुद्ध और संगत अर्थका निश्चय कोई विद्वान् नहीं कर सकता। रही जनसाधारणमें सुलभताकी बात, सो वेदोंमें न तो कोई सिलसिलेवार कथा या कहानी है न उपन्यास है और न किसी तरहका ऐसा रोचक वर्णन है जिसे पढ़नेके लिये जनता प्रवृत्त होगी। पुण्यार्जनके लिये पाठ करनेवाले योंही थोड़े हैं, फिर वे जो शुद्ध पाठ करना चाहते हैं स्वरोंके बिना इसके पाठका उपयोग भी नहीं कर सकते। भाष्य या हिन्दी-

टीका पढ़नेका पुण्य कौन मानता है ? किसी कालमें भी जनताकी चीज वेद नहीं रहे हैं। संहिताओंकी दुरूहतापर ही ब्राह्मण उपनिषदादिसे लेकर अंग और उपांग बने और जनसाधारणके सन्तोषके लिये ही बने पुराण। जनसाधारणके लिये वह पुराण भी दुर्लभ हो गये। रामचरितमानस सरीखे ग्रन्थ उनके स्थानमें बने। आज क्या इस ऋग्वेदभाष्यमें जनताको रस आवेगा ? जनता इसे हाथोंहाथ लेकर अपनावेगी ? लोकप्रिय होनेके लिये सुबोधता चाहिये, परन्तु केवल हिन्दी भाषा होनेसे क्या सुबोधता आयगी ? दो सौ पृष्ठोंकी पुस्तकके दाम दो रुपये क्या सिर पीछे छः पैसे रोजकी आमदनीवाले देशमें सर्व सुलभ मूल्य समझा जायगा ? संसारमें सर्वाधिक महत्त्वशाली ग्रन्थको प्रकाशित करनेमें अतीव श्रम, अतीव समय, और यथेष्ट व्यय न लगेगा तो श्रम, समय और व्यय किस काम के लिये उठा रखे जायँगे ? भाष्यकारोंने उस तपश्चर्याकी तनिक भी आवश्यकता न समझी जिसके बिना वेदार्थ समझना ही असंभव है, औरोंको समझाना तो दूरकी बात है। तथोक्त पूर्वभाष्यकारोंने वेदमंत्रोंका कुभाष्य करके जो महाभ्रम फैला रखे हैं, उनको दूर करना आपका पहला कर्त्तव्य था। मंत्रोंका प्रमाण देकर यह दिखलाना चाहिये था कि वेदके ऋषि भारतेतर किसी देशसे यहाँ नहीं आबसे, वे सातों बार और बारहों राशियोंका केवल ज्ञान ही नहीं रखते थे किंतु ज्यौतिष-विद्याके वे संसारके प्रथम ज्ञाता थे, उन्हें अयन-चलन आदि बारीक बातें मालूम थीं। वे सुपर्ण-चिति जैसे याज्ञिक पंचांगके रचयिता थे। परन्तु इसके लिये उचितश्रम और आवश्यक तपस्याके लिये हमारे ये भाष्यकार तैयार न थे, अतः उन्होंने सब कुछ करके आर्यसमाजके बराबरीका भी भाष्य न निकाला। हम तो भूमिका पढ़कर निराश हो गये। लुप्त वेदज्ञानकी इस संसारको शिक्षा देनेके लिये फिरसे किसी सारस्वत ऋषि सरस्वतीपुत्रकी आवश्यकता है। गंगा-पुत्रोंसे हम यह आशा नहीं कर सकते, क्योंकि वे श्रम और समय नहीं दे सकते। —रा० गौ०

वेदकाल-निर्णय, अर्थात् आजसे तीन लाख वर्ष पूर्वकी वेदकाल-मर्यादा।

पूर्व खण्ड। ग्रन्थकर्त्ता ज्यौतिषरत्न, वेदार्थ-तत्व-प्रतिष्ठापनाचार्य विद्या-भूषण दीनानाथ शास्त्री, चुलेट। प्रकाशक श्रीमंत माननीय होलकर सरकारके औदार्यसे हिन्दी-साहित्य-समितिद्वारा प्रकाशित। पुस्तक मिलनेका पता—तत्व-ज्ञान संचारक मंडल, एलिचपुर शहर, बरार। मूल्य ४)। डिमाई अठपेजी २४४+४+८=२५६ पृष्ठ, हैं। सचित्र पोथी, सुन्दर जिल्द टिकाऊ।

वेदकालकी खोजमें अंग्रेजीमें "अग्रहायण" और और "वेदोंमें सुमेरुवास" लिखकर स्व० तिलकने वेदोंको कम-से-कम आठ हजार बरस पुराना सिद्ध किया था। अयन चलनपर विचार करके विद्वद्वर पं० दीनानाथ शास्त्रीने इस कालको कम-से-कम तीन लाख बरस सिद्ध किया है। कात्यायनके शुल्वसूत्रोंकी व्याख्यामें कर्काचार्य्यने प्राचीदिक साधन-विधिका विस्तार देते हुए वसन्त सम्पातपर सूर्य्यकी स्थिति स्वाती और चित्राके ठीक मध्यमें बतायी है। मूल-सूत्रोंमें इसकी चर्चा नहीं है। अतः कर्काचार्य्यके समयमें ही वह स्थिति हो सकती है। आज तो अयनकी यह स्थिति उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें है। एक-एक नक्षत्रमें अयनगति लगभग ९५६ वर्षोंमें होती है। अतः उस स्थिति-से हटते-हटते उत्तराभाद्रपदतक पहुँचनेमें अर्थात् लगभग १५ नक्षत्रोंतक हटनेमें १५×९५६=१४, ३४० लगे। अर्थात् कर्काचार्यके हुए कमसे कम पन्द्रह हजार बरसोंके लगभग बीते, शूल्वसूत्र तो कर्काचार्य्यसे बहुत पहलेके होंगे। इसी प्रकार गणना करके महाभारत युद्धके लगभग इक्कीस हजार बरसके आजतक बीत चुके हैं। शास्त्रीजीने बसन्त-सम्पात और अयन-चलनके ही सहारे मार्गशीर्षमें ही उसकी स्थितिका गणित लगाकर वेदोंका काल आजसे कम-से-कम तीन लाख बरस पहले ठहराया है। आपका गणित निर्दोष है, और आपके तर्क शुद्ध और मान्य हैं। इस पुस्तकको प्रकाशित करके आपने वैदिक साहित्यसे प्रेम रखनेवालों और प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंपर बहुत भारी इहसान किया है। आपकी खोज अभूतपूर्व है। आपने याज्ञिक-व्यवहार-मूर्त्ति सुपर्ण-चिति-पंचांगका गंभीर अनुशीलन किया है और ज्यौतिष वेदांगके प्रकृत रूपका पता लगाया है। यह एक वास्तविक तथ्य है कि अबतक वेदके अनुशीलन करनेवाले केवल शिक्षा, व्याकरण और निरुक्तको ही वेदांगोंके सब-कुछ मान बैठे थे। शास्त्रीजीके अनुशीलनोंसे यह सिद्ध होता है कि ज्यौतिष और कल्पसूत्रोंके गंभीर परिशीलन बिना वेदार्थ-तत्व समझना असंभव है।

(शेष देखो पृष्ठ २७ के अन्त में)

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vijnana Parishat

Allahabad

सम्पादक

रामदास गौड़

तथा

प्रोफ़ेसर ब्रजराज

भाग १८

तुला-मीन संवत् १९९०

प्रकाशक

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

भौतिक-विज्ञान

औद्योगिक

रसायन

वनस्पति-विज्ञान

गणित-ज्योतिष

जीव-विज्ञान

समालोचना

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

सहयोगी विज्ञान

वैद्यक

फुटकर

वेदोंमें गणित और ज्योतिष

पूर्ण संख्या — Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
२३० Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३९ VOL. 39

वृष, संवत् १९९१
मई, १९३४

संख्या २ No. 2.

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]

[१ प्रतिका मूल्य ।)

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्के पदाधिकारी

संवत् १९९०-१९९१ वि०

विशेष दृष्टव्य

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, लेख एवं सम्पादन सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत् तथा वैज्ञानिक साहित्य सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये।

विषय-सूची

बजरंगबली गुप्त विशारदने बनारस जालिपादेवीके श्रीसीताराम प्रेसमें छापा
और मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावन विहारीसिंहने प्रकाशित किया।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३९ } प्रयाग, वृष, संवत् १९९१ । मई, १९३४ { संख्या २

मंगलाचरण

[ले० स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक]

जल थल नभ मय विदित विश्वकी सत्ता क्या है
शब्द रूप रस गंध आदि गुणवत्ता क्या है
गुरुता लघुता बल परिमाण कियत्ता क्या है
अल्प अधिक और अणु परमाणु इयत्ता क्या है
इन जिज्ञासाओं का प्रबल प्रति उर में उत्थान हो
प्रतिज्ञेय विषयके तत्त्वका विज्ञापक विज्ञान हो

जीवनका विश्वव्यापी पराश्रय

जीवो जीवस्य जीवनम्

[ले० डा० शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालंकार, एम्० एस्-सी, विशारद]

(२)

परोपजीवनका पालकोंपर प्रभाव

संसारके अनेक रोगोंके कारण पराश्रयी-प्राणी ही हैं !

वेही जमींदार नीति-कुशल और दूरदर्शी समझे जाते हैं जो अपनी ज़मींदारीसे अधिक निकासी प्राप्त करनेके साथ-साथ अपनी प्रजाकी उन्नति और समृद्धिके लिये भी कुछ-न-कुछ करते रहते हैं। स्वार्थांध होकर उन ग़रीबोंकी समस्त कमाईका अपहरणकर उन्हें खोखला बना देने की नीति अंतमें उन्हींको घातक सिद्ध होती है। ठीक ही है—'दीन कलपाय कहौ कौने कल पाई है।' अपने अन्नदाताओं—पालकोंके विनाश करनेकी नीति अन्तमें उन्हींके विनाशका कारण होती है। यही बात परोपजीवियों-के विषयमें भी लागू होती है। अनेक परोपजीवियोंको हम देखते हैं कि वे भरसक अपने पालकोंके जीवनको संकटमें पड़नेसे बचाते हैं। तथापि लूट-खसोट करनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझनेवाले कुछ अविवेकी ज़मीं-दारोंकी भाँति अनेक परोपजीवी भी ऐसे पाये जाते हैं जो अपने पालकोंके जीवनको कष्ट और यातनामय बनानेमें नहीं सकुचते। 'हैं ठाढ़े जा डार पै, काटत सोइ मतिमंद'। जिन आश्रयदाताओंकी गाढ़ी कमाईपर बहुत समयतक गुलछर्रे उड़ाये; जिन दीन-दुखियोंने अपने रक्त और मांसको खिला-खिलाकर उनकी रक्षा की अंतमें उन्होंने उन्हींके प्राणोंपर आघात किया; उपकारका बदला अपकारसे दिया। ऐसे स्वार्थमय और घृणित व्यवहारको देख क्यों न कोई कवि कह बैठे कि सबल जिन्हें करते गये वही गला घोंटे गये। हा! कपासकी ही तरह, उनको वे ओटे गये"। संसारमें जितने रोगोंका विस्तार है उनमेंसे अधिकांश इन्हीं परोपजीवियोंके उपद्रवोंके परिणाम स्वरूप है, रोगोंका उत्पन्न होना परोपजीवियोंकी संख्या और आक्रांत प्राणीकी शारीरिक-अवस्थापर भी निर्भर होता है। जिल्ददार (cuticular) और आंत्रीय परोपजीवी, रक्तोपभोगी परोपजीवियोंकी अपेक्षा कम हानिकारक होते हैं। ऐस्कन लम्ब्रीक्वाइडी और फीतेनुमा कीडे (tape worms) जो प्रायः आंतोंकी बची-बचायी सामग्रीका उपभोग करते हैं अपने पालकोंको बिलकुल हानि नहीं पहुँचाते। किन्तु जब उनकी संख्या अधिक बढ़ जाती है और भोजनकी मात्रा पालककी आवश्यकता ही भर होती है या जब वे निर्बल प्राणी या बच्चोंमें पहुँच जाते हैं तो उनमें विविध प्रकारके विकार उत्पन्न कर सकते हैं।

यह ज़रूर है कि रोगोत्पादक परोपजीवियोंके भारको सहन करते-करते आश्रयदाता कुछ कालके उपरांत उनके दूषित प्रभावोंसे अक्षम (immune) हो जाते हैं अर्थात् उनमें उनके उपद्रवोंके सहनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है; उनकी उपस्थितिसे पालकोंको कोई विशेष क्षति नहीं होती है। हाँ, यदि नवीन रोगोंसे समन्वित और परोपजीवी उन-पर आक्रमण करें तो निस्सन्देह उन्हें हानि पहुँचा सकते हैं जबतक वे स्वतः या उनकी संतान पुनः रोग-क्षमता न प्राप्त करलें। रोग-क्षमता (immunity) प्राप्त करलेनेका तात्पर्य यही है कि आश्रयदाता अपने संस्थानोंमें परोप-जीवियोंको बिना किसी स्पष्ट स्वास्थ्य-हानिके आश्रय दे सकते हैं। रोगोत्पादक परोपजीवियोंकी रोगोत्पादन-शक्तिमें किसी भाँतिकी कमी नहीं होती है। अतः ऐसी दशामें आश्रयदाता (carriers of disease) रोग वाहकका कार्य करते हैं।

पराश्रयियोंकी काली करतूतें

रोग उत्पन्न करनेके अतिरिक्त परोपजीवी प्राणियोंके प्रभावसे अनेक आश्रयदाताओंकी बाढ़ रुक जाती है; वे अपनी (adolescence) किशोरावस्थामें ही रुक

जाते हैं और युवावस्थाको प्राप्तकर सन्तानोत्पादन करनेकी नौबत कभी नहीं आती है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए यह मत निराधार नहीं कहा जा सकता है कि लिखित इतिहासके पूर्व-युगके प्राणियोंके (extinction) विनाश-के मुख्य कारणोंमें परोपजीविता भी थी। डाक्टर ईकलसने अनेक रोगोंका अध्ययनकर अपना दृढ़ विश्वास प्रकट किया है कि अतीत और वर्तमान कालके प्रायः समस्त प्राणी किसी-न-किसी परोपजीवीके आश्रयदाता अवश्य रहे हैं।

इनाकस नामी मकड़ाकार केकड़ेकी दशा अत्यंत करुणापूर्ण है यह जीव सक्कुलाइनाका पालक होता है। गियार्ड साहबका कथन है कि परोपजीवीके कारण नर केकड़ेमें 'परोपजीवी नपुंसकता' उत्पन्न हो जाती है और उसका बाह्यस्वरूप मादाके जैसा अर्थात् जनाना हो जाता है। जाफ़रीस्मिथ ने यहाँ तक सिद्ध किया है कि परोपजीवीसे छुटकारा पानेपर नर-केकड़ा शुक्राणु और अंडे दोनों ही उत्पन्न करता है। वास्तवमें ऐसे पालकोंकी दयनीय-दशाको देख सभी समवेदना प्रकट करने लगते हैं। परोपजीवियोंकी ये काली करतूतें अत्यंत घृणित एवं स्वार्थपूर्ण होती हैं। पालकोंका आश्रय पाकर स्वतः तो अपनी संतानकी निःसीम वृद्धि करें किन्तु अपने आश्रय-दाताओंको नपुंसक बनावें, और किसी-किसीकी बाढ़तक रोक दें। मानों ऐसे ही भाग्यहीन प्राणियोंकी बेबसी और लाचारीसे द्रवित होकर 'सनेही'जी ने ये पंक्तियाँ लिख डाली हैं कि—

जो पलते हैं सदा हमारे टुकड़े खाकर।
रुधिर चूसते वही अंतमें अवसर पाकर॥
बड़ा कर दिया जिन्हें विभव, सम्पदा बढ़ाकर।
पटक रहे हैं वही हमें अब उठा-उठाकर॥
काल-चक्रके क्या कहें, कैसे चक्कर हो गये।
गुरुजी तो गुड़ ही रहे, चेले शक्कर हो गये॥

परोपजीवियोंसे मानव-समाज लाभ भी उठाता है!

हम पहले कह चुके हैं कि सजीव-संसारके प्रायः समस्त प्राणी एवं वनस्पतियाँ किसी-न-किसी परोपजीवीके आश्रयदाता हैं और परोपजीवियोंकी कमी अथवा वृद्धिका प्रभाव उनके आश्रयदाताओंकी संख्यापर पड़ता है। यदि (tse-tse fly) चीची मक्खी के कारण दक्षिणी अफ्रीकाके कुछ प्रांतोंके कुत्तों, घोड़ों तथा अन्य पशुओंका विनाश हो सकता है; यदि मलेरिया-ज्वरके कीटाणु-वाहक (anopheles) मच्छड़ोंके कारण उस देशकी जन-संख्यापर भारी प्रभाव पड़ सकता है; यदि बकरियोंके प्रवेश एवं प्रचार-प्रसारसे सेंटहेलेना द्वीपके वनउपवन नष्ट-भ्रष्ट हो सकते हैं; यदि डारविन साहबद्वारा वर्णित बिल्ली और (cats and clover) घासके प्रसिद्ध दृष्टांतमें बिल्लियोंकी न्यूनाधिकताका प्रभाव घासकी उपजपर पड़ सकता है तो क्या उसी भाँति हम परोपजीवियोंकी संख्यामें वृद्धि करके उनके ऐसे पालकोंका विनाश नहीं कर सकते हैं जिनके कारण प्रतिवर्ष देशके धन-जनको असीम क्षति पहुँचती है। लगभग पचहत्तर वर्ष हुए एक अमेरिकन वैज्ञानिकके हृदयमें इस प्रकारके भावोंका उदय हुआ। उसने अपना यह मत प्रगट किया कि फसलको हानि पहुँचानेवाले कीड़ोंके विनाश करनेमें परोपजीवियोंका उपयोग किया जा सकता है। उस समय तो कुछ न किया जासका परन्तु सन् १८७२ ई० में एम्० डेकाक्सने यह मत प्रकट किया कि पिकार्डीके प्रान्तोंमें (apple-blossom-weevil) सेवकी कलियोंके विनाशक कीड़ोंकी बाढ़ उनके परोपजीवियों-की वृद्धि करनेसे रोकी जा सकती है।

पराश्रयियोंद्वारा सेबके बागोंकी रक्षा

पिकार्डीमें देखा गया कि सेवकी फसलको एक कीड़ा (weevil) नष्ट-भ्रष्ट कर देता है जिसके कारण प्रतिवर्ष देशको बड़ी क्षति होती है। सन् १८८०में इस विषयके अध्ययनके हेतु एक सेवोंका बाग़ चुना गया जो और बागोंसे दूर था। इसमें लगभग आठ सौ वृक्ष थे। अनुसंधानसे यह पता चला कि यह कीड़ा (weevil) एक छोटेसे परोपजीवीका पालक है। अब ऐसा उपाय किया गया जिससे परोपजीवियोंकी संख्यामें वृद्धि होवे ताकि उनके आक्रमणसे सेबकी फसलके शत्रु (कीड़े) समूल नष्ट हो जावें। अतएव इन कीड़ों (weevil) द्वारा आक्रमित सेवोंकी कलियाँ संदूकोंमें एकत्रित की गईं और उन सन्दूकोंके द्वार छोटे-छोटे छिद्रोंवाली महीन जालीसे बन्द कर दिये गये। इन

जालियोंके नन्हें छिद्रोंमें होकर परोपजीवी तो सन्दूकोंसे बाहर निकल आसके परन्तु स्वयं कीड़े बाहर न आसके और उन्हींमें मर गये। ऐसे अनेक सन्दूक बागमें रख दिये गये। फल यह हुआ कि परोपजीवियोंकी आशातीत बढ़ती हुई और सेब नाशक कीड़ोंकी घटती। इस उपायसे पहले ही सालमें दस लाख कीड़े (weevils) मारे गये और ढाई लाख परोपजीवी मौतके मुखसे बचाये गये। दस वर्षके लगातार प्रयोगसे सेवके वृक्ष उन कीड़ोंकी व्याधिसे बिलकुल सुरक्षित हो गये।

पराश्रयियों द्वारा संतरेके बागोंकी रक्षा

इसी भाँति कैलीफोर्नियामें एक कीड़े ने संतरोंकी खेती-को असीम हानि पहुँचाई। इस कीड़ेको अंग्रजीमें फ्लुटेड "fluted" या "cottony cushion" scale कहते हैं। इसके प्रकोपसे संतरेके व्यापारको बड़ा धक्का लगा। वास्तवमें यह कीड़ा कैलीफ़ोर्नियामें आस्ट्रेलियासे आया था जहाँ वह संतरेकी उपजको हानि पहुँचाता था। अनुसन्धान करनेसे यह विदित हुआ कि वहाँपर एक छोटा कीड़ा (ladybird beetle) पाया जाता है जो इन (fluted scale) कीड़ोंका घातक है और उसके कारण इनकी संख्या बढ़ने नहीं पाती है। ये कीड़े कैलीफोर्निया लाये गये और संतरोंके बागोंमें छोड़ दिये गये। कुछ ही वर्षोंमें इन परोपजीवियोंने अपने (fluted scales) आश्रयदाताओंको समूल नष्ट कर दिया। केवल कैलीफोर्नियामें ही क्यों, इसने तो जहाँ-जहाँ "fluted scales" मिले वहाँ वहाँ उनके विनाश करनेमें पूरी सहायता की। इस (lady-bird beetle) कीटमें विशेषता यह है कि यह (monophagous) है अर्थात् fluted scale मात्र ही उसका भोज्य-पदार्थ है, इस प्रकारके प्रयोग बहुत स्थानोंपर किये जा रहे हैं और कहीं-कहीं तो "parasite-breeding" stations पराश्रयी-आश्रय खुले हुए हैं जहाँपर परोपजीवी कीड़ोंकी वृद्धि और रक्षा ही नहीं की जाती है वरन् वास्तवमें वे "उत्पन्न" किये जाते हैं और वहाँसे आवश्यकतानुसार अन्य देशोंमें भेजे जाते हैं! इस भाँति कपास, ईख आदि फसलके शत्रुओंके विनाशकी कुंजी वैज्ञानिकोंके हाथमें आगयी है।

विज्ञानका भीषण दुरुपयोग!

जब हम इस विषयके दूसरे पहलूपर दृष्टि-पात करते हैं तो बड़ा दुःख होता है। हम देखते हैं कि अनेक अनधिकारी धूर्त्त और दुराचारी स्वार्थ-सिद्धिके लिये इस ज्ञानका कैसा दुरुपयोग करते हैं। २५ फरवरी सन् १९३४ ई० के साप्ताहिक 'भारत' में यह समाचार पढ़कर अत्यंत दुःख हुआ कि आजकल अलीपुरके पुलिस मजिस्ट्रेटकी अदालतमें एक डाक्टरपर यह अभियोग चल रहा है कि उसने लोभ-वश एक व्यक्तिके शरीरमें शलाकाद्वारा प्लेगके भीषण कीटाणुओंका प्रवेश कर उसे मार डाला! वैज्ञानिकोंने जिस सत्यज्ञानकी खोज कठिन-त्याग और तपस्यासे मानव-समाजके लाभार्थ की थी उसी ज्ञानका इस भाँति दुरुपयोग होते देख पत्थरका हृदय भी पिघल जाता है!

परोपजीवनका विकास-क्रम

अब यह बात निर्विवाद-सी हो गई है कि अस्थायी तथा अधिकांश बहिःस्थ स्थायी परोपजीवियोंका विकास स्वतंत्र जीवधारियोंसे हुआ है। इस मतको स्वीकार करनेमें हमारे पाठकोंको भी किसी भाँतिकी आपत्ति न होगी जब वे यह विचारेंगे कि शिकारी और परोपजीवी प्राणियोंके आहार-विहार और रहन-सहनकी प्रकृतिमें अनेक मध्यस्थ अवस्थाएँ ही नहीं पायी जाती हैं अथच उनकी शारीरिक आकृतियोंमें भी बहुत-कुछ समता पायी जाती है। जो थोड़ा-बहुत भेद है भी वह जीवनकी परिवर्तित-अवस्थाओंके फल-स्वरूप है, हाँ, प्राणियोंके उन समूहोंमें इस बातके समझनेमें थोड़ी बहुत जटिलता उपस्थित होती है जिनके अधिकांश या सब-

* डारविन साहबने इस दृष्टांतद्वारा यह प्रतिपादित किया है कि अनेक जीवों और वनस्पतियोंमें प्रत्यक्ष पारस्परिक संबंध न होते हुए भी एकका दूसरेपर बहुत-कुछ प्रभाव पड़ सकता है। इस (clover) घासके पुष्पोंका गर्भाधान केवल एक विशेष प्रकारकी मक्खीकी सहायतासे होता है; किसी प्रदेशमें इन मधुमक्खियोंकी संख्या वहाँके चूहोंकी संख्यापर निर्भर होती है क्योंकि चूहे उन मक्खियोंके अंडों और निवास स्थानोंको बरबाद करते हैं; अब चूँकि चूहोंकी संख्या वहाँकी बिल्लियोंकी संख्यापर निर्भर रहती है अतएव वहाँकी बिल्लियोंकी न्यूनाधिक संख्याका प्रभाव (clover) क्लोवर घासकी उपजपर पड़ता है। अधिक बिल्लियाँ होनेसे चूहे कम होंगे मधुमक्खियाँ अधिक होंगी जिसके फल-स्वरूप घासकी उपज भी अधिक होगी।

के-सब जीव परोपजीवी होते हैं क्योंकि ऐसे समूहों और स्वतंत्र जीवधारियोंके मध्य अधिक चौड़ी खाई होती है, परोपजीवनके विकास-क्रमको भली-भाँति समझनेके लिये हमें लेंपीड़ापट्रा, रैब्डोनेम्न और स्ट्रागील्वाइड्स समूहोंमें अधिक तथ्यकी बातें मिलेंगी। इन समूहोंके प्राणी प्रायः ऐसे स्थानोंमें रहते हैं जहाँ सड़े-गले पदार्थ प्रचुर मात्रामें पाये जाते हैं, कुछ जातियाँ इसी परिस्थितिमें प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त होती हैं और वहींपर अत्यंत शीघ्रतासे प्रजोत्पादन करती हैं, संयोगवश या किसी नैसर्गिक कारणसे वहाँकी भोजन-सम्बन्धी अनुकूल परिस्थितिमें परिवर्तन होनेपर या तो वे किसी अन्य उपयुक्त-खाद्य-पदार्थसे परिपूर्ण स्थान खोज लेते हैं अथवा फिर अनुकूल परिस्थितिके आनेतक शैशव-अवस्थामें ही बने रहते हैं। ऐसी अवस्थामें इस बातकी भी बहुत-कुछ संभावना होती है कि ये प्राणी परोपजीवन-विधिकी ओर आकर्षित हों।

मुफ्तखोरीके चस्केका फल

आरंभमें ये ऐच्छिक परोपजीवन वरण करेंगे जो असली परोपजीवनकी पहली सीढ़ी है। इस भाँतिके जीवनको ग्रहण करनेमें प्राणियोंको केवल रक्षाका ही लोभ नहीं होता है वरन् उन्हें अपने पालकोंसे पुष्टकारक भोजन भी प्रचुर मात्रामें प्राप्त होता है जिसके कारण वे अत्यंत काहिल और अकर्मण्य भी होजाते हैं और सन्तानोत्पादन भी खूब करते हैं। ये सारी बातें ऐच्छिक परोपजीवियोंको असली परोपजीवनकी ओर उत्साहका काम करती हैं। कुछ प्राणी शैशवकालमें स्वतंत्रजीवी होते हैं; कुछ परोपजीवन और स्वतंत्र जीवन बारी-बारीसे बिताते है; कुछ डिम्ब-अवस्थामें ही स्वतंत्रतापूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए पाये जाते हैं या स्वतंत्रावस्थाका पूर्ण रूपेण परित्याग कर देते हैं। तात्पर्य यह कि प्राणियोंको मुफ्ती भोजनका चसका लग जानेपर फिर वे उसी प्रकारके जीवनके हेतु सतत प्रयत्न करते रहते हैं। परिस्थितिके अनुकूल अपना जीवन बनानेके लिये वे अपनी मनोवृत्तियों और शरीर रचनामें विविध भाँतिके परिवर्तन करते हैं। देशके अनुसार अपना भेस बनाते हैं।

परोपजीवनका श्रीगणेश और विस्तार

परोपजीवनकी आरंभिक अवस्थामें प्राणी अपने सजातियोंपर आक्रमण करता है और उनकी लूट-खसोट उन्हींतक सीमित रहती है। उसकी इस प्रकृतिका अनुसरण उसकी जातिके और प्राणी भी करते हैं और नौबत यहाँतक पहुँचती है कि उस जातिके अधिकांश प्राणी परोपजीवी होजाते हैं और आश्रयदाताओंकी संख्या उस जातिमें कम रह जाती है। तब वे किसी निकट जातिके प्राणियोंका आश्रय लेने लगते हैं। कुछ परोपजीवी अपने पालकोंका विनाश करते हैं जो अदूरदर्शिताकी नीति है; आत्मघात करनेकी नीति है। इस प्रकारका स्वभाव पड़ जानेसे वे इस घातक नीतिसे अपनी रक्षा दो प्रकारसे करते दिखायी देते हैं। या तो वे कई पालक रखते हैं या वे अपनी संख्या परिमित रखते हैं जिससे उनके पालकोंकी संख्या कम न होने पावे। परोपजीवनकी दृष्टिसे दूसरी नीति अधिक आधुनिक है।

पराश्रयकी चेतावनी

परोपजीवनकी यह स्पष्ट चेतावनी है कि जिन जातियोंमें, अपनेको परिस्थितिके अनुकूल बनानेकी, क्षमता नहीं है उन्हें एक-न-एक दिन इस संसार-समरसे सदाके लिये उठ जाना पड़ेगा। यदि हमें संसारमें अपना अस्तित्व कायम रखना है तो देशानुकूल रहन-सहन एवं वेश-भूषामें उपयोगी परिवर्तन करते रहें। परोपजीवी इसी प्रयत्नमें सफल होनेके लिये अपने आकार-प्रकार तथा शरीर और अवयवोंतकमें कैसे-कैसे विचित्र परिवर्तन करते हैं; परिस्थिति-विशेषके अनुकूल जीवन-निर्माणमें वे किस भाँति अनावश्यक अंगोका परित्याग और आवश्यक अंगोंका स्वागत करते हैं; डावांडोल और विकट परिस्थितियोंकी नादिरशाही एवं काट-छांटकी नीतिका मुकाबला करनेके लिये वे किस भाँति अलैंगिक (asexual) पीढ़ियोंका सृजनकर और अप्रौढ़ अवस्थामें ही प्रजोत्पादनकर अथवा द्विलिंगीयता और आत्मगर्भाधान-विधियोंको ग्रहणकर स्वजाति-रक्षा करते हैं; अनेक प्राकृतिक बाधाओंके होते हुए भी वे अपने इष्ट-स्थान अंतड़ी, यकृति, फुफ्फुस, मस्तिष्क और रक्त आदितक पहुँचनेके लिये वे कैसी-कैसी विचित्र आयोजनाएँ करते हैं और इन सारी बाधाओंके होते हुए भी उनका जीवन कैसा विधिवत होता है। यह देख सृष्टिके चतुर कारीगरकी अलौकिक बुद्धिपर स्तब्ध रह जाना पड़ता है।

वैज्ञानिक विचारोंमें क्रान्ति

ऐंस्टैनका सापेक्षवाद

[ले० प्रो० दत्तात्रेय गोपाल मटंगे, एम्. एस्-सी., एफ़. पी. एस.]

१७—ऐंस्टैनका सापेक्ष जगत्

देखनेवालेके जगत्की रूपरेखा

चित्र १४ देखिये। जमीनके ऊपर मक्ष और मय रेखाएँ एक दूसरेके समकोणपर खींची। क पर एक इल्लीने जन्म लिया और वह समानवेगसे जाकर ख पर मर गयी। कख मार्गसे वह गई, किन्तु उस अन्तरके पार करनेमें
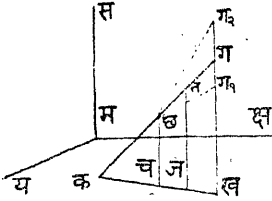
चित्र १४

उसे जितना समय लगा वह कैसे बतलावेंगे? मस भुजाका उपयोग इसके बतलानेके लिये कर सकते हैं अर्थात् मस पर लिये गये अन्तर समय बतलावेंगे। मान लें, इल्लीको जानेमें जितना समय लगा, वह खग से दर्शित किया गया है। कग बिंदुओंको जोड़ा। कग रेखा उस इल्लीकी जगत् रेखा कहलायी जा सकती है। यदि इस रेखापर कोई विन्दु लिया जावे, तो उससे इल्लीद्वारा चले हुए अन्तर और उसके लिये लगे हुए समयका पता चल सकता है। मान लें कि इस जगत्-रेखा परके छ विन्दुपर इल्लीको चींटीने काटा और त विन्दुपर एक लड़केने कलमकी नोकसे उसे खोदा। छ से जमीनपर एक लम्ब डाला। इसलिये पहली घटना होनेके समय इल्ली कच दूरी चल चुकी थी और इसके लिये चछ समय लग चुका था। इसी प्रकार दूसरी घटना कज दूरी चलनेके बाद तज समयमें हुई थी। इस तरहकी सूचनाएँ जगत्रेखासे मिल सकती हैं। इससे यह न समझना चाहिये कि जगत्रेखा केवल जीवधारियोंकी हो सकती हैं। प्रत्येक पदार्थकी, जो किसी वेगसे चल रहा है, एक जगत्रेखा बनायी जा सकती है।

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है—

"जगत्रेखा वह रेखा है जो किसी भी चलनेवाले पदार्थके प्रवासकी विभिन्न घटनाओंका 'देश' और 'काल' बतलाती हैं।

जब कोई पदार्थ एक सरल रेखामें समान वेगसे चलता है, तब उसकी जगत्रेखा भी एक सरल रेखा रहती है। पहली घटना होनेके पीछे—

१—मान लें कि वह रेखा जल्दी चलने लगी। इसलिये चख दूरीको पार करनेमें अब वह कम समय लेगी। इससे पूरा समय पहलेकी अपेक्षा कम हो जावेगा, अर्थात् खग₁ खग से कम रहेगा, और छ से वह रेखा नीचेकी ओर झुक जावेगी।

२—मान लें कि वह धीमी चलने लगी। इस दशामें खग₂ समय पहलेकी अपेक्षा अधिक हो जावेगा और जगत्रेखा छ पर टेढ़ी होकर ऊपरकी ओर झुकेगी।

इससे निष्कर्ष यह निकला कि जगत्रेखा जहाँ-जहाँ टेढ़ी होकर नीचेकी ओर झुकेगी, वहाँसे वेग अधिक हो जावेगा और जहाँ-जहाँ ऊपरकी ओर झुकेगी, वहाँ-वहाँ कम होता जावेगा, और यदि जगत्रेखा लगातार मुड़ती जावे, जैसे वृत्त, वर्तुल या परवलयके रूपमें, तो वेग भी एकसा बदलता जाता है ऐसा समझना चाहिये।

चित्र १४ में कख रेखासे इल्लीका मार्ग बतलाया गया है, और चूँकि इल्ली मक्षय समतलको छोड़कर कहीं जा नहीं सकती, इसलिये हमारे पास तीसरी दिशा मस बची है, जिससे हम समय दर्शा सकते हैं और इसलिये कग जगत्-रेखा भी निकालकर बतला सकते हैं।

अब यदि हम इल्लीको एक स्थानसे उठाकर दूसरेपर रख दें, तो इस जगत्के अवलोककोंको, जो तीसरे परिमाण-

से अनभिज्ञ हैं, ऐसा मालूम होगा कि इल्ली एक विंदुपर अदृष्ट हो गयी थी और अब दूसरे विन्दुपर फिर दीखने लगी है। कारण यह है कि जो कुछ उनके समतलपर होता है, उसे ही वे अपने जगत्में हुआ मानते हैं। उनको केवल दो दिशाओं (मक्ष और मय) का ज्ञान है। तीसरी दिशाका ध्यान भी उन्हें नहीं आ सकता; और चूँकि इल्ली एक विन्दुपर अदृष्ट होकर दूसरेपर फिरसे दिखी थी, इसलिये वे समझेंगे कि इल्ली तीसरी दिशा में लुप्त हो गयी थी। जिस प्रकार मक्षय समतलके लोग तीसरी दिशा-की कल्पना भी नहीं कर सकते, उसी तरह हमलोग भी चौथी दिशाकी कल्पना नहीं कर सकते। यदि कोई मनुष्य गायब हो जावे, तो लोग दिल्लगीमें कहा करते हैं, कि वह चौथी दिशा में चला गया।

चित्र १४में इल्लीका प्रवासक्षेत्र मक्षय समतलमें होनेके कारण हम समयको मस दिशासे दर्शा सके। अब इल्लीके
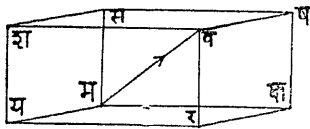
चित्र १५

स्थानमें मक्खीका विचार करें। इसके लिए चित्र १५ देखिये; मान लें कि एक मक्खी कमरेके म कोनेसे सामनेके ऊपरवाले कोनेतक उड़ती जाती है। इस हालतमें उसके प्रवासको बतलानेके लिये हमें तीसरी दिशाका भी उपयोग करना पड़ेगा। उस स्थितिमें समयको दर्शानेके लिये कौन-सी दिशा रह जाती है? इस दिशामें जगत्रेखाका चित्र बनाना सम्भव नहीं है।

१८—बाहरी जगत्की रेखा और घटनाओंकी सापेक्षता

चित्र १६ देखिये इससे हम नीचे लिखा प्रश्न हल करेंगे—

"क से निकलना घटना नं० १ और ख पर पहुँचना घटना नं०२ है, ऐसा मान लें। अब यदि इनका देशान्तर और कालान्तर दिया हो तो घटनान्तरका सबसे अधिक मान कब होगा?"

कख देशान्तर है। उसके ख विन्दुपर रेखा खग सम-कोण बनाती हुई खींची गयी है, अर्थात् (चित्र १३के अनु-सार) खग घटनान्तर दर्शायेगा।
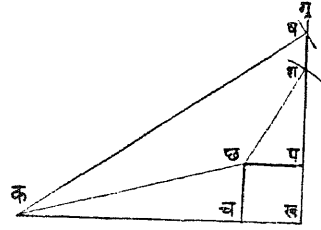
चित्र १६

कष एक डोरी है, जो अपनी लम्बाईसे दिया हुआ कालान्तर बतलाती है। उसका एक छोर क पर रखकर और उसे पूरा फैलाकर एक चाप खींचा गया है जो खगको ष पर काटता है। कष कालान्तर, खक देशान्तर दिये हुए होनेके कारण खष संगत घटनान्तर होगा। चूँकि ष विन्दुसे ऊपर किसी भी विन्दुतक डोरी नहीं पहुँच सकती इसलिए खष घटनान्तरकी महत्तम मर्यादा है।

छ पर एक पिन लगी है। डोरीको उसमें लगाकर फैलाया है, जिससे उसकी दिशा कछ और बादमें छश हो गयी है। इसके कारण खग को डोरी श विन्दुपर काटेगी। इस तरह यदि बहुतसे पिन लगाकर डोरीको उसमें फँसाते हुए ले जावें तो उसका छोर ष तक कभी नहीं पहुँचेगा और सदा उसके नीचे ही रहेगा। और इस दशामें सब घटनान्तरोंका योग

चछ + पश = खश,

खग से सर्वदा कम रहेगा।

कालान्तर कछ + छश = कष

और

देशान्तर कच + छप = कख

पूर्ववत् ही रखे गये हैं, अर्थात् ये नियत हैं किन्तु घटनान्तरकी अधिकतम मर्यादा खष ही रहती है।

अब कच दूरी कछ समयमें और छप दूरी छश समयमें पूरी की गयी है, इसलिये उन प्रवासोंका वेग भिन्न हो गया है। चित्र १६में कच दूरी अधिक वेगसे और चख दूरी कम वेगसे चली गयी है। इसलिये यद्यपि देशान्तर

और कालान्तर पहलेके समान ही रखे जावें, फिर भी प्रवासके वेगमें अन्तर होनेसे घटनान्तर सदा कम आवेगा। घटनान्तरकी महत्तम मर्यादा तभी मिलती है, जब वेग समान हों।

पिछले प्रकरणमें बतलाया जा चुका है कि जब वेग समान रहता है तब जगत्‌रेखा सरलरेखा होती है अन्यथा वह टेढ़ी हो जाती है। इसलिये यदि जगत्‌रेखा सरल हो, तो उस-परका घटनान्तर अधिकतम होगा। अथवा उलटते हुए।

जिस जगत्‌रेखा पर घटनान्तर महत्तम होवे, वह जगत् रेखा सरल माननी चाहिये।

गतिमें जो कण रहता है, उसके सम्बन्धमें न्यूटनका सिद्धान्त इस प्रकार है—

किसी दूसरे बाह्यकारणकी अनुपस्थितिमें एक स्थिर कण स्थिर ही रहता है और गतिप्राप्त कण एक सरलरेखामें समवेगसे यात्रा करता है।

यही सिद्धान्त ऐंस्टैनकी भाषामें इस प्रकार लिखा जा सकता है—

किसी दूसरे बाह्यकारणकी अनुपस्थितिमें एक स्थिर कण स्थिर ही रहता है और गतिप्राप्त कण इस प्रकार गमन करता है, कि उसकी जगत्-रेखा महत्तम घटनांतरको दर्शाती है।
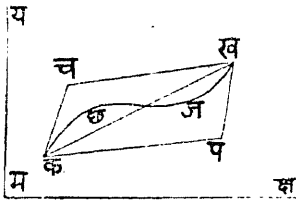
चित्र १७

देखिये चित्र १७ बहुतसे मनुष्य एक ही समय क से ख की ओर जानेके लिये निकले। वे ख पर एक ही समय पहुँचते हैं। इसलिये क से निकलना घटना नं० १ और क पर पहुँचना घटना नं० २ हुआ। सबके लिये कालान्तर एकसा है किन्तु आक्रमित अन्तर भिन्न-भिन्न अर्थात् क च ख, क छ ज ग, क प ख और कख इत्यादि। इसलिये त का मूल्य भिन्न भिन्न है।

$$\therefore घ^2 = स^2 - त^2$$

समीकरणमें जैसे जैसे त कमेगा वैसे ही घटनान्तर बढ़ेगा। त का कमसे-कम मान कख सरल रेखा पर नापने-से आता है अर्थात् जिसका प्रवास सरल रेखापर आता है, उसका घटनान्तर सबसे अधिक होगा। इसलिये,

दिये हुए दो स्थानोंके बीचका प्रवास दिये हुए समयमें, जिस मार्गसे जानेमें इस प्रकारसे पूरा होता है, कि घटनान्तर सबसे अधिक हो, वही मार्ग सरल है। यदि कोई बाह्यकारण उपस्थित न हों तो प्रत्येक वेगशील पदार्थ ऐसा ही मार्ग लेगा।

१९—सापेक्ष वेगका नया गणित
ऐंस्टैनकी करामात

चित्र १८ देखिये। केशवके जगत्‌में प कण मक दिशा में व वेगसे जा रहा है। उसने त दूरी स सेकंडमें पूरी की। केशव पाता है कि—

$$व = \frac{त}{स}$$
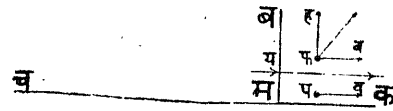
चित्र १८

(१) माधवके पाससे केशवका जगत् य वेगसे दूर जा रहा है। ऐसी स्थितिमें, मानलें, कि माधव अन्तर थ, समय श और वेग ल पाता है तो उसके मत से,

$$ल = \frac{थ}{श}$$

परन्तु

$$त = \frac{थ - य श}{\sqrt{१-य^2}} \text{ —— (समी० २० देखो)}$$

$$स = \frac{श - यथ}{\sqrt{१-य^2}} \text{ —— (समी० २१ देखो)}$$

$$\therefore \frac{त}{स} = \frac{थ - यश}{श - यथ}$$

$\therefore$ तश − तयथ = सथ − सयश

$\therefore$ सथ + तयथ = तश + सयश

$\therefore$ थ (स + यत) = श (त + सय)

$$\therefore \frac{थ}{श} = \frac{त + सय}{स + यत} = \frac{\frac{त}{स} + य}{१ + य \times \frac{त}{स}}$$

किन्तु $\frac{त}{स}$ = व और $\frac{थ}{श}$ = ल

$$\therefore ल = \frac{व + य}{१ + यव} \quad ——(२४)$$

अर्थात् माधव उस कणका वेग ऊपर लिखे अनुसार पाता है।

एक जगत्में 'क' कण 'व' वेगसे जा रहा है, और वह जगत् भी 'य' वेगसे माधवसे दूर जा रहा है, तो पुराने गणितके अनुसार।

$$ल = व + य$$

और नये गणितके अनुसार

$$ल = \frac{व + य}{१ + यव} \text{ होता है।}$$

इस समीकरणका उपयोग फ़िज़ोके प्रयोगका स्पष्टी-करण करनेमें किस प्रकार किया जा सकता है, अब यह बतलाया जावेगा। मानलें,

नलीके आपेक्ष पानीका वेग = प प्रासे

पानीके आपेक्ष प्रकाशका वेग = $\frac{१}{क्र}$ प्रासे

$\therefore$ ऊपरके समीकरणमें

$$य = प$$

और व = $\frac{१}{क्र}$

$\therefore$ नलीके (अवलोककके) सापेक्षवेग

$$= \frac{\frac{१}{क्र} + प}{१ + प \times \frac{१}{क्र}} \quad ——(२५)$$

$$= \left(\frac{१}{क्र} + प \right) \left(१ - प \times \frac{१}{क्र} \right)$$

$$= \frac{१}{क्र} + प — प \cdot \frac{१}{क्र^२} — प^२ \cdot \frac{१}{क्र}$$

यहाँ पर प, जो कि पानीका प्रवेमें दिया हुआ वेग है, बहुत ही छोटी संख्या होना चाहिये, इसलिये उसका वर्ग उपेक्षणीय है। चौथे पदमें $प^२$ होनेके कारण उसको छोड़ सकते हैं। इससे तीन पद रह जाते हैं।

$$\therefore \text{ सापेक्षवेग} = \frac{१}{क्र} + प - \frac{१}{क्र^२} \times प$$

$$= \frac{१}{क्र} + प \left(१ - \frac{१}{क्र^२} \right) \text{—समी० १७ देखो।}$$

फ़िज़ोने यही वेग पाया था। इसमें यह माननेका कोई कारण नहीं रहा कि ईथर रेतके समान बहता जा रहा है, जो पुरानी पद्धतिके अनुसार गणित करनेपर मानना पड़ा था। सापेक्षवेगका नया गणित लगानेपर वही फल मिलता है, जो फ़िज़ोको अपने प्रयोगसे मिला था।

२०—जड़राशि, वस्तुसत्ताका समूह

पुराने गतिशास्त्रमें ये दो बातें मूलरूप मानी गयी हैं—

(१) इस विश्वमें पूरी जड़राशि नियत रहती है अर्थात् यदि वे सब जोड़ी जावें तो उनका योग नियत रहता है। कणोंकी अदल-बदल हो सकती है, किन्तु नये कण उत्पन्न नहीं हो सकते और न पुराने कण नष्ट ही हो सकते हैं।

मान लें कि पदार्थोंका जड़त्व $ज_१$ $ज_२$ $ज_३$ इत्यादि है, और कणोंके परिवर्तन होनेके पश्चात् वह $झ_१$, $झ_२$ $झ_३$ इत्यादि हो जावे तो—

$$ज_१ + ज_२ + ज_३ + \cdots = झ_१ + झ_२ + झ_३ \cdots$$
$$= प \text{ (मान लें)}$$

इसलिये प संख्या नियत है और इस संख्याके नित्यत्व को 'जड़राशिका नियत मान' कह सकते हैं।

(२) ये जड़ पदार्थ $ज_१$ $ज_२$ $ज_३$ इत्यादि

यदि $व_१$ $व_२$ $व_३$ इत्यादि वेगसे प्रवास करते हों, तो उनके आवेगोंका योग

$ज_१व_१ + ज_२व_२ + ज_३व_३ + \ldots = फ$ (मान लें) यदि इस विधिसे निकालें, तो फ सदैव एक-सा आता है। इस संख्याको **'आवेगका नियत मान'** कहते हैं। यदि

ये पिण्ड आपसमें टकरा जावें जिससे उनके वेगोंमें अन्तर भी आवे, फिर भी उनके आवेगोंका योग सदा फ ही आवेगा।

मान लें कि केशवके जगत्में दो पदार्थ हैं जिनका जाड्य $ज_1 ज_2$ और वेग $व_1$ $व_2$ है। वे प्रवास करते हैं। अर्थात् जड़राशिके नियत मानसे $ज_1 + ज_2 = प$ (मान लें) —(२६) आवेगके नियत मानसे $ज_1 व_1 + ज_2 व_2 = फ$ (मान लें)—(२७) अब माधवके पाससे केशवका जगत् य वेगसे दूर जा रहा है—

(१) पुरानी पद्धति से—

$$ज_1 + ज_2 = प \text{—(२८)}$$

$$ज_1 (व_1 + य) + ज_2 (व_2 + य)$$

$$= ज_1 व_1 + ज_2 व_2 + य (ज_1 + ज_2)$$

$$= फ + य प \text{——(२९)}$$

जड़राशिका नियत मान तो पूर्ववत् ही प रहता है किन्तु आवेगोंका योग फ+य प हो जाता है, और यह ठीक ही है, क्योंकि माधव उन दो पदार्थोंको अधिक वेगसे जाता हुआ पाता है। जबतक केशवका जगत् य वेगसे दूर जाता रहेगा तबतक उसे यह संख्या फ+यप ही मिलेगी।

(२) इसीको नवीन पद्धतिके अनुसार इस तरह हल कर सकते हैं, माधवके मतसे उन्हीं दो पदार्थोंका वेग—

$$\frac{व_1 + य}{१ + व_1 य} \text{ और } \frac{व_2 + य}{१ + व_2 य} \text{ है।}$$

∴ उनके आवेगोंका योग—

$$\frac{ज_1 (व_1 + य)}{१ + व_1 य} + \frac{ज_2 (व_2 + य)}{१ + व_2 य}$$

$$= \left(\frac{ज_1 व_1}{१ + व_1 य} + \frac{ज_2 व_2}{१ + व_2 य}\right)$$

$$+ य\left(\frac{ज_1}{१ + व_1 य} + \frac{ज_2}{१ + व_2 य}\right) \text{——(३०)}$$

पुराने गणितसे यही संख्या—

$(ज_1 व_1 + ज_2 व_2) + य (ज_1 + ज_2)$—(समी० २९ देखो) आयी थी इसमें पहिले कोष्ठकमें आवेगोंका योग और दूसरे कोष्ठकमें जड़राशियोंका योग है। सभी अवलोककोंके लिये पुराने गणितके अनुसार ये संख्याएँ नियत हैं, किन्तु नये गणितके अनुसार प्रत्येक पदमें $(१ + य व_1)$ या $(१ + य व_2)$ से, जो १ से बड़ी संख्याएँ हैं भाग दिया गया है और उसमें 'य' भी आया है; इससे आवेगका नियत मान और जड़राशिका नियत मान 'य' के कारण बदलता है, अर्थात् आवेग और जड़राशिके मान, जिनको पहले नियत मानते थे, नियत नहीं रहते।

अर्थात् जड़राशि जिस जगत्में हो, उस जगत्के वेगके कारण वह कम हो जाती है, ऐसा निष्कर्ष निकला।

ऐन्स्टैनने इस कठिनाईका निवारण इस प्रकार किया— पदार्थोंकी जड़राशि सदा नियत और स्वतन्त्र नहीं है; वह उस पदार्थके वेगपर अवलम्बित है। कोई भी पदार्थ जब स्थिर हो, तब उसकी जड़राशि ज होगी; यदि वह व वेगसे जाने लगे तो उसका जड़त्व —

$$\frac{ज}{\sqrt{१ - व^2}} \text{——(समी० १२ देखो)}$$

लेना चाहिये। यदि जड़राशि और आवेगके गणितमें इस संख्याका उपयोग किया जावे तो कोष्ठकोंकी संख्या इस प्रकार हो जावेगी। अर्थात् ऐन्स्टैनके मतसे—

$$\text{जड़राशिका योग} = प = \frac{ज_1}{\sqrt{१ - व_1^2}} + \frac{ज_2}{\sqrt{१ - व_2^2}} \text{——(३१)}$$

$$\text{आवेगोंका योग} = फ = \frac{ज_1 व_1}{\sqrt{१ - व_1^2}} + \frac{ज_2 व_2}{\sqrt{१ - व_2^2}} \text{——(३२)}$$

ऊपरकी संख्याएँ अवलोककोंके सापेक्षवेगपर निर्भर नहीं हैं; वे खुदके वेगपर अवलम्बित हैं।

परन्तु जड़त्व $\frac{ज}{\sqrt{१ - व^2}}$ मान लेनेसे एक महत्वका अनुमान निकलता है। वह इस प्रकार है—

$$\text{पदार्थकी जड़राशि} = \frac{ज}{\sqrt{१ - व^2}} = ज(१ - व^2)^{-\frac{1}{2}}$$

$$= ज(१ + \tfrac{1}{2}व^2 + \tfrac{3}{8}व^4 + \tfrac{5}{16}व^6 + \cdots)$$

व जड़द्रव्यका प्र। से में वेग है और इसी कारण वह एक छोटी संख्या है। इसलिये $व^2$ की अपेक्षा $व^4$, $व^6$ इत्यादि बहुत ही छोटी होनेके कारण छोड़ दी जा सकती हैं।

रसवाली झिल्लियोंका इलाज

फुफ्फुसकी झिल्लियोंका क्षयरोग

(लेखक—डा० कमलाप्रसाद, हजारीबाग)

फुफ्फुसावरण-यक्ष्मा या प्लूरिसीकी चिकित्साकी दृष्टिसे दो रूप मानने उचित हैं—नयी सूखी (acute dry pleurisy) और पुरानी तर (chronic pleurisy with effusion)। नयी क्षयवाली प्लूरिसी असम्भव नहीं है, किन्तु इसका पहिचाना जाना कठिन है। फेफड़ेके क्षयरोगके बाद यह झिल्ली-प्रदाह उत्पन्न हुआ हो तो इसे यक्ष्माजनित होनेका पूरा संदेह किया जा सकता है। अथच इसकी भी चिकित्सा उसी प्रकारकी जायगी जिस प्रकार अन्य कीटाणुओं (यक्ष्माके अतिरिक्त) द्वारा उत्पन्न फुफ्फुसावरण प्रदाह की। अर्थात्

पूरा आराम उचित और पुष्ट आहार, पीड़ा कम करनेके उपाय—जिसके लिये कभी-कभी अफीमतकका व्यवहार

$\therefore$ जड़राशि=ज $(1 + \frac{1}{2}$ व$^2)$=ज + $\frac{1}{2}$जव^2 —(३३)

परन्तु $\frac{1}{2}$ जव^2 उस पदार्थके वेगके कारण उसमें उत्पन्न हुई गतिशक्ति है। इसलिये पदार्थके वेगके कारण जो गतिशक्ति पायी जाती है, वह उस पदार्थकी जड़राशिकी वृद्धि ही माननी चाहिये। पदार्थकी जड़राशि और उसके वेगके कारण उत्पन्न हुई गतिशक्तिमें तत्वतः कोई भेद नहीं है।

$$\text{जड़राशि} = \frac{\text{ज}}{\sqrt{1 - \text{व}^2}} \text{ है।}$$

व वेग बढ़ते बढ़ते १ प्र। से हो जावे तो जाड्य अपरिमित हो जाता है क्योंकि $1 -$ व$^2 = 0$ है। जब व शून्य हो जाता है तब जाड्य केवल ज ही रह जाता है। इसलिये ज संख्याको स्थिरजाड्य कहते हैं।

२१—ऐंस्टैनके मर्यादित सिद्धान्तसे निकलनेवाले अनुमान

ऐंस्टैनने अपने सिद्धान्तमें जो दो मूलभूत बातें ली थीं, उनसे ये अनुमान निकलते हैं—

(१) प्रकाशका वेग कोई कहींसे भी नापे, फल सदा एकसा ही मिलता है।

(२) प्रकाशके वेगसे यदि कोई अधिक वेगवाला पदार्थ हो, तो उसका विचार करना सम्भव नहीं है। जिन वेगोंको हम नाप सकते हैं, उनमें प्रकाशका वेग महत्तम मर्यादा होगा।

(३) एक जगत्के कालान्तर और स्थलान्तरको आपेक्षवेगसे जानेवाले जगत्में स्थित दूसरे अवलोकक भिन्न-भिन्न पाते हैं। उनमेंसे सच्चा कौन है, यह नहीं कहा जा सकता।

(४) किन्हीं भी दो घटनाओंका घटनान्तर कोई कहींसे भी नापे, फिर भी फल एक-सा ही मिलेगा।

(५) घटनान्तर ही सत्य है; घटनाओंके स्थलान्तर और कालान्तर केवल भास हैं। उनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।

(६) बाह्याकर्षण अथवा विरोध न होनेपर गतिमान् कण उस जगत्रेखासे जाता है जिसमें घटनान्तर अधिकतम हो।

(७) एक जगत्मेंका सरल समवेग दूसरे जगत्के अवलोककको सरल और सम ही जान पड़ता है। रेखा कुछ तिरछी और वेगका मान कुछ भिन्न, किंतु न बदलनेवाला, मिलता है।

(८) पदार्थोंका जाड्य उसके वेगपर निर्भर रहता है; वेगके कारण जो गतिशक्ति पदार्थोंमें उत्पन्न होती है, वह उस पदार्थके जाड्यमें बाढ़ ही समझनी चाहिये। इसलिये पदार्थका जाड्य और उसकी गतिशक्ति वस्तुतः एकही है।

यहाँ मर्यादित सिद्धान्तका विवेचन पूरा हुआ। अब विस्तृत सिद्धांतका विचार करेंगे।

करना पड़ता है।—रेचन, स्वेदकारी (diaphoretic) दवाइयोंका मिश्रण इत्यादि। इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि रोगी ज्योंही कुछ अच्छे हों काम न करने लग जायँ।

पुरानी प्लूरिसीकी चिकित्सा

इस रोगकी चिकित्साके सम्बन्धमें इन बातोंपर ध्यान देना चाहिये—

(१) साधारण चिकित्सा। इसकी बहुत सी बातें पहलेके अध्यायोंमें कही जा चुकी हैं।

(२) स्थानीय चिकित्सा। क्षत स्थानमें नैलिनके (tincture of iodine) टिंक्चरका लेप, स्कौटका मरहम (जो एक पारदयुक्त मरहम है) लगाना इत्यादि।

(३) द्रवको फुफ्फुसावरण गर्त्तसे निकाल देना (paracentasis) वास्तवमें चिकित्साका प्रधान अंश है। किन अवस्थाओंमें द्रव निकाल देना उचित है? यदि—

(क) श्वास कष्ट (dyspnea होता हो अथवा होंठ बराबर नीले रहें (cyanosed)।

(ख) मध्यस्थानिक अवयव (हृत्पिण्ड) अपने स्थानसे बहुत हट गये हों (क्योंकि ज्यों-ज्यों द्रवकी अधिकता होती है त्यों-त्यों निकटस्थ सभी अवयव स्थानान्तरित होते जाते हैं।

(ग) एक महीनेतक छोड़ दिये जानेपर भी द्रवके सूख जानेका कोई संकेत नहीं मिलता हो।

(घ) अन्य प्रकारकी चिकित्साओंके होते रहनेपर भी द्रवकी मात्रा बढ़ती जाती हो।

(ङ) ज्वर होता हो।

(च) उस ओरका फुफ्फुस भी क्षयाक्रान्त हो।

(छ) वक्षस्थलका रौञ्जनकिरणद्वारा चित्र लेना हो।

अथवा (ज) वक्षान्तवीक्षण करना हो।

तो द्रव को निकाल देना उचित है।

द्रव निकालनेके समय कुछ भयकी सम्भावना रहती है—

(क) बहुत खाँसी।

(ख) श्वासकष्ट।

(ग) रक्त सरण।

(घ) फुफ्फुसका सद्यःसूजन (acute oedema of the lungs)।

(ङ) हृदयावरोध वा आकस्मिक मृत्यु।

इन भयोंका कारण है, फुफ्फुसावरण गर्त्तसे अधिक द्रव निकल जानेके कारण उसमें अत्यधिक आकस्मिक बृणात्मक चायका प्रादुर्भाव, जिससे अन्य अवयवों (फुफ्फुस, हृदय इत्यादि) पर बहुत गहरा धक्का लगता है। अस्तु द्रव निकालते समय इसका पूरा ध्यान रखा जाता है।

द्रव निकालनेकी विधि

(क) रोगी पीठके बल सोये रहें, अथवा तकियोंके सहारे उढ़के रहें।

(ख) द्रव निकालनेके लिये जिस स्थानमें सुई प्रवेश करानी हो, उस स्थानको मद्यसारसे भलीभाँति धोकर, वहाँपर नैलिनका टिंक्चर लगाया जाता है।

(ग) सुई खूब तेज़ एवं पूर्णतः कीटाणु-विहीन हो।

(घ) सुई प्रवेश करानेका स्थान; यह अवस्थानुसार (द्रवके न्यूनाधिकताके कारण) भिन्न भिन्न हो सकता है, किन्तु बहुधा (यदि रोगी पीठके बल सोये रहें तो) ६ठें वा ७वें पर्शुकान्तर स्थानमें (mid-axillary line) मध्य-कक्षीय रेखाके तनिक पीछे निश्चित किया जाता है।

(ङ) सुई प्रवेश करानेके समय इस बातका ध्यान रखा जाता है कि यह किसी पर्शुकाके ऊर्ध्व धारसे संलग्न रहे, अन्यथा पर्शुकान्तरस्थ रक्त नलिकाओंके छिद जानेका डर रहता है।

(च) चर्ममें सुई प्रवेश कराते समय कुछ पीड़ा होती है, और पुनः उस समय पीड़ा होती है जब सुई फुफ्फुसावरणके बाहरी तलमें प्रवेश करती है। इस पीड़ासे बचानेके लिये (novocaine) नवपेणका व्यवहार किया जाता है। एक साधारण (injection syringe) सुईवाली पिचकारी में २% नवषेण (२ घन शतांश मीटर) लेकर पूर्व निश्चित स्थानमें उसका त्वचाके भीतर प्रवेश कराया जाता है, जिससे त्वचा एक फोड़ेके आकारकी होकर कुछ फूल जाती है। अब सुईको और भी भीतरकी ओर (फुफ्फुसावरण गर्त्तकी ओर) प्रवेश कराया जाता है। पर्शुकान्तर स्थानकी मांसपेशियाँ साधारणतः चेतनाशून्य होती हैं, अस्तु सुई ज्यों-ज्यों फुफ्फुसावरणके बाहरी तलतक पहुँचती जाती है त्यों-त्यों रोगीको कुछ

पीड़ा मालूम होने लगती है। इस समय कुछ और नवषेण डालना चाहिये, और जब रोगी पीड़ाकी शिकायत न करे तो सुईको कुछ और भीतरकी ओर बढ़ाना चाहिये जिसमें यह फुफ्फुसावरण गर्त्तमें वा फुफ्फुसमें अथवा किसी ठोस पदार्थमें प्रवेश करेगी। वास्तवमें सुई किस अवयवमें प्रवेश करती है, यह उंगलियोंके स्पर्श ज्ञानसे ही जाना जाता है। इस समय यदि पिचकारीके पिस्टनको ज़रा खींचा जाय तो पिचकारीमें फुफ्फुसावरण-गर्त्त-स्थ द्रवके आजानेकी सम्भावना रहती है, तथा जिस मार्गसे सुई प्रवेश करायी गयी है वह चेतना-शून्य हो जायगा, और उसमें कोई मोटी सुई प्रवेश करायी जा सकती है।

द्रव निकालनेकी कई रीतियाँ हैं—

द्रव निकालनेकी सबसे सरल रीति (syphon) साइफनद्वारा है। इसके लिये एक अच्छी सुई, रबरकी पतली नली और एक साधारण बोतल—जिसमें कुछ १°/० कार्वलिकाम्ल भरा हो—चाहिये। नवषेण डालनेके उपरान्त पिचकारीकी सुई निकाल ली जाती है और उसी मार्गसे साइफनकी मोटी सुई फुफ्फुसावरण-गर्त्तमें प्रवेश करादी जाती है; इसका बाहरी अंश रबरकी नलीसे जुड़ा रहता है, और इस नलीका खुला मुँह बोतलमें रहता है। बोतल रोगीके निकट एक तिपाईपर रखी रहती है। इस अवस्थामें रोगीके कुछ खाँसनेसे ही साइफन स्थापित हो जाता है और फुफ्फुसावरण गर्त्तका द्रव बोतलमें आने लगता है।

(Potain's aspirator) पोटेनके कर्षकद्वारा भी द्रव निकाला जाता है। इसका प्रबन्ध भी प्रायः वही है जो उपरोक्त यन्त्रमें; अन्तर इतना ही है कि इसमें बलपूर्वक (वायुचापद्वारा) गर्त्तस्थ-द्रव खींच लिया जाता है।

इन सभी रीतियोंसे अधिक उपयुक्त रीति वह है जिसमें एक साथ ही द्रव निकाला जाता तथा वायु प्रवेश करायी जाती है। दो सुइयाँ रोगीके फुफ्फुसावरण गर्त्तमें प्रवेश करायी जाती हैं। इनके प्रवेश स्थानोंमें एक वा दो पर्शुकान्तर स्थानोंका अन्तर रहता है। ऊपरवाली सुईके साथ वायु प्रवेश करानेवाले यन्त्रका सम्बन्ध रहता है और नीचेकी सुई द्रव निकालनेका काम करती है। एक ओर जैसे-जैसे द्रव निकाला जाता है, दूसरी ओर उसी अनुपातमें वक्षस्थलमें वायु प्रवेश करायी जाती है।

गर्त्तमें जितना द्रव इकट्ठा रहता है, सभीको निकाल देना आवश्यक नहीं होता। प्रायः एकसे तीन पाइंटतक (रोगीकी अवस्थाके अनुसार) निकालनेसे काम चलता है, कभी-कभी तो एक पाइंटसे भी कम निकालना यथेष्ट हो जाता है। द्रव निकल जानेपर ज्वर शांत होने लगता है और बचा हुआ गर्त्तस्थ द्रव स्वयं लुप्त हो जाता है।

वक्षस्थलसे सभी सुइयोंको निकाल देनेके बाद छिद्रको दबा दिया जाता है तथा अन्तमें इसे कौलोडियन (collodion) द्वारा बन्द कर दिया जाता है। इस समय रोगीको चाय, ब्रांडी इत्यादि उत्तेजक पेय दिये जाते हैं और यदि पीड़ा होती हो तो अफीमिन भी दिया जा सकता है।

निर्गत द्रवकी परीक्षा बहुत आवश्यक होती है जिससे द्रवमें वर्त्तमान यक्ष्मा इत्यादि कीटाणुओंकी उपस्थितिका पता चल जाता है।

अन्य रसमयी झिल्लियोंके यक्ष्माकी चिकित्सा

अन्य रसमयी झिल्लियोंमें यक्ष्माका आक्रमण बहुत कम होता है, कभी-कभी (acute miliary tuberculosis) नूतन बहु संख्यक यक्ष्माके अंशस्वरूप ये झिल्लियाँ भी आक्रान्त हो जाती हैं। अस्तु इनकी चिकित्सा प्रायः यक्ष्माकी साधारण चिकित्साके आधारपर होती है। कभी-कभी द्रव अधिक होनेपर निकाल दिया जाता है।

पारिभाषिक शब्दोंकी समस्या

उसके सुलझानेके उपाय

[ले० रामदास गौड़ *]

जो वैज्ञानिक अध्यापक यह शिकायत करते हैं कि विज्ञानके पारिभाषिक शब्दोंको हम हिन्दीमें कैसे व्यक्त करें वह वस्तुतः अपनी अव्यावहारिकता दिखाते हैं। यदि वह व्यावहारिक हों तो उन्हें यह कठिनाई पड़ नहीं सकती। जिन लोगोंको मातृभाषामें पढ़ानेका थोड़ा भी अनुभव है, वह यह खूब जानते हैं कि शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों मिलकर समझने योग्य शब्द बना ही लेते हैं। कारखानोंमें काम करनेवाले मजूर और मिस्त्री बराबर शब्द गढ़ लेते हैं। हमने किसी कारखानेवालेको शब्दकी तंगीकी शिकायत करते नहीं सुना। व्यवहारमें आते-आते शब्दमें तीनों शक्तियाँ अपने आप आ जाती हैं। शब्दरूपी नवजात बालकके लिये व्यवहार ही दूध है। इसीसे वह बढ़ता है और उसे शक्ति मिलती है।

विज्ञान एक ओरसे अत्यन्त व्यापक विषय है और दूसरी ओरसे नित्य वर्धमान। व्यापकताकी दृष्टिसे उसके शब्द हमारे लिये तीन प्रकारके हो सकते हैं। एक तो वह जो जगद्व्यापी हैं, जैसे ओम्, वोल्ट, अम्प आदि। इनमें केवल उच्चारण सम्बन्धी थोड़ेसे परिवर्त्तनकी आवश्यकता हो सकती है। इतनी शुद्धिसे हम इन्हें भारतीय बना ले सकते हैं। इनकी पहचान यह है कि इंग्लिस्तान, फ्रांस, जर्मनी, जापान सभी जगह ये ज्योंके त्यों ले लिये गये हैं। ये प्रायः सार्वभौम इकाइयाँ या पैमाने हैं।

दूसरे वह शब्द जो भारतव्यापी हैं। इनको अवश्य ही संस्कृतके तत्सम वा तद्भव रूपमें ग्रहण करना होगा। हम अरबी-फारसी-तत्समों और तद्भवोंको-इसलिये नहीं लेते कि एक तो ये भारतकी भाषाएँ नहीं हैं, किसी प्रान्तमें बोली नहीं जातीं, दूसरे यह कि बिना अपवादके भारतकी सभी भाषाएँ संज्ञापदों और क्रियापदोंमें भी संस्कृतसे ही निकली हैं। जिसे उर्दू कहते हैं उसका भी मूल संस्कृत ही है। अतः अखिल भारतीय शब्द तो संस्कृतमूलक ही हो सकते हैं। जैसे, तापमापक, भारमापक इत्यादि। यह कहा जा सकता है कि उसमानिया विश्वविद्यालय तो अरबी शब्द ही ले रहा है, तो मैं कहूँगा कि यह नितान्त अवैज्ञानिक विधि है और ऐसे गढ़े शब्द अखिल-भारतीय कभी हो नहीं सकते। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वह प्रायः अरबी शिक्षणालयोंके ही गढ़े शब्द काममें ला रहे हैं।

तीसरे वह जो प्रान्तीय हैं। इनमें हम केवल तद्भव शब्दोंको ही गिनते हैं, फिर चाहे वे संस्कृतसे निकले हों चाहे किसी अरबी-फारसी, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषासे ही उद्भूत हों। इसमें उन शब्दोंको भी शामिल समझा जायगा जिन्हें कारखानेमें काम करनेवालोंने स्वयं गढ़ा है। ये शब्द अवश्य ही किसी देशी या विदेशी भाषाके तद्भव हैं अथवा नये गढ़े हुए हैं। जैसे, प्लायर्सके लिये पलास, ऐश-पैनके लिये आसमान, कैलियर्सके लिये कालापास, पैरगाड़ी, हवागाड़ी, बोइलरके लिये बैलट इत्यादि।

विज्ञानकी नित्यवर्धमानतामें या तो नये शब्द ही ढलते जाते हैं, अथवा पुराने शब्दोंको नयी शक्ति मिलती जाती है। जैसे यावनीकरण, अपचय आदि पुराने शब्दोंको अब नयी शक्ति मिल गयी है। नयी टकसालके शब्द भी चल रहे हैं जैसे, ऋण्यणु, धनाणु, हीनाणु, प्रथमोज्जन, द्वितीयोज्जन इत्यादि। यह शब्द अंग्रेजीमें भी हालके ही हैं और अन्वेषणसे इन्हीमें जो परिवर्त्तन वा परिवर्धन होते रहते हैं उनका हम अपनी भाषामें समावेश कर सकते हैं। नागरीप्रचारणीसभाने जो कोश तीस बरस पहले तैयार किया था वह आज भी बहुत उपयोगी है, परन्तु काल पाकर वह अपर्य्याप्त और संशोध्य हो गया है।

* तेईसवें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसर-पर दिल्लीमें विज्ञानपरिषतके सभापति-पदसे दिये हुए भाषणका एक अंश।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌ने इस सम्बन्धमें बड़े महत्त्वका काम किया है। उसने आंगारिक, अनांगारिक, और भौतिक-रसायन, वनस्पतिविज्ञान, शरीरविज्ञान, शब्द, ज्योति, ताप, तड़ित; चुम्बकत्व आदिके पारिभाषिक शब्द प्रकाशित किये हैं और वैज्ञानिकपरिमाण प्रकाशित करके तो हिन्दीकी अनमोल सेवा की है। उसने अकेले विज्ञान-मासिकपत्रद्वारा विविध विषयोंपर सुबोध लेख दे देकर अबतक डबल क्रौन अठपेजेके दस हजारसे ऊपरकी पृष्ठ संख्यामें ठोस और रोचक वैज्ञानिक साहित्य हिन्दी जगत्‌को दिया है। इसके सिवा तैंतीस पुस्तकें भी विज्ञानके विविध विषयोंपर प्रकाशित की हैं। इस तरह विश्वविद्यालयोंके अध्यापकोंकी कठिनाइयाँ अब इतने कामके हो जानेके बाद झूठ बहानोंके सिवा कुछ भी नहीं रहीं।

अपने ही पारिभाषिक शब्द गढ़नेकी अपेक्षा सभी अंग्रेजीके शब्द ज्योंके त्यों ले लेनेमें ही अनेक अध्यापक सुभीता समझते हैं। हम इसे वहाँ तो आवश्यक समझते हैं जहाँ आविष्कारककी कीर्ति-रक्षाका उद्देश्य होता है। ओम, वोल्ट, फरड आदि ऐसे ही शब्द हैं। परन्तु delivery tube डेलिवरीट्यूबकी जगह निगाली retort stand रिटार्ट स्टैंडकी जगह डट्टा, clamp क्लैंपकी जगह चंगुल, clip क्लिपकी जगह चुटकी क्यों न कहें। बीकरको बीकर ही कहना मैं पसन्द करता हूँ। अंग्रेजी शब्द हम वेही लेंगे, और नियमित शुद्धि करके लेंगे जिनके लेनेमें हमें सुभीता होगा और जिनके न लेनेपर ऐसे ऊटपटांग निर्जीव पर्य्याय गढ़नेकी आवश्यकता होगी जिसके चिरायु होनेकी हम कोई आशा नहीं कर सकते। प्रदीप और दीपमंदिर लोग कहते ही रह गये, परन्तु उसकी जगह लालटेनका ही प्रकाश आज भी हो रहा है यद्यपि इसके छोड़ जानेवाले पुर्तगालियोंका राजनैतिक प्रभाव अब भारतपर नहींके बराबर है। इसीलिये विदेशी शब्दोंके विरोधी न होते हुए भी हम इस मतका समर्थन नहीं कर सकते कि सभी विदेशी शब्द ज्योंके त्यों ले लिये जायँ।

जब विदेशी विद्वान अपनी-अपनी भाषामें विज्ञानके नये शब्द गढ़नेमें लगे हुए हैं, तो क्या हमारे लिए लज्जाकी बात नहीं है कि हम स्वयं अपनी भाषाके न गढ़ें और उनका मुँह जोहें कि जब वह गढ़ लें तो हम उनके शब्द ज्योंके त्यों ले लें! यह तो आलस्य, अयोग्यता, और निर्लज्जताकी ही बात न होगी, बल्कि नितान्त पशुता होगी।

हमारी समझमें हम इतना साहित्य तैयार कर चुके हैं कि साधारणतया सभी विज्ञानोंको हम बिना विशेष कठिनाईके पढ़ा सकते हैं और जहाँ नये शब्द मिलें वहाँ उनके पर्याय बना सकते हैं। अब हम बहुत काफी सलाह मशविरा कर चुके। हमें काम करना चाहिये। गुरुकुल कांगड़ी बड़ी मुद्दतसे विज्ञानकी पढ़ाईका काम करता आया, उसे कोई व्यावहारिक कठिनाई इस विषयमें न पड़ी और उसने सलाह मशविरेमें कभी समय न खोया। उसने वैज्ञानिक साहित्य भी तैयार किया। उसे इस काममें विज्ञानपरिषत्‌का पूर्व-गामी रहनेका श्रेय प्राप्त है।

इतना काम होजानेपर भी अभी गतवर्ष हिन्दुस्तानी अकाडमीके जीमें आया कि इस सम्बन्धमें विद्वानोंकी सम्मति एकत्र करें। हम कबतक लोगोंकी सम्मतियाँ लेते फिरेंगे? क्या काम करनेका भी कभी समय आवेगा या सारा जीवन हम सलाह मशविरोंमें ही बिताना चाहते हैं? केवल शब्द ही गढ़ते रहेंगे अथवा वैज्ञानिक साहित्य भी तैयार करेंगे? पढ़ाना शुरू भी करेंगे या शुरू करनेकी तैयारीमें ही समय गँवा देंगे?

हमारा सदासे यही मत रहा है कि हम काम करते रहें तो पारिभाषिक शब्द अपने आप बनते रहेंगे। परिषत्‌ने जो शब्दावली छापी है, वह साहित्य तय्यार करनेके बाद छापी है। नागरी प्रचारिणीसभाकी अपेक्षा परिषत्‌का यह काम इस स्वाभाविक नियमके अधिक अनुकूल हुआ है।

अभीतक पारिभाषिक शब्दोंकी रचनामें भारतकी भाषाएँ अलग अलग काम करती रही हैं। बड़ोदेमें एक बार अखिलभारतीय प्रयत्न हुआ था। शब्दावली भी छपी परन्तु वह एक प्रकारका सार्वजनिक प्रयत्न था। इस कामका ढंग यों होना चाहिये कि सभी प्रान्तीय विश्वविद्यालयोंके (faculties of science) विज्ञानविभाग मिल जायँ और प्रत्येक शाखाकी अलग अलग अखिलभारतीय प्रतिनिधि-मूलक समितियाँ बनाकर समानपारिभाषिक शब्दोंका संग्रह करें और जिन्हें हमने अभी अखिल भारतीयकोटिमें परि-गणित किया है उनका, और विश्वव्यापी शब्दोंका, निर्माण

प्राचीन भारतमें लोहेका बढ़ाचढ़ा उद्योग

छोटे पैमानेपर बड़े-बड़े काम

[ले० पं० ओंकारनाथ शर्म्मा, ए. एम. आइ. एल. ई. अजमेर]*

स्वनामधन्य श्री महादेव गोविन्द रानाडे अपने Essays on Indian Economics नामक ग्रन्थमें भारतके प्राचीन लोहेके उद्योग-धंधोंके संबंधमें लिखते हैं कि "भारतीय लोहेका उद्योग इतना बढ़ा-चढ़ा था कि इससे केवल यहाँकी ही आवश्यकतायें पूरी नहीं होती थीं बल्कि यहाँका बना हुआ ईस्पात और लोहेका सामान विदेशोंमें भी जाता था। यह लोहा इतना उत्तम होता था कि वह दुनिया भरमें मशहूर था। दिल्लीका सुविख्यात लौह-स्तंभ जो डेढ़ हजार वर्षसे कमका पुराना नहीं है, प्रदर्शित करता है कि उस समयके भारतीय-कारीगर लोहेकी वस्तुओंके निर्माण करनेमें इतने दक्ष होते थे कि उनकी बनायी हुई वस्तुओंको देखकर आजकलके बड़े-बड़े यंत्र-विद्या-विशारद अनुमानतक नहीं लगा सकते कि उन्होंने यह वस्तुएँ किस प्रकारसे तैयार की होंगी। बॉल महाशयने अपने भारतीय-भूगर्भ-सम्बन्धी अनुसन्धानके विवरणमें यह बात स्वीकार की है कि दिल्लीके लौह-स्तंभ जैसी विशाल वस्तुओंका बनाना पाश्चात्य देशोंके बड़े-बड़े कारखानोंके लिये कुछ वर्ष पहलेतक असम्भव था और अब भी वहाँ कुछ इने-गिने कारखाने ही हैं जो इतना भारी काम तैयार कर सकते हैं। पहले आसाममें भारी-भारी तोपें ढाली जाती थीं, भारतवर्ष दमिश्क‡को ऐसा उत्तम ईस्पात देता था कि जिसकी बनी तलवारें विश्व-विख्यात होती थीं। भारतके बने चाकू और छुरियाँ किसी जमानेमें इंगलैण्डमें खूब बिकते थे। भारतीय-कारीगर ऐसा उत्तम ईस्पात और लोहा बनानेकी योग्यता दो हजार वर्ष पहले प्राप्त कर चुके थे।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि भारत-वासियोंने लोहेके उद्योगकी उन्नति जो इस चरम सीमातक की, वह बड़े-बड़े कारखानोंके द्वारा नहीं, बल्कि अपने घरेलू धंधोंको सुसंगठित रूपमें लाकर ही की है। हालमें ही मेरे एक परममित्र बाबू सोहनलालजी-द्वारा—जोकि अजमेरके कारखानेमें मेरे साथ ही काम करते हैं, और जिनकी वंश-परम्परासे कारीगरीका काम चला आरहा है—उनके पूर्वजोंकी लिखी हुई लगभग तीनसौ वर्षकी पुरानी एक हस्तलिखित हिन्दीकी पुस्तकका विवरण मालूम हुआ है। उस पुस्तकमें बताया है कि उपरोक्त प्रकारका उत्तम ईस्पात किस प्रकार गोबर आदिकी सहायतासे सहजमें ही बना लिया जाता था; उस समय आज-कलकी भाँति यंत्र-मय भट्ठियाँ और विश्लेषकोंको रासायनिक-प्रयोगशालायें नहीं होती थीं। इतना बड़ा दिल्लीका लौह-स्तम्भ घरेलू उद्योगके तरीकेसे किस प्रकार बनाया गया यह तो निश्चित प्रकारसे नहीं कह सकते, लेकिन उस पुस्तकमें सिद्धान्त-रूपसे यह बताया गया है कि बड़ी-बड़ी लोहेकी तोपें वगैरा, जिन्हें ढालनेके लिये आजकलके बिरले कारखाने ही हिम्मत कर सकते हैं, किस प्रकारसे बिना भीमकाय यंत्रमय भट्ठियोंके, सादी धौंकनीके सहारेसे साधारण लोहार संगठित होकर ढाल लिया करते थे। उस पुस्तकमें यहाँपर दिये हुए चित्रके समान एक चित्रकी सहायतासे समझाया है कि जिस वस्तुको ढालना होता था उसका मिट्टीका साँचा चौरस

‡ फ़ारसी-साहित्यमें 'शमशीर हिन्द' अर्थात् भारतका खड्ग प्रसिद्ध है। —रा० गौ०

* तेइसवें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर दिल्लीमें विज्ञान-परिषत्‌में पढ़े गये लेखका एक अंश।

और निश्चय कर डालें, फिर तो यह कठिनाई हमारे लिये रह न जायगी। थोड़ा बहुत वैज्ञानिक साहित्य सभी भारतीय भाषाओंमें तैयार है, और पारिभाषिक शब्द भी बन गये हैं। अब अधिकांश काम तुलनात्मक और चयनात्मक रह गया है जिसे सभी भारतीय विद्वान मिलकर बड़ी सरलतासे कर सकते हैं।
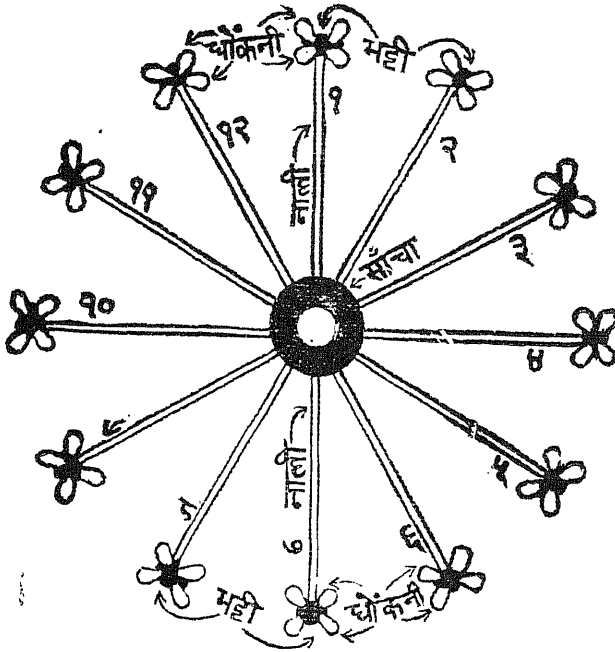
जमीनमें गढ़ा खोदकर बना लिया जाता था और उसके मुँहसे चारों तरफ रथके पहियेके आरोंके समान चारोंओर नालियाँ खोद ली जाती थीं। उन नालियोंके बाहरी सिरोंपर एक-एक भट्टी बनादी जाती थी और उस भट्टीको हवा पहुँचानेके लिये चार धौंकनियाँ लगा दी जाती थीं। प्रत्येक भट्टीको चलानेके लिये पाँच-पाँच आदमी रहा करते थे। उनमेंसे एक आदमी तो भट्टीकी आगको सँभालनेका काम किया करता था और शेष चार आदमी दो-दोके जोड़ेसे दो-दो धौंकनियोंको चलाया करते थे, जब दो आदमी थक-जाते तब दूसरे दो आदमी अपनी धौंकनियाँ चलाने लगते। इस प्रकारसे भट्टीकी आगमें लगातार हवा पहुँचा करती थी। इस प्रकारकी कई भट्टियाँ वस्तुके आकारके अनुसार चारों-ओर नालियोंके सिरोंपर लगा दी जाती थीं। अब मान लीजिये किसी बड़ी तोप अथवा स्तंभको ढालनेके लिये १२ भट्टियाँ लगायी गयी हैं। जैसा कि ऊपरके चित्रमें दिखाया गया है। उनमेंसे पहले चित्रमें दिखाई हुई १ संख्याद्वारा चिन्हित भट्टी चालू हुई, फिर २ संख्याकी भट्टी चालू हुई फिर ३ संख्याकी इत्यादि। मान लीजिये संख्या १ की भट्टी जो सबसे पहले चालू की गयी थी, उसका लोहा गलकर तैयार हो गया है और संख्या २ की भट्टीके तैयार होनेमें कुछ कसर है और संख्या ३ की भट्टीमें उससे भी अधिक कसर है, इत्यादि। लोहा गलकर तैयार होते ही संख्या १ की भट्टीका लोहा खोल दिया जाता है जिससे वह नालीमेंसे बहकर साँचेमें गिरने लगता है, ज्योंही उसका लोहा गिरते-गिरते बिल्कुल खतम होनेको आता है तबतक २ संख्याकी भट्टीका लोहा गलकर तैयार होजाता है और वह नालीमेंसे होकर साँचेमें गिराया जाने लगता है। यह २ संख्याकी भट्टीका लोहा खुलते ही १ संख्याकी भट्टीमें फिर ताज़ा लोहा और कोयला आदि डालकर उसे फिर चालू कर दिया जाता है। इसी प्रकार जब दूसरी भट्टीका लोहा खतम हो जाता है तब तीसरी भट्टीको जिसका लोहा तबतक तैयार होजाता है, खोल दिया जाता है और दूसरी भट्टीको फिरसे चालू कर दिया जाता है। इस प्रकार जब बारहवीं भट्टीका लोहा खतम होनेको आता है तबतक पहली भट्टी फिर तैयार होजाती है और उसका लोहा खोल दिया जाता है। इस प्रकार एक चक्रसा बँध जानेपर गले हुए लोहेकी धार लगातार चालू रहती है जिससे भारीसे भारी चीज़ ढलकर तैयार हो सकती है। इस दृष्टान्तसे पाठकोंकी समझमें आगया होगा कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय-कारीगर बड़ेसे बड़े आश्चर्यजनक कार्य सहजमें ही मिलकर कर लिया करते थे। यह उदाहरण वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे चाहे हमें ठीक न जँचे परन्तु इस बातको अवश्य पुष्ट करता है कि घरेलू उद्योग-धंधोंको सफलता सदैव रही है और अब भी रहेगी।

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य

एक संक्षिप्त दिग्दर्शन

[ले०—रामदास गौड़]

परिभाषाओंका प्रश्न साहित्यनिर्माणके अवसरपर ही उपस्थित होता है और यह उतना ही पुराना है जितना कि हमारा वैज्ञानिक साहित्य। भारतीय भाषाओंके विकासके इतिहासमें हमारी हिन्दी कमसे-कम वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणमें सबसे आगे रही है। सत्तर बरस पहले हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक राजा शिवप्रसादने विद्यांकुर और हक़ाएक़ुल-मौजूदात लिखकर सुबोध वैज्ञानिक साहित्यको अंकुरित किया और कई छोटी-मोटी पोथियाँ लिखीं जो आज खोजे भी नहीं मिल सकतीं। उनके सामने ही उनके अंकुर खूब पनपे और पं० लक्ष्मीशंकरने तो विज्ञानकी प्रत्येक शाखाको अलग-अलग लगाकर पूरे पेड़ तैयार कर दिये। पदार्थ-विज्ञान-विटप, 'जीव-विज्ञान-विटप', सरल त्रिकोण-मिति, स्थिति-विद्या, गतिविद्या, आदि पुस्तकें पुराने पुस्तकालयोंमें अब भी देखनेको मिल सकती हैं। हमारे वयोवृद्ध पुराने साहित्य-सेवी और कवि रायबहादुर लाला सीताराम साहबने भी अनेक वैज्ञानिक पुस्तकें लिखीं। इन महारथियोंके पदांकोंपर चलनेवाले अनेक लेखकोंकी सृष्टि हो जाती परन्तु हमारी राष्ट्रभाषा शिक्षाका साधन बनते-बनते रह गयी। उस समय अंग्रेजी मिडिलतककी पढ़ाई राष्ट्रभाषाद्वारा ही होती थी। इसीलिये इन ग्रंथोंकी रचना की गयी। पीछे नियमसे शिक्षा और परीक्षा दोनोंका साधन अंग्रेजी बना दी गयी। इन पुस्तकोंका उपयोग करनेवाले कीड़े ही रह गये। बाजारमें उन्हीं वस्तुओंका उपयोग होता है जिनकी माँग होती है। फिर भी अर्थ-विज्ञानके इस महत्त्वके सूत्रकी ओर ध्यान न देकर अधिकांश यह समझा गया कि पारिभाषिक शब्दोंके अभावसे ही वैज्ञानिक-साहित्य बननेमें रुकावट है। इसीलिये तीस बरस हुए बड़े प्रयाससे श्रीकाशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने वैज्ञानिक कोश तैयार कराया। काम बड़ा अच्छा हुआ परन्तु वैज्ञानिक-साहित्य निर्म्माणकी प्रगति रुकी ही रही।

संवत् १९७० में विज्ञान-परिषत्‌की स्थापना प्रयागराज-में सुबोध वैज्ञानिक-साहित्य निर्म्माणके लिये हुई। कुछ लोगोंके ख्यालमें यह बात आयी कि यद्यपि हिन्दीद्वारा ही शिक्षा देनेकी विधि चला देना हमारे बसकी बात नहीं है, तो भी सुबोध और मनोरंजक साहित्य-निर्म्माण करना तो संभव ही है। इसी उद्देश्यको लेकर "विज्ञान" निकला और कई पुस्तकें निकाली गयीं। देखा-देखी प्रकाशकोंका ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हुआ और विविध वैज्ञानिक ग्रंथ निकलने लगे। सामयिक-पत्रोंमें भी रोचक वैज्ञानिक लेख निकलने लगे। कई पत्रोंने तो वैज्ञानिक चमत्कारके स्तंभ खोल दिये और आज तो साप्ताहिकोंमें प्रायः प्रत्येक अंकमें और दैनिकोंमें बहुधा रोचक वैज्ञानिक लेख निकलते रहना नियमसा हो गया है। मासिकोंमें 'गंगा' और 'विश्व-मित्र' और साप्ताहिकोंमें 'हिन्दी स्वराज्य' और 'प्रताप' वैज्ञा-निक लेख या टिप्पणियाँ तो अवश्य ही देते हैं। सोलह-सत्रह बरसके सामयिक पत्रोंकी आजसे तुलना करनेसे बड़ा अन्तर प्रतीत होगा। लेखोंका वस्तुपरिमाण भी बहुत ऊँचा उठ गया है। वैज्ञानिक चर्चा करना भी तब अपवाद-स्वरूप था, परन्तु वैज्ञानिक प्रवृत्ति तो अब साधारण नियम है। इसका कुछ ही श्रेय परिषत्‌को है, परन्तु अधिक कारण तो जगत्‌की विकासधारा है जिसमें पड़कर

'कर्त्तुंनेच्छसियन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपितत्'

जो हो, आज सुबोध और रोचक विज्ञान अपना काम कर रहा है और इसका हमें सन्तोष है, यद्यपि इस दिशामें भी जब हम पाश्चात्य देशीय लोकप्रिय वैज्ञानिक-साहित्यको देखते हैं तो हमारा प्रयत्न अत्यन्त छोटा और रंक-सा लगता

* तेईसवें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसर-पर दिल्लीमें विज्ञान-परिषत्‌के सभापतिपदसे दिये हुए भाषणका एक अंश।

है और हुआ ही चाहे। दरिद्रताकी भारतसे हद है, और तीनों तापका यहाँ समूह है, "दैवो दुर्बल घातकः" सब तरहके कष्ट तो थे ही भूकम्पने तो प्रलयकर विपत्तिमें हमें डाल दिया। ऐसी कठिन परिस्थितियोंमें हम जो कर सकें वही बहुत है।

रोचक वैज्ञानिक साहित्यकी जहाँ यह दशा है, वहाँ हमें उन लोगोंकी दशापर रोना आता है जिनसे हम आशा करते कि विज्ञानको राष्ट्र-भाषाकी सम्पत्ति बनावेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजी भाषामें भारतीय विज्ञान-महारथी इसीलिये लिखते हैं कि उनका यश फैलेगा उनका आदर होगा। कवीन्द्र रवीन्द्र यदि अपनी चुनी कविताओंका अनुवाद अंग्रेजीमें न छपवाते तो आज संसारमें उनकी ख्याति न होती। सर जगदीशने यदि बँगलामें ही अपने ग्रंथ लिखे होते तो उन्हें भारतके बाहरके लोग न जानते। आजके तात्त्विक अन्वेषक अपने प्राचीन ऋषियोंकी तरह त्यागी जीव नहीं हैं। वे यश चाहते हैं और उनके यशके साथही भारतका यश भी संबद्ध है और इस यशः-प्राप्तिके लिये उन्हें पगपगपर विरोध और संघर्षका सामना करना पड़ता है, घोर युद्ध करना पड़ता है, क्योंकि वे भारतीय हैं, पराधीन हैं। इसलिये यश-प्राप्तिके लिये विदेशोंमें विदेशी भाषाओंका प्रयोग किसी दृष्टिसे क्षम्य हो सकता है, परन्तु यदि हिन्दीका अधिकार छीनकर उसकी जगह विदेशी भाषाको कोई भारतीय वैज्ञानिक ऐसी जगह बैठावे जहाँ पराधीन होते हुए भी वह सहज ही बैठ सकती है, तो वह अवश्य ही राष्ट्रद्रोहका अपराधी है।

विश्वविद्यालयोंके अध्यापकोंमें अपने देशके प्रति थोड़ा भी कर्त्तव्य भाव हो तो उन्हें यह सहज ही प्रतीत होगा कि अबतक हिन्दीकी अवहेला करके वह कितना घोर पाप करते रहे हैं। आचार्य्य प्रफुल्लचन्द्ररायने हिन्दू-विश्वविद्यालयमें पिछली बार के दीक्षान्त-भाषणमें इस सम्बन्धमें जो कुछ कहा है उससे हमारी आँखें खुल जानी चाहियें!

सुबोध-साहित्यसे पढ़ी-लिखी जनताका विज्ञान पढ़नेको अनुराग होता है और समझदार माता-पिता चाहते हैं कि हम बच्चोंको विज्ञान पढ़ावें। अतः सुबोध विज्ञानसे केवल विज्ञापन होता है। यह आपके अखतियारकी बात है कि आप इस विज्ञापनका लाभ विदेशियोंको पहुँचावें या स्वदेशियोंको। देशकी भाषामें और देशी ढंगपर शिक्षा होगी तो देशी पुस्तकें और देशी सामग्री खपेगी, यह तो स्पष्ट ही है। सुबोध साहित्यका लाभ ही क्या हुआ यदि आपके विद्यालयोंकी वही बेढंगी रफ्तार बनी रही। हमने यह दिखा दिया कि हिन्दीमें विज्ञानको यों रोचक और सुबोध बनाया जा सकता है। आगेका काम यह रहा कि हिन्दीमें विज्ञानकी पढ़ाईकी माँग हो और हिन्दीमें ही अध्यापक पढ़ावें। अध्यापक चाहे जिन भाषाओंकी पुस्तकें पढ़कर तैयारी करें। उसे चाहिये कि जगत्के उत्तमोत्तम साहित्यको पचाकर उसका सार निकालकर सरलसे-सरल रूपमें लिख डाले और वही अपने छात्रोंको उनकी मातृभाषा में दे। जो अध्यापक इतना करे वही जननी जन्मभूमिका नमक अदा करता है, और उसीकी ऐसी रचनाएँ छपनेपर उत्तमोत्तम पाठ्य-ग्रंथ बनेंगी। गणिताचार्य्य कोशीकी जीवनीमें प्रसंगवश डाक्टर गणेशप्रसादने लिखा है कि फ्रांसके Ecole polytechnique सर्वकला-विद्यालयमें इसी प्रकार प्रत्येक अध्यापक पढ़ाता था। वहाँ पढ़ानेका यही नियम था। फिर पचासों बरसतक उसी विद्यालयके इस तरहसे निर्मित ग्रन्थ प्रमाण बने रहे और जर्म्मनी और इंग्लिस्तानमें लोग इन्हींके अनुवाद करते थे। मैं अनुवादका भी सर्वथा विरोधी नहीं हूँ। अच्छे ग्रन्थोंके अनुवाद में हानि नहीं है। परन्तु विश्वविद्यालयोंके लिये अनुवाद ग्रन्थ छापना मेरी छोटी समझमें तो छोटी बात है और जहाँतक अनुवादका काम उस-मानियापर या काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें हुआ है, इन विद्वत् संस्थाओंके लिये गौरवका कारण कदापि नहीं है।

हमारी रोटीकी समस्या

आरंभिक औद्योगिक पाठशालाओंकी योजना

[ले० पं० ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आइ० एल० ई० अजमेर]

[यह बात तो एक प्रकारसे निर्विवाद-सी है कि आरंभिक पाठशालाओंसे लेकर विश्व-विद्यालयतक अपनी वर्तमान शिक्षा-प्रणालीके कारण देशकी भयंकर बेकारीकी और हमारी रोटीकी विकट समस्या हल नहीं कर रहे हैं।

देशके युवकोंका भविष्य घोर निराशामय बन रहा है। बेकारी और रोटीके भयंकर प्रश्नने उन्हें 'किंकर्तव्य विमूढ़'-सा बना दिया है। देशके विचारशील मस्तिष्क इस प्रश्नके हल करनेके अनेक पहलू सुझा रहे हैं और देशके सामने सरलसे सरल, स्वाभाविक और व्यावहारिक योजनाएँ रख रहे हैं। अजमेरके उद्योग-मंदिरके जीवनदाता पं० ओंकारनाथ शर्माने अपने लेखमें जो उन्होंने तेईसवें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर दिल्लीमें विज्ञानपरिषत्‌में पढ़ा था इस प्रश्नपर विस्तृत विचार किया है और परिशिष्ट रूपसे एक योजना भी दी है। वही अंश हम "विज्ञान" के पाठकोंके लिये यहाँ देते हैं। —रा० गौ०]

इस लेखके परिशिष्टसे इस उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये मैं एक औद्योगिक पाठशालाकी जैसी कि हमें इस समय चाहिये, योजना दे रहा हूँ। यदि इस योजनाके अनुसार एक भी संस्था सुचारु रूपसे चल गयी तो आशा है थोड़ी बहुत औद्योगिक जागृति जो कुछ भी उसके कारण होगी उसके अतिरिक्त हिन्दीमें औद्योगिक विषयोंपर काफी साहित्य निकल जायगा। और हिन्दी-भाषा इस प्रकारके विषयोंकी शिक्षा देनेके लिये कहाँतक उपयुक्त है यह भी निश्चय हो जायगा।

इन पाठशालाओंके मोटे-मोटे नियम

विद्यार्थी-वर्गीकरण

इन पाठशालाओंमें दो प्रकारके विद्यार्थी लिये जाने चाहिए, एक तो वे जो 'सरस्वती' और 'माधुरी' जैसे हिन्दीके सामाजिक पत्रोंको समझ सकनेकी योग्यता रखते हों और पूरा अंकगणित जानते हों। यदि वे मिडिल-कक्षातककी अँगरेज़ी भी जानते हों तो ठीक है लेकिन इतनी अँगरेज़ी जाननी कोई आवश्यक नहीं होनी चाहिये। इनकी पढ़ाई पाँच वर्षतक होनी चाहिये, प्रथम तीन वर्षोंमें सैद्धान्तिक और व्यावहारिकशिक्षा और अंतिम दो वर्षोंमें केवल व्यावहारिकशिक्षा ही होनी चाहिये।

दूसरे प्रकारके वे विद्यार्थी होने चाहिये जो भलीभाँति हिन्दी और अंकगणित जाननेके अतिरिक्त अँगरेज़ी लिखना, पढ़ना और बोलना भी भलीभाँति जानते हों। इन्हें पाँच वर्षतक केवल व्यावहारिक शिक्षा ही दी जानी चाहिये और सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वे स्वयं ही अँगरेज़ी अथवा अन्य भाषाओंकी पुस्तकोंका उपयोग करें। उनके उपयोगके लिये प्रत्येक विद्यालयमें एक-एक पुस्तकालय भी रहना चाहिये जिसमें अँगरेजी आदि भाषाओंकी औद्योगिक पुस्तकें रहें। लेकिन उन्हें विद्यालयकी वार्षिक परीक्षायें अन्य विद्यार्थियोंके साथ हिन्दीमें ही देनी चाहिये। इस श्रेणीके रखनेका आशय केवल यही है कि उन शिक्षित विद्यार्थियोंमें स्वावलम्बन, स्वाध्याय, आत्म-विश्वास आदि सद्‌गुणोंकी मात्रा बढ़े।

अध्यापकोंका चुनाव

शिक्षकोंकी योग्यताके विषयमें मुझे कहना है कि उन्हें कालेजोंमें पायी हुई अपने विषयकी उच्चसे उच्च शिक्षाके अतिरिक्त अपने व्यापारका कमसे कम दस वर्षका अनुभव और हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणका अनुभव भी होना चाहिये। कारखानेमें काम सिखानेवाले कारीगर भी अपनी कलामें खूब दक्ष होने चाहिये और उन्हें भी किसी यंत्र-निर्माण करनेवाले बड़े कारखानेका कमसे कम दश वर्षका अनुभव होना चाहिये।

परिशिष्टोंका संक्षिप्त परिचय

परिशिष्ट (क) में मैंने बताया है कि विद्यालयमें किस-किस विषयकी कितने-कितने घंटे प्रति सप्ताह शिक्षा देनी

चाहिये। इसीके अनुसार कार्यका अनुमान करते हुए परिशिष्ट (ख) में बताया है कि हमें बीस-बीस छात्रोंकी तीन श्रेणियोंको पढ़ाने और १५० छात्रोंको कारखानेमें काम सिखानेके लिये किस किस दरजेके कितने-कितने कार्य-कर्त्ता रखने होंगे। और साथमें ही उनके वेतनका अनुमान भी दिया है। इस प्रकारसे १४ कार्य-कर्त्ताओंका वेतन, शक्तिका खर्च, कच्चे मालका खर्च और फुटकर खर्च सब मिलाकर प्रतिमास १८०० रु० का व्यय होगा, परिशिष्ट (ग) में बताया है कि हमें पाँचों वर्षोंकी व्यावहारिक शिक्षा देनेके लिये कुल २५००० रु० यंत्र और औज़ार खरीदनेमें व्यय करने पड़ेंगे। और विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिये अन्य आवश्यक यंत्र और औज़ार इन्हींकी सहायतासे विद्यालयके कारखानेमें ही तैयार कर लिये जावेंगे। परिशिष्ट (घ) में यह बात विस्तारसे बतायी है कि व्यावहारिक शिक्षा किस प्रकारकी होगी, और परिशिष्ट (ङ) में सैद्धान्तिक शिक्षा और व्यावहारिक शिक्षाका पाठ्यक्रम दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि परिशिष्टोंमें बताये तरीकोंसे काम लिया गया तो कुछ वर्षोंमें ये पाठशालाएँ अपना बहुत कुछ खर्च आप ही निकाल लेंगी। पाठक-वृन्द! 'हमारी रोटीकी समस्या' जो इस समय हमारे सामने अपना विकट रूप धारण किये हुए खड़ी है, उसके संबंधमें मैंने अपनी छोटीमोटी योजना आपके सम्मुख रख दी है। मुझे आशा है कि हमारे धनी, साहित्य-प्रेमी और भारतमें औद्योगिक उन्नतिके देखनेके इच्छुक सज्जन और भारतीय नेता इधर ध्यान देंगे!

परिशिष्ट (क)

पाठ्य-विषयोंका समय-विभाग

घंटे प्रति सप्ताह

विषय	प्र० वर्ष	द्वि० वर्ष	तृ० वर्ष	च० वर्ष	पं० वर्ष
गणित	५	२	...	...	...
बहीखाता, अनुमान और मूल्य लगाना	...	...	३	२✿	२✿
भौतिक और रसायन-शास्त्र	३	२	...	...	...
वाष्प और तेलके इंजन	५	५	२	...	...
यंत्रशास्त्र	५	५	५	...	...
यांत्रिक चित्रकारी और यंत्ररचना	४	४	४	...	...
विद्युत-यंत्र-शास्त्र	...	२	२	...	...
वस्तु-निर्माणकला	२	२	२	३✿	३✿
विद्यालयका कुल समय	२४	२२	१८	५✿	५✿
कारखाना	२४	२६	३०	४८	४८
योग	४८	४८	४८	४८	४८

सूचनाः—चिन्हित कक्षाएँ रात्रिके समय होनी चाहिये। इनमें अंगरेजी-पढ़े-लिखे विद्यार्थी भी सम्मिलित हो सकते हैं।

परिशिष्ट (ख)

कार्यकर्त्ताओंकी सूची और मासिक व्ययका अनुमान

ओहदा	वेतन	ओहदा	वेतन
१ प्रिंसिपल	२६० रु०	१ लोहार	४० रु०
१ प्रोफेसर	२०० रु०	१ मोल्डर	४० रु०
१ असिस्टेन्ट प्रोफेसर	१५० रु०	१ फिटर	४० रु०
१ वर्कशाप सुपरिन्टेन्डेन्ट	१५० रु०	२ कुली	२५ रु०
१ डाईसिंकर	५० रु०	१ फराश	१० रु०
१ खरादी	५० रु०	१ बाबू	५५ रु०
१ बढ़ई	४० रु०	कुल योग	११०० रु०

१४ कार्यकर्त्ताओंका वेतन	११०० रु० मासिक
बिक्री-विभाग	३०० रु० मासिक
कच्चे मालका खर्च	२०० रु० मासिक
बिजली आदि शक्तिका खर्च	१०० रु० मासिक
पुस्तकालय और फुटकर	१०० रु० मासिक
कुल मासिक व्यय	१८०० रु०

परिशिष्ट (ग)

यंत्र और औज़ारोंका अनुमानपत्र

नाम	मूल्य रु०	नाम	मूल्य रु०
इंजन डायल बिजलीकी मोटरें	३०००	मिलिंग मशीनके औजार	१६००
		औजार तेज करनेकी सानें	४००
बिजलीद्वारा कलई करनेकी मोटर और डायनिमो	१०००	२ चद्दर काटनेकी मशीनें	९००
		१ फेस प्लेट	५००
१ कैपस्टन खराद सब औजारों सहित	४०००	ढलाईकी भट्टी और औज़ार	१५००
		लुहारोंके औज़ार	१०००
१ खराद	१८००	फिटरोंके औज़ार	१०००
१ चकखराद	२००	धुरे और माल आदि	५००
१ बरमा मशीन	१५००	लागत और फुटकर खर्च	१८००
१ रंदा मशीन	२६००		
१ पिर्मोग मशीन	२०००	कुल योग	२५०००

वेदोंमें गणित और ज्योतिष

(लेखक—ज्योतिर्भूषण प० गोपीनाथ शास्त्री चुलैट, अध्यक्ष इण्डियन रायल तत्त्वज्ञान-संचारक सोसायटी, एलीचपुर, बरार)

१. उपक्रम

संसारके प्राचीनतम मानवेतिहासका एवं उसके द्वारा मानव जातिमात्रके उन्नतिके उच्चतम साधनोंका शोध तभी लग सकता है जब हमें वेद-मंत्रोंका सच्चा अर्थ मालूम हो जाय। सभी भाषाकारों एवं भारतीय ऋषियोंका मत है कि वेदका एक-एक मंत्र कई ऐतिहासिक तत्वोंका द्योतक एवं वैज्ञानिक बातोंसे परिपूरित होता है। इसीसे वेदको ज्ञान-कोश कहनेमें अत्युक्ति नहीं है। फिर उसके वास्तविक सुसंगत क्रमबद्ध अर्थके मालूम हो जानेसे सांप्रत गूढ़ माने जानेवाले अन्य सिद्धान्त भी सरल एवं स्पष्ट हो जायँ तो कोई बड़ी बात नहीं है।

२. नवशिक्षितोंकी वेदोंसे उदासीनता

लेकिन आज कलके नवशिक्षित तो वेद शब्दसे ही चौंक उठते हैं। कइयोंने तो यह निर्धारित कर लिया है कि वेद

परिशिष्ट (घ)

व्यावहारिक शिक्षाका क्रम

प्रथम तीन वर्षोंके पाठ्य-क्रममें जो व्यावहारिक शिक्षाका स्वरूप होगा वह सैद्धान्तिक शिक्षाके साथ ही परिशिष्ट (ङ) में बताया है, [जो कर्कके अंकमें दिया जायगा। वि. स.] लेकिन यह ऐसा होना चाहिये जिससे उनके जीवनमें ठोस सहायता मिले। अतः प्रथम तीन वर्षोंमें उन्हें इस प्रकारके उपयोगी औज़ारोंके बनानेकी शिक्षा देनी चाहिये जिनसे बादमें वे रोटियाँ कमावेंगे और जब वे विद्यालयकी पढ़ाई समाप्त करें तब उनके बनाये हुए वे औजार, यदि वे चाहें तो, सस्ते मूल्यपर उन्हींको बेच दिये जावें। इस प्रकारके कुछ औजारों और यंत्रोंकी नामावली यहाँ दी जाती है—५ इंच सेन्टरकी फ्लाईह्वीलसे चलनेवाली खराद, ३ इंच सेटरकी पैरसे चलनेवाली खराद, खरादके चक, हाथसे चलानेकी बरमा मशीनें, हाथसे चलानेका रंदा और मिलिंग मशीनें, स्क्रू प्रेस, पैरका प्रेस, कापी प्रेस, हाईड्रालिक प्रेस, भट्टीमें हवा देनेका हाथका पंखा, बिजलीकी भट्टी, सब प्रकारके तैल, मिलिंग मशीनोंके डिवाईडिंग हैंड और कटर, टीन काटनेकी मशीने, पालिश करनेकी मशीनें और ड्रम, छोटे डायनियो और मोटर, खरादकी रुखानियाँ, बरमे, टैप, डाइयाँ, ठप्पे, फेस-प्लेट, लुहारोंके औजार और लोहा गलानेकी भट्टी आदि।

चौथे और पाँचवें वर्षके विद्यार्थियोंसे कारखानेमें व्यापारिक ढंगसे काम करवाया जाय और उनकी मज़दूरी आदिका हिसाब रखते हुए निम्नलिखित सामान बनवाया जाय।

साबुन और खाँड़ बनानेकी छोटी नौकरियोंके लिये आवश्यक यंत्र और औजार, खेतीके कामके यंत्र और औजार, रुई ओटने, बुनने, कातने और कपड़ा बुननेके घरेलू यंत्र और औजार, गोली और टिकिया बाँधनेके यंत्र, चूर्ण कूटने और छाननेके यंत्र, हवा निकालनेके भपके, मोजे और बनियाइन बुननेके यंत्र, कपड़ा सीनेके यंत्र, ग्रामोफोन आदि आदि बाजे, अन्य घरेलू यंत्र और फर्निचर इसके अतिरिक्त इस लेखके पृष्ठ संख्या १८ और १९पर दिया हुआ सामान भी उनसे अवश्य बनवाया जाय और उस सामानको जनतामें बेचनेके लिये प्रदर्शनगृह खोले जावें और विक्रेता रखे जावें जिससे वह विद्यालय बहुत कुछ अपना खर्च आपही निकाल ले।

ब्राह्मणोपजीविकाका साधन-मात्र है। वेदका नाम आया कि माथेपर बल पड़ जाते हैं। भौंह सिकुड़ने लगती हैं। एक तो उसकी भाषा सबसे पुरानी होनेसे क्लिष्ट होगयी है। दूसरे जिस विषयके ऊपर वेद कहे गये हैं वह समझमें आनेवाले विषयोंसे निराला है। इसीसे वेदका वास्तविक अर्थ उलझनमें पड़ा हुआ है। यद्यपि इसे सुलझानेके लिये अनेक ग्रन्थकार विद्वानोंने ध्यान दिया है। निरुक्तकार, उवट, महीधर, सायण आदि आचार्योंने भारी प्रयत्न करके अपनी टीका-टिप्पणियोंसे बहुत अंशका अर्थ भी लगाया है। वैसेही आधुनिक विद्वानोंमेंसे पाश्चात्य पंडित मैक्समूलर, वेबर, बार्थो, कोलब्रूक, बर्नाफ आदिने एवं पौर्वात्य पंडित स्वामी दयानन्द, पं० ज्वालाप्रसाद, शंकर, पांडुरंग, भागवत, तिलक, दीक्षित, मित्र, जयदेव शर्मा आदि विद्वानोंने भाषा-भाष्य आदि किये और औंध-संस्थानसे सातवलेकर प्रभृति विद्वान् सरल अर्थ करनेमें प्रयत्नशील हैं। तथापि वेदोंके वास्तविक विषयकी भिन्नताके कारण वेदोंका निश्चयार्थ अभी पूर्ण नहीं हुआ है।

३. वेदका मूलपाठ और उसकी व्यापकता

पदक्रम, जटा, घन आदिके पठन-पाठनकी विलक्षण-शैलीसे एवं धार्मिक श्रौतस्मार्त प्रयोगोंमें वेद-मंत्रोंका उपयोग करते आनेसे उसके मूल पाठको (शाखा भेद क्यों न हो) ईश्वर-रूप मानकर ब्राह्मणोंने हृदय कमलमें कंठस्थ रखते हुए लाखों वर्ष बीत जानेपर भी सुरक्षित रखा है। अर्थके संबंधमें भी ब्राह्मण, अरण्यक, श्रौत, गृह्य, धर्मसूत्र, वेदांग, उपनिषद्, स्मृति, भारत, पुराण ग्रंथ एवं दर्शन-शास्त्रकार अपने-अपने समयके अनुसार वेदके अर्थका स्पष्टीकरण करते आये हैं। इससे वेद वाङ्मयके लुप्त भागका अर्थ भी इन ग्रन्थोंकी सहायतासे—थोड़ा बहुत रूपान्तरित ही क्यों न हो - हमें उपलब्ध हो सकता है। इसी प्रकार वैदिक-ज्ञानकी व्यापकताके संबंधमें—जैन या धर्मसूत्र, बौद्ध-धर्म सूत्र, तथा जिंदावस्ता, ग्रीक व खालियनोंके इष्टका लेख, अत्यंत ऊँचे पिरामिड तथा प्राचीन आकाशीय-चित्र, दंतकथाएँ एवं जूना करार (बायबिल तथा कुरानशरीफ, आदि संसारके धर्म-ग्रन्थोंमें देश, काल, स्थिति एवं सभ्यताके भेदसे बहुतसा रूपान्तर होते हुए भी कई वैदिक बातें संसारके इतिहासमें व्याप्त हैं।

इसलिये अब यह प्रश्न उठता है कि आजतकके भारतीय एवं संसारके धर्म-ग्रन्थीय प्राचीन कथानकोंकी जिस शैलीसे एवं सभी अर्थ-प्रणालियोंसे जिस विषयको लेकर एक वाक्यता होती हो वही वेदोंका विषय है। और इसी विषयकी पूर्णतया संगति जिसकी मिलती हो वही वेदोंका वास्तविक अर्थ है।

इस वेद-वाङ्मय और उसके अर्थके पोषक ग्रन्थोंमें जब कि लाखों वर्षोंके हजारों ऋषियोंके एवं उसके बाद हजारों विद्वानोंके ज्ञान-विज्ञानका एवं तात्कालिक शोधोंका उपयोग होता आया है, तब उसे आज संसारका ज्ञान-भांडागार होना ही चाहिये। अतएव वह उत्कृष्ट और उपादेय है। उसके वास्तविक अर्थको स्पष्ट करनेसे संसारको अर्थात् मानव-जाति-मात्रको अकथनीय लाभ पहुँच सकता है। अतः अब मैं उदाहरण-स्वरूप कुछ वेद-मंत्रोंका अर्थ अपने मण्डल-द्वारा परिशोधित नव्य शैलीसे कर पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता हूँ और विद्वानोंसे प्रार्थना करता हूँ कि यह विषय बिलकुल नया होनेसे इसमें बहुतसी त्रुटियाँ होंगी, तोभी हंस-क्षीर-न्यायसे इसकी उपादेयता स्वीकारकर इस विषयकी एवं अर्थ करनेकी पद्धतिको अपनाकर इसे परिपूर्ण करें।

४. वेदमें गणितकी धारा-पद्धति

"एक याच दशाभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशतीश्च॥ तिस्रभिश्च वहसे त्रिंशताच नियुद्भिर्वाय विहता विमुञ्च"

— (वाजस् संहिता २७ । ३३)

"चतस्रश्चमेष्टौच—द्वादशच-षोडशच-विंशतिश्च-चतुर्विंशतिश्च-अष्टाविंशतिश्च-द्वात्रिंशच्च—षट्त्रिंश—चत्वारिंशच्च—चतुश्चत्वारिंशश्च—अष्टाचत्वारिंशश्च-मे—यज्ञने कल्पंताम्" ॥ (वा० सं० १८।२५) "पूर्वं पूर्व मुत्तरेणोत्तरेण संयुनक्ति०" (शतपथ ब्राह्मण ६।३।३।६)।

५. अन्वयार्थ

एकया-च—एकसे आरम्भ हो तो दशरेखाओंके शून्य तक **दशाभिश्च** दश अंकोंको **स्वभूते** ऊपरसे नीचे बढ़ते हुए क्रमसे लिखे **द्वाभ्यां** दोसे हो तो **इष्टये** अग्रिमांक छोटा हो तो पार्श्वमें एक बढ़ाता हुआ

विंशतिश्च दसवीं रेखा पर बीस लिखे **तिस्रभिश्च** तीन-से हो तो **त्रिंशता** तीस लिखे **च** ऐसे आगे **वहसे** शेष अंकों (४ । ५) के (४०।५०) आदि लिखे । **नियुद्भिः** विलोम क्रम (नीचे ऊपरकी रेखाओंपर जाने) के साथ **वायो विहिता** दसमेंसे कम करके (६ = ४), (७ = ३), (८ = २), (९ = १) इस प्रकार **विमुंच** अधिकांकके पार्श्वमें एक अंकको त्यागकर धारा बनावे ।

मंत्रोक्त धाराका उदाहरण			प्रस्तुत मंत्रोक्त पद्धतिसे (टेबल) अर्थात् उदाहरण रूप नवांकोंका व्यास								
एकका	चारका लोम	६=४का विलोम									
१	↓ ४	६	१	२	३	४	५	६	७	८	९
		↑	१	२	३	४	५				
२	८	१२	२	४	६	९	१	३	५	७	८
			↓	↓	↓	↓	↓				
३	१२	१८	३	७	०	३	७	०	३	६	७
४	१६	२४	४	९	३	८	२	७	१	५	६
५	२०	३०	६	१	७	२	८	३	९	४	५
६	२४	३६	७	४	०	७	४	०	७	३	४
७	२८	४२	८	६	४	१	९	७	५	२	३
८	३२	४८	९	८	७	६	५	४	३	१	२
		↑						↑	↑	↑	↑
९	३६	५४	११	१	१	१	१	१	१	०	१
		↑						४	३	२	२
१०	४०	६०	१२	३	४	५	६	७	८	९	०

सूचना

चाहे जिन अंकोंकी संख्या प्रथम पंक्तिमें रखकर दसवीं पंक्तिपर वही संख्या शून्य-युक्त रख देवें । ऊपरसे धारा १–५ अंक तक नीचेसे ऊपर धारा ६ से ९ के ४ से १ अंक बढ़ाता हुआ लिखता जाय । दूसरी पंक्तिकी धारामें—प्रथम पंक्तिका अंक बराबरका या छोटा हो तो—एक बढ़ावे । नीचेसे ऊपर (विलोम-विधिसे) बढ़ाना हो तो पार्श्वांक बड़ा होवे तो एक कम मिलाता जाय । इस प्रकार लिखित अंकोंके ताने-बाने बुननेसे—'धारा-पट' = 'अंकोंका टेबिल' —तैयार हो जाता है ।

धारा-पटका उपयोग

उक्त धारापद्धतिसे बड़ी संख्याका टेबिल ही उसका पहाड़ा बन जाता है । गुणाकार या भागाकारमें जहाँ लागरिथमिक (ल्याथिम्याटिकल) टेबिलके अंकोंसे अधिक अंकोंका उपयोग होता है वहाँ इस टेबिलसे सरलता पूर्वक कुछ मिनिटोंमें ही काम हो जाता है । खगोलीय गणित एवं कोष्ठक-निर्माण-कार्यमें तो इसका बहुत ही उपयोग हो सकता है ।

वर्गपट या वर्गमूलका टेबिल एकोत्तरीके मूलतत्त्व और रचनाकी विधि

वाजस संहिता (१८।२४) के मंत्रानुसार वर्गपट यों बनता है।

(०) प्रथम धारा		(१०) द्वितीय धारा	
मूलांक	वर्गाङ्क	१० के आगे	वर्गाङ्क
०	०		१००
एकाचमे	१	एक विंशति	२१
१	१		१२१
तिस्रश्चमे	३	त्रयो विंशति	२३
२	४		१४४
पंचचमे	५	पंच विंशति	२५
३	९		१६९
सप्तचमे	७	सप्त विंशति	२७
४	१६		१९६
नवचमे	९	एकोन त्रिंशत्	२९
५	२५		२२५
एकादश	११	एकत्रिंशत्	३१
६	३६		२५६
त्रयोदश	१३	त्रयस्त्रिंशत्	३३
७	४९		२८९
पंचदश	१५	(यज्ञेन-	३५
८	६४		३२४
सप्तदश	१७	कल्पंताम्)	३७
९	८१		३६१
एकोनविंश	१९		३९
१०	१००		४००
तिश्च			

प्रथम धारामें एकादिके पूर्व मंत्रोक्त लोम-विलोमांकोंके—१।४।९।६।५ अंकोंको लोम-विलोम विधिसे रेखापर लिखे एवं शून्यके स्थानपर दो शून्य रखकर मूलांकको लिखे। ९ अंकोत्तर एक बढ़ाता हुआ द्वितीय धारामें—

द्विगुणांकोंको एकोत्तरी (प्रथम पंक्ति) के साथ लिखता जाय तो अभीष्ट मूलांकोंके क्रमशः वर्ग तैयार हो जाते हैं।

सूचना—चाहे कितना ही वर्गांक हो उसके आगेके मूलांकोंका वर्गांतर एकोत्तर द्विगुण रहता है। वर्गांतरमें २।२ मिलाते जानेपर आगेके वर्गांतरों-द्वारा क्रमसे वर्ग तैयार हो जाते हैं। **'यज्ञेनकल्पन्ताम्'** "इस संगति-करणसे आगे भी अंकोंको कल्पितकरे"। इस कथनसे मंत्रकर्ताने इस एकोत्तरीकी रूप-रेखाको बतला दिया है।

वर्ग-पटका उपयोग

चाहे जितनी बड़ी संख्याके आगे सौ दो सौ अंकोंका क्रमशः वर्ग निकालना हो तो वर्ग-पटसे वह कार्य सरलता पूर्वक हो सकता है लागरिथममें तो टेबिल (पुस्तक) चाहिये और वह आसन्नमान आता है। इसमें अभीष्ट संख्याका वर्गपट २।४ मिनिटमें सरलता पूर्वक तैयार करके कार्य कर लिया जाता है। इसमें कोई अंक छूटता नहीं है। इसलिये यह मान शुद्ध है।

३—ऋग्वेदमें राशियोंकी चर्चा, चमस सूक्तकी ज्यौतिषात्मिका व्याख्या

ऋग्वेद सं० (२।३।४) मंडल १ सूक्त १६१ मंत्र १

"किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन् किमीयते दूत्यं कद्य-दूचिम॥ न निन्दिम चमसं यो महा-कुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुणइद्भूति मूदिम ॥१॥"†

अन्वयार्थ

उ इन चमसोंके प्रदेशमें किम् कौन राशि श्रेष्ठः

बड़े प्रमाणकी है, किम् कौनराशि यविष्ठः छोटे प्रमाणकी है और नः हमारेसे आ इनके पास क्या अजगन् आया है? किम् क्या ईयते गया है ? दूत्यं साहित्यिक बातें कत् क्या हैं ? यत् यह सब ऊचिम हम कहते हैं । चमसं चमसकी न-निंदिम हम निन्दा नहीं करते यः क्योंकि यह महाकुलः बड़ा कुलीन है (इसलिये) अग्ने-भ्रातः वृषभ राशिके तारोंकी संख्यासे द्रुणे वृश्चिकादि राशियोंमें इद्‌भूतिम् तुलनात्मक प्राप्तिको ऊदिम कहते हैं ।*

दूसरा मंत्र

"एकं चमसं चतुरः कृणोतन यद्वो देवा अब्रुवन्त द्व आगमम् । सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्य ज्ञियासो भविष्यथ ॥२॥†

अन्वयार्थ

एकं चमसं यज्ञपात्रोंकी मुख्य संख्या १५ को चतुरः कृणोतन चतुरस्रके (भुज ४ कर्ण ६) मानसे गुणा कर दो तो यत् जो कि (उश्च उश्च उश्च = वः) वो देवाः वृश्चिक, धन, मकर राशियोंके तारोंके संबंधमें प्रश्न अब्रुवन् पूर्व मंत्रमें पूछे गये हैं तत् उनका उत्तर (उ, उ, उ = वः) व आगमम् क्रमशः इसमें आगया है ॥ सौधन्वना धनुके आगे-पीछेकी राशियोंके साथ यदि, एव, आकरिष्यथ यदि मूल संख्या ६०,९० में चारका आगम निश्चित कर लोगे तो यज्ञियासः वृषभ-राशिके तारका संख्याके देवैसाकं तीन देवोंके साथमें तीनों राशिके तारोंकी संख्याकी समानतामें भविष्यथ तुम हो जाओगे ।*

प्रस्तुत ऋचाका भावार्थ-द्योतक समीकरण

मुख्य चमस संख्या	चतुरस्री करण								राशियोंके तारोंकी संख्या, नाम और उक्त प्रश्नोंके उत्तर			
१५ ×	४	=	६०	आगम	+	०	=	६०	बाजः	वृश्चिकराशिः	द्रुणः	यविष्ठः
१५ ×	६	=	९०	,,	+	४	=	९४	बिभुः	धन ,,	भूति	श्रेष्ठ
१५ ×	४	=	६०	,,	+	४	=	६४	ऋभुः	मकर ,,	,,	आगम

१५ × १४ = २१० इत्—३ = २०७ अग्निः वृषभ ॥ इत् अग्ने भ्रातः आकाश सौंदर्यमें तारोंकी संख्या यही लिखी है ।

चमस सोमपान पात्रका परिमाण यज्ञ पार्श्व ग्रथमें ४।६ अंगुलका लंबा चौड़ा एवं उन पात्रोंकी मुख्य संख्या १५ लिखी है ।

मंत्र ३ ऋचा ६

"इन्द्रो हरि युयुजे अश्विनारथं-
बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ॥
ऋभु विश्वा वाजो देवाँ अगच्छत
स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥३॥

अन्वयार्थ

इन्द्रः भरत नामक (वृषभ राशिके) इंद्रने हरी अपने रथके अश्वोंको युयुजे नर तुरंग (वृश्चिक राशि) में एवं धनराशिमें युक्त कर दिया अश्विना मेष राशिके अश्विनी कुमारोंने रथम् अपने रथको धन-राशिके यहाँ छोड़ दिया बृहस्पतिः पुष्य नक्षत्र देवता बृहस्पतिने विश्वरूपां अपनी कर्क राशिके तुल्य उप यहाँ धनिष्ठा नक्षत्राकृतिमें आजत युक्त कर दिया है, इससे ऋभुः मकर राशि विश्वा धनराशि वाजः वृश्चिक राशि देवान् वृषभ राशिके तारोंकी तुल्यतामें अगच्छत प्राप्त हो गये हैं । इससे स्वपसः तीनों राशियोंकी दीप्तिसे यज्ञियं भागं वृषभ राशिके यज्ञिय विभागमें आ इस प्रकार इतन प्राप्त हो गये हैं ।*

---

* इस संबंधके चित्र देखिये । 'सूयदश्वं वसवो निरतष्ट, 'हरिणस्य बाहू उपस्त्युत्यम्' (ऋ० सं० २।३।११) वसु—(धनिष्ठा) के निकटमें अश्वपुञ्ज तथा मकर राशिको मृग मुख्य एवं हरिणके बाहु लगे हुए स्पष्ट दीखते हैं, तथा कर्क राशिकी आकृतिके तुल्य धनिष्ठा पुञ्ज स्पष्टतया दीखता है ।

मंत्र ४ ऋचा ७

"निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या-
जरन्ता युवशाता कृणोतन ॥
सौधन्वना अश्वादश्व मतक्षत
युक्त्वारथमुप देवाँ अयातन ॥४†॥"

अन्वयार्थः—

निश्चर्मणो गाम् भरत पुंजके हाथमेंके मृगचर्मके शिरको धीतिभिः मकर राशिके साथ अरिणित् यथा योग्य लगा दिया है यौ जरन्तौ मृगचर्मके चारों पावों-मेंसे लटकते हुए दो पावँ तौ–युवशौ–अकृणोतन यहाँ मकर राशिके अगाड़ी लगानेसे वही दोनों पावँ स्पष्ट किये गये हैं। सौधन्वना अश्वात् धन राशिके अश्व कलेवर पर सूर्यका पंगु अरुण बैठनेसे उस अश्वके अश्वं अश्व शिरको वसु (धनिष्ठा) देवताओं-ने अपने पास अतक्षत अलग करके अपनेमें युक्त कर लिया है। इसलिये अब आप रथंयुक्त्वा विच्छिन्न अवयव वाले धन राशि विभागके रथको जोड़ करके उपदेवान् भरतके स्थानेके तुल्य (तीन तारोंके श्रवणके) तीन देवोंकी तुल्यतामें अयातन प्राप्त हो सकते हैं।*

"यद् ऋंदः प्रथमं जायमानऽउद्यन्त्समुद्रा दुतवा पुरीषात् ॥ श्येनस्य पक्षा हरिणस्य वाहूऽउपस्त्युत्यं महिजातन्तेऽअर्वन् ॥ १ ॥ यमेन दत्तं त्रितऽएन मायु-नमिन्द्रऽएणं प्रथमोऽध्यध्यतिष्ठत् ॥ गंधर्वोऽअस्य रशनाम गृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतिष्ठ ॥ २ ॥ (ऋ० सं० २।३।११ मं० १।५४।१२ ?)

अन्वयार्थ—

अर्वन् हे अश्व ? यत् जो आपका अक्रंदः जलचर (मकरराशि) का स्वरूप है सो उद्यन्त्समुद्रात् दिव्य समुद्र वरुणालयसे उतवा पुरीषात् वर्चस् (आपः) देवता तकके प्रथमंजायमानः विस्तारमें फैला हुआ है। श्येनस्य पक्षा श्येनके पंखोंके साथ हरिणस्य बाहू मृगके बाहु आपको लगे हुए हैं सो यह ते तुम्हारे महिजातं स्थलचर स्वरूपको उपस्तुत्यम् दर्शाते हुए महिमा बढ़ाते हैं ॥ १ ॥

यमेन यम पुंजका दत्तं दिया हुआ त्रितः (बकः का रंडव, और मयूर) तीन पक्षियोंका पुंज एनं इसको आयुनक मिला हुआ है इन्द्रऽएणं भरत इन्द्रका (मृगशिर प्रथमः, अधि, अधि, अतिष्ठत् मुखकी तरफसे (इसको) लगा हुआ है। गन्धर्वः गंधर्वाकृति कुंभ राशिने अस्य इस मकर-मृगकी रशनां कमरमें बँधी हुई रस्सीको अगृभ्णात् पकड़ रखा है। सूरात् अश्वं धन राशिके अश्वके शिरको वसवः, निरतिष्ठ वसु (धनिष्ठा) देवताओंने अपने पास ले लिया है ॥ २ ॥

साहित्यिक बातें

शब्द रहित जलचर रूपमें शब्दकारी स्थलचर गरुड़ और त्रिक पक्षियोंका कोलाहल बताया है। अपद मकरको चतुष्पाद मृगके दो बाहु बताये हैं। ढोलको लिये कुंभ राशिके हाथमें इसके कमरकी रस्सी और धन राशिके अश्व-का सिर इसके पास बतलानेसे ऊपर लिखे चमस सूक्तकी पूर्ति इसकेद्वारा होते हुए धन मकर कुंभकी संलग्नता निश्चित होती है। यहाँ वाचक लुप्तालंकार है।

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे-रजाँसि ॥ योऽअस्कभाय दुत्तर ँ सधस्थं विचक्रमाण स्त्रेधो-रुगायः ॥ १ ॥ (ऋक्संहिता २।२।२४ मंडल १ सूक्त १५४), (काण्व संहिता ५।६) वाजस् संहिता ५।१८)*

---

† चमस सूक्तके इन मंत्रोंका अर्थ भागलपुरके सुल्तानगंजकी वैदिक पुस्तकमालामें इस प्रकार दिया हुआ है—

१—"जो हमारे पास आये हैं, वह क्या हमसे जेठ हैं या छोटे, ये क्या देवोंके दूत-कार्यके लिये आये हैं? इन्हें क्या कहना होगा? इन्हे कैसे पहचानेंगे? माता अग्नि, हम चमसकी निन्दा नहीं करेंगे; क्योंकि वह महाकुलमें उत्पन्न है। उस काष्ठमय चमसकी स्मृतिकी हम व्याख्या करेंगे।"

२. (अग्निने कहा)—सुधन्वाके पुत्र, एक चमसको चार बनाओ —देवोंने यह बात कहकर मुझे भेजा है। मैं तुम्हें कहने आया हूँ। तुम लोग यह कार्य कर सकते हो और ऐसा करनेपर तुम लोग देवोंके साथ यज्ञांश भागी बनोगे।"

"३. इन्द्रने अपने अश्वोंको सजाया, अश्विनाकुमारोंने रथ तैयार किया, बृहस्पतिने विश्वरूपा गौको स्वीकार किया। इसलिये हे ऋभु, विभु और वाज, तुम देवोंके पास गमन करो। हे पुण्यकर्त्ता लोग, तुम यज्ञ-भाग ग्रहण करो।

* भागलपुरवाली ऋग्वेद संहितामें इस मंत्रका अर्थ यों दिया है—

अन्वयार्थ

विष्णोर्नु कं नराकार विष्णुके वीर्याणि चरित्रोंको प्रवोचं कहता हूँ कि यः जिसने पार्थिवानि रजांसि पृथ्वी-के रज कणों (के तुल्य आकाश गंगा) को विममे बनाया है। यः जो उरुगायः श्रोण (छोटा) रूप होते हुए भी त्रेधा विचक्रमाणः तीन रूपका तीन प्रकारसे घूमता हुआ उत्तरं सधस्थं उत्तरीय ध्रुव स्थानको अस्कभायत् घूमनेसे थाम रखा है। दूसरा मंत्र काण्व सं. (५।७) में और वाजस सं. (५।१९) में है। दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ॥ उभाहि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणा दोत सव्यात् ॥ विष्णवेत्वा ॥ २ ॥

अन्वयार्थ

दिवः ऊपरके विभागमें वा गरुड़रूप विष्णः विष्णु है। उत ऐसेही पृथिव्याः नीचेके विभागमें वा बामन रूप है। इसीके उरोः उरस्थलके अंतरिक्षात् मध्याकाशमें महः वा महान् तेजस्वी (तारा) रूप विष्णुः विष्णु है। इस विष्णु (वामन) के उभौ दोनों हि ही हस्तौ हाथ वसुनौ वसु (धनिष्ठा) के तरफ झुके हुए पृणस्थौ गरुड़ पत्ताच्छादित फैले हुए हैं। आ इसलिये तुम दक्षिणात् दाहिनेसे उत ऐसैही सव्यात् बाएँसे (वसुको) प्रयच्छ पकड़लो ॥ विष्णवेत्वा ऐसा तुम्हारा वर्णन विष्णुके लिये है ॥

"मैं विष्णुके वीर-कार्यका शीघ्र ही कीर्त्तन करूंगा। उन्होंने वामनावतारमें तीनों लोकोंको मापा था। उन्होंने ऊपरके सत्यलोकको स्तंभित किया था। उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था। संसार उनकी बहुत स्तुति करता है।"

अर्थकी विशेषता और उपयोग

इस लेखके साथ आकाश सौंदर्यमें लिखा हुआ शार्ङ्ग-पाणि नामक विष्णुका चित्र दिया है। वैदिक ग्रंथ एवं तैत्तिरीय संहिता (४।४।१०।२) में श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्रोंको विष्णु तथा वसु देवता कहा है। विष्णुसूक्तोक्त संपूर्ण मंत्रोंका अर्थ अन्य किसी रीतिसे पूर्णतया नहीं मिलता। प्रस्तुत चित्रको मिलाकर देखनेसे ही ठीक ठीक मिलता है। पुराण ग्रंथोंमें भी विष्णुपादप्रभूता गंगा, विष्णु पदपर ध्रुवस्थिति आदि कुल वर्णन उक्तार्थ को पुष्ट करता है। इसलिये हमारा परिशोधित खगोलीय अर्थही वास्तविक अर्थ है।

अश्वेन → वाजिना → नीयते →
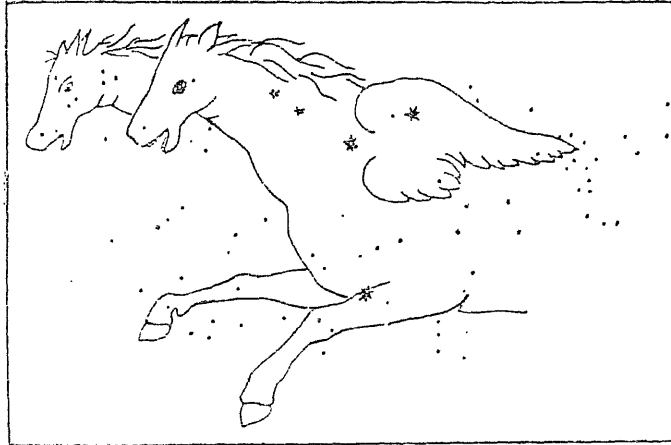
[आकाश सौंदर्यसे उद्धृत चित्र ३१]
उच्चैश्रवा

शार्ङ्गपाणि (पुंज)

आकाश-सौंदर्यसे उद्धृत चित्र ३७

एषच्छागः — पूष्णा भागः — पुरः —
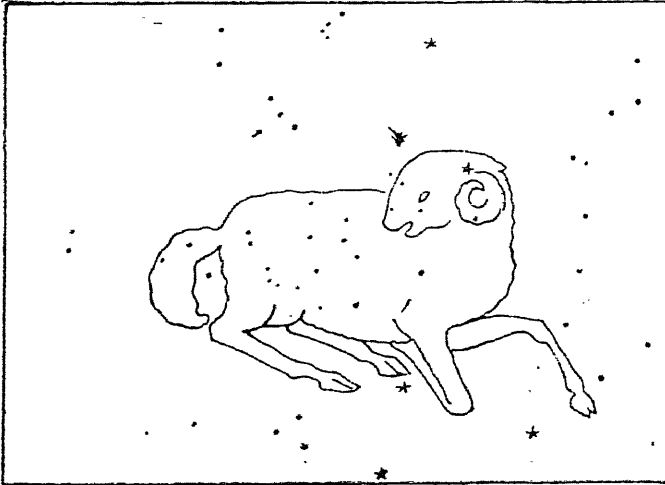
आकाश-सौंदर्यसे उद्धृत चित्र ३८

मेषराशि

विश्वे देव्य

ऋ. सं. २ । ३ । ८

उत्तराषाढ़ाश्रवण धनिष्ठा-नक्षत्र-विभाग।

एषच्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्व देव्यः (ऋ० सं० २।३।८ मं० १।१६२।३) *

अन्वयार्थ

विश्व देव्यः उत्तराषाढ़ा नक्षत्रके विश्वेदेव तारका पुंजका एषः यह पूष्णोभागः रेवतीपुंजके तुल्य विभाग अश्वेन वाजिना अश्व पुंज और उच्चैश्रवा द्वारा छागः पुरः मेष राशिके आगेके विभागमें नीयते ले जा सकते हैं। अर्थात् ९० अंशपर उत्तराषाढ़ा रेवतीका सादृश्य निश्चित किया जाता है।

* भागलपुरवाली ऋग्वेदसंहितामें इस मंत्रका अर्थ इस प्रकार दिया है—

"सब देवोंके लिये उपयुक्त छाग पूषाके ही अंशमें पड़ता हैं। उसे शीघ्रगामी अश्वके साथ सामने लाया जाता है। अतएव त्वष्टा देवताके सुंदर भोजनके लिये, अश्वके साथ, इस छागसे सुखाद्य पुरोडाश तैयार किया जाय।"

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

वेदोंमें राशियोंकी चर्चा—पाश्चात्यवैदिक विद्वानोंकी धारणा है कि वेदोंमें राशियों और सप्ताहके वारोंकी कहीं चर्चा नहीं है। अतः हिन्दू ज्यौतिषमें राशियों और वारोंका समावेश सुमेरी सभ्यताके प्रभावसे हुआ है। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि बारहों राशि और सप्ताहके सातों दिन वैदिककालसे आर्य्योंको मालूम न थे और यह कि हमारे पूर्वजोंने यह बातें पच्छाहँसे सीखी हैं। उनकी इन धारणाओंको सर्वथा सत्य मानकर हमारे देशके विद्वान् भी यही बातें दोहराते आये हैं। वेद-मंत्रोंके अर्थ जो प्रसिद्ध पाश्चात्य और प्राच्य भाष्यकारोंने किये हैं वे स्वयं ऐसे दुरूह और असंगत है कि न तो उनका मर्म्म समझमें आता और न प्रसंगसे उनकी संमति ठीक-ठीक बैठती है। उनके ठीक ही अर्थ होनेका कोई प्रमाण नहीं है। ऐसी अनिश्चित और संदिग्ध व्याख्याओंके आधारपर आर्य्योंके ज्ञानके सम्बन्धमें उलटी सीधी मनमानी धारणाओंकी दीवार खड़ी करके कल्पनाके ऐसे महल पाश्चात्योंने उठाये हैं कि उन्हें देखकर अपनी गाँठकी पूँजी न रखनेवाले सहज ही मोहित हो गये हैं और उनकी प्रशंसामें आतुर हैं। हमने इस अंकमें चुलैटजीका एक लेख अन्यत्र दिया है। उन्होंने चमस सूक्तकी जो व्याख्याकी है, विलक्षण है। परन्तु उसमें संगति है। शब्दके अर्थ भी ठीक ही जँचते हैं। हमने पं० रामगोविन्द त्रिवेदी आदि विद्वानोंके किये हुए अर्थ भी पादटिप्पणीमें तुलनाके लिये दे दिये हैं। यह अर्थ ऐतिहासिक हैं। विज्ञानके पाठक देखेंगे कि श्री चुलैटजीकी व्याख्याके अनुसार वेदकालके ऋषियोंने प्रत्येकराशिमें स्थित तारापुंजकी संख्या भी गिन ली थी और यही संख्या आज भी ठीक मानी जाती है, इसलिये राशियोंका ज्ञान पच्छाहँको भी भारतके आर्य्योंसे ही हुआ है और आर्य्योंने पच्छाहँसे यह बात नहीं सीखी है। —रा० गौ०

वेदोंमें गणित—यज्ञ वेदिका सुपर्णचितिकी रचना आर्य्योंके गणितके अच्छे ज्ञानका साक्ष्य है। वेदके छः अंगोंमें कल्पसूत्र छन्द और ज्यौतिष ये तीन अंग गणितपर निर्भर हैं। रेखागणितका बीज शूल्वसूत्रोंमें मौजूद है। छन्दोंका वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं निर्म्माण गणितके ही आधारपर है। ज्यौतिषके लिये तो कहना ही क्या है। अतः यदि गणितके नियम वा पटका निर्देश वेद-मंत्रोंमें पाया जाय तो कुछ भी आश्चर्य्यकी बात नहीं है। लागरिथमके पहाड़ोंका निर्म्माण विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें ही हुआ है। परन्तु चुलैटजी उसी तरहके पहाड़ोंका बीज एक वेदमंत्रमें दिखलाते हैं। चुलैटजीका अनुसन्धान बड़े महत्वका है। विशेषज्ञोंको आमंत्रण है कि इस अनुसन्धानपर स्वतंत्र रूपसे विचार करें। —रा० गौ०

बनावटी योनिसे बच्चे पैदा करना—हिन्दू-पुराणोंका कहना है कि सृष्टिको बढ़ाना विधाताको इष्ट था, इसीलिये उन्होंने भाँति-भाँतिसे उसको बढ़ाया। मानसिक पुत्र भी इसी वृद्धिके लिये पैदा किये। जब देखा कि जिन लोगोंको हमने जाति बढ़ानेके लिये उपजाया वह बढ़तीकी ओर प्रवृत्त नहीं होते तो विषय-सुख पैदा किया, कामवासना उपजायी, जिससे प्रेरित होकर नरनारीका संयोग हो रजवीर्य्य मिलकर गर्भाशयमें नयी व्यक्ति बनावें। मुख्य उद्देश्य यही था कि जातिकी रक्षा हो, सन्तान अर्थात् फैलाव हो, परन्तु इस फैलाव या सन्तानके काममें लगनेके लिये ही विषय सुख रखा गया है। भोजनमें स्वाद और तोष है, प्राणी अपने तर्पणके लिये खाता है। परन्तु प्रकृति उसे पचाकर खानेवालेकी आत्मरक्षाका साधन बनाती है।

"भोजन करिय तृप्ति हित लागी।
जिमि सो असन पचव जठरागी॥"

उसी तरह प्राणी सहवास तो तज्जनित सुखके लिये करता है परन्तु प्रकृति उससे सन्तति उत्पन्न कराकर जातिरक्षाका साधन बनाती है। आत्मरक्षा और जातिरक्षा, वैष्णवी प्रकृतिके ये दो मुख्य उद्देश्य हैं। विषय-सुखद्वारा ही स्वभावतः इन उद्देश्योंकी पूर्त्ति चराचरमें होती रहती है। प्रकृतिके इस उद्देश्यको समझकर वैज्ञानिकोंने सन्तान-कार्य्यमें अनेक सफल प्रयोग किये हैं। हालमें ही अमेरिकामें रजवीर्य्यको एक नलिकामें रखा और उसके पोषण और वृद्धिकी सामग्री भी बराबर पहुँचाते रहनेका प्रबन्ध कर

साहित्य-विश्लेषण

युग-परिवर्त्तन, अर्थात् कलियुगका अंत और सतयुगका प्रारंभ—ग्रंथकर्त्ता—

ज्योतिर्भूषण, गोपीनाथ शास्त्री चुलैट, प्रकाशक सावंतराम रामप्रसाद फर्मके मालिक अकोला निवासी बाबू कृष्णलाल गोयनका। प्रथमावृत्ति, मूल्य २) डिमाई अठपेजी २१६+३०=२४६ पृष्ठ हैं। पोथा सचित्र है। जिल्द सुंदर और टिकाऊ।

इस ज्यौतिष ग्रंथमें जिसक्रान्तिकारी विषयका प्रतिपादन है, नामसे ही प्रकट है। ग्रंथकारने लिखा है कि युग-परिवर्त्तनको उन्होंने ध्यानमें देखा और भगवतसाक्षात्कारसे मालूम किया। उनके पिता पं० दीनानाथ शास्त्रीको भी उसी कालमें परन्तु भिन्न देशमें ठीक-ठीक वैसा ही अनुभव हुआ। यह भी उन्हें आश्वासन मिला कि तुझे सतयुगके प्रभावसे वेदार्थ भी अवगत हो जायँगे। उस घटनाके अनन्तर उन्हें युगपरिवर्त्तनके सब तरहके प्रमाण भी मिले और वेदार्थका भी अनुभव हुआ। शास्त्रीजीने युगपरिवर्त्तनके विषय-पर इस ग्रंथमें पूरा विचार किया है और यह मालूम किया है कि कृतयुगकी संधि विक्रम संवत् १९८२की पौष-अमावास्याको, सन् १९२४के २६ दिसम्बरको सूर्यचन्द्र गुरुके साम्य-योग कालसे आरंभ हो गयी है। यह तो ग्रंथका निचोड़ है। इस विषयपर विचार करते हुए इस ज्यौतिष-ग्रंथमें विस्तारसे दिखाया है कि कलियुगमें धर्मके नामपर क्या क्या अधर्म्म फैले थे, कौन-कौनसे उचित और निर्दोष काम भी वर्जित थे, किस प्रकार क्षेपकों-द्वारा भ्रम फैलाये गये किस प्रकार युगोंकी मर्य्यादा और मनुष्यकी आयुके सम्बन्ध-में ज्यौतिषमें भी भूलें की गयीं, संस्कारोंके पुराने आदर्श विस्मृत हो गये, वेदार्थका लोप हो गया, लोग आचार-भ्रष्ट हो गये। इन बातोंका विस्तारसे दिग्दर्शन करके आपने वेदोंके प्रमाणसे तर्कसंगत और विज्ञानानुकूल बातोंका बड़ी योग्यतासे प्रतिपादन किया है। वैज्ञानिक दृष्टिसे युगान्तरकी नेवँ तो सौ बरस पहले ही पड़ी जबसे भाफ, बिजली और अग्निके बलसे विज्ञानने काम लेना शुरू किया। देशकाल संकुचित हो गये। वैज्ञानिकोंकी समझमें भी तभी युगान्तर आरंभ हुआ जब शास्त्रीजीके अनुसार कलि-कृत-संधिकालका आरंभ हुआ। वेदकाल-निर्णयकी तरह यह ग्रंथ भी धार्मिक दृष्टिसे क्रान्तिकारी है और महत्त्वपूर्ण खोजका फल है। ज्यौतिष-विज्ञानके प्रेमी धर्म्म-प्राण हिन्दू इसे अवश्य पढ़ें और इन खोजोंपर विचार करें। —रा० गौ०

डाबर का पंचाग संवत् १९९१ वर्ष ५१

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि० कलकत्ता। सचित्र। अमूल्य।

डा० बर्म्मनके प्रसिद्ध दवाखानेसे हर साल एक पंचांग निकलता है जो बिना मूल्यके मिलता है। इस पंचांगकी विशेषता यह है कि इसमें संवत् १९९१ के पूरे पंचांगके सिवा भारतके प्रधानतीर्थ, रत्नोंके धारण करनेका फल, ग्रीष्मके स्वास्थ्यप्रद स्थानों की सूची, दशकर्म्म, मुहूर्त्त और कई सुन्दर सुन्दर पौराणिक चित्र भी हैं। और डाबर दवाखानेका विज्ञापन तो है ही। ऐसी उपयोगी अनमोल चीजको कौन न लेना चाहेगा। —रा० गौ०

दिया। फलतः उचित समयपर बच्चे हुए और वह जीवित हैं। इस प्रयोगने पत्रोंमें हलचल मचा दी है। लोग भाँति-भांति के अनुमान कर रहे हैं। परन्तु वे इस बातको भूल जाते हैं कि ऐसे कृत्रिम प्रयोग कितने कठिन हैं और स्वाभाविक विधि कितनी सरल और सुभीते की है। जैसे कृत्रिम सोना हीरा आदि स्वाभाविक रत्नोंसे कहीं अधिक महँगे पड़ते हैं उसी तरह यह कृत्रिम जनन भी ऐसा महँगा पड़ेगा कि इससे प्रकृतिकी अभीष्ट-सिद्धि नहीं हो सकती। ऐसे द्राविड़ी प्राणायामसे सृष्टिका काम न चलेगा। कामवासना तो विधाताकी रचना है। इसका दुरुपयोग इन विधियोंसे अवश्य ही हो रहा है और होता रहेगा। हाँ, इन प्रयोगोंसे यह जरूर सिद्ध होता है कि बिना नरनारीके संयोगके अथवा बिना गर्भाशयमें प्रसवकालतक सुपालनके बच्चोंका पैदा होना जो पुराणोंकी अनेक कहानियोंमें मिलता है उसे कोरी गप समझ लेनेका हमें कोई अधिकार नहीं है। अगस्त्य और वसिष्ठका घड़ेसे पैदा होना या सगरके साठ हजार पुत्रोंका घीके घड़ोंमें पालन असंभव नहीं है।

रा० गौ०

सबके लिये सरल बढ़ईगीरी

पूर्ण संख्या २३१ —*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708.

भाग ३९ | मिथुन संवत् १९९१ | संख्या ३

Vol. 39 | जून, १९३४ | No. 3.

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०, (गणित और भौतिक-विज्ञान)

रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीव-विज्ञान) श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी०, (जंतु-विज्ञान)

श्रीरंजन, डी० एस्-सी, (उद्भिज्ज-विज्ञान) सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

प्रयागका विज्ञान-परिषत्के पदाधिकारी

संवत् १९९०-१९९१ वि०

विशेष दृष्टव्य

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत् तथा वैज्ञानिक साहित्य-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये।

विषय-सूची

बजरंगबली गुप्त विशारदने बनारस जालिपादेवीके श्रीसीताराम प्रेसमें छापा
और मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावन विहारीसिंहने प्रकाशित किया।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३९ } प्रयाग, मिथुन, संवत् १९९१ । जून, १९३४ } संख्या ३

मंगलाचरण

(ले० स्व० पं० श्रीधर पाठक)

जय भुवि मंगल, जय नभ मंगल — जय भुवि नभग सुभग जग मंगल
जय जल मंगल, जय थल मंगल — जय जल-पटल, अटल नग मंगल
जय तृण मंगल, जय तरु मंगल — जय मरु मरुत सरित सर मंगल
जय धन मंगल, जय जन मंगल — उपवन, भवन, विपिन-वर मंगल
जय अणु मंगल, जय कण मंगल — जय अनगणित, कनक, मणि मंगल
जय नर मंगल, जय त्रिय मंगल — जय प्रिय प्रणय प्रणत प्रणि मंगल
जय कलि मंगल, जय मल मंगल — कलिमल-जनित, प्रकृति-थिति मंगल
जय कृति मंगल, जय धृति मंगल — जय कृति-विकृति-विहित इति मंगल

जल-पटल=बादल; नग=पहाड़; प्रणि=प्राणिजन; कृति=सृष्टि; धृति=स्थिति; इति=प्रलय ।

वैज्ञानिक युगान्तर *

[प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम्-एस्-सी पूर्व सम्पादक विज्ञान]

१–इतिहास का प्राचीन युग

इतिहासके प्रेमी इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि प्रत्येक कालमें एक विशेष प्रकार के विचारोंका प्रचार होता है, जो किसी देशसे फैलने आरम्भ होते हैं और शनैः शनैः सारे संसारपर अपना रङ्ग जमा लेते हैं। भारतवर्षमें ही इस कथनके समर्थनमें अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। आजसे लगभग २५०० वर्ष पहले भगवान् बुद्धने अपने जगत्विख्यात धर्मका उपदेश काशीमें किया। थोड़े ही दिनोंमें वह धर्म दूर-दूरतक फैल गया और सभ्य संसारका बहुत भाग उसके रङ्गमें रङ्ग गया। बौद्धमतका ज़ोर सातवीं शताब्दीतक बना रहा। पन्द्रहवीं, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें भारतमें वीरताकी वह ज्योति जागी, जिसकी अद्वितीय द्युतिके सामने इतिहास प्रसिद्ध शूर वीरोंका यश फीका पड़ गया। जो वीरताके काम राजपूत योद्धाओं और रमणियोंने उस कालमें कर दिखाये, वैसे आजतक सुननेमें न आये और आशा है कि न आवेंगे ही।

अतएव विक्रमसे ६०० वर्ष पूर्वसे, उसके ६०० वर्ष पीछेतकके कालको बौद्धकाल और पन्द्रहवीं शताब्दीसे अठारहवीं शताब्दी तकके समयको राजपूत-वीरताका काल कहना अनुचित न होगा। इङ्गलेण्डमें महारानी एलीज़िबेथके शासनकालमें जितने उच्च कोटिके नाटककार होगये और अपूर्व नाटक-निर्माण कर गये, वैसे फिर न हुए। अकबर शाहके राज्यमें, तुलसीदास, नन्ददास, सूरदास आदि आर्य-भाषाके जैसे अद्वितीय कवि हो गये, उनके समान कवि पैदा होने मुश्किल हैं। आज कल ही देखिये, बँगला-साहित्य-में कविता, आख्यायिकाओं और नाविलोंका ज़माना है। कवि शिरोमणि जगद्विख्यात रवि बाबूकी अनुपम कविता, बंकिमके अपूर्व उपन्यास, गिरीशचन्द्रके मनोहर नाटक आदि इसके प्रमाण हैं। हिन्दी-साहित्यमें कविता, नाटक और नाविलोंका ज़माना नहीं। आज कल जितने मौलिक ग्रन्थ हिन्दी में निकलते हैं, वह गूढ़ और मनन-योग्य विषयोंपर ही निकलते हैं। हिन्दीमें आजकल कोई उच्च कोटिका कवि नहीं, अच्छा उपन्यास लेखक नहीं, नाटककार तो नाम लेने-को नहीं, तो इससे हिन्दीके प्रेमियोंको हताश न होना चाहिये। आज कल हिन्दी अपने एक अंग विशेषकी पूर्त्तिमें लगी हुई है, इस अंगके पुष्ट होजानेपर और बातोंका समय आयगा।

२–विज्ञानका अंकुर

जो कुछ अबतक कहा गया है उसका सारांश यही है कि प्रत्येक कालका लक्षण एक विशेष प्रकारकी विचार-प्रणाली होता है। लगभग छः सौ वर्ष हुए कि भारतवर्षमें तांत्रिक मतके अनुयायियोंने ऐसीही एक विचार-प्रणाली-का बीज बोया। उस बीजसे एक मनोहर वृक्ष उत्पन्न हुआ, परन्तु हाहन्त, वह फलने फूलने भी न पाया था कि थोड़े ही दिनोंमें यहाँकी सर ज़मीन, यहाँका प्रदेश, विदेशीय आक्रमणों, राजनैतिक अशान्ति और आपसके झगड़ोंके कारण उसके प्रतिकूल हो गया और वह मुर्झाने लगा। परन्तु, जिन विदेशियोंने, देशमें अशान्तिकी आग भड़का दी थी, उनकी नज़र इस अनुपम वृक्षपर पड़ी। उन्होंने उसकी क़द्रदानी की। कुछ टहनियां काट लीं और उन्हें बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे यहाँसे ले गये और अपने देशमें जा लगाया। वहाँ उसकी वह परिवरिश की कि बहुत विस्तृत हुआ और फलने-फूलने लगा। उन्होंने उसकी पौध यूरोपके प्रान्तमें पहुँचायी, जहाँकी आबोहवा (जल-वायु) उसके बहुत मुआफ़िक आयी और उसने यथेष्ट वृद्धि पायी।

यही विचार-शैली है जिसको कि हम विज्ञान कहते हैं। आज उस विज्ञानका ऐसा महत्व है, उसका ऐसा प्रभाव है, कि मनुष्यके ज्ञानके अन्योन्य बिभागोंपर,

* यह व्याख्यान प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव ने २२ नवम्बर, १९१६ को परिषत्के छठे अधिवेशनमें दिया था। लगभग ५० चित्र भी दिखलाये थे।

विषयोंपर भी उसका साम्राज्य स्थापित हो गया है ?

३—विज्ञान है क्या ?

प्रायः यह समझा जाता है कि विज्ञान एक विषय विशेष है, परन्तु ऐसा समझना बड़ी भूल है। विज्ञान वस्तुतः, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, एक विचार-शैली या अध्ययन-प्रणाली है। इस शैलीके अनुसार किसी भी विषयका-अध्ययन किया जा सकता है। यही कारण है कि क्रमशः एक-एक करके विषय विज्ञानके वर्द्धमान क्षेत्रके अन्तर्गत आते जाते हैं। पहले विज्ञानमें केवल, भौतिक-शास्त्र और रसायन-शास्त्र ही सम्मिलित समझे जाते थे। कुछ दिनों बाद प्राणि-विद्या, गणित और ज्योतिष शामिल-हो गये। आज कल तो अर्थशास्त्र, इतिहास, दन्तकथा (किस्से कहानियाँ) आदि अनेक विषय विज्ञानके विभाग-समझे जाते हैं। इसका कारण यही है कि वैज्ञानिक विधिसे जबतक कि किसी विषयका अनुशीलन और प्रतिपादन नहीं किया जाता, तबतक बुद्धिमान मनुष्योंको सन्तोष और विश्वास नहीं होता। इतिहासका ही उदाहरण लीजिये। २० वर्ष पहलेके रचे हुए ग्रन्थोंकी तुलना हालके लिखे हुए ग्रन्थोंसे कीजिये। दोनोंमें आकाश और पाताल-का-सा अन्तर दिखायी देगा। पहले ज़मानेमें घटनाओंका उल्लेख कर देना भर इतिहासकारका कर्तव्य समझा जाता था। अब प्रमाण देना, उल्लिखित घटनाओंके सत्यासत्य विवेचनमें किन उपायोंका आयोजन किया गया है, इत्यादि बातें बतलाना भी आवश्यक समझा जाता है।

विज्ञानका महत्व और प्रभाव यहाँतक बढ़ा हुआ है कि धर्मने भी विज्ञानके सामने मस्तक झुका दिया है और अन्योन्य धर्म अपने अस्तित्वके लिये विज्ञानका सहारा ढूँढ़ रहे हैं।

विज्ञानका यह विस्तृत और सर्वदेशीय प्रभुत्व देखकर ही वर्तमान युग वैज्ञानिक युगान्तर कहलाता है।

जबसे मनुष्यकी बुद्धिका विकास आरम्भ हुआ तभीसे विज्ञानका आरम्भ समझना चाहिये। परन्तु प्रयोगात्मक विज्ञानकी उन्नति बड़ी शीघ्रताके साथ पिछले ५० वर्षोंमें ही हुई है। मनुष्यके सत्यके ढूँढ़ निकालनेके प्रयत्नके तीन रूपान्तर प्रत्येक देशमें देखनेमें आते हैं। पहला रूपान्तर या अवस्था वह है जिसमें मनुष्य केवल एक बातका ख़याल रखता है कि एक विश्वास दूसरेके विरुद्ध या विपरीत न हो। दूसरी अवस्था वह होती है जब मनुष्यकी सत्यासत्य-निर्णय करनेकी कसौटी धार्मिक विश्वास होती है। जो बात धार्मिक विश्वास के—चाहे वह विश्वास सच्चा हो या झूठा—विरुद्ध या प्रतिकूल हुई वह झूठी समझी जाती है। तीसरी अवस्था वह है जिसमें किसी बातका झूठा या सच्चा समझा जाना इस परीक्षापर निर्भर है कि वह प्राकृतिक (facts) तथ्योंके अनुकूल है या प्रतिकूल। यही अन्तिम विधि वैज्ञानिक विधि है।

४—वैज्ञानिक पद्धतिका प्रचार

इस वैज्ञानिक-विधिका प्रचार नागार्जुन आदि महात्माओंने भारतमें लगभग छः सौ वर्ष हुए किया था। उसीका प्रचार लगभग उसी समयमें रौजर बेकन नामके एक साधुने यूरोपमें किया। बेकनका मत था कि ज्ञान तर्क और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा बढ़ता है। यह ज्ञानके दो साधन हैं। इनमें भी प्रत्यक्ष अनुभव अधिक महत्वका है। प्रत्यक्षानुभवद्वारा उपार्जित ज्ञान ही विश्वसनीय ज्ञान है। सच्चा और उपयोगी ज्ञान प्रकृतिके अवलोकनसे प्राप्त होता है, परन्तु इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि हमारे पुराने विश्वासों और निर्मूल विचारोंकी छाया प्रकृतिके अवलोकनमें बाधा न पड़ जाय। कई बार ऐसा हुआ है कि लोगोंने नयी चीज़ें बनाली हैं या नया आविष्कार कर लिया है, पर अपने निर्मूल विश्वासके कारण उसे कुछका कुछ समझ छोड़ दिया है। लीबिगने ब्रोमीन एकबार बनाली थी, परन्तु बिना परीक्षा किये यह मान लिया कि वह लोहे और आयोडीनका यौगिक है। जब ब्रमीनका आविष्कार बेलार्डने कर लिया, तब उन्हें ख़याल आया और उक्त पदार्थकी परीक्षा की। फिर तो भेद खुल गया। लीबिग इस घटनाको सदा सुनाकर यह उपदेश दिया करते थे कि कपोल-कल्पित व्याख्या कदापि न करनी चाहिये।

५—ज्ञानप्राप्तिके मार्ग

एकाग्र चित्त होकर प्रकृतिका अवलोकन और निरीक्षण, विचार पूर्वक किये गये प्रयोगोंके परिणाम—यही मार्ग हैं, जिनसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है। फ्रांसिसबेकन भी रोजर-

बेकनके अनुयायियोंमें से थे। इस नयी विचारशैलीकी पुष्टि रायल सोसायटीके अधिवेशनोंमें हुई और उसके दो सदस्यों-ने उसका प्रयोग बड़ी सफलता पूर्वक किया। यह सदस्य थे न्यूटन और लौक। न्यूटनने तो आकर्षणके सिद्धान्तका आविष्कार किया, पर लौकने दर्शन-शास्त्रमें उससे काम लेना शुरू किया और अपना जगत्प्रसिद्ध ग्रन्थ रच डाला। (Lock's Essay on Human Understanding)

अब वैज्ञानिक-शैलीका अधिक विस्तार न करके हम इस बातपर विचार करेंगे कि विज्ञानने मनुष्य जातिका कितना उपकार किया है, उसका सभ्यतापर क्या प्रभाव पड़ा है और भविष्यमें वह हमें किधर ले जायगा।

६—आत्म-विश्वासका जन्मदाता

विज्ञानने जैसे-जैसे उन्नति की और जैसे-जैसे वैज्ञानिक शैलीका प्रचार होता गया मनुष्यकी बुद्धिका विकास भी उतना ही अधिकाधिक होता गया। मनुष्योंका अन्ध-विश्वास घटता जाता है। १० वर्ष पहले जितना भूत-प्रेतोंका ज़िक्र सुननेमें आता था, अब नहीं आता। जितना मनुष्यको पहले पग-पगपर भय लगता था उतना अब नहीं लगता। अब उसे न यमदूतोंका भय है और न बिहिश्तकी परियोंके यौवन-सौन्दर्यका लोभ। अब वह वीरोंकी नाईं वर्तमानका विचार करता है, कठिनाइयोंका सामना करता है, अपनी आत्मापर श्रद्धा रखता है और भविष्यको सुख-मय बनानेका प्रयत्न करता है। प्रत्येक जातिके विकास-क्रममें तीन अवस्थाएँ आती हैं—

(१) धर्मकी अवस्था (Age of Theology)

(२) दर्शनकी अवस्था (Age of Philosophy)

(३) विज्ञानकी अवस्था (Scientific age)

७—आवश्यकताओंका बढ़ाना आत्मघात

आज कल विज्ञानका युग है। वह ज़माना गया, जब मनुष्य किसी दूसरे लोककी वस्तुओंकी ओर खिचता था, जब उसे स्वर्गका पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक ध्यान रहता था। अब तो उसे अपना, अपनी जातिका, अपने देशका और अपने लोकका ख़याल रहता है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होना था कि वह पुराने ख़यालातको छोड़े, पांच हज़ार वर्ष पहले संसारकी उत्पत्ति हुई थी, इस सिद्धान्तको तथा ऐसे ही अन्य सिद्धान्तोंको असत्य माने और अपना अधिक ख़याल करने लगे। इसी प्रकार क्रमशः मनुष्यकी आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं, बढ़ती जारही हैं और बढ़ती चली जायँगी। आज कल तो सभ्यताका अर्थ ही यह समझा जाता है कि आवश्यकताएं बढ़ें। परन्तु यह विषय विचारणीय है कि यह आदर्श कहाँतक सत्य है। हमारा निजका विश्वास है—और धीरे धीरे समस्त सभ्य संसार एक स्वरसे इसे स्वीकार कर लेगा—कि वेदान्तका जो उच्च आदर्श भारतीय ऋषियोंने मनुष्यके सामने रखा है, वही हमारा एक मात्र अवलम्ब है, उसीका सहारा हमको लेना पड़ेगा, नहीं किसी दिन यादवोंकी नाईं मनुष्य जाति नेस्त और नाबूद हो जायगी।

यद्यपि ईसाई-मतके पैर विज्ञानके प्रहारसे टूट गये हैं, तथापि वेदान्त एक ऐसा मत है, जिसकी अभी केवल परछाईंका ही स्पर्श विज्ञान कर पाया है। 'ज्ञानको पन्थ भयावनो है।' विज्ञानका दुरुपयोग करके यूरोपीय महा-भारतमें कितने निर्दोषियोंका रक्तपात हुआ है, पर हमें पूर्ण आशा है कि भविष्यमें 'विज्ञान' ही ऐसी घटनाओंको असम्भव कर देगा।

८—देश और कालकी दूरी मिटी

विज्ञान देश और कालकी दूरीको धीरे धीरे मिटा रहा है। जो दूरी पहले वर्षोंमें तय करते थे वह आज कल कुछ दिनोंमें ही तय कर लेते हैं। पैदल चलनेसे मनुष्य सन्तुष्ट न हुआ, तो घोड़ेको गुलाम बना डाला, उससे भी जब असन्तोष हुआ, तो भापको नाथा, रेल चलायी, एक पटरीकी रेल बनाई और समुद्रकी छातीपर भी अग्निबोटोंमें यात्रा करना आरम्भ कर दिया। जब जल-थलपर विचरनेसे तृप्ति न हुई तो गगन-मण्डलमें विहार करनेके लिये वायु-यान बना डाले।

जहाँ-जहाँ देखा कि वृथा बहुत चक्कर खाकर समुद्रमें यात्रा करनी पड़ती है, तहाँ-तहाँ थलके संकीर्ण भाग काट-कर नये-नये रास्ते बना लिये। कभी-कभी समुद्रमें तूफ़ान आ जाते हैं, तो बड़े जहाज़ आककी रुईके दानोंकी तरह-समुद्रमें लहरोंके थपेड़ोंसे परेशान हो जाते हैं और फिरकी की तरह चक्कर खाकर डूब जाते हैं। ऐसी घटनासे बचनेके

लिये पनडुब्बीका आविष्कार हुआ, जो शान्ति-पूर्वक भयंकर तूफ़ान उठनेपर पानीके नीचे छछूंदरकी तरह अपना रास्ता काटती आगे बढ़ती चली जाती है।

अन्तमें अब ऐसे वायुयान भी बन गये हैं, जो ज़मीन-पर दौड़ सकते हैं, हवामें उड़ सकते हैं और पानीमें तैर सकते हैं।

जो समाचार पहले ज़मानेमें वर्षोंमें मिलते थे वह अब मिनटोंमें मिल सकते हैं। यदि जी चाहे तो मित्रोंसे एक हज़ार मीलकी दूरी परसे भी बातें कर लीजिये।

९—विज्ञानसे विश्व-प्रेमका सँदेश

यह (Federation of World) लोक-संग्रहका बड़ा भारी लक्षण दिखाई पड़ता है। वह समय शीघ्र ही आयगा, जब हम देश और जातिके अन्तर और भेद-भावको भूल जायँगे और एक कुटुम्बके व्यक्तियोंकी नाईं प्रेम-भावसे रह सकेंगे। वह समय गया जब जातियाँ अपनी-अपनी सभ्यताओंकी जुदे-जुदे ढंगपर वृद्धि कर सकती थीं और अपनी रीतरिवाज, रहनसहन, जुदी रख सकती थीं। अब तो सब एक रंगमें रंग जायँगे। सब घुलमिलकर एक हो जायँगे। (Problems) भविष्यकी समस्याएँ कुल मनुष्य जातिकी होंगी, न कि एक-एक देशकी।

विज्ञानने मनुष्यको पशु-बलसे अधिक काम लेनेसे बचाया है। जो काम वह पहले बड़े कठिन परिश्रमसे और वर्षोंमें करता था, वह अब सहज ही कुछ दिनोंमें कर डालता है। अब ऐसे-ऐसे कारख़ाने भी देखनेमें आते हैं कि जहाँ लाखों आदमियोंके बराबर काम होता है, पर मनुष्य एक भी देखनेमें नहीं आता। इस बातका भी मनुष्य-पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि अब उसे अपनी बुद्धि और मस्तिष्कसे अधिक काम लेना पड़ेगा और मनुष्य जातिका विकास अधिक वेगसे होगा।

तार-द्वारा चित्र भेजना, जल-प्रपातोंको नाथकर उनसे बिजली उत्पन्न करना या अन्य काम लेना, बिजलीसे शहरमें रोशनी करना, पंखे चलाना, कारखाने और मिलें चलाना यह सब बातें भी लोक-संग्रहमें सहायक होंगी।

१०—इतिहाससे बाजी ले गया

मनुष्यने इतनी शक्ति ही संचय नहीं की, किन्तु सुदूर भूतकालमें घटित घटनाओंका भी रहस्योद्घाटन करनेका साहस कर डाला है। इतिहासकी तो दौड़ अधिकसे अधिक तीन-चार हज़ार वर्षोंतक ही है किन्तु विज्ञान करोड़ों अर्बों वर्षकी बातोंका पता लगाता है। यह बातें केवल कल्पित ही नहीं हैं, परन्तु उस ज्ञानपर निर्भर हैं जो वह आकाश-का निरीक्षण कर संचय करता है। अन्य तारोंमें जो परि-वर्तन तथा घटनाएँ उसे आज प्रत्यक्ष दीखती हैं, अपनी बुद्धिके बलसे वह समझता है कि पृथ्वीका भी विकास-क्रम वही होगा।

कैसे महत्वका था वह दिन जब गैलिलियोने अपना दूरबीन पहले-पहल आकाशकी ओर उठाकर देखा था। क्रमशः उस दूरबीनमें शोध होते गये और आजके दिन दूरबीन ऐसे बड़े-बड़े बन गये हैं कि इंजिनोंद्वारा वह हिलाये, उठाये और घुमाये जा सकते हैं। दूरबीनकी ताकत किस भाँति बढ़ती रही है, यह साथके चित्रसे ज्ञात होगा। जहाँ पहले आकाशमें कुछ भी दृष्टि गोचर न होता था, वहाँ पुराने दूरबीनोंसे एक तारा-सा नज़र आने लगा। और शक्तिशाली दूरबीनसे वह धुंधला-सा तारा-समूह प्रतीत होने लगा। वर्तमान दूरबीनोंसे तो वह असंख्य ताराओंका समूह दीख पड़ता है। इन तारोंमेंसे प्रत्येक असंख्य मीलोंकी दूरीपर है, उसका आकार हमारे सूर्यसे लाखों गुना बड़ा है। उनकी दूरीका अन्दाजा मीलोंमें लगाना असम्भव है। उनका हिसाब लगाया जाता है प्रकाश वर्षोंमें। एक सेकण्डमें प्रकाश १८६००० मील चलता है। इस हिसाबसे एक वर्षमें जितनी दूर प्रकाश जा सकता है वह फासिला एक प्रकाश-वर्ष कहलाता है। यदि मीलोंमें आप हिसाब पूछें तो ५८ खरब और ८३ अरब मील है।

जो सितारा पृथ्वीसे बहुत ही नज़दीक है, वह ४·३ प्रकाश-वर्ष दूर है। इस दूरीका ख़यालमें आना भी मुहाल है। हाँ एक तरकीब है, जिससे इसका कुछ अन्दाज़ा लग सकता है। मान लीजिये कि एक भारी तोप है, जो ५५० गज प्रति सेकण्डके वेगसे गोला फेंक सकती है और यह गोला इसी वेगसे लाखों वर्षतक चला जा सकता है। तोपको चलाइये और जैसे ही गोला उसके मुँहसे बाहर निकले आप जल्दीसे कूदकर उसपर सवार हो जायँ, तो

आप २५ लाख वर्षमें अल्फा-सेंटारीतक पहुँचेंगे। उसकी दूरी मीलोंमें २५ नील है। कुछ तारे पृथ्वीसे इतने दूर हैं कि यद्यपि पृथ्वीकी उत्पत्ति हुए करोड़ों वर्ष हो गये, तथापि उनसे चला हुआ प्रकाश आजतक पृथ्वीतक नहीं पहुँचा।

११–वैज्ञानिक ही विराट्-दर्शन करता है

ईश्वरकी महिमा अनन्त है। उसके विराट रूपका दर्शन वैज्ञानिकने ही किया है।

उधर सूक्ष्म-दर्शकने भी मनुष्यके ज्ञानकी सीमा बहुत विस्तृत कर दी है। जो चीज़ें पहले आँखसे दीखती भी न थीं, उनमें एक ब्रह्माण्डकीसी रचना दिखायी पड़ती है। कहाँ एक इंचके एक करोड़वें भागके बराबर कण, जो परासूक्ष्म-दर्शकसे दीख सकते हैं और कहाँ वह तारे जिनके आकार-का ख़यालमें आना मुश्किल है।

आजसे लाखों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियोंने जो गुण गाये, आज उनका कुछ अनुभव मनुष्यको होने लगा है।

'अणोरणीयान् महतो महीयान्।'

मनुष्यने पता चला लिया है कि पृथ्वी मंडलकी उत्पत्ति नीहारिकासे हुई है और विकासका बहुत कुछ क्रम भी जान लिया है। उसने यहाँ ही बैठे रहकर दूरसे दूर तारोंकी जाँच कर डाली है और जान लिया है कि उसमें कौन कौनसे पदार्थ विद्यमान हैं।

१२–विज्ञान विकास-वादका निर्माता

उसने विकास-वादकी रचना की है और उसकी पुष्टिके लिये ज्यौतिष, भूगर्भ आदि अनेक शास्त्रोंका उपयोग किया है। धरती खोद-खोदकर उसने पृथ्वीके इतिहासका बहुत कुछ पता लगा लिया है। किस ज़मानेमें ज़मीनकी सतहकी हालत कैसी थी, उसपर कैसे जानवर विचरते थे, कैसे वृक्ष उसके वक्षस्थलको सुशोभित करते थे, इत्यादि बातें उसने जान ली हैं।

१३–रसायनशास्त्रका जनक

विज्ञानकी सर्वोपयोगी और रोचक शाखा रसायन-शास्त्र है। जितना उपकार मनुष्यमात्रका इस शास्त्रने किया है, उतना किसी अन्य शास्त्रने नहीं किया। इसके आदि-कालमें मनुष्यको रसायनकी खोज थी। यद्यपि कीमियागरीमें वह सफल मनोरथ नहीं हुआ, तथापि कोयला-संभूत काले कोलटारसे अनेक बहुमूल्य पदार्थोंका पैदा करना, कूड़ेकरकटमें फेंकी हुई चीज़ोंका उपयोग कर अनेक उपयोगी द्रव्य बनाना, यह रसायन शास्त्रके ही किरिश्मे हैं।

जहाँ बारूद और डैनेमैटने लाखों मनुष्योंका नाश किया है, तहाँ उन्हींने खेतोंकी उपजाऊ शक्ति बढ़ा दी है और मनुष्यके लिये पर्वतोंको काटकर मार्ग बना दिये हैं। साधारण पदार्थोंसे अनेक उपयोगी पदार्थ बनाना भी रसायन-शास्त्रने मनुष्यको सिखाया है। एक गेहूँको ही लीजिये। इससे रोटी, शीरा, मंड, साबुन, शकर, शर्बत, बारूद, गौत (चारा), सूत, स्पिरिट, तेल, अचार, आतिशबाज़ी, रङ्ग, वार्निश आदि अनेक पदार्थ बन सकते हैं।

कभी-कभी खदानोंमें और सुरङ्गोंमें पानीका सोता (जल-श्रोत) निकल आता है। इससे सुरंगों या खानोंमें पानीके भर जाने और आदमियोंके डूब जानेका डर रहता है। ऐसी दुर्घटनासे बचनेके लिये उचित स्थानोंपर इंजीनियर लोहेके दर्वाज़े लगा देते हैं। एक बार (Severn) सेवर्नके नीचे सुरङ्ग खोदी जा रही थी। एकाएक किसी सोतेमेंसे पानी आने लगा। मज़दूरोंने सोचा कि हो न हो सेवर्नका पानी सुरङ्गमें दे बैठा और वह भाग उठे। पीछे-पीछे पानी बड़े वेगसे चला आता था और आगे-आगे मज़दूर भाग रहे थे। अतएव घबराहटसे वह लोहेका दर्वाज़ा बन्द करना भूल गये। परिणाम यह हुआ कि ऊर्ध्वगामी रास्तों (शाफ़्ट) में १५० फुट पानी चढ़ गया और सारी सुरङ्ग भर गयी। बड़े-बड़े इंजिनोंसे काम लिया गया और पानी निकालकर ३९ फुट कर दिया गया। अब यह आवश्यक जान पड़ा कि कोई पानीमें घुसकर लोहेका दर्वाज़ा बन्द कर आवे। दर्वाज़ा ऊर्ध्वगामी रास्तेसे लगभग ५५० गज़ था। इसके अतिरिक्त रास्तेमें दो ठेले उलट गये थे और रास्ता रुक रहा था और दरवाज़ेमें दो रेल अड़ गये थे। अतएव ठेलोंके ऊपर होकर जाना और रेलोंका हटाना आवश्यक था। फ़्लूसद्वारा आविष्कृत यंत्र लेकर लेम्बर्टने उतरनेका साहस किया और डेढ़ घण्टेके बाद दर्वाज़ा बन्द करके निकला। यह रसायन-शास्त्रका ही प्रताप था, क्योंकि यंत्रमें दबी हुई ओषजन और दाहक सोडा था।

इस प्रकार मनुष्यकी शक्ति धीरे धीरे बढ़ती जाती है। वह अब प्राकृतिक घटनाओंका मुस्तैदीसे सामना कर सकता है और प्रकृतिके गूढ़ और गुप्त रहस्योंको जान लेनेका बराबर प्रयत्न कर रहा है। इन सब बातोंका मनुष्यके विकासपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ेगा।

१४-दैहिक कष्टोंसे बचानेवाला

अब विचारणीय विषय यह है कि मनुष्य भविष्यके लिये क्या कर रहा है? मनुष्यमात्रके लाभका काम जो आजकल हो रहा है वह स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्साके सम्बन्धमें है। भारत जैसे अभागे देशको छोड़, जहाँ सब चीज़ें महँगी है, पर मनुष्य जीवन बड़ा सस्ता है, जहाँ महामारी, विशूचिका आदि राक्षसियोंको भर पेट खानेको मिलता है, अन्य देशोंमें मृत्यु संख्या घटती जा रही है और स्वास्थ्य अधिक अच्छा होता जा रहा है। चिकित्साशास्त्र जो अबतक केवल अनुभव-जन्य ज्ञानपर ही अवलम्बित था, वह अब विज्ञानकी सुदृढ़ नींवपर खड़ा हो रहा है। अब अनेक यंत्रोंद्वारा ओषधियोंके गुण और दोषोंका ठीक ठीक अध्ययन हो सकता है। उधर बिना थनोंके स्पर्श किये गायका दूध निकालनेके यंत्र, बिना धूल उड़ाये झाड़ू लगानेके यंत्र, इत्यादि जीवाणुओंसे बचनेके उपायोंका आविष्कार हो रहा है। इन सबका फल यह होगा कि मनुष्य सतयुगकी नाईं अपनी पूरी आयुतक जीवित रहकर पूर्ण उन्नति कर सकेगा। वस्तुतः वह दैहिक कष्टोंसे मुक्ति पा जायगा।

१५-प्रकृति पदार्थोंका परिवर्त्तक

प्राणि-विद्या-विशारद पौधों और जन्तुओंकी जातियाँ (नस्ल) सुधारनेके विषयमें अनेक आश्चर्यजनक प्रयोग कर रहे हैं। अमेरिकाके विश्वामित्र, लूथर बरबंकने बेरकी गुठली उड़ा दी, तो नागफ़नीके काँटे ग़ायब कर दिये हैं। जिस फलमें जो स्वाद और सुगंध चाहिये वही पैदा की जा सकती है, यह उनका दावा है। कुत्तों और घोड़ोंकी नस्ल कितनी सुधर गयी है, कितने अद्भुत आकार और प्रकारके कुत्ते और घोड़े देखनेमें आते हैं, यह मनुष्यकी वर्त्तमान बुद्धि और योग्यताके परिचायक हैं।

१६-सतयुग लानेवाला

मनुष्यने पेड़-पौधों और जानवरोंपर ही दयादृष्टि नहीं की, मनुष्यपर भी प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। परन्तु मनुष्य जैसे हठी, साहसी और चपल-प्रकृति पशुको प्रयोगोंका पात्र बनाना कितना कठिन कार्य है, यह पाठक स्वयम् समझ सकते हैं। मनुष्यके विषयमें मनोगत भावों और विचारोंपर विजय प्राप्त करना कठिन है। यह तो स्वयम् ही सुधरे तो सुधरे, परन्तु नूतन शिक्षा-प्रणाली, विवाह-पद्धति और विचार-शैली चमत्कारिक परिवर्तन कर रही है और हमें पूर्ण आशा है कि कुबेरसे वैश्य, ब्रह्मासे ब्राह्मण और राम जैसे क्षत्रिय उत्पन्न होने लगेंगे। सन्तति-शास्त्रकी उन्नति होनेसे वैसे ही दुर्बल देह और मस्तिष्कवाले मनुष्योंका पैदा होना मुश्किल हो जायगा। यदि कदाचित् कोई ऐसा मनुष्य पैदा भी हो जायगा तो उसकी दुर्बलताकी चर्चा रासायनिक भाषामें हुआ करेगी और यह कहा जायगा कि उसके शरीरमें अमुक यौगिकोंका अभाव है और सम्भव है कि उन यौगिकोंको यथास्थान, उचित विधिसे पहुँचाकर दुर्बलता दूर करदी जायगी। अतएव वर्द्धमान विज्ञानके सेवनसे ही सतयुग फिर आयगा और शान्ति और सुखका साम्राज्य संसार भरमें फैल जायगा।

सात बातें गाँठ बांधिये और सुखी रहिये

१. शुद्ध हवा, शुद्ध पानी और स्वच्छता ही जीवन है।
२. वीर्य का अत्यधिक व्यय करना शरीरका नाश करना है।
३. सादा और सात्विक भोजन शरीर-रक्षाके लिये सर्वोत्तम है।
४. भोजनके समय जीभके बदले पेटकी सलाह लेनी चाहिये।
५. रक्त और मस्तिष्कविकारसे बचनेके लिये पाचन क्रियाका ठीक रखना जरूरी है।
६. बिना प्रयोजन दवा खाते रहना हानिकारक है।
७. दवाकी ज़रूरत पड़े तो शास्त्रसिद्ध और अनुभवी वैद्यसे दवा ले।

[ब्र० वि० गौ०

वैज्ञानिक विचारोंमें क्रान्ति

ऐंस्टैनका सापेक्षवाद

[ले० प्रो० दत्तात्रेय गोपाळ मटंगे, एम्. एस्-सी., एफ़. पी. एस.]

२२—ऐंस्टैनके विस्तृत-सिद्धान्त

बढ़ते हुए वेगका परिणाम

मर्यादित सिद्धान्तमें, सरल समवेगों में स्वयंसिद्धियाँ लगाकर ऐंस्टैनने जो अनुमान निकाले, वे दिये जा चुके हैं। अब यदि वेग सम न रहकर बढ़ता जावे तो उससे क्या परिणाम होगा, इसका अध्ययन करेंगे।

ऊँचे स्थानसे यदि हम पत्थर छोड़ दें, तो वह पृथ्वीकी ओर सम मानसे बढ़ते हुए वेगसे गिरेगा। यह बाढ़ प्रति सेकंडमें ३२ फुासे दरसे होती है, क्योंकि पृथ्वीके कारण उत्पन्न होनेवाली पतनप्रवृत्ति ३२ फुासेसे। है। पत्थर छोड़नेपर उसका वेग

१ सेकंडके बाद जाँचनेपर ३२ फुासे
२ — — — ६४ फुासे
३ — — — ९६ फुासे

इसी तरह आगे पाया जावेगा। साथ ही जहाँसे पत्थर छोड़ा जावे, ठीक उसके नीचे जाकर वह पड़ता है।
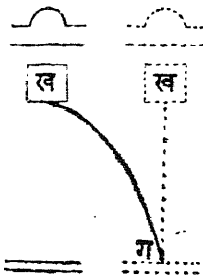
चित्र १९

उसी जगहसे यदि हम पृथ्वीके समानान्तर एक पत्थर फेंकें, तो उसके दो वेग मिलेंगे।

(१) हमारा दिया हुआ पृथ्वीके समानांतर।

(२) पृथ्वीके आकर्षणसे उत्पन्न हुआ एकसा बढ़ता हुआ वेग।

इन दो वेगोंकी क्रियासे वह पत्थर उतने ही समयमें, किन्तु दूर, जाकर गिरेगा। उसके मार्गको **पखलय** कहते हैं।

चित्र १९ देखो। एक चलती हुई गाड़ीके डब्बेमें बैठे हुए एक आदमीने ख खिड़कीमेंसे एक पत्थर छोड़ा। उसके मतसे वह पत्थर खग सरल-रेखामें गिरता है, किन्तु जो मनुष्य बाहिर खड़ा हुआ है, उसे यह पत्थर **पखलय** मार्गसे गिरता हुआ दिखता है। कारण यह है कि उस बाहिरी मनुष्यके मतसे पत्थरपर दो वेग हैं—पहला गाड़ीके वेगके कारण पृथ्वीके समानान्तर, और दूसरा पृथ्वीके आकर्षणके कारण खड़ा। एक पत्थर नीचेकी ओर ऊपरसे गिरा दिया जावे, तो जितने समयमें वह गिरता है, उतने समयके लिये उसकी जो जगतरेखा होगी, वह चित्र २०में बतलायी गयी है। भले ही वह पृथ्वीकी ओर सीधा गिरे, किन्तु उसकी जगत्‌रेखा लगातार झुकती हुई मिलेगी।
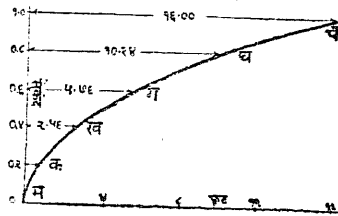
चित्र २०

काल	पत्थर छोड़नेके स्थानसे सीधा खड़ा अन्तर
०·०	०·०० फुट
०·२	०·६४ —
०·४	२·५६ —
०·६	५·७६ —
०·८	१०·२४ —
१·०	१६·०० —

चित्र २०में ये विन्दु लिये गये हैं, और उन्हें जोड़ा गया है। जोड़नेवाली रेखा म क ख घ च वक्र आती है, और उसका आकार पखलब्ध रहता है।
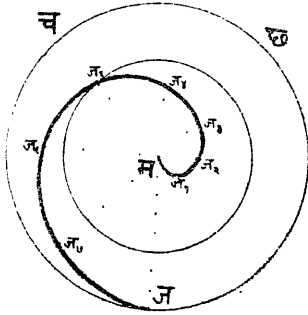
चित्र २१

चित्र २१ देखो। च छ ज एक वृत्ताकार १६ गज व्यासका बड़ा बोर्ड है। वह म केन्द्रपर ८ सेकंडमें एक बार समवेगसे चक्कर लगाता है। ज विन्दुपर एक अवलोकक है।

एक मनुष्य म से ज की ओर १ गज प्र. से. वेगसे चला। मज रास्तेपर ज$_1$,ज$_2$ज$_3$ इत्यादि १ गजके फासलेपर निशान बनाये गये हैं। मनुष्य जितने समयमें म से ज तक जाता है उतने समयमें बोर्ड एक चक्कर लगा लेता है। ज पर खड़ा हुआ मनुष्य, जो बोर्डके साथ चक्कर लगा रहा है, हमेशा समझेगा कि दूसरा मनुष्य उसीकी ओर आ रहा है।

किन्तु जो मनुष्य बोर्डके बाहर स्थिर खड़ा है, उसको उस मनुष्यके चलनेका मार्ग मज ज$_2$ सर्पिल जके आकारका दिखता है। यदि बोर्डपर स्थित मनुष्य अपनी गतिसे अनभिज्ञ हों, तो उन्हें मालूम होगा कि उनके आसपासका जगत् ८ सेकंडमें एकबार उनकी प्रदक्षिणा करता है।

बाहर खड़े हुए मनुष्योंके मतसे बोर्डपर चलनेवाले मनुष्यके दो वेग हैं (१) किनारेकी ओर जानेवाला उसका खुदका (२) बोर्डके घूमनेके कारण म केन्द्रके चारोंओर वृत्ताकार वेग।

मज मार्गपरके ज$_1$ ज$_2$ इत्यादि चिन्ह भी मके चारों ओर ८ सेकंडमें एक फेरी लगाते हैं। ज$_5$ विन्दु मसे ५ गजकी दूरीपर है। इसलिये वह निशान जिस वृत्तपर घूमता है उसकी परिधि $२ \times \frac{२२}{७} \times ५ = ३१.४२९$ गज है। चूंकि यह दूरी ८ सेकंडमें पार होती है, इसलिये ज$_5$ का परिधि परका वेग $३१.४२९ \div ८ = ३.६१५$ ग। से होगा। इस प्रकार सब निशानोंके परिधिपरके वेग लिखे जा सकते हैं—

म का	परिधिपरका वेग			०.००० ग।से	
ज$_1$	—	—	—	०.७८५	—
ज$_2$	—	—	—	१.५७०	—
ज$_3$	—	—	—	२.२५५	—
ज$_4$	—	—	—	३.१४०	—
ज$_5$	—	—	—	३.६१५	—
ज$_6$	—	—	—	४.७१०	—
ज$_7$	—	—	—	५.४९५	—
ज	—	—	—	६.२८०	—

इसलिये चलनेवाला मनुष्य ज्यों-ज्यों म से दूर जाता है, त्यों-त्यों उसका परिधिपरका वेग ०.० ग।से से बढ़ते-बढ़ते किनारेतक पहुँचनेपर ६.२८० ग।से हो जाता है।

इसका परिणाम इस प्रकार होता है। जब हम लोग एक अतिवेगशाली मोटरपर बैठकर किसी मोड़परसे जाते हैं, तो हमें अनुभव होता है कि हम बाहरकी ओर फेंके जा रहे हैं। इसलिये हम खुदको सम्हालनेके लिये खिड़की इत्यादि किसी चीज़का सहारा कर लेते हैं। इसलिये यह निष्कर्ष निकलता है कि जब कोई भी वस्तु मोड़पर वेगके साथ जा रही हो, तो उसपर बाहरकी ओर फेंकी जानेवाली प्रवृत्ति रहती है। जितना ही वेग अधिक होगा, उतनी उत्क्षेपण-शक्ति अधिक होगी।

यही दशा बोर्डपर चलनेवाले उस मनुष्यकी होती है। वह ज्यों-ज्यों ज के पास आता जाता है त्यों-त्यों केन्द्रसे दूर अधिक-अधिक जोरसे ढकेला जाता है। यह उत्क्षेपण-प्रमाण अधिकाधिक होता जावेगा ज्यों-ज्यों वह म से दूर होता जावेगा।

चलनेवालेका मत—मैं म से ज तक सीधा चल रहा हूँ। मेरा बोर्ड स्थिर है: और उसके आस-पासका जगत् उसके चारों ओर घूम रहा है: परन्तु क्या कारण है कि ज्यों-ज्यों मैं म से दूर जा रहा हूँ त्यों-त्यों मैं अधिक

ज़ोरसे ढकेला जा रहा हूँ ? अवश्य ही कोई ऐसी शक्ति है, जो मुझे फेक रही है। इसलिये मुझको लकड़ी टेक-टेककर चलना पड़ता है।

बाहरके अवलोककका मत—चलनेवाला वक्र रेखासे जा रहा है। उसके दो वेग हैं (१) म—ज और (२) वृत्ताकार। वृत्ताकार वेगके कारण ही उसे अधिकाधिक अपनी लकड़ीके सहारे चलना पड़ता है। उसको जो उत्क्षेपण मालूम पड़ता है, वह उसके वृत्ताकार वेगके कारण है। यदि यह वृत्ताकार वेग बंद हो जावे, तो उसका उत्क्षेपण भी लुप्त हो जावेगा। उत्क्षेपणका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।

आकर्षण और उत्क्षेपण बढ़ते हुए वेगके कारण उत्पन्न होनेवाले आभास हैं। उनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। आगे इस विषयका स्पष्टीकरण और अधिक विस्तारसे किया जावेगा।

२३—परस्परका खिंचाव या आकर्षण

यदि बाह्यकारण न हो तो स्थिर पदार्थ स्थिर ही रहेगा और गतिमान् पदार्थ सरल समवेगसे चलता रहेगा। ये जड़ पदार्थोंके गुण हैं। किम्बहुना, इसी गुणके कारण पदार्थोंको जड़ कहते हैं।

जब मोटर एकदम चलने लगती है तो हमलोग पीछेकी ओर ढकेले जाते हैं, और जब वह एकदम रुक जाती है, तब हम आगेकी ओर गिरते हैं, ऐसा मालूम पड़ता है किन्तु जबतक वह सरल समवेगसे चलती रहती है, तबतक इस प्रकारके कोई अनुभव नहीं होते।

यदि कहीं मोड़ आ जावे, तो हमें मालूम पड़ता है कि हम बाहरकी ओर फेके जा रहे हैं।

सारांश यह है कि हमारा वेग एक ही दिशामें रहकर कम या अधिक हो, किंवा वेग उतना ही रहनेपर हम मोड़परसे जाते हों तो हम गिरते या ढकेले जाते हैं या बाहरकी ओर फेके जाते हैं, ऐसा हमको अनुभव होता है, अन्यथा ये अनुभव हम नहीं करते।

जब न्यूटन अपने बगीचेमें बैठा था तब उसने देखा कि एक पका हुआ फल गिर रहा है। जब पदार्थ निराधार होनेपर पृथ्वीकी ओर गिर पड़ते हैं, तब चन्द्रमा भी क्यों नहीं गिर पड़ता क्योंकि वह भी तो निराधार है ? जब वह इसी प्रश्नपर गम्भीररूपसे विचार करता गया, तब उसे गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त मिला।

बढ़ते हुए वेगके विषयमें भी इस तरहका एक किस्सा कहा जा सकता है—

एक मज़दूर अपने सिरपर ईंटोंसे भरी टोकरी लिये हुए ऊँचे मंचपरसे गिरा। नीचे कीचड़ और रेत होनेके कारण उसको चोट नहीं लगी। इतनेमें उसका एक साथी आया और उससे गिरनेके समयके अनुभव पूछने लगा।

'क्या तुम्हारी टोकरी बहुत वज़नदार थी ?'

'हाँ।'

'गिरते समय टोकरीके बोझसे तुमको अधिक कष्ट हुआ था ?'

'कदापि नहीं। यहाँतक कि मुझे उसका वजन मालूम ही नहीं पड़ा।'

'गिरते समय तुम बहुत भयभीत हुए होगे ?'

'ओहो! क्या यह भी पूछना जरूरी है ? मैं बहुत ही भयभीत हुआ था और सोचता था कि मेरी जिन्दगी अब किनारेपर है।'

'परन्तु मैं पूछना चाहता हूँ, कि तुम्हें गिरनेका समय डर लगा था या गिरनेके बाद धक्का लगनेका !

'मैंने इसपर इतना गूढ़ विचार नहीं किया, पर मेरा विचार है कि मैं गिरनेके समय गिरनेसे नहीं डर रहा था, किन्तु गिरनेके बाद धक्केके कारण जो चोट लगती, उससे डर रहा था।'

'यदि गिरनेके पश्चात् चोट लगनेकी सम्भावना बिलकुल अलग कर दी जावे, तो सिर्फ गिरनेके विषयमें तुम्हारा क्या मत है ?'

'मुझे किसी तरहका बोझ नहीं मालूम होता था: मैं बिलकुल हल्का था। टोकरीका भार लुप्तप्राय हो गया था यथार्थमें सिर्फ गिरनेका भय किसीको भी नहीं होना चाहिये। वह तो थोड़े समयके लिये बड़े मजेकी बात है जो अनुभव जमीनपर किसी दूसरी अवस्थामें पाना असम्भव है, वे भी उस दशामें मिलते हैं।

टोकरी जमीनकी ओर खींची जा रही है, और क्योंकि

हम उसके और पृथ्वीके बीचमें आड़ देनेके लिये आते हैं, हमें उसका भार मालूम पड़ता है। ऐसी दशामें जब कि आकर्षण स्वतंत्ररूपसे अपना कार्य करता है, तब अपने अनुभव भिन्न होंगे।

यही बात और स्पष्ट करनेके लिये यह उदाहरण दिया जाता है।
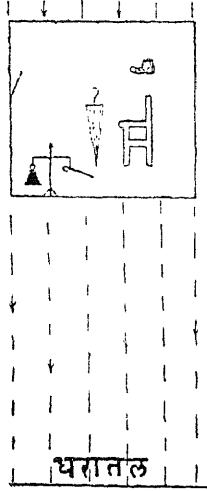
चित्र २२

चित्र २२ देखो। आकाशमें एक कमरा टँगा है। वहाँ पर एक मनुष्य साधारण रीतिसे रहता है। यदि वह कुछ वस्तु डालता है तो वह कमरेकी जमीनपर गिरती है। वहाँपर एक तराजूसे भिन्न-भिन्न वस्तुओंके वज़न निकाले जा सकते हैं। यदि एक पत्थर पृथ्वीके समानान्तर फेंका जावे तो वह परवलय बनाता हुआ जाता है। उस मनुष्य के सभी अनुभव उसी प्रकारके रहेंगे, जैसे एक पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्य के।

अब एकाएक कमरेका आधार टूट गया और वह नीचे गिरने लगा।

मनुष्यको मालूम होता है कि उसके बिलकुल वज़न नहीं है। यदि एक वस्तु छोड़ी जाती है, तो वह जहाँकी तहाँ रही आती है। कपड़े खूँटीपर न टाँगकर जहाँ कहीं भी छोड़ दिये जाते हैं वहीं रहते हैं। तराजूकी एक बाजू पर छड़ी और दूसरीपर एक मन भी रखे, फिर भी उसकी डंडी सीधी रहती है। यदि एक चित्र टाँगना है, तो उसके लिये खूँटीकी जरूरत नहीं है। वह उसी दशामें रही आती है जिसमें वह छोड़ दी जाती है। कुर्सी, छत्ता, बूट आदि जहाँ भी रख दें वहीं रहते हैं। यदि पृथ्वीके समानान्तर एक पत्थर फेंका जावे, तो वह उसी दशामें चला जाता है।

वह मनुष्य कहता है—आकर्षण, वज़न आदि मेरे कमरेसे लुप्त हो गये हैं। इसके पहले अपने कमरेमें मुझे इनका भास होता था।

बाहरका मनुष्य कहता है—कमरेके भीतर जो-जो बातें हो रही हैं, उनका कारण यह है, कि सभी वस्तुएँ एक दूसरेके बराबर वेगसे नीचे गिर रही हैं। जबतक ऐसा ही होता रहेगा, तबतक उसके अनुभव ऐसे ही होंगे।

ऊपरके उदाहरणमें यद्यपि कमरा क्रमशः बहुत ऊँचाईपर टांगा गया है, फिर भी पृथ्वीके आकर्षण-क्षेत्रके भीतर है। जब वह ऐसी दशामें नीचेकी ओर स्वतंत्र रूपसे छोड़ दिया जाता है, तब उसकी पतन-प्रवृत्ति ३२ फ़ुट/से॰/से॰ रहती है और उसके भीतर जो-जो अवलोकक हैं उसको मालूम होता है, कि उसके कमरेसे आकर्षण लुप्त हो गया है।

अब कमरेको विभिन्न परिस्थितियोंमें ले चलें। इस समय वह कमरा किसी भी जड़ पदार्थके आकर्षणक्षेत्रके
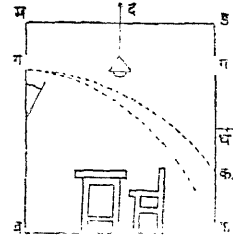
चित्र २३

बाहर है। चित्र २३ देखिये। वह कमरा बढ़ते हुए वेगसे द की ओर जा रहा है। जड़त्व गुणके कारण प्रत्येक पदार्थ उसी दशामें रहना चाहता है जिसमें वह है। कमरेका वेग बढ़ रहा है इसलिये उसमेंकी वस्तुओंका वेग बढ़ना भी आवश्यक है, किन्तु यदि पदार्थ रखा हो तो आधारके ऊपर उसका भार पड़ेगा और यदि टँगा हो, तो टांगनेवाली रस्सीपर तनाव पड़ेगा। इस तरह उसका वेग उसके भीतरके पदार्थोंको मिलता जावेगा। अब यदि एक पत्थर छोड़ दिया

जावे, तो उसको वही वेग मिलेगा जो उस मनुष्यमें उस समय था। अब आधारसे उसका सम्बन्ध छूट गया, इसलिये उसके वेगकी बाढ़में जो साधन था वह अब निकल गया : किन्तु अन्य वस्तुओंका वेग कमरेके साथ बढ़ता ही जाता है, इसलिये पत्थर क्रमशः पीछे पड़ता जाता है, और अन्तमें बाजूसे भिड़ जाता है। इसलिये जो-जो वस्तु निराधार हो जावेगी वह बक पर गिरेगी। अतः बक उस कमरेका फर्श कहलाने लगा है। मब और कड बाजू कमरेकी दीवारें हो गयीं और उसकी छत हुई मड। यह उस मनुष्यका मत होगा।

मानलें कि उस कमरेकी आमने-सामनेकी दीवारोंमें गग दो गवाक्ष हैं। अब एक पत्थर बाहरसे आड़ा आवे, तो

(१) यदि कमरा स्थिर हो, तो पत्थर एक खिड़कीमेंसे आकर दूसरीसे निकल जावेगा।

(२) यदि कमरा सरल समवेगसे जा रहा हो, तो पत्थर अन्दर बैठे हुए मनुष्य को सरल रेखा में किन्तु पहलेसे झुकी हुई दिशामें आता हुआ दिखेगा। परन्तु,

(३) यदि कमरा समान रूपसे बढ़ते हुए वेगसे जा रहा हो, तो कमरेमेंका मनुष्य समझेगा कि पत्थर परवलय गकके आकारके मार्गसे आ रहा है। यदि अधिक वेगसे वह पत्थर आवे तो वह क₁ पर दीवारसे भिड़ेगा और उसका मार्ग गक₁ परवलय होगा। वेग जितना अधिक होगा उतना ही दूसरे गतक्षके पास-पास जाकर वह पत्थर गिरेगा, किन्तु वे सब मार्ग परवलय ही रहेंगे। प्रकाशकी किरण भी भीतर आवे, तो उसका मार्ग परवलय ही होगा। प्रकाशका वेग प्रचण्ड होनेके कारण कमरेके भीतरकी वक्रता इतनी सूक्ष्म रहेगी, कि वह नापी नहीं जा सकती। इतने प्रचण्ड वेगसे आनेवाले पदार्थके मार्गकी वक्रता नापनेके लिये उतना ही बड़ा अंतर लेना चाहिये।

यदि कमरेकी सम प्रवृत्तिकी दिशा बदल दें, तो उसका फर्श, छत्त और दीवारें भी बदल जावेंगी। यदि कमरा ध दिशासे जाने लगे, तो मब फर्श, कड छत और मड और कब बाजूकी दीवारें हो जावेंगी। टेबिल, कुर्सी मब पर रखने पड़ेंगे। तस्वीरें मड और कब पर टांगनी पड़ेंगी। कड छतसे टांगना पड़ेगा।

ऊपरके उदाहरणका निष्कर्ष इस प्रकार होगा। यदि आकर्षण-क्षेत्रके बिलकुल बाहर कोई कमरा लिया जावे और उसे समप्रवृत्ति दी जावे, तो उसके भीतर आकर्षण-क्षेत्र उत्पन्न किया जा सकता है और उसके भीतर जो मनुष्य रहता है वह अपने अनुभवके अनुसार छत, दीवार, फर्श इत्यादि निश्चित कर लेता है।

इसलिये यदि ऐसे क्षेत्रमेंसे, जिसमें आकर्षण है, प्रकाशकी एक किरण भेजी जावे, तो उसमें वक्रता आ जाती है, किन्तु प्रकाशका वेग बहुत अधिक है, इसलिये उस वक्रताके नापनेके लिये बहुत ही बड़ा अन्तर लेना चाहिये।

२४—प्रवासके मार्ग

पिछले अध्यायमें जो विवेचना की गयी है, उससे साफ सिद्ध हो गया है, कि कमरेमें बैठे हुए मनुष्यको पत्थरका मार्ग परवलयके आकारका दिखेगा इसका कारण यह नहीं है, कि उस कमरेमें और दूसरे जड़ पदार्थ हैं, किन्तु क्योंकि वह कमरा समप्रवृत्तिसे जा रहा है। अब यदि गकको जोड़ दें, तो उसकी लम्बाई परवलयकी लम्बाईसे सदा छोटी रहेगी। ऐसा होनेपर भी पत्थर उस छोटे मार्गसे न जाकर लम्बे परवलय मार्गसे जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि भले ही सीधा मार्ग मिले, किन्तु यह आवश्यक नहीं है, कि पदार्थ उसी मार्गसे जावे। इसलिये यह कहा जा सकता है कि, क्योंकि पत्थर सीधा मार्ग छोड़कर वक्र मार्गसे जाता है, इस स्थानके आकाशमें वक्रता आ गयी है। अर्थात् जिस आकाशमें बढ़ते हुए वेग हैं, उसमें वक्रता रहती है। इसका आगे और भी विवेचन किया जावेगा।

रबरके एक पतले, लंबे और चौड़े टुकड़ेको खींचकर एक चौखटमें जमा दिया। उसपर समानान्तर रेखाएँ खींचीं। प्रत्येक रेखापर एक चींटी जा रही है, ऐसा मानलें वे चींटियाँ सरल और समानान्तर मार्गोंसे जावेंगी। उस रबरके टुकड़ेके बीचों-बीच सीसेकी एक वज़नदार गोली रख दी। उस गोलीके कारण रबरका वह टुकड़ा समतल नहीं रह सकता; उसके बीचमें कुछ निम्नता आ जावेगी। इस कारण चींटियोंके मार्ग कुछ वक्र हो जावेंगे। जो मार्ग

गोलीके जितने पाससे जावेगा उसमें उतनी ही अधिक वक्रता आवेगी। यही बात ऐंस्टैनकी भाषामें इस प्रकार कही जा सकती है, कि चींटियोंके जगत्‌में‌के मार्ग पहले सीधे थे, किन्तु गोलीके कारण उनके जगतमें वक्रता आ गयी है और इसीलिये मार्ग वक्र दीखते हैं।

अब एक साधारण जीवनका उदाहरण लें। जब कभी कौआ एक झाड़से उड़कर दूसरे झाड़की ओर जाता है, तब वह सरल रेखामें न जाकर उससे कुछ झुकी हुई रेखामें जाता है। यह मार्ग उसी प्रकारका रहेगा, जिस प्रकार एक बड़े वज़नदार रस्सेको दो स्थानोंमें बाँध देनेसे होता है। जिस तरह रस्सेमें झुकाव आ जाता है, उसी तरह उस कौवेके मार्गमें भी आ जाता है। कौवेका सरल मार्गमें जाना सम्भव है, किन्तु पृथ्वीके आकर्षणके कारण वह वक्र मार्ग पसंद करता है।

इससे निराला एक और उदाहरण लें। इन सामने दीखनेवाली पहाड़ियोंके दूसरी ओर एक गाँव है, जहाँ हमको जाना है। यदि हम वायुयानसे जावें तो बीचमें पड़नेवाली टेकड़ी, झाड़ और घाटियोंका विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये हमको उतना ही अन्तर जाना पड़ेगा, जितना इन दो गाँवोंके बीचमें है। पैदल जानेका विचार करनेपर तो हम पगडंडीसे ही जावेंगे। यदि बिलकुल सीधे मार्गसे जाना सम्भव भी हो, तो भी यह हमेशा सुलभ नहीं रहता। गाड़ीका रास्ता इससे भी अधिक लम्बा रहता है। यदि मोटरसे जाना हो, तो उसके लिये सीधी सड़क चाहिये; इसलिये यह रास्ता सबसे लम्बा होगा।

यदि यह पूछा जावे कि वह गाँव कितनी दूर है, तो वाहनके अनुसार अलग-अलग उत्तर मिलेंगे। उनमेंसे सत्य कौन है? अपनी-अपनी दृष्टिमें यात्री जो सत्य समझता है, वही कहता है, क्योंकि वह अपने वाहनका विचार करते हुए ही इसका उत्तर देगा। बम्बईसे दिल्ली कितनी दूर है— इस प्रश्नका उत्तर होगा ९५७ मील। इसका कारण यह है कि जी० आइ० पी० रेलगाड़ीसे बम्बईसे ९५७ मीलका प्रवास किये बिना दिल्ली नहीं पहुँच सकते, और इसलिये ९५७ मील उन रेलोंकी लम्बाई है, जो बम्बईसे इटारसी होते हुए दिल्लीतक डाली गयी हैं। मोटरका रास्ता बम्बई-आगरा सड़कसे रहेगा और वायुयान तो सीधा (लगभग ६६० मील) चला जावेगा। इसलिये इस प्रश्नका उत्तर कोई भी प्रवासी अपने वाहनका विचार करते हुए ही देगा।

इसलिये यों कहा जा सकता है कि बीचकी कठिनाइयोंके कारण वाहनोंके मार्गमें वक्रता आ गयी है। इसी तरह उस कमरेमें पत्थरके आनेपर उसके वेगके कारण आकाशमें वक्रता आ गयी है, और पत्थर सीधा मार्ग छोड़कर परवलयके मार्गसे जा रहा है।

यदि एक धागेके एक छोरको अंगुलीसे पकड़कर और दूसरेमें एक पत्थर बाँधकर घुमावें तो अंगुलीके ऊपर कुछ तनाव मालूम होता है। इस स्थितिमें पत्थरमें दो वेग रहते हैं - पहला धागेकी दिशामें अंगुलीसे दूर और दूसरा धागेके समकोण। इसका फल यह होता है, कि पत्थर वृत्ताकार मार्गमें घूमता रहता है। यदि पत्थरका जाड्य ज, वेग व और धागेकी लंबाई ल हो, तो

$$\text{अंगुली परका तनाव} = \text{उत्क्षेपण शक्ति} = \frac{\text{ज व}^{2}}{\text{ल}}$$

इस गणितको पृथ्वीके मार्गमें लगाकर देखें। मानलें कि पृथ्वीका जाड्य 'पृ' और सूर्यका जाड्य 'सू' है। पृथ्वी प्रति से. १८½ मील (अर्थात् $\frac{१}{१०,०००}$ प्रा।से) वेगसे अपनी कक्षा पर जा रही है, और सूर्यसे उसका अन्तर ५०० प्रवे हैं। अर्थात्

$$\text{उत्क्षेपण शक्ति} = \frac{\text{पृ} \times \left(\frac{१}{१०,०००}\right)^{२}}{५००}$$

न्यूटनके नियमानुसार

$$\text{आकर्षण शक्ति} = \frac{\text{पृ} \times \text{सू}}{५००^{२}}$$

और पृथ्वी यदि सूर्यके चारों ओर घूमनेको है, तो ये दोनों बराबर होने चाहिये।

$$\therefore \frac{\text{पृ} \times \text{सू}}{५००^{२}} = \frac{\text{पृ} \times \frac{१}{(१०,०००)^{२}}}{५००}$$

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य

[लेखक—रामदास गौड़*]

"बिन पण्डित ग्रन्थ प्रकाश नहीं,
बिन ग्रन्थके पण्डित खण्डित भा है"।
—भिखारीदास।

'विज्ञान' शब्दकी नयी परिभाषा हिन्दी भाषा-भाषियों तथा नवशिक्षितोंके मनमें ऐसी जम गयी है कि अत्यन्त संकुचित अर्थसे हटकर लोग उसके वास्तविक और विशाल अर्थपर कम ध्यान देते हैं। एक ओर जहाँ नवशिक्षित समाज भौतिक, रसायन, जीव तथा गणित, इन्हीं चारपर विज्ञान-को समाप्त कर देता है, दूसरी ओर इन चार विषयोंसे अन-भिज्ञ वा इनपर ध्यान न देनेवाले अनुभवजन्य अध्यात्मज्ञान-को ही विज्ञान समझते हैं। सच पूछिये तो सभी तरहका अनुभव-जन्य ज्ञान विज्ञान शब्दमें विवक्षित है: और अपनी प्राचीन अध्यात्मविद्यासे लेकर छोटी-से-छोटी अनुभव-जनित विद्या, जैसे शिल्पके यंत्रोंका ज्ञान भी, विज्ञानके अन्तर्गत है। किसी विषयको अपने अनुभवकी कसौटीपर कसकर उसके सम्बन्धमें नियमोंका निर्धारण जब मनुष्य करता है, जब उस विषयके सम्बन्धमें सम्यक् ज्ञान प्राप्त करनेके लिये परीक्षा करता और उसे अपनी विचार-श्रृङ्खलामें उचित स्थान देता है, वस्तुतः तब उस विषयके ज्ञानको विज्ञानका रूप दे देता है। इस दृष्टिसे विज्ञान शब्दसे वेदके छः अङ्ग, चारों उपवेद, दर्शनोंके अनेक अङ्ग, योग और वेदान्त, सभी विवक्षित हैं। रसायन, भौतिक, गणित तथा जीवविज्ञान भी अंशतः वेदांगों, उपवेदों तथा दर्शनोंमें शामिल हो जाते हैं। गत दो तीन वर्षोंमें, पाश्चात्य देशोंमें, इन विज्ञानोंकी इतनी अधिक उन्नति हुई है कि अब लोग इन्हींको प्रधानता देने लगे हैं और विश्वविद्यालयोंमें इन्हींकी शिक्षा दी जानेसे शिक्षित समाज विज्ञान शब्दसे केवल इन्हीं विशेष विज्ञा-नोंको समझने लगा है।

विज्ञानके इसी विशाल अर्थको लेकर इस लेखमें यह विचार करना है कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य अबतक कितना और कैसा है, भविष्यमें उसकी कितनी और कैसी उन्नतिकी आशा है और यथेष्ट उन्नतिके लिये क्या-क्या उपाय हिन्दी-हितैषियोंके लिये करणीय हैं।

यद्यपि व्याकरण तथा निरुक्त दोनों ही विषय भाषा-विज्ञानके अन्तर्गत हैं और काव्यरीति स्वयं विज्ञानका एक अंग है, तथापि इस निबन्धमें इन विषयोंका समावेश वर्तमान लेखकके लिये अनधिकार चर्चा-सी हो जायगी।

* पन्द्रह बरस पहले लिखा हुआ एक लेख। आज भी यह लेख ज्यों का-त्यों दिया जा सकता है, हमारी प्रगतिपर यही खासी टीका है!
—रा० गौ०

$$\therefore \frac{\text{सू}}{५००} = \frac{१}{(१०,०००)^२}$$

$$\therefore \text{सू} = \frac{५००}{(१०,०००)^२}$$

$$= ०.००००५$$

ऐन्स्टैनके गणितसे सू = ०.०००००४९ प्रवे। किन्तु ऊपरके गणितसे जड़त्वका ज्ञान सुगमतासे हो सकता है, इसलिये नया गणित नहीं दिया जाता।)

किन्तु प्रवे=३ लाख किलोमीटर।

∴ सू = ३००००० × ०.०००००५ कि० मी०

= १.५ कि० मी०।

= १५०० मीटर।——(३४)

ऊपर लिखे गणितके अनुसार

पृ = ०.०००००००००००२ प्र०

= ०.०१०००००००००२ × ३००००० कि० मी०

= ०.००००६ कि० मी०

= ६ मि० मी० —— (३५)

(नये गणितसे पृ = ५.१ मि मी. आता है।)

इससे यह सिद्ध होता है, कि सूर्य, पृथ्वी या किसी अन्य वस्तुका जाड्य यदि नापा जावे, तो वह किलोमीटर, या मिलीमीटर आदि लम्बाईकी इकाइयोंमें आता है।

तो भी इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि जहाँ काव्य-रीतियोंके विषयमें हिन्दी-साहित्य सैकड़ों-हज़ारों अच्छे-ग्रन्थोंके नाम गिना सकता है, वहाँ एक भी व्याकरण या एक भी निरुक्त ग्रन्थका निर्देश नहीं कर सकता, जिसे हम वैज्ञानिकदृष्टिसे इस अङ्गको गौरव देनेवाला कह सकें। यों तो छोटे-मोटे बीसों व्याकरण छप चुके हैं, कोषोंकी भी कमी नहीं, परन्तु हिन्दीके मूल रूप प्राकृतके अध्ययनके अभावसे एक भी व्याकरण स्वाधीनतापूर्वक भाषाविज्ञानपर विचार करनेमें सहायता देनेवाला नहीं दीखता। अंग्रेजी वा संस्कृतकी शैलीका अनुकरण करना ही व्याकरणकारोंने भाषा-विज्ञानका अध्ययन समझ रखा है। हिन्दीके शब्दोंके निरुक्तपर भी किसी कोषकारने विचार नहीं किया है। हिन्दी-शब्दसागरने जो काम आरम्भ किया है वह न जाने कब पूरा होगा। परन्तु वह भी निरुक्त (Philology) की कमीको पूरा नहीं कर सकता है। जबतक हिन्दी-हितैषी प्राकृतके विद्वान इस ओर ध्यान न देंगे, निरुक्तका अङ्ग अपूर्ण ही रहेगा।

प्राचीन विज्ञानोंपर हिन्दी-भाषामें पुस्तकोंकी कमी नहीं है, संस्कृतके ज्यौतिष-ग्रन्थोंके अनुवादके सिवा हिन्दीमें ही ज्यौतिष सम्बन्धी स्वतंत्र ग्रन्थ हैं। हाँ, इतना अवश्य कहना पड़ता है कि इनमें फलित ज्यौतिषकी ही संख्या अधिक है। दोनोंको मिलानेसे ज्यौतिष ग्रन्थोंकी ही संख्या सौसे अधिक हो जाती है। इनमें हम गणितकी गणना नहीं करते। साथ ही आधुनिक ज्यौतिषपर अबतक छोटी-छोटी दो चार ही पुस्तकें देखनेमें आयी हैं, जिनसे कोई गणितज्यौतिष सम्बन्धी महत्वकी बात सीखनेमें नहीं आ सकती। हाँ, इनसे ज्ञानपिपासा बढ़ेगी, बुद्धिका विकास होगा और साथ ही मनोरंजन भी हो सकता है। इनमें सबसे उत्तम मनोरंजन पुस्तकमालाकी 'ज्योतिर्विनोद' नामक पुस्तक है। गणितज्यौतिषके विषयसे सर्वसाधारणको रुचि नहीं। पंचाङ्गकी रचना करनेवाले भी प्रायः (Nautical Almanac) की 'नाविक पंचांग'ही गणनासे काम निकाल लेते हैं। स्वयं गणित करने और दृग्गणितके यन्त्रोंसे काम लेनेके झगड़ेमें नहीं पड़ते। गणितमय ज्यौतिष-ग्रन्थ तो तभी उपयोगी हो सकता है जब 'मान-मन्दिर' वा 'यंत्र-मन्दिर' निर्माण करके हमारे ज्यौतिषी स्वयं दृग्गणितसे काम ले। यही बात है कि ऐसे आधुनिक ग्रन्थोंका अभाव है, प्रत्युत इस तरहके प्राचीन ग्रंथोंका भी यथोचित अध्ययन नहीं होता।

वैद्यकके सभी तरहके ग्रन्थ, अनुवाद तथा स्वतंत्र दोनों, हिन्दीमें सैकड़ों हैं, परन्तु इनमें शरीररचनाविज्ञान, वनस्पति शास्त्र और रसायनके ग्रंथोंकी अत्यन्त कमी है। शरीर-रचनाके विषयमें हालमें ही संस्कृतमें, 'प्रत्यक्ष शारीरम्' प्रकाशित हुआ है। इसका अनुवाद हिन्दीमें अभी नहीं हुआ, परंतु उससे अच्छा और अधिक पूर्ण ग्रन्थ "हमारे शरीरकी रचना" है। "प्रसूति-शास्त्र" नामका एक और भी उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। आगरेके मेडिकल स्कूल-के पाठ्य-ग्रन्थ भी हिन्दीमें लिखे गये हैं: परंतु उनकी हिन्दीमें उनसे भी बड़े और विस्तृत ग्रन्थोंकी बड़ी आवश्यकता है, जिनमें प्राचीन और आधुनिक दोनों रीतियोंका तुलनात्मक अध्ययन हो और जिनकेद्वारा हमारा प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र सर्वाङ्गपूर्ण हो जाय। रासायनिक विश्लेषण, यांत्रिक निदान, विद्युत्रश्मियों तथा रेडियमका प्रयोग, अभिनवशल्यचिकित्सा, भारतीय होमिओपेथी प्रभृत अनेकानेक विषयोंपर एक भी पुस्तक नहीं है।

सांख्य और वैशेषिक, योग और वेदान्तपर भी संस्कृतसे अनुवाद तथा स्वतंत्र हिन्दीके ग्रन्थ सैकड़ों हैं। वैशेषिकसे भौतिक शास्त्रका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यदि उसे प्राचीन भौतिक शास्त्र कहें तो अनुचित न होगा: परंतु प्राचीन और आधुनिक दोनों भौतिकोंके तुलनात्मक अध्ययनपर अभीतक कोई पुस्तक नहीं लिखी गयी। इसी प्रकार वेदान्तशास्त्रपर भी तुलनात्मक ग्रन्थोंकी आवश्यकता है। श्री पाण्डेय रामावतार शर्म्माने एक साल कलकत्ता विश्वविद्यालयमें वेदान्तके तुलनात्मक अध्ययनपर एवं नव-वेदान्तपर कई व्याख्यान दिये थे। वह भी अंग्रेजीमें थे और उसी भाषामें छपे भी हैं। परंतु हिन्दीमें उनका अनुवाद नहीं हुआ: अनुवादकी कोई आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि व्याख्याता महोदय, यदि आवश्यकता हो तो, उसी विषयपर स्वतंत्र ग्रन्थ लिख सकते हैं। परंतु वह व्याख्यान ही पर्य्याप्त नहीं हैं। पाश्चात्य वेदान्तकी तुलना प्राच्य वेदान्तसे बिना विस्तार-

पूर्वक किये दोनों पक्षोंसे अभिज्ञता नहीं हो सकती।

हमारे देशमें अंग्रेजीके माध्यमसे शिक्षाका आरम्भ हुए अस्सी वर्षसे अधिक हुए। इस अस्वाभाविक और अनोखी रीतिके प्रचारमें आरम्भसे ही कठिनाइयाँ दीखने लगीं। शिक्षाकी अधिकांश डोर सरकारके तथा मिशनरियोंके हाथमें थी। इन दोनोंमें मिशनरियोंको देशी भाषा द्वारा ख्रिष्टीय-मतका प्रचार करना इष्ट था। प्रारम्भिक शिक्षामें देशी भाषाओंका रखा जाना अनिवार्य्य था। उसके अनुकूल ग्रंथ भी होने चाहिएँ। उधर पाश्चात्य देशोंमें, विशेषतः इंग्लैंडमें, विज्ञानके प्रचार और प्रसारके लिये सुबोध पुस्तकें और वैज्ञानिक सामयिक पत्र भी निकलने लगे थे। विज्ञानको लोकप्रिय और सर्व सुलभ बनानेका प्रयत्न प्रारंभ हो गया था। वहाँकी देखा-देखी यहाँ भी देशी भाषाओंमें सुबोध पुस्तकें रची जाने लगीं। आरेके सेकेंड मास्टर पं० बलदेवराम झाने १८६०में 'सरल विज्ञान विटप' नामक एक पुस्तक प्रकाशित करायी। यह अंग्रेजीकी Popular Natural Philosophy का अनुवाद था। 'विटप' मूल ग्रन्थके अनुकूल कई जिल्दोंमें होना चाहिये, पर लेखकने एक ही पुस्तक इस नामकी देखी है। पादरी शेरिंगद्वारा सम्पादित १८५९ तथा १८६० ई० में विद्यासागर नामकी पुस्तकमाला संयुक्त प्रान्तके मिर्ज़ापुरसे प्रकाशित हुई। काशीके पण्डित मथुराप्रसाद मिश्रने 'वाह्यप्रपंच' दर्पण आदि कई छोटी-छोटी आधुनिक विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं, जो १८५८, १८५९, १८६० ई० में छपीं। राजा शिवप्रसादका 'विद्यांकुर' शिक्षाक्षेत्रसे इसी समय निकला। अंग्रेजीमें वैज्ञानिक पाठ्य-ग्रन्थ हमारे देशके लिये लिखे जाने लगे और उनका अनुवाद किया जाने लगा। पं० बद्रीलाल ने ऐसा ही एक छोटा-सा आधुनिक रसायन-सम्बन्धी प्रश्नोत्तरका ग्रन्थ अंग्रेज़ीसे अनुवाद किया था, जो कलकत्तेके बैपटिस्ट मिशन प्रेसमें छपा था। उसका दूसरा संस्करण १८८३ ई० में छापनेका यश लखनऊके मुंशी नवलकिशोरको प्राप्त हुआ। १८७० और १८८० के बीचमें रुड़कीके इंजिनियरिंग कालिजके छोटे दरजोंके लिये हिन्दीमें ग्रन्थ लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। लाला जगमोहनलालने, जो रुड़कीमें अध्यापक थे, कई पुस्तकें हिन्दीमें स्वतंत्र भी लिखीं और कई पुस्तकोंके अनुवाद भी किये। इसी समय काशीके पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र, पं० उमाशंकर मिश्र, पं० रमाशङ्कर मिश्र प्रभृति मिश्र-बन्धुओंने पदार्थ, जीव, गणित, यंत्र सभी आधुनिक विज्ञानोंपर छोटे-छोटे, परन्तु सबसे नये और नवाविष्कृत विषयोंको समाविष्ट करते हुए ग्रन्थ लिखे, जो हिन्दी मिडिल परीक्षामें पढ़ाये भी जाने लगे। खेद है कि हिन्दी-हितैषियोंका प्रभाव शिक्षाविभागपर घट जानेसे विज्ञानकी पढ़ाई मिडिलसे उठा दी गयी। इन मिश्रबन्धुओंको इस क्षेत्रमें बहुत कालतक और बड़े महत्त्वकी सेवा करनेका श्रेय प्राप्त है। इन्हींने 'काशीपत्रिका' भी निकाली जो कई वर्षतक छपती रही। कोई २५ वर्ष हुए वह बन्द हो गयी। इसमें साहित्य, विज्ञान आदि सभी तरहके उत्तम लेख रहते थे। एक ओर उर्दू और दूसरी ओर नागरी अक्षरोंमें निकलती थी। पहली वैज्ञानिक-पत्रिका यदि इसे कहें तो अनुचित न होगा। लाहौरमें बाबू नवीनचन्द्रराय बंगाली होकर भी राष्ट्र-भाषा हिन्दीके प्रचारमें रत थे। पंजाब विश्वविद्यालयमें पढ़ाये जानेके लिये 'स्थितितत्व', 'गतितत्व' आदि कई छोटी-छोटी पुस्तकें सन् १८८२ ई० के लगभग उन्होंने स्वयं लिखकर और हिन्दीमें अनुवाद करके छपवायीं। उनके कार्य्यको थोड़ा बहुत उनकी सुयोग्य पुत्री चलाये जा रही हैं। बिहार प्रान्त भी इस काममें पिछड़ा नहीं था। वहाँके असिस्टेंट इंस्पेक्टरोंने कई वैज्ञानिक पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करायीं। मध्यप्रदेशसे हिन्दीमें वैज्ञानिक-ग्रन्थ निकले या नहीं, इसका पता वर्तमान लेखकको नहीं है—कोई पुस्तक देखनेमें नहीं आयी। परन्तु इसमें तो सन्देह नहीं कि पंजाब, संयुक्तप्रान्त तथा बिहार अर्थात् समस्त हिन्दी-भाषी उत्तर भारत लगभग ६० वर्षोंसे हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी रचनामें थोड़ा बहुत प्रयत्नशील है।

गणित, भौतिक, रसायन, तथा जीवविज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थोंकी रचना स्वतन्त्र रीतिसे और आधुनिक क्रमसे होना हालमें ही प्रारम्भ हुआ है। इन शास्त्रोंके अनेक अङ्ग प्राचीन हैं, विशेषतः गणितके। परन्तु भौतिक, रसायन तथा जीव-विज्ञानके अधिकांशका आविष्कार सौ बरसके भीतर ही हुआ है। रसायनशास्त्रका ठीक क्रमसे संगठित होना उसी दिनसे समझा जा सकता है जिस दिन मंडलेपका अनुवर्तन-

सिद्धान्त प्रकाशित हुआ। अतः आधुनिक रसायनशास्त्र ५० वर्षसे अधिक पुराना नहीं है। यदि हिन्दी भाषामें आधुनिक रसायनपर ५० वर्षके पहले कोई ग्रन्थ न होता तो आश्चर्यकी बात न थी और न इसमें हमारे साहित्यकी न्यूनता थी। जीव और भौतिक विज्ञानकी दशा भी प्रायः ऐसी ही थी। जीव-विज्ञानका अध्ययन तो अबतक प्रारंभिक दशामें ही समझा जाता है। ऐसी दशा होते हुए इन विज्ञानोंपर भी उस समय हमारे यहाँ छोटी कक्षाओंके उपयुक्त पुस्तकोंका होना कम गौरवकी बात नहीं है। गंभीर और ऊँचे विषयोंकी पुस्तकें लिखी भी जातीं तो उन्हें कौन पूछता: और अब ही उन्हें पढ़नेकी कौन इच्छा करता है? जिस कक्षाकी पुस्तकें अपेक्षित थीं उसी कक्षाके उपयुक्त बनती भी थीं। हिन्दीद्वारा पढ़ाई मिडिलसे अधिक बी. ए., एम्. ए. आदिमें भी होती तो विद्वानोंके अध्ययनके उपयुक्त केवल ग्रंथ ही न बनते वरन् मौलिक गवेषणाओंको उचित उत्तेजना मिलती और उनका विवरण प्रकाश करनेवाली पत्रिकाएँ भी निकलती।

१. आजसे पहले हिन्दीमें गणितकी पुस्तकें

गणितके विषयकी हिन्दीमें पचासों पुस्तकें देखी हैं: परन्तु स्वर्गीय सुधाकरजीके 'चलन-कलन' और 'चलराशि-कलन' से ऊँची कोटिका ग्रंथ हिन्दीमें अबतक प्रकाशित नहीं हुआ। यह ग्रंथ भी प्रचारके अभावके कारण दुर्लभ हो रहे हैं। सुधाकरजीसे पहले स्वर्गीय पं॰ बापूदेव शास्त्रीने गणितके ग्रंथोंको हिन्दीमें लिखना प्रारंभ किया था, परन्तु उनके अपूर्ण बीजगणितके सिवा और कोई ग्रंथ लेखकके देखनेमें नहीं आया। सुधाकरजीके लिखे कई ग्रंथ अप्रकाशित हैं। समीकरण-मीमांसा हालमें ही देखनेमें आयी है।*

हिन्दीमें विज्ञानकी ऐसी हीन दशा देखकर कोई ऐसा न समझे कि उस समय अंग्रेज़ी-द्वारा उच्च-कोटिकी पढ़ाई होती रही होगी। प्रमुख विश्वविद्यालयोंमें भी अंग्रेज़ी-भाषाकेद्वारा सायंसकी पढ़ाई उन दिनों अत्यन्त कम थी। यहाँतक कि जो विषय उस समयके एम्. ए. में भी नहीं पढ़े जाते थे, वही आज प्रवेशिका (मैट्रिक) पास करते ही लड़कोंके गले मढ़े जाते हैं। जहाँ अंग्रेज़ीके माध्यमसे ही विज्ञानकी इतनी कम चर्चा थी वहाँ हिन्दीके माध्यममें विज्ञानका प्रवेश करना राजा शिवप्रसाद, पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र आदि उस समयके हिन्दी हितैषियोंकी ही सतत चेष्टाका फल था। जब उनका प्रभाव कम हो गया विज्ञान-की हिन्दी पुस्तकें शिक्षा-विभागसे उठा दी गयीं।

२. वैज्ञानिक ग्रन्थोंका जीवन और प्रचार

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पुस्तकोंका जीवन प्रचारपर निर्भर है। यंत्रालयमें ग्रन्थका उपनयन-संस्कार हो जाना ही पर्याप्त नहीं है। जिन ग्रन्थोंका प्रचार नहीं होता, छपनेके पीछे भी उनकी अल्पमृत्यु हो जाती है। जिनका प्रचार हुआ छपें या न छपें, उनके जीवनका बीमा हो गया। चाहनेवाले तो आप उनकी खोजमें रहते हैं। विज्ञानके ग्रन्थ धार्मिक ग्रन्थ नहीं कि परलोक-साधनके लिये उनका पढ़ना आवश्यक हो। अर्थ-साधनके द्वार भी नहीं, क्योंकि हमारे देशमें पढ़े-लिखे नौकरी करते हैं, शेष खेती अथवा व्यापारसे रोटी कमाते हैं। जिन पढ़े-लिखोंमे नौकरी न की वह वकालत, डाक्टरी, इंजीनियरीसे धन कमाते हैं, उन्हें हिन्दी पुस्तकोंके पढ़नेकी न तो योग्यता है और न आवश्यकता। डाक्टरी, इंजीनियरी आदि सीखनेवालोंको गणित, भौतिक, रसायन तथा जीवविज्ञान पढ़ना पड़ता है अवश्य, पर उन्हें अंग्रेज़ीमें पुस्तकें उपलब्ध हैं: पढ़ानेवाले अंग्रेज़ या अंग्रेज़ी-भाषी हैं। उन्हें हिन्दीकी आवश्यकता नहीं है। रहे हमारे यहाँके वैद्य, उन्हें अपने आयुर्वेदके द्वारा जितनी वैज्ञानिक शिक्षा मिलती है उतनेसे एक तिल भी बढ़नेकी अधिकांशमें महत्वाकांक्षा नहीं; और बहुतेरे तो विज्ञानको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं*। शिल्पमें ही विज्ञानका सबसे अधिक प्रयोग है, पर वह विदेशियोंके

* इसकी हस्त-लिखित प्रति गणिताचार्य्य श्री डा॰ गणेशप्रसाद-जीके द्वारा परिषत्को मिली और कई बरस बाद विज्ञानके द्वारा ही वह प्रकाशित भी की गई। —रा॰ गौ॰

* सहारनपुरके एक प्रसिद्ध वैद्यराजको लेखकने ज्वालापुरकी आयुर्वेदिक प्रयोगशालामें अणुवीक्षण यंत्रके सहारे मक्खीकी अगणित आँखोंके दर्शन कराये थे। वैद्यराजने कुछ देर विचार करके अपनी यह धारणा प्रकट की कि यह सब दृश्य आपके कांचका खेल है, वस्तुतः मक्खीके इतनी आँखें नहीं हैं। जबतक दृष्टि-सम्बन्धी प्रकाश सिद्धांत उन्हें नहीं समझाया गया तबतक उन्हें विश्वास नहीं हुआ।

हाथमें है। भारतीय जहाँ कहीं कारखानोंमें, यंत्रशालाओंमें काम कर रहे हैं, खलासी, कुली, मजदूर, जमादार ड्रैवर, लश्कर आदिसे अधिक श्रेणीका काम न करते हैं, न पाते हैं। योग्य हों तो पा भी जायँ, पर न वह योग्य होनेकी स्वयं चेष्टा करते हैं, न साधन है, न योग्य बनानेकी किसी ओरसे कोशिश ही होती है। ऐसी दशामें विज्ञानके ग्रन्थ पढ़नेवाले कहाँसे आयें? विज्ञानके ग्रन्थोंमें 'लण्डन-रहस्य' 'चन्द्रकान्ता-सन्तति' प्रभृति उपन्यासों वा 'छबीली-भटियारिन' सरीखी कहानियोंकी-सी रोचकता होनी असंभव है और 'कजली' और 'औरत मर्दके झगड़े' की तरह सुलभ दामोंपर उनका मिलना वा छपना भी कल्पनासे बाहर है। 'इञ्जील' की पुस्तकोंकी नाईं विज्ञानग्रन्थोंके प्रचारार्थ कोई विदेशी वा देशी संस्था धन लुटाने को तैयार नहीं है। ऐसी दशामें विज्ञानग्रन्थोंके जीवित रहने तथा नये ग्रन्थोंके प्रकाशित होनेकी क्या आशा?

३. हिन्दीमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंकी कमीके कारण

प्रो० (अब 'सर') जदुनाथ सरकारने जनवरी, १९१८के माडर्नरिव्यूमें लिखा है—"साहित्य-सम्मेलनोंका बड़ा ज़ोर इस बातपर है कि देशीभाषाका माध्यम कालिजोंमें हो जानेसे विविध विषयोंपर ग्रंथोंका अभाव दूर हो जायगा और ग्रंथकारोंकी जीविकाका उपाय हो जायगा। परन्तु यह उल्टी बात है। यह न भूलना चाहिये कि इङ्गलैण्डका बृहत् साहित्य पाठ्यग्रन्थोंके लेखकोंकी सृष्टि नहीं है, वरन् हमारी विद्यासमितियों और सेंट्रल टेक्स्ट बुक कमेटियों (पाठ्यग्रन्थ-निर्धारिणी-समितियों) की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती और बड़ी संस्थाओंसे उत्पन्न हुआ है।"* हमको खेद है कि सरकार महोदय जैसे पुराने अध्यापकने ऐसी ओछी बात लिखी! उन्होंने ज़रा भी इस बातपर ध्यान न दिया कि इङ्गलैण्डमें विविध साहित्यके अच्छे ग्रन्थ उनके रचयिताओं, उनकी पोषक संस्थाओं और देशके विद्वानोंके अपनी मातृभाषाके सहायक होनेके कारण लिखे गये थे और लिखे गये हैं। प्रोफेसर महोदयकी गिनती भारतीय इतिहासके विद्वानोंमें है और आपने यह अंग्रेजीका लेख देशी भाषाओंके पक्षमें ही लिखा है। आपने कई इतिहास ग्रंथ लिखे हैं। अर्थ-शास्त्रपर भी एक ग्रन्थ लिखा है। आपके सभी ग्रन्थ अंग्रेजीमें हैं। हम पूछते हैं कि यदि मेकालेने अंग्रेजी-द्वारा शिक्षाका प्रचार न किया होता तो आज स्वयं प्रोफेसर महोदय उन ग्रन्थोंको अंग्रेजीमें लिखते या बँगलामें?

इस साहित्य-सम्बन्धी प्रश्नपर विचार करते हुए लोग प्रायः यह भूल जाते हैं कि साहित्यपर राज्याश्रय और राष्ट्राश्रयका कितना बड़ा प्रभाव पड़ता है। हमारे देशमें विद्वानोंकी सृष्टि लगभग ७५ वर्षसे अंग्रेजी सरकारके हाथमें है। फल यह होता है कि अंग्रेजीसे अभिज्ञ जन ही वस्तुतः विद्वान् हो पाता है। अंग्रेजीद्वारा ही उच्च कोटिका विद्याध्ययन करके उसके सिर विद्वत्ताकी पाग बँधती है। लड़के अंग्रेजी बोलनेका अभ्यास आदिसे ही करते हैं। व्याख्यानका अंग्रेजीमें ही देना वक्ता होनेका सार्टिफिकेट है। बाप-बेटोंमें अंग्रेजीमें ही पत्रव्यवहार होता है; रेलमें बैठे-बैठे दो सज्जनों के परिचयका आरम्भ अंग्रेजीसे ही होता है; रेलके बाबुओंसे हिन्दीमें सभ्यतापूर्वक बातचीत कीजिये तो डाँट सुनिये और अंग्रेजीमें असभ्य वाक्यसे भी डाँट दीजिये तो दब जाते हैं। इन सबका कारण है राज्याश्रय। राष्ट्राश्रय हिन्दीको अवश्य है, परन्तु पूरा नहीं, क्योंकि शिक्षाकी नीति राष्ट्रके हाथमें नहीं है। भारतीय गणित-परिषदकी गवेषणात्मिका पत्रिका कलकत्तेसे अंग्रेजीमें ही निकल रही है। प्रयागसे

* "I have heard it openly argued in our Literary Conferences and Academies that the introduction of the Vernacular medium in our Colleges was necessary as the best means of enriching our literature and giving bread to our starving authors. This is putting the cart before the horse. It should never be forgotten that the great literature of England is not the creation of text-book-writers: it has grown out of a patronage of a body much larger and far wiser than our Central Text-book Committees and Boards of Studies"

(Modern Review, Vol. XXIII. No. 1. Page 6)

अर्थशास्त्र-सम्बन्धी ऐसी ही पत्रिका अंग्रेजीमें प्रकाशित हो रही है। सरकारी विभागके भूगर्भ, कृषि, ज्यौतिष, पुरातत्त्व आदि सभी विषयोंकी रिपोर्ट अंग्रेजीमें ही निकलती है। आधुनिक शिक्षासे थोड़ेसे विद्वानोंका जो निर्माण हो जाता है वह हवा देखकर चलते और अंग्रेजीमें ही ग्रन्थरचना करते हैं। परन्तु ग्रन्थ परायी भाषामें होनेके कारण बहुधा वह गौरव नहीं पाते जो अंग्रेजोंके लिखे ग्रन्थ अंग्रेजीमें पाते हैं। राज्याश्रयके कारण ही कर्नल कीर्तिकर और मेजर बसुका भारतीय वनस्पतियोंपर विशाल ग्रन्थ हजारों रुपये खर्च करके अंग्रेजीमें तैयार हुआ है। डाक्टर राधाकुमुद मुकुर्जीका गवेषणात्मक भारतीय जलयानोंका इतिहास भी अंग्रेजीमें ही छपा है। सर जगदीशचंद्र बसुके तीन चार मौलिक वैज्ञानिक ग्रन्थ, जिनका श्रेय भारतको ही है, अंग्रेजीमें ही छपे हैं। प्रफुल्लचन्द्ररायका भारतीय रसायनका इतिहास भी अंग्रेजीमें ही छपा है। प्रयागस्थ पाणिनीय कार्यालय सैकड़ों ग्रन्थ अंग्रेजीमें ही निकाल रहा हैं। कहाँतक गिनावें, सबका कारण यही है कि अंग्रेजीको राज्य और विद्वज्जन दोनोंका आश्रय है। ग्रन्थकारोंको निश्चय था कि देशी भाषाओंमें इन ग्रन्थोंको कोई पढ़नेवाला न मिलेगा। शिक्षाका माध्यम पूर्ण रीतिसे अपनी भाषा होती तो इस बातका डर न होता। अपनी भाषाओंमें ही पढ़नेवाले और अपनानेवाले विद्वान् मिल जाते।

हमारे इस अन्तिम निष्कर्षकी पुष्टि अबतकके वैज्ञानिक साहित्यपर विचार करनेसे भी हो जाती है। अबतक जो कुछ वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित हुआ है वह ऐसी कोटिका है जिसका उपयोग साधारण हिन्दी पढ़नेवाले कर सकते हैं। हाँ, कुछ थोड़ेसे ग्रन्थ ऐसे भी देखनेमें आये हैं; जो विषयकी असाधारणता एवं विशेषताके कारण जनतामें नहीं फैले-जैसे, हिन्दी केमिस्ट्री, गुरुकुलकी विज्ञान प्रवेशिका भौतिक तथा रसायन, वनस्पतिशास्त्र, विद्युत्-शास्त्र आदि कई पुस्तकें जो गुरुकुल विश्वविद्यालयमें तैयार हुई हैं। पर साथ ही यह भी स्मरण रहे कि यह पुस्तकें विज्ञान पढ़नेवाली कक्षाओंके लिये बनी हैं और जहाँ तहाँ पढ़ाई भी जाती हैं। यह भी सच है कि गुरुकुल या हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके परिक्षार्थी ही इन्हें लेते हैं, और इनकी संख्याके परिमाणके अनुकूल ही इन पुस्तकोंका प्रचार भी है। देशमें हिन्दीमें उच्चकोटिकी शिक्षा दी जाने लगे तो बड़ी शीघ्रतासे उच्चकोटिकी पुस्तकें भी बनने लगें।

४. वैज्ञानिक ग्रन्थोंकी प्रकाशक संस्थायें

वैज्ञानिक साहित्यकी आजतककी दशाकी आलोचना करते हुए हम नागरी-प्रचारिणी सभा और विज्ञान परिषदकी सेवाओंको भूल नहीं सकते। नागरी-प्रचारिणी सभाने अपने स्थापन-कालसे ही वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण अपना उद्देश्य रखा है। कई छोटी-मोटी पुस्तकें भी निकाली हैं। पारिभाषिक कठिनाइयाँ देखकर इसने एक बड़े महत्त्वका काम छेड़ा, और कई वर्षोंके सतत परिश्रमसे उसका प्रसिद्ध वैज्ञानिक कोष प्रकाशित हुआ?

यद्यपि अनेक हिन्दी-हितैषी ही इसे उल्टा प्रयत्न कहते और सभाको इस संबन्धमें मनमानी उल्टी सीधी सुनाते हैं; पर इसमें तिलभर भी सन्देह नहीं कि यह काम कितना ही अपूर्ण हो, कैसाही कच्चा हो, इस कोषसे सभी वैज्ञानिक लेखक काम ले रहे हैं। जिन-जिन विषयोंका कोष इसमें सम्मिलित है उन-उन विषयोंकी शब्दावलीके लिये यह ग्रन्थ बड़ा भारी आधार है। सभाको चाहिये कि इसमें जीव-विज्ञान, भूगर्भविद्या, आदि विषयोंका कोष भी सम्मिलित करे और वर्तमान कोषमें उचित परिवर्तन और परिवर्द्धन करके उसका एक नया संस्करण निकाले। उसका ४) रु० मूल्य भी अधिक है। 'हिन्दी-शब्द-सागर' की अपेक्षा यह काम कम महत्वका नहीं है। सभाकी मनोरंजन-पुस्तकमाला यद्यपि विशेषतः विज्ञानके लिये नहीं है तथापि इस मालामें राजनीति, भौतिक, पुरातत्व आदि विषयोंकी कई अच्छी पुस्तकें निकल चुकी हैं।

विज्ञानपरिषद अभी बिलकुल नयी संस्था है, परन्तु इसका काम बड़े झपाटेसे हो रहा है। 'विज्ञान' नामक हिन्दी भाषाका एक मात्र वैज्ञानिक पत्र बड़ी धूमधामसे, बड़े खर्चसे, बड़े आबोताबसे, निकल रहा है। इसमें विज्ञानके सभी विषयोंके हजारों लेख निकल चुके हैं। शब्दावली भी बहुत कुछ बन गयी है। इसके लेखक सभी नये वैज्ञानिक पदवीधर हैं, जिन्होंने

हालमें ही हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया है, परन्तु इनकी शैलीमें वह शिथिलता नहीं है जो विज्ञानकी पुरानी पुस्तकोंमें पद-पदपर खटकती है। उपयुक्त शब्दोंमें विज्ञानके ऊँचे-ऊँचे भावों और तथ्योंको व्यक्त करनेकी शक्तिका पंक्ति-पंक्तिमें परिचय मिलता है, जिससे आशा होती है कि विज्ञानका भविष्य अच्छा ही है और यदि हिन्दीको राष्ट्रशिक्षाका माध्यम बननेका गौरव प्राप्त हुआ तो यही लेखक उच्च कोटिके ग्रन्थ लिखकर उसका भंडार भर देंगे। विज्ञान-परिषदने थोड़े कालमें ही छोटी-बड़ी अनेक पुस्तकें भी निकाल डाली हैं। परिषदके सभी ग्रन्थ, विज्ञानकी तरह सचित्र और सुबोध हैं। परिषद बड़े महत्वका काम कर रही है। हिन्दी हितैषियोंको उचित है कि उसे अपनायें और उसका उत्साह बढ़ायें।

श्रीमान् महाराजा होलकरकी उदारताका आश्रय पाकर इन्दौरकी मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समितिने भी कुछ उपयोगी पुस्तकें निकाली हैं। जहाँतक लेखकको ज्ञात है, यह पुस्तकें स्वास्थ्य-विज्ञान विषयक हैं। परन्तु इनका आकार बहुत छोटा है और यह प्रारम्भिक कक्षाकी हैं। हमें आशा है कि होलकर सरकारकी उदार सहायताका भविष्यमें और भी उपयोग होगा और विविध वैज्ञानिक विषयोंपर अधिकारी लेखकोंसे मौलिक ग्रन्थ लिखवाकर प्रकाशित किये जायँगे।

इन संस्थाओंके अतिरिक्त आजकल वैज्ञानिकोंको स्वयं अपने ग्रन्थ प्रकाशित करनेका उत्साह उत्पन्न हो रहा है और हर्षकी बात है कि इस तरह भी कई बड़े अच्छे ग्रन्थ निकल गये हैं। विकास-सिद्धान्तपर साठेजीका 'विकासवाद' अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और अर्थशास्त्रपर नार्मएंजेलका "भारी भ्रम', प्रो० राधाकृष्ण झा एम. ए. की 'शासन पद्धति' डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्म्माकी 'हमारे शरीरकी रचना', प्रो० कर्म्मनारायणका 'बच्चा', बा० मुख्तारसिंहका 'साबुन', प्रो० लक्ष्मीचन्द्रकी कई शिल्प सम्बन्धी पुस्तकें—सभी महत्वके ग्रन्थ हैं, जिनसे हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यका सच्चा गौरव है। इन पुस्तकोंके निकलनेसे हम अनुमान कर सकते हैं कि वैज्ञानिक साहित्य किस दिशामें जा रहा है।

५. हिन्दीमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंके निर्माणसे लाभ

राष्ट्रभाषाके अबतकके वैज्ञानिक साहित्यकी तुलना प्रान्तीय भाषाओंके वैज्ञानिक साहित्यसे की जाय तो भी हमारी दशा किसी दृष्टिसे शोचनीय नहीं दीखती। हमारा वैज्ञानिक साहित्य सम्प्रति बँगला, मराठी और गुजरातीकी अपेक्षा कम नहीं है वरन् कई बातोंमें बढ़ा हुआ है और होना भी परमावश्यक है। भविष्यमें राष्ट्रीय शिक्षाकी भाषा कम-से-कम उत्तर भारतमें इसी हिन्दीको होना है। इसमें ही वैज्ञानिक साहित्यके ऊँचे-से-ऊँचे विचार प्रकट होने चाहियें और इसके द्वारा ही विज्ञानके अत्यन्त साधारण और नित्यके उपयोगी तथ्योंकी जानकारी भारतके करोड़ों स्त्रीपुरुषोंको होना आवश्यक है। जिन पाश्चात्य देशोंकी जनता वैज्ञानिक और ऐहिक उन्नतिमें प्रसिद्ध है तथा नित्यकी कलाओंमें दक्ष समझी जाती है उनमें प्रारम्भिक शिक्षाके द्वारा विज्ञानका उसी तरह प्रचार है जिस तरह हमारे यहाँ पुनर्जन्म, कर्म्म और आस्तिकताके सिद्धान्त प्रत्येक देहाती मजूर जानता है। विज्ञानके इस प्रचार और विकिरणका फल पाश्चात्य देशोंमें स्पष्ट है। वहाँका साधारण कुली हमारे मजूरोंसे बहुत कम मेधावी और श्रमी है, परन्तु अपने कार्य्यमें विज्ञानकी शिक्षाके कारण अधिक कुशल है। हमारे यहाँके परिश्रमी और समझदार मजूर शिक्षा पायें तो पाश्चात्योंसे कहीं अधिक काम कर दिखायें। जर्मनी तथा अमेरिका आदि शिल्पप्रधान देशोंमें विज्ञानकी सर्वोपयोगिनी सरल शिक्षाका ऐसा विस्तार और इतना प्रचार और प्रसार है कि बच्चोंके खेल वैज्ञानिक हैं और मजूर लोग मेहनतका सभी काम यन्त्रोंसे लेते हैं। घरघर बिजलीसे चौका बासन कराया जाता है, चौकीदारी करायी जा रही है, जब बच्चे और स्त्रियाँतक वैज्ञानिक तथ्योंसे परिचित हो जायँ तभी ऐसी स्थिति सम्भव है। स्कूलोंमें जैसी शिक्षा हो रही हैं उससे यह दशा कदापि सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक शिक्षा सर्वव्यापिनी होनी चाहिये; वैज्ञानिक साहित्य सर्वसुलभ और सुबोध होना चाहिये। प्रयागराजकी विज्ञान परिषद लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण करके यही उद्देश्य पूरा कर रही है। सुबोध साहित्यसे जनताकी शिक्षा

सुगम तो हो जाती है, परन्तु साथ ही जनतामें आरम्भिक शिक्षा अशुल्क और अनिवार्य्य हुए बिना इस कार्यमें यथेष्ट सफलता होनी कष्ट-कल्पना है।

यहाँ हम इतना कहे बिना नहीं रह सकते कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य-निर्माणकी साम्प्रतिक गति सन्तोषदायक नहीं है और प्रस्तुत साहित्यकी दशा यथेष्ट अच्छी नहीं है। 'विज्ञान' घाटेके साथ निकल रहा है। वैज्ञानिक ग्रन्थ ऐसे क्रमसे नहीं निकल रहे हैं कि विज्ञानाध्ययनमें यथेष्ट सहायता मिल सके। निकलें भी तो यह निश्चय नहीं कि उनका समुचित आदर ही होगा, क्योंकि हिन्दी-द्वारा शिक्षा देनेवाली संस्थायें दो तीनसे अधिक नहीं, जिनमेंसे एक या दोमें ही विज्ञानकी शिक्षा होती है। साढ़े तेरह करोड़ हिन्दीको अपनानेवाले नरनारियोंमें शायद ही साठ विद्यार्थी प्रतिवर्ष वैज्ञानिक विषयोंको मैट्रिक या उससे बड़ी कक्षाओंमें हिन्दी द्वारा पढ़ते हों। यह अत्यंत थोड़ी संख्या यद्यपि गुरुकुल और सम्मेलनके उद्योगोंका फल है तथापि 'स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्य, त्रायते महतो भयात्'। इसी थोड़ी-सी संख्यासे हमको बहुत कुछ वृद्धिकी आशा है। बनारसके हिन्दू-विश्वविद्यालयसे अब भी हमको आशा है कि वह राष्ट्रभाषाके इस बड़े स्वत्व को न भूलेगा और शीघ्र ही राष्ट्रभाषाद्वारा शिक्षाका प्रबन्ध करेगा। भारत राष्ट्रीय-शिक्षाकी बेसेंटवाली महासभा भी सम्भव है कि इस महत्वके प्रश्नपर विचार करके राष्ट्रभाषाको ही शिक्षाका माध्यम बनाये। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने भी हिन्दीद्वारा उच्च शिक्षा देनेवाले विश्वविद्यालयकी रचना अपने उद्देश्योंमें रखी है; उसे चाहिये कि शीघ्र इस उद्देशकी पूर्तिका प्रबन्ध करे। शिक्षाका साद्यन्त माध्यम जबतक राष्ट्रभाषा न होगी, साहित्यके अंग तबतक पूरे न हो सकेंगे और उच्च कोटिके वैज्ञानिक ग्रन्थोंको तबतक कोई न पूछेगा।

६. हिन्दीमें वैज्ञानिक ग्रन्थ-प्रकाशनके बहाने

विज्ञानके साहित्यज्ञोंको यह भी न भूलना चाहिये कि अर्थशास्त्रके नियमानुकूल आमद और मांग वा खपतका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कहीं आमदकी गतिपर खपत निर्भर होती है और कहीं खपतकी गतिपर आमद घटती-बढ़ती है। यद्यपि वर्तमान दशामें उच्च-कोटिके वैज्ञानिक ग्रन्थोंकी खपत नहीं है तथापि उनकी आमद वा रचनासे मांग उत्पन्न हो जाना असम्भव नहीं है। जो लोग यह बहाना लेकर उठते हैं कि ग्रन्थाभावसे हिन्दीद्वारा शिक्षा नहीं होती है; वही वस्तुतः मांगका निर्देश करते हैं। यद्यपि यह बहाना मात्र है कि पुस्तक बने तब हम शिक्षा दें तथापि यदि पुस्तक बनी बनायी मौजूद हो तो पढ़नेवालोंको अवश्य उत्तेजना मिलेगी। यद्यपि यह बहाना मात्र है कि पारिभाषिक शब्द नहीं हैं, नहीं तो हम ग्रन्थकी रचना अवश्य करते, तथापि वैज्ञानिक परिभाषाकी रचना अनेक ग्रन्थोंके निर्माणमें उत्तेजक हुई है। वर्तमान ग्रन्थकारोंको पारिश्रमिक मिलना ठीक है। फिर भीः न तो प्रकाशकोंमें साहस, उद्यम और व्यवसायकी उचित मात्रा है न वह इतने व्युत्पन्न हैं कि इस महत्कार्य्यके महत्वको समझ सकें। ऐसी दशामें ग्रन्थकारोंको उचित है कि देश-भक्तिकी दृष्टिसे इस कामको अवैतनिक करें अथवा थोड़े ही पारिश्रमिकपर सन्तुष्ट हो रहें। ग्रन्थकार व्युत्पन्न हैं, इस सेवाके महत्वको समझते हैं, इसी दृष्टिसे हम उनसे ऐसी प्रार्थना करनेका दुःसाहस, करते हैं। स्वदेशी साधारण जनसमुदाय अशिक्षा और अविद्याके घोर अंधकारमें इधर-उधर टटोल रहा है, ठोकरें खा रहा है; रोग, दुर्भिक्ष, वित्ताभाव आदिके गर्तोंमें गिर रहा है; विदेशियोंकी प्रतियोगिता और स्पर्द्धाके कांटे इसके अंग-अंगमें चुभ रहे हैं; राष्ट्रभाषा की अपर्याप्त अभिज्ञतासे मनके सैंकड़ों भावोंको व्यक्त नहीं कर सकता, अवाक् हो रहा है। इन दुःखोंसे उद्धार करनेके लिए विज्ञानका प्रकाश चाहिये कि वह अपनी वास्तविक स्थितिको समझ जाय, आगा-पीछा देखकर चले; काँटोंसे अपना मार्ग परिष्कृत कर ले; और साथ ही उसे राष्ट्र-भाषाकी ऊँची शिक्षा चाहिये कि अपने मनके भाव भी प्रकट कर सके। ग्रन्थकारो, यह पुण्यकार्य्य तुम्हारे ही हाथमें है, तुम्हारे ही करनेका है; तन-मन-धनसे स्वार्थत्यागपूर्वक इस महदनुष्ठानमें लग जाओ। यह तुम्हारा स्वधर्म है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म्मफलहेतुर्भूर्मा तेसङ्गोऽस्त्वकर्म्मणि॥"

(भगवद्गीता)

सबके लिये सरल बढ़ईगीरी

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

औज़ारोंके इस्तेमाल करनेका तरीका

किसी भी बढ़ईको कुछ समयतक काम करते देखकर और यहाँ दिये गये चित्रोंका अध्ययन करके अधिकांश यंत्रोंके प्रयोग करनेकी विधि मालूम हो जायगी। इसलिये सब यंत्रोंका ब्योरेवार वर्णन यहाँ नहीं दिया
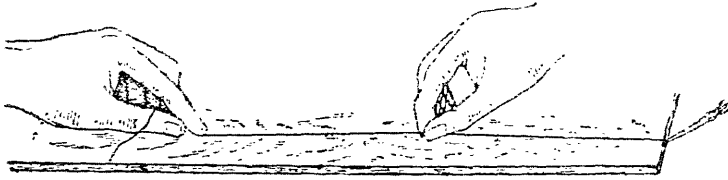
चित्र ३८—सीधी रेखा खींचना

यदि इतनी लम्बी रेखा खींचनी हो कि रूलका प्रयोग न किया जा सके तो सूतको खड़ियेसे या कोयलेसे रगड़कर और ठीक स्थानपर तानकर इसे "फटक" देना चाहिये।

जा रहा है। केवल दो चार बातें लिखी जा रही हैं जो उपयोगी हैं, परन्तु जिनकी जानकारी केवल देखनेसे नहीं आ सकती।
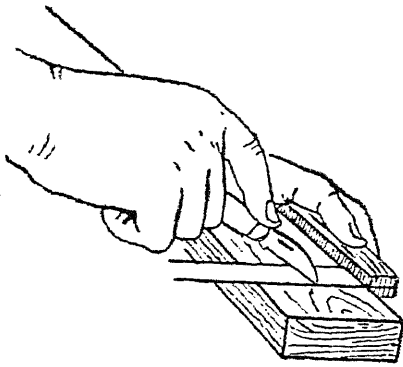
चित्र ३९—गोनियेसे लकड़ीपर निशान लगाना

आरीसे चौकोर काटनेके लिये गोनियेकी सहायतासे लकड़ीपर पेन्सिलसे अवश्य दाग लगा लेना चाहिये।

बढ़ई लोग अकसर अन्दाजसे काम कर लेते हैं, पर उनको बहुत अनुभव रहता है। आरीको आरम्भमें ठीक
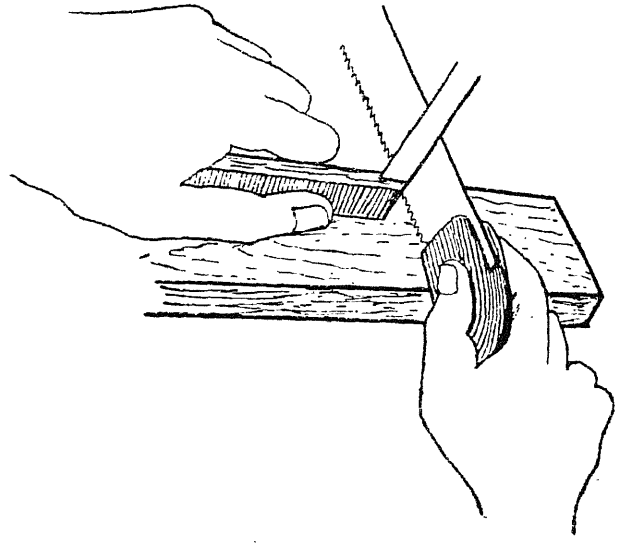
चित्र ४०—आरीसे पटरेको काटते समय गोनियेसे सहायता ली जा सकती है; इससे पटरेका किनारा सच्चा कटता है

खड़ा रखनेके लिये चित्र ४० में दिखलायी गयी रीतिसे गोनियेसे सहायता लेनी चाहिये।
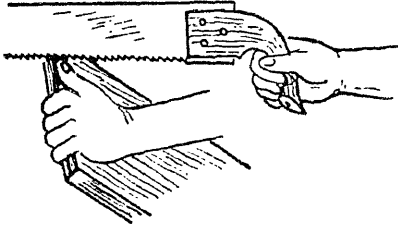
चित्र ४१—आरीसे काटना प्रारम्भ करते समय आरीको अँगूठा लगाकर चलाना चाहिये, जिसमें आरी अपने स्थानसे हटने न पावे।

पेंचकससे पेंच कसते या खोलते समय पेंचकसको खूब दबाकर हाथ घुमाना चाहिये। पेंचकस पेंचके गड्ढेमें-

चित्र ४२—पेंचकससे पेंच खोलते समय भी इसको खूब दबाकर घुमाना चाहिये; नहीं तो पेंचकस पेंच परसे छटक जायगा और पेंचका माथा खराब हो जायगा।

से एक बार भी छटकने न पावे, नहीं तो पेंचका माथा कुछ कट जाता है जो बहुत भद्दा लगता है और यदि पेंचकसके बार-बार छटकनेसे माथा कहीं ज्यादा कट गया तो पेंचको कसना या निकालना दोनों मुश्किल हो जाते हैं।
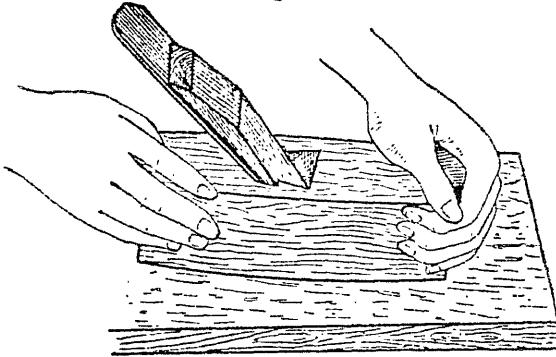
चित्र ४३—रंदेको पकड़नेकी रीति

रंदाके फलको एक या दूसरे बगल ठोंककर, फलकी धारको रंदेके पेंदेके ठीक समानान्तर कर लेना चाहिये। फल जितना ही कम निकला रहे उतना ही अच्छा है। रंदेको खूब दबाकर चलाना चाहिये। रंदा करते समय

चित्र ४४—रंदेको इस दिशामें चलानेसे रेशे कटेंगे। यही ठीक है (अगले चित्रसे मिलान करो।)

ख्याल रखना चाहिये कि लकड़ीके रेशे कटते चलें, टूटते न चलें। यदि रेशे कटते हों तो उलटी दिशासे रंदा करना

चित्र ४५—रंदेको इस दिशामें चलानेसे रेशे टूटेंगे। यह गलत है।

चाहिये। गँठीली लकड़ीपर रंदा करना कठिन है, इसलिये अच्छी लकड़ी चुननी चाहिये।

सरेससे लकड़ी जोड़ी जाती है। सरेस पकानेकी रीति यह है कि यह ठंढे पानीमें रख दिया जाता है। जब यह फूल जाय तब कुछ और पानीके साथ इसको किसी
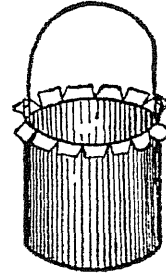
चित्र ४६—सरेस पकानेका बरतन और ब्रश

सरेस दोहरे बरतनमें पकाया जाता है। बाहरवाले बरतनमें केवल पानी रहता है और यही बरतन आँचपर चढ़ाया जाता है। भीतरी बरतनमें सरेस और पानी रहता है

बरतनमें रख दिया जाता है और इस बरतनको किसी दूसरे बरतनमें रखा जाता है। दूसरा बरतन आधी दूरतक पानी-से भरा रहे। अब इस दूसरे बरतनको आँचपर रखनेसे
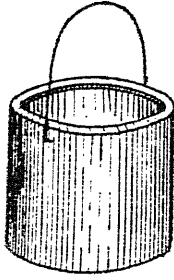
चित्र ४७—दो टीनके डब्बोंसे सरेस पकानेका अच्छा प्रबन्ध किया जा सकता है छोटेको बड़ेके भीतर रखना चाहिये।

पानी खौलेगा और इसकी गरमीसे पहला बरतन गरम होगा और थोड़ी देरमें सरेस पिघल जायगा। इसमें कम या अधिक पानी रहनेसे पतला या गाढ़ा सरेस तैयार होगा। सरेस गरमागरम ही इस्तेमाल करना चाहिये। इसके लगानेके लिये बेंतकी कूँची बनायी जा सकती है।

चित्र ४८—सरेस लगानेकी कूँची बेंतकी बनाई जा सकती है।

सरेसवाले बरतनको सीधे आँचपर रखनेसे सरेस जल जाता है और कमज़ोर हो जाता है।

फ्रेट-सॉ—यह आरी बढ़इयोंके पास नहीं होती, इसलिये इसके प्रयोगका सविस्तर वर्णन यहाँ दिया जाता है। इस आरीका फल बहुत ही बारीक होता है और इसलिये अकसर टूटता है। फल टूटनेपर फलको पकड़नेवाले पेंचों को ढीला करके इनमें दूसरा फल कस दिया जाता है। फिर फलको ताननेवाले पेचको घुमाकर फलको कड़ा कर दिया जाता है।
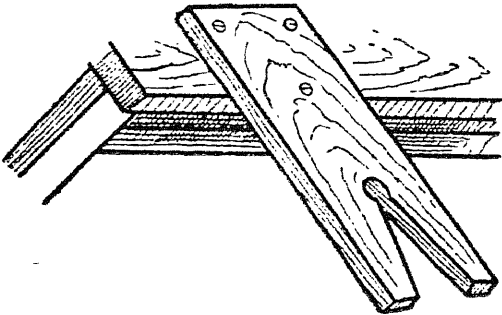
चित्र ५६ फ्रेट सॉके कामके लिये तख्ती तख़्तीको मेज़पर जड़ना चाहिये।

चित्र ५८—फ्रेटका काम बनाते समय यों बैठना चाहिये।

इस आरीसे केवल पतली ही लकड़ी ($\frac{1}{8}$ इंचसे $\frac{1}{4}$ इंच तक मोटी लकड़ी) काटी जाती है। साधारण लकड़ी यदि इतनी पतली हो तो उसके फट जानेका बहुत डर रहता है, इसलिये प्लाइवुडका प्रयोग किया जाता है। तीन या अधिक मशीनसे कटी करीब $\frac{1}{16}$ इंच मोटी लकड़ियोंको
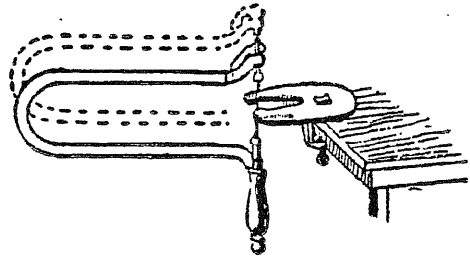
चित्र ५९ – फ्रेट-सॉको यों चलना चाहिये।

विशेष सरेससे जोड़कर और खूब दबाकर ये लकड़ियाँ बनायी जाती हैं और प्लाइवुडके नामसे बिकती हैं। $\frac{1}{16}$ इंच
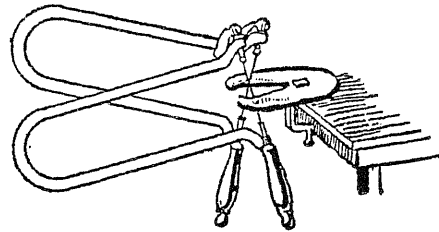
चित्र ६०—फ्रेट-सॉका यों चलाना गलत है।

मोटी लकड़ियोंके रेशे इस प्रकार एक दूसरेसे समकोण बनाते हुए रखे जाते हैं कि प्लाइवुड लकड़ी फट नहीं सकती। फ्रेटसॉको इस्तेमाल करनेके लिये पहले ½ इंच मोटी कोई साधारण और रंदासे चिकनीकी हुई लकड़ीमें एक छेद और चीर काटकर (चित्र ५६) इसको किसी (टेबुल) मेज़ पर इस प्रकार जड़ना चाहिये कि इसका छेदवाला भाग

चित्र ५०— खसखस कोरके समानान्तर रेखायें खींची जा रही हैं।

बाहर निकला रहे। अब उसीपर प्लाइवुड रखकर फ्रेट-सासे काटा जा सकता है। फ्लाइ-वुडको इस स्थिति-में रखना चाहिये कि आधी इंचवाली लकड़ीके छेदमें फ्रेटसॉका फल ऊपर-नीचे चलता रहे।

फ्रेटसामें फल लगाते समय, इसको इस प्रकार लगाना चाहिये कि आरी जब नीचे जाने लगे तब प्लाइवुड कटे।

चित्र ५२—बर्मा

यह खड़े भी इस्तेमाल किया जा सकता है और बेंड़े भी

जब कभी फ्रेट-सॉसे प्लाइवुडमें ऐसी नकाशी काटनी
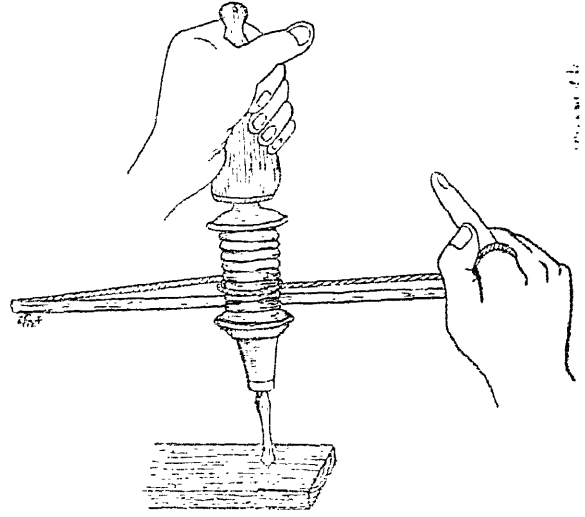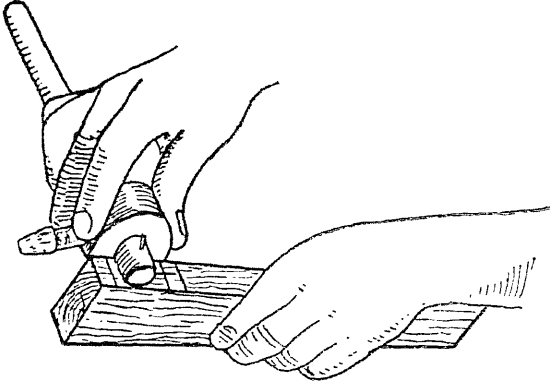
चित्र ५३—देसी बर्मीको चलानेकी रीति

रहती है कि यह काम लकड़ीके बाहरसे नहीं आरम्भ किया जा सकता तब लकड़ीमें बारीक छेद करके पहले फल इसीमें

चित्र ५४ — पटरीके बगलपर रंदा करते समय बार-बार इसकी जाँच गोनियेसे करते रहना चाहिये। (अगका चित्र देखो।)

छोड़ लिया जाता है तब फल फ्रेट-सॉमें कसा जाता है।

चित्र ५५—पटरीका बगल इस प्रकार तिरछा न हो जाना चाहिये।

फ्रेट-सॉको ऐसा चलाना चाहिये कि इसका फल ऊपर-नीचे ठीक खड़ा चले, तिरछा न होने पावे।

फ्रेट-सॉ और प्लाइवुडसे तरह-तरहकी चीज़ें बनायी जा सकती हैं, जिनमेंसे कुछका ज़िक्र कभी फिर किया जायगा।

साहित्य-विश्लेषण

गंगा-"विज्ञानांक" माघ, फाल्गुन, चैत्र १९९०-१९९१ प्रवाह ४, वर्ष ४, तरंग १-३, पूर्ण तरंग ३९, इस अंकके सम्पादक, प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, रामगोविंद त्रिवेदी, 'गंगा-कार्यालय' सुलतानगंज (ई० आई० आर०)से प्रकाशित। इस अंकका मू० ३॥), वार्षिक मूल्य ५), विदेशके लिये ७), डबलक्रौन अठपेजेके पृष्ठ ४१४, सुंदर चित्रोंसे सुसज्जित।

गंगाके पवित्र प्रवाहमें यों तो विज्ञानकी धारा भी बराबर बहती रहती है, तो भी वेदांक, पुरातत्त्वांक आदि-आदि निकालकर वैज्ञानिक साहित्यमें गंगाने अपने लिये एक विशेष स्थान बना लिया है। इस बार उसने विज्ञानांक निकाला है। गंगाका विज्ञानांक कभीका निकल चुका होता, किन्तु भूकम्पने बिहारकी जो दुर्दशा की उसका साथ गंगाको भी स्वभावतः देना ही पड़ा। अतः यह विशेषांक भी है और जनवरी-फरवरी-मार्चका संयुक्तांक भी। सुयोग्य सम्पादक आचार्य्य फूलदेवसहाय वर्म्माने बड़े परिश्रमसे इस अंकमें विज्ञानके अनमोल रत्न गुंफित किये हैं। भू-गर्भ-विज्ञान, समुद्रविज्ञान, विद्युत्विज्ञान, सापेक्षवाद, विकासवाद, वायुमंडल विज्ञान, रसायन, भौतिक, सृष्टिविज्ञान, सिनेमा, वायुयान, दूरदर्शन, वर्णपटविज्ञान, एक्सकिरण, तारवाणी, आकाशवाणी, रासायनिक चित्रण, प्राणिविज्ञान, जीवविज्ञान, विटामिन, आयुर्विज्ञान, भूकम्प, उद्भिज्ज विज्ञान, विज्ञानका इतिहास तथा प्रगति, औद्योगिक कला तथा प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्थाओं और विद्वानोंकी जीवनियों-पर इस विशेषांकमें बड़े अच्छे-अच्छे गम्भीर गवेषणापूर्ण, सुबोध और रोचक लेख हैं। केवल चार सौ पृष्ठोंके एक विशेषांकमें इतने विषयोंका अंगस्पर्श मात्र संभव है। विज्ञानांकसे इससे अधिक आशा कोई नहीं कर सकता। फिर भी परलोकविद्याका अत्यन्ताभाव खटकता है। अर्ध वैज्ञानिक इस विषयसे डरते हैं, क्योंकि इसका यथार्थ ज्ञान हमारे देशमें बहुत कम विद्वानोंको है। जिस विषयका अन्वेषण सर विलियम क्रुक्स और सर आलिवर लाज जैसे प्रसिद्ध खोजी और विद्वान करें उसका समावेश विज्ञानांकमें न होना चिन्त्य है। शायद किसीने इस विषयपर कोई लेख नहीं दिया। जहाँतक हमें याद है, परलोकविद्यापर किसीसे कोई लेख माँगा भी नहीं गया।

पिछले बीस वर्षोंसे "अभिनव मनो-विश्लेषण" का विषय भी विज्ञानका महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। वियनाके प्रोफेसर फ्रोइड इसके आचार्य्य और उद्भावक हैं। इस विषयपर भी हिन्दीके सामयिक साहित्यमें लेख निकल चुके हैं। अतः इसे भी अछूता छोड़ देना एक कमी है। स्वयं गंगामें जहाँतक हमें याद है इस विषयपर लेख निकल चुके हैं। यदि स्थानाभावसे इन विषयोंका समावेश नहीं हुआ है तो अगले कई अंक परिशिष्टांककी भाँति निकालकर इन विषयोंको स्थान दिया जा सकता है। फिर भी हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि योग्य सम्पादकोंने सागरको गागर-में भरनेमें पूरी सफलता पायी है जिसके लिये हम उन्हें सहर्ष बधाई देते हैं।

विज्ञानचंद्रके इस अंकमें एक कालिमा भी है जिसके लिये हम विद्वान सम्पादकोंको दोषी नहीं ठहराते। पृ० ३२० पर "फलोंकी रक्षा और व्यवसाय" नामका एक लेख छपा है जिसके लेखक हैं कोई "श्रीयुत बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव"। लेखकका इससे अधिक पता नहीं है। यह पौनेतीन पृष्ठोंका लेख ज्यों-का-त्यों अक्षर-अक्षर विज्ञानके भाग ३७ संख्या ५, सिंह संवत् १९९० अगस्त १९३३ के पृ० १३९ पर छप चुका है। इसके लेखक हैं श्री बृजविहारी लाल गौड़ और श्रीबृजविहारीलालजीने भी यह लेख विज्ञानमें ही छपे एक पन्द्रह वर्ष पुराने लेखके आधार पर लिखा था, जैसा कि उसी लेखमें (पृ० १४०, स्तंभ पहला, पंक्ति १९-२२) उन्होंने स्वीकार किया है। इस ईमान्दारीकी स्वीकृतिको भी श्री बालगोविन्दप्रसादने निकाल दिया और सारे लेखके मूल लेखक बन बैठे। इस साहसिकताकी बलिहारी! इस मौलिकताकी ओढ़ी हुई खालके सदके!!

"कविरनुहरतिच्छायां कुकविः शब्दं पदानि चांडालः
अखिल-प्रबन्ध हर्त्रेसाहस कर्त्रे नमस्तुभ्यम्।"

विज्ञानांकके योग्य सम्पादकोंको विज्ञानका कोई लेख पसन्द आता और वह गंगामें उद्धृत करते तो विज्ञानके लिये गौरवकी बात थी। परन्तु खेद है कि धोखेमें ये विद्वान् चोरीका माल खरीद बैठे इस तरहके अपराधी कभी हम भी हो सकते हैं। आखिर सम्पादक सर्वज्ञ तो हो नहीं सकता, और ऐसे चोरीके मालकी कोई खास पहचान भी नहीं होती। "ज्ञान प्रवाहा विमलाऽऽदिगंगा" में "संसर्गश्चापितैः सह" संसर्गजन्य दोष अचानक ही आ गया। फिर भी—

"सुभ अरु असुभ सलिल सब बहहीं।
सुरसरि कोउ अपुनीत न कहहीं॥
समरथ कहँ नहिं दोष गोसाईं।
रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

सो, गंगा इस दोषसे अपवित्र नहीं हुई। हाँ, इतना उसे अवश्य करना चाहिये कि इन साहित्य-साहसिक महानुभावसे कैफियत लेकर इनका पूरा पता छाप देना चाहिये कि साहित्य-संसार इनकी कलाका आदर करे और हिम्मतकी दाद दे।

चित्रोंके संग्रहमें भी गंगाने बहुत कुछ परिश्रम और धन लगाया है। चुने हुए और उपयुक्त चित्रोंसे इसे खूब सजाया है। आरंभमें पूज्य मालवीयजीका चित्र बहुत पुराना दीखता है। हस्ताक्षर और तिथि समेत उनके लेखके चित्रके साथ ही उनका अपना चित्र भी हालका ही होना चाहिये था। अन्यथा, लोग समझेंगे कि इस ज्ञान-गंगामें मज्जन करनेका यौवनप्राप्ति रूपी तात्कालिक फल पूज्य मालवीयजीको मिला है। इस एक फोटोके सिवा और चित्र हमारी समझमें निर्दोष हैं और बहुत उपयुक्त एवं उपयोगी हैं। छपाई और सफाईके क्या कहने हैं। हमारे बहुत दिनोंके स्वप्नका एक अंश गंगाके इस विशेषांकने पूरा किया है। हमारा अनुरोध है कि विज्ञानांकके और परिशिष्टांक निकलें। विशेषांकोंके निकालनेमें गंगाको पूरी सफलता मिली है। उसके विशेषांकोंमें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रही है। इस अत्यन्त सफल सुबोध, सुन्दर, चित्रपूर्ण, निर्दोष विशेषांकके लिये हम उभय सम्पादकोंको फिर-फिर सहर्ष बधाइयाँ दिये बिना नहीं रह सकते।

—रा० गौ०

१—रामचरित मानस (सटीक) बँगला लिपिमें मूल और अर्थ बंगला भाषामें—श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त द्वारा अनुवादित, प्रथम संस्करण १०००, बंगला संवत् १३४०, प्रकाशिका श्री हेमप्रभादास गुप्ता, खादी अधिष्ठान १५, कालेज स्क्वेयर, कलकत्ता, डबलक्रौन अठपेजीके ८२४ पृष्ठ, सादा जिल्द मूल्य २) सजिल्द २।) राजसंस्करण मूल्य ४)

२—तुलसी रामायणकी भूमिका मूल बँगला लेखक श्रीसतीशचन्द्रदास गुप्त, अनुवादक—श्रीशितिकंठ झा, प्रकाशिका श्रीहेमप्रभा देवी, खादी प्रतिष्ठान, १५, कालेज स्क्वेयर, कलकत्ता। प्रथम संस्करण वैशाख सं० १९९०, ५००, डबल क्रौन १६ पेजके १९८+१२=२१० पृष्ठ, अजिल्द मूल्य ॥)

बंगालके प्रसिद्ध देशभक्त, महात्मागांधीके पक्के अनुयायी और खादी प्रतिष्ठानके उद्भावक तथा संचालक बाबू सतीशचन्द्रदास गुप्तजी गोस्वामी तुलसीदासके रामचरितमानसके मर्म्मज्ञ और अनुरागी भक्त हैं। उन्होंने रामचरितमानसका बँगलामें स्वयं अनुवाद किया है और बंगाक्षरोंमें ही शुद्ध पाठके साथ-ही-साथ वह अनुवाद खादी प्रतिष्ठानके ही तत्त्वावधानमें छपवाकर प्रकाशित कराया है। एक बंगीय-मानस-प्रेमीकी दृष्टिसे अनुवाद अत्यंत शुद्ध और सुन्दर हुआ है। इस ग्रन्थके अनुवादमें भूलें तो उनसे भी हुई हैं जो मानसके प्रामाणिक टीकाकार माने जाते हैं। इस दृष्टिसे सतीश बाबूके परिशीलनकी सराहना किये बिना हम नहीं रह सकते। प्रस्तुत अनुवादके द्वारा मानसामृत बंगभाषा भाषियोंके लिये भी सुलभ हो गया है।

अनुवाद और सम्पादन जिस सौन्दर्य्यसे हुआ है उसके साथ ही साथ यदि मूल पद्य नागरी अक्षरोंमें दिये जाते तो एक और अनमोल सेवा सतीश बाबूके हाथों हो जाती। वह एक बंगाली ही विद्वान् प्रातः स्मरणीय न्यायमूर्त्ति शारदाचरणमित्रका प्रयत्न था कि अखिलभारतीय राष्ट्र-लिपि देवनागरीके प्रचारके लिये 'देवनागर' पत्र कलकत्तेसे निकलता था। जो बंगाली संस्कृत पढ़ते हैं, वह नागराक्षरोंसे परिचित होते ही हैं, परन्तु यदि गोस्वामी तुलसीदासकी कृति रामचरितमानस पढ़नेके लिये भी कुछ बंगाली नागरी

सीखते तो नागरीके प्रचारमें एक विशेष सहायता हो जाती। अतः यदि मूल पद्य हठात् नागराक्षरोंमें ही होते और भूमिकामें उच्चारणके कुछ नियम दे दिये जाते तो यह काम सहज हो जाता। फिर भी मानसके प्रचारसे मानवजीवनमें जो उन्नति होती है बंगाली पाठकोंके लिये उसे सुलभ कर देनेका श्रेय ही क्या कम है। हमें आशा है कि मानसके ऐसे उत्तम संस्करणका बंगभाषा-भाषी-साहित्य रसिकोंमें शीघ्र ही प्रचार होगा और इसके नये संस्करणकी शीघ्र ही आवश्यकता पड़ेगी।

हमारे लिये इस ग्रन्थका विशेष महत्त्व उसकी अनमोल भूमिकामें है। इस भूमिकासे सतीश बाबूकी मानसरसिकता-का दृष्टिकोण समझमें आता है। गोस्वामीजीकी कृतिको टीकाकारोंने विविध दृष्टियोंसे देखा है। कोई साहित्यकार, कोई कवि, कोई भक्त, कोई कलावान् कोई सुधारक और कोई प्रचारककी दृष्टिसे देखता है। सतीश बाबूने मानसमें साधारण जनसमुदायका जीवन चित्रित देखा है और उसमें नैतिक-जीवनका आदर्श पाया है। भूमिकामें मानसके इस पक्षका उन्होंने बहुत अच्छा निर्वाह किया है। मानसका यह विश्लेषण ऐसा सुन्दर है कि पाठकको आद्योपान्त पढ़ जानेका एक विशेष स्वाद मिल जाता है। श्रीशितिकंठ झाने बँगलासे हिन्दीमें बहुत अच्छा अनुवाद किया है। मूल बँगलामें हमें दो भूलें नजर आयीं, जिसका संशोधन अनुवादक झाजीने भी नहीं किया है। अगले संस्करणमें इनका संशोधन हो जाना चाहिये। पहली बात यह है कि आपने आरंभमें ही लिखा है कि मानस ब्रजभाषामें लिखा गया है। यह ठीक नहीं है। मानसकी भाषा मुख्यतः अवधी है, ब्रजभाषा नहीं है। दूसरी भूल यह है कि गोस्वामीजीके जन्म और मरणके विक्रमी संवत् जहाँ दिये हैं, वहाँ संवत्से ईसवी सन् बनानेमें ५७ वर्ष घटानेके बदले बढ़ा दिये गये हैं। इस तरह शुद्ध सनसे एक सौ चौदहवर्ष अधिक हो जाता है। यह भारी भूल है। जन्म संवत् १५८९ दिया गया है। परन्तु यह अंक पहलेसे अब अधिक विवादग्रस्त है। मृत्यु संवत् १६८० सर्व-सम्मत है।

मानस प्रेमियोंको यह तुलसी-रामायणकी भूमिका मँगवाकर अवश्य पढ़नी चाहिये। यह अपने ढंगका अनूठा प्रबन्ध है और मानस-साहित्य-मालाकी एक अनमोल मणिका है। सतीश बाबूको हम उनकी इस रसिकताके लिये बधाई दिये बिना नहीं रह सकते। महात्माजीके मानसप्रेमने मानस-प्रचारको भारी प्रोत्साहन दिया है और सतीश बाबू जैसे मानसरसिककी उपलब्धि जो हिन्दी संसारको हुई है हमारा विश्वास है कि उसका बहुत कुछ श्रेय महात्मा गांधीको है।

१—आसव-विज्ञान—लेखक श्रीस्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, दी पंजाब आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, अमृतसर, चैत्र, संवत् १९८३ विक्रमी, प्रथमावृत्ति २००० डबल क्राउन १६ पेजीके १०३+२१= १२४पृष्ठ, अजिल्द मूल्य १), आयुर्वेद-विज्ञान-ग्रंथ-मालाका प्रथम पुष्प।

२—क्षार-निर्म्माण विज्ञान—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त। सन् १९२७। डबल क्राउन १६ पेजी, ८+७०= ७८ पृष्ठ, मूल्य ॥)

आयुर्वेदीय औषधोंमें आसवों और क्षारोंका स्थान बड़े महत्त्वका है। इनके निर्म्माणके सम्बन्धमें आयुर्वेद-की प्राचीन परिष्कृत विधियोंके साथ-ही-साथ स्वामीजीने आधुनिक रसायनकी विधियां भी दी हैं और दोनों पद्धतियोंको विधिवत् समझाकर दोनोंका समन्वय किया है। औषध बनानेवालोंको विधिपूर्वक शिक्षा देनेका हमारे चिकित्सा विद्यालयोंमें भी कोई प्रबन्ध नहीं है, और यह कहनेका कोई साहस नहीं कर सकता कि औषण-निर्म्माण चिकित्सासे कम महत्वका है। वास्तविक बात यह है कि सुचिकित्साकी नब्बे प्रतिशत सफलता यथार्थ विधिसे औषध-निर्म्माणपर ही निर्भर है। फारमेसीपर आयु-र्वेदग्रन्थ अवश्य हैं, परन्तु उन्हें अपटुडेट करनेकी कोशिश हमारी जान यह पहली बार की गयी है। अबतक लोग आसवों और अरिष्टोंके बनानेमें पूरी सफलता नहीं पाते रहे हैं। देसी बने यवक्षार सज्जीखार कितने फूहड़से दीखते हैं। इनके निर्म्माणमें सुधारकी बड़ी आवश्यकता थी। स्वामी हरिशरणानन्दजीने निर्म्माण-विधिपर बड़े विस्तारसे विचार किया है और विधिमें यथेष्ट सुधार किया है। आयु-र्वेदकी यह बड़ी अनमोल सेवा हुई है। तो भी हम देखते हैं कि सात-आठ बरस हुए इन पुस्तक-रत्नोंके द्वितीय

संस्करणकी नौबत नहीं आयी। जान पड़ता है कि गुण-ग्राहकता इस वैद्यक विभागमें भी नहीं है। जिस वैद्यके पुस्तकालयमें ऐसी पुस्तकें न हों, समझना चाहिये कि उसे अपने विषयमें यथेष्ट रस नहीं है। औषध बनानेवालोंको तो इन्हें बिना पढ़े न रहना चाहिये। —रा० गौ०

हिन्दुस्तानी शिष्टाचार—लेखक—पं० रामनारायण मिश्र, काशी, प्रकाशक, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद। फर्वरी सन् १९३४, पाँचवीं आवृत्ति, १०,०००, ६॥×३॥ आकारकी ६४ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य)॥ मात्र।

यह छोटीसी पोथी बालकोंको शिष्टाचार सिखानेके लिये तो अत्यन्त उपयोगी है ही, बड़े बूढ़ोंको भी इससे शिक्षा मिल सकती है। शिक्षाके इस आवश्यक अंगकी इधर कई पीढ़ियोंसे उपेक्षा होती आयी है। मौलवी साहब या पंडितजीके यहाँ, इखलाक़ और नीतिके ग्रंथ पढ़ने-पढ़ानेकी पुरानी शैली जबसे स्कूली-शिक्षा-क्रमसे उड़ गयी, तबसे हग उजड्ड हो गये। मिश्रजीकी यह पोथी प्रत्येक अपर प्राइमरी-परीक्षाके लिये अनिवार्य्य पाठ्यग्रंथ बनादेनेके योग्य है। —रा० गौ०

Cheap Remedies, चीप रेमेडीज—लेखक बा० सतीशचन्द्रदास गुप्त, प्रकाशक खादी प्रतिष्ठान, १५ कालिज स्क्वेयर, कलकत्ता। डबल क्राउन १६ पेजीके १२८ पृष्ठ, मूल्य ॥)

अंग्रेजी दवाइयोंने इस दरिद्र देशमें खासी लूट मचा रखी है। बहुतोंकी डाक्टरी तो केवल उनके दवाखानोंकी बदौलत चलती है। दवाओंमें बाहरी सजावट बहुत होती है और भीतरी गुण प्रायः उनकी तैयारीकी विधिसे ही घट जाता है। फलतः बहुत दाम देकर हम रद्दी चीजें पाते हैं। सतीश बाबू भारतके एक सफल और बृहत् औषध-निर्म्माण-कार्य्यालय बंगाल केमिकल ऐंड फार्म्मास्युटिकल वर्क्सके संचालक रहे हैं। उन्होंने इस कामका सभी दिशाओंसे पूरा अनुभव किया है। अब दरिद्रोंकी सहायताके लिये कुछ थोड़ीसी चुनी हुई अधिकांश देशी और कुछ विदेशी औषधियोंकी टिकिया बनाकर प्रयोगमें लानेका उपाय किया है। टिकिया मशीनसे ही बनती है। परन्तु सरल काम है। सूई लगानेके लिये औषधियाँ मुहरबन्द कांचकी कुप्पियोंमें जो मिलती हैं वे बड़े दामोंको आती हैं। सतीश बाबूने इनकी भी तैयारी करायी है। वह कांचका इतना काम सिखानेको भी तैयार हैं। इस तरहकी निर्मित टिकिया और कुप्पियाँ सस्ती मिलेंगी और सहजमें काममें आ सकेंगी। आपका यह प्रयत्न सर्वथा स्तुत्य है, दीनों दुखियोंके लिये बहुत सहायक है। होमियोपैथीको छोड़ सभी पद्धतियोंके औषध आजकल गरीबोंको चूसनेवाले दामोपर मिलते हैं। इसीलिये सतीश बाबूने दरिद्रोंकी यह भारी सेवा की है। हम चाहते हैं कि इस अंग्रेजी पुस्तकको वह बहुत शीघ्र राष्ट्रभाषा हिन्दीमें प्रकाशित कर दें जिसमें इसका प्रचार उन लोगोंमें हो सके जिनके लिये यह पोथी विशेष रूपसे लिखी गयी है। —रा० गौ०

कल्याण-कल्पतरु—अंग्रेजी भाषाका मासिक पत्र। सम्पादक, श्री सी० एल्० गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री। प्रकाशक घनश्यामदास, गीताप्रेस गोरखपुर। वार्षिक मूल्य ४॥), ईश्वरांकका २॥), साधारण अंकका ।-)

हिन्दीका कल्याण तो मुद्दतसे भारतका कल्याण कर रहा है। अब उसीके क्षेत्रमेंसे यह अंग्रेजीका कल्पतरु, समस्त अंग्रेजी भाषी मानव समाजको आप्तकाम करनेके लिये निकला है। इसका एकमात्र उद्देश्य धार्म्मिक और दार्शनिक है। कल्याणका ईश्वरांक प्रसिद्ध है। अंग्रेजीका ईश्वरांक उसीके समान निकला है। अन्य साधारण अंक भी कल्याणके ही सदृश हैं। कुछ लेख अनूदित अवश्य हैं, परन्तु अनुवाद इतना अच्छा हुआ है कि लेख मौलिकसे ही लगते हैं। यह मासिक पत्र विज्ञापन नहीं छापता। हिन्दीके कल्याणमें भी विज्ञापन नहीं छपते। बहुत कम पत्र ऐसा साहस कर सकते हैं। इस घटनासे सिद्ध होता है कि केवल यही बात नहीं है कि कल्याण कोई रोजगारी पत्र नहीं है, वरन् वह अर्थकी दृष्टिसे भी ऐसा सम्पन्न है कि ग्राहकोंके चन्देमात्रपर ऐसी उत्तमतासे निकल सकता है। पठन-विस्तारकी वृद्धिकी दृष्टिसे अंग्रेजीका संस्करण निकलना बहुत अच्छा हुआ, परन्तु हम तो अत्यन्त प्रसन्न होते जब "कल्याण" के कल्याणकारी लेख पढ़नेके लिये विदेशी लोग हिन्दी पढ़ते। अब तो उन्हें हिन्दी पढ़नेकी आवश्यकता न रही। भारतमें अध्यात्म-विद्या ही तो वह सम्पत्ति रह गयी थी जिसकी प्राप्तिके लिये भारतीय भाषा पढ़ना आवश्यक

था। आध्यात्मिक ग्रंथोंके उल्थाओंके सुलभ हो जानेसे वह प्रोत्साहन न रह गया। कल्याणमें वह प्रोत्साहन मौजूद था। कल्पतरुने अपनी बाहें पसारकर उसे भी मिटा दिया और उस अनमोल रत्नको लुटा दिया। अपने इस उदार सहयोगीका फिर भी हम सहर्ष स्वागत करते हैं और यह सलाह देते हैं कि अनूदित लेखोंके शीर्षपर 'Translated from the Hindi Kalyana" (हिन्दी कल्याणसे अनूदित) अवश्य लिखा जाया करे, जिसमें अंग्रेजी पाठकोंको यह भी पता लगे कि हिन्दीके संस्करणमें कैसे-कैसे लेख निकला करते हैं। इसमें कल्पतरुकी कोई क्षति नहीं है और उसके उत्पादक कल्याणकी यशोवृद्धि है। —रा० गौ०

१—हिन्दी-प्रचारक सम्मेलनांक—सम्पादक श्रीसत्यनारायणजी, प्रकाशक मद्रास हिन्दी प्रचार सभा वर्ष १२, अंक १, सचित्र सुंदर, डबल क्रौन अठपेजेके ८४+१०=९४ पृष्ठके इस अंकका मूल्य ॥) और वार्षिक मूल्य २)।

२—दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा मदरासका १९३२-१९३२ का वार्षिक विवरण (अंग्रेजी)।

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्रचारका अंग आजकल उतना काम नहीं कर रहा है जितना कि उसकी पहलेकी शाखा जो आज स्वतंत्र रूपसे मदरासकी हिन्दीप्रचार सभाके नामसे प्रसिद्ध है। सम्मेलन-पत्रिका बन्द है परन्तु हिन्दी प्रचारक बराबर जारी है और आये दिन अपने विशेषांक भी निकाला करता है। सभाके पास एक बड़ा अच्छा प्रेस है और प्रचारार्थ बहुत विस्तृत साहित्य है। उसके काम करनेवाले उत्साही प्रचारक सारे दक्षिण भारतमें फैले हुए हैं। इस उत्तम संगठनकी नींव महात्मा गाँधीकी डाली हुई है। परन्तु इसे चलानेका श्रेय पं० हरिहर शर्म्माको है। वे ही इस संगठनके प्राण हैं।

हमारे सामने सम्मेलनांक और रिपोर्ट दोनों हैं। दोनोंके दोनों दक्षिण भारतके उत्साही प्रचारकोंके अदम्य उत्साहके इतिहासके दो अंक हैं। हम पहले भी इन पृष्ठोंमें सभाके सुकार्य्योंका संक्षेपसे वर्णन कर चुके हैं, यहाँ दोहराना अनावश्यक है। दोनों ही पुस्तिकाएँ ठोस विषयोंसे भरी और पठनीय हैं।

—रा० गौ०

गीता-सूची—प्रकाशक—गीता पुस्तकालय, ३० बाँसतल्लागली, कलकत्ता। संवत् १९८७, प्रथम संस्करण १०००, डबल क्रौन अठपेजेके ६०+४६+१४=१२० पृष्ठ।

कलकत्तेके गोविन्दभवनमें श्रीमद्भगवद्गीताका एक विशेष पुस्तकालय है। उसीकी यह सूची है। गीतासम्बन्धी लिखा या छपा साहित्य चाहे जहाँसे मिल सके उसका संग्रह करना इस संस्थाका उद्देश्य है। अबतक जितना संग्रह हुआ है उसीकी यह सूची है। हर साल गीता-दिवसपर इस साहित्यकी प्रदर्शिनी हुआ करती है। यह सूची गीता-प्रेमियोंके लिये बड़े कामकी है। जो गीताका सम्यक्‌रीत्या अनुशीलन करना चाहते हैं उन विद्वानोंके लिये तो यह पुस्तकालय कल्पवृक्ष है। उक्त पुस्तकालयसे प्राप्य।

—रा० गौ०

वनौषधि—प्रथम वर्ष, प्रथम संख्या, सौर फाल्गुन १९९०, सम्पादक, श्रीकेदारनाथ शर्मा प्रकाशक तथा सहायक सम्पादक श्रीचन्द्रशेखर त्रिवेदी, आयुर्वेदाचार्य एम० ए० एस०, चरक-अनुसन्धानभवन, काशी। डबल क्रौन अठपेजा, पृष्ठ ३३+११ एक प्रतिका मूल्य ।) वार्षिक मूल्य ३)

हम अपने नये वैज्ञानिक सहयोगीका सहर्ष स्वागत करते हैं। मेजर वसुकी सात जिल्दोंमें अंग्रेजीमें १३०० वनौषधियोंका विवरण है, परन्तु उसमें एक बड़ा दोष यह है कि अन्तमें संस्कृत या हिन्दी नामोंकी कोई अनुक्रमणिका नहीं है। डैमाककी तीनों जिल्दोंमें भी वनौषधियोंका अच्छा वर्णन है, परन्तु वह भी अंग्रेजीमें है। बँगलामें वनौषधि प्रकाश और हिन्दीमें निघंटु रत्नाकर भी बड़े अच्छे निघंटु ग्रंथ हैं। फिर भी इनमें अनेक ओषधियोंके नामतक नहीं हैं और उनके वर्णनोंमें भी गड़बड़ है। निघंटुकी आलोचनाकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। वनौषधिके द्वारा इस अभावकी पूर्त्ति होगी, यह देखकर हमें विशेष हर्ष होता है। भगवान् धन्वन्तरि इसे सफलता दें। —रा० गौ०

ईश्वर और धर्म केवल ढोंग है—लेखक और प्रकाशक साहित्य-विशारद श्रीभजामिशंकर दीक्षित, मुकाम बिछुलखा, पोस्ट रामनगर, जिला बाराबंकी फूखी प्रथम बार। १९९०

सहयोगी विज्ञान

वैज्ञानिक सामयिक साहित्य

वैदिकविज्ञान (हिन्दी) अजमेर, मार्च के अंकमें ये लेख हैं—(१) वेदोपदेश, (२) दैवत-पतिवादकी आलोचना, (३) ब्राह्मण ग्रन्थ, (४) महर्षि दयानन्द, (कविता), (५) पुनर्जन्म, (६) वैदिक राहु, (७) गायत्रीमंत्र, (८) वर्णाश्रम-धर्म, (९) ब्रह्म-वादिनी अपाला और उसका दृष्ट सूक्त, (१०) वैदिक राष्ट्रगीत, (११) श्रीस्वामी दयानन्दजीका पत्र।

कल्प-वृक्ष (हिन्दी) उज्जैन, मार्च और मईके अंकमें ये लेख हैं—(१) मनुष्य अपना स्वामी आप है, (२) ईश्वरप्राप्तिका सहज साधन, (३) शब्दकी शक्ति (४) आध्यात्मिक उन्नतिका प्रथम सोपान (५) ध्यानसे इच्छापूर्त्ति कैसे होती है, (६) शारीरिक उन्नति तथा बल-प्राप्तिके लिये आसनोंका व्यायाम, (७) बुद्धि-विकासका साधन (८) हवन करनेसे स्वास्थ्य-बल और बुद्धिकी वृद्धि होती है (९) निष्काम कर्मकी परीक्षा। (१०) उच्चजीवन, (११) एक सुविचारपूर्ण प्रश्नका उत्तर (१२) शारीरिक बलका दुरुपयोग, (१३) अनन्यता (१४) आध्यात्मिक साधन समारंभ, (१५) विजयका मार्ग, (१६) मानसिक दुर्बलता और ज्ञान-तंतुओंकी दुर्बलताको दूर करनेके उपाय (१७) हृदयकी क्षीणता और उसका उपचार, (१८) प्राप्त पत्र (१९) चिन्ताका जाल।

वनौषधि (चरक अनुसन्धान-भवन-काशी) के फर्वरीके अंकमें (१) वैदिक प्रार्थना (२) वनौषधिप्रार्थना, (३) शुभाशीर्वाद, (४) शुभकामना, (५) कर्णिकार, (६) वकुल, (७) वनौषधिका अर्थ, (८) तुलसी, (९) गोबरकी रामकहानी, (१०) गृञ्जन क्या है?, (११) हृत्-पत्रिका, (१२) सुश्रुतके क्षार, (१३) द्रोण-पुष्पी, (१४) भारतके चिकित्सोपयोगी पौधे, वनस्पति-चिकित्सा (१६) आत्म-निवेदन।

वैद्य कल्पतरु (गुजराती) अहमदाबाद—अप्रैलके अंकमें—(१) तू सबमें रसरूपमें रम रहा है, (२) आरोग्य-देहके हर काममें विजय मिल सकती है; (३) दिनचर्या, (४) आक्षेपक सन्निपात-ज्वर, (५) जुदाजुदा देशोंका आरोग्य संरक्षण, (६) धातु-क्षीणता, निवारणोपाय, (७) प्राकृतिक नियम (८) स्वाभाविक धर्म, (९) सृष्टिका अंत,

---

मू० ।।)। डबलक्रौन १८ पेजेके १७४+६=२८० पृष्ठ है। जिल्द सादा, छपाई सुन्दर।

नाम देखकर आशा हुई थी कि लेखकने चर्वाक और बृहस्पतिकी तरह कोई तर्कपूर्ण ग्रंथ लिखा होगा। परन्तु पढ़कर निराशा हुई। हमारे बारहों दर्शनोंमें पहला दर्शन चार्वाकका नास्तिकवादसे ही हमारे दार्शनिक विचारोंका आरंभ करता है। फिर उत्तरोत्तर विचारका विकास होते-होते हम "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" तक पहुँचते हैं। प्रस्तुत ग्रंथमें तर्ककी किसी नियमित पद्धतिका अनुसरण नहीं किया गया है। गम्भीर विचारके लिये तर्ककी किसी वैज्ञानिक शैलीका अनुसरण करना आवश्यक था। इस पुस्तिकामें विषय स्थापनाकी ऐसी कोई चेष्टा नहीं की गयी है। जिस तरह मुसलिम धर्म्म या आर्य्य समाजके सर्व-साधारणके लिये सरलता पूर्वक आस्तिकता समझने योग्य सीधे-सादे मन्तव्य हैं, उसी तरह सर्व-साधारणके ही लिये सरलता पूर्वक नास्तिकता समझनेके लिये ये मन्तव्य लिखे गये हैं। इनका उद्देश्य प्रचार ही अधिक और मुख्य है, विचार गौण है। यदि हम सर्वज्ञम्मन्य लेखकको सलाह देनेके अधिकारी समझे जायँ तो हम कहेंगे कि ऐसे विषयपर विचार करनेके लिये विद्या और तपस्याकी बड़ी पूँजी चाहिये जिसे प्राप्त करनेको दीक्षितजीको समय है। उतावली क्यों करते हैं। प्रौढ़ोक्तियोंको लेकर छपायी और प्रकाशनके यंत्रोंका इस प्रकार दुरुपयोग करना और अज्ञान फैलानेमें अग्रसर होना दुर्नीति है और इसका परिणाम पतनके गर्त्तमें गिरानेवाला है।—रा० गौ०

(१०) कुदरती कायदे, (१०) भूलनेवालेको प्रकृति क्षमा नहीं करती, (११) शारीरिक धर्म, (१२) शारीरिक दण्ड।

भूगोल (इलाहाबाद) के मार्च और अपरैलके अंकमें (१) स्पेनकी एक कहानी, (२) मेरी विदेश-यात्रा, (३) कालिंजरका किला, (४) फतहपुरसीकरीकी सैर, (५) भारतमें मैनोनीज़, (६) भूकम्पके बाद मुजफ्फरपुरकी दशा, (७) मध्य अफ़रीकाकी एक कहानी, (८) भारतवर्षमें सीसा, (९) फतहपुर सीकरीकी सैर (१०) जापान और ब्रिटेनकी व्यापारिक तुलना, (११) द्वीप लुप्त हो जाते हैं, (१२) मेरी विदेश-यात्रा, (१३) पूर्वी द्वीप समूहमें गोरोंकी असफलता।

रोशनी——उर्दू, लाहौरके नवम्बर और फर्वरीके अंकोंमें (१) भौतिक विज्ञानकी विजय, (२) दूध छुड़ानेके बाद तन्दुरुस्त बच्चोंका आहार, (३) एक विचित्र जीव (४) प्रेमसे हिंसक पशु भी मित्र बन जाते हैं। (५) ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय-निग्रह, (६) मंडी हाइड्रोएलेक्ट्रिक स्कीम, (७) हम क्या खायें (८) पशुओंका सुधार और उनकी उन्नतिके उपाय, (९) बच्चोंका भोजन, (१०) विज्ञानके नवीन प्रयोग, (११) चमड़ा रंगनेकी पुरानी और नयी विधियाँ, (१२) पंजाबमें शिल्पियोंका शिक्षाकेन्द्र, (१३) ग्राम-सुधार, (१४ स्व-प्रभाव।

प्रकृति बँगला ऋतु-पत्रिका——(कलकत्ता) हेमंत और शीत संख्या। (१) पदार्थकी चतुर्थ अवस्था, (२) सिकिमके हिमालयके उद्भिद्, (३) यकृत और प्लीहा, (४) भारत और संसारकी मृत्यु-संख्या, (५) दक्षिण बिहारमें कमालोबीबी और अमासनबीबीकी उपासना; (६) मुखबंद कर रखनेसे मेंढक क्यों मर जाता है, (७) एंजिन, (८) बोलचालमें उद्भिद्, (९) विज्ञानका क्रम-विकास और उसका संक्षिप्त इतिहास, (१०) प्राणि-विज्ञानकी परिभाषा ये उल्लेखनीय लेख हैं।

सामायिक साहित्यमें विज्ञान

मासिक साहित्य

बालक के मार्चके अंकमें लगभग सभी लेख भूकम्पके संबंधमें हैं। इसलिये बालसाहित्यकी मासिक पत्रिका होनेपर भी इसे, बालकका 'भूकम्प अंक कहना अधिक उपयुक्त है। अपरैलके अंकमें 'दीवार घड़ी' वैज्ञानिक लेख है।

हिन्दी-प्रचारक के फर्वरीके अंकमें 'उर्दू कविता' और मार्चके अंकमें रस्म-रिवाज व तन्दुरुस्ती वैज्ञानिक लेख हैं।

हंस के मार्चके अंकमें (१) मनोविश्लेषण और (२) व्यापारसे मशीनोंका संबंध' दो लेख वैज्ञानिक हैं

चाँद के अपरैलके अंकमें (१) 'कलापर स्वतंत्र विचार' और (२) स्वास्थ्य और सौन्दर्य ये दो लेख वैज्ञानिक हैं।

विशाल भारत——के मार्चके अंकमें 'नीति क्या है और जिंदगी किसे कहते हैं?' वैज्ञानिक लेख है।

वीणा के मईके अंकमें 'टॉकी कैसे बनती है?' वैज्ञानिक है।

भारती के फर्वरीके अंकमें (१) भारतीय रिजर्व बैंक, और (२) 'विवाह-समस्याका पश्चिमी पहलू' तथा मईके अंकमें (१) अपराध रोग और उसका निदान और (२) हिन्दीका वर्त्तमान विज्ञान-साहित्य * ये दो लेख अच्छे हैं।

(२) साप्ताहिक साहित्य

कर्मवीर——७ अपरैलके अंकमें "शरीरका चमड़ा स्वस्थ और सुंदर कैसे हो?" १४ अपरैलके अंकमें "पैरोंकी नसोंका फूलना और उनका उपचार", २१ अपरैलके अंकमें छत्तीसगढ़की एक शालामें, अच्छे लेख हैं।

स्वराज——२७ मार्चके अंकमें "वर्षाऋतुके भूकंपके विषयमें भविष्य", १७ अपरैलके अंकमें "विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीयता, अच्छे लेख हैं।

* 'भारती' में यह लेख अच्छा छपा है जिसमें विज्ञान-परिषत् और विज्ञान-पत्र दोनोंकी सेवाओंकी चर्चा है। इस संबंधमें विज्ञान' के सम्पादककी हैसियतसे श्रीगोपाल दामोदर तामस्करकी प्रशंसा की गई है। इसमें भूल हुई है। विद्वान् लेखकका तात्पर्य वस्तुतः कायस्थ पाठशालाके प्रोफेसर श्रीगोपालस्वरूप भार्गवसे है जिन्होंने दस वर्ष-तक बड़ी योग्यतासे विज्ञानका सम्पादन किया है। तामस्करजीका विज्ञानसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

—सम्पादक

चार अनूठे विशेषांक

(१) गंगाका "विज्ञानांक"

इसे पढ़कर आप विज्ञान-विद्याके पूरे परिडत बन जायँगे

(पृष्ठ-संख्या ४१६, रंगीन और सादे चित्र २१५, मूल्य ३॥) रुपये)

इसमें विज्ञानकी खोजोंका आप-टु-डेट विवरण है । भौतिक विज्ञान, रसायन, जीवविज्ञान, समाजविज्ञान, मनोविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, जन्तुविज्ञान, खनिजविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, वायुमण्डलविज्ञान, मानवविज्ञान, आदि आदिका रहस्य "विज्ञानांक" बायस्कोपकी तरह देखिये । सारे विश्वका राई-रत्ती हाल बतानेवाले विभिन्न यन्त्रोंको देखकर आप आश्चर्य-सागरमें डूब जायँगे ! हिन्दीमें तो क्या, संसारकी किसी भी भाषामें ऐसा विशेषाङ्क नहीं निकला है । ५) रु० भेजकर जनवरी १९३४ से "गङ्गा" का ग्राहक बननेवालोंको "विज्ञानाङ्क" मुफ्त मिलेगा ।

(२) गंगाका "पुरातत्त्वांक"

(पृष्ठ-संख्या ३३७, रंगीन और सादे चित्र १८१, मूल्य ३) रुपये)

इसमें संसार और मनुष्यकी उत्पत्ति, ब्रह्माण्डके इतिहास, संसार भरकी भाषाओं, लिपियों, अजायबघरों, संवतों और भारत भरकी खोदाइयोंका सचित्र और विचित्र वर्णन है ।

"इसमें बहुत उत्तम और नये लेख हैं । आशा है, हिन्दी जनता इसे पढ़कर इतिहास और पुरावृत्तकी ओर आकृष्ट होगी ।"—काशीप्रसाद जायसवाल (एम० ए० (आक्सन), बार-ऐट-ला) ।

"इसमें बड़े-बड़े विद्वानोंके लेख छपे हैं । अनेक लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं ।"—जोसेफ तुसी (प्रोफेसर, रोम यूनवर्सिटी, इटाली) ।

"इसका सम्पादन बड़ी योग्यतासे किया गया है ।"—एल० डी० बर्नेट (ब्रिटीश म्युजियम, लंडन) ।

"आपने "पुरातत्वांक" निकालकर भारतकी सभी भाषाओंकी महती सेवाकी है । कुछ लेख तो एकदम नवीन अनुसन्धानके परिणाम हैं ।"—सुनीतिकुमार चटर्जी (एम० ए०, पी०-एच, डी,) ।

(३) गंगाका "वेदांक"

(पृष्ठ-संख्या ३००, रंगीन और सादे चित्र ३१, मूल्य २॥) रुपये)

"वेदाङ्कसे भारतकी प्राचीन संस्कृतिके प्रेमियोंको बड़ा ही आनन्द मिलेगा ।"—ओटो स्टीन (पी-एच० डी०, जेकोस्लोवेकिया) ।

"सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमें "वेदाङ्क" की समता करनेवाला कोई भी ग्रन्थ नहीं है ।"—नारायण दवानराव पावगी (पूना) ।

(४) गंगाका "गंगांक"

(पृष्ठ-संख्या ११२, रंगीन और सादे चित्र २१, मूल्य ॥) आने)

"गङ्गाङ्कमें बड़े-बड़े विद्वानोंके लेख हैं । गङ्गा-सम्बन्धिनी उक्तियां पढ़ते समय मनमें पवित्रताकी लहरें उठती हैं ।"—"आज" (बनारस) ।

ज्ञातव्य वैदिक बातों, गवेषणा-पूर्ण-टिप्पणियों और सरल हिन्दी-अनुवादके साथ ऋग्वेद-संहिता पढ़कर आर्य-मर्यादाकी रक्षा कीजिये । तीन अष्टक छप चुके हैं तीनोंका मूल्य ६) रुपये । चौथा अष्टक छप रहा है ।

ऋग्वेद-संहिता

मैनेजर, "गङ्गा", सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

चलती रेलगाड़ीकी जान

पूर्ण संख्या २२२ —*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708.

जिसके साथ अमृतसरका

आयुर्वेद विज्ञान

भी सम्मिलित है

भाग ३९ | Vol. 39

कर्क संवत् १९९१

जुलाई, १९३४

संख्या ४ | No. 4.

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी०एस-सी०, (गणित और भौतिक-विज्ञान) स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)

रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीव-विज्ञान) श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी०, (जंतु-विज्ञान)

श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज-विज्ञान) सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्के पदाधिकारी

संवत् १९९०-१९९१ वि०

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत् तथा विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्द, दि पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, मजीठमंडी, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिये।

विषय-सूची

बजरंगबली गुप्त विशारदने बनारस जालिपादेवीके श्रीसीताराम प्रेसमें छापा
और मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावन विहारीसिंहने प्रकाशित किया।

महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।)

२—मिफताह-उल-फनून—(वि० प्र० भाग १का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव ... ।।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० स्व० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी। इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है। १।।)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी. एल्. टी., विशारद।

- मध्यमाधिकार ... ... ।।=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ।।।)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १।।)
- चन्द्रग्रहणाधिकारसे ग्रहयुत्यधिकारतक १।।)
- उदयास्ताधिकारसे भूगोलाध्यायतक ।।।)

८—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० सालिग्राम वर्मा, एम. ए., बी. एस-सी. ... —)

९—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० स्व० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... —)

१०—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... =)

११—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

१२—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० श्री० पं० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।—)

१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. एल. टी. ।)

१४—चुम्बक—प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ।=)

१५—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी, एम. बी., बी. एस. । ... —)

१६—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... —)

१७—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

१८—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१९—फसलके शत्रु—ले० श्रीशङ्करराव जोषी ।—)

२०—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस ... ।)

२१—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए. एस-सी ... —)

२२—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथजी गुप्त वैद्य ... ... १)

२३—वर्षा और वनस्पति—ले० पं० शङ्करराव जोषी ।)

२४—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... —)।।

२५—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस-सी तथा श्री सत्य-प्रकाश डी० एस-सी० ... ... १।।)

२६—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ... ... २।।)

२७—साधारण रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ... ... २।।)

२८—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, प्रथम भाग—ले० श्री० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० ।।)

२९—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—ले० श्री० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १।)

३०—सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन—ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव, एम० एस-सी० ... =)

३१—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग— १।।)

३२—समीकरण मीमांसा दूसरा भाग—ले० स्वर्गीय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी ... ।।=)

३३—केदार-बद्री-यात्रा ... ... ।)

पता—मंत्री, विज्ञान-परिषत्, प्रयाग।
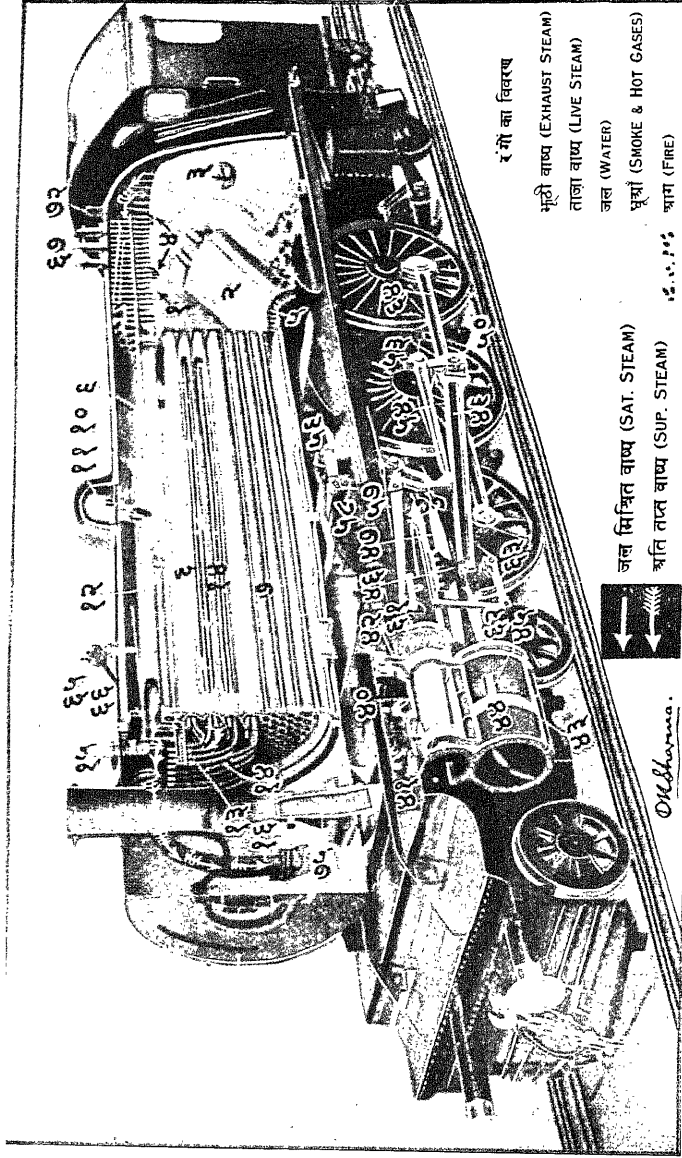
जल मिश्रित वाष्प (SAT. STEAM)
अति तप्त वाष्प (SUP. STEAM)
रंगों का विवरण
भूठी वाष्प (EXHAUST STEAM)
ताज़ा वाष्प (LIVE STEAM)
जल (WATER)
धूआँ (SMOKE & HOT GASES)
आग (FIRE)
O.N. Sharma.

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३९ } प्रयाग, कर्क, संवत् १९९१ । जुलाई, १९३४ } संख्या ४

मंगलाचरण

ॐ विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ।

स्वागतम्

विज्ञान-सम्पादक-मंडलकी ओरसे हम अमृतसरके "दि पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी"के सुयोग्य संस्थापक तथा "आयुर्वेद-विज्ञान"के यशस्वी सम्पादक देशभक्त श्रीमान् स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्यका विशेष सम्पादक रूपसे और उनके संचालित "आयुर्वेद-विज्ञान" मासिक पत्रका "विज्ञान"के अंगरूपसे सादर स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि इस आधार और आधेयका यह सहयोग और सम्मिलन कल्याणकारी होगा और "विज्ञान"में नया जीवन और नयी स्फूर्ति लानेके लिये रसायनका काम करेगा। मंगलमय भगवान् विश्वनाथ दोनोंका उत्तरोत्तर कल्याण और वृद्धि करें—शुभमस्तु।

अबसे विज्ञानमें प्रकाशित होनेके लिये प्राच्य और पाश्चात्य सभी तरहके चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी लेख हमारे कृपालु लेखक इस विषयके विशेष-सम्पादक "श्रीस्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, दि पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, मजीठमंडी, अमृतसर," इस पतेसे भेजा करें।

श्रीकाशी
१।४।१९९१ } —रामदास गौड़

चलती हुई रेलगाड़ीकी जान

उसे चलानेवाला इंजन

[ले० पं० ओंकारनाथ शर्म्मा, ए० एम० आइ० एल० ई०]

१. उपक्रम

कोई अगर पूछे कि उन्नीसवीं सदी ईसवी किस बड़े आविष्कारके लिये प्रसिद्ध है तो हम बेखटके कह सकते हैं कि वह है रेलगाड़ीको चलानेवाला "इंजन"। आज भी चलती हुई रेलगाड़ीको देखकर किसकी निगाहें उसे सहजमें घसीटते हुए इंजनपर नहीं ठहर जातीं? गाड़ियोंकी शृंखलासे बनी हुई इस दानवी नागिनकी लहरीली चालपर कौन मोहित नहीं हो जाता?

इस धुआं और आग उगलते दहाड़ते चलनेवाली दानवीके पराक्रम और सौंदर्य्यकी कौन सराहना नहीं करता? प्राणियोंकी सवारीकी तो कोई बात नहीं, यह ढोनेमें इतनी प्रवीण है कि बिना थके मालके पहाड़का पहाड़ देशके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक सहजमें ही पहुँचा सकती है। इस रेलगाड़ीकी जान, उसका प्राण "इंजन" है। इंजनकी बनावट उसकी मजबूती और उसके एचपेचका हाल तो बहुत ही कम लोग जानते हैं। साधारणतया यह भारतमें बनता भी नहीं। हरएक कारखाना बैलट (बोयलर) बनानेका कानूनन अधिकारी भी नहीं है। देखनेमें तो यह अत्यन्त साधारण और नित्यकी चीज है तथापि इसकी भीतरी बनावट क्वचित् ही कोई जानता हो। हमारे मित्र पं० ओंकारनाथ शर्म्माने विज्ञानके पाठकोंके लिये कृपाकर यह लेख इंजनपर ही तैयार किया है और रेलवे कम्पनीसे इंजनके चित्र छपानेकी इजाजत माँगी और बी-बी-ऐंड सी-आईने कृपाकर उसकी अनुमति दे दी, जिसके लिये हम भी उसके कृतज्ञ हैं।

गाड़ी चलानेवाला इंजन पहले-पहल ईसाकी उन्नीसवीं सदीके शुरूमें जार्ज स्टीफेंसन नामके ब्रिटिश इंजिनियरने बनाकर गाड़ी चलायी। तबसे आजतक इंजनमें सुधारपर सुधार होते गये। पहले ईंधनके लिये लकड़ियाँ काममें आती थीं। अधिकसे अधिक ईंधन लादकर चलनेपर कुछ ही मीलतक चल सकता था। कोयलेने भारी सुधार किया। आज एक बार भरा हुआ कोयला तीन-चार सौ मीलतक मजेमें चलता है। उन दिनों इंजनमें जहाँ डेढ़ सौ पौंडतक भाप रह सकती थी, आज ढाई सौ पौंडसे अधिक रह सकती है। यह तो भापके इंजनोंकी बात हुई। अब तो भाप और कोयले पानीको भी हटाकर बिजलीसे रेलगाड़ियाँ चलानेका प्रबंध हो रहा है। कहीं-कहीं एक पहियेवाली गाड़ियाँ भी चलायी गयी हैं और उनमें बहुतसे अधिक सुभीते पाये गये हैं। फिर भी दो पटरियोंवाली भापके इंजनवाली गाड़ियाँ हमारे लिये सुपरिचित हैं। इसीलिये भापके इंजनका ही आज वर्णन होगा।

—रा० गौड़।

२. कोयला-पानीकी ताकत

जिसने रेलगाड़ीके इंजनको एक बार भी दौड़ते हुए देख लिया है उसने यह अवश्य ही देखा होगा कि उसकी चिमनीमेंसे सदैव कुछ न कुछ धुआँ निकला करता है। इससे निश्चयके साथ कहा जा सकता है कि उसमें कहीं न कहीं आग अवश्य जलती है। जिसने स्टेशनके प्लेटफार्मपर गाड़ीके साथ खड़े हुए इंजनको वहाँसे रवाना होनेके चार-पाँच मिनिट पहिले देखा होगा उसने यह मालूम किया होगा कि उसके चलानेवाले अपने सामने लगी हुई एक खिड़की-सी खोलते हैं जिसमें धधकती हुई आग दिखायी पड़ती है और उसमें कुछ बेलचे कोयलेके झोंक देते हैं और फिर उसे बंद कर देते हैं। यही इंजनके आगकी भट्ठी है। रेलमें यात्रा करनेवालोंने यह भी देखा होगा कि खास-खास स्टेशनोंपर इंजनकी टंकीमें, जो कि उसे चलानेवालोंके पीछे रहती है, पानी भर लिया जाता है, और भट्ठीमें आग जलानेके लिये कोयला टंकीकी छतपर लाद लिया जाता है। इन सब बातोंसे पाठकोंको विदित होगा कि इंजनको चलानेमें मुख्यतया कोयले

और पानीका ही खर्चा होता है और इन्हींकेद्वारा भारी-भारी मालगाड़ियोंको सहजमें ही तेज़ीसे खींच ले जाने-वाली और सवारी गाड़ियोंको हवाकी भाँति उड़ानेवाली अपरिमित शक्ति प्राप्तकी जाती है।

३. भापकी ताकत

इस कोयले और पानीसे किस प्रकार शक्ति प्राप्तकी जाती है, यह भी जानना चाहिये। स्टेशनोंपर और रेलमें यात्रा करते समय पाठकोंने देखा होगा कि इंजनके सीटी मारते समय, स्टेशनसे चलनेके पहले इंजनकी छतपर लगी पीतलकी गुमटियोंमेंसे और कई बार इंजिनके बराबरमें दोनों ओरसे सफेद-सफेद धुएँके बादलसे बड़ी तेज़ीसे शब्द करते हुए निकला करते हैं। वास्तवमें यह सफेद धुआँ नहीं, बल्कि पानीकी भाप है जो सारे यंत्रको शक्ति देती है। यह भाप इंजनकी भट्टीमें कोयलेको जलाकर और उससे पानीको गरम करके तैयार की जाती है। वाष्पकी उस अपरिमित शक्तिका अंदाज़ा लगाना, जिसकेद्वारा इंजन अपना कार्य करता है, कोई कठिन बात नहीं है। यह भी जानते हैं कि दाल या साग बनाते अथवा पानी औटाते समय आगपर रखे हुए बरतनको जब किसी ढकनेसे ढक दिया जाता है तब उसके भीतर पैदा हुई वाष्प जोर मारकर ढकनेको खड़खड़ाती हुई बाहर निकलती रहती है और कभी-कभी उसे दूर भी फेंक देती है।

४. रोटी कब और क्यों फूलती है ?

एक और उदाहरण लीजिये, रोटी बनाते समय जब तवेपर रोटी दोनों ओरसे थोड़ी-थोड़ी सिक जाती है तब उसे वहाँसे उतारकर आगपर नीचे सेंकते हैं, और उस समय रोटीके बीचमें गूदेमें जो जलका अंश रहता है, उसकी भाप बनने लगती है। दोनों तरफकी पपड़ियाँ सख्त हो जानेके कारण वह वाष्प उन्हें आसानीसे तोड़-कर तो निकल नहीं सकती इसलिये उन्हें अलगाकर रोटी-को फुला देती है, और जब वह इतनी अधिक हो जाती है कि रोटीके फूलनेपर भी उसमें नहीं समाती तब वह रोटीके किनारोंको फोड़कर निकलने लगती है।

५. भापमें बल कहाँसे आया ?

अब सहजमेंही यह प्रश्न उठ सकता है कि वाष्पमें कार्य करनेकी यह शक्ति आती कहाँसे है? इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि वैज्ञानिकोंने प्रयोगों-द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि किसी भी द्रवकी वाष्प जिससे वह उत्पन्न हुई है, साधारण वायु-मंडलके दबावपर अर्थात् वायुमंडलकी इस अवस्थामें सांस लेते और चलते-फिरते हैं, उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक जगह घेरती है। पानी-की वाष्प, पानीकी अपेक्षा, १६४८ गुना अधिक जगह घेरती है। दूसरे शब्दोंमें हम यों कह सकते हैं कि यदि एक घनफुट * जल लेकर उसकी वाष्प बनावें तो उससे साधारणतया ११ फुट लम्बी, इतनी चौड़ी और इतनी ही ऊँची टंकी भर जावेगी। यह टंकी इस नापसे जितनी ही छोटी होगी उतनी ही ज़ोरसे उसके भीतरकी वाष्प उसकी दीवारोंको तोड़कर अपनी मामूली जगह घेरनेकी कोशिश करेगी। यदि उस टंकीकी दीवारें कहींसे कमजोर हुईं तो उसके भीतरकी वाष्प उन्हें वहाँसे तोड़कर निकल जावेगी। यदि वह दीवारें सब तरफसे एक-सी मज़बूत हुईं और वाष्पमें उन्हें तोड़नेके लायक सामर्थ्य न हुई तो वह केवल उसकी सब दीवारोंपर अपना दबाव डालेगी। यदि इस टंकीकी दीवारोंका कोई भाग ऐसा बना हुआ हो जो आगे तो सरक सकता हो लेकिन अपने जोड़ोंमेंसे वाष्पको न निकलने देता हो तो ऐसी दशामें बाष्प उसे सरकाकर अपने लिये जगह बना लेगी।

६. इंजनके दो बड़े अंग, और उनके काम

प्रत्येक वाष्प इंजनमें, चाहे वह रेलगाड़ी चलानेवाला हो अथवा जहाज़ चलानेवाला अथवा कारखानोंकी मशीनें चलानेवाला, दो मुख्य भाग होते हैं। पहला तो वह जिसमें वाष्प तैयार होती है, इसे बैलट (बोयलर, वाष्प-जनक) कहते हैं। इसी बोयलरमें पानी भरा रहता है और उसे गरम करके वाष्प बनानेके लिये आगकी भट्टी रहती है और उसका धुआँ निकलनेके लिये रास्ते रहते हैं। दूसरा वह

* यदि किसी चौकोर बरतनमें एक फुट लम्बी, चौड़ी और गहरी जगह हो तो उस जगहको एक घन-फुट जगह कहते हैं, और उसमें भरे हुए पानी आदि पदार्थको एक घनफुट पदार्थ नापमें कहते हैं।

भाग होता है जिसमें बोयलरकी वाष्प जाकर एक बड़ी पिचकारीनुमा यंत्र*की डाटको आगे और पीछे अपनी दबावकी शक्तिद्वारा सरकाती है। और इसी डाटके डंडेसे सम्बन्धित इंजनका गतियंत्र होता है जिसकेद्वारा इंजन चलता है। इस गतियंत्रमें उपर्युक्त डाटके आगे-पीछे वाष्पकेद्वारा सरकनेसे शक्ति और गति आती है, जिसका आगे चलकर विस्तारपूर्वक वर्णन होगा।

भापके इंजनके चलनेका यही सिद्धांत है।

७. रेलगाड़ी कैसे चलती है ?

बोयलरमें भाप जहाँ जलके द्वारा बनती है, वहाँ उसके लिये जलके स्थानकी अपेक्षा १६४८ गुना स्थान नहीं होता जिसमें वह बिना किसी दबावके आरामसे रह सके, बल्कि जलकी अपेक्षा लगभग एक तिहाई स्थान ही होता है और उसपर भी भट्ठीमें प्रचंड आग धधकती रहती है, इसका फल यह होता है कि उस जरासी जगहमें बहुतसी भाप ठसा-ठस भर जाती है और अपने स्वाभाविक स्थानमें फैलनेके लिये बोयलरकी दीवारोंपर बड़ा भारी दबाव डालती है। यह दबाव रेलके इंजनके बोयलरोंमें अकसर १८० पौंड अर्थात् ९० सेर प्रति वर्गइंच†के लगभग होता है। इस बड़े भारी दबावसे जब वह वाष्प सिलिन्डरमें जाकर पिस्टनको, जिसका क्षेत्रफल लगभग २०० वर्गइंच होता है, धक्का मारती है जिससे पिस्टनका डंडा २०० × १८० = ३६००० पौंडके या सवाचार सौ मनसे अधिक बलसे आगे या पीछे सरकता है। साधारणतया प्रत्येक रेलके इंजनमें दो सिलिन्डर पिस्टन सहित लगे होते हैं और प्रत्येक सिलिन्डरके पिस्टन-दंडसे एक-एक गतियंत्र लगा होता है और दोनों गतियंत्र मिलकर एकही धुरेको एक साथ चलाते हैं, इसलिये दोनों गतियंत्र मिलकर धुरेपर उपर्युक्त बलसे दुगना बल पहुँचा देते हैं। इस बलसे साधारणतया सीधी और चौरस सड़कपर एक-हजार-टनतक या सवासत्ताईस हजार मनतकका बोझा खींचा जा सकता है।

* इस पिचकारीनुमा यंत्रको इंजनका सिलिन्डर और उसकी डाटको पिस्टन कहते हैं। आगे चलकर इस लेखमें इन्हें इसी नामसे पुकारा जायगा।

† एक इंच लम्बी और चौड़ी जगहको एक वर्गइंच जगह कहते हैं।

यंत्रशास्त्रसे थोड़ी बहुत जानकारी रखनेवाले पाठकोंके विनोदार्थ नीचेके उदाहरणमें सिद्ध करके दिखाया जायगा कि उपर्युक्त बलसे किस प्रकार १००० टनका बोझा खींचा जा सकता है।

नित्यके प्रयोगसे देखनेमें आता है कि बोयलरमेंसे सिलिन्डरमें पहुँचते-पहुँचते, ठंडी हो जानेके कारण, वाष्पका दबाव बहुत कुछ घट जाता है। क्योंकि सिलिन्डरमें पहुँचनेके लिये उसे कई टेढ़े-मेढ़े नलों और रास्तोंमेंसे होकर गुज़रना पड़ता है जिससे वाष्पका तापक्रम घट जाता है और तापक्रमके घटनेसे वह जमने लगती है और यही उसके दबावके घटनेका कारण है। साधारण रेलके इंजनोंमें जिनमें सुपर-हीटेड स्टीम अर्थात् अति तप्त वाष्पका उपयोग होता है उनमें तो ८५ % और जिनमें सेचुरेटड स्टीम अर्थात् गीली वाष्पका प्रयोग होता है ७५ %तक वाष्पका दबाव सिलिन्डरमें कार्य करते समय रहने पाता है। इस उदाहरणमें यदि हम मान लें कि सिलिन्डरमें वाष्पका दबाव ७५% ही रह गया है तो इस प्रकारसे वह १८० पौंडकी जगह

$$\frac{१८० \times ७५}{१००} = १३५$$ पौंड ही रह जायगा।

यदि पिस्टनका क्षेत्रफल २०० वर्गइंच हो तो एक तरफके पिस्टनपर १३५ × २०० = २७००० पौंडका दबाव पड़ेगा। यदि पिस्टनकी स्ट्रोक अर्थात् दौड़ २४ इंच हो तो एक दौड़में वहाँ २७००० × २४ = ६,४८,००० इंच पौंड कार्य होगा, और दोनों सिलिन्डरोंमें मिलाकर उतनेही समयमें ६,४८,००० × २ = १२,९६,००० इञ्च पौंड कार्य होगा।

लेकिन जितनी देरमें इंजनका पहिया एक पूरा चक्कर लगाता है उतनी ही देरमें सिलिन्डरका पिस्टन एक सिरेसे दूसरे सिरेतक दो दौड़ लगा लेगा।

इसलिये इंजनका पहिया जितनी देरमें एक पूरा चक्कर करेगा उतनी देरमें दोनों सिलिन्डरोंमें मिलकर १२,९६,००० × २ = २५,९२,००० इंच पौंड कार्य हो जावेगा।

मान लीजिये कि इस उदाहरणके इंजनमें क पौंड खिंचाव-शक्ति (ट्रेक्टिव एफ़र्ट) है। यदि उसके पहियेका व्यास ४९ इंच है तो पहियेके एक पूरा चक्कर करनेपर वह इंजन

चित्र १
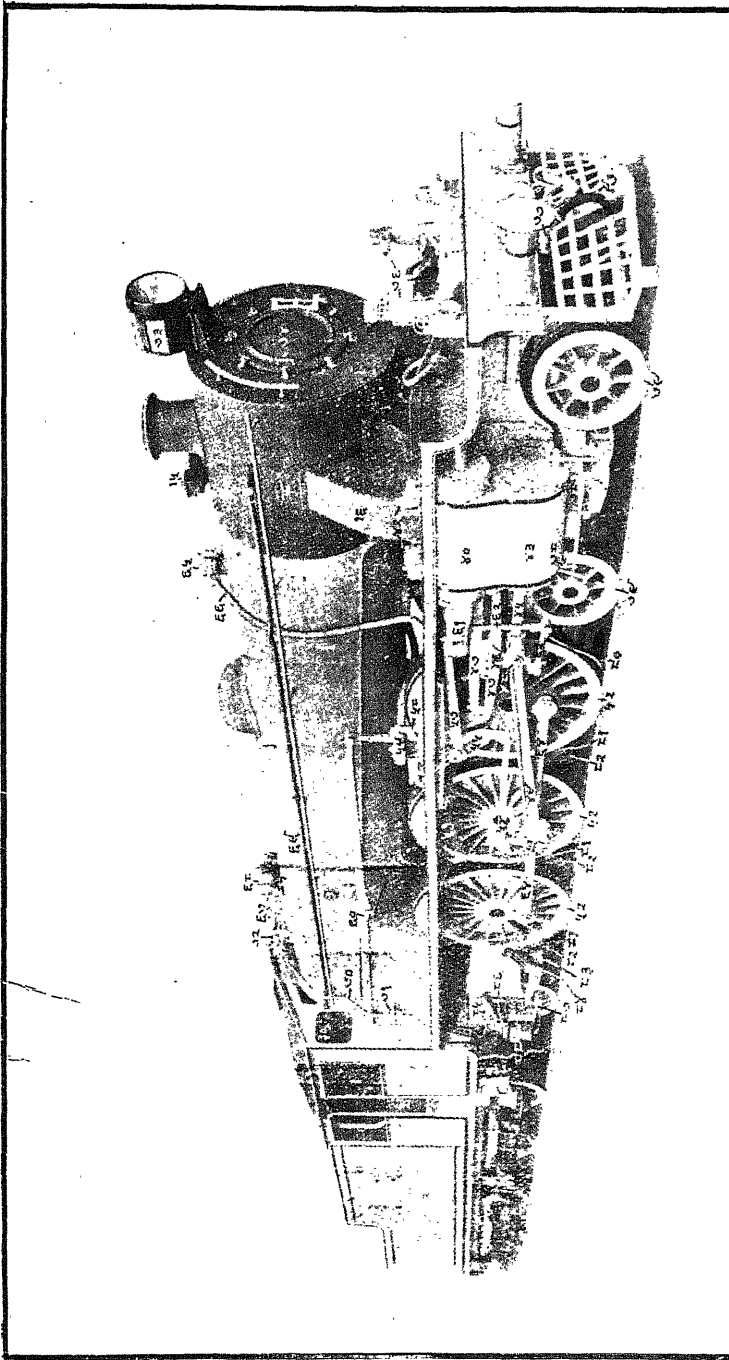
उस पहियेकी परिधिके बराबर अर्थात् $\frac{४९ \times २२}{७}$ = १५४ इंच आगे बढ़ेगा।

इसलिये पहियेके एक पूरे चक्करमें क × १५४ इंच पौंड कार्य हो जायगा।

लेकिन ऊपर यह भी बताया जा चुका है कि उतनी ही देरमें दोनों सिलिन्डरोंमें २५,९२,००० इंच पौंड कार्य होता है।

∴ क × १५४=२५,९२,००० इंच पौंड,

अथवा क= $\frac{२५९२०००}{१५४}$ = १६८३१ पौंड = इंजनकी खिंचाव-शक्ति। यह नियम है कि पहियोंपर रखे हुए किसी बोझेको खींचनेके लिये उस बोझेसे बहुत कम जोर लगाना पड़ता है। इसलिये उदाहरणके लिये यहाँ मान लीजिये कि यह इंजन सीधी और चौरस सड़कपर चलेगा, और इस प्रकारकी सड़कपर गाड़ियोंके प्रति टन बोझेको खींचनेके लिये १६ पौंडके लगभग खिंचाव लगाना पड़ता है, इसलिये यह इंजन १६८३१ पौंडके खिंचाव बलसे $\frac{१६८३१}{१६}$ = १०५२ टनके लगभग बोझा खींच लेगा।

यदि इंजनका खुदका बोझा ५२ टन भी हो तब भी उसके पीछे १०५२—५२=१००० टन वज़नकी गाड़ियाँ लगा दी जा सकती हैं।

८. इंजनकी भीतरी बनावट

चित्र संख्या १ में बड़ी लाइनके एक आधुनिक प्रकारके इंजनका चित्र

दिया है। इसमें पीछेकी ओर कोयला और पानी रखनेके लिये टंकी भी लगी हुई है। इंजनमें आगेकी ओर जो ढोलनुमा बड़ा लम्बा और मोटा भाग दिखायी देता है वह ही इस इंजनका बोयलर है। इसीमें पानी और उससे उत्पन्न हुई वाष्प रहती है। नीचेकी ओर गतियंत्रके पुर्जे और उससे जुड़े हुए पहिये दिखायी देते हैं। आगेकी तरफ, गतियंत्रमें पिस्टनदंड (४५) दिखायी दे रहा है जिसे आप लोगोंने इंजनके चलते समय सिलिन्डर (४३) के भीतर और बाहर जल्दी-जल्दी आते-जाते देखा होगा।

चित्र ३

इसी इंजनकी भीतरी बनावट समझानेके लिये चित्र-संख्या २ में एक रंगीन दृश्य दिखाया है जिसे देखनेसे मालूम होता है कि मानो इंजनके बोयलर और सिलिन्डर-को उसकी लम्बाईसे बीचमेंसे चीर दिया है*। इस चित्रको ध्यानसे देखनेपर इंजनकी भीतरी बनावट, उसकी कार्यप्रणाली और मुख्य-मुख्य सिद्धान्त बहुत कुछ समझमें आ जाते हैं। इस चित्रमें स्थानाभावसे पीछेकी तरफ टंकी नहीं दिखायी है।

९. इंजनके मोटे-मोटे भाग और पुर्जे

इंजनमें ड्राइवरके स्थानपर खड़े होकर उसके पुर्जोंका सामनेसे जो दृश्य दिखायी देता है वह चित्र सं० ३ में दिखाया है और पीछे-की तरफ दीखनेवाला दृश्य चित्र सं० ४ में दिखाया है। इन चारों चित्रोंमें दिखायी देने-वाले, इंजनके मुख्य-मुख्य पुर्जोंका यहाँपर बहुत ही संक्षेपसे वर्णन किया जाता है।

इंजनके मुख्य-मुख्य भागों और पुर्जोंको संख्याओंद्वारा चिन्हित कर दिया है और इस लेखमें भी जहाँ-तहाँ वे ही संख्याएँ दी हैं जिन्हें देखकर पाठक उन्हें पहचान सकते हैं।

१०. इंजनका पेट, बोयलर या बैलट्

इसके बीचका धड़ ढोलनुमा होता है जिसमें धुआँ निकलनेकी (६,७) और वाष्पकी (१२,१४) नालियाँ लगी होती हैं, इसके पीछेके भागमें ताँबेकी भट्ठी (१) लगी रहती है और आगेके सिरेपर धुआँबकस जुड़ा रहता है जिसमें होता हुआ भट्ठीका धुआँ और झूठी वाष्प, जो सिलिन्डरोंमें एक बेर काम कर चुकी है, चिमनीमेंसे निकला करती हैं। इस बोयलरकी ऊपरी खोल ½ इंच मोटी ईस्पात-की चद्दरकी बनी होती है। चित्रको देखनेसे मालूम होगा कि बोयलरके ढोलनुमा भागमें, जैसा ऊपर कहा गया है, दो प्रकारकी

* देखो इस अंकके आरंभका रंगीन चित्र।

नलियाँ लगी हैं। नीचेके हिस्सेमें कई पतली-पतली नलियाँ लगी हैं जिनमेंसे केवल भट्टीका धुआँ और आगसे पैदा हुई गरम हवाएँ ही गुजरती हैं और फिर धुआँबकसमें पहुँच कर चिमनीमेंसे बाहर निकल जाती हैं। चित्रमें धुआँ और गरम हवाओंको मटिया रंगद्वारा प्रदर्शित किया है। इन पतली नलियोंके अतिरिक्त बोयलरके बीचके हिस्सेमें कुछ मोटी नलियाँ (६) भी लगी रहती हैं जिनमेंसे धुआँ और गरम हवा तो गुजरती ही है, लेकिन उनमें कुछ पतली-पतली नलियाँ और लगी रहती है जिनमेंसे चक्कर खाती हुई बोयलरकी वाष्प सिलिन्डरोंमें जाती है। इन नलियोंको चित्रमें १४ संख्याद्वारा प्रदर्शित किया है। उपर्युक्त पतली (७) और मोटी (६) नलियोंके बीचमें, लम्बाईकी दिशामें थोड़ी-थोड़ी जगह होती है जिसमें पानी भरा रहता है, जो नलियोंमेंसे गुजरनेवाली गरम हवाओंद्वारा गरम होता रहता है। चित्रमें पानीको हल्के नीले रंगद्वारा प्रदर्शित किया है। चित्रको देखनेसे पता चलेगा कि उपर्युक्त धूम्र नलिकाएँ तो जलमें डूबी ही रहती हैं, परन्तु साथमें भट्टीकी छत भी डूबी रहती है। चित्रमें दिखाया है कि भट्टीकी बगलों और बोयलरकी खोलके बीच-बीचमें भी कुछ स्थान रहता है वह भी पानीसे भरा रहता है। इस प्रकार भट्टीमें आग जलानेसे बोयलरमें भरा हुआ पानी एक-एक ओरसे गरम होता है और उस गरमीकेद्वारा वाष्प बनती रहती है। चित्रमें दिखाया है कि जलकी सतहके ऊपर कुछ जगह खाली है जो जलसे उत्पन्न हुई वाष्पसे ठसाठस भरी रहती है। चित्रमें यह वाष्प हरे रंगद्वारा प्रदर्शित की गयी है।

११. बैलटूके और अंग

स्टीम डोम (वाष्पगुम्मज)—यह सभी जानते हैं कि बोयलरके ऊपरकी तरफ, बीचमें, एक कूबड़-सा निकला रहता है, वह चित्रमें भी दिखाया है। यही वाष्पगुम्मज़ है। यह बोयलरके ऊपरके भागमें बना होनेके कारण, सदैव सूखी वाष्पसे भरा रहता है और इसी स्थानसे सिलिन्डरोंमें कार्य करनेके लिये वाष्प जाती है।

स्टीम रेग्यूलेटर (वाष्पनियामकद्वार)—वाष्प गुम्मजमें एक लोहे अथवा पीतल-का बना हुआ एक द्वार होता है, जिसमेंसे होकर बोयलरकी वाष्प क्रमशः १२, १३, १४ और १६ संख्याद्वारा चिह्नित नलों, नलिकाओं और स्थानोंमेंसे घूमती हुई सिलिन्डरोंमें जाती है। यह द्वार वाष्पनल (१२) के मुँहपर लगा होता है और वाष्पगुम्मजमें खुलता है, जो चित्रमें साफ-साफ दिखाया

चित्र ४

है। इस द्वारसे लगीहुई एक कड़ी (१०) नीचेकी ओर दिखायी दे रही है जिसका सम्बन्ध एक आड़े लम्बे डंडे (९) से एक क्रेंक (हाथ) के द्वारा होता है। इस लम्बे डंडेके भीतरी सिरेपर अर्थात् वाष्पनियामक द्वारके पासवाले सिरेपर एक चूल बनी रहती है, जो चित्रमें वाष्पनल (१२) में अटकी हुई दिखायी दे रही है और इस लम्बे डंडेका दूसरा सिरा बाहरकी ओर, जिधर ड्राइवर काम करता है, निकला रहता है और उसपर एक लम्बा हेन्डिल (८) (चित्र १ देखिये) लगा रहता है जिसे घुमानेसे यह डंडा (९) भी घूम जाता है और वाष्प नियामक द्वार (११) के ढकनेको उसकी कड़ी (१०) द्वारा नीचे खींचकर बंदकर देता है और ऊपर ढकेलकर खोल देता है।

१२. इंजनको सुस्त और तेज चलाना

ड्राइवर, वाष्पनियामकके हेण्डिल (८) द्वारा अपनी इच्छानुसार वाष्प नियामक द्वार (११) को कम या अधिक खोलकर सिलिन्डरोंमें कम या अधिक वाष्प भेज सकता है कम वाष्प भेजनेसे इंजन धीरे चलेगा और कम बोझा खींचेगा और अधिक वाष्प भेजनेसे वह तेज चलेगा और अधिक बोझा खींच सकेगा।

१३. वाष्पके मार्ग और उसका "अतितप्त" होना

ऊपर बताया गया है कि वाष्प नियामक द्वारके खुलनेपर बोयलरकी सूखी वाष्प जो कि वाष्प गुम्मज़में इकट्ठी हो जाया करती है क्रमशः १२, १३, १४ और १६ नलों, नलिकाओं और स्थानोंमेंसे घूमती हुई सिलिन्डरोंमें जाती है। चित्र २ को ध्यान से देखनेपर मालूम होगा कि वाष्पनलमेंसे गुज़रनेके बाद वाष्प, धुआँबकसमें लगी हुई एक गुमटीमें (१३)—जिसे अंगरेजीमें सुपरहीटर हेडर कहते हैं—जाती है और फिर उसमेंसे उसके नीचे लगी हुई पतली-पतली नलियोंमें (१४) घुसकर उनमें भट्टीके पासतक कई चक्कर लगाती है। यह पतली नलियाँ (१४) बड़े धुआँनलोंमें (६) लगी रहती है; जैसा कि पहले बताया जा चुका है। इसलिये यह वाष्प पतली नलियोंमें चक्कर लगाते समय बोयलरके धुएँ और गरम हवाओंके सम्पर्कमें बारबार आती है और उनकेद्वारा बहुत अधिक गरम हो जाती है। दुबारा इस प्रकार गरम होनेसे, उस वाष्पके साथ आये हुए पानीके कण भी वाष्पमें परिवर्तित हो जाते हैं और वाष्पका तापक्रम भी बढ़ जाता है जिससे सिलिन्डरमें पहुँचते-पहुँचते वाष्पके ठंडी होकर रास्तेमें जमनेका डर नहीं रहता। उपर्युक्त पतली नलियोंमें चक्कर लगा चुकनेके बाद वह फिर धुआँबकसमें लगी हुई गुमटी (१३) के भीतर दूसरे रास्तेसे प्रवेश करती है, और वहाँसे फिर वाष्प नलकी दो शाखाओं (१६)में होती हुई दोनों ओरके सिन्लिडरोंमें चली जाती है। वाष्पका यह सब प्रवाह, चित्रमें सफेद रंगके सादे और पूँछदार वाणोंद्वारा साफ-साफ दिखाया है। पतली नलियोंमें चक्कर खाकर अतितप्त (Supeheated) होनेकी वाष्पकी हालतको पूँछदार वाणोंद्वारा प्रदर्शित किया है।

बोयलरकी भट्टी—यह भट्टी चित्रमें साफ-साफ बतायी है क्योंकि इसमें आग जलती हुई दिखायी दे रही है। इस भट्टीकी खोल लगभग आधे इंच मोटी तांबेकी चद्दरकी बनी होती है और बोयलरकी बाहरी खोलके साथ, जो ईस्पातकी बनी होती है, तांबेकी बड़ी-बड़ी पेंचदार कीलोंसे मजबूत जुड़ी होती है। यह कीलें चित्रमें ५ संख्याद्वारा चिन्हित की गयी हैं। भट्टीके पेंदेमें जहाँपर आग जलती है, ढालेहुए लोहेकी कुछ जालियाँ लगी होती हैं। इन जालियोंकी बनावट ऐसी होती है कि ड्राइवर उन्हें हिलाकर भट्टीकी राखको नीचे लगे हुए बरतनमें गिरा सकता है। इन्हीं जालियोंमेंसे आगके लिये हवा भी पहुँचती रहती है। उपर्युक्त राखके बरतनमें आगे और पीछेकी तरफ एक-एक खिड़की लगी होती है जिन्हें ड्राइवर जब और जितनी चाहे खोल और बंद करके आगके लिये हवा प्राप्त कर सकता है। इन खिड़कियोंमेंसे राखके बरतनकी सफाई भी की जाती है। कई इंजनोंमें राखका बरतन ऐसा बना होता है कि उसका पेंदा भी खुल सकता है जिसमेंसे स्टेशनोंपर उसकी राख गिरायी जा सकती है।

चित्रको देखनेसे मालूम होगा कि भट्टीमें आगके ऊपर ईंटोंका एक छज्जा-सा बना हुआ है (२)। इसके लगानेसे आगकी लौ और गरम हवायें एकदम धूम्रनलिकाओंमें

जानेके बदले सारी भट्टीमें फैलकर अपने चारों तरफके पानी-को गरम कर देती हैं।

१३. धूम्रनलिकाओं और बोयलरकी रक्षाके उपाय

पहले बताया जा चुका है कि बोयलरमें पानी इतना भरा रहता है कि उससे सब धूम्रनलिकायें और बोयलरकी भट्टीकी छत डूबी रहती है, यदि पानी इनसे नीचे उतर जावे तो उनके जल जानेका डर रहता है। धूम्रनलिकाओंसे भट्टीकी छत ज़रा ऊँची रहती है, इसलिये उन्हें जलनेके खतरेसे बचानेके लिये भट्टीकी छतमें दो सीसेकी डाटें (४) लगा दी जाती हैं। यदि ड्राइवरकी असावधानीसे कभी पानीकी सतह भट्टीसे नीचे हो जाती है तो ताँबेकी चद्दरकी बनी छतके जलनेके पहले उन डाटोंका सीसा गल जाता है और छतमें छेद हो जाते हैं जिनमेंसे बोयलरकी वाष्प आकर भट्टीकी आगको बुझा देती है।

जिस खिड़की (३)मेंसे इंजन चलानेवाले भट्टीमें कोयला झोंका करते हैं वह भी चित्रमें दिखायी दे रही है। इस खिड़कीपर एक दरवाजा लगा होता है जिसे खोलने-का हेन्डिल (१७) चित्र ३में दिखाया है।

यहाँतक तो सब बोयलरकी बनावटका वर्णन हुआ। उसके ऊपर और भी कई प्रकारके यंत्र और उपयोगी सामान लगे होते हैं। जिन्होंने स्टेशनपर खड़े इंजनको पास जाकर देखा है और जहाँ ड्राइवर खड़ा रहता है वहाँ झाँका है, तो उन्होंने देखा होगा कि उसके सामने कई विचित्र-विचित्र प्रकारके पुर्जे लगे होते हैं। यह सबके सब इंजन चलानेमें सहायता देते हैं।

१४. तेल देनेका यंत्र

चित्र सं० ३ में पाठक देखेंगे कि ड्राइवरके सामने बायीं ओरको यह यंत्र (१८) लगा हुआ है। जिसके-द्वारा वाष्पके बलसे सिलिन्डरोंमें तेल पहुँचाया जाता है जिससे उनके भीतर चलनेवाले पिस्टन (४४), पिस्टन-वाल्व (४१) और खुद सिलिन्डर (४३) और स्टीम चेस्ट (४०) घिस न जावें। इस यंत्रको अंगरेजीमें ल्यूवरीकेटर कहते हैं। इंजनके दूसरे पुर्जोंमें तेल देने-के लिये उन्हींके पास अलहदा-अलहदा प्याले लगे रहते हैं जिनमें हाथसे तेल भर दिया जाता है और फिर एक दफे भर देनेपर उनमेंसे एक-एक बूँद चूकर पुर्जोंपर पहुँचता रहता है। जब वे खाली हो जाते हैं तब फिर भर दिये जाते हैं।

१५. अग्निप्रदीपक यंत्र

तेलवाहकयंत्रके दाहिनी ओर यह अग्निप्रदीपक-यंत्र (१९) लगा होता है। इसकी टोंटीको, जिसका गोल-गोल हेन्डिल चित्रमें दिखायी दे रहा है, खोल देनेसे बोयलरके भीतरकी वाष्प, नलियोंद्वारा धुआँबकसमें पहुँचती है और वहाँ झूठी वाष्पको बाहर निकालनेवाले नल (७५), जिसे अंगरेजीमें एग्जहास्ट पाइप कहते हैं, (Nozzle) मुहानेके ऊपर लगी हुई एक छेदोंवाली कुण्डली-मेंसे निकलकर चिमनीमेंसे बाहरको निकलती है, और अपने साथ धुआँबकस और धूम्रनलिकाओंमें भरे हुए धुएँको बाहर खींचकर ले जाती है, जिस कारण ताज़ा हवा-को भट्टीकी जालियोंमेंसे आनेका मौका मिल जाता है जिससे आग बड़ी तेज़ीसे जलने लगती है।

१६. कुछ टोंटियाँ और उनके काम

चित्र संख्या ३ में पाठक देखेंगे कि ऊपरकी ओर कई प्रकारकी टोंटियोंके गोल-गोल हेन्डिल लगे हुए हैं। एक-एक करके उनका उपयोग यहाँ बताया जाता है।

जब बोयलरके पानीमें किसी कारणसे बहुत झाग पैदा हो जाते हैं तब ड्राइवर हेन्डिल (२०)के द्वारा ड्रैवर एक टोंटीको खोल देता है जिसकेद्वारा सारे झाग बाहर निकल जाते हैं। इस टोंटीको अंगरेजी भाषामें स्कमकॉक कहते हैं।

जब धूम्रनलिकाओंमें बहुत धुआँ जम जाता है तब भट्टीकी गरम हवा और धुआँके बाहर निकलनेमें बड़ी बाधा पड़ती है जिससे आग भली-भाँति नहीं जलने पाती और पानी ठीक तरहसे गरम न हो सकनेके कारण वाष्प ठीक तरहसे नहीं तैयार हो सकती। ऐसी हालतमें उस जमे हुए धुएँको नलियोंमेंसे हटानेके लिये ड्राइवर २१ संख्याद्वारा चिन्हित हेन्डिलको घुमाकर एक टोंटीको खोल देता है, जिससे उसीके पास दिखायी देनेवाले एक नलमेंसे ३५ संख्याद्वारा चिन्हित एक फौआरेमें आती है। इसमें-

से वाष्प इतनी जोरसे निकलती है कि उससे धूम्रनलिकाओंका जमा हुआ धुआँ बाहर निकल जाता है, और नलियाँ साफ हो जाती हैं।

हेन्डिल (२२) के द्वारा एक टोंटी खोली जाती है जिसकेद्वारा वाष्प विद्युत-उत्पादक-यंत्र (६८) में पहुँचकर उसे चलाती है। इस यंत्रद्वारा तैयार की हुई बिजलीसे ही इंजनकी सब लालटेनें (२८,३३,७३) जलायी जाती हैं।

हेन्डिल (२४) के द्वारा एक टोंटी खोली जाती है जिसमेंसे वाष्प भार-सूचक-यंत्र (२७) में वाष्प पहुँचती है। यह यंत्र घड़ीके आकारका होता है, जिसकी सुई सदैव बोयलरके भीतरकी वाष्पका दबाव बताती रहती है।

१७. गाड़ीका लम्बे ढालपर उतरना

हेन्डिल (२५) के द्वारा एक टोंटी खोली जाती है जिसमेंसे बोयलरकी वाष्प एक नलीमेंसे ड्रिफ्टिंग वाल्व (३२) में जाती है। और इसमेंसे नलियोंकेद्वारा सिलिन्डरोंमें पहुँचती है। इस वाल्वका उपयोग उसी समय किया जाता है, जब इंजन गाड़ीको लेकर किसी लम्बे ढालपर उतरता है, ढालपर उतरते समय ड्राइवर अक्सर वाष्प-नियामक-द्वार(११)को बंद कर दिया करते हैं जिससे बोयलरकी वाष्प सिलिन्डरोंमें नहीं जावे क्योंकि इंजन, उस समय, बिना वाष्पकी सहायताके ही गाड़ी सहित लुढ़कता हुआ चल सकता है। इंजन चाहे वाष्पकी सहायतासे चले अथवा स्वयं ही, ढाल होनेके कारण, लुढ़कने लगे दोनों अवस्थाओंमें उसके सिलिन्डरोंमें पिस्टनोंका चलना अनिवार्य है। लेकिन वाष्पके सिलिन्डरोंमें न पहुँचनेसे उनमें तेल भी भली-भाँति नहीं पहुँच सकता और यदि तेलके बिना पिस्टन अधिक देरतक चलने दिये जाते हैं तो वे घिस जाते हैं इसलिये उन्हें घिसनेसे बचानेके लिये ही उपर्युक्त वाल्व (३२) द्वारा सिलिन्डरोंमें थोड़ी-थोड़ी वाष्प पहुँचायी जाती है जिससे पिस्टनोंमें तेल समुचित प्रकारसे पहुँचता रहे। यहाँपर यह भी बता देना आवश्यक है कि जब इंजन वाष्पके जोरसे चलता है तब तो सिलिन्डरोंमें सब जगह वाष्पका ही प्रभुत्व रहता है लेकिन जब इंजन ढालपर उतरता है उस समय पिस्टन (४४) और पिस्टन वाल्व (४१) स्वयं ही पहियोंकेद्वारा खाली चलाये जाते हैं उस समय सिलिन्डर एक हवा खींचनेवाली पिचकारीका काम करने लगते हैं। इस हालतमें उन्हें जिधरसे वाष्प आया करती थी उधरसे तो वाष्प अथवा हवा मिलती नहीं इसलिये स्वभावसे ही वे जिधरसे वाष्प, कार्य करनेके बाद एग्जहास्ट पाइप(७५)मेंसे, निकला करती है, हवा खींचने लगते हैं। लेकिन एग्जहास्ट पाइपके धुआँबकसमें लगे रहनेके कारण उनका हवाके साथ धुआँका खींच लेना भी स्वाभाविक है। इसलिये सिलिंडरोंको इससे बचानेके लिये सुपरहीटर हेडर (१३) के ऊपर एक वाल्व लगा दिया जाता है जिसे ब्रीदर-वाल्व (११) कहते हैं।

१८. ब्रीदर-वाल्व

ब्रीदर-वाल्वका अर्थ होता है साँस लेनेका दरवाज़ा। इस वाल्वका मुँह ऊपर चिमनीके पास हवामें खुला रहता है जो चित्रमें भी साफ-साफ दिखायी दे रहा है। जबतक बोयलरमेंसे वाष्प सिलिन्डरोंमें जाती रहती है तबतक तो यह वाल्व वाष्पके दबावके कारण बन्द रहता है, लेकिन उपर्युक्त अवसरपर ज्योंही उसके पाससे वाष्पका गुजरना बन्द हो जाता है वह वाल्व अपने बोझके कारण खुल जाता है और ताज़ा ठंडी हवा सिलिन्डरोंमें पहुँचने लगती है। और सिलिन्डरोंका दोनों तरफका सम्बन्ध मिलानेके लिये उनके ऊपरकी तरफ दो-दो वाल्व और लगा दिये जाते हैं। इन वाल्वोंको बाई-पास वाल्व कहते हैं। यह, चित्र में ४२ संख्याद्वारा चिन्हित किये गये हैं।

१९. ब्रेक और उसका काम

हेन्डिल (२६) द्वारा एक टोंटीको खोलकर, ड्राइवर, इंजनके गतिरोधक-यंत्रके वायुनिःसारक (३०) यंत्रमें वाष्प पहुँचा देता है गतिरोधक यंत्रकेद्वारा—जिसे अंगरेजी भाषामें ब्रेक कहते हैं—ड्राइवर और गार्ड चलती हुई रेलगाड़ीको रोक सकते हैं और उसकी चालको काबूमें ला सकते हैं और मुसाफिर लोग भी जंजीर खींचकर उसी यंत्रकेद्वारा गाड़ीको ठहरा सकते हैं। इस यंत्रकी कर्म-प्रणाली बड़ी सरल और मनोरंजक है इसलिये उसका विस्तृत वर्णन किसी अन्य लेखमें किया जावेगा। इन चित्रोंमें इस यंत्रके कई पुर्जे और भाग दिखाये गये हैं जो २९,

६९,७७,८१,८२,९७ और ९८ संख्याद्वारा चिन्हित किये गये हैं।

२०. स्थिति-सूचक नलियाँ

ड्राइवरके सामने काँचकी दो नलियाँ (३४) लगी रहती हैं, इनके ऊपर और नीचेके सिरोंपर टोंटियाँ लगी रहती हैं जिनका सम्बन्ध बोयलरसे होता है। इन टोंटियों-को खोल देनेसे इन नलियोंमें बोयलरका पानी आकर भर जाता है जिसकी ऊँचाईको देखकर ड्राइवरको पता चल जाता है कि बोयलरमें कितनी ऊँचाईतक पानी भरा हुआ है, यदि पानी कम हो तो वह आवश्यकतानुसार जितनी ऊँचाईतक चाहे उतना पानी और भर सकता है। इन नलियोंकी नीचेवाली टोंटीके नीचे एक टोंटी और जुड़ी रहती है जो नलियोंको साफ करते समय काम देती है। इन जलस्थिति-सूचक नलियोंको अंगरेजी भाषामें वाटर गेजग्लास कहते हैं।

वैसे तो स्टेशनोंपर इंजनके उपयोगके लिये पीछे लगी हुई टंकीमें पानी भर लिया जाता है लेकिन बोयलरमें जितनी और जब आवश्यकता होती है उसी समय पानी भरा जाता है, उस समय चाहे इंजन दौड़ रहा हो अथवा खड़ा हो। इस कामके लिये एक विशेष प्रकारके दो यंत्र लगे होते हैं जिन्हें इन्जेक्टर कहते हैं। यह इंजनमें चढ़नेके पावदानके पास नीचे की तरफ (८८) लगे होते हैं। यह यंत्र इंजनकी वाष्पकी सहायतासे टंकीका पानी खींचकर बोयलरमें छोड़ देता है। इस यंत्रमें वाष्प पहुँचानेकी टोंटी (७१) और नली (७०) चित्र संख्या १ में दिखाये हैं। इस यंत्रके लिये टंकीसे पानी खोलनेकी टोंटीका हेन्डिल चित्र सं० २ में (३७) अंकद्वारा प्रदर्शित किया है। जब यह यंत्र कार्य करने लगता है, उस समय इसकेद्वारा प्रेरित जल ६६ संख्याद्वारा चिन्हित नलीमेंसे होता हुआ बोयलरकी छतपर लगे हुए एक द्वार (६६) मेंसे बोयलर-में प्रविष्ट हो जाता है। इस यंत्रकेद्वारा आरम्भमें जबतक भली-भाँति जलकी धार बँधकर बोयलरमें नहीं जाने लगती, तबतक फालतू जल और वाष्प पायदानके पास लगे हुए एक नल (८९)मेंसे निकलने लगती है।

२१. सिफ्टीवाल्व और उनका उपयोग

पाठकोंने ड्राइवरके काम करनेकी जगहके पास, आगेकी तरफ, इंजनकी छतपर पीतलकी कुछ गुमटियाँ-सी अवश्य देखी होंगी जिनमेंसे कभी-कभी बड़े ज़ोरके साथ वाष्प निकलती हुई दिखायी दिया करती है। प्रत्येक इंजनमें यह कम-से-कम दो अवश्य लगे होते हैं, परंतु हमारे चित्रके इंजनपर तीन लगे हुए हैं। इन्हें अँगरेजी भाषामें सेफ्टी-वाल्व अर्थात् संरक्षकद्वार कहते हैं। इन्हें चित्रमें ६७ संख्या-द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह द्वार ढकनोंसे कमानी-द्वारा हमेशा बंद रहते हैं, इनकी कमानीमें इतनी शक्ति होती है कि वह केवल १८० पौंड प्रति वर्गइंचका ढकनेपर बल लगानेसे ही खिंच सकती है। इसलिये जबतक बोयलरकी वाष्पका दबाव उतना नहीं होता तबतक वह कमानी द्वारके ढकनोंको बंद किये रखती है, और ज्यों ही उसका दबाव १८० पौंड प्रति वर्गइञ्च हो जाता है, त्योंही वह कमानी खिंच जाती है और ढकनोंको खोल देती है जिससे बोयलरकी फालतू वाष्प बाहर निकल जाती है। मान लीजिये यदि यह वाष्प-नियामकद्वार न हों और बोयलरमें वाष्प अधिकाधिक बनती ही जाय और जितनी बने उतनी खर्च न हो तो एक समय ऐसा आवेगा कि उस वाष्पके बढ़ते हुए दबावको सहना बोयलरकी सामर्थ्यके बाहर हो जावेगा और उससे बोयलरके फटनेकी सम्भावना हो जावेगी। यदि दुर्भाग्यवश बोयलर फट गया तो यंत्रको तो जो नुकसान होगा सो तो होगा ही बल्कि आसपासकी वस्तुओं और मनुष्योंको भी क्षति पहुँचेगी। इसी नुकसानसे सुरक्षित रहनेके लिये इस प्रकारके कमानीदार ढकने सब इञ्जनोंपर लगाये जाते हैं और इसी कारणसे वे संरक्षकद्वार कहलाते हैं।

२२. इंजनकी सीटी

इञ्जनकी सीटी तो मशहूर है, सब बच्चे इसे जानते हैं। यह पीतलका बना हुआ एक पुर्जा (७२) होता है, जिसमें बनी हुई बालके समान एक बारीक झिरीमेंसे होकर बोयलरकी शक्तिशाली वाष्प बड़ी जोरसे निकलती है और वहाँसे निकलते समय उस झिरीके ऊपर लगे हुए काँसेके बने हुए एक पतलेसे घंटेनुमा बरतनको बड़े ज़ोरसे कँपाती है जिससे सीटीकी आवाज़ बड़े ज़ोरसे सुनायी देती है। जिस

हेन्डिलकेद्वारा ड्राइवर सीटी बजाया करता है वह चित्र सं० ३ में हेन्डिल २० के ऊपर और हेन्डिल २१के बराबरमें लम्बा डण्डासा निकला हुआ दिखायी दे रहा है।

चित्र सं० १ और ३ में ३८ और ३९ संख्याद्वारा प्रदर्शित कई डाटें लगी हुई दिखायी हैं, जो बोयलरको प्रति-सप्ताह धोते और निरीक्षण करते समय खोली जाती हैं।

इञ्जनको आगे और पीछे चलानेके लिये भी एक विशेष प्रकारका यंत्र होता है। इससे सम्बन्ध रखनेवाले पुर्जे ५५ से ६० संख्याओंद्वारा अंकित करके चित्र सं० १ में दिखाये हैं। चित्र सं० ३ में दाहिनी ओरको एक बड़ा पहिया (३६) दिखाया है, जिसको उलटा और सीधा घुमाकर ड्राइवर अपने इञ्जनको, उपर्युक्त यंत्रद्वारा, आगे और पीछे चलाया करता है।

२३. बोयलरके दोनों ओर बालू भरा एक-एक लोहिया संदूक और उसका उपयोग

पाठकोंको यह भी जानना आवश्यक है कि बोयलरके दोनों तरफ, बगलोंमें, लोहेका एक-एक संदूक लगा होता है, जिसमें बालू भरी रहती है। यह बालू इञ्जनको चलानेमें कई जगह बड़ी उपयोगी होती है। चढ़ाईके स्थानोंपर और बरसात अथवा अन्य किसी कारणसे जब रेलकी पटरी चिकनी हो जाती है तब इञ्जनके पहिये आगे बढ़नेके बदले फिसलने लगते हैं। उस समय ड्राइवर अपने सामने लगी हुई एक टोंटी(३१)को खोल देता है, जिसमेंसे बोयलरकी वाष्प और गरम पानी दोनों ओरके बालूसे भरे बकसोंमें नलियों-द्वारा चले जाते हैं और बकसोंमें भरी हुई बालूको नल (८०)के द्वारा रेलकी पटरीके ऊपर पहियेके नीचे डाल देते हैं, जिससे पटरी खुरदरी हो जाती है और पहिया आगे बढ़ जाता है।

इसके अलावा ड्राइवरके सामने और भी कई हेन्डिल और पुर्जे लगे रहते हैं जिनसे भट्ठीकी राख झाड़ी जा सकती है, सिलिन्डरोंमेंसे वाष्पका जमा हुआ पानी निकाला जा सकता है, राखके बरतनको धोया जा सकता है आदि।

चित्र सं० ४में पाठक देखेंगे कि ड्राइवरके पीछेकी तरफ एक बड़ा स्तम्भ (९१) खड़ा हुआ है और उसके ऊपर एक हेन्डिल लगा है जिसे घुमानेसे केवल इञ्जनको ब्रेक लगाकर रोका जा सकता है। टंकीमें कितना पानी भरा हुआ है यह जाननेके लिये एक और काँचकी नली लगी होती है जो चित्रमें ९२ संख्याद्वारा अंकित की गयी है। इस नलीके निकट ही एक टोंटी (९४) लगी है जिसके द्वारा इञ्जनवाले अपने उपयोगके लिये टंकीमेंसे पानी निकाल सकते हैं। इसी चित्रमें टोटियोंके दो हेन्डिल (९३) लगे हुए दिखाये हैं जिनको खोलनेसे जल भरनेके यंत्रों(८८)में, ९६ संख्या-द्वारा अंकित रबरके नलोंमेंसे होता हुआ जल पहुँचता है। ९५ और ९९ संख्याओंद्वारा प्रदर्शित डंडे और कड़ियों-द्वारा इंजन टंकीसे जोड़ दिया जाता है।

२४. इंजनका गतियंत्र

यह पहले बताया जा चुका है कि प्रत्येक वाष्पइंजनमें चाहे वह किसी प्रकारका क्यों न हो, दो मुख्य भाग होते हैं। एक तो बोयलर जिसमें वाष्प तैयार की जाती है, जिसका वर्णन ऊपर अभी हो चुका है, और दूसरा गतियंत्र जिसके सिलिन्डरमें बोयलरकी वाष्प पहुँचकर उसके पिस्टन-को आगे और पीछे सरकाती है। अब यहाँपर इस यंत्रका संक्षेपसे वर्णन किया जायगा।

प्रत्येक इञ्जनमें दाहिनी और बायीं ओर एक-एक गतियंत्र लगा होता है और प्रत्येक गतियंत्रमें एक-एक सिलिन्डर (४३) और पिस्टन (४४) लगा होता है और दोनों तरफके गतियंत्र मिलकर इंजनके एक ही धुरेको चलाते हैं। गति-यंत्रके प्रत्येक सिलिन्डरमें वाष्पके आने और जानेके लिये एक रास्ता आगेकी ओर और एक रास्ता पीछेकी ओर बना होता है। जिनमेंसे बारी-बारीसे सिलिन्डरमें वाष्प घुसती है और उस ओरसे पिस्टनको ढकेलती है पिस्टनकी इस प्रकारसे एक दौड़ खतम हो जाने पर दूसरी तरफसे ताज़ा वाष्प आती है और पिस्टनको वापस दूसरी ओर ढकेलती है, उस समय पहले आयी हुई झूठी वाष्प बाहर निकल जाती है। चित्र दोमें गहरे हरे रंगद्वारा प्रदर्शित ताजा वाष्प पीछेके रास्तेसे आकर पिस्टनको आगेकी तरफ ढकेल रही है और आगेके हिस्सेकी झूठी वाष्प, धुआँबकसमें लगे हुए एगज-हास्ट पाइपके मुहाने (७५) मेंसे बाहर निकल रही है। यह वाष्प चित्रमें हल्के हरे रंगद्वारा प्रदर्शित की गयी है पिस्टनके आगे और पीछे जल्दी-जल्दी वाष्पकेद्वारा चलनेसे पिस्टनदंड

(४५) भी आगे-पीछे जल्दी-जल्दी उसके साथ ही सरकता है। इस दंडके दूसरे सिरेपर एक पुर्जा लगा होता है जिसे अंग्रेजीमें क्रासहेड (४६) कहते हैं, यह उसके ऊपर लगी हुई दो मजबूत छड़ों (४७) के बीचमें पिस्टनदंडके साथ-साथ ही आगे पीछे सरकता है। इन छड़ोंको अंग्रेजीमें स्लाइडबार कहते हैं। गतियंत्रमें क्रासहेड एक प्रकारके कब्जेका काम देता है। जिस प्रकार किंवाड़ कब्जेके सहारेसे घूमते हैं उसी प्रकार क्रासहेडमें लगा हुआ एक पुर्जा जिसे अंग्रेजीमें कनेक्टिंगराड (४९) कहते हैं घूमता है इस कनेक्टिंगराडका छोटा सिरा तो क्रासहेडमें लगा होता है और बड़ा सिरा पहियेमें लगी हुई एक पिनपर लगा होता है जिसे क्रेंकपिन (६०) कहते हैं। यह क्रेंकपिन इंजनके पहियेपर वही काम करती है जो कि हाथसे आटा पीसनेकी चक्कीपर हाथली। कनेक्टिंगराड वही काम करता है जो कि चक्की पीसते समय पीसनेवालेका हाथ, क्रासहेड उसकी कोहनी, पिस्टनदंड उसका बाजू और पिस्टन कंधेका काम करता है। यह सब पुर्जे चित्र १ और २ में साफ-साफ दिखाये हैं। उन्हें ध्यानसे देखनेसे उपर्युक्त सब बातें साफ-साफ समझमें आ जावेंगी।

२५. सिलिन्डरोंमें ताजा भापका आना और झूठीका निकलना

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि सिलिन्डरमें दोनों रास्तोंमेंसे ताज़ा वाष्प किस प्रकार बारी-बारीसे भीतर आती और झूठी वाष्प बाहर जाती है चित्र २ को ध्यानपूर्वक देखनेसे पता चलेगा कि इंजनके सिलिन्डर (४३) के ऊपर एक छोटासा सिलिन्डर (४०) और है जिसमें एक लम्बा दोहरा पिस्टन (४१) लगा हुआ है और वह भी आगे पीछे सरकता है। इस पिस्टन(४१)के दोनों सिरोंके बीचमें जो जगह है उसमें बोयलरकी ताजा वाष्प आकर भर जाती है और जब नीचेवाले सिलिन्डरके आगे और पीछेवाले वाष्पके मार्ग बारी-बारीसे खाली जगहके सामने आते हैं तब वह वाष्प उन रास्तोंमेंसे होकर सिलिन्डर (४३)में चली जाती है और वहाँ जाकर बड़े पिस्टन (४४) को ढकेलती है। जब बड़े सिलिन्डर (४३)मेंसे झूठी वाष्पके बाहर निकलनेका समय होता है तब उसके रास्तेके सामने, दोहरे पिस्टनके आगे और पीछे जो खाली रहती है, आ जाती है और सिलिन्डर (४३)को झूठी वाष्प उनमेंसे होकर धूआँबकसमें चली जाती है और वहाँके धुएँको साथ लेकर चिमनीके बाहर फक-फक आवाज करती हुई निकल जाती है। इस दोहरे पिस्टनको वाल्व भी कहते हैं।

२६. दोहरे पिस्टन वाल्व(४१)के चलते रहनेका रहस्य

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि इस दोहरे पिस्टन वाल्व (४१)को कौन-सी शक्ति चलाती रहती है? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि जिस प्रकारसे पिस्टन (४४) की सीधी गति पहिये (५२) की गोल गतिमें परिवर्तित होती है, उसी प्रकार धुरेकी गोलगति चित्र १ और २ में दिखाये हुए ५३, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, और ६३ संख्याओंद्वारा प्रदर्शित पुर्जोंसे पिस्टनवाल्वकी सीधी गतिमें बदल जाती है। पिस्टन वाल्वमें स्वयं कोई शक्ति नहीं होती; वह तो पहियेकी गतिसे ही चलकर सिलिन्डरमें यथासमय ताज़ा वाष्प पहुँचाता है और झूठी वाष्प निकालता है। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि दो स्त्रियाँ मिलकर एक चक्कीको चलाती हैं। उनमेंसे एक स्त्री तो अपना पूरा बल लगाकर चक्की चला रही है और दूसरी केवल हल्के हाथसे चक्कीके डंडेको ही पकड़े हुए है। चक्कीको हल्के हाथसे पकड़े रहनेके कारण उस स्त्रीका हाथ और कंधे जबरदस्ती आगे पीछे हिलते रहेंगे। इसी प्रकार पहियेके चलते रहनेसे पिस्टनवाल्व भी चलता रहता है।

२७. इंजनको आगे-पीछे चलानेवाले पुर्जे

चित्र सं० १ में ५९ और ६० दो डंडे दिखाये हैं जिन्हें ३६ संख्यासे प्रदर्शित पहियेको घुमाकर जैसे पहले बताया गया है ड्राइवर आगे और पीछे खींचता है जिससे इंजन आगे और पीछे चलता है। ६० संख्यासे प्रदर्शित डंडेको इंजनकी लगाम कहते हैं।

चित्र सं० १ और २ में पाठक देखेंगे कि इंजनके बड़े पहिये कुछ डंडों (६४) द्वारा आपसमें जुड़े हैं जिससे एक मुख्य पहियेके यन्त्रद्वारा घूमनेसे और भी पहिये साथ-साथ घूम जाते हैं।

वैज्ञानिक विचारोंमें क्रान्ति

ऐंस्टैनका सापेक्षवाद

[ले० प्रो० दत्तात्रेय गोपाल मटंगे, एम्. एस्-सी., एफ़. पी एस., जबलपुर] .

[अनुवादक श्रीभगवानदास दुबे]

२५. प्रवास-मार्गका नया गणित

नये गणितमें प्रवास मार्ग एक ही बातपर अवलम्बित है—दी हुई परिस्थितियोंमें जिस मार्गसे जानेमें घटनान्तर अधिकतम होगा, उसी मार्गसे पदार्थ प्रवास करता है।
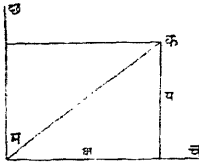
चित्र २४

चित्र २४ देखिये। मच और मछ दो समकोणपर रेखाएँ हैं। क विन्दु मछसे 'क्ष' दूरीपर है और मचसे य दूरीपर है। इसलिये

$$मक^2 = क्ष^2 + य^2$$

म से क तक जानेमें यदि स सेकंड लगें तो घटनान्तर इस प्रकार आ सकता है—

$$घ^2 = स^2 - मक^2 = स^2 - क्ष^2 - य^2 \text{ —— } (३६)$$

और घ का मान जिस मार्गसे अधिकतम होगा उसी मार्गसे वह पदार्थ प्रवास करेगा।
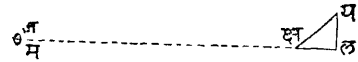
चित्र २५

चित्र २५ देखिये। इसमें म स्थानपर ज जड़त्वका एक पदार्थ है। इसलिये उसके आसपासके देशमें वक्रता आ जाती है। (पिछले अध्यायमें दिये हुए रबरके उदाहरण-को देखो।) यह वक्रता पदार्थके आसपास अधिक रहती है और ज्यों-ज्यों दूर जाते हैं, त्यों-त्यों कम होती जाती है।

मान लें, कि ऐसे वक्र क्षेत्रमें एक कण क्षसे य तक जाता है। ये दोनों विन्दु क्ष और य मसे दूरीपर हैं। यदि प्रवास क्ष→ल और ल→य दिशाओंमें लिया जावे, तो क्षल हिस्सा मक्षकी दिशामें और लय उसके समकोण-पर है। ऐसी स्थितिमें घटनान्तर इस प्रकार आता है—

$$घ^2 = \left(१ - \frac{२ज}{मक्ष}\right) स^2 - लय^2 - \left(१ + \frac{२ज}{मक्ष}\right)$$

चित्र सं० १ में पाठक देखेंगे कि ८५ इञ्जनकी कमानी है जिनपर इञ्जनका सब बोझा टिका रहता है और जिनकेद्वारा वह हल्का और बिना झटकोंके चलता है। ८३, ८४, ८६ और ८७ कमानीका और साज सामान जिनकेद्वारा वह यथास्थान अपना कार्य करती है। पाठक यह भी देखेंगे कि इञ्जनके आगे धुआँबकसके दरवाजे (७४) के दोनों ओर दो जग (७६) रखे हुए हैं। आवश्यकता पड़नेपर उसकी मरम्मत करते समय इनकेद्वारा इञ्जनको दो चार अंगुल ऊपरको उठा सकते हैं।

२८. उपसंहार

चलती हुई पूरी रेलगाड़ीको एक जानदार दानव मानें तो इञ्जनको ही उसका सिर समझना होगा। जैसे सिर काटनेसे शरीर निश्चेष्ट हो जाता है उसी तरह इञ्जन काट देनेसे गाड़ी गतिहीन हो जाती है। इसी इंजनके भीतर भापके रूपमें गाड़ीका प्राण है, उसकी जान है। भापविहीन इञ्जन बेजान है। कोयला पानी उसका अन्न-पानी है। इसी जानके रहते रेलगाड़ी इतना बड़ा काम करती है। पाठकोंने इंजनके अङ्ग-अङ्गको उसी तरह चीरा फाड़ा हुआ देखा है जैसे किसी प्राणीके दिमागके हिस्सोंको हम देखें। इस दिमागसे निकला हुआ नाड़ीजाल गाड़ी रूपी शरीरमें फैला हुआ है। हम इसका भी वर्णन कभी विज्ञानके पाठकोंकी भेट करेंगे। , रा० गौ०।

× तल^2 —— (३७)। यदि यहाँ ज=० कर दिया जावे (अर्थात् जड़ पदार्थ निकाल लिया जावे) या मत दूरी बहुत ही अधिक हो (यानी नहीं-सी हो) तो

घ^2 = स^2—लय^2—तल^2 = स^2—लय^2 —— (समी. ३६ देखो) इसलिये उत्तर पूर्ववत् ही आता है। सारांश यह है कि जब किसी क्षेत्रमें कोई जड़ पदार्थ हो, तो ऊपरके समीकरणके अनुसार घटनान्तर निकाला जाता है और पदार्थ ऐसे मार्गसे प्रवास करता है, जहाँ घटनान्तर अधिकतम हो।

२६—दृक्-प्रत्यय या प्रत्यक्ष प्रमाण

कोई सिद्धान्त सत्य है अथवा नहीं, इसकी जाँच तभी की जा सकती है, जब उससे निकले हुए अनुमानोंकी प्रयोगों या ज्योतिर्मण्डलके अवलोकनोंसे तुलना की जावे। यदि इनमें समानता पायी जावे, तो सिद्धान्त ठीक है अन्यथा नहीं। मनुष्यकृत वेग अथवा व्यावहारिक अन्तरोंमें न्यूटनका गणित लगानेसे जो उत्तर मिलते हैं, उनमें और ऐंस्टैनकी गणित लगानेसे जो उत्तर मिलते हैं उनमें बहुत ही सूक्ष्म अन्तर रहता है, जो प्रयोगोंकेद्वारा नहीं दिखाया जा सकता। यदि दिखा, तो फल संशयात्मक रहता है। जिन प्रयोगोंके कारण ये फल प्रतिपादित किये गये (अर्थात् मा. मो. का प्रयोग उनको छोड़कर यदि कोई नये प्रयोग सिद्ध किये जा सकें तो सिद्धान्त सत्य है, अन्यथा असत्य।
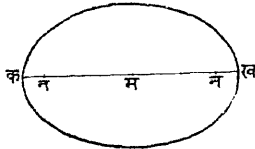
चित्र २६

(१) चित्र २६ देखिये। यह लम्बवृत्त बुधकी कक्षा है। उसकी न$_1$न$_2$ नाभियाँ हैं जिनमेंसे न$_1$ पर सूर्य है। कख उस लम्बवृत्तका दीर्घाक्ष है। यह दीर्घाक्ष न$_1$ से होकर जाता है और प्रतिवर्ष उस नाभिको केन्द्र रूप रखते हुए ५·७४ से. से घूमता है। प्रत्येक ग्रहके न्यास इसी प्रकार थोड़ा या अधिक घूमते हैं। न्यूटनके गणितसे यह परिभ्रमण ५·३२ से. होना चाहिये, अर्थात् इन दो संख्याओंमें ०.४२ से. प्रतिवर्ष अर्थात् ४२ से. प्रतिशतवर्षका अन्तर आता है। कुछ साल पहले यूरेनसकी देखी हुई गतिमें कुछ अन्तर पाया गया जिससे ज्योतिर्विदोंने एक नये ग्रहके अस्तित्वका अनुमान लगाया, और उसी ओर अपने दूर-दर्शक यन्त्र जमाये जिस ओर इस नये ग्रहके होनेका शक था। फल यह हुआ कि उन्हें एक नया ग्रह मिला जिसका नाम उन्होंने नेप्च्यून रखा। इसी तरह बुधके इस अन्तरके कारण भी एक-एक नये ग्रहकी कल्पना की गयी। किन्तु दूरबीन लगानेसे भी वह उस दिशामें नहीं दीखा। इसलिये ०.४२ से. प्रतिवर्षके अन्तरका कोई कारण न मिल सका। ऐसी दशामें जब ऐंस्टैनकी गणित करनेकी पद्धतिका बुधकी कक्षाके परिभ्रमण करनेमें उपयोग किया गया, तब उसका फल ५·७४ से. प्रतिवर्ष ही निकला। यह बात इस सिद्धान्तको सिद्ध करनेका एक बड़ा ही सन्तोषजनक प्रमाण था।
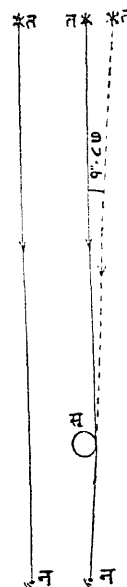
चित्र २७

(२) चित्र २७ देखिये न नेत्रमें त तारेका प्रकाश जाता है। इसलिये वह तारा आँखको नत दिशामें दीखता है।

दूरबीनको उस दिशामें लगाकर तारेको उसके अक्षपर लाये। यदि इस रेखाके पास सूर्य आ जावे तो उससे उस रेखामें वक्रता उत्पन्न होगी किन्तु सूर्यका प्रकाश इतना तीव्र है, कि यदि वह दूरबीनके दृष्टिकोणमें आ जावे तो तारा ही न दिखे, उस रेखाकी वक्रता नापना तो दूर ही रहा। फिर भी सूर्यको उस दिशामें आना चाहिये और तारा भी दीखना चाहिये; यह कैसे हो? भाग्यसे ता० २९ मई १९१९ को प्रिंसीपी और सोब्राल स्थानोंमें खग्रास-ग्रहण पड़नेका संयोग पड़ा। इसलिये सूर्य उस रेखाके पास आ ही गया और पूर्णग्रस्त होनेके कारण तारा भी दिख सका। उस समय फोटो लिये गये और जो वक्रता ऐंस्टैनके गणितसे आती थी, वही उस फोटोके नापनेसे भी आयी। न्यूटनके गणितसे भी वक्रता आती है किन्तु वह ऐंस्टैनके गणितसे आयी हुई वक्रताकी आधी रहती है और वह फोटोसे नापी

हुई वक्रताके बराबर नहीं रहती।

(३) हम जिस नमकको खाते हैं उसमें सोडियम नामका एक पदार्थ है यदि स्टोवकी ज्योतिमें कुछ नमक छिड़क दिया जावे, तो उसका रंग पीला हो जाता है। इस रंगका ज्ञान देनेवाली तरंगोंकी लम्बाई ०. ००००६ से० मी० है। जब सोडियमका एक परमाणु ज्योतिमें एक चक्कर लगा लेता है, तब एक तरंग उत्पन्न होती है। उस चक्करमें जितना अधिक समय लगेगा, तरंगकी लम्बाई भी उतनी ही अधिक रहेगी। मोमबत्तीकी ज्योतिमें धीरे और जल्दी चक्कर लगानेवाले सब तरहके परमाणु रहते हैं। इसलिये अधिक लम्बाईकी (जो लाल रंगका ज्ञान देती है)—०. ००००८ से० मी०—और कम लम्बाईकी (जो नीले रंगका ज्ञान देती हैं)—०. ००००४ से० मी०—सब तरहकी तरंगें इस ज्योतिमें रहती हैं, किन्तु सोडियमके परमाणुको चक्कर लगानेमें निश्चित समय लगता है, इसलिये उससे उत्पन्न होनेवाली तरंगकी लंबाई भी निश्चित रहती है। किसी भी कारणसे यदि परमाणुके चक्कर लगानेका समय बढ़ जावे, तो फल यह होगा कि तरंगकी लम्बाई भी बढ़ जावेगी। लम्बाईकी यह बाढ़ हम यन्त्रद्वारा नाप सकते हैं।

अब मानलें कि सोडियमका एक कण सूर्यके पृष्ठ भागपर चक्कर लगाता है, और दूसरा पृथ्वीके पृष्ठ भागपर। चक्करका आरम्भ घटना नं० १ और उसकी समाप्ति घटना नं० २ है। चूँकि परमाणु एक ही स्थानसे निकलकर उसी स्थानपर फिर आ जाते हैं इसलिये स्थलान्तर शून्य होगा।

मान लें, कि सूर्य परके सोडियमके कणके परिभ्रमणका घटनान्तर 'घ,' और कालान्तर 'स,' है।

सूर्यकी त्रिज्या = २·३ प्रवे।

सूर्यका जाड्य = ०·०००००५ प्रवे।

$$\therefore घ_१{}^२ = \left(१ - \frac{२ \times ०·००००००५}{२·३} \right) स^२$$

(समी. ३७ देखो)

उसी तरह यदि पृथ्वीपरके सोडियमके कणके परिभ्रमणका कालान्तर $स_२$ और घटनान्तर $घ_२$ मान लें।

सूर्यसे पृथ्वीका अन्तर = ५०० प्रवे।

सूर्यका जड़्त्व = ०·००००००५ प्रवे।

$$\therefore घ_२{}^२ = \left(१ - \frac{२ \times ०·००००००५}{५००} \right) स_२{}^२$$

—(समी. ३७ देखो)

किन्तु घटनान्तर कहींसे भी नापा जावे, एकसा होना चाहिये।

$$\therefore घ_१ = घ_२$$

$$\therefore \left(१ - \frac{२ \times ०·००००००५}{२·३}\right) स_१{}^२$$

$$= \left(१ - \frac{२ \times ०·००००००५}{५००}\right) स_२{}^२$$

$$\therefore \frac{स_१}{स_२} = १ ००००००२$$

अर्थात् सूर्यपर जो चक्कर लगता है वह अधिक समय लेता है, इसलिये वहाँका सोडियम कण जो तरंगें भेजता है वे अधिक लम्बी रहती हैं। इस अंतरके नापनेकी कई वैज्ञानिकोंने चेष्टा की, किन्तु उसके बहुत सूक्ष्म होनेके कारण किन्हीं-किन्हींके मतसे अन्तर पड़ता है और किन्हींके मतसे कुछ नहीं कहा जा सकता।

व्याधके पास एक तारा है जिसका जाड्य सूर्यकी अपेक्षा कई गुना अधिक है। इसलिये उसपरके कणोंको चक्कर लगानेमें अधिक समय लगना सम्भव है। मौंट विलसनकी वेधशालामें आदम्सने हाइड्रोजनके परमाणुओंके चक्करसे निकली हुई तरंगोंकी लम्बाईमें जो बाढ़ होती है उसको नापा है। उसके निरीक्षणसे ऐसा मानना उचित है कि नयी पद्धतिसे जो गणित किया जाता है उसके फल इस प्रयोगके फलसे मिलते हैं।

दृक्प्रत्यय (२) में ऐसा सिद्ध किया गया है कि जड़ पदार्थोंके पाससे जानेमें प्रकाश-किरण वक्र हो जाती है। इस प्रकार आकाशमेंसे प्रवास करते हुए जहाँपर बहुतसे जड़ पदार्थ हैं, वक्रता पाते-पाते प्रकाश किरण जहाँसे निकला उसका वहीं पहुँच जाना सम्भव है। किसी एक दिल्लगीबाज मनुष्यने इसपरसे ऐसा विधान किया कि तुम जिस ओर देखोगे, उस ओर अपनी पीठ ही पाओगे। कारण यह है कि पीठसे निकली हुई किरणें वक्रता पाती-पाती तुम्हारी आँखमें पहुँचेंगी। किन्तु इस प्रवासके लिये

किरणको १०० कोटि वर्ष लगेंगे अर्थात् पीठ दीखनेके लिये तुम्हारा शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होना चाहिये। तुम्हारा आयुष्य कम-से-कम १०० कोटि वर्षका होना चाहिये। ऐंस्टैनने गणित करके यह फल निकाला है कि यह विश्व गोल है और उसकी त्रिज्या ५×१०^{१५} प्रवे है।

२७. विस्तृत सिद्धान्तसे निकलनेवाले अनुमान

मर्यादित सिद्धान्तसे निकलनेवाले अनुमान एक पिछले अध्यायमें बतला दिये गये हैं। यहाँ विस्तृत सिद्धान्तसे निकलनेवाले अनुमानोंका वर्णन किया जाता है—

(१) वेग सम प्रवृत्तिसे बढ़ता रहे, तो जगत्‌रेखा वक्र होती है।

(२) वृत्ताकार समवेगसे चलनेवाले जगत्‌में जो वेग सरल और सम होते हैं वे बाहरके मनुष्योंको बढ़ते हुए और वक्र दीखते हैं।

(३) आकर्षण और उत्क्षेपणका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वे बढ़ते हुए वेगके आभास हैं।

(४) आकर्षणक्षेत्र चाहे बढ़ते हुए वेगके कारण उत्पन्न हो, अथवा अन्य जड़ पदार्थोंके सान्निध्यसे उत्पन्न हुआ हो, प्रकाशकी किरण उसमेंसे जाते समय वक्रता पाती है।

(५) सूर्यका जड़त्व ०.०००००५ प्रवे है और पृथ्वीका जड़त्व ०.००००००००००२ प्रवे है। यदि यह साधारण इकाइयोंमें लिखा जावे, तो सूर्यका जड़त्व १५०० मीटर और पृथ्वीका जड़त्व ६ मि० मी० आता है। इसलिये जड़त्व लम्बाईके रूपमें आता है।

(६) कण उसी मार्गसे प्रवास करेगा, जिसमें घटनान्तर अधिकतम हो। वह मार्ग जड़ पदार्थके पास होनेसे वक्र हो जाता है। इस दशामें सरल रेखापर जानेसे उसका घटनान्तर कम हो जावेगा। **इसलिये जड़पदार्थकी उपस्थितिमें देशमें वक्रता आ जाती है।**

(७) जड़पदार्थ जितने अधिक होंगे, वक्रता भी उतनी ही अधिक होगी। इस रीतिसे वक्रता पाते-पाते किरण जहाँसे निकलती है, वहीं उसका लौटकर पहुँचना सम्भव है। ज्योतिर्विदोंने ऐसे अवलोकन किये हैं जिससे इस विधानकी सत्यता भासित होती है।

(८) ऐंस्टैनका विश्व गोलाकार है और उसकी त्रिज्या ५×१०^{१५} प्रवे है।

२८. यह दृश्य जगत्!

डी ब्रागलीने हालमें ही ऐसा प्रतिपादन किया है कि प्रत्येक कणके साथ तत्सम्बन्धी तरंगें भी रहती हैं। यदि, उनका वेग प्रवे। से में नापा जावे, तो उन दोनोंके वेगोंका गुणनफल १ आता है। इसलिये पदार्थ जितना धीरे जावेगा, उसकी तरंगें उतने ही अधिक वेगसे जावेंगी। यदि कण १ प्र। सेके वेगसे जावेंगी, तो उसकी तरंगें भी १ प्र। सेके वेगसे जावेंगी। इसपरसे एक वैज्ञानिकने यह मज़ेदार कल्पना की है कि मनुष्य और उसकी विचार-लहरीके समुच्चयको यदि लें, तो यदि मनुष्य स्थिर बैठा है तो उसकी विचार-तरंगे बहुत वेगसे चलती हैं, यहाँतक कि एक क्षणमें वह सब दुनिया देख लेता है। यदि वही मनुष्य वेगसे चलता रहे, तो उसकी विचार-तरंगें धीमी पड़ जाती हैं।

मनुष्यका शरीर बहुत छोटा है, किन्तु उसकी बुद्धि बड़ी है। जो उसके सामने उपलब्ध है, उसके ऊपर अपनी विचार-धाराको वह बहा देता है, अनुमान लगाता है और पूरे विश्वपर वह उन अनुमानोंको लगानेकी धृष्टता करता है। विचारोंके सम्बन्धमें अपेक्षावाद लगाया जा सकता है या नहीं? इस शरीरके छोटेसे मस्तिष्कके विचारोंसे उत्पन्न सिद्धान्तोंमें अपेक्षावाद है अथवा नहीं? इत्यादि अनेक प्रश्न उपस्थित हो सकते हैं, किन्तु इन प्रश्नोंको अलग रखकर जो कुछ प्रमाण हमको उपलब्ध हैं और उनसे जो कुछ अनुमान निकाले जा सकते हैं, उनका ही हम वर्णन करते हैं। अंतिम सत्य ईश्वर जाने!

आकाशमें रात्रिके समय जो आकाशगंगा दीखती है, वह एक नक्षत्र-मंडल है, जिसमें अपना सूर्यमंडल स्थित है। इस पुंजका आकार कुम्हारके चक्के सरीखा है। वह पूरा पुंज अपने अक्षपर अत्यन्त अधिक वेगसे परिभ्रमण करता है। उसका व्यास इतना बड़ा है कि यदि प्रकाश व्यासकी दिशामें एकसे दूसरे किनारेतक जावे तो उसको दो लाख साल लगेंगे। अक्षसे सूर्य-मंडलतक प्रकाश आनेमें चालीस हजार साल

लगते हैं। इस चक्केको एक परिभ्रमण करनेमें बीस करोड़ साल लगते हैं। अपना सूर्य-मंडल उस चक्रके अक्षके चारों ओर दो सौ मी. से. वेगसे परिभ्रमण कर रहा है। (देखिये चित्र २८)
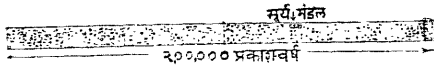
चित्र २८

आकाश-गंगामें सूर्य-मंडलकी स्थितिको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। मान लें कि रास्तेमें मनुष्योंकी एक भीड़ लगी है। यदि रास्तेके बीचमें खड़े होकर हम किनारेकी ओर देखेंगे तो भीड़ कम दीखेगी, और बगलकी दूकानें भी दीख सकती हैं। यदि रास्तेमें ही आगे या पीछे देखें तो वहाँ कुछ न दीखेगा। यही हाल आकाश-गंगाका है। जिस दिशामें आकाश-गंगा दीखती है उसी दिशामें उसका नक्षत्र-पुंज फैला हुआ है। यदि एक बगलमें देखें तो तारे विरले दीखते हैं और उसके दूसरी ओर भी देखा जा सकता है। अपने इस नक्षत्र-पुंजके समान लाखों नक्षत्र-पुंज इस जगत्‌में हैं और विश्वमें चारों ओर फैले हैं। इन विभिन्न पुंजोंका वेग नापा गया है, जिससे मालूम हुआ है, कि जो पुंज जितनी अधिक दूरीपर है, वे उतने ही अधिक वेगसे हमसे दूर जा रहे हैं। जो पुंज हमसे १० कोटि प्रकाश-वर्षकी दूरीपर है वह हमसे १२$\frac{१}{२}$ हजार मील प्र. से. वेगसे दूर जा रहा है। इसलिये यह दृश्य जगत् विलक्षण वेगसे प्रसार पा रहा है।

इस दृश्य जगत्‌के विषयमें निम्नलिखित भविष्योंके अनुमान किये गये हैं—

(१) सब जड़कण अन्तमें इकट्ठे हो जावेंगे, और उनके बीचमें जो अन्तर है वह नहीं-सा होगा। अभी जड़ भागकी अपेक्षा शून्य-भाग अधिक है। अपने ही सूर्य-मंडलका उदाहरण लें। सूर्य और उसकी परिक्रमा करनेवाले ग्रहोंके बीचमें कितना अवकास है ? वैसीही स्थिति अणु और परमाणु तथा नक्षत्र-पुंजोंके बीचमें स्थित छोटे और बड़े अन्तरोंकी है। अन्तमें सब छोटे और बड़े अन्तर निःशेप होकर सब गति नष्ट हो जावेगी। यदि यही अन्त होनेवाला है तो कणोंका पारस्परिक सान्निध्य प्रतिक्षण पहलेकी अपेक्षा बढ़ा ही मिलना चाहिये। यह क्रम हमेशा ऐसा ही चलते रहना चाहिये।

(२) जिस समय जड़कणोंकी पारस्परिक आकर्षण और प्रतिसारणकी प्रवृत्ति बराबर रहती है, उस समय उनकी आपेक्ष स्थिति एक-सी रहती है। किसी भी समयमें जड़ पदार्थोंका जो परस्पर सान्निध्य पाया जाता है, वही यदि उसके पहले और बादमें बना रहे, तो तुल्य-बल होनेके कारण यह जगत् जैसाका तैसा रहेगा। इसको "ऐंस्टैन-जगत्" कहते हैं क्योंकि ऐसी कल्पना पहले ऐंस्टैनने ही की है।

(३) सर्व जड़कण एक दूसरेसे दूर जाते-जाते अन्तमें सब जगह खाली हो जावेगी ; इसमें जड़कणोंका सान्निध्य कम होता जावेगा। अणु-परमाणु दूर जाते-जाते अन्तमें कोई ऐसा पदार्थ न रहेगा, जिसको हम जड़ पदार्थ कह सकें। यह कल्पना डीसिटरकी है, इसीलिये इसे "डी-सिटर-जगत्" कहते हैं।

ऐन्स्टैनके मतसे जड़ पदार्थका प्रमाण जितना बढ़ता है, उतनी ही वक्रता उस स्थानके आकाशमें उत्पन्न हो जाती है—अर्थात् आकर्षण बढ़ जाता है। जिस समय जड़ पदार्थोंका कोई एक प्रमाण हो जाता है, तब आकर्षण और प्रतिसारण बराबर होकर "ऐन्स्टैन"-जगत्‌की स्थिति आ जाती है।

उस प्रमाणसे यदि जड़ पदार्थ अधिक हो जावें, तो आकर्षण बढ़ जावेगा और नं० (१) के जगत्‌की स्थिति हो जावेगी। उसके विरुद्ध यदि जड़द्रव्यका प्रमाण कम हो जावे तो प्रसरण बढ़कर अन्त में "डी-सिटर जगत्" की स्थिति प्राप्त हो जावेगी यदि संकोच एकबार शुरू हो जावे, तो संकोच होता जावेगा, और यदि प्रसरण शुरू हुआ तो वह भी बढ़ता हुआ चला जावेगा। इससे यह सिद्ध होता है, कि ऐंस्टैनका जगत् अस्थायी है, क्योंकि वह थोड़ेसे निमित्तके कारण (१) अथवा (३) के जगत्‌की स्थितिमें परिवर्तित हो जाता है।

अभी जो अवलोकन किये गये हैं, उनसे मालूम होता है, कि जड़ पदार्थ दूर जा रहे हैं। साथ ही यह जगत् भी "डी-सिटर जगत्" की स्थितिको प्राप्त हो रहा है। पदार्थ अलग-अलग बिखर जावेंगे। अणु-परमाणु एक दूसरेसे दूर

जावेंगे। अन्तमें सब कणोंका उज्जनवायु बन जावेगा। हाइड्रोजनके परमाणुमें एक धन विद्युत्कण और एक ऋण विद्युत्कण रहता है। वे भी दूर जावेंगे। अन्तमें उनका रूपान्तर तरंगोंमें हो जावेगा और वे तरंगें विश्वव्यापी होंगी, किन्तु तरंगका नाम लेते ही किरणका विचार आता है। इसलिये इनको विश्वकिरण कहते हैं।

अपने जगत्‌के इस प्रकार लय होनेके लिये बहुत अधिक समय लगेगा, किन्तु हमसे परोक्ष जितने जगत् होंगे उनमें कोई न कोई लय पा चुके हैं और उनमें कुछ फिरसे संघटित हो रहे होंगे। इस संघटनके समय परमाणुओंका एक दूसरेपर आघात होगा जिससे किरणें तरंगें उत्पन्न होंगी और उनके अस्तित्वका हमें कुछ सबूत मिलना चाहिये। उनकी विश्व-किरणोंका हमको प्रत्यय मिलना चाहिये।

इस विषयमें वैज्ञानिकोंने प्रयोग किये हैं। विशेषकर मिलीकनके प्रयोगोंसे इनका अस्तित्व सिद्ध हो चुका है। इन किरणोंके संघातका गणित करके यह पाया गया है, कि ये तरंगें उज्जनके संघटनसे उत्पन्न हुई हैं।

इस बड़ी तेजीसे होनेवाले प्रसरणको हम अपेक्षावादकी दृष्टिसे देखनेपर नीचे लिखी हुई दोनों उपपत्तियाँ एक ही समान स्वीकार कर सकते हैं:-

(१) मैं (निरीक्षक और उसका जगत) जैसा-का तैसा हूँ। यदि मैं अपने शरीरके आकारको लगभग स्थिर मान लूं, तो यह दृश्य जगत् विलक्षण वेगसे प्रसार पा रहा है। अथवा

(२) यदि यह दृश्यजगत् ज्योंका त्यों हो, तो मैं (निरीक्षक और उसका जगत्) विलक्षण संकोच पा रहा हूँ। ऐसी दशामें भी अपेक्षावादसे मुझे ऐसा मालूम होगा, कि यह दृश्य जगत् विलक्षण वेगसे फैल रहा है।

ऐन्स्टैनके मतसे यह नहीं कहा जा सकता, कि कोई भी वस्तु परम रूपसे स्थायी है। सभी वेग (प्रसरण और संकोच) आपेक्ष्य हैं। इसलिये "यह दृश्य जगत् विलक्षण वेगसे प्रसारित हो रहा है", यह कथन जितना युक्तियुक्त है उतना ही यह कथन भी है "मैं विलक्षण वेगसे संकुचित हो रहा हूँ।'

न्यूटनके नियममें केवल आकर्षण ही माना गया है। ऐन्स्टैनके सूत्रमें आकर्षण और उत्क्षेपण दोनों हैं। एक निश्चित सीमाके भीतर आकर्षणका प्रभाव अधिक रहता है। उस सीमाके बाहर उत्क्षेपणका प्रभाव अधिक होता है।
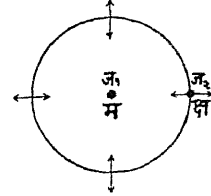
चित्र २९

चित्र २९ में म पर $ज_1$, जड़त्वका एक कण है। दूसरा कण $ज_2$ म से जैसे-जैसे दूर ले जाया जावे वैसे उसपर $ज_1$ का आकर्षण कम होता है और उत्क्षेपण बढ़ता है। मान लो क्ष पर आकर्षण और उत्क्षेपण तुल्यबल हो जाते हैं। म क्ष त्रिज्यासे यदि एक-एक वृत्त निकालें, तो $ज_2$ जबतक वृत्तके अन्दर रहेगा, तबतक खींचा जावेगा और जब उसके बाहर चला जावेगा तब दूर फैलकर फेंका जावेगा। इस प्रमाणसे इस विश्वके जड़द्रव्यके दो विभाग किये जा सकते हैं—पहले भागमें सभी कण पास-पास आते-जाते हैं, और दूसरे भागमें उत्क्षेपणकी प्रधानता होनेसे एक दूसरेसे दूर फेंके जाते हैं।

इस विवेचनामें केवल जड़त्वका ही विचार किया गया था। एडिंगटनका ऐसा मत नहीं है। उसका कहना है—जब तुम इस विश्वका विचार करते हो तो केवल जड़-द्रव्यका ही विचार करना ठीक नहीं। जैसे, इसे स्पष्ट करनेके लिये हम यह उदाहरण लेते हैं। धुनके हुए कपासके ढेरमें हम छोटी-छोटी गोलियाँ बिखेर दें और उस कपासका गट्ठा बना लें। ऐसी दशामें गोलियोंके बीचमें कुछ निश्चित अन्तर रहेगा। तो जिस समय गट्ठा फिर खोल दिया जावेगा, उस समय गोलियाँ भी एक दूसरेसे दूर जावेंगी। इस फैलनेका विचार करते समय हमको कपासका विचार करना ही पड़ेगा इसलिये एडिंगटनका कहना है, कि हमको जड़ पदार्थ और आकाश दोनोंको विचारमें लेना चाहिये।

इस बातको ध्यानमें रखकर एडिंगटनने जो गणित

किया, वह निरीक्षणोंसे बहुत मिलता है। इस विषयपर आजकल विवाद चल रहा है।

गेलीलियो और न्यूटनसे ऐन्स्टैन एक कदम आगे बढ़ा है। कुछ प्रयोग (विशेषकर मा. मो. का प्रयोग) ऐसे थे, जिनकी उपपत्ति नहीं मिलती थी, इसलिये उसके सिद्धान्त निकले। इसी प्रकार यदि कोई ऐसे प्रयोग किये जावें, जिनकी उपपत्ति इस सिद्धान्तसे भी न मिले, तो इसको छोड़कर कोई नया सिद्धान्त निकाला जावेगा। शास्त्रज्ञानका भरोसा प्रयोगोंसे होता है। कसौटीके ऊपर जिस प्रकार सोनेकी कीमत ठहरायी जाती है, उसी प्रकार प्रयोग-रूपी कसौटीपर सिद्धान्त-रूपी सोनेको कसकर उसकी योग्यताकी जाँच की जाती है। "यही अन्त है ; यहींपर सब ज्ञानकी समाप्ति हो गयी है", ऐसी वैज्ञानिकोंकी मनोवृत्ति नहीं है। जान-बूझकर जड़-सृष्टिके विषयमें ये सिद्धान्त हैं। इसमें जो सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं, उनको नापनेके लिये वैसे ही सूक्ष्म यन्त्रोंकी जरूरत भी है। उन यन्त्रोंका सुधार होते-होते जैसे-जैसे सूक्ष्म माप लिये जा सकेंगे, वैसे-वैसे सिद्धान्त भी गहन होते जावेंगे। जड़ पदार्थ और उसके संलग्न आकाश-का निकट सम्बन्ध है; ईथर सर्वत्र भरा हुआ है। एकने ऐसा भी कह दिया है कि जड़ पदार्थ ईथरमें बड़े-छोटे छेद हैं।

फिर भी यह निर्विवाद रूपसे सत्य है कि ऐन्स्टैन वैज्ञानिक भावोंमें युगान्तर उत्पन्न करनेवाला व्यक्ति माना जावेगा।

परिशिष्ट

प्रोफेसर डेटन सी० मिलरके प्रयोग

'रिव्यूज़ ऑफ मॉडर्न फिज़िक्स'के जुलाई १९३३ के अंकमेंमिलरने अपने प्रयोगोंका सविस्तर वर्णन प्रकाशित किया है। ईथरके सापेक्ष पृथ्वीके वेगका अस्तित्व है, अथवा नहीं —इसकी जाँच करनेके लिये उसने मा. मो. के प्रयोगकी विभिन्न परिस्थितियोंमें अनेकोंबार पुनरावृत्ति की, जिसका वर्णन उपर्युक्त लेखमें दिया गया है।

मा. मो. ने सन् १८८७ के ८, ९, ११ और १२ जुलाईके चार दिनोंमें कुल छः घंटोंतक प्रयोग किया था। उन लोगोंने केवल इतना ही देखा था, कि पृथ्वीका वेग ३० कि. मी. (२० मी.) प्र. से. मान लेनेपर वर्णपटमें जितना अन्तर आना चाहिये, उतना ही आया है, अथवा नहीं। उन्होंने केवल यही अनुमान निकाला, कि जितना अन्तर आना चाहिये, उतना नहीं आया। मिलरका कथन है, कि उनको अपने प्रयोगमें शून्य-परिणाम कभी नहीं दिखा, प्रत्युत मिला हुआ फल इष्ट फलसे कुछ कमपर निश्चित था।

मिलरका कहना है, कि जिस परिणामको शून्य मान लेनेपर सापेक्षवादकी रचना की गयी है, वह कभी भी शून्य नहीं मिला। उसने स्वयं जो बहुत सी परिस्थितियोंमें इसी प्रयोगको अनेकों बार किया और उनसे जो सैकड़ों अवलोकन लिये, उनसे ऊपरके कथनका समर्थन होता है। अपने अवलोकनोंसे उसने निम्न-लिखित अनुमान निकाले—

१. पृथ्वीका वेग १०–११ कि. मी. (६-७ मी.) प्र. से. मिलता है। वह न तो० और न ३० कि. मी. प्र. से. है।

२ शौरी नामक नक्षत्र-पुंजके ठीक विरुद्ध दिशामें अर्थात् दक्षिण ध्रुवकी ओर, २०८ कि. मी. प्र. से. वेगसे सूर्य जा रहा है। [शौरी=Hercules]

३. क्योंकि शौरीकी ओर १९ कि. मी. प्र. से. वेगसे सूर्य जा रहा है, इसलिये दृश्य तारक-मंडल उससे विरुद्ध दिशामें २२७ कि. मी. प्र. से. वेगसे जा रहा है, पर उन्हींके साथ सूर्य भी कुछ कम वेग, अर्थात् २०८ कि. मी. प्र. से. से जा रहा है।

सैकड़ों अवलोकनोंसे निकाले जानेके कारण ये अनुमान उपेक्षणीय नहीं हैं।

'रिव्यू ऑफ साइंटिफिक इंस्ट्रुमेंट्स के सितंबर १९३३ के अंकमें हिलने इनका इस प्रकार उत्तर दिया—

विगत ११ वर्षोंमें सापेक्षवाद-पर-निर्भर सूत्रोंका इतने अनेकों तरहसे उपयोग किया गया है, और उनसे निकलनेवाले अनुमानोंकी प्रयोगोंसे इतनेबार सिद्धि की गयी है, कि अब शून्य-परिणामके न रहनेपर भी इन सूत्रोंपर कोई असर नहीं पड़ता।

परन्तु ये सूत्र शून्य-परिणामपर निर्भर हैं, इसलिये वे शून्य-परिणामको ही स्पष्ट कर सकते हैं। क्योंकि शून्य-परिणाम नहीं मिलता और कुछ कमपर निश्चित फल मिलता है। इसलिये इसका कारण-निर्देश करना भी

मजूरों और किसानोंके कामका वैज्ञानिक साहित्य

(१) 'विज्ञान' में ऐसे लेखोंकी अधिकता

हमारे देशमें तथोक्त पैंतीस करोड़की आबादीमें सबसे बड़ी संख्या दरिद्र मजूरों और किसानोंकी है। हमारे दस आदमियोंमें नव दरिद्र किसान वा मजूर हैं। 'विज्ञान' यदि इन दो वर्गोंकी सेवा करे तो देशकी सबसे बड़ी जन-संख्याकी सेवा हो सकती है। सुबोध वैज्ञानिक लेख यदि ऐसे उपयोगी लिखे जायँ कि उसका पढ़नेवाला चाहे तो व्यवहारमें लाकर उसे रुपये आना पाईमें भँजा भी सके, अथवा अपने शरीरको, मनको, बुद्धिको, अथवा समाजको उससे प्रत्यक्ष लाभ पहुँचा सके, तो ऐसे उपयोगी लेखोंका प्रकाशन आज अपने दरिद्र देशकी सबसे बड़ी सेवा होगी। हमारे मजूर अपने काममें अधिक कुशल हो जायँ और हमारा किसान खेतीमें अधिक उपजाने लगे अथवा खेतीसे बचे अपने जीवनके फालतू घंटोंको किसी उपजाऊ धरमके धंधेमें लगाने लगे तो हमारे देशकी नित्य बढ़ती हुई दरिद्रता रुक जाय और घटने लग जाय। हमें इस बातका पूरा विश्वास है।

किसी विषयका तजरबेसे, अनुभवसे, परीक्षासे, ज्ञान-सम्पादन करना विज्ञान है और उस विज्ञानको व्यवहारमें लाना उद्योग है। किसी विषयको केवल जान लेना और व्यवहारमें न ला सकना निष्फल ज्ञान है। "विज्ञान" के अनेक पाठक और हितैषी ऐसा चाहते हैं कि "विज्ञान" के लेख देशके दरिद्रोंके लिये तात्कालिक सफलता देनेवाले भी अधिक संख्यामें हुआ करें। अतः हमारा विचार है कि विज्ञानमें इस प्रकारकी उपयोगी शिक्षा देनेवाले लेख अधिक रहा करें।

(२) मजूर पुस्तकमाला, किसान पुस्तकमाला

मजूर शब्दसे साधारणतया मिलोंमें काम करनेवालोंका बोध होता है। परन्तु यह अर्थ अत्यन्त संकुचित है। बढ़ई, दरजी, सोनार, लोहार, गोटा बीननेवाले, टिकुली बनानेवाले, बुनकर, छीपी आदि सभी घरेलू धंधे करनेवाले अपनी दूकान या कारखानेमें मजूर रखते हैं और काम लेते हैं। फिर अपने घर बैठे सभी कारीगर काम करते हैं। और दूसरेकी माँग चुकाते हैं। ये कारीगर भी अपनी मजूरी या मेहनत बेचनेवाले मजूर हैं। मुनीब, लेखक, प्रेसका फोरमैन, मैनेजर आदि नौकरी करनेवाले भी मजूर ही हैं। तनखाह या फीस लेकर पढ़ानेवाला या इलाज करनेवाला, या सलाह देनेवाला या और कोई काम करनेवाला भी, चाहे वह अन्यायसे कितनी ही ज्यादा मजूरी ले लेता हो, मजूर ही है। किसान भी अपने काममें हलवाहा आदि रखता है, मजूर लगाता है। वह खुद अपने बचे समयमें मजूरी करता है और अपने खेतमें किसानीका जो काम करता है, वह भी मजूरी ही है। निदान मजूर शब्द ऐसा व्यापक है कि एक हजार रुपया मासिक पानेवालेसे लेकर एक आना रोज पानेवालेतक मजूर ही हैं। परन्तु इतना विभेद हम अवश्य करेंगे जो मजूर अन्यायसे औरोंका हक बटोरकर अपनी तिजोरीमें भरते हैं उनके लिये हम उपयोगी लेखमाला नहीं निकाल रहे हैं। हम तो उन दरिद्र मजूरोंके लिये लिखना चाहते हैं जो मुश्किलसे अपने गुजारेभर कमाते हैं और जिनकी मजूरी थोड़ी भी बढ़ जाय तो उसका अर्थ

आवश्यक है 'केवल मिलरके प्रयोगको ही क्यों इतना महत्व देना चाहिये ?'—इस प्रकार कहकर उसके प्रयोगों-का उपहास करनेसे काम नहीं चल सकता। या तो नये सूत्रोंसे इस परिणामका कारण मालूम होना चाहिये, या सूत्रोंको ही बदलना चाहिये। एकबार इमारत बना लेनेपर उसके ऊपरकी मंजिलमें परिवर्तन करना कठिन नहीं है, किन्तु यदि नींवको ही बदलना पड़े, तो एक दूसरी इमारत बनाना ही आवश्यक होगा। ज्यादासे ज्यादा पहली इमा-रतके सामानका उपयोग दूसरीके बनानेमें किया जा सकता है।

बच्चेके लिये छटाँकभर दूध, अधभूखे सोनेवालेके लिये एक रोटी होगी।

किसानोंमें बड़े-बड़े ताल्लुकेदार भी गिनाये जा सकते हैं। परन्तु हम यहाँ 'किसान' उन्हीं खेतिहरोंको कहेंगे जो खेतीके काममें आप जुटे रहते हैं और खेतीसे फिर भी इतना नहीं कमा पाते कि भरपेट खा सकें, और किसीके ऋणी न रहें। हमारे मजूर और किसान जो ऋणभारसे दबे और दरिद्रताकी चक्कीमें पिसे हुए हैं, उन सबके लिये हम उपयोगी लेख निकालना चाहते हैं।

(३) दोनों पुस्तकमालाएँ अलग-अलग हों या एकमें ?

यह तो स्पष्ट ही है कि हमारा देश गावोंका देश है। सात लाखके लगभग गावँ हैं। शहर भी थोड़े हैं तो भी उनका जीवन गावोंसे भिन्न है। शहर और उनके पासके गावोंकी आबादीकी जरूरतें प्रायः एक तरहकी हैं। उनके जीवन मिलते-जुलते-से हैं। इसलिये एकदम देहातोंके लिये जिस तरहके घरेलू धंधे चाहिये उससे कुछ भिन्न प्रकारके घरेलू धंधे शहर या उसके आसपासके लिये चाहिये। शहरोंमें मिलें हैं। उनके लिये भिन्न प्रकारके मजूर चाहिये। जहाँ देहातके लिये पशुपालन, खद्दरके काम, खँड़साल, घी, तेल, फल, तरकारियों मसालोंका उपजाना आदि अधिक उपयुक्त हैं, उसी तरह बरतनोंका बनाना, लोहे आदि धातुओंके काम, नक्काशी चित्रकारी, छपाई, रंगाई, बढ़ईगीरी, दफ्तरी थवई, मिलमजूरी आदिके काम शहरोंके लिये अधिक उपयोगी हैं। कितने ही काम ऐसे होंगे जो शहर और देहात दोनोंके लिये उपयोगी होंगे। जैसे दही, दूध, घीका रोजगार, तेल पेलनेका काम, खद्दर और तत्सम्बन्धी सभी उद्योग दोनोंके लिये जरूरी हैं। दूकानदारी दोनोंके लिये जरूरी है। पढ़ने-लिखनेकी उपयुक्त शिक्षा किसी न किसी हदतक दोनोंको चाहिये। इसीलिये हम मजूर किसानके बहुतेरे कामोंमें विशेष भेद नहीं कर सकते। अतः हम जो उपयोगी ग्रंथमाला निकालें वह हो एक ही परन्तु नाममें जहाँ मजूरके शिल्पीकामोंकी प्रधानता हो वहाँ "मजूर किसान ग्रंथमाला" कहें और जहाँ किसानके कामोंकी प्रधानता हो वहाँ "किसान मजूर ग्रंथमाला" कहें। प्रत्येक पोथी ८०-१०० पृष्ठतककी हो। इस ढंगपर चित्रोंसे भरी हो कि पढ़नेवालोंको उनसे पूरी मदद मिले। इनकी तैयारीका खर्च काफी पड़ेगा परंतु इनका मूल्य भरसक ऐसा रखा जायगा कि यह पुस्तकें खरीदारोंको सुभीतेसे मिलें।

यदि विज्ञानके अधिकांश ग्राहकों एवं पाठकोंको हमारा प्रस्ताव पसन्द आया और उन्होंने इच्छा प्रकट की तो हम विज्ञानके पृष्ठांक और बढ़ा देंगे।

हमारे मित्र पं० ओंकारनाथजीने ग्रंथमालाकी पुस्तकोंकी एक बड़ी अच्छी सूची बनाकर भेजी है जिसमें हमने कुछ कहीं-कहीं बढ़ा दिया है और जिसमें उनका प्रस्ताव है कि उद्योगी भारत और उद्योगी किसान नामकी दो पत्रिकाएँ १॥) —१॥) रुपये वार्षिक चन्देकी और निकाली जायँ। परन्तु "विज्ञान" के ही प्रचारपर अभी पूरा ध्यान नहीं दिया जा सका है, नये पत्रोंका निकालना तो दूरकी बात है। हम तो चाहते हैं कि विज्ञानमें ही हम वृद्धि करके इन आवश्यक विषयोंपर जोर दें। हम उनके उपयोगी प्रस्ताव उन्हींके शब्दोंमें यहाँ देते हैं।

४. शहरी मजदूर और किसानोपयोगी औद्योगिक ग्रन्थावलियोंकी योजना

१—इन ग्रन्थमालाओंकी प्रत्येक पुस्तकका मूल्य छः आना हो, उनमें आवश्यकतानुसार चित्र भी रहें और पृष्ठसंख्या लगभग ८० हो।

२—इन पुस्तकोंका विषय बिलकुल प्रयोगात्मक हो जिससे इन्हें पढ़नेवाले इनके ज्ञानको रुपये-आने-पाइयोंमें नोटकी भाँति परिवर्त्तित कर सकें।

३—इतनी सस्ती पुस्तकें निकालनेके लिये यह बहुत ही आवश्यक है कि इनका विषय पहले लेख रूपमें किसी औद्योगिक मासिक-पत्रमें प्रकाशित हो जाय जिससे ब्लाकोंका खर्चा बँट जाय, जोकि इस प्रकारकी पुस्तकोंमें एक खास खर्चा होता है, और उन लेखोंकी उपयोगिता भी सिद्ध हो जाय। अंगरेज़ीकी Cassell's Work-Handbook series और Marshall's Practical Workshop series भी इसी प्रकारसे प्रकाशित होती हैं।

४—उपर्युक्त प्रस्तावित पत्रोंके नाम क्रमशः 'उद्योगी भारत" और "उद्योगी किसान" हों और उनका वार्षिक

मूल्य १॥) से अधिक न हो, जिससे उनका प्रचार सलतासे हो सकेगा।

५—प्रकाशनकार्य करनेवाली संस्था एक लिमिटेड कम्पनीके रूपमें हो तो अच्छा है। खैराती संस्थासे अधिक कामकी आशा नहीं की जा सकती।

६—पत्रोंकी आर्थिक सहायताके लिये उपयोगी वस्तुओंके विज्ञापन अवश्य लिये जावें।"

भारतके शहरी मजदूरोंके लिये औद्योगिक ग्रंथावली

विषय सं०	विषय	विस्तार भागोंमें
१	जस्ता, ताँबा और सीसा (खनिज अवस्थासे शुद्ध करकर ईंट बनाने तक)	१
२	अलम्युनियम और टीन (खनिज अवस्थासे शुद्ध करकर ईंट बनाने तक)	,,
३	निकल आदि अलौहिक धातुएँ (खनिज अवस्थासे शुद्ध करकर ईंट बनाने तक)	,,
४	लोहा (खनिज अवस्थासे शुद्ध करकर ईंट बनाने तक)	२
५	कोयलेकी खुदाई	१
६	लोहा गलानेकी भट्टी (ढलाईके लिये)	,,
७	लोहे और पीतलकी ढलाईके लिये मिट्टीके सांचे बनाना	३
८	मिश्रित धातुएँ तैयार करना और उनका उपयोग	२
९	पीतल आदि मिश्रित धातुओंको ढालनेकेलिये मसाला	२
१०	साधारण धातु विश्लेषण—छोटे कारखानोंके लिये	१
११	ढलाईखानेके औजार	,,
१२	पक्के साँचे—धातु निर्मित—ढलाईके लिये	,,
१३	ढलाईखानेका व्यापार—छोटे पैमानेपर	,,
१४	ईस्पातको गलाना	,,
१५	ईस्पातकी ढलाई	२
१६	लोहारोंके औजार	१
१७	लोहेको गढ़ना	३
१८	गैससे झाल लगाना	१
१९	बिजलीसे जोड़ोंको झाल लगाना, मिलानेकी विधि सहित	२
२०	अलौहिक वस्तुओंकी झाल	१
२१	आबदारी	,,
२२	धार लगाना	१
२३	खरादयंत्र और खरादना	,,
२४	खरादपर चूड़ी काटना	,,
२५	खरादोपयोगी सारणियाँ	,,
२६	ऊँचे दरजेकी खराद करना	,,
२७	खरादके औजार	,,
२८	लकड़ी खरादना	,,
२९	बरमा और रंदा मशीनोंका कार्य	,,
३०	मिलिंग मशीन	,,
३१	स्पायरल मिलिंग	,,
३२	किर्रे काटना	३
३३	ब्रोचिंग और प्रेसिंग	१
३४	फिटिंग	२
३५	इरेक्टिंग	१
३६	बिजलीद्वारा क़लई करना	,,
३७	साधारण क़लई	,,
३८	धातुके नलोंको झुकाना	,,
३९	टीनका काम	,,
४०	लोहेकी पत्तीका काम	,,
४१	लोहेके ट्रङ्क और तिजोरी	,,
४२	ठप्पे बनाना	५
४३	ठप्पोंका उपयोग	१
४४	टीनके खिलौने बनाना	,,
४५	स्टोव पेन्टिंग	,,
४६	स्प्रेपेन्टिंग	,,
४७	बिजलीके मोटर और डायनिमोंकी मरम्मत और सँभाल	३
४८	बिजलीके तार लगाना	१
४९	मोटरगाड़ी चलाना	,,
५०	मोटरगाड़ीकी मरम्मत	२
५१	मोटरगाड़ीकी सफाई और रंगाई	१
५२	मोटरबाईसिकल	,,
५३	बाईसिकलोंकी मरम्मत	,,
५४	टाइपराइटरोंकी मरम्मत	,,
५५	सीनेकी मशीनोंकी मरम्मत	,,

क्रम	विषय	
५६	ब्लाकोंकी मरम्मत	१
५७	छोटी घड़ियोंकी मरम्मत	,,
५८	ग्रामोफोनकी मरम्मत	,,
५९	गैसकी बत्तियों और अंगीठियोंकी मरम्मत	,,
६०	बिजलीके घरेलू यंत्रोंकी मरम्मत	,,
६१	सितार आदि तारके बाजोंकी मरम्मत और निर्माण	,,
६२	हारमोनियम आदि सुरवाले बाजोंकी मरम्मत और निर्माण	,,
६३	कम्पोजिंग	,,
६४	प्रेसकी छपाई और यंत्र	२
६५	लीथोकी लिखाई और छपाई	२
६६	जिंकोग्राफकी छपाई	२
६७	ब्लाक बनाना	२
६८	टाइप फाउन्ड्री	१
६९	मैट्रिक्स तैयार करना	,,
७०	जिल्दसाजी	,,
७१	प्रेसका प्रबन्ध	,,
७२	प्रकाशन कार्य	,,
७३	साइनबोर्ड लिखना	,,
७४	सुनारका काम	२
७५	बहुमूल्य मणियोंकी पहचान और जड़ाव तैयार करना	१
७६	जड़ाई—आभूषणोंमें मणि लगाना आदि	,,
७७	सोने और चाँदीपर रंग करना	,,
७८	डेन्टिस्टका काम	,,
७९	बढ़ईके औजार	,,
८०	लकड़ीपर खुदाई करना	,,
८१	हाथी दाँतपर खुदाई करना	,,
८२	पत्थरपर खुदाई करना	,,
८३	काँचपर लिखाई करना	,,
८४	फर्नीचर	२
८५	गद्दे लगाना	१
८६	फर्मे बनाना	२
८७	रोगन रंग आर पालिश	१
८८	गाड़ी और बग्घी बनाना	,,
८९	रबर स्टाम्प और रबरके खिलौने	१
९०	कागजके खिलौने	,,
९१	आतिशबाज़ी	,,
९२	साबुन बनाना	,,
९३	सुगंधित तेल और इत्र	,,
९४	धोबीका काम	,,
९५	सूती कपड़ोंकी रंगाई	,,
९६	सूती कपड़ोंकी छपाई	,,
९७	रेशमी और ऊनी कपड़ोंकी रंगाई और धुलाई	,,
९८	घरेलू औद्योगिक नुसखे	,,
९९	स्याहियाँ तैयार करना	,,
१००	दरजी—घरेलू और बाजारू	२
१०१	हलवाई	३
१०२	अतारी शिक्षा	१
१०३	शरबत, मुरब्बे और अचार	,,
१०४	पत्थरोंका उपयोग	,,
१०५	ईंट बनाना	,,
१०६	टाइल बनाना	,,
१०७	चूना बनाना और उसका उपयोग	,,
१०८	सीमेण्ट बनाना और उसका उपयोग	,,
१०९	गृहरचन और नकशे	,,
११०	गृहनिर्माण	२
१११	गृहनिर्माणमें लोहा और छप्पर लगाना	१
११२	चीनी मिट्टीका उद्योग	३
११३	जिनिंग प्रेस	३
११४	मिलकी कताई और धुनाई	५
११५	मिलकी बुनाई और रंगाई	१०
११६	खाँडकी मिल	४
११७	आटेकी मिल	४
११८	चमड़ेका उद्योग	३
११९	तेलके छोटे इंजन	२
१२०	वाष्पके मिलइंजन	१०
१२१	रेलवे यंत्रशास्त्र	१०
१२२	व्यापार संगठन	१
१२३	फैक्टरियोंका प्रबंध और स्थापन	३

१२४	बहीखाता	१
१२५	मूल्य और मूल्यका अनुमान लगाना	२
१२६	लिमिटेड कम्पनियाँ	१
१२७	बैंकिंग	,,
१२८	विज्ञापनकला	,,
१२९	विक्रयकला	,,
१३०	व्यापारिक पत्रव्यवहार	४
१३१	कारखानोंकी दुर्घटनायें	१
१३२	पूँजीपति और मजदूरोंके कानूनी सम्बन्ध	,,
१३३	फैक्टरी एक्ट	,,
१३४	बोयलर एक्ट	,,
१३५	पेटेण्ट और रजिस्ट्रेशन एक्ट	,,
१३६	म्युनिसपल क़ानून	,,
१३७	पुलिस और नागरिक जीवन	,,
१३८	मजदूरोंकी बेकारीका समय	,,
१३९	मजदूरोंका स्वास्थ्य और उनके घर	,,
१४०	मजदूर और उनके बच्चोंकी शिक्षा	,,
१४१	रद्दी कागज गलाकर उसकी चीजें बनाना	,,

भारतीय ग्रामीणोंके लिये औद्योगिक ग्रन्थावली

१	लकड़ियोंकी पहचान और गुण	१
२	लकड़ीका व्यापार	,,
३	जंगलोंका व्यापार (Forestry)	,,
४	चीरघर (Saw-mill)	,,
५	ग्रामीण बढ़ई	,,
६	ग्रामीण लुहार	,,
७	खेतीके औजार बनाना	,,
८	चरखा, चरखी और करघे बनाना	,,
९	कुएँ और नहरसे सिंचाई करना	,,
१०	पम्पोंका चुनाव, लगाना और सँभाल	,,
११	पैमाइश	,,
१२	ग्राम्यगृहनिर्माण	,,
१३	पत्थरकी खान	,,
१४	कुएँ खोदना, तरह-तरहके कुएँ तैयार करना	,,
१५	भारी बोझे उठाना	,,
१६	कुम्भकारी	१
१७	मिट्टीके खिलौने	,,
१८	खाद तैयार करना और उनका उपयोग	,,
१९	खेतीके सिद्धान्त	४
२०	रुईकी खेती, प्रकार, पहचान	१
२१	बिनौलेके उपयोग	,,
२२	रुईकी ओटाई, धुनाई और कताई	,,
२३	करघेसे बुनाई	२
२४	रँगाई और छपाई	१
२५	गलीचे और कालीन	,,
२६	ऊनके लिये भेड़ें पालना और उनका व्यापार	,,
२७	ऊनकी कताई और रँगाई	,,
२८	रेशमका उत्पादन और कताई	,,
२९	तेल निकालना	,,
३०	गाय, बैल, भैंस और बकरी पालना	,,
३१	दूध और घीका व्यापार	,,
३२	पशु-चिकित्सा	,,
३३	गुड़ और खाँड़का उत्पादन	,,
३४	शहदकी मक्खी पालना	,,
३५	रबरकी खेती	,,
३६	औषधियोंकी खेती	,,
३७	किसानोंकी भूगर्भ विद्या	,,
३८	फसलनाशक जंतु और उनसे रक्षा	,,
३९	किसानोंका गणित	,,
४०	बहीखाता	,,
४१	कोपरेटिव सोसाइटियोंसे व्यवहार	,,
४२	किसानोंका पत्र-व्यवहार	,,
४३	ग्राम्य-सभाएँ और पंचायत	,,
४४	गावोंकी सफाई	,,
४५	अग्निसे रक्षा	,,
४६	रोगीकी सेवा	,,
४७	स्वास्थ्य-रक्षा	,,
४८	घरेलू दवाइयाँ	,,
४९	बालकोंका पालन और शिक्षा	,,
५०	पृथ्वी और कर्ज़े सम्बन्धी कानून	,,

५१	लाखकी खेती	१
५२	लाखका उपयोग	,,
५३	बेत, बाँस और सरकंडेकी उपज और उपयोग—टोकरी, परदे और मूढ़े आदि बनाने में	,,
५४	गेहूँ और जौ	,,
५५	चना	,,
५६	मका	,,
५७	ज्वार और बाजरा	,,
५८	मूँग और उड़द	,,
५९	अरहर और मसूर	,,
६०	चावल	,,
६१	चारा	,,
६२	आम	,,
६३	नीबू और नारंगी	,,
६४	केला	,,
६५	अंगूर	,,
६६	अमरूद आदि अन्य फल	,,
६७	आलू, अदरख और हल्दी	,,
६८	फलवाली तरकारियाँ	,,
६९	पत्तेकी तरकारियाँ	,,
७०	अरंड खरबूजा और अन्य ऐसे फल	,,
७१	गन्ना, पौंडा और ऊख	,,
७२	मूँगफली	,,
७३	तिल, राई, सरसों	,,
७४	अमचूर आदि खटाइयाँ तैयार करना	,,
७५	लालमिरच और कालीमिरच	,,
७६	जीरा और धनियाँ	,,
७७	लौंग और इलाइची आदि	,,
७८	हींग और गोंद	,,
७९	पोस्त और अफीम	,,
८०	भंग, केसर और सौंफ	१
८१	प्याज और लहसुन	,,
८२	तीज त्योहार	,,
८३	बाजार और मेले	,,
८४	ढोरोंकी पहचान और खरीद	,,
८५	सुअर, मुरगी आदि पालना	,,
८६	मरे पशुओंका उपयोग—चमड़ा सिझाना, जूते आदि बनाना	,,
८७	ऊसरके खारका उपयोग	,,
८८	कूड़ेका विविध उपयोग	,,
८९	मजूरों और किसानोंके लिये वर्णमाला	,,
९०	,, ,, ,, ,, पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी पोथियाँ	४
९१	,, व्यावहारिक पाटीगणित	
९२	,, ,, व्यावहारिक रेखागणित	
९३	,, ,, व्यावहारिक चित्रलेखन	
९४	,, ,, व्यावहारिक लेखनकला	
९५	किसानोंके लिये व्यायाम	१
९६	मजूरोंके लिये व्यायाम	,,
९७	सरल सदाचारशिक्षा	,,
९८	सरल धार्मिकशिक्षा	,,
९९	रामचरितमानस	,,
१००	सरल गीता	,,

नोट—ऊपरकी सूचीमें विषय-विभाग और पुस्तक-संख्याके अंक अटकलसे दिये गये हैं। संभव है कि एक-एक पुस्तकमें कई-कई विषय समाविष्ट हो जायँ अथवा एक ही विषयपर कई-कई पुस्तकें लिखी जायँ। यह सूची तो केवल कल्पनाकी सहायताके लिये है। हम विचारवानोंकी इस विषयपर सम्मतियाँ चाहते हैं।

—रा० गौ०।

भूल-सुधार

इसी अंकके पृष्ठ ९८ कालम १ के नीचेसे पंक्ति ७में "बी० बी० ऐंड सी० आई०" की जगह "रेलवे बोर्ड" पढ़िये, और पंक्ति ८ में "कम्पनी" की जगह "बोर्ड" पढ़िये। रा० गौड़।

आयुर्वेद विज्ञान

आयुर्विदेव विततं किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्न परकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

'विज्ञान' और "आयुर्वेद विज्ञान" का संबंध

("आयुर्वेद विज्ञान"के संस्थापकका वक्तव्य)

पाठकोंको ज्ञात है कि आयुर्वेद-विज्ञान आज छः माससे बन्द था, इसका कारण मैं त्रैमासिक सूचीपत्रके आरम्भिक वक्तव्य "मेरा अन्तिम निश्चय" शीर्षकसे दे चुका हूँ। मैं पञ्जाब-आयुर्वैदिक-फार्मेसी नामक अपने वृहद् कार्यालयको **विज्ञान-परिषत्** नामक संस्थाको समर्पण करनेका निश्चय कर चुका हूँ। विज्ञान-परिषत् इस देशकी एक माननीय वैज्ञानिक संस्था है, इसका कार्यालय प्रयागमें है। इसकी स्थापना १९१३ ई० में हुई थी, इसने जनताको इस २१ वर्षमें मातृभाषामें जितना अधिक वैज्ञानिक साहित्य दिया है, इतना किसी भी संस्थाने नहीं दिया। वास्तवमें देखा जाय तो युक्तप्रान्तमें हिन्दीभाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेमें जितना अधिक काम इसने किया, इतना किसीने भी नहीं किया। इसने ही अपने **विज्ञान** नामक पत्रद्वारा, अथक परिश्रमसे, इस बातको सिद्ध कर दिखलाया कि - किसी भी विषयकी विज्ञानसंबंधी उच्चसे उच्च शिक्षा अपनी मातृभाषा-द्वारा अच्छी प्रकार दी जा सकती है। इससे भिन्न इस परिषत्के पत्रने विज्ञान-सम्बन्धी बातोंका जनतामें काफी प्रचार किया। इस पत्रकी ही कृपाका यह परिणाम है कि देशकी प्रत्येक साहित्यिक पत्रिकाने भी अपने-अपने कलेवरमें विज्ञान-सम्बन्धी विषयके लिये विशेष स्तम्भ रखकर जनताकी विज्ञानकी ओर बढ़ती हुई रुचिका अनुभव किया। परिषत्का उक्त पत्र आज बीस वर्षसे निरन्तर चल रहा है इतने समयमें इसने रसायन, भौतिक, गणित, विद्युत, चिकित्सा, औद्योगिक रसायन आदि विषयोंपर इतना अधिक वैज्ञानिक साहित्य उत्पन्न कर दिया है कि जिसके कारण आज हमारी मातृभाषा अन्य देशी भाषाओंसे सर्वथा उक्त विषयोंमें अग्रणी बन रही है।

इस समय जिधर देखो, जिस ओर निगाह उठाओ प्रत्येक धर्म, कर्म और शास्त्रसम्मत बातें तथा अन्य रचनात्मक कार्य, व्यापार सबके सब विज्ञान (क्रियात्मक ज्ञान) से परिमार्जित किये जा रहे हैं जिस बातको विज्ञानसे सिद्ध नहीं किया जा सकता, जिस विषयको क्रियात्मकरूप देकर उसकी सत्यताको दर्शाया नहीं जा सकता, उसपर अब पढ़ी-लिखी जनता विश्वास करनेके लिये तैयार नहीं। इसीलिये अनेक मत-मतान्तरोंकी शास्त्रीय बातें ह्रासपर हैं।

यद्यपि, आयुर्वेद-शास्त्र अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है इसका बहुतसा विषय आरम्भसे क्रियात्मक रहा है तथा आज भी है, तथापि, इसमें अनेक शास्त्रीय बातें ऐसी भी सम्मिलित हैं, जिनको आजतक क्रियात्मक रूप नहीं दिया जा सका। इसपर दकियानूसी विचारके वैद्य अनेक प्रकारकी बातें कहकर अपने चित्तको शान्ति देते हैं। कुछ कहते हैं कि चाहे कोई बात कोई विषय विज्ञानसे सिद्ध हो या न हो हम तो आँख

वैद्योंको विज्ञानकी आवश्यकता

[ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

इस समय संसारका ज्ञान कितनी द्रुतगतिसे विज्ञानमें परिणत हो रहा है यह केवल तमाशा देखनेवाली बात नहीं, समझनेवाली बात हो रही है। भारतको छोड़कर समस्त संसारके मनुष्य विज्ञानके मैदानमें बड़ी तेजीसे दौड़ लगा रहे हैं। हरएक देश इस दौड़में दूसरोंको पछाड़नेकी चेष्टा कर रहा है।

इस समय एक बहुत छोटासा, किन्तु नवोत्थित देश जापान इस दौड़में सबसे आगे निकलता दिखायी देता है। उसने अपनी प्रचण्ड प्रतिभासे संसारके व्यापारिक केन्द्रोंको अपने अधिकारमें कर लिया है, जहाँ देखो उसके बुद्धि-बलकी धाक जमती चली जा रही है, उसने बड़े-बड़े प्रतापी विज्ञान-महारथी देशोंको परेशानीमें डाल रखा है। ऐसा होते हुए भी कोई देश इस प्रतिद्वन्दताके मैदानको छोड़कर बैठ जानेवाला नहीं, प्रत्येक देश इस बातकी प्रबल चेष्टा कर रहा है, कि इसकी प्रबल गतिको रोककर हम आगे निकल जायँ।

संसार ऐसा क्यों कर रहा है? वह सब क्यों इस तरह मरपच रहे हैं? हमारे यहाँके विद्वान इसका उत्तर मींचकर "बाबा वाक्य" को पूर्ण प्रमाण मानेंगे। पर आधुनिक अनेक विचारके वैद्य इस पक्षके नहीं हैं, वे चाहते हैं कि आयुर्वेद-सम्बन्धी प्रत्येक विषय पूर्ण क्रियात्मक बनाया जाय, और उसे अच्छी तरह विज्ञानकी कसौटीपर कसकर दिखला दिया जाय। मैं भी इसी विचारका व्यक्ति हूँ और आयुर्वेद-विज्ञानका जन्म इसी उद्देश्यको लेकर हुआ था, जो बहुत कुछ वह पूर्ण करता रहा। परन्तु, मेरे स्वराज्य-संग्राममें फँसे रहनेके कारण आयुर्वेद-विज्ञानका प्रकाशन ठीक तौरपर न हो सका, न भविष्यमें स्वतन्त्रतया दृढ़ रूपसे चलनेकी आशा दिखायी दी। इसी कारण इसको विज्ञान-परिषत्के मुख्य पत्र विज्ञानमें सम्मिलित कर देनेका विचार किया। मेरे उक्त विचारको विज्ञान-परिषत्की कौन्सिलने सहर्ष स्वीकार किया, उसे विज्ञानके कलेवरमें मिला लेनेकी स्वीकृति दे दी। इसीलिये अब, आगेसे आयुर्वेद विज्ञान, विज्ञानका एक अंग होकर उसके साथ, एक भिन्न स्तम्भमें प्रकाशित होता रहेगा।

मुझे अब पूर्ण आशा है कि जिस उद्देश्यको लेकर आयुर्वेद-विज्ञान प्रकाशित किया गया था विज्ञानके विद्वान लेखक तथा अन्य वैद्य बन्धुओंसे उक्त उद्देश्य-पूर्तिमें महान् सहायता मिलेगी और कुछ समयमें ही आयुर्वेदशास्त्र आधुनिक-विज्ञानमें पूर्णरूपसे सम्मिलित हो जायगा।

आयुर्वेद-विज्ञानने आयुर्वैदिक जगत्की जितनीभी सेवा की है विज्ञान उससे कई गुना अधिक करेगा। क्योंकि विज्ञानके बड़ेसे बड़े धुरन्धर विद्वान् लेखक विज्ञान-प्रेमी हैं। एक तो विज्ञान उसी तरह संसारमें महान् उच्च उपयोगी चीज है जो अब आयुर्वेदशास्त्रपर पालिशरूपसे चढ़ने जा रही है। हमें पूर्ण आशा है कि आयुर्वेदका जीर्ण-शीर्ण कलेवर एकबार फिर नूतन आभाप्रभासे चमककर अपनी प्रकीर्ण ज्योतिकी वह प्राचीन झलक फिर दिखलावेगा और इसका प्रत्येक विषय वैद्य बन्धुओंके लिये अत्यन्त मननके योग्य उपयोगी ठोस होगा।

जिन अनेक उपयोगी लेखोंको आयुर्वेद-विज्ञानमें प्रकाशित नहीं कर सका था विज्ञानमें क्रमसे प्रकाशित करूँगा। इससे भिन्न अपने बीस-बाइस वर्षके गुप्त और पेटेन्ट समस्त अनुभूत प्रयोगोंके एक विशेष स्तम्भद्वारा प्रकाशितकर, वैद्य-बन्धुओंसे प्राप्त योगरूपी धन उन्हींके समर्पण कर दूँगा। तथा अपनी अनुभूत चिकित्सा-पद्धतिको भी उनके सामने क्रमसे रखूँगा। आशा है जितने भी पुराने आयुर्वेद-विज्ञान-प्रेमी हैं वह विज्ञानसे उसी प्रकार प्रेम-भाव बनाये रखेंगे। तथा इससे लाभ उठाकर इसकी ग्राहकसंख्या बढ़ानेकी चेष्टा करेंगे जैसा पूर्वकालमें करते रहे हैं।

—हरिशरणानन्द वैद्य

देते हैं कि उनमें संतोष नहीं, उन्होंने जड़-जगत्‌को ही सब कुछ मान लिया है, इस जीवनको ही सुखमय बनाना उन्होंने अपना ध्येय समझा है। इससे परे वह जाना नहीं चाहते। इसीलिये वह इस दौड़में सम्मिलित हैं। भारतीय विद्वान् इसमें सम्मिलित क्यों नहीं होते? इसका प्रधान कारण है, उनमें संतोष है, वह इस नश्वर संसारसे मोह नहीं रखते। उनका एकमात्र लक्ष है परलोक, आत्मकल्याण। शरीरको, इस जीवनको वह आत्मकल्याणका एक साधन-मात्र मानते हैं। रहा जीवननिर्वाह वह प्रारब्धानुसार हो ही जाता है, फिर इस प्रकार वृथाके संघर्षमें क्यों पड़ें।

हम जब उक्त कथनकी वास्तविकताको देखते हैं और इन विद्वानोंके आचरणको देखते हैं तो हमें इसमें उनके कथनकी सचाईका लेश भी दिखायी नहीं देता। दूसरोंको तो कहते फिरते हैं कि प्रारब्धपर भरोसा करके बैठो, पर आप रोटीकी तलाशमें दर-दर भटकते दिखायी देते हैं। संसारको तो कहते हैं कि इस नश्वर मायाका मोह छोड़ दो पर आपको तो एक ताम्रका पैसा भी कहीं बुरीसे बुरी जगह पड़ा नजर आ जाय तो लोगोंकी आँख बचाकर उसके उठानेकी चेष्टा करते हैं। क्या इसीका नाम है माया-मोह छोड़ना, इहलोकसे उपराम होना?

जो व्यक्ति यह मानते हैं कि इहलोकमें चाहे दुखी रहें परलोकमें सुखके साधन मिलें, इसकी तलाशमें भटकते हैं, वह भूले हुए हैं। जिसको इस लोकमें सुख नहीं उसको परलोकमें सुख कभी मिल नहीं सकता। शरीर दुखी रहे, और हम चाहें कि आत्मा सुखी रहे यह कभी हो नहीं सकता। सुख-दुःख आत्मासे अवश्यही लगे रहेंगे। जिसका इहलोक नहीं सँवरा, उसका परलोक कभी सँवर नहीं सकता। जिस व्यक्तिकी यहाँ कद्र नहीं उसकी परमात्माके घरमें भी कोई कद्र नहीं हो सकती। गरीबको कोई भी पास नहीं बिठाता, कंगाल, लाख मिन्नत खुशामद करे उस बेचारेकी कोई सुनता नहीं। इसी प्रकार ईश्वरके घरमें भी है। इसीपर किसी कविने क्या अच्छा कहा है—

"जाकी यहाँ चाहना है वाकी वहाँ चाहना है। जाकी यहाँ चाह ना है वाकी वहाँ चाह ना है।" "भुक्त, मुक्त, अपवर्गसुख कंचन माहिं निवास।" जिसने लक्ष्मी देवीको पा लिया, प्रसन्न कर लिया, वह विष्णु भगवानको भी अवश्य प्रसन्न कर लेगा। यह किससे छिपा है कि गौरांग महाप्रभुओंके पास प्रबल शिफारिस पहुँचानेका कोई उत्तम साधन हैं तो उनकी वही प्रेयसी लक्ष्मी है। जब यह फाँसीपर लटकनेवालेको बचा सकती है, तो लक्ष्मी क्या विष्णु-भगवानसे कहकर अपवर्ग-सुखका द्वार नहीं खुला सकती है? निश्चय ही जिसने अपने पुरुषार्थसे यहाँ सुख और ऐश्वर्यको प्राप्त कर लिया है वह वहाँ भी—यदि कहीं है—तो अवश्य प्राप्त करेगा।

इस समय हम देखते हैं कि विदेशके चिकित्सक जो आजसे दो-तीन शताब्दीपूर्व कुछ नहीं जानते थे—वे चिकित्साके प्रत्येक विभागमें उन्नति करते चले जा रहे हैं। और जहाँ देखो मानव-जीवनको सुखी बनानेके अनेकों साधन निकालते चले जा रहे हैं। पर हम और हमारी चिकित्सा-पद्धति उसी जगहपर ठहरी है जहाँपर आजसे दो हजार वर्ष पूर्व थी। हमें दूसरी चिकित्सा-पद्धतियोंकी निन्दा करनी तो खूब आती है, पर अपनेको उन जैसी समुत्थित दशामें लाना नहीं आता। दूसरेके सुख-वैभव ऐश्वर्यको देखकर तो जलते हैं, पर स्वयम् उन जैसा सुख, ऐश्वर्य-प्राप्तिके मार्गकी तलाश नहीं करते। हम कहते हैं कि हमारे देशमें डाक्टरोंकी पूछ हर जगह होती जाती है, हमें कोई पूछता-तक नहीं। इसमें दोष देशका नहीं, देशकी जनताका नहीं हमारा है। हम अपनेको इस योग्य नहीं बनाते कि हमें आकर कोई पूछे। हमारा ज्ञान-विज्ञान केवल डींगें मारनेको रह गया है, करके दिखलानेका नहीं। आचार्य आत्रेयजीका कथन है कि—

"विद्यावितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया।
यस्यैते षट् गुणास्तस्य न असाध्यति वर्त्तते॥"
—चरक

जिसके पास विद्या, कल्पनाशक्ति, कृतपरिचयज्ञान, स्मृति, और काममें तत्परता तथा क्रियाकुशलता यह छः गुण विद्यमान हैं उसके लिये कोई भी काम असाध्य नहीं।

हममें विद्या है कल्पनाके घोड़े दौड़ानेमें तो इतने सिद्ध हस्त हैं, तर्क-वादमें इतने प्रवीण हैं कि सच्चेको भी एकबार झूठा सिद्ध कर देते हैं। पर कृतपरिचयज्ञानसे हम बहुत कुछ शून्य हो चुके हैं। यद्यपि हमारे चिकित्साक्रममें

कदम-कदमपर कृतपरिचयज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है और हम उसको चाहें तो बढ़ा भी सकते हैं। परन्तु, हमने इस असीम ज्ञानके मैदानमें पूर्णज्ञानके विश्वासकी ऐसी कंटकपूर्ण बाड़ लगा ली है जो हमें इस मैदानके किसी ओर भी बढ़ने नहीं देती। हमने यह अन्धविश्वास बना लिया है कि जो कुछ कृतपरिचयज्ञान हमारी पुस्तकोंमें विद्यमान हैं। उससे परे हो नहीं सकता, उसे हमारे पूर्व-पुरुषोंने पहले ही प्राप्त कर लिया है इसीलिये जो कुछ ढूढ़ना हो हमें उन पुस्तकोंमें ही ढूँढ़ना चाहिये।

ज्ञानका अर्थ है जानना, पूर्व पुरुषोंकी लिखी पुस्तकोंसे हमें ज्ञान ही मिलता है विज्ञान नहीं। अपने आप अनुभव लिये हुए ज्ञानका नाम है विज्ञान, विज्ञान स्वयम् करनेसे ही प्राप्त होता है। प्राचीन पुस्तकोंके पढ़ लेने या घोष लेनेसे नहीं। हम वैद्यमात्र-जो चिकित्साका व्यवसाय करते हैं यद्यपि उन सबको कृतपरिचयज्ञान नित्य मिलता रहता है, तथापि हमारी विचारशैली उसको स्वतन्त्ररूपेण बढ़ने नहीं देती। हम डींगें तो मारते हैं कि अश्विनीकुमारजीने दक्षका कटा सिर जोड़ दिया था, च्यवन ऋषिके गये नेत्र नये लगा दिये थे। अश्विनीकुमारजीने जिस शल्य-क्रिया-द्वारा उच्च चमत्कार दिखाये थे आज हम उनके अनुयायियों-के—कटा सिर जोड़ना, आँखोंका चढ़ाना तो दूर रहा—हाथ-में अस्त्र लेते ही हाथ काँपते हैं। और यदि किसीकी धमनि-से रक्तका फव्वारा निकलता देख लें तो वह मूर्छित पीछे होता है हम पहले हो जाते हैं, यह है हमारी दशा कृत-परिचित-ज्ञानकी।

इसी बातकी तुलनामें इस समय विदेशके विज्ञानियोंके कृतपरिचितज्ञानकी ओर निगाह उठाओ तो ज्ञात होगा कि वह चिकित्साकी एक-एक शाखामें इतनी उन्नति करते चले जा रहे हैं जिसका कोई अन्त नहीं। औषधियोंके उस सूक्ष्म गुणभागको उनके भीतरसे निकाल लिया जिसको हम आजतक अचिन्त्य ही कहते व मानते चले आये थे। औषधनिर्माणकी वह रसाय-निक पद्धति ढूँढ़ निकाली कि इच्छित वर्ण व गुणके एक-एक यौगिक जितनी मात्रामें चाहें बना लेते हैं उन्हींके सामने हमारी यह दशा है कि दस बार एक भस्म, एक रसको बनाते हैं तो दस बार ही उसका रूप गुण भिन्न बनता है पर कभी-कभी यदि वही वस्तु अच्छी बन जाय तो जीवनभर उस विशेषताका गुण गाते रहते हैं कि अमुक समयपर एकबार अमुक भस्म ऐसी बन गयी, ऐसी गुणदायी निकली कि वैसी फिर न बनी। हम उस बननेके कारणको खोजनेकी चेष्टा नहीं करते, उसका कृतपरिचय विज्ञान प्राप्त नहीं करते। उसके गुणको ही सदा गाते रहते हैं। यह है हमारा विज्ञान।

जबतक हम प्राचीन विचार-शैलीको छोड़कर नयी विचारशैलीके अनुसार कृत-परिचय-ज्ञानको बढ़ानेकी ओर कदम नहीं उठाते, कदापि उन्नति नहीं कर सकते। कोई समय था जब कि संसार हमारा अनुकरण कर रहा था हमारे पीछे लगकर चल रहा था। अब यह समय है कि हमें उनका अनुकरण करना चाहिये, हमें उन जैसी ही उन्नतिके काम करने चाहिये। जापान जिसकी शक्ति आज एक शताब्दी पूर्व कुछ न थी, जिसको एक शताब्दी पूर्व कोई जानता न था। वह जापान प्रगतिशील संसारके पीछे ही नहीं चला, उन विज्ञान महारथियोंका उसने अनुकरण ही नहीं किया, बल्कि उसने इस मार्गपर इतनी तेजीसे अपना अधिकार कर लिया कि आज समस्त अग्रणीय देश उसके पीछे लग लिये हैं। उसकी इस तेज चालने अनुकरणके प्रवाहको उलट दिया है।

हमें अब अपनी प्राचीन मान प्रतिष्ठाको सदा अपने सामने नहीं रखना चाहिये, हमें दूसरोंसे सीखनेमें शर्म नहीं आनी चाहिये। बल्कि खुले दिल—शरम छोड़कर—उतने ज्ञान-विज्ञानको जितनी जल्दी हो अपना लेना चाहिये जितना कि संसारमें बढ़ चुका, या जितना दूसरोंके पास विद्यमान है। जबतक हम ऐसा नहीं करते न हम स्वाव-लम्बी बन सकते हैं, न देश। हमारा कल्याण ही इसीमें है कि विद्यमान ज्ञानको प्राप्तकर उसको विज्ञानमें परिणत करें, जभी हमारा कल्याण होगा और किसी तरह नहीं।

पदार्थ-विज्ञान

वैक्रान्त क्या है ?

[ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

आज कई वर्षोंसे वैक्रान्तपर विवाद होता चला आ रहा है, अभी, शिकारपुर (सिन्ध)में होनेवाले अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलनके अवसरपर—रस-सम्भाषा-परिषत्में—कुछ विवाद हुआ, कुछ वैद्य कहते हैं कि इस समय तुरमली Tourmaline नामसे जो वस्तु प्रचलित है, जिसको व्यवहारमें कच्चा हीरा भी कहते हैं वह प्राचीन कालका वैक्रान्त है। कुछ वैद्य बिल्लौर Quartz नामक द्रव्यको वैक्रान्त मानते हैं। यह दो पक्षके व्यक्ति हैं जिनका बहुत समयसे विवाद चला आ रहा है। इसमें देखने और खोजनेके लायक बात यह है कि इन दोनोंमेंसे कौनसी वस्तु थी जिसको प्राचीन ग्रन्थकारोंने वैक्रान्त माना था।

हमने १९२७के आयुर्वेद-विज्ञानमें हीरा और वैक्रान्त नामसे एक विस्तृत लेख दिया था; वहाँ यह सप्रमाण बतलाया गया था कि वैक्रान्त आधुनिक समयका बिल्लौर ही है। इस समय हम उसी विषयपर पुनः अपने स्पष्ट विचार रखते हैं, आशा है प्रत्येक वैद्य इसपर अच्छी तरह विचार करेगा।

वैक्रान्तका उपयोग—वैक्रान्तको जाननेके लिये सबसे पहले विचारणीय बात हमारे सामने यह आती है कि वैक्रान्तका उपयोग कहाँ-कहाँपर किस-किस कामके लिये आया है ? और कैसे आया है ? जब हम इसको जान लेंगे तो फिर उसकी असलियतको मालूम करना कठिन न होगा। प्रत्येक वैद्य अच्छी तरहसे जानता है कि हमारी आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति दो प्रकारकी है। एक बनौषध, दूसरी रस। यह भी किसीसे छिपा नहीं कि रस-चिकित्सा-पद्धतिका जन्म रस-वादके कारण हुआ। रस-वादने ही देह-वाद (रसोंका देहपर उपयोग) को जन्म दिया। हमारे प्राचीन रसवादका मुख्य विषय था—हीन धातुओंसे उच्च मूल्यकी धातुओंका बनाना। अर्थात् कीमियागरी। इस रसवादमें पारा, गन्धक, हरताल, सिंगरारु, मोती पन्ना आदि सैकड़ों चीज़ोंका उपयोग हुआ है। हीरा भी जो एक उच्च मूल्यकी वस्तु है उसका भी अनेक स्थानोंपर—सोना बनानेके अर्थ—उपयोग आया है। उन्हीं स्थानोंपर ग्रन्थकारोंने लिखते-लिखते यह भी लिखा है कि "वज्राभावेतु वैक्रान्ते।" जहाँ हीरा न मिले वहाँ वैक्रान्त डालना। यही नहीं बल्कि रसार्णवमें यहाँतक कहा गया है कि—

"वैक्रान्तो वज्रवत् ज्ञेयोतान्नकार्या विचारणा।"

अर्थात् वैक्रान्तको हीराके तुल्य जानो। यहाँपर पहले हमारे सामने विचारणीय बात यह आती है कि हीराके स्थानपर वैक्रान्तका उपयोग क्यों आया ? बहुतसे व्यक्ति शायद इस बातकी तहतक न पहुँच पाये हों। वास्तवमें रसवादका मुख्य उद्देश्य था—अल्पहीन धातुओंसे मूल्यवान् उत्तम धातुओंका बनाना। उसमें जिन व्यक्तियोंने हीरा नामक रत्नका उपयोग किया था वह या तो इसके उपयोग करनेपर उससे कोई अच्छी धातु नहीं बना पाये, अथवा बनी भी होगी तो—जितना मूल्य हीरापर खर्च करते थे उतनी उससे आय न हुई होगी। इसीलिये उन्हें हीरा-तुल्य गुणवाणी वस्तुको ढूँढनेकी आवश्यकता हुई। हमारा रस-वाद एक प्रकारका व्यवसाय था, और वह व्यवसाय था अल्पमूल्यकी धातुओंको उच्चमूल्यकी धातुमें परिणत करके बेचना। परन्तु, किसी व्यापारमें काफी पूँजी व परिश्रम लगाकर उससे चार पैसे न बचें - पूँजीका व परिश्रमका मूल्य न निकले—तो हम उस कामको कभी न करेंगे। ठीक यही बात हीराके उपयोगमें लागू थी। पूर्व-कालमें हीरा सोनेसे कई गुना महँगी चीज थी, आज भी है। उस समयके कीमियागर सब धनपति तो थे ही नहीं, न हो सकते हैं। यह व्यवसाय वही व्यक्ति कर रहे थे जो थोड़ी पूँजी व परिश्रमसे अधिक कमाना चाहते थे बल्कि "हल्दी लगे न फिटकरी रंग चोखा आवे।" की कहावतको चरितार्थ करनेवाले ही अधिक व्यक्ति थे। इसीलिये हीरातुल्य गुणवाली-

वस्तुकी खोज करते रहे, उसीके परिणामस्वरूप उन्हें वैक्रान्त मिला। और वह इसका उपयोग कीमियागरीमें करने लगे।

वैक्रान्तका उपयोग कबसे है?—वैक्रान्तका उपयोग नया नहीं, बल्कि, उतना ही प्राचीन ज्ञात होता है जितना कीमियागरी या रसायन-वादका क्रय। इतना होते हुए भी यह ज्ञात होता है कि पूर्व-कालमें यह दुर्लभ था, या कठिनतासे मिलता था।

इस समय जितने भी प्राचीन रसायन-वादके प्राप्त-ग्रन्थ हैं उन सभोंमें रसार्णव सर्व-प्राचीन है, ऐसा डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र रायका मत है। हम भी इसको कई कारणोंसे कुछ अंशोंमें स्वीकार करते हैं। इस ग्रन्थमें जब हम वैक्रान्त-की प्राप्तिके स्थानको ढूँढते हैं तो वहाँ लिखा मिलता है कि—

"विन्ध्यस्य दक्षिणेचास्ति उत्तरेनास्ति सर्वथा," वैक्रान्त विन्ध्याचल पर्वतके दक्षिणभागोंमें होता है उत्तर-की ओर बिलकुल नहीं। यहाँ उत्तरसे अभिप्राय विन्ध्या-चलसे उत्तरके प्रान्तोंका है। परन्तु इसके बहुत पश्चात् वाग्भट उक्त प्रमाणका खण्डन करते हुए रसाल-समुच्चय नामक अपने ग्रन्थमें लिखते हैं "विन्ध्यस्यदक्षिणेऽस्ति ह्युत्तरेवाऽस्तिसर्वतः," वैक्रान्त विन्ध्याचलके दक्षिण-उत्तर सब जगह होता है। अर्थात्—यह भारतके और प्रान्तोंमें भी होता है। इस प्रमाणसे पता चलता है कि पीछे आकर यह हर स्थानमें मिलने लगा। और यह इतनी अधिकतासे मिलने लगा कि लोगोंको इसके (बिल्लौरके) वैक्रान्त होनेमें संशय हो गया। यह कहावत सत्य है कि आँखके बहुत समीप वस्तुके आनेपर भ्रम हो जाता है। खैर! अब हमको इस बातपर विचार करना है कि हीराके अभावमें जिस वैक्रान्तका उपयोग हुआ है वह कौन-सा है?

हमारे सामने इस समय वैक्रान्तके सम्बन्धमें दो मत पाये जाते हैं एक वह जो तुरमलीको वैक्रान्त कहता है दूसरा वह जो बिल्लौरको वैक्रान्त मानता है। इन दोनोंमेंसे कौनसा वैक्रान्त हो सकता, या है, यह इस लेखका मुख्य विवेच्य-विषय है।

इसकी स्थितिको पानेके लिये सबसे प्रथम हमें यह खोजना चाहिये कि पूर्व-कालमें तुरमली कहाँ-कहाँ से निक-लती थी तथा इस समय कहाँ-कहाँसे निकलती है। इसी प्रकार बिल्लौर कहाँ-कहाँसे निकलता था और इस समय कहाँ-कहाँसे निकलकर आता है। इसके पश्चात् इन दोनोंके रूप, गुण, स्वभावको देखना चाहिये कि किस-किसके रूप, गुण, स्वभाव हीरेसे अधिक मिलते हैं।

तुरमलीके उत्पत्ति-स्थान—तुरमलीको उपरत्न कहा जाता है। यह पूर्व-कालमें कहाँ-कहाँसे आता था और इस समय कहाँ-कहाँ मिलता है? इस बातकी खोज की जाय तो पता चलता है कि भारतमें इसकी उत्पत्तिके दो-तीन ही स्थल मिलते हैं, एक काश्मीर प्रान्तका पदर स्थान दूसरा जंगस्कर है। इससे भिन्न विहारके हजारीबाग नामक स्थान-में जहाँ अभ्रककी खानें हैं, वहाँ भी मिलता है। इससे भिन्न ब्रह्मदेशमें भी अच्छी तुरमली निकलती है। पर इस देशकी खानें प्राचीन नहीं। कावेरी नदीकी रेतमें भी इसके कभी-कभी टुकड़े मिले हैं। कोई खान नहीं। इससे ज्ञात होता है कि तुरमलीकी प्राप्तिके प्राचीन स्थान मुख्य काश्मीर और गौण हजारीबाग थे। जौहरियोंसे पता चलता है कि प्राचीनकालमें जो तुरमली काश्मीरसे आती थी वही उत्तम चमक-दमकयुक्त होती थी। बिहारकी निकृष्ट थी। इस समय भी यही बात देखी जाती है।

भारतीय तुरमलीका रंग-रूप—उस तरह तो तुरमली काली, लाल, नीली, हरी, पीली, पिंगल, गुलाबी, मोतिया, धानी कई प्रकारकी देखी जाती है। परन्तु, जो काश्मीर प्रान्तसे आती है वह बहुधा हरी, धानी, नीलेवर्ण-की ही होती है। इसी प्रकार हजारीबागमें प्राप्त होनेवाली तुरमलीका वर्ण भी हरा, नीला ही होता है। कहीं-कहीं पिंगल-वर्णकी भी मिली है। इससे भिन्न और वर्णकी इस देशमें नहीं देखी गयी। हाँ, ब्रह्मामें कई वर्णकी निकलती है। फिर भी शुभ्र नहीं मिलती।

तुरमलीकी बाह्य-बनावट—तुरमलीके मैने जितने भी नमूने देखे हैं सब टुकड़े ही थे, हाँ, कोई-कोई पहलूदार भी था। इसके पहलू प्रायः कृत्रिम रीतिसे खरादकर ही बनाये जाते हैं। काश्मीरसे आनेवाली तुरमलीमें कुछ-कुछ षट् पहलू होते हैं पर निश्चित स्पष्ट षट् पहलू, अष्ट पहलू नहीं देखे जाते।

तुरमलीकी रसायनिक-रचना—तुरमली क्या चीज

है, इसकी तात्विक रचना कैसी है ? इसका पूर्व-कालमें बहुत कम अनुसन्धान हुआ था। इस समय आकर इसका अच्छी तरह तात्विक विश्लेषण किया जा सका है। जिससे ज्ञात हुआ है कि भिन्न-भिन्न वर्णकी तुरमलीमें कुछ एक आध तत्वोंका फेर-फार हुआ है तथापि मुख्य इसमें निम्न-लिखित तत्व पाये जाते हैं। यथा—माणिक्यम्, स्फटिकम् शैलिका टंकणिका और ओपजन। इनका संगठन निम्नप्रकारसे हुआ है – (मा$_९$ (टंओ$_२$) (शै ओ$_४$)$_२$) हजारीबागकी खानसे प्राप्त तुरमलीमें टंकण ओपिद्के स्थानपर स्फटिक ओपिद होता है। उक्त सूत्रकी तुरमली प्रायः रक्त वर्ण या गुलाबी पिंगलवर्णकी ही होती हैं, और यही हमारे देशमें होती है। तुरमलीको शैलिकाका ही एक यौगिक माना जाता है। और इसको शैलिका वंशमें ही स्थान दिया गया है।

बिल्लौरके उत्पत्तिस्थान--बिल्लौरको स्फटिकमणि भी कहते हैं। यह काश्मीर, कुल्लू, शिमला, स्पित्ती आदि उत्तरीय प्रान्तोंमें पाया जाता है इससे भिन्न सतपुड़ा पर्वतश्रेणी, विन्ध्याचल पर्वतश्रेणीके उत्तर, दक्षिण हरएक तरफ मिलता है। मैंने स्वयम् इसे भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें देखा है। बिल्लौर काश्मीर और विन्ध्याचल पर्वत-श्रेणीसे काफी समयसे निकलता चला आया है।

बिल्लौरका रंग-रूप--बिलौर प्रायः काँचवत् शुभ्र पारदर्शक होता है। जिन खानोंसे या जिन स्थानोंसे शुभ्र बिल्लौर मिलता है वहींपर दूधिया, रंगदार बिल्लौर भी होता है। हमने काला, गुलाबी, हरा, भूरा, बैंगनी, धानी आदि कई प्रकारका देखा है। प्रत्येक वर्णका बिल्लौर हर प्रान्तमें थोड़ा बहुत पाया जाता है। पर साफ-सफेद, दूधिया तो बहुतायतसे मिलता है।

बिल्लौरकी बनावट—प्रत्येक वर्णके बिल्लौरकी बनावट प्रायः पहलूदार होती है। उन्नत भाग प्रायः षट्पहलू, अष्टपहलू होता है, तल भाग जो किसी बिल्लौरी पत्थरसे जुड़ा रहता है, बिना पहलू बेडौल भी होता है। इसके छोटे-छोटे स्वच्छ षट्पहलू, अष्टपहलुओंका रूप हीरेकी कनियोंसे मिलता है, धूपमें वैसा ही चमकता है जैसा हीरा।

बिल्लौरकी रसायनिक रचना—बिल्लौरकी रसायनिक रचनाका भी पता इस नव्ययुगमें ही आकर हुआ है। यह सिलकनका प्रधान ओषिद है और इसका संगठन-

सूत्र निम्न है (शिओ$_२$) अर्थात् (SiO_2)। जिस शैलिक तत्वसे पत्थर, चूना, बालू आदि इस पृथ्वीके मुख्य-मुख्य अंग बने हैं उसी तत्वके पृथ्वीगर्भमें भारी दवाव और उत्तापके कारण ओपजन नामक तत्वसे संयोग पाकर बिल्लौर बना है।
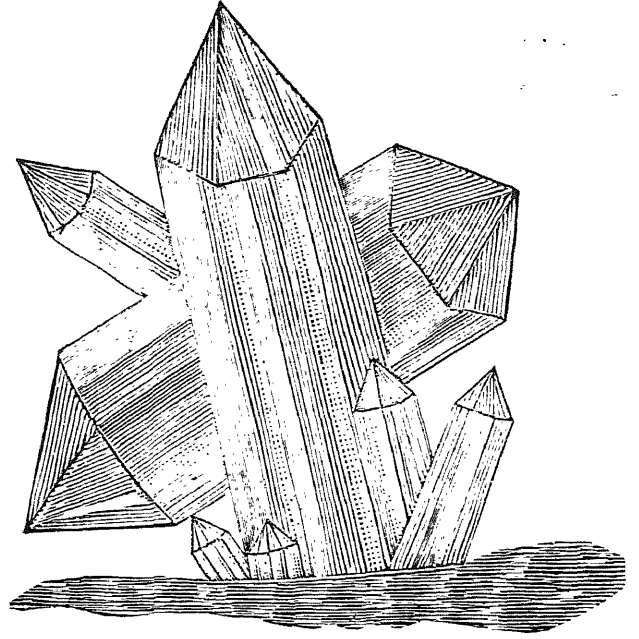
कुछ हीरेका वर्णन

यहाँपर हीराकी उत्पत्ति आदिका साधारण वर्णन दे देना अप्रासंगिक न होगा।

हीराकी उत्पत्तिके स्थान—हीरा इस भारत-भूमिमें उत्पन्न होनेवाले समस्त रत्नोंमें एक है। हीरेके लिये भारत-भूमि संसार विख्यात है। प्राचीन समयके पन्नास्टेट, सम्बलपुर, कर्नूल आदि अनेक स्थान ऐसे थे जिनमें अच्छे-अच्छे हीरे निकल चुके हैं। और आज भी कहीं-न-कहीं निकाले ही जाते हैं।

हीराका रंगरूप—हमारे देशकी प्राचीन खानोंसे प्राप्त होनेवाले हीरे प्रायः स्फटिकवत् स्वच्छ शुभ्र हुआ करते थे। कहीं कहींके हीरे कुछ वर्णयुक्त भी देखे गये हैं। उस तरह हीरा नीला, भूरा, श्याम बैंगनी, सरदई, पिंगल, कपिल, अरुण आदि अनेक रंगरूपका देखा गया है।

हीरेकी बनावट—प्रकृतिमें हीरा प्रायः षट्पहलू, अष्टपहलूयुक्त या डली (कनी) के रूपमें पाया जाता

है। जिसपर भी वे कुछ-न-कुछ पहलूयुक्त होते हैं। कुछ हीरे गोल भी पाये गये हैं।

हीरेकी रसायनिक रचना--हीरेकी रसायनिक रचनाका ज्ञान भी इसी युगके विद्यावलका परिणाम है। पूर्व-कालमें हीरेकी दृढ़ता व कठोरताको देखकर लोग समझते थे कि यह कोई अत्यन्त कठोर पाषाणनिर्मित चीज है। इसी कारण इसमें कठोरता है। वास्तवमें बात इसके बिलकुल विपरीत देखी गयी, हीरेका मौलिक तत्त्व ऐसा व्यापक और सरल तत्त्व मिला जोवि द्वानोंके लिये तृणकी ओट पहाड़ बना रहा। पूर्व-कालमें कोई व्यक्ति किसी दार्शनिक पंडितसे कह देता कि हीरा तो कोयलासे उत्पन्न होनेवाली चीज है, और कोयला या कज्जल तत्त्व है, तो वह दार्शनिक उस कहनेवालेका अवश्य ही परिहास उड़ाता। आज भी कई प्राचीन विचारके व्यक्ति इस कथनकी हँसी उड़ाते देखे भी जाते हैं। परन्तु, इस हँसीमें उनकी अज्ञानताकी ही झलक दिखायी दे जाती है। वास्तवमें हीरा कोयलाका ही एक रूप है। जो त्रिकालमें अपना रूप नहीं बदल सकता। कई व्यक्ति कहेंगे कि कज्जल तो काला होता है, और उसकी श्यामतामें सफेदीका क्या काम? सफेद तो काला हो जाता है पर काली कमलीपर भी कभी रंग चढ़ सकता है? पाठको! यह युक्तियाँ प्रकृतिकी विशेषताओंमें बाधा नहीं डाल सकतीं, न यह युक्तियाँ नियम ही बन सकती हैं।

कोयलासे हीरा—जब वैज्ञानिकोंको इस बातका बोध हुआ कि शुद्ध कज्जल ही हीरा है तो वह इस बातको जाननेकी धुनमें लगे कि प्रकृति कज्जलसे हीरा किस प्रकार बनाती है, क्योंकि इस रहस्यके ज्ञात होते ही उन्हें वह नुसखा हाथ लगता था, जो कीमियागरीवालोंको आजतक नहीं लगा। वह इच्छानुसार लकड़ी या पत्थरके कोयलेसे हीरा बना सकते थे। इस नुसखेके अनुसन्धानमें वैज्ञानिकोंको ज्ञात हुआ कि यह काम आसान नहीं, बहुत कठिन है। फिर भी कई वैज्ञानिक कृत्रिम रीतिसे छोटे-छोटे हीरे बनानेमें समर्थ हो ही गये। जिन्होंने कृत्रिम विधिद्वारा कोयलेको हीरेमें परिणत करना चाहा उन्हें अधिक कृतकार्यता इसलिये नहीं मिली कि कज्जलपर प्रकृतिगर्भमें जितना उत्ताप व दबाव मिलता था वह उतना नहीं डाल सके। प्रकृतिगर्भमें कज्जल जभी हीरेके रूपमें परिणत हो सकता है जब उसपर चारों ओरसे हजारों टनका दबाव पड़े और साथ-साथ में इस दबावका भारी उत्ताप भी वहाँ विद्यमान रहे। ऐसी दशामें ही कोयलेको कण उस भयंकर उत्तापमें न जलकर विशेष ठोस रूपमें आ जाते हैं। अथवा यों समझिये कि विशेष उत्ताप व दबावके कारण ही कोयलेकी श्यामता जाती रहती है और वह शुभ्रवर्ण बन जाता है। जिस प्रकार भारी दबाव व उत्तापमें पड़कर शैलिकाके कण बिल्लौरके रूपमें आ जाते हैं ठीक इसी प्रकार कज्जलके कण हीरेके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इस बातमें हीरेसे बिल्लौरकी पूर्ण समता है, तुरमलीकी नहीं। हीरेकी गर्भयोनि व गर्भकालिक स्थितिमें तथा बिल्लौरकी गर्भयोनि व गर्भकालिक स्थितिमें कोई अधिक अन्तर नहीं। इसीलिये बिल्लौर हीरेके भौतिक गुण, स्वभावोंसे बहुत कुछ समानता रखता है। हम इसकी एक सारणी देते हैं।

हीरा, बिल्लौर और तुरमलीके भौतिक रूप और गुण

	हीरा	बिल्लौर	तुरमली
रचना	षट्पहलू, अष्टपहलू, द्वादशपहलू।	षट्पहलू, अष्टपहलू, द्वादशपहलू।	कोई षट्पहलू, प्रायः कणरूप।
प्रकार वर्ण	स्वच्छ निर्मल स्फटिकाभ, दूधिया, सरदई, कहरवी, पीत, अरुण, भूरा, नीला, बैंगनी, हरा, धानी।	स्वच्छ निर्मल पारदर्शी, श्वेत, दूधिया सरदई, कहरवी, अरुण, भूरा, नीला, बैंगनी, काला, हरा, धानी आदि।	लाल, पिंगल, कपिल, भूरा, मटमैला, पीला, अरुण।
भौतिक गुण	प्रकाश प्रतिफलक, पारदर्शक, तीव्र चमक, दमक, व प्रकाश विभाजक अत्यन्त कठोर, पर भंजनशील, खरोचन न पड़ना, १५०० शतांशके तपनतक सह्यशक्ति।	प्रकाश प्रति-फलक, पारदर्शक तीव्र चमक, दमक व प्रकाश विभाजक अत्यंत कठोर, भंजनशील खरोचन न पड़ना, २००० शतांश उत्तापकी सह्यशक्ति	प्रकाश प्रतिफलक न्यून, तथा प्रकाश विभाजक शक्तिसे शून्य, मंद कांतियुक्त, भंजनशील साधारण कठोर अग्निकी सह्य शक्ति साधारण, खरोचनके चिन्ह पड़ना।

त्रिदोष-मीमांसा और वैद्योंको चैलेंज

आयुर्वेदका त्रिदोष-सिद्धान्त वैद्यमात्रके लिये वह मूल-सूत्र बतलाया जाता है कि जिसके आधारपर कहते हैं—समस्त आयुर्वेदकी चिकित्सापद्धति अवलम्बित है। त्रिदोष-सिद्धान्त वास्तवमें कोई मूलसत्तायुक्त वस्तु है, या नहीं इस बातपर मैं अनेक वर्षोंसे विचार करता चला आ रहा हूँ। पूर्वकालमें किसी बातकी सचाईको जाननेका केवल मात्र एक ही साधन था तर्क, या शास्त्रप्रमाण। परन्तु इस समय एक और इससे भिन्न साधन उपलब्ध हो रहा

उपरोक्त सारणीसे स्पष्ट है कि बिल्लौर हीरेसे जितना भौतिक गुणोंमें समीप है उतना तुरमली नहीं। पूर्वकालमें जिन व्यक्तियोंने हीरेके तुल्य गुण, स्वभावकी जिस वस्तुको खोजा था उसमें उन्होंने भौतिक गुण ही तो देखे थे। प्राचीन ज्ञान जितना भौतिक गुणोंपर अवलम्बित था उतना रसायनिक गुणोंपर नहीं। क्योंकि भौतिक गुणोंकी परीक्षा तो हम अपनी भौतिक इन्द्रियोंद्वारा कर लेते थे। पर रसायनिक गुणोंके जाननेके उनके पास अच्छे साधन नहीं थे। इसीलिये रसायनिक गुण उनकी परीक्षाके मुख्य साधन न थे।

उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष-(१) पहली बात तो यह है कि शास्त्रोंने हीराके अभावमें वैक्रान्तको लेना लिखा है। जिस वैक्रान्तका शास्त्रकार उल्लेख करते हैं। वह बतलाते हैं कि वैक्रान्त—"षट् कोणो वसु कोण कोपि मसृणो" वैक्रान्त छः पहलू, आठ पहलूका चिकना चमकदार होता है। इसी प्रकार रसरत्न-समुच्चयमें लिखा है कि,

"द्वादशौ चाष्ट फलकः षट कोणो मसृणो गुरुः।
शुद्ध मिश्रित वर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते॥"

वैक्रान्त बारह पहलू, आठ पहलू, छः पहलू चिकना, चमकीला, भारी, शुभ्र, स्फटिक रूप व अनेक वर्णका है। उपर्युक्त सारे लक्षण बिल्लौरमें पूरी तरह घटते हैं, तुरमलीमें नहीं घटते। तुरमली न तो अच्छी पहलूदार ही मिलती है, न वह शुभ्रवर्ण ही होती है।

(२) वैक्रान्तकी उत्पत्तिका जो स्थान शास्त्र बतलाता है, वह सब बिल्लौरके पाये जाते हैं। बिल्लौर आज भी जहाँ-तहाँ विन्ध्यकी पर्वतमालामें काफी मिलता है। तुरमलीको ढूँढ़ा जाय तो न इसके होनेका इतिहास साक्षी देता है न इस समय ही कोई पता चलता है।

(३) जिन-जिन भौतिक गुणोंमें बिल्लौर हीरेसे मेल खाता है तुरमली नहीं खाती। कई व्यक्ति कहेंगे कि तुरमली कच्चा हीरा जब कही जाती है तो यह हीरेके अधिक समीप ठहरी। कच्चा हीरा नाम रखनेसे तुरमली हीरा नहीं बन सकती न हीरेके तत्वसे वह बनी ही है। हीरेके तत्त्वसे वह उतनी ही दूर है, जितनी दूर बिल्लौर। कई व्यक्ति शंका करते हैं कि यह मान लिया जाय तुरमली वैक्रान्त नहीं। परन्तु, वैक्रान्त हीरेका समीपी द्रव्य होना चाहिये। ऐसा माना किस आधारपर जाय। वैक्रान्त हीरेका प्रतिनिधि है न कि कोई सजातीय पदार्थ, यह बात हीरे और वैक्रान्तभस्म बनानेके विभेदसे भी स्पष्ट हो जाती है। यदि वैक्रान्त हीरेका सजातीय होता तो इसके भस्म बनानेकी विधि भी वही होनी चाहिये थी जो हीरेकी है। पर ऐसा नहीं देखा जाता। हीरेके भस्म बनानेका और विधान है तो वैक्रान्तका इससे भिन्न और विधान। इस तरह वैक्रान्त हीरेका सजातीय द्रव्य न था बल्कि विजातीय था जो उसके अभावमें डाला गया। और वह कोई हो सकता है तो एक बिल्लौर ही हो सकता है अन्य नहीं।

क्या बिल्लौर काँच है? कई व्यक्ति बिल्लौरकी चमक-दमक देखकर इसे काँच समझते हैं यद्यपि कांच और बिल्लौरके मौलिक तत्त्वोंमें बहुत कुछ सामीप्य सम्बन्ध है, तथापि इनका संगठन बहुत ही विभिन्न है। काँचको कृत्रिम स्फटिक भी कहते हैं। बिल्लौरको प्राकृतिक स्फटिक। काँच साधारण अग्निपर बननेवाली चीज है तथा आसानीसे पिघल जाती है स्फटिक न कृत्रिम विधिसे आजतक बनी है न बन ही सकती है। यही नहीं इसका गलाना भी बड़ा कठिन है। और इसकी भस्म भी कठिनतासे बनती है। इसको कहीं-कहीं सच्चा काँच या स्फटिकमणि भी कहते हैं यह नाम बहुत पीछेके हैं। हमने जो युक्तियाँ बिल्लौरको वैक्रान्तके सिद्ध करनेमें दी हैं यह विचारणीय हैं। वे वैद्य जो इसके विपक्षी हैं उन्हें चाहिये कि अपने पक्षके समर्थनमें इससे भी प्रबल युक्तियाँ दें।

है जिसका नाम है वैज्ञानिक पद्धति। वैज्ञानिक पद्धति वह क्रियात्मक पद्धति है जहाँ आकर तर्क, वितण्डाका अन्त हो जाता है। कहावत प्रसिद्ध है "प्रत्यक्षे किम् प्रमाणम्" हमने त्रिदोष-सम्बन्धी विषयको समझनेके लिये शास्त्र-सम्मत बातोंपर तथा वैज्ञानिक विचारोंपर काफी विचार किया है। और इस विचारके पश्चात् जिस परिणामपर पहुँचे हैं वह यह है कि त्रिदोष कोई मूल सत्तात्मक वस्तु नहीं बल्कि वह कुछ शरीरमें, व रोगके समय तथा औषध गुण, प्रभावकालमें देखे जानेवाले कारणोंके लिये एक संकेत-मात्र निश्चित कर दिये गये हैं। इसी बातको हमने शास्त्रीय पक्ष तथा वैज्ञानिक विधि-विधानसे त्रिदोष-मीमांसा नामक पुस्तकमें अच्छी प्रकार बतलाया है।

इस विषयको हमने इस इच्छासे प्रेरित होकर वैद्योंके समक्ष रखा था कि वैद्योंद्वारा एक आयुर्वेदके गहन, गम्भीर विषयकी अच्छी प्रकार मीमांसा हो सकेगी।

त्रिदोष-सिद्धान्तकी सत्यतापर अनेक व्यक्तियोंने आजसे १५-२० वर्ष पूर्व ही संशय उत्पन्न किये थे, जिन आधारोंपर आजसे २० वर्ष पूर्व संशय उत्पन्न किये गये थे, वैद्योंकी ओरसे उनका कोई समाधानकारक व संतोष-दायक उत्तर नहीं मिला। इसीलिये, वह संशय और बढ़ते गये। बढ़ते ही नहीं गये बल्कि उनमें ढूँढनेपर अनेक और भी संशयात्मक कारण मिलते ही चले गये और यह आन्दोलन जोर पकड़ता चला गया। यहाँतक कि प्रति वर्ष अखिल-भारतीय आयुर्वेद-सम्मेलनावसरोंपर भी काफी वाद-विवाद होने लग पड़ा। अन्तमें अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद-सम्मेलनने देखा कि दिनपर दिन त्रिदोष सम्बन्धी विवादकी अवस्था भयंकरसे भयंकर होती चली जा रही है तो नासिक-सम्मेलनावसरपर सम्मेलन-सम्मतिने यह निश्चित किया कि त्रिदोषकी स्थितिको दृढ़ करनेके लिये अन्य उपायोंसे काम लेना चाहिये। अन्तमें निश्चय हुआ कि त्रिदोष-सिद्धान्तको प्राचीन व अर्वाचीन सप्रमाणिक युक्तियोंसे सिद्ध करनेवालेको ५००) पुरस्कारकी घोषणा की जाय। तदनुसार इसके लिये कुछ नियम बनाये गये और ५००) पुरस्कारकी घोषणा कर दी गयी। इस बातको आज छ-सात वर्ष व्यतीत हो गये। परन्तु, शोकसे कहना पड़ता है कि सम्मेलनके पास त्रिदोष-पद्धतिके परिपोषक जितने भी लेख पहुँचे उनमें एक भी लेख वैद्य-सम्मेलनके सञ्चालकोंको पुरस्कारके योग्य प्रतीत न हुआ। इसीलिये ५ बर्षतक कोई भी पुरस्कार प्राप्तकर यशका भागी न बना। सम्मेलनके इतने प्रयत्न करनेपर भी जब त्रिदोष-सिद्धान्तकी पुष्टिका प्रयत्न निष्फलसा दिखायी देने लगा। तो कहते हैं बीकानेर-सम्मेलनावसरपर उक्त पुरस्कारको उत्साह-बर्द्धनार्थ कुछ लेखकोंके मध्य सौ-सौ दो-दो सौ रुपया करके वितरण कर दिया गया। उस समय मैं जेलमें था। जेलसे बाहर आते ही मैंने उक्त पुस्तक प्रकाशित कर सिन्ध शिकारपुरके अखिल-भारतीय आयुर्वेद-सम्मेलनावसरपर पहुँचकर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानोंके करकमलोंमें इस इच्छासे समर्पित की कि इस पुस्तकको पढ़कर--या तो त्रिदोष-सिद्धान्तकी डूबती हुई नय्याको पार लगावें, अथवा काल-चक्रकी प्रबल प्रहारों में पड़कर विनष्ट हो जानेवाली वस्तुके लिये शोक न करें।

जिस प्रकार सम्मेलनने त्रिदोष-सिद्धान्तको पुष्ट करनेवालेके लिये ५००) का पुरस्कार देना निश्चय किया था। इसी नीतिका मैंने भी अनुकरण किया। ५००) उस व्यक्तिको देनेका निश्चय किया—जो त्रिदोष-मीमांसाके दिये विषयका खण्डनकर - शरीरमें, रोग-कालमें वनस्पतियों के षट्रसोंमें त्रिदोषकी विद्यमानताका पूर्ण प्रमाण वैज्ञानिक-विधि-विधानसे देकर शास्त्र-सम्मत मतको पुष्ट कर दे। इस बातका निर्णय करनेके लिये तीन विद्वानों की मैंने एक समतिकी योजना की। इन विद्वानोंमेंसे एक तो डाक्टर प्रसादीलालजी झा, एल० एम० एस० तर्कभूषण हैं। आप लगातार ६ वर्षतक अखिल भारतीय आयुर्वेद-सम्मेलनके प्रधान मन्त्री रहकर आयुर्वेद-संसारकी जो सेवा-कर चुके हैं यह किसीसे छिपा नहीं। आप आयुर्वेदके परम भक्त हैं तथा ऋषिप्रणीत सिद्धान्तोंकी रक्षा करना आप अपना परम पुनीत धर्म समझते हैं। आप इस समय आयुर्वेद-विज्ञान-मीमांसा नामक एक भारी ग्रन्थ लिख-रहे हैं, जिसमें आयुर्वेदके प्रत्येक सिद्धान्तका आधुनिक विधि-विधानसे खूब जोरोंसे मण्डन किया गया है। दूसरे विद्वान् डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा एल० एम एस० सिविल सर्जन जौनपुर हैं। आपने "हमारे शरीरकी रचना" दो भाग तथा "स्वास्थ और रोग नामक" वृहद् ग्रन्थ लिखकर जो आयुर्वेद-संसारकी सेवा की है वह किसी वैद्यसे छिपी नहीं।

आपका "हमारे शरीरकी रचना" नामक ग्रन्थ विद्यापीठके पाठ्य ग्रन्थोंमें सम्मिलित है तथा आपको उक्त ग्रन्थपर १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हो चुका है। आप प्राच्य और पाश्चात्य दोनों चिकित्साके अच्छे मर्मज्ञ हैं। इसी प्रकार तीसरे विद्वान् डा० आसानन्दजी एम० वी० वी० एस० आयुर्वेदाचार्य हैं। आपकी लिखी "व्याधि-विज्ञान" नामक पुस्तक—डी० ए० वी० आयुर्वैदिक कालेजमें पढ़ायी जाती है। आप आयुर्वेदके त्रिदोष सिद्धान्तपर विशेष श्रद्धा रखते हैं। और प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों चिकित्साओंके अच्छे ज्ञाता हैं। उक्त योजनाकी घोषणा एक विज्ञापनद्वारा मैंने सम्मेलनावसरपर की थी और उक्त पुस्तक तथा विज्ञापनकी एक-एक प्रति समस्त वैद्यक-पत्रों तथा सामयिक साहित्यिक पत्रिकाओंको समालोचनार्थ भेजी थी परन्तु, शोकसे कहना पड़ता है आज छः मास व्यतीत हो रहे हैं किसी भी आयुर्वेद-प्रेमीमें यह साहस नहीं हुआ कि उक्त पुस्तककी पूर्ण समालोचना या खण्डन करके आयुर्वेदके मूल स्तम्भ त्रिदोष-सिद्धान्तकी डूबती हुई नय्याको पार लगानेमें आयुर्वेदकी कुछ सहायता करता।

वैद्य विद्वान् उक्त पुस्तकको पढ़कर किंकर्त्तव्य विमूढ़से हो रहे हैं। "अनुभूत योगमाला" तो वर्ष १२ अंक ६ में कहती है कि स्वामी हरिशरणानन्दने त्रिदोष-मीमांसा नामक पुस्तक लिखकर आयुर्वेदपर खुले शब्दोंमें ऐसा प्रहार किया है जिसे आयुर्वेद-प्रेमी कभी सहन नहीं कर सकते। वह कहती है— समस्त विद्वान् वैद्योंसे हमारा अनुरोध है कि इस पुस्तकको शीघ्रही मँगवाकर इसपर खूब ही कटाक्ष कर इसको जलवा दें वरना आयुर्वेदका नामोनिशान मिट जानेका भय है। उक्त मालाके सम्पादकने वैद्य विद्वानोंसे बड़े जोरदार शब्दोंमें अनुरोध किया है कि मालाद्वारा इस पुस्तककी खूब जोरदार आलोचना करें। परन्तु, अभीतक उस विचारेके पास एक भी समस्त पुस्तकपर लिखी समालोचना नहीं पहुँची।

इसी प्रकार "आयुर्वेद-संदेश" वर्ष ७ अंक ४ इसी असाढ़की संख्यामें उक्त पुस्तककी समालोचना न कर किसी कविराज उपेन्द्रनाथदास भिषगाचार्य प्रोफेसर आयुर्वैदिक एण्ड तिब्बिया कालेज देहलीका खुला चैलेंज प्रकाशित किया है। ऐसा ही एक चैलेञ्ज अनुभूत योगमालाकी उक्त संख्यामें कोई आयुर्वेद प्रेमी नवयुवक पं० शांडिल्य त्रिवेदी रिसर्च आयुर्वैदिक इंस्टीट्यूट काशी का भी है। इन दोनों चैलेंज-कर्त्ताओंने शास्त्रार्थ करनेके लिये मुझे आमन्त्रित किया है। और साथमें मुझे परामर्श दिया है कि यदि स्वामीजी ऐसे पुरुषोचित चैलेंजको स्वीकार करनेका साहस न करें तो अपनी पुस्तकके साथ कुछ घृत और हवन सामग्री मिलाकर उससे अग्निदेवको तृप्त कर देवें।

हम इन चैलेञ्जकर्त्ताओंसे कुछ पूछना चाहते हैं कि वह प्रथम बतलावें कि इस शास्त्रार्थसे कुछ आयुर्वेदका उपकार होगा? क्या इससे विनष्ट होता हुआ त्रिदोष-सिद्धान्त बच सकेगा? क्या इस प्रकारके शास्त्रार्थसे किसीकी समुत्थित शक्तिको दबाया जा सकता है? हरगिज नहीं।

आर्यसमाजी और सनातन-धर्मियोंके शास्त्रार्थ जगत्-प्रसिद्ध हैं। आर्यसमाजका जिस समय प्रादुर्भाव हुआ था उस समय सनातन धर्मियोंने इसे खूब ही शास्त्रार्थके लिये ललकारा था, स्थान-स्थानपर शास्त्रार्थ कर आर्य-समाजकी

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

क्या आयुर्वेद विज्ञान है? सच्ची वैज्ञानिक वृत्ति—वैज्ञानिकोंमें भी जातिभेद, वर्णभेद, साम्प्रदायिकता आदिके दूषण घुस आये हैं। यह मानव-स्वभाव है। चौदह बरसकी बात है कि जब हिन्दू-विश्वविद्यालयमें आयुर्वेद-कमिटीके संयोजकके नाते मैंने वैद्योंके साथ ही कई डाक्टरों, हकीमों और होमियोपैथोंको उक्त-समितिमें बुलाकर वहाँके वर्त्तमान आयुर्वेद-विभागका सम्मिलित संगठन करना चाहा तो कई डाक्टरोंको वैद्योंके साथ बैठकर विचार करनेमें भी आपत्ति हुई। ज्यों-त्यों करके जब यह असंगत बैठक हुई भी तो होमियोपैथीका नाम लेते ही कई डाक्टरोंकी त्योरियाँ चढ़ गयीं और कई तो ऐसी तथोक्त मूर्खताके विषयपर हँस पड़े। मेरी अपनी रायमें अल्लोपैथीकी चिकित्सा उतनी शुद्ध वैज्ञानिक नहीं कही जा सकती जितनी कि होमियो-पैथिक। होमियोपैथीमें रोगीपर प्रत्येक ओषधिके प्रभावका पूर्ण वैज्ञानिक अनुशीलन किया जाता है। साथ ही रोगीका भी पूर्ण परिशीलन किया जाता है। अल्लोपैथीमें इस तरहके अनुशीलनका बहुत थोड़ा प्रयत्न किया जाता है और वह भी सर्वथा अवैज्ञानिक। परन्तु अल्लोपैथसे बढ़कर डाक्टरीका अभिमानी भी मुश्किलसे मिलेगा।

सर जगदीशचन्द्रवसु आरंभमें कलकत्तेके प्रेसिडेंसी-कालिजमें भौतिकविज्ञानके आचार्य्य थे। जीवविज्ञान उनका विषय न था। परन्तु उन्होंने तबसे जीव-विज्ञान सम्बन्धी हजारों प्रयोग किये और सेंद्रिय प्राणियोंमें जीवनके विकास-के सम्बन्धमें सैकड़ों नयी परिकल्पनाएँ स्थापित कीं और प्रयोगोंसे उनकी सत्यता सिद्ध की। भौतिक और सेंद्रिय विज्ञानमें अभेद दिखाया। उन्हें रायल सोसायटीमें बीसों बरसतक गहरी लड़ाई लड़नी पड़ी और जब अनुसंधानके वैज्ञानिक चोरोंको उन्होंने पकड़ा तब लज्जित होकर रायल-सोसायटीके सदस्योंने उनका लोहा माना। सर रे लंकेस्टर सरीखे जीवविज्ञानी पसन्द नहीं करते थे कि एक भौतिक शास्त्री उनके विषयकी सीमाके भीतर घुसकर अपना अधि-कार दिखावे। परन्तु अन्तको उन्हें लाचार होना पड़ा। फिर भी वह संकीर्णता अबतक बाकी है। जीव-विज्ञानी सर जे० टामसनने एक पुस्तक लिखी है, Outline of Science. इसकी बड़े लंबे-चौड़े आठ-नौ सौ पृष्ठोंकी दो जिल्दोंमें कहीं सर जगदीशकी चर्चा नहीं है, यद्यपि उनके अनुसंधानोंकी जानकारीसे टामसनने पूरा लाभ उठाया है। सर पैट्रिक गेडीजने बोसकी जीवनी लिखी है। गेडीजकी जीवनीपर नोट देते हुए लाचार हो उन्होंने इस ग्रंथका नाम लिख दिया है। गेडीज जैसे जीवविज्ञानीने जिस वैज्ञानिक-

---

उठती हुई शक्तिको वह इस शास्त्रार्थसे विनष्ट करनेकी चेष्टा करते रहे जिसका परिणाम अग्निमें आहुतिवत् उलटा ही होता रहा, दिन-रात आर्यसमाजकी शक्ति बढ़ती चली गयी। शास्त्रार्थ करके जब आर्यसमाजकी शक्तिको सनातनी नहीं दबा सके तो आप सब वैद्य शास्त्रार्थ करके मेरी इस निर्भीक एवं सत्यपर अवलम्बित शक्तिको नहीं दबा सकते। आप सब तो परामर्श देते हैं कि इस पुस्तकको जला डालो। पुस्तक क्या पुस्तकके रचयिताको यदि आप सब जला डालनेका आयोजन कर लेंगे तब भी आप हमारी सत्यपर अटल शक्ति व कृतिको नष्ट नहीं कर सकते।

ईसाइयों और पोपोंके अत्याचारका शिकार गैलीलियो अवश्य हो गया पर उसकी कृति को—जो सत्यपर अवलंबित थी—आज भी उसके नामको उज्वल कर रही है। उसको कोई न मिटा सका।

आप सब वास्तवमें आयुर्वेद-प्रेमी हैं और हृदयसे आयुर्वेद-सिद्धान्तोंको सजीव बनाये रखना चाहते हैं तो आपको मैं यही परामर्श दूँगा कि आप सब अखिल-भारतीय आयुर्वेद-सम्मेलनकी संगठित शक्तिमें सम्मिलित होकर उसका विशेष अधिवेशन बुलाइये और उक्त विषयपर शांत चित्तसे खूब विचार करिये। वृथाके वितण्डावादसे आयुर्वेदका कभी कल्याण होनेका नहीं। आयुर्वेदके कल्याणका यही सबसे श्रेयस्कर मार्ग है कि आप सब सुसंगठित होकर आयुर्वेदके हानि-लाभकी बातोंपर विचार करिये और एक दूसरेका सहयोग प्राप्त करके—आयुर्वेदपर होनेवाले आक्षेपों-का मिलकर उत्तर दीजिये। इस समय इससे अधिक न लिखकर पुनः अन्य बातोंपर विचार करूँगा।—हरिशरणानन्द

की जीवनी लिखकर अपनेको धन्य माना, उसका नाम गेडीजकी जीवनीमें भी टामसनने बड़े संकोचसे दिया है। संकीर्णताकी हद हो गयी।

अभी सन् १९३२ की बात है कि लखनऊमें मेजर नायडूके सभापतित्वमें अखिल भारतीय मेडिकल कानफरेंस हुई थी। उसमें सभापतिकी आज्ञासे बुलन्दशहरके नेत्रके प्राकृतिक चिकित्सक डा० रघुबीरशरण अग्रवालने स्वाभाविक नेत्रचिकित्सापर एक निबन्ध पढ़ा। सम्मेलनमें उपस्थित डाक्टरोंने उसपर नितान्त सहानुभूति-रहित निरुत्साहकारी पक्षपातपूर्ण टीकाएँ कीं। उनकी बातचीतमें उस उदारताका लेश भी न था जो वैज्ञानिकोंमें सत्यान्वेषण के लिये होनी चाहिये और नये अनुसन्धानको स्वागत करनेका वह भाव न था जिसके बिना विज्ञानका प्रसार असंभव है। उन्हें उत्साहित करनेको किसीने एक शब्द भी कहनेकी सहृदयता न दिखायी। इसी तरहकी संकीर्णता वैद्योंमें भी देखी जाती है। निश्चय ही ये भाव विज्ञानके सर्वथा विपरीत हैं और सत्यज्ञानके लिये बुद्धिका द्वार बन्द करनेवाले हैं। **सच्चा वैज्ञानिक बहुत विनीत होता है, वह अपनी भारी अल्पज्ञताका ज्ञान रखता है। वह बहुत सतर्क रहता है, वह सत्य-वेषधारीमात्रको बिना जाँचे-बूझे अपने विज्ञान-मन्दिरमें घुसने नहीं देता। वह बड़ा उदार होता है, अनुभवकी कसौटीपर परखनेके लिये उसके निकट कोई बात तुच्छ नहीं होती। उसकी बुद्धिका द्वार सदा खुला रहता है।** वह खूब जानता है कि,

"पुराणमित्येव न साधुसर्वम् न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्"

आयुर्वेदमें रोगोत्पत्ति सम्बन्धी त्रिदोषका सिद्धान्त छहों रसोंके प्रभावके अनुसार ओषधियोंका चुनाव आदि और अल्लोपैथीमें भी रोगाणुओंद्वारा रोगकी उत्पत्ति और ओषधियोंका उन रोगाणुओंपर प्रयोग करके तदनुसार उनका चुनाव, सभी अनुभव मूलक धारणाएँ हैं। धारणाओंका रूप चाहें कितना ही बदलता रहे अनुभव तो स्थिर तथ्य हैं।

विज्ञान अनुभवजन्य ज्ञान है। इस परिभाषाके अन्तर्गत अल्लोपैथी, आयुर्वेद, होमियोपैथी, स्वाभाविक चिकित्सा आदि सभी चिकित्सा-विधियोंका समावेश होता है। विज्ञानमें इन सभी विषयोंपर पहलेसे लेख निकलते रहे हैं। आज हम आयुर्वेद-विज्ञानका स्तंभ अलग करके इस विषयको वही महत्त्व दे रहे हैं जो उसे बहुत पहलेसे मिल चुका रहना चाहिये था। इस स्तंभमें सभी चिकित्सा-विधियोंका स्वागत होगा। सबके वैज्ञानिक पहलूपर स्वतंत्रतासे विचार किया जायगा। —रा० गौड़

विज्ञानकी नीति—राष्ट्रभाषामें विज्ञानके प्रचारके दो ही उद्देश्य हो सकते हैं ज्ञानकी वृद्धि और व्यवहारसे लाभ। दोनों उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये विज्ञान आरंभसे ही यत्नशील रहा है। परन्तु साधनाभावसे आजतक वह अपने दूसरे उद्देश्यकी पूर्त्तिमें सफल नहीं हो सका है। हम जो कुछ विज्ञानमें दें, उसका अधिक नहीं तो आधा अंश तो ऐसा होना ही चाहिये कि तदनुसार व्यवहारद्वारा उस ज्ञानको पाठक सिक्कोंमें भँजा सकें। हमको इस मार्गमें जो कठिनाइयाँ हैं उनका संक्षेपमें यहाँ दिग्दर्शन कर देते हैं। ऐसे लेख या पुस्तकें जिनसे ठीक प्रकारकी शिक्षा मिल सके वे ही लिख सकते हैं जिन्हें अपना अनुभव हो। देशमें ऐसे अनुभवी कहाँ हैं? जो सच्चे कारीगर हैं, वे प्रायः लिख नहीं सकते। जिन वैज्ञानिकोंको शिक्षाका ढंग आता है वे इन कारीगरोंसे ठीक परिशीलन करके उन विषयोंको लिखें तो वास्तवमें ठीक पुस्तिकाएँ लिखी जा सकती हैं। परन्तु इसके लिये श्रम, समय और धनकी आवश्यकता है। लेख या पोथी लिखनेवाले पुरस्कृत किये जायँ तब संभव है। ये काम अवैतनिक या धर्म्मार्थ होने कठिन हैं। बढ़ईगीरीपर डा० गोरखप्रसादजीके लेख जो निकल रहे हैं, विज्ञानमें निकलनेवाले सभी लेखोंकी तरह हमें धर्मार्थ ही मिले हैं। डाक्टर महोदय तो परिषत्‌के परिवारमें हैं। सौभाग्यवश जिस कलाकी शिक्षा देते हैं उसमें कुशल हैं। प्रोफेसर हैं, शिक्षाका ढंग भी मालूम है। परन्तु फिर भी चित्रोंमें कितना खर्च पड़ता है, देखकर अनुमान किया जा सकता है। इनमेंसे आधेसे अधिक ब्लाकोंके लिये भी हम लेखकके ही कृतज्ञ हैं। निदान, यह काम व्ययसाध्य है, और परिषत् पूंजीवाली संस्था नहीं। चन्देके लिये हम प्रयत्न नहीं करते। देशके धनीमानी देशकी आवश्यकता समझकर स्वयं आगे आवें और कुछ त्याग करके, कुछ अपनी व्यापार-बुद्धि लगाकर इस कामको हाथमें लें, तो देशके लिये इससे बढ़कर हितकर कोई काम नहीं है।

'होके सायल हाथ फैलाते नहीं, हिम्मते अहले करम हैं देखते।'

अन्यत्र हमने एक औद्योगिक पुस्तकमालाकी योजना दी है। उससे जान पड़ेगा कि ऐसी कितनी बातें हम लेखों और पुस्तकोंद्वारा सिखा सकते हैं जिनसे घरेलू उद्योग-धंधा ढूढ़नेवालोंको खासी मदद मिल सकती है। पं० ओंकारनाथ जीने अंगेजीकी जिन पुस्तकमालाओंकी चर्चा की है उनसे भी सहायता ली जा सकती है।

विज्ञानके कृपालु लेखकोंसे भी हमारी प्रार्थना है कि विज्ञानके उद्देश्यके इस पहलूपर ध्यान देकर इस तरहके लेख हमें देनेकी कृपा करें।

शिक्षा-पद्धति बदले बिना काम न चलेगा

हमारे देशकी शिक्षा-पद्धति शास्त्रीय है, अर्थकरी नहीं है। थोड़ा लिखना-पढ़ना और हिसाब सिखाकर बालकको या तो किसानीके काममें या किसी घरेलू उद्योग-धंधेमें लगा ही देना चाहिये, जिसमें वह शीघ्र ही उत्तम किसान या मजूर बन जाय। जब अठारह-बीस बरसकी अवस्था हो जाय तब बरस छः महीनेमें उसकी रुचि और व्यवसायके अनुकूल उदार शिक्षा इतनी अधिक दी जानी संभव है जितनी कि १०-११ बरसकी कच्ची उमरमें देनेसे चार-छ बरस लग जाते हैं। सर्वसाधारणकी इस प्रकार बड़ी उत्तम और व्यापक शिक्षा हो सकती है। इस पद्धतिपर डेनमार्क-में काम हो चुका है और हो रहा है और बड़ी सफलता मिली है। राष्ट्रके जीवन, समय, श्रम, शक्ति और धनकी इसमें भारी बचत है। हमारे देशमें दसमें नौ आदमी किसान और मजूर हैं। परन्तु जिस शिक्षा-पद्धतिका प्रचार है वह मध्यवर्ग और धनवानोंके लिये अधिक उपयुक्त है और मध्यवर्गके लिये भी वह नौकरियों में प्रवेश पानेभरके कामकी दी जाती है। प्रवेशसे अधिक उसका उपयोग नहीं है। और उसपर कठिनाई यह है कि नौकरियाँ बहुत थोड़ी हैं, उम्मेदवार बहुत। दस उम्मेदवारोंमें नौ तो नाउम्मेद ही रह जाते हैं। आर्थिक फलकी यह दशा है। शिक्षाकी परि-पाटी विद्वान बनानेवाली पड़ी हुई है, परन्तु प्रकृत विद्वान् कम ही, क्वचित् ही, निकलते हैं। यही स्वाभाविक भी है। शेष बड़ी भारी संख्यामें ग्रंथ-चुम्बक पैदा हो जाते हैं, जो अर्थ-धर्म्म-काम-मोक्ष किसी पुरुषार्थकी योग्यता नहीं रखते, जिनके पीछे राष्ट्रका धन, शक्ति और जीवन व्यर्थ ही नष्ट हुआ और होता जाता है। जो वास्तविक विद्वान होते हैं वह भी अपने अतःकरणको सुख भले ही दे लें परन्तु वे प्रायः अर्थ और कामका साधन नहीं कर सकते। फिर विद्वत्ताकी कीमत ही हमारे देशमें क्या है? अब जो अपरि-मित संख्यामें अधपढ़े निकलते हैं वह तो किसी ओरके नहीं होते। निदान वर्तमान शिक्षापद्धति राष्ट्रके लिये फलदायक नहीं ठहरती। ऐसी दशामें उसे बदलकर फलदायक करनेका भी क्या कोई उपाय है?

हमारी समझमें आजकलकी शुद्ध शास्त्रीय-शिक्षा अत्यंत संकुचित हो जानी चाहिये और जो धन उधरसे बचे उसे तथा और अधिक धन लगाकर प्रत्येक कसबेमें, प्रत्येक शहर-में अनेक गृह-शिल्प-विद्यालय खुल जाने चाहिये जिनमें प्राथमिक शिक्षाके सिवाय हर शिक्षार्थीको ऐसे काम सिखाये जायँ कि वह घर बैठे नाममात्रकी पूँजीमें कर करा सकें और देशके वर्तमान गृहोद्योगोंसे व्यर्थ चढ़ा-ऊपरी भी न हो। हमारे बाज़ार जर्म्मन और जापानी बिसातबानेसे पटे हुए हैं। सैकड़ों तरहकी चीजें ऐसी हैं जिन्हें हमारे देशके बेकार मजूर और किसान थोड़ी-सी शिक्षा पाकर बना सकते हैं और जो वस्तुएँ अकसर कूड़ेमें फेंक दी जाती हैं उनसे दौलत पैदाकर सकते हैं। हमारे गृह-शिल्प-विद्यालयोंमें इन सबका बनाना सिखाया जा सकता है। इसमें चढ़ा-ऊपरी विदेशी व्यवसायियोंसे है जिनका कोई हक नहीं कि हमारा धन खींच ले जायँ और हमारे बच्चे भूखों मरें।

इस आवश्यकताको लोग समझ रहे हैं और कहीं-कहीं इस तरहका प्रयोग भी हो रहा है। परन्तु अभी लोगोंकी समझमें ठीक-ठीक बात नहीं आयी है। हमारे ही प्रान्तके एक इंस्पेक्टर आफ़ स्कूलसने अपने अधिकृत मदरसोंमें खाट, टोकरी, नेवाड़, चिक आदि बुनना सिखानेको प्रोत्साहन दिया है। परन्तु इन कलाओंसे शिक्षार्थियोंको कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि इनके बनानेवालोंकी हमारे देशमें कोई कमी नहीं है, स्कूलोंने यदि बुननेवाले तैयार किये तो गरीबोंके टुकड़ोंके साथ चढ़ा ऊपरी हुई। इनमेंसे एक भी रोजगार अर्थकर नहीं है, और शहरके लड़के तो देहातके टोकरी आदि बनानेवालोंका मुकाबिला इसलिये भी नहीं कर सकते कि देहातियोंको झाऊ आदि कच्चा माल प्रायः मुफ्त ही मिल जाता है, और शहरवालोंको कठिनाईसे या दाम देकर मिलेगा। फिर यह भी सोचनेलायक बात है कि इन चीज़ोंके बनानेवाले तो काफ़ी गिनतीमें मौजूद हैं। जितनी खपत है उतनी बनती हैं। खपतसे ज्यादा बना लेनेमें लाभ क्या है? ज्यादा बननेपर रखनेको गोदामका किराया देना पड़ेगा और खपतके अभावमें बेमौसिमकी होली जलानी पड़ेगी। कुशल यह है कि ये काम स्कूलोंमें गौण रीतिपर अफसरोंको प्रसन्न करने मात्रके लिये किये गये हैं। अतः कोई हानिकी संभावना न थी, न है। इनके बदले अधिक लाभकर काम निब, होल्डर, बटन, खिलौने, हुक, टीनके फ्रेम, लकड़ीके महीन काम आदि सिखाये जावें तो लड़के आगे चलकर कुछ उन्नति भी करें; कुछ कमानेका हौसला भी हो। परन्तु इतनेपर भी इन गृहशिल्पवाले कामोंको गौण रखना ही भारी दूषण है। प्रैमरी शिक्षाके साथ ही शिल्पका आरंभ हो जाय और प्रैमरीके समाप्त होते ही मुख्य और विशेष रूपसे शिल्पकी ही शिक्षा हो, उसके संबंधकी ही ड्राइंग सिखायी जाय, गणित सिखाया जाय और विज्ञान बताया जाय। शिल्प मुख्य हो, उसके सहायक विषय गौण। इन विद्यालयोंसे निकले हुए विद्यार्थी नौकरी करनेमें अपना अपमान समझें, तभी हम इन विद्यालयोंको सफल मानेंगे।

—रा० गौड़

विज्ञानके जुलाई १९३४के अंकका क्रोड़पत्र

जगत्-प्रसिद्ध और अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलनद्वारा सम्मानित

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी

का

त्रैमासिक सूची-पत्र

अध्यक्ष और सञ्चालक

आसव-विज्ञान, क्षार-विज्ञान, मन्थरज्वरकी अनुभूत-चिकित्सा, त्रिदोष-मीमांसा, सृष्टि-रचना-शास्त्र, व्याधिमूलविज्ञान, कूपीपकरस-निर्माण-विज्ञान, रोग-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, औषध-परीक्षा-विज्ञान आदि ग्रन्थोंके

लेखक

और

आयुर्वेद-विज्ञानके सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी,

अकाली-मार्केट

अमृतसर

५२ वीं आवृत्ति ४०००]   [१५ जुलाई १९३४

व्यापारिक-नियम

इस सूचीपत्रके पूर्व प्रकाशित सूचीपत्रोंके भाव अमान्य (रद्द) किये गये।

प्रत्येक व्यक्तिको ओर्डर देते समय निम्नलिखित व्यापारिकनियमोंको अवश्य पढ़ लेना चाहिये।

(१) इस सूची-पत्रमें वनस्पतियों व किरानेकी औषधियोंके जो भाव दिये गये हैं वह इस समयके बाजार भाव हैं इसलिये, उक्त वस्तुओंपर कोई कमीशन नहीं दिया जाता।

(२) फार्मेसीद्वारा निर्मित रस, भस्मों, आसव, तैल, अवलेहोंपर भी अब कोई कमीशन नहीं दिया जायगा। क्योंकि इस बारसे प्रत्येक प्रस्तुत औषधको आधुनिक नयी पद्धतियोंसे चूर्ण करने, गोली, टिकी बनानेका प्रबन्ध कर सबको भिन्न-भिन्न मात्राके उत्तम पैकटोंमें बन्द कर दिया गया है। रसभस्म १ तोला, २॥ तोला, ५ तोलाके उत्तम पैकटोंमें बन्द भेजे जायँगे। इस नये विधि विधानके कारण औषधका मूल्य बढ़ जाना चाहिये था, किन्तु, हमने औषधका मूल्य नहीं बढ़ाया। बल्कि अनेकोंका मूल्य घटा दिया है। ग्राहकोंको भविष्यमें ६ माशा या २ तोला रस भस्म न भेजा जाकर पूरा पैकट ही भेजा जाया करेगा। इसी प्रकार तेल, आसव भी बन्द पैकेटमें होंगे।

(३) फार्मेसीद्वारा पेटेण्ट औषधियोंपर निम्नलिखित दरोंपर कमीशन दिया जायगा—६) सेऊपर -) प्रति रुपया, १२) से ऊपरके मालपर =) प्रति रुपया, २५) से ५०) तकके मालपर ≡) प्रति रुपया तथा १००) रु० का प्रथमवार माल लेनेपर ३० प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। जो व्यक्ति एकबार १००) रु०का माल खरीदेगा वह फार्मेसीका एजेंट समझा जायगा, तथा उसको रेलके मालपर बशर्ते गुड्स ट्रेनका आर्डर हो फ्री डिलेवरी तथा पैकिंग खर्च माफ होगा।

(४) २) रु०से न्यून मूल्य का कोई आर्डर नहीं भेजा जायगा। यह नियम पेटेण्ट औषधियों व पुस्तकोंपर लागू न होगा।

(५) प्रत्येक ग्राहकको औषधि मूल्यसे भिन्न पैकिंग खर्च वी. पी. रजिष्ट्री खर्च आदि भी देना होगा।

(६) जिन चीजोंका भाव मनोंमें दिया गया है वह २॥ सेरतक मनोंके भावमें भेजी जायगी, जिनका भाव सेरोंमें दिया है वह १० तोलातक सेरोंके भावमें भेजी जायँगी। ५ तोलाका भाव सेरोंके भावसे भिन्न होगा तथा ५ तोलासे कम लेनेपर प्रत्येक वस्तुकी कीमत सवायी लगेगी।

(७) वनौषधियों व किरानेकी चीजोंका मूल्य घटता बढ़ता रहता है। यदि किसी आर्डरकी एकाध वस्तुका मूल्य न्यूनाधिक लगा हो तो उसका कारण बाजार भाव चढ़ा या गिरा समझना चाहिये। वनौषधि प्रायः सूखी ही भेजी जाती हैं।

(८) प्रत्येक आर्डरकी चीजें प्रबन्धकर्त्ताके निरीक्षणमें जाँचकर भेजी जाती हैं। इसके सम्बन्धमें कोई भूल हो जाय तो पार्सल छुड़ा लेनेपर पुनः लिखनेसे उस भूलका प्रतिकार किया जायगा। और हमारी गलती होगी तो हम क्षतिकी पूर्त्ति भी करेंगे। ऐसे समय पार्सल न लौटाकर एक सप्ताहतक पोस्टमें पार्सल रोककर पत्र व्यवहार करना चाहिये।

(९) यहाँसे प्रत्येक पार्सल अच्छी तरह सावधानीके साथ बन्द करके भेजा जाता है। कईबार पोस्टमैनों व रेलवे-कर्मचारियोंकी लापरवाहीसे—धरने, उठानेमें टूट जाते हैं। ऐसे पार्सलोंके टूटनेके हम जिम्मेदार नहीं होंगे तथापि कोई पार्सल पोस्टका टूट जाय और वह पार्सल ग्राहक छुड़ा ले तथा पार्सलको पोष्ट मास्टरके सामने खोलकर नष्ट हुई वस्तुका प्रमाणपत्र पोस्टमास्टरसे भिजवावेगा तो हम उसको उक्त वस्तुका मूल्य या उक्त वस्तु भेज देंगे।

(१०) हमारे यहाँ औषधि तोलनेका मान निम्न है—१२ मासेका तोला (१ रुपया कलदार = भरी) ८० रुपयाका सेर, ४० सेरका मन। इसी तोलसे प्रत्येक माल भेजा जाता है।

(११) नये ग्राहक तथा वह ग्राहक जो माल मँगाकर एक-आध बार वापस कर चुके हैं उन्हें आर्डरके साथ पोस्टके मालपर कमसे कम २) रु० तथा रेलके मालपर ५) रु० पेशगी अवश्य भेजना चाहिये। बिना पेशगी आये माल नहीं भेजा जाता।

(१२) प्रत्येक पार्सलपर एक आना -) लाला लाजपतराय धमार्थ औषधालयके लिये काटा जाता है। जो अब कुछ धन संग्रह हो जानेके पश्चात् इसी एक दो मासमें जारी होनेवाला है।

नोट—प्रत्येक प्रकारके आर्डर, रजिस्ट्री, बीमा, मनी-आर्डर निम्नलिखित पतेपर आने चाहिये।

(१३) जो व्यक्ति हमारे स्थाई ग्राहक बने रहना चाहें वह हमारे कार्यालयमें २) पेशगी जमा करा देंगे तो उनको स्थायी ग्राहक नम्बर दे दिया जायगा ऐसे ग्राहकोंका आर्डर सबसे पूर्व बिना पेशगीके भेजा जाया करेगा उन्हें कभी मनीआर्डरसे पुनः रुपया भेजनेकी जरूरत न होगी। और जब स्थायी ग्राहकोंसे अपना नाम हटाना चाहेंगे तो उक्त रुपया उन्हें लौटा दिया जायगा।

मैनेजर—पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी अमृतसर

हमारी आशा और योजनापूर्ति

आज १५ वर्षसे यह कार्यालय जो कुछ भी वैद्यों-की सेवा करता चला आ रहा है यह किसी भारतीय वैद्यसे छिपा नहीं। आजतक इस कार्यालयने रास्ना, मूर्वा, तालीसपत्र, निसोत, देवदारु, चव्य, नागकेशर, जीवक, ऋषभक, मेदा महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि अनेक अलभ्य वनस्पतियोंको खोजकर उन्हें काफी मात्रामें संग्रह किया है, जिनको प्रत्येक वैद्य मँगाकर अनेक कठिनतासे बननेवाले योगोंको बनाकर जनता-को काफी लाभ पहुँचा रहे हैं। इस प्रकार हम प्रति-वर्ष कोई-न-कोई शास्त्रीय वनस्पतियों, खनिज-द्रव्यों-की खोज करके उनके संग्रह करनेका प्रबन्ध करते हैं। परन्तु, हम देखते हैं कि इसमें हमें वैद्योंसे बहुत ही कम सहायता मिलती है।

आज हम तीन वर्षसे आयुर्वेद-विज्ञान इस इच्छासे निकाल रहे थे कि इस पत्रकेद्वारा वैद्योंसे विचार-विनमय होता रहेगा और वैद्योंद्वारा अनेक सन्दिग्ध व नूतन बातोंपर प्रकाश पड़ता रहेगा। किन्तु, दुःखसे कहना पड़ता है कि वैद्य-समुदाय इतना अकमर्ण्य व विचारशैथिल्यतामें पिछड़ गया है कि किसीको लिखनेके लिये नयी बात सूझती ही नहीं, प्रायः पत्रके लिये मुझे या मेरे दो-चार मित्रोंको ही लिखना पड़ता है।

खैर, हमने जो कुछ निश्चय किया था उसके अनुसार हमारी नयी योजना तय्यार हो गयी है। कार्यालयको एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था "विज्ञान-परिषत्"के अधीन कर दिया है और आयुर्वेद-विज्ञान-को परिषत्के पत्र "विज्ञान"में मिला दिया है।

फार्मेसीमें औषधनिर्म्माणके लिये एक बड़ी प्रयोगशाला बन रही है इसमें कूटने-पीसने घोटने और टिकियाँ, गोलियाँ बनानेकी मशीनें लगायी जा रही हैं आशा है यह कार्य दो तीन मासतक पूर्ण हो जायगा। इससे भिन्न एक रसायनिक प्रयोगशालाका भी आयोजन हो रहा है। अबतक जो धर्मफण्डमें हमारे पास रुपया पड़ा है उससे इसी मासके अन्त-तक लाला लाजपतरायजीकी चिरस्मृतिमें एक धर्मार्थ औषधालय फार्मेसीकी ओरसे आरम्भ हो जायगा।

वैद्य-संसार जिस प्रकार हमारे कार्यालयकी निर्म्मित औषधियाँ मँगाकर लाभ उठा रहा है इस नये प्रबन्धसे उसे बहुत अधिक लाभकी आशा रखनी चाहिये। क्योंकि, जो भी औषधि भविष्यमें बना करेगी प्रत्येककी वैज्ञानिक जाँच हुआ करेगी, और उनके गुणागुणकी अच्छी प्रकार जाँच करके ही उन्हें विक्रियार्थ रखा जायगा। आशा है हमारी इस योजनाकी पूर्तिमें वैद्य-बन्धु अधिक सहयोग देकर आयुर्वेदकी उन्नतिमें हमारा हाथ बटावेंगे।

—हरिशरणानन्द

ग्रंथ संकेत

जिन-जिन ग्रन्थोंके योग तय्यार किये गये हैं उनके संकेतयुक्त नाम—

यू० वि०	(यूनानी विधि)
आ० प्र०	(आयुर्वेद प्रकाश)
भा० प्र०	भावप्रकाश
र० सु०	रसराज सुन्दर
वै० मृ०	वैद्यामृत
र० का०	रसकामधेनु
फा० वि०	फार्मेसी विधि
बृ० यो०	बृहदयोग-तरंगिणी
र० र० स०	रसरत्न समुच्चय
शा० ध०	शार्ङ्गधर
यो० र०	योग रत्नाकर
यो० त०	योगतरंगिणी
सि० भै० म०	सिद्धभैषज्य मणिमाला
र० स० सं०	रसेन्द्रसार संग्रह
भै० र०	भैषज्य रत्नावली
वै० सा०	वैद्यकसार संग्रह
र० चं०	रसचण्डांशु
च० द०	चक्रदत्त
र० चि०	रस चिन्तायोग
यो० चि०	योग चिन्तामणि
नि० र०	निघण्टु-रत्नाकर
र० यो० सा०	रसयोग-सागर
र० सा०	रसायनसार
च०	चरक
वै० जी०	वैद्यजीवन

रस, रसायन, गुटिका

	भाव १ सेरका	२० तोले	१तोला
अमीर रस (सि० भै० म०)		७॥)	२)
अपचिविनाशी रस (फा०)	१२)	४)	१)
अग्नितुण्डी रस (भै० र०)	३॥)	१)	।)
अग्निकुमार बृहत् (रसेन्द्र)	४)	१।)	।–)
अभयादिमोदक (शा० ध०)	४)	१।)	।–)
अजीर्णकंटक (रसेन्द्र)	४)	१।)	।–)
अब्रकंचुकी (वै० सा०)	५)	१॥)	।=)
अर्शघ्नी वटी (भै० र०)	२)	॥=)	≡)
आनन्द भैरव (रसेन्द्र)	३॥)	१)	।)
आरोग्यवर्धनी (र० चं०)	३॥)	१)	।)
इच्छाभेदी (रसेन्द्र)	३॥)	१)	।)
उपदंशहर (फा० वि०)		७॥)	२)
उदयादित्य रस (शा० ध०)		१६)	४)
एलादि वटी (च० द०)	१)	।–)	–)॥
एकाङ्ग वीर (वै० सा० सं०)	३५)	१०)	२॥)
कनकसुन्दर (रसेन्द्र)	३॥)	१)	।)
कफकेतु (यो० र०)	३॥)	१)	।)
कस्तूरी भैरव बृ० नं० १ (भै० र०)		४२)	९)
कस्तूरी भैरव नं० २ (भै० र०)		३०)	७)
कस्तूरी भूषण (भै० र०)		२५)	६)
क्रव्यादिरस बृ० (र० रा० सु०)	८)	२॥)	।॥)
कांचनार गुग्गुल (शा० ध०)	१)	।–)	–)॥
कर्पूर रस (भै० र०)	८)	२॥)	।॥)
कामदुघा (र० यो० सा०)	३॥)	१)	।)
कासहर (फा० वि०)	२)	॥=)	≡)
कैशोर गुगुल (शा० ध०)	२)	॥=)	≡)
कालारि रस (यो० चि०)	६)	२)	॥)
कृष्णमाणिक्य (र० रा० सु०)		१७)	४॥)
कृमिकुठार (नि० र०)	८)	२॥)	।॥)
कृमिमुद्गर (र० सा०)	३॥)	१)	।)
कुमारकल्याण (भै० र०)		७०)	१५)
गर्भपाल रस (र० चं०)	८)	२॥)	।॥)
गर्भविनोद रस (रसेन्द्र)	४)	१।)	।–)

रस, गुटिका	भाव १ सेरका	२० तोले	१ तोला
गंगाधर बृ० (र० रा० सु०)	१०)	३)	।॥)
गंधकवटी (भै० र०)	२)	॥=)	≡)
गुल्मकालानल (भै० र०)	६)	२)	॥)
गंधक रसायन (रसेन्द्र)	६)	२)	॥)
ग्रहणी कपाट (र० चं०)	१०)	३)	।॥)
चन्दनादिलोह (भै० र०)	१०)	३)	।॥)
चन्द्रप्रभा (शा० ध०)	४)	१।)	।–)
चतुर्मुखरस (र० स० सं०)		३५)	८)
चन्द्रकला (शा० ध०)	१०)	३)	।॥)
चन्द्रोदयवर्त्ती (शा० ध०)	३॥)	१)	।)
चन्द्रामृत रस (र० सा० सं०)	३॥)	१)	।)
श्रीजयमंगल (भै० र०)		३०)	७)
ताप्यादिलौह (र० यो० सा०)		७॥)	२)
त्रिभुवन कीर्त्ति (र० चं०)	४)	१।)	।–)
तालसिन्दूर (र० सा०)		५)	१।)
ताम्रसिन्दूर (र० सा०)		५)	१।)
दुग्धवटी (भै० र०) नं० १		५)	१।)
दुग्धवटी नं० २	३॥)	१)	।)
नागसिंदूर (र० सा०)	१४)	४)	१)
नवायसलोह (र० रा० सु०)	५)	१॥)	।=)
नयनामृत सुरमा (शा. ध.)		४)	१)
नृपतिवल्लभ रस (र. रा. सु.)	७)	२)	॥)
नाराचरस (र. चं.)	४)	१।)	।–)
नित्यानन्द (र. चं.)	८)	२॥)	।॥)
प्रदरान्तक (रसेन्द्र)	८)	२॥)	।॥)
प्रदरारि वटी (फा. वि.)	५)	१॥)	।=)
पूर्णचन्द्र रस बृ. (रसेन्द्र)		२०)	५)
प्रतापलंकेश्वर (बृ. यो.)	५)	१॥)	।=)
प्लीहारिरस (भै. र.)	५)	१॥)	।=)
प्रवाल पंचामृत (यो. र.)		२८)	७)
प्रदरान्तक लौह (र. यो. सा.)	७)	२)	॥)
बृ० बंगेश्वर (भै. र.)		४५)	१०)
बालशोषान्तकवटी (फा. वि.) (शोषरोगपर)		४)	१)
भल्लातकवटी (फा. वि.) (गठियापर)		४)	१)

रस, गुटी	भाव १ सेरका	२० तोले	१ तोला
मण्डूरवटी (भै. र.)	६)	२)	॥)
मल्लसिन्दूर (र. यो. सा.)		५)	१।)
मृत्युंजय (रसेन्द्र)	३॥)	१)	।)
मृगाङ्क स्वर्णयुक्त (शा. ध.)		२००)	४५)
मरिचादिवटी (शा. ध.)	१॥)	॥)	=)
महाज्वरांकुश (भै. र.)	४)	१।)	।–)
महाशंखवटी (शा. ध.)	३॥)	१)	।)
योगराज गुग्गुल (शा. ध.)	८)	२॥)	॥।)
रजत सिंदूर (र. सा. सं.)		१०)	२॥)
रसचन्द्रिका वटी (रसेन्द्र)	७)	२)	॥)
रससिन्दूर द्विगुण (र. का.)	७)	२)	॥)
रससिन्दूर चतुर्गुण (र. का.)	१४)	४)	१)
रससिन्दूर षट्गुण (र. का.)	२०)	६)	१॥)
रस माणिक्य (र. रा. सु.)	२०)	६)	१॥)
रस कर्पूर (र. का.)		५)	१।)
राजमृगांक (शा. ध.)		१००)	२४)
लवंगादिवटी (वै. जी.)	४)	१।)	।–)
वृ. लक्ष्मी विलास नारदीय (र. र. सु.)	१०)	३)	१)
लशुनादि वटी (शा. ध.)	१)	।–)	–)॥
लवणार्क (भै. र.)	४)	१।)	।–)
लोकनाथ रस वृहत् (शा. ध.)	४)	१।)	।–)
लोकनाथ रस लघु (शा. ध.)	२॥)	॥।)	≡)
वज्रक्षार (भै. र.)	४)	१।)	–)
वसन्तकुसुमाकर (शा. ध.)		५०)	१२)
व्याधिहरण (र. यो. सा.)		७॥)	२)
विषमज्वरान्तकलौह (भै. र.)		२०)	४॥)
विषमुष्टि वटी (फा. वि.) (दर्द पर)	५)	१॥)	।=)
श्वासकुठार वृ. (र. रा. सु.)	४)	१।)	।–)
शूलगजकेसरी वटी (फा. वि.)	५)	१॥)	।=)
सर्वज्वरहरलौह (रसेन्द्र)	८)	२॥)	॥।)
संजीवनी वटी (शा ध.)	१।॥)	॥)	=)
सुखविरेचनी (फा. वि.)	३॥)	१)	।)
शूलगजकेसरी ताम्र (शा. ध.)	१४)	४)	१)
सुधानिधि (र. रा. सु.)		७॥)	२)

रस, गुटी	भाव १ सेरका	२० तोले	१ तोला
सूतशेखर (यो. र.)		१०)	२॥)
समीरपन्नग (ऊर्ध्व लग्न)	१८)	५)	१।)
समीरपन्नग (तलस्थ)	१५)	४)	१)
समीरगज केसरी (रसेन्द्र)	१८)	५)	१।)
स्मृति सागर (यो. र.)	१८)	५)	१।)
सिर-चक्र-विनाशी वटी	६)	२)	॥)
स्वच्छन्द भैरव (र. रा. सु.)	१८)	५)	१।)
स्वर्णघटित चन्द्रोदय (षट्गुणबलिजारित)		४०)	९)
स्वर्णवसन्तमालती (खर्परयुक्त)		३५)	८)
स्वर्णवसन्त मालती (अकीकयुक्त)		३५)	८)
सिद्धमकरध्वज			४०)
स्वर्णबंग नं० १ (र. र. स.)		५)	१।)
स्वर्णबंग नं० २ (र. र. सु.)		३)	॥।)
सिद्ध प्राणेश्वर (रसेन्द्र)	६)	२)	॥)
सौभाग्यवटी वृ. (भै. र.)	४)	१।)	।–)
स्तम्भनवटी (र. यो. सा.)	१४)	४)	१)
हुताशनरस (र यो. सा.)	४)	१।)	।–)

लेप

	१ सेरका भाव	१० तोला का भाव
दशांग लेप	५)	॥।)
श्वेतकुष्ठ लेप	१०)	१॥)
सिध्महर लेप	१०)	१॥)

चूर्ण

	१ सेरका भाव	१० तोला का भाव
अग्निमुख (चरक)	५)	॥।)
अपचिविनाशी चूर्ण	८)	१।)
अविपत्ति कर (वृ. यो त.)	२॥)	।=)
अश्वगन्धादि (शा.)	३)	॥)
कामदेव चूर्ण (यो.)	५)	॥।)
चातुर्थिक ज्वरहर चूर्ण	२०)	३)
जातिफलादि (शा.)	५)	॥।)
तालीसादि (शा.)	३)	॥)
दाडिमाष्टक चूर्ण (शा.)	२॥)	।=)
नारसिंह (च. द.)	६)	१)
नारायण चूर्ण (शा.)	२॥)	।=)

(चूर्ण)	१ सेरका	१० तोलेका भाव
प्रदरान्तक चूर्ण	३)	॥)
पुष्यानुग चूर्ण (भै० र०)	४)	॥=)
वृ. गंगाधर (शा०)	२॥)	।=)
वृ. लवंगादि (शा.)	४)	॥=)
वृ. सुदर्शन (शा.)	२॥)	।=)
महा खाण्डव (शा.)	२॥)	।=)
लवणभास्कर चूर्ण (शा.)	२)	।–)
लाई चूर्ण (शा.)	२)	।–)
सारस्वत चूर्ण (भै. र.)	५)	।॥)
सितोपलादि (शा.)	६)	१)
हिंग्वाष्टक चूर्ण (शा.)	२॥)	।=)
हिंग्वादि चूर्ण (शा.)	३)	॥)
त्रिफला चूर्ण	१)	≡)
त्रिकुटा चूर्ण	१॥)	।)

अरिष्ट

नाम वस्तु	५ सेरका मू०	१ सेरका मू०
अमृतारिष्ट	४)	१)
अशोकारिष्ट	५)	१॥)
अश्वगंधारिष्ट	१०)	२॥)
दशमूलारिष्ट	७॥)	२)
दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त)	१६)	४)
द्राक्षारिष्ट	५)	१॥)
रोहितकारिष्ट	५)	१॥)
सारस्वतारिष्ट	१०)	२॥)
सारिवाद्यरिष्ट	७॥)	२)

आसव

नाम वस्तु	५ तो.	१ तो.
अरविन्दासव	५)	१॥)
अहिफेनासव (भै. र.)	८)	२)
कर्पूरासव (भै. र.)	३)	।॥)
मृगमदासव (भै. र.)	४५)	१०)
	५ सेरका भाव	१ सेरका भाव
कनकासव	५)	१॥)
कुमार्यासव लाल (शा.)	१०)	२॥)
कुमारी आसव श्यामवर्ण (शा.)	७॥)	२)
चन्दनासव (शा.)	४)	१)
द्राक्षासव (शा)	५)	१॥)

	५ सेरका मू.	१ सेरका मू.
पुनर्नवासव (शा.)	५)	१॥)
लोहासव (शा.)	५)	१॥)
शंखद्राव (र. का.)	१० तो. ३)	१ तो. ।=)

प्रसिद्ध अवलेह पाक

नाम वस्तु	५ सेर	१ सेर	२० तो.
कूष्माण्डावलेह	१०)	२॥)	।॥)
कंटकार्यावलेह	१०)	२॥)	।॥)
च्यवनप्राशावलेह	१०)	२॥)	।॥)
वासावलेह	१०)	२॥)	।॥)
मदनानन्द मोदक	१५)	३॥)	१।)
कसेरू पाक	१५)	३॥)	१।)
मूसली पाक	१०)	२॥)	।॥)
सौभाग्य शुंठी पाक	१०)	२॥)	।॥)
सुपारी पाक	१०)	२॥)	।॥)

प्रसिद्ध घृत तैल

	५ सेरका भाव	१ सेर	२० तोला
कामदेव घृत	५०)	१२)	४)
जात्यादि घृत	५०)	१२)	४)
फल घृत	४०)	१०)	३)
पंचतिक्तादि घृत	३५)	८)	२॥)
ब्राह्मी घृत	३५)	८)	२॥)
महात्रिफलादि घृत	३५)	८)	२॥)
अंगार तैल	१६)	४)	१।)
चन्दनादि तैल	३५)	८)	२॥)
विषगर्भ तैल	१६)	४)	१।)
मरिचादि तैल	१६)	४)	१।)
लाक्षादि तैल	१६)	४)	१।)
कासीसादि तैल	३५)	८)	२॥)
नारायण तैल	३५)	८)	२॥)
षट्बिन्दु तैल	१६)	४)	१।)
भृङ्गराज तैल	१६)	४)	१।)

पर्पटी

नाम वस्तु	२० तो. का भाव	५ तो. का भाव	१ तो. का भाव
ताम्र पर्पटी	११)	३)	१)
पंचामृत पर्पटी	१८)	५)	१।)

	२० तोलेका भाव	५ तोलेका	१ तोलेका
लोह पर्पटी	११)	३)	१)
विशुद्ध रस पर्पटी	१८)	५)	११)
बोल पर्पटी	११)	३)	१)
विजय पर्पटी	१३०)	३५)	८)
स्वर्ण पर्पटी	१३०)	३५)	८)
हिंगलोत्थ रस पर्पटी	९)	२॥)	।।।)

फार्मेसीद्वारा प्रस्तुत शुद्ध वस्तुएँ

शुद्ध वस्तु नाम	१ सेर	५ तो.
कज्जली अष्ट संस्कृत पारदसे	१६)	१।)
कज्जली शुद्ध पारदसे	१२)	१)
अष्ट संस्कारपूर्ण शुद्ध पारद	३६)	२॥)
हिंगलोत्थ पारद	१६)	१।)
कांस्य चूर्ण शुद्ध	२॥)	≡)
कांतलोह ,,	२॥)	≡)
कुचला ,,	१॥)	=)
कुचला चूर्ण ,,	३)	।)
खर्पर शुद्ध	२०)	१।=)
गंधक आंवलासार शुद्ध	१॥)	=)
शंख नाभि शुद्ध	।।।)	–)
कपर्दिका शुद्ध	२)	=)॥
प्रवाल शुद्ध	१।)	–)॥
गुग्गुल शुद्ध	२)	=)॥
जमालगोटा शुद्ध	१०)	॥।)
ताम्र चूर्ण शुद्ध	२)	=)॥
तुत्थ शुद्ध	१)	–)॥
दाल चिकना शुद्ध	१२)	१)
धतूर बीज श्याम शुद्ध	१)	–)।
नाग शुद्ध	१॥)	=)
पित्तल चूर्ण शुद्ध	१॥)	=)
वंग शुद्ध	५)	।=)
श्रृंगिक शुद्ध	२॥)	≡)
बज्राभ्रक (धान्याभ्रक) शुद्ध	५)	।=)
भल्लातक शुद्ध	१)	–)।
मण्डूर ,,	२)	=)॥
मैनशिल ,,	३)	।–)

नाम	१ सेर	५ तो.
यशद शुद्ध	२)	=)॥
रस कपूर ,,	१६)	१।)
रसौंत ,,	१।)	–)॥
रौप्य माक्षिक शुद्ध	५)	।=)
रौप्य (चाँदी) शुद्ध	६०)	४)
राजावर्त (मशगूल) शुद्ध	६०)	४)
लोह चूर्ण (मुंडलोह) ,,	२)	=)॥
लोह चूर्ण रेतीका ,,	४)	।–)
संखिया शुद्ध	४)	।–)
संखिया जौहर		२) तोला
हरताल जौहर		१) ,,
	एक सेर	५ तोला
स्वर्ण माक्षिक शुद्ध	५)	।=)
सिंगरफ ,,	१०)	।।।)
हरताल वर्की ,,	१६)	१।)

क्षार

नाम	एक सेर	५ तोला
अर्क क्षार	१०)	१)
अपामार्ग क्षार	१०)	१)
कटेली क्षार	१०)	१)
गोमूत्र क्षार	८)	।।।)
चना क्षार	१०)	१)
तिल क्षार	१०)	१)
मूली क्षार	१०)	१)
यव क्षार	१०)	१)
वांसा क्षार	१०)	१)
स्नुही क्षार	१२)	१।)
कदली क्षार	१०)	१)
वज्र-क्षार काला	१२)	१।)
सज्जी क्षार	।।।)	–)

सत्व और घनसत्व

अद्रक सत्व	८)	।।।)
अजवायन सत्व	१०॥)	।।।)
अमलतास घनसत्व	१)	=)
कुटकी घनसत्व	३)	।–)

सत्व और घनसत्व	१ सेर	५. तोला
गिलोय सत्व	५)	।=)
चोक घन सत्व	२)	≡)
नींबू सत्व	२।)	≡)
त्रिवृत्ता घन सत्व	९)	॥।)
पुदीना सत्व (पिपरमेन्ट)	२०)	१।=)
विरोजा सत्व	।।=)	
मुलहठी सत्व	३।)	≡)॥
रसौंत घन सत्व	२)	≡)
लोबान सत्व	१४)	१)
हरीतकी घन सत्व	३)	।)
मुलहठी सत्व लाल	३॥)	।)
मुलहठी सत्व बत्ती	३।)	≡)॥

क्वाथ

नाम वस्तु	१ से. का मू०	२० तो.का मू.
देवदार्व्यादि क्वाथ, (शा०)	१।)	।=)
लघुमंजिष्टादि ,,	१।)	।=)
महामंजिष्ठादि ,,	२)	॥=)
रास्नादि क्वाथ	१॥)	॥)
महारास्नादि	२)	।।=)

थोक लाइसेन्स विषोपविष

निम्नलिखित विष मँगाते समय लाइसेन्सदार अपने नम्बर, और वैद्य पूरा-पूरा पता डिविज़नके साथ दें तथा डाक्टर व वैद्य समुदाय पत्रमें यह शब्द अवश्य लिखे कि "हम व्यवहारके लिये मँगाते हैं" तभी माल भेजा जायगा।

	लाइसेन्सदारोंके लिये	वैद्योंके लिये भाव	
नाम वस्तु	१ सेरका भा.	१ सेरका भा.	५ तो.का भा.
संखिया खनिज	५)	७)	॥)
संखिया श्वेत	१।)	२)	≡)
संखिया काला असली	१२)	१५)	१।)
संखिया पीला	१॥)	२)	≡)
संखिया लाल	३)	४)	।–)
हरताल वर्की चूरा	४)	५)	।=)
हरताल वर्की छोटे पत्रकी	६)	७)	॥)
हरताल वर्की बड़े पत्रकी	९)	१०)	॥।)
रस कपूर	७॥)	८॥)	॥=)

	सेरका	सेरका ५	तोलेका भाव
रस कपूर पापड़ीका	१०)	१२)	॥।≡)
दालचिकना	६)	७)	॥)
श्रृंगिक श्वेत	१॥।)	२)	≡)
श्रृंगिक पीला	२।)	२॥।)	≡)॥
मीठा तेलिया	२)	२॥)	≡)।
धतूर बीज श्याम	।–)	।≡)	)॥।
धतूर बीज सफेद	।॥)	१)	–)।
कुचला	।–)	।=)	)॥।

नोट—वैद्य महानुभावोंको उक्त विषोंके भावमें अन्तर देखकर विचलित न होना चाहिये। लाइसेन्सदार बिक्रीके लिये मनोंकी तादादमें खरीदते हैं। वैद्य सेरों छटाँकोंकी मात्रामें लेते हैं इसीलिये यह अन्तर है। फिर भी अब काफी रियायत की गयी है।

वर्क (पत्र) सोना-चाँदी

वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	५ रत्ती	२।)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	१ माशा	३॥)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	१। माशा	४॥=)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	१॥ माशा	५॥।)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	२॥ माशा	९)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	३ माशा	१२॥)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	६ माशा	२१)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	३ माशा	॥)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	५ माशा	॥।)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	६ माशा	॥।=)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	७ माशा	१=)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	९ माशा	१॥।
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	१ तोला	१॥।)
वर्क चाँदी चूरा साफ नं. १		१ तोला	१=)
वर्क सोनेका चूरा		१ तोला	४०)

गुलकन्द मुरब्बे

नाम वस्तु	मनका भाव	सेरका भाव
मुरब्बा आम	१६)	।≡)
मुरब्बा आँवला बरेली नं. १, २	१८) १४),	॥) ।=)
मुरब्बा अद्रक	१६)	॥)
मुरब्बा आँवला बनारसी नं. १, २	२५) २०),	१) ॥।=)

	मनका भाव	सेरका भाव
मुरब्बा आँवला नं. ३	२०)	॥-)
मुरब्बा आँवला नं. ४	१४)	।=)
मुरब्बा आँवला नं. ५	१२)	।-)
गुलकन्द नकली फूल	१२)	।=)
गुलकन्द असली फूल	१६)	।≡)
मुरब्बा गाजर	१४)	।=)
मुरब्बा विल्व	१९)	॥-)
मुरब्बा बीह	१६)	॥)
मुरब्बा सेव नं० १	१९)	॥)
मुरब्बा हरड़ नं. १	३०)	।॥-)
मुरब्बा हरड़ नं. २	२४)	॥=)
मुरब्बा हरड़ नं. ३	१६)	।≡)
मुरब्बा हरड़ नं. ४	१३)	।=)
मुरब्बा हरड़ नं. ५	११।)	।-)

हरीतकी-भेद

अभया हरड़ (पंचरेखा) कपित्थ वर्ण २॥), ४), ७) सेर
विजया (गोल) १ हरड़ २ तोलेकी है २५),४०),५५) सेर
विजया छोटी १॥ तोलावाली १०), १५) सेर
रोहणी (साधारण गोल) ।), ॥), ।॥) सेर
अमृता (लम्बी लघु बीजा=काबली) ५),७),१२),१५) सेर
जीवन्ती (लम्बी बीणाकृति पीतवर्ण) १३),२०),२८) सेर
साधारण हरड़ ३), ३॥), ५), १२) मन

रोगन अथवा तेल

	भाव सेरका	५ तोलेका
तेल अजवायन	३।॥)	।)।
तेल अलसी	।=)	
तेल इलायची	१॥)	=)
रोगन कद्दू, पेठा	२।॥)	≡)
तेल कुष्ठ	४)	।-)
कस्ट्रायल (विलायती)	४॥) गैलन	१।) सेर
कस्ट्रायल (कलकत्ता)	२।) ,,	॥≡) ,,
रोगन खसखस	।॥) से.	-) छ.
रोगन गुलाब	१)	-)।
तेल चावल मोगरा	४)	।-)
तेल जैतून	१॥)	=)
तेल जमालगोटा असली	१२)	१)

	सेरका भाव	५ तोलेका भाव
तेल दालचीनी	४)	।-)
तेल नारियल	।=)	
तेल नीम	।≡)	
तेल पिपरमैण्ट नं० १	९)	॥=)
तेल पिपरमैंट नं० २	५।)	।=)
तेल बाबूना	१।=)	-)॥
रोगन बादाम मीठा मशीनका	३।॥)	।)
रोगन बादाम मीठा हाथका	५॥)	।=)
तेल भिलावा	१२)	१)
तेल मालकंगनी	३॥)	।)
तेल युक्लिप्टिस	२।)	≡)
तेल लौंग	४॥)	।-)
तेल बिरोजा असली	४॥)	।-)
तेल सौंफ	४।)	।-)
तेल सन्दल असली	३०)	२।)
तेल शीतलचीनी नं० १	३६)	२॥)
तेल शीतलचीनी नं० २	२८)	२।)
तेल धतूर	१०)	२) तो.

प्राणिज व खनिज द्रव्य

	१ मनका भाव,	१ सेरका,	१ तोलेका
अम्बर असहब नं० १ (अग्निजार)			२४)
अम्बर असहब नं० २ ,,			१८)
अभ्रक वज्र बड़े कणका श्याम	५०)	१॥)	
अभ्रक वज्र छोटे कणका श्याम	३५)	१)	
अभ्रक वज्र छोटे कणका भूरा	२५)	।॥)	
अभ्रक काला उत्तम पत्र	२२)	।॥)	
अभ्रक उत्तम श्वेत	१२)	।=)	
अभ्रक चूर्ण पत्र श्वेत	१६)	॥)	
अकीक पत्थर नं० १		२२)	
अकीक पत्थर नं० २		१२)	
अकीक पत्थर नं० ३		८)	
अकीक पत्थर नं० ४		३॥)	
ऊँटके कीड़े		२) तो०	
कसीस लाल	३६)	१)	
कसीस हरा (विलायती)	५।॥)	=)॥	
कस्तूरी नैपाली उत्तम			१८)

	भाव १ मनका	१ सेर	१ तोला
कस्तूरी काश्मीरी			१४)
कछुआ खोपड़ी		१।)	
कांत लोह नं० १			१)
कांत लोह नं० २		२॥)	
कांस्य बुरादा	५५)	१।)	
कैंचुवे धुले हुए साफ		१॥)	
कैंचुवे बिना धुले		१)	
कौड़ी पीली छोटी	४५)	१।)	
कौड़ी पीली बड़ी मोटी	९१)	२।)	
गोरोचन नकली			१)
गोरोचन असली नं० १			१२)
गंधक डंडा	८।)	।)	
खपरिया असली		८)	
गंधक आंवलासार गुत्थी		५।) गुत्थी	
गंधक आंवलासार (खुला)		॥) से.	
गेरू साधारण	२।)	—)।	
चूहा कांटेवाला			॥) तोला
ज़हर मोहरा नं० १		१॥)	
ज़हर मोहरा नं० २		॥)	
ज़हर मोहरा खताई नं० १		५५)	॥)
ज़हर मोहरा खताई नं० २		२५)	।=)
जंगार नं० १		९।)	
जंगार नं० २		३।)	
जस्त फूला हुआ आँखमें डालनेका		॥)	
जुंद बिदस्तर		१५) डिब्बी१॥)	
जोंक नं० १		५।) सेर	
जोंक नं० २		४।)	
ताम्र बुरादा	४५)	१।)	
नख		४।)	
नक्रका पित्ता			४)
नक्रकी इन्द्री			५)
नाग (सिक्का)	११।)	।=)	
नमक सैन्धव	३)	—)॥	
नमक काला (सौंचर)	५॥)	≡)	
नमक बिड़ (कॉंच)	३॥)	=)	
नमक बिड़ असली		॥)	

	भाव मनका	सेरका	तोलेका
नमक समुद्र (साँभर)	६)	≡)	
नमक खारी	२॥)	—)॥	
नीला थोथा	१७)	॥)	
नौसादर देशी	२८)	॥)	
नौसादर डंडा (विलायती)	१९)	॥—)	
नौसादर टिकिया	१९)	॥—)	
पन्ना			४) तोला
प्रवालशाखा	३४)	॥≡)	
प्रवाल मूल	२६)	॥)	
पारद		५॥)	
पाह गुजराती		१)	
पीतल चूर्ण बुरादा	२८)	॥)	
फादज़हरहैवानी			१)
फिटकरी लाल	७॥)	≡)॥	
फिटकरी श्वेत	७॥)	≡)॥	
बंग (ईंटकी)			३॥=)
बंग (थालीकी)			३॥)
बराहका पित्ता			॥)
बराहकी चर्बी		८)	
बकरेका पित्ता			।)
बीरबहूटी		६)	=)
बन्दरकी इन्द्री			४)
मुर्दासंख	१५)	।≡)	
मण्डूर पुराना	१२)	।=)	
मैनसिल नं. १	७५)	२)	
मैनसिल नं. २	५०)	१।=)	
माणिक्य "चूनी" नं. १			३॥)
माणिक्य "चूनी" नं. २			१॥)
माणिक्य खरड.			।=)
मयूर पित्ता			५)
मायेशुतर आबी असली			॥)
मोतीबसरई नं. १			२६)
मोतीबसरई नं. २			२०)
मोतीबसरई नं. ३			१६)
मोती आस्ट्रेलिया नं. १			२०)
मोती आस्ट्रेलिया नं. २			१५)

	भाव १ मनका,	१ सेरका,	१ तोलेका
मोती बेडौल बड़ा			५)
मोती चावला			८)
मोती बिंधा हुआ			८)
मोमदेशी साफ		१॥=)	
मधुश्वेत नं. १	२६)	।॥)	
मधुलाल नं. १	२०)	॥=)	
मधुलाल नं. २	१५)	॥)	
रेगमाही		१॥)	
रीछकी इन्द्री			२)
रीछका पित्ता			२)
रीछकी जिह्वा			१॥)
रीछकी चर्बी		२॥)	
रूपामक्खी चतुष्कोण		३)	
रूपामक्खी (गोलदाना)	३५)	१)	
रूपामक्खी डलियाँ	५६)	१॥)	
राजावर्त्त नं. १		॥)	
राजावर्त्त नं. २		।–)	
लोहचूर्ण मुंड	१२)	।=)	
लोहचूर्णका रेती		१॥)	
लाखपीपल	३६)	१)	
लाख बेरी	२६)	।॥)	
बेर पत्थर		१।=)	
वैक्रान्त नं. १		३)	
वैक्रान्त नं. २		१।॥)	
शिलाजीत पत्थर	१६)	॥)	
शिलाजीत सूर्य्यतापी		१२)	
शिलाजीत (अग्नितापी)		८)	
शंखनाभि	१५)	॥)	
शंख टुकड़े	१२)	।=)	
शंख कीट			॥=)
शोरा कलमी	१०॥)	।–)	
शेरकी इन्द्री			४॥)
शेरकी चर्बी		१६)	।)
शेरकी जिह्वा			३)
शेरके दाँत			२॥)
शेरके नख छोटे १) प्रतिनग, बड़े २)			

	भाव १ मनका,	१ सेरका,	१ तोलेका
शेरका पित्ता			४)
शेरका मांस सूखा		१६)	।)
संगजराहत	३)	=)	
संग सरमाही		११)	≡)
संगयशब नं. १		४)	
संगदानामुर्ग		२॥)	
संग्रासक		१।॥)	
सज्जीलोटा	५।)	=)॥	
सज्जीकाली	४)	=)	
सफेदा काशगरी	१३)	।=)	
समुद्रफेन			
सरतान		५।॥)	–)॥
बारहसिंगा	१२)	।=)	
सिन्दूर	२०)	॥=)	
सीप मोतीका असली नं० १		३)	
सीप मोती बाजारी	६६)	१।॥)	
सीप समुद्री पतली	१२)	।=)	
सीप तालाब	९)	।–)	
सुरमा श्वेत	४॥)	=)।	
सुरमाकाला	१७)	॥)	
सुहागा	१३)	।=)	
सोनामक्खी चौकोर		४)	–)
सोनामक्खी (गोलदाना)	२२)	॥=)	
सेलखड़ी	२॥)	–)॥	
सोनागेरू	८)	।)	
सिंगरफ रूमी (डली)		६।)	=)
हरतालगोदन्ती नं. १	९)	।)	
हाथीका नख		१२)	≡)
हाथी दाँतका बुरादा		१)	
हरताल गोदन्ती नं. २	६)	≡)	
हरताल पीली	५५)	१॥)	

आयुर्वैदिक यूनानी वनस्पतियाँ

	मनका भाव	१ सेरका	छटाँकका
अकरकरा नं० १, २	४), २॥)	।–), ≡)	
अकाकिया		२।॥)	≡)॥

	मनका भाव	सेरका भाव	५ तोलेका
अखरोट छाल नं० १	२०)	॥=)	–)
अखरोट छाल नं० २	१५)	॥)	)॥।
अखरोट फल	१२)	।=)	
अगर काला (टुकड़े)	१२)	।=)	
अगर भूरा (टुकड़े)	१५)	॥)	
अगर बुरादा	२०)	॥=)	
अजमोद	८॥)	।)	
अजवायन देशी	६)	≡)	
अजवायन खुरासानी	१३)	।=)	
अजवायन दाना	६)	≡)	
अंजवार	५)	=)॥	
अंजरूत		१)	–)।
अंजीर	१३)	।=)	
अंकोल	१६)	॥)	
अतीस (श्वेत) नं० १		४)	।–)
अतीस (श्वेत) नं० २		३)	।)
अतीस (श्वेत) नं० ३		२)	≡)
अतीस काली		३॥)	।–)
अतीस मीठी		१)	–)।
अतीस भाग	२२)	॥=)	
अतिबला पंचांग	१४)	।≡)	
अतिबला बीज	३०)	॥।=)	
अधोपुष्पी	१२)	।=)	
अनन्तमूल (बंगाल)	२०)	॥=)	
अनन्तमूल (देशी)	१०)	।–)	
अनारदाना नं० १	१९)	॥–)	
अनारदाना नं० २	१८)	॥)	
अनीसून	६॥)	≡)	
अपामार्ग पंचांग	१०)	।–)	
अपामार्ग बीज	५५)	१॥)	–)॥।
अपराजिता	५०)	१।=)	–)॥
अफतीमून नं० १		१॥)	=)
अफतीमून नं० २		१)	–)॥
अम्लबेद गुच्छा	६०)	१॥=)	=)
अमलतासगूदा	७।)	।)	
अमर बेल	१२)	।=)	
अर्क त्वक्	१२)	।=)	
अर्क पुष्प		१)	–)।
अर्क दुग्ध		२॥)	≡)
अर्जुन त्वक्	१२)	।=)	
अरणी मूल	१०)	।–)	
अरणी छाल	१६)	॥)	
अलसी		।)	
अशोक त्वक् (बंगाल)	१९)	॥–)	
असगंध नागौरी	१२।)	।=)	
आंबले सूखे	४)	=)	
आमकी गुठली	१०)	।–)	
आम्बा हल्दी	१२)	।=)	
आबनूस बुरादा	३५)	१)	–)।
आबरेशम		१॥।)	
आलूबुखारा	२३)	॥=)	
इंगुदी	१५)	॥)	
इन्द्रयव	१२)	।=)	
इन्द्रायणमूल	१४)	।≡)	
इन्द्रायणबीज	३५)	१)	–)।
इन्द्रायणफल	२०)	॥=)	
इन्द्रायणचूर्ण		१॥)	=)
इलायची छोटी नं० १		३।)	।)
इलायची ,, नं. २		२॥।)	≡)।
इलायची ,, नं. ३		२।)	=)॥
इलायची ,, सफेद		२)	=)॥
इलायची बड़ी	२४)	॥≡)	
इलायची दाना		१=)	–)।
इश्कपेचा	८)	।)	
ईसबगोल	८॥)	।)	
ईसबगोल भूसी	२७)	॥।)	–)
इरिमेदे छाल	१२)	।=)	
उटंगनबीज	१५)	।≡)	
उन्नाव नं. १	२२)	॥=)	
उन्नाव नं. २	१७)	॥)	

	भाव मनका	सेरका	५ तोलेका
इशावामगरबी नं० १,२		२।), १॥=)	
उशक	२७)	।॥)	
इस्तेखद्दूस	३७)	१)	–)।
ऊद बिलसाँ		१।≡)	–)॥
ऊद सलीब		१६)	१=)
ऊँट कटेरा	१५)	।≡)	
एरण्ड मूल	१२)	।=)	
एरण्ड बीज	१०)	।–)	
एलबालुक फल	५५)	१॥)	=)
एलुवा नं. १		।॥≤)	
एलुवा नं. २		॥=)	
ऋषभक	१७)	॥)	
ऋद्धि	३६)	१)	–)।
ककौंटी कन्द		१)	
कचूर	९)	।)॥	
कंकोलदाना	१७)	॥)	
कंकोल (सर्दचीनी)		१।–)	–)॥
कंटकारी लघु	८)	।)	
कंटकारी बृहद्	१०)	।–)	
कंकुष्ठ		३।॥)	
कदम्बत्वक्	१२)	।=)	
कपित्थ फल	१२)	।=)	
कपूर देशी		३॥–)	।)
कपूर भीमसेनी असली			५)
कपूर भीमसेनी बाजारी		३।≡) पौंड	
कपूर कचरी	१२)	।≡) सेर	
कम्पिल (छना)	३०)	।॥=)	–)
कमलगट्टे	१५)	।≡)	
कमरकस	१६)	।≡)	
कमल फूल	३५)	१)	–)।
कमल केसर		३)	।)
कमल मूलशुष्क		२॥)	≡)
कचनार छाल	१५)	॥)	
करंज बीज	१२)	।=)	
करंज पंचांग	१०)	।–)	

	भाव मनका	सेरका	५ तोलेका
करफस	५०)	१।=)	=)
कनेर मूल		२)	=)॥
कलौंजी	१२॥)	।=)	
कसौंदी बीज		।॥)	
कहरवाशमई		४॥)	।–)
कलिहारी (लांगली)		५॥)	।=)
काकजंघा	१०)	।–)	
काकनासापंचांग	१०)	।–)	
काकनासा फल (काकनज)		२।॥)	≡)
काकोली (श्याममूसली)	२०)	॥=)	
काकोली (बंगाल)		५)	।=)
काकड़ासिंगी	१८)	॥)	
कायफल	७।)	≡)॥	
कश्मीरी पत्ता	८॥)	।)	
कामराज	४५)	१।)	–)॥
कासीमूल		१)	–)।
कालीजीरी	७)	≡)॥	
काहू	१६)	।≡)	
कुटकी (कौड)	१७)	॥)	
कुष्ठ नकली (ठुठ)	२२॥)	।॥)	
कुष्ठ उत्तम (कूठ)		६॥)	।≡)
कुष्ठ चूर्ण मोटा		३)	।)
कुष्ठ चूर्ण बारीक		१॥)	=)
कुटज छाल	७॥)	।)	
कुकुन्धक	१०)	।–)	
कुलंजन	११)	।–)	
कुन्दरु गोंद	२२॥)	॥≤)	
कुसामूल		१॥)	=)
कुसुम्भ बीज	९)	।)	
कुल्फा	८)	।)	
केसर मोगरा काश्मीरी	१।–) तोला		६।) छ०
केसर लच्छा	।॥≡) तोला		४॥)
केसर हिन्द देवी छाप	३८) पौण्ड	।॥) तोला	
केसर हाथी छाप	१४) पौण्ड	।) तोला	
कौंच जड़		२)	=)॥

	मनका भाव	सेरका भाव	छटाँकका भाव
केसर ईरानी	२०) पौण्ड	||=) तोला	
कौंच बीज	११)	|-)	
कत्था नं. १		२)	=)||
कत्था नं. २		१||)	=)
कासनी	८||)	|)	
खसखास	८)	|)	
खत्मी	२२)	||=)	
खब्बाजी	११)	|-)	
खस देसी	९)	|)	
खस (बम्बई)	११)	|-)	
खदिर छाल	१२)	|=)	
खुरफा	९)	|)	
खुबकलां	८)	|)	
गन्दना	११)	|-)	
गगन धूल		३||)	|)
गजपीपल	११)	|-)	
गजपिप्पली (ताड़फूल)	२८)	|||)	
(बृहद् पिप्पली)	२८)	|||)	
गन्ध प्रसारणी	१२)	|=)	
गन्धा बिरोजागीला	९)	|)	
गम्भारीत्वक्	१२)	|=)	
गलगंडविनाशी पत्र		३)	|)
गावजवान नं० १	२७)	|||)	
गावजवां नं० २	२२||)	||=)	
गाजर बीज		|=)	
गारीकून		२=)	≡)
गिलोय सूखी	७||)	|)	
गिले मखतूम	२०)	||-)	
गुंजालाल	८||)	|)	
गुंजाश्वेत	५०)	१|=)	=)
गुग्गुलमहिषाक्ष	२८)	|||)	
गुग्गली	१२)	|-)	

	भाव मनका	सेरका	५ तोलेका
गुग्गुलबाजारी	१८)	||)	
गुड़मार बूटी	२२)	||=)	
गुड़हल फूल		२)	≡)
गुलगावजवां	६२)	१||=)	=)
गुल बाबूना	११)	|-)	
गुल पिस्ता		१||)	-)|||
गुल सुपारी	२२)	||=)	
गुलनार	३२)	|||=)	
गुल सुर्खपेशावरी	१८)	||)	
गुल खैरा	११)	|-)	
गुलाब केसर		२||)	≡)
गुलबनफशा नं० १		२|||)	≡)
गुलबनफशा नं० २		२)	≡)
गुलबनफशा नं० ३		१||=)	=)
गुल सेवती		२=)	=)||
गुल गाफिस	२७)	|||)	
गुलसुर्खदेशी	११)	|=)	
गूलर फल		||)	
गूलर छाल		||)	
गोंद छुहारा	५२)	१|≡)	=)
गोंद कतीरा नं० १	३६)	१)	-)|
गोंद कतीरा नं २	२०)	||=)	
गोंद भीमरी	३२)	|||=)	
गोंद बबूल	१८)	||)	
गोरख मुण्डी	७)	≡)	
गोरख पान	१५)	||)	
गोखरू पंचांग	८)	|)	
गोखरू फल लघु	८)	|)	
गोखरू फल बृहद्	३०)	|||=)	
गौरीसर	१२)	|=)	
गन्नाजड़	१५)	||)	
चन्द्रसूर (हालों)	८)	|)	
चक्रांगी		१)	-)|
चक्रमर्द बीज	१५)	|≡)	
चन्दनकाष्ठ श्वेत		१|||-)	=)

	भाव मनका	सेरका	५ तोलेका
चन्दनबूराश्वेत		२–)	=)।
चन्दन काष्ठलाल		।≡)	
चन्दन बूरालाल		॥)	
चन्दन बुरादाधूपका		॥।)	
चव्य (कृष्ण मिर्चमूल)	२६)	॥।)	
चव्य (पिप्पलीमूल)	२०)	॥=)	
चाकसू	१३)	।=)	
चावल मोगराबीज		१।)	–)॥
चित्रकमूल	१६)	॥)	
चित्रकमूलत्वक्	३५)	१)	–)।
चित्रकपंचांग	१०)	।–)	
चिरायता मीठा	१२)	।=)	
चिरायता कडुआ	२८)	॥।)	
चिलगोजा	२५)	॥≡)	
चोकमूल पंजाब	१३)	।=)	
चोक (सत्यानाशीमूल)	१२)	।=)	
चोपचीनी	३७)	१)	–)।
चोरक		२)	=)॥
चांगेरी	१६)	॥)	
छरीला	८)	।)	
छुहारा	१०)	।–)	
जलनिम्ब	२२)	॥=)	
जलपिप्पली	१६)	॥)	
जलापा नं० १		२=)	=)॥
जलापा नं० २		१॥=)	=)
जवासापंचांग	१२)	।=)	
जरावन्दमदहरंज	१७)	॥)	
जरिश्क मीठा	३२)	॥।=)	
जरिश्क खट्टा	१०)	।–)	
जरूरद	३७)	१–)	–)।
जामुन गुठली	१२)	।=)	
जायफल	४४)	१≡)	–)॥
जावित्री		२॥–)	≡)
जिमीकंद	१५)	॥)	
जियापोता	१६)	॥)	

	भाव मनका	सेरका	५ तोलेका
जीराश्वेत नं १	२१)	॥–)	
जीराश्वेत नं० २	१७)	॥)	
जीरा काला नं० १		१॥।)	=)
जीरा काला नं. २		१॥)	–)॥।
जीरा काला नं. ३		१=)	–)।
जीवक (लम्बासालव)	७५)	२)	=)।
जीवन्ती (बंगाल)	५०)	१।=)	=)
जीवन्ती पंचांग	१०)	।–)	
जूफा	९)	।)	
जैपालबीज (जमालगोटा)	४२)	१=)	–)।
जख्म हैयात	१६)	॥)	
तगर (गन्धवालामूल)	२२)	॥=)	
तालमखाना	३०)	॥।=)	
तालीसपत्र बाजारी	८)	।)	
तालीस पत्र असली	१६)	॥)	
तिन्तडीक	१५)	॥)	
तुगाक्षीर	३५)	१)	–)।
तुख्मरेहाँ	६)	≡)	
तुख्म तरबूज	३॥)	=)	
तुख्म कसूस	१५)	।≡)	
तुख्म कद्दू	१७)	॥)	
तुख्म खीरा	१५)	।≡)	
तुख्म खुरफा	९)	।)	
तुख्म गंदनाँ	१२)	।=)	
तुख्म वालंगा	१२)	।=)	
तुख्म कासनी	९)	।)।	
तुख्म कलौंचा	१९)	॥)॥	
तुरंजबीन असली	६५)	१॥।)	=)
तेज पत्र	९)	।)	
तेजबलबीज	२५)	॥।)	
तेजबलत्वक्	१६)	॥)	
तोदरीलाल	२२)	॥≡)	
तोदरी श्वेत	१६)	॥)	
तोदरी पीली	३२)	॥।=)	
दंतीमूलत्वक्	१६)	॥)	

<table>
<tr><th></th><th>मनका भाव</th><th>सेरका भाव</th><th>५ तोलेका भाव</th></tr>
<tr><td>दंतीमूल वृहद्</td><td>१०)</td><td>|–)</td><td></td></tr>
<tr><td>दुरुनज अकरबी</td><td>४०)</td><td>१=)</td><td></td></tr>
<tr><td>दरियाई नारियल</td><td>३५)</td><td>१)</td><td></td></tr>
<tr><td>दशमुल चूर्ण</td><td>१५)</td><td>|≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>दशमूल मिश्रित</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>दालचीनी</td><td>१८||)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>दारुहल्दी</td><td>६||)</td><td>≦)</td><td></td></tr>
<tr><td>द्राक्षा (किशमिश) नं० १</td><td>१४)</td><td>|≦)</td><td></td></tr>
<tr><td>द्राक्षा ,, नं० २</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>दुग्धीलघु</td><td>१५)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>दुग्धी वृहत्</td><td>१५)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>देवदारु असली</td><td>१०)</td><td>|–)</td><td></td></tr>
<tr><td>देवदालीफल</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>द्रोण पुष्पी</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>दमबलखवीन नं० १</td><td></td><td>११||)</td><td></td></tr>
<tr><td>दमउलखवीन नं० २</td><td></td><td>९)</td><td></td></tr>
<tr><td>धतूर पंचांग</td><td>१५)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>धमासा</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>धातकीफूल</td><td>७||)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>धूप सामग्री</td><td>१५)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>धूप बनी हुई</td><td>२२)</td><td>||≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>धूपहवनकी मिश्रित</td><td>२०)</td><td>||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>नागर मोथा</td><td>५)</td><td>≦)</td><td></td></tr>
<tr><td>नक छिकनी</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>नागकेसर असली नं० १</td><td></td><td>८)</td><td>||=)</td></tr>
<tr><td>नागकेसर असली नं० २</td><td></td><td>४)</td><td>|–)</td></tr>
<tr><td>नागकेसर बाजारी</td><td>२२)</td><td>||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>नागबला</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>नासपाल</td><td>५)</td><td>≦)</td><td></td></tr>
<tr><td>निम्बत्वक्</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>निम्बोली</td><td>१०)</td><td>|–)</td><td></td></tr>
<tr><td>निम्बफूल</td><td>२८)</td><td>|||)</td><td></td></tr>
<tr><td>निर्गुण्डी पंचांग</td><td>१०)</td><td>|–)</td><td></td></tr>
<tr><td>निर्गुण्डी बीज</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>निर्मली</td><td>१७)</td><td>||)</td><td></td></tr>
</table>

<table>
<tr><th></th><th>मनका भाव</th><th>सेरका भाव</th><th>५ तोलेका भाव</th></tr>
<tr><td>निर्विसी (जदवार)</td><td></td><td>९)</td><td>||=)</td></tr>
<tr><td>निसोत (त्रिवृता) नं० १</td><td></td><td>२||)</td><td>≡)</td></tr>
<tr><td>निसोत ,, ,, २</td><td></td><td>२)</td><td>=)||</td></tr>
<tr><td>निसोत श्याम</td><td></td><td>२)</td><td>=)||</td></tr>
<tr><td>नीलकण्ठी</td><td>३५)</td><td>१)</td><td>–)|</td></tr>
<tr><td>नीलोफर फूल नं० १</td><td>३२)</td><td>|||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>नीलोफर फूल ,, २</td><td>२७)</td><td>|||)</td><td></td></tr>
<tr><td>पटोल पत्र</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>पतंग चूर्ण</td><td>२६)</td><td>|||)</td><td></td></tr>
<tr><td>पद्म काष्ठ</td><td>१०)</td><td>|–)</td><td></td></tr>
<tr><td>पपीता</td><td></td><td>४|||)</td><td>|–)</td></tr>
<tr><td>परश्योशाँ</td><td>११)</td><td>|–)</td><td></td></tr>
<tr><td>पलाश पुष्प</td><td>४)</td><td>=)</td><td></td></tr>
<tr><td>पलाश पापड़ा</td><td>७)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>प्रसारणी</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>पाताल गरुड़ी</td><td>२०)</td><td>||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>पाटला त्वक्</td><td>१०)</td><td>|–)</td><td></td></tr>
<tr><td>पाटला फली</td><td>१५)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>पाठा</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>पानड़ी</td><td>२२)</td><td>||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>पाषाण भेद</td><td>८)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>पिप्पली लघु</td><td></td><td>३|)</td><td>|)</td></tr>
<tr><td>पिप्पली वृहद्</td><td>२८)</td><td>|||)</td><td></td></tr>
<tr><td>पिप्पली मुल नं० १</td><td></td><td>२|||)</td><td>≡)</td></tr>
<tr><td>पिपलीमूल ,, २</td><td></td><td>१||)</td><td>=)</td></tr>
<tr><td>पित्त पापड़ा</td><td>६)</td><td>≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>पीपल जटा</td><td></td><td>२)</td><td></td></tr>
<tr><td>पिया रांगा</td><td></td><td>२)</td><td>=)||</td></tr>
<tr><td>पिथा बांसा</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>प्रियंगू फल (गोंदनी)</td><td>२०)</td><td>||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>पिस्ता नं० १,</td><td></td><td>२||)</td><td>≡)</td></tr>
<tr><td>पुनर्णवा श्वेत मूल</td><td>३०)</td><td>|||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>पुनर्णवा रक्तमूल</td><td>१८)</td><td>||–)</td><td></td></tr>
<tr><td>पुदीना सूखा देशी</td><td>७)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>पुदीना जंगली</td><td>५)</td><td>≡)</td><td></td></tr>
</table>

	मनका भाव	सेरका भाव	५ तोलेका भाव
पुष्कर मूल		६)	।≡)
पृश्नपर्णी लम्बेपत्र	५५)	१॥)	=)
पृश्नपर्णी बड़े पत्र	१२)	।=)	
फरफीऊन विलायती		१।=)	-)॥
फालसा छाल	२२)	॥=)	
फिन्दक	१६)	॥)	
बनतमाकू	१२)	।=)	
बट जटा	१६)	॥)	
बकायन फल	१६)	॥)	
बन तुलसी	१२)	।=)	
बला पंचांग	१४)	॥)	
बबूल त्वक्	१०)	।-)	
बबूल फली	१२)	।=)	
बच तीक्ष्ण	७)	।)	
बच मधुर		५)	।=)
बहमन सफेद	१७)	॥)	
बहमन लाल	१२)	।=)	
बहुगुणी	१५)	॥)	
बहुफली	१०)	।-)	
बहेड़ा फल	३)	=)	
बालछड़	२५)	॥≡)	
बहेड़ा छाल	५)	≡)	
बाराहीकंद	१५)	॥)	
बादरजंबूया	७)	।)	
बादावरद	२७)	।॥)	
बादयान खताई	३२)	।॥=)	
बारतंग	१८)	॥)	
बादाम कागजी	३७)	१)	-)।
बादाम पिशौरी	३२)	।॥-)	
बाकला	१६)	॥)	
बावची	७)	।)	
बाँसा मूलत्वक्	३०)	॥।=)	
बाँसा पुष्प		१॥)	=)
बाँसा पत्र	३॥)	=)	
बाँसा मूल	१५)	॥)	

	मनका भाव	सेरका भाव	५ तोलेका भाव
विजयाबीज	२०)	॥=)	
बिहीदाना नं. १		१।॥=)	=)
बिहीदाना नं. २		१॥)	-)॥।
बिस्फायज	३७)	१)	-)।
बिदारी कन्द	१६)	॥)	
बिधारा बीज		३॥)	।)
बिधारा मूल	१२)	।=)	
बीजाबोल		१।=)	=)
बिडंग	७)	≡)॥	
बिल्वत्वक्	१०)	।-)	
बिल्व फल	५॥)	≡)	
बिच्छू बूटी	१६)	॥)	
बिजयसार छाल	२२)	॥=)	
बिदारी कन्द	३५)	१)	-)।
बीजबन्द काले	२०)	॥=)	
बीजबन्द लाल	१२)	।=)	
ब्रह्मी	२०)	॥=)	
ब्रह्मदण्डी	१०)	।-)	
वरुणत्वक्	१२)	।=)	
वायु दमनी मूल		१)	-)।
वंशलोचन नं. १		१२॥)	।॥-)
वंशलोचन नं. २		९।)	॥=)
वंशलोचन नं. ३		७)	॥)
बूरा अरमनी	२८)	।॥)	
बेख सोसन	३२)	।॥=)	
बेख कासनी	७॥)	।)	
बेख बादयान	५॥)	≡)	
बेख बाबूना	११॥)	।-)	
भल्लातक (भिलावा)	७)	।)	
भारंगी	१०)	।-)	
भांगरा पंचांग	१२)	।≡)	
भू आँवला	१६)	॥)	
भूतकेशी	१२)	।=)	
भोजपत्र	१०)	।-)	
मछेली	१२)	।=)	

	मनका भाव	सेरका भाव	५ तोलेका भाव
मकोयदाना	१३)	।=)	
मकोयपंचांग	१०)	।–)	
मुनक्का काला	२७)	।॥)	
मुनक्का श्वेत	२०)	॥=)	
मखाना	४२)	१।)	–)॥
मगज कद्दू	४२)	१=)	–)॥
मगज खरबूजा	४०)	१–)	–)।
मगज खीरा	३२)	।॥=)	
मगज तरबूज	१५)	।≡)	
मगज बादाम	४५)	१≡)	
मस्तगी रूमी असली		२।॥=)	
मरोड़ फली	६)	≡)	
मदन फल	५॥)	≡)	
मयूर शिखा	६५)	१।॥)	
ममीरी मूल नं. १		८)	॥=)
ममीरी मूल नं. २		१।॥)	=)
मँजीठ	१७)	॥)	
महाबला	२०)	॥–)	
महुआ फूल	१५)	॥)	
महुआ छाल	१२)	।=)	
माजूफल	५६)	१॥)	=)
माषपर्णी	१७)	॥)	
मिर्च श्वेत	४८)	१।–)	–)॥
मिर्च काली	२५)	॥≡)	
मुचकुन्द पुष्प	३५)	१)	–)॥
मुद्गपर्णी	१६)	॥)	
मूसली श्वेत नं. १		२॥)	≡)
मूसली श्वेत नं. २		२)	=)।
मूसली श्वेत नं. ३		१।॥)	=)
मूसली श्वेत नं. ४		१।=)	–)॥।
मूसली श्याम	२२)	॥=)	
मुलहटी	११)	।–)	
मालकंगनी	१२)	।=)	
मुरमकी (बोल)		१।–)	–)॥
मूर्वा	२०)	॥=)	

	मनका भाव	सेरका भाव	५ तोलेका भाव
मुश्कतरामसी	१८)	॥)	
मांई	५)	=)॥	
मेढ़ासिंगी	१६)	॥)	
मेंहदीपत्र	६।)	≡)	
मेंहदीपीसी हुई नं० १	९॥)	।)	
मेंहदीपिसी नं० २	८)	≡)॥	
मैदा लकड़ी	६)	≡)	
मोचरस असली	२२)	॥=)	
मौलश्रीत्वक्	३५)	१)	–)।
मेदा (शकाकल छोटी)	२०)	॥=)	
महामेदा (शकाकल बड़ी)	१५)	॥)	
रतनजोत	७)	।)	
रसांजन (रसौंत)	१८)	॥–)	
रास्ना पत्र असली	१५)	॥)	
रास्ना मूल बंगाल	२०)	॥=)	
राल	१७)	॥)	
राई	५)	=)॥	
रीठा	४)	=)	
रेणुका बीज गोल	३५)	१)	–)।
रेवन्द चीनी नं० १	२५)	।॥)	–)
रेवन्द खताई		२)	=)॥
रेवन्द उशारा		३।॥)	।)
रेशा खत्मी	१२॥)	।=)	
रोहिषतृण मूल	२०)	॥=)	
रुद्रवन्ती		२)	=)॥
रब्बुलसूस		३।)	≡)॥
रोहितक छाल	१५)	॥)	
लता कस्तूरी		२)	=)॥
लाजवन्ती (पंचांग)	१०)	।–)	
लाजवन्ती बीज	१५)	।≡)	
लवंग (लौंग)		१≡)	–)।
लांगली मूल		५॥)	।=)
लोध्र पठानी	८)	।)	
लोबान कौड़िया		१।≡)	
शकर तगयाल		१)	–)।

	मनका भाव	सेरका भाव	५ तोलेका भाव
शंख पुष्पी	१५)	॥)	
शरपुखाँ	५)	=)॥	
शाल-पर्णी	१२)	।=)	
शिलारस		२)	=)॥
शिव लिंगीबीज		४॥)	।-)
शीरखिस्त देसी		५२)	३॥)
शीरखिस्त (विलायती)		१२)	॥-)
श्योनाक छाल	१०)	।-)	
सपिस्तान	५)	=)॥	
सतावर	१५)	॥)	
सातला	१२)	।=)	
सकमूनिया		३।) पौण्ड	
समुद्रशोष	६) मन	≡) सेर	
सत्यानाशीबीज		१)	-)।
सत्यानाशी पञ्चाङ्ग	१२)	।=)	
समुद्रफल	१२)	।=)	
सप्तरंगी	३५)	१)	-)।
सप्तपर्णत्वक्	३५)	१)	-)।
सौंफ नं० १	१७)	॥)	
सौंफ नं० २	१२॥)	।=)	
सनाय	१०)	।-)	
सालव मिश्री नं० १		५॥)	।=)
सालव मिश्री नं० २		४)	।-)
सालव मिश्री नं० ३		२॥)	≡)।
सालव पंजा वृद्धि)		५)	।=)
सालव लहसुनी	२७)	॥।)	
सिंघाड़ा	९)	।-)	
सिरसछाल	१०)	।-)	
सिरस बीज	१८)	॥)	
सुपारी दक्षिणी		१।≡)	=)
सुगन्ध बाला	७॥)	।)	
सोहांजन छाल	१०)	।-)	
सोहांजन बीज		१॥।)	=)
सिंवलकी मूसली	१७)	॥)	
सोया	६)	≡)	
सोंठ देसी	१७)	॥)	
सोंठ पूर्वी	१३)	।=)	
सुन्दररस	२७)	॥।)	
सुरंजाशीरीं	६०)	१॥-)	
सुरंजा तल्ख	२०)	॥-)	
स्थौणेयक		२)	=)॥
स्नुहीक्षीर		२॥)	≡)
स्वेत कनेर पुष्प		२)	=)॥
हब्बुल्लास	१२)	।=)	
हरमल	३॥)	=)	
हाउबेर	७॥)	।)	
हाथी सुण्डी	७)	।)	
हिंगुपत्री	१२)	।=)	
हींग अंगुरी नं० १		८)	॥=)
हींग अंगुरी नं० २		६)	।≡)
हींग तालाव		३॥)	।)
हींग बाजारी नं० १		२)	=)॥
हींग बाजारी नं० २		१॥)	=)
हींग हीरा		५)	।=)
हुब्बविलसाँ		१।=)	-)॥
क्षीर काकोली (बंगाल)		४)	।-)
क्षीरबिदारी	२५)	॥।)	

दी पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी

— द्वारा —

आविष्कृत

गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया

— द्वारा —

रजिस्टर्ड

हजारों बारकी परीक्षित औषधियाँ

आविष्कर्ता

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी-

द्वारा आविष्कृत

हजारों बारकी परीक्षित औषधियाँ

अनेमीन

(पाण्डु कमला, हलीमककी बे नजीर औषध)

योग—मण्डूर, चित्रक, कुटकी, त्रिकुट, त्रिफलादि।

लाभ—विषमज्वरके पश्चात् यकृत प्लीहा बढ़ जानेपर यह दवा लाभ करती है। शरीरमें रक्तकी कमीको दूर करती है। एक सप्ताहके सेवनसे ही इसका चमत्कारपूर्ण प्रभाव दिखायी देता है। कितनी भी निर्बलता क्यों न हो एक सप्ताहमें जाती रहती है।

सेवन—दही, तक्र या दूधसे सेवन करावें।

रक्त-कमी, शोथ, जलोदर आदि रोगोंमें रामबाण है।

१४ खुराकका पैकट १)

अलसोरीन

(मुँहके छालोंकी अजीब दवा)

योग—तवाशीर, इलायची, खुम्भीका आटा, गगनधूल, पृश्नपर्णीके बीज इत्यादि।

लाभ—उदर-विकार, गर्मी उपदंशविकार आदि किसी भी कठिनसे कठिन कारणसे मुंहमें छाले पड़ते हों और ज़ख्म बने रहते हों, यह उन ज़ख्मोंको भरनेमें बे नज़ीर वस्तु है। मुंहमें छिड़कते ही ठंडक मिलती है, और दर्द शीघ्र ही जाता रहता है।

१ औंसका पैकट १)

आस्थमीन

यह दवा दमाके दौरेपर अच्छा काम देती है तथा दो तीन मास नित्य सेवन करते रहनेपर दमा जाता रहता है।

सेवन विधि—१ गोली सुबह शाम पानीके साथ सेवन करे। मूल्य १)

औपथलमीन

यह दवा आँखकी नीचे लिखी बीमारियोंमें अत्यन्त फायदेमन्द है—

आँख आना या आँख दुखना, आँखकी पुरानी लाली, आँखके गोलकोंका दर्द, रोहे या कुकरे, धुन्ध, जाला, आँखसे पानी जाना, आँखमें ज्यादा कीचड़ या मैल आना इत्यादि। आँखके आनेपर या अभिष्यन्द होनेपर फौरन लाभ दिखाती है।

सेवन विधि—बहुत थोड़ी दवा को शलाका (सुरमा लगानेकी सलाई) पर लगाकर आँखमें लगावें। सुबह शाम दोनों समय आँखमें डालना चाहिये। मूल्य १)

एस. टुथ पावडर

(सर्वश्रेष्ठ सुगन्धित मंजन)

लाभ—दाँतोंका दर्द दाँतोंमें पानी लगना, मसूड़ोंमें वरम हो जाना और दाँतोंका कमजोर होकर हिलने लगना, मुंहसे दुर्गन्ध आना इत्यादि जितनी भी दाँतों व मसूढ़ोंकी बीमारियाँ हैं सबको दूर करके दाँतोंको मजबूत व चमकीला बना देता है।

सेवन विधि—बुरुश वा दन्तधावनके साथ उक्त मंजनको दाँतोंपर खूब मलना चाहिये। और पानीसे कुल्ला कर डालना चाहिये।

मूल्य ।=) प्रति पैकेट

एलोप्सीन

कभी-कभी एकाएक सिरके या दाढ़ी मूंछके बाल गिरने लग जाते हैं और दुवन्नी-चवन्नीके बराबर जगह बिल्कुल साफ हो जाती है। इस रोगको बालचर या बालखोरा कहते हैं। इसके लिये हमारी यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है। दो-तीन बारके लगानेपर नये बाल उत्पन्न हो जाते हैं।

सेवन विधि—जहाँसे बाल उड़ गये हों वहाँ उस्तरसे मामूली चोभा (पच्छु) लगाकर उसपर दवाई मल दें। चार-पाँच दिनके बाद फिर इसी प्रकार करें।   मूल्य १)

नवीन शोध, नवीन आविष्कार

ओज़ीना

(नये जुकाम, पीनसकी तत्काल फलप्रद औषध)

योग—बादाम, मगज चार मगज बादाम, गुल-गावजवाँ, वनफशा, संगयरस्व अकीक भस्म आदि।

यह औषध माजून (पाक) के रूपमें तैय्यार की गयी है। खानेमें बड़ी स्वादिष्ट है।

गुण—जिन व्यक्तियोंको महीनेमें कई बार जुकाम हो जाता हो, जुकामके कारण दिमाग कमजोर हो गया हो, लिखने-पढ़नेका काम दिमागी थकावटसे न कर सकते हों, शिरमें दर्द रहता हो, याददाश्त (स्मृतिशक्ति) अत्यन्त निर्बल हो चुकी हो, जुकाम बिगड़कर पीनस बन गया हो, और शारीरिक प्रकृति बिगड़कर अत्यन्त निर्बल हो रही हो, साधारण लाल मिर्च, खटाईसे चट जुकाम हो जाता हो, कोई औषध शरीरके अनुकूल न बैठती हो। ऐसी दशाओंमेंसे कोई भी रोगकी दशा हो--उसमें ओजीनाका प्रयोग चमत्कार पूर्ण लाभ दिखाता है। और इसके कुछ कालके सेवनसे पुरानीसे पुरानी दिमागी कमजोरी जाती रहती है। सर्वसाधारणके लाभार्थ १० तोला माजूनका मूल्य बन्द पैकेट १) रखा है।

एट्रोफील

(मसान रोगकी अद्भुत दवा)

यह दवा बच्चोंको सूखा रोग (मसान) में अत्यन्त फायदा करती है। जिन बच्चोंको मोतीझरा बुखारके पश्चात् या बुखार बने रहनेकी हालतमें सूखाकी बीमारी लग जाती है और बच्चा सूखता चला जाता है, जिसको लोग मसान या परछायीं भी कहते हैं। इस बीमारीमें यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करनेसे बच्चेका सूखापन दूर होकर खूब मोटा ताजा हो जाता है।

प्रयोग—१ गोली सुबह और एक गोली शामको पानीसे सेवन करावें। खानेके लिये दूध, फल। रोटी बन्दकर दें।   मूल्य १)

एस. वेजीटेबोल

(विष्टम्भहर और रेचक)

योग—हिंगुल, गन्धक, चोकसत्व, त्रिवृत्ता, त्रिकुटादि।

लाभ—रात्रिको सोते समय १ से २ गोलीतक यदि खायी जायँ तो सुबह एक पायखाना साफ लाता है। और दिनमें तीनसे चार गोलीतक खायी जायँ तो चार-पाँच बार जुलाब आकर उदर साफ हो जाता है। इसके सेवनसे मरोड़, दाहादिका कोई कष्ट नहीं होता।

सेवन विधि—१, २ गोलीवाला कैपसूल रात्रिको गर्म दूधसे और जुलाबके लिये दिनमें ३,४ गोलीवाला कैपसूल गर्म पानीसे दें। पथ्य घृतयुक्त खिचड़ी।

८० गोली बन्द कैपसूलमें बन्द हैं, मूल्य १) प्रति पैकेट।

एस. डिस्पेपसोल

योग—लवण, त्रिकुटा, हींग, जीरा, सत्व अजवायन, पुदीना आदिका सम्मिश्रित सर्वश्रेष्ठ स्वादिष्ट चूर्ण।

लाभ—बदहजमी, खट्टे डकार, वमन, मतली,

अतिसार उदर पीड़ा आदिको दूर करता है।

स्वादिष्ट इतना है कि छोटे बच्चे भी बड़े प्रेमसे खा लेते हैं।

सेवन विधि—आवश्यकताके समय थोड़ा चूर्ण जबानपर रखकर चाटना चाहिये।

एक पावका पैकेट मूल्य १)

एस. पायोरीन

योग—चूना, हरताल, सज्जी, पारद, सिरका, क्रियाजोल इत्यादि।

लाभ—यह धारणा अब छोड़ दो कि पायोरिया दाँत निकलवाकर ही जा सकता है। दाँतको यदि स्थिर रखकर लाभ उठाना चाहते हो तो एकबार इस मंजनका अवश्य प्रयोग करो। इस मंजनके प्रयोगसे एक तो गला हुआ मांस ठीक होकर पुनः भरने लगता है, दूसरे हिलते हुए दाँत फिर मजबूत हो जाते हैं। इसका मूल्य २॥) था किन्तु प्रचारार्थ मूल्य एकदम घटा दिया गया है।

सेवन विधि—ब्रुश या दातौनसे मंजनको वहाँ-पर अच्छी तरह मलो जहाँसे पाक निकलती हो। बादमें गर्म जलसे कुल्ली कर डालो इस प्रकार दोनों समय करो। मूल्य १) प्रति पैकेट

कॅटारीन

दमाकी बीमारी, पुरानी खाँसी, या किसी और फेफड़ेकी बीमारियोंके कारण जब श्लेष्म अत्यधिक निकलती हो, सुबहके समय सेरों बलगम खारिज होती हो और बलगमकी अधिकतासे रोगी अधिक कमजोर हो चुका हो तो कॅटारीनके सेवनसे अत्यन्त फायदा होता है। पहले ही दिन बलगम घटकर बहुत कम हो जाती है। बलगम घटनेपर रोगीको बहुत आराम मिलने लगता है।

मात्रा—चौथाई ग्रीन ($\frac{1}{2}$ रत्ती) पान-पत्रपर लगाकर खायें।

फार्मूला—आर्सेनिक, सल्फर मिश्रित वानस्पतिक तेल।

पथ्य—खटाई, तेल, कब्जकारी वस्तुओंसे बचें।

मूल्य १) प्रति पैकेट

क्वारटीन

चौथे दिन चढ़ने वाला मलेरिया बुखार, जिसको चौथा बुखार या चौथय्या बुखार कहते हैं, चाहे पुराना हो या नया यह दवा हरएकको शर्तिया फायदा करती है।

सेवन विधि—५ रत्ती दवाको जलके साथ दिनमें दो दफ़ा सुबह शाम एक सप्ताहतक सेवन करावें।

पथ्य—एक सप्ताहतक दूध—रोटी, दूध, चावल चीनी मीठा युक्त। मूल्य १) प्रति पैकट

क्लो आज़मीन

बहुतसे आदमियोंकी छाती या पीठपर हलके श्वेत या मटयैले दाग उत्पन्न हो जाते हैं और उनसे कभी-कभी भूसी भी उतरती रहती है, कभी-कभी गर्मीसे चिनगारियाँ-सी भी उठती हैं, कई इस व्याधिको सेहुँआ, कई छींप कहते हैं। इसके लिये यह दवा बहुत ही आश्चर्य-जनक लाभ दिखाती है। इस रोगका सफेद कोढ़ या फुलबहरीसे कोई सम्बन्ध नहीं।

सेवन विधि—आध तोला दवाको ५ तोला दहीमें मिलाकर दागोंपर खूब मलना चाहिये। जब दवा मलते-मलते सूख जाय तो पश्चात् स्नान कर लेना चाहिये। मूल्य १) प्रति पैकट

कफसोल

राजयक्ष्माकी खाँसीको त्यागकर बाकी प्रत्येक खाँसीमें इससे अवश्य लाभ होता है। श्लेष्मज श्वाँस, दौरेके श्वाँसको भी रोकती है। इसके सेवनसे पुरानीसे पुरानी खाँसी जाती रहती है।

सेवन-विधि—उष्ण प्रकृतिवालोंको किसी शीतल शर्बतसे और शीत प्रकृतिवालेको शहदसे दें। मात्रा $\frac{1}{2}$ से १ रत्तीतक। १ औंस पैकेटका मूल्य १)

खोराञ्जन

(पड़वालका अद्भुत सुरमा)

योग—सुरमा अस्फहानी, (सौवीरांजन) अंजकृत, सुहागा, मनःशिलादि ।

लाभ—जिन व्यक्तियोंकी पलकें सुर्ख और मोटी होकर उनमें फुंसी निकला करती हैं तथा आँखोंमें बाल चुभते रहते हैं, जिनको पड़वाल या पद्मकोप भी कहते हैं । इस अंजनके लगानेसे उक्त रोग समूल जाता रहता है तथा पलक पतली हो जानेपर पड़वालोंका आँखोंमें पड़ना या चुभना जाता रहता है ।

६ माशेकी शीशीका पैकेट, मूल्य १)

गनरोल

(सुजाक, मूत्रकृच्छ्रकी रामबाण दवा)

योग—सन्दल सत्व बिरोजा, लोबान, रेशाखत्मी, सर्द चीनी आदिका विशेष सम्मेलन ।

लाभ—यह योग इतना अद्भुत है कि तीव्रसे तीव्र और जीर्णसे जीर्ण सुजाकमें भी अवश्य लाभ करता है । इसकी पहली ही मात्रासे लाभ दिखायी देता है । कृच्छ्रता तो दवा खानेके तीन घण्टे बाद बन्द हो जाती है और जख्म दो तीन दिनमें भर जाता है ।

२४ कैपस्यूलका पैकेट मूल्य १॥)

डाई सेन्ट्रोल

(पेचिश मरोड़की अचूक दवा)

योग—हरीतकी, भाँग, पोस्तडोडा, सौंफ, सुंठी, बनबकरी आदि ।

लाभ—यह औषध ९९ प्रतिशत व्यक्तियोंको पेचिशमें अवश्य ही लाभ करती है । कैसा ही मरोड़ हो; आँव और खून जाता हो, दिनमें तीन चार मात्रा खाते ही आराम हो जाता है । पुरानेसे पुराने पेचिशवाले भी इसके सेवनसे निराश नहीं हुए ।

४ औंसका पैकेट मूल्य १)

डिलेरीन

मन्थर ज्वर, फुफ्फुस प्रदाह, प्रसूत ज्वर, इन्फ्लूएंजा आदिके होनेपर जब अधिक ज्वर होकर मनुष्यको सरसाम या सन्निपात हो जाता है और रोगी अधिक बकवास करता है, नींद नहीं आती, हाथ-पैर मारता है या बेहोश पड़ा रहता है, ऐसी हालतमें हमारा यह औषध दो-दो घण्टेके बाद खिलानेसे रोगीकी सन्निपातिक अवस्था जाती रहती है ।

खुराक—१ गोली अद्रक रस या शहदसे दें । ऐसे बीमारको खुराकके लिये कोई दूध वगैरह गिजा तबतक नहीं देनी चाहिये जबतक होश-हवास दुरुस्त न हो जाय । १४ खुराक मूल्य २)

डायसेन्ट्री पिल्स्

यह औषधि पेचिशके लिये अत्यन्त लाभदायी है । नयी बीमारीमें सेवनसे पहले हलका-सा जुलाब जरूर दें । जुलाब हो जानेके तीन-चार घण्टे बाद दही, जल या तक्रके साथ इसको सेवन करें । दिनमें दो दफा दे—सुबह-शाम ।

पथ्य—पेचिशकी दशामें दहीसे वा छाछसे चावल खायें । मूल्य १)

डिफनेस्सीन ऑइल

जिन भाइयोंको अधिक क्वनैन, जमाल गोटा (जैपाल बीज) संखिया वगैरह अत्यन्त गर्म खुश्क चीजें खानेसे कानोंमें खुश्की पहुँचकर बहरापन हो जाता है और कानमें ज्यादा पपड़ीदार सूखा मैल बनता रहता है, या कानमें सूखा दर्द रहता है । कानकी झिल्ली नरम पड़ जाती है और किसी तिनकाका स्पर्श भी असह्य होता है, उनके लिये यह तेल अत्यन्त लाभदायी है ।

सेवन विधि—रात्रिको सोते समय शीशीको हिलाकर इस तेलकी चार बूँदें कानमें डालकर सो जायें, तेल कानमें ही पड़ा रहे । दूसरे दिन दूसरे कानमें छोड़े । इस तरह कुछ दिन करनेपर एक तो कानमें झिल्ली या मैलका बनना बन्द हो जाता है,

दूसरे सुनाई देने लग जाता है। कुछ दिनके सेवनसे कान खुल जाते हैं। प्रति पैकेट मूल्य १)

डायेरीन

बच्चोंको या वृद्धोंको पेटकी खराबीसे या बदहजमीसे या बच्चोंके दाँत निकलनेके कारण या किसी और अज्ञात कारणसे एकदम दस्त शुरू हो जाते हैं तो ऐसी अवस्थामें इस औषधके प्रयोगसे एक बार अवश्य ही दस्त बन्द हो जाते हैं। पश्चात् विशेष कारणको देखकर चिकित्सा-क्रम जारी कर सकते हैं। यह औषध तो जनरल तौरपर दस्त बन्द करनेके काम आनेवाली अचूक वस्तु है।

मूल्य प्रति पैकेट ८० गोली १)

नेफरोलीन

(वरम गुर्दा, दर्द गुर्दाकी लासानी दवा)

योग—विशेष वनस्पतियोंके क्षार तथा सत्व हैं।

लाभ—वृक्कशोथ से, वृक्कराजिकासे, अश्मरी रहित किसी प्रकारका वृक्कशूल हो सबमें लाभकारी है। चार-पाँच मात्रा सेवन करते ही आश्चर्यजनक लाभ होता है।

सेवन—एक रत्ती मात्रा शहदसे दोनों समय सेवन करावें।

२१ मात्राका मूल्य १)

नासाॅश-हर घृत

कई व्यक्तियोंका जीर्ण प्रतिश्याय (नजला) के बने रहनेपर नाकके रास्ते बन्द हो जाते हैं। कइयोंके नाकके भीतरकी झिल्ली फूल जाती है जिससे उन्हें श्वास लेना कठिन होता है कई व्यक्तियोंको नाकके रास्तेमें रसौली या मस्से हो जाते हैं और वह बड़ी तकलीफ देते हैं। हमारे इस घृतके कुछ दिन सूँघनेसे नाककी झिल्ली अपनी जगहपर आ जाती है फूला हुआ भाग छँट जाता है और मस्से या रसौली गलकर निकल जाती है।

प्रयोग-दवाकी दो-तीन बूँद अँगुलीपर लगा कर सूँघें।

सावधानी—सूँघनेके पश्चात् लेटना नहीं चाहिये, न लेटकर सूँघना चाहिये। कीमत १)

न्यूमोनिओल

(बच्चों व बूढ़ोंके लिये न्यूमोनियाकी दवा)

न्यूमोनियाकी प्रत्येक अवस्थामें इसका सेवन डेढ़-डेढ़ घण्टेके बाद किसी वैद्य व डाक्टरकी देखरेखमें कराते रहनेसे फुफ्फुस व श्वासनालीपर पड़ा हुआ न्यूमोनियाका प्रभाव दब जाता है और रोगी मियाद पूरी होनेतक अच्छा हो जाता है।

सेवन विधि—बढ़ी हुई बीमारीमें घंटा-घंटा बाद शहद और अद्रक रससे सेवन करावें।

१४ गोलीका मूल्य १)

नजलोल

(नजलेकी अपूर्व औषध)

योग—जायफल, जावित्री, लौंग, कुचला आदि।

लाभ—नज़ला चाहे हलकमें गिरता हो या नाकके रास्तेसे बहता हो चाहे सर्दीसे या गर्मीसे हो, नजलोल प्रत्येक प्रकृतिके व्यक्तिको अवश्य ही लाभ दिखाता है, और नये जुकामको तो पहली ही मात्रामें लाभ करता है, हरएक प्रकृतिके व्यक्ति इसे भिन्न-भिन्न अनुपानसे सेवन कर सकते हैं। सबको मुफीद पड़ता है।

सेवन विधि-एक गोली जलसे या शर्बतसे दें।

८० गोलीका पैकट १)

न्यूरेलजीन

(सूर्य्यावर्त, संखककी सूची वेधी अद्भुत् औषध)

योग—पेटेण्ट होनेसे बतलाया नहीं जा सकता।

लाभ—आयुर्वेदमें सर्व प्रथम सूचीवेधनद्वारा सिर दर्दको लाभ पहुँचानेवाली अद्भुत् औषध है एकबारके सूची वेधन करनेपर दर्द इस तरह जाता है जिस तरह मंत्रद्वारा भूत।

सेवन विधि—मामूली सुईको शुद्ध करके उसकी नोकपर दवा लगाकर १०, १५ दफा दर्दके मूल

स्थानपर चुभो दें और पुनः दवाको पोंछ डालें। बस दर्द छूमंतर समझें। एक शीशी हजारों बार काममें लाइये। मूल्य १)

पुन्सोल

(नामर्दीकी अचूक दवा)

योग--चन्द्रोदय,वंग, केशर आदिका विशेष योग।

लाभ--जिन व्यक्तियोंको इच्छानुसार समयपर चैतन्योदय नहीं होता, या मैथुनके समय शिथिलता आ जाती है। यह विकार चाहे हस्तमैथुनजन्य हो, या क्षीण वीर्यताके कारण अथवा मानसिक हो, सबमें लाभ करता है।

सेवन विधि—दूधसे एक गोली नित्य सेवन करावें। १४ खुराकका मूल्य १)

पुन्सोलीन (तिला)

योग—संखिया, केशर, बीरबहूटी, अकरकरा, कनेरछाल आदि।

लाभ—ध्वज भंग चाहे प्रकृति विपरीत मैथुनसे हुआ हो, या मानसिक विकारसे अथवा अति मैथुनसे हो. एकबार तो यह अपना फल अवश्य दिखाता है और नष्ट हुई शक्तिको पुनः नवजीवन देता है। आगे मनुष्यका भाग्य।

सेवन विधि—रात्रिको सोते समय दो बूँद तेलको इन्द्रीके ऊपर लगाकर मालिश करें। जब तेल सूख जाय तो पानका पत्र बाँध दें। दवा इन्द्रीके नीचे भागमें न लगने पावे, इस बातका सदा ध्यान रखें।

एक सप्ताहके सेवन योग्य पैकेटका मूल्य १)

प्लोरीन

(पार्श्वशूल या दर्द पसलीकी दवा)

लाभ—सर्दी लगकर या न्यूमोनियाके आरम्भमें जो श्वासके साथ पसलीमें दर्द उठता है और दर्दसे श्वास नहीं लिया जाता। उस समय इसकी एक मात्रा देते ही दर्द जाता रहता है। यह जोड़ोंके दर्द, बदनके दर्द, पेटके दर्दमें भी अपना चमत्कार दिखाती है।

सेवन विधि—१ से २ गोलीतक दर्दके समय गर्म पानीसे देवें। एक बारमें दर्द बंद न हो तो १ घण्टे बाद पुनः दें। १ औंसका पैकेट १)

फीवर पिल्स

बुखार जब आरम्भमें चढ़ता है तो उसी दिन यह पता नहीं लग जाता कि यह साधारण बुखार है या विशेष। तीन-चार दिन बुखारके होनेपर फिर कहीं चिकित्सक बुखारके कारणको मुश्किलसे जान पाता है। यह बड़े-बड़े वैद्योंके अनुभवकी बात है। पर, जबतक बुखारका ठीक-ठीक पता न लगे क्या दवा दी जाय? चिकित्सकके लिये जानना एक जटिल प्रश्न रहता है। हमने हजारों रोगियोंपर उक्त दवाको आरंभिक अवस्थामें देकर इसका खूब अनुभव लिया है। यह हरएक प्रकारके साधारण ज्वरको तो दो दिनमें अवश्य उतार देता है। जिनका बुखार दूर नहीं होता उनको यह दवा देनेसे यह अपने प्रभावसे ज्वरके रूपको भी प्रकट कर देती है और तीसरे या चौथे दिन चिह्न बिलकुल स्पष्ट हो जाते हैं जो निश्चित ज्वरोंमें पाये जाते हैं।

१०० गोलीका मूल्य १)

प्रूराईगोन

(खाज-खुजलीकी दवा)

लाभ—यह औषध प्रत्येक प्रकारकी गीली सूखी खारिश (खुजली) में अत्यन्त लाभप्रद है। यहाँतक कि इसके सेवनसे आठ-आठ दस-दस वर्षकी खारिश जड़से चली जाती है।

सेवन विधि—दवाको खरल या कूँड़ीमें डालकर उसमें ५ तोला तेल सरसोंका मिलाकर इतना खरल करें कि दवा अत्यन्त बारीक हो जाय फिर इसमें ऽ= तेल और मिलाकर रख लें। इसको खाजपर मालिश करनेसे तथा साबुन लगाकर पश्चात् स्नान करनेसे एक सप्ताहमें रोग जड़से चला जाता है।

मूल्य १ औं० का पैकेट १)

मेहोरीन

(प्रमेह धातुक्षीणता जरियानकी दवा)

लाभ—पेशाबके साथ मिलकर आनेवाली या पेशाबके पीछे आनेवाली धातुको रोकनेमें यह दवा बेनजीर वस्तु है, इससे भिन्न पेशाबमें शक्कर आनेको भी रोकती है तथा बहुमूत्रमें बड़ा ही लाभ करती है। बड़ी ही बल-वर्द्धक है।

सेवन विधि—दूध या पानीसे एक-एक गोली दोनों समय सेवन करावें।

१४ गोलीका मूल्य १)

मेमो

(तालु कंटक काक गिरनेकी दवा)

योग—तबासीर, इलायची, जहरमोहरा, संगयस्ब, अकीक, कमलगट्टा इत्यादि।

लाभ—जब बच्चोंका तालु लटक जाता है तो प्रायः प्रथम हरे पीले दस्त लग जाते हैं और अधिक दिनतक बने रहें तो दस्तोंमें आँव व रक्त आदि आने लगता है। बच्चा दिन-रात सिर मार-मारकर रोता रहता है। ऐसे रोगमें इस दवासे उक्त तालू-भागको दो-चार बार उठानेपर या दवा खिलानेपर अवश्य ही लाभ होता है।

सेवन विधि—शर्बत बनफशा या शहदमें मिलाकर चटावें।

मात्रा—एक माशा। १ औंसका पैकेट १)

रिनालक्रोलीन

(पथरी निकालनेवाली अद्भुत दवा)

योग—बेर पत्थरका विशेष योग।

लाभ—पथरी उत्पन्न होनेके कारण दर्द गुर्दा, वृक्कशूलकी अमोघ औषध है। १ मात्रा देते ही दस मिनटमें वृक्कशूल बन्द हो जाता है और मूत्र इतना अधिक आता है कि सारी पथरी घुलकर बाहर आ जाती है, हजारों बारकी आजमायी हुई औषध है, प्रचारार्थ मूल्य घटा दिया है।

सेवन विधि—दूध पानी मिलाकर उसके साथ सेवन करावें दिनमें दो बार। बड़ी पथरीमें कुछ दिन सेवन करावें।

२ औंस पैकेटका मूल्य १) डाक खर्च अलग।

रोमेटीन

(गठिया, आमवात, नुकरसको तत्काल लाभ करने वाली दवा)

लाभ—सन्धि बात, चलित बात, नुकरस, गठिया आदि व्याधि चाहे उपदंश जनित हो या स्वतन्त्र, नयी हो या पुरानी, सब में अवश्य लाभ करता है।

सेवन विधि—२ से ४ गोलीतक गरम जल से।

३२ गोलीका मूल्य १)

ल्यूकोरीन

(प्रदर, सीलानरहेमकी अचूक औषधि)

योग—त्रिवंग, अशोक सत्व, सुपारीके फूल, दोखी हीरा इत्यादि।

लाभ—स्त्रियोंको सफेद गुलाबी, रंगबिरंगा कई प्रकारका जो द्रव योनि मार्गसे जाने लगता है जिसके कारण कमरमें दर्द, भूखकी कमी व निर्बलतादि बढ़ती जाती है इस दवाके सेवनसे सब रफा हो जाती है।

सेवन विधि—चावलोंके धोवनसे या मुलतानी मिट्टी के निथरे जलसे एक-एक गोली दें।

१४ टिकियोंका पैकेट १)

ल्यूकोरीन वर्तिका

(प्रदर-विनाशी-वर्ति)

यह वर्तिका इतनी फलप्रद है कि रात्रिको एक बर्ती रखनेपर अगले दिन ही इसका चमत्कार पूर्ण फल दिखायी देता है। अनेक बार केवल बर्त्तीके प्रयोगसे ही प्रदरकी शिकायत जाती रहती है।

सेवन विधि—रातको सोते समय १ बर्ती जलमें डुबाकर योनि मार्गमें रखकर सो जाँय। दवा आप ही घुलकर निकल जाती है।

१४ गोलीका मूल्य १)

वर्टीगोन

जिन शख्सोंको किसी दिमागी कमजोरी, आँखकी कमजोरी, पेटकी बीमारी या आम कमजोरीके कारण उठते-बैठते चक्कर आते हों, सिरमें धक्के लगते हों, घुमेर पड़ता हो, आँखोंके आगे अन्धेरा आ जाता हो, ऐसोंको यह दवा अत्यन्त फायदा करती है। पुराने सिरदर्दमें भी इससे फायदा होता है।

सेवन विधि—पानीके साथ १ गोली, दिनमें दो दफा सुबह-शाम सेवन करें।

२१ गोलीका पैकट मूल्य १)

विषमोल

(कुनैन सम लाभकारी मलेरियाकी दवा)

योग—हरताल, संखिया, शंख, चूना, सीप, इत्याद विशेष वस्तुएँ।

लाभ—सर्दीसे लगकर चढ़नेवाले बुखारोंमें तो यह दवा रामबाण है, और कुनैनसे निम्न बातोंमें विशेष है। एक तो कड़वी नहीं दूसरे चढ़े बुखारमें दीजिये, तीसरे गर्मी खुश्की नहीं करती, चौथे शर्बत, खटाई आदिके साथ दीजिये, पाँचवें लम्बे चौड़े परहेजकी जरूरत नहीं।

सेवन विधि—१ गोली शर्बत नीबू "सिकंजबीन" के साथ प्रभातको और एक गोली शामको दें।

८० गोलीका पैकट १)

शाही नस्य

(नसवार)

योग—केशर, कपूर, काश्मीरी पत्र, वच, कायफल इत्यादि।

लाभ—सिर दर्द, जुकाम, नजला, नाकमें छिछड़ा पड़ना और उससे नकसीर जाना आदि कष्टमें इसका सेवन कराइये और चमत्कारपूर्ण लाभ देखिये। १ शीशीका मूल्य ।)

शाही सुरमा

योग—कपूर भीमसैनी, ममीरा, सुरमा, सीसा इत्यादि।

लाभ—नेत्र ज्योतिका कम हो जाना, चश्मा लगानेकी आदत पड़ना, नेत्रकी खारिश, पानी जाना व मैल आना आदि कष्ट इसके सेवनसे दूर होकर अद्भुत लाभ होता है।

सेवन विधि—दोनों समय सलाईसे डाला जाता है। छोटी शीशी =) बड़ी शीशी ।)

स्प्लीनीन

विषम ज्वर अथवा अन्य ज्वरोंसे प्लीहा प्रायः बढ़ जाया करती है और प्लीहावृद्धिके कारण पेट बढ़ जाया करता है। खाना हज़म नहीं होता। हलका-सा ज्वर बना रहता है। हमारी यह औषध दस्त लाकर प्लीहाको छाँटती जाती है और एक सप्ताहके प्रयोगसे बिलकुल ठीक कर देती है। ज्वर जाता रहता है, भूख खूब लगने लगती है। नया रुधिर काफी बनने लगता है। दो-तीन सप्ताहमें रोगी बिलकुल स्वस्थ हो जाता है। एक सप्ताहकी औषधिका मूल्य १)

सेवन विधि—इस शीशीकी औषधि किसी बड़ी बोतलमें डाल दें और १० छटांक पानी मिलाकर खूब अच्छी तरह मिला दें और दोपहर भोजनके दो घण्टे बाद एक औन्स पीवें। मूल्य १)

स्क्रोफ़ोलीन

यह दवा उस कण्ठमालामें अच्छा लाभ करती है जो अभीतक फूटी न हो, नयी निकली हो। पेटकी कण्ठमालामें भी लाभदायी है। यदि गिलटियाँ दो चार महीनेकी हों तो बहुत जल्द फायदा होता है और दो चार सालकी हों तो दवाको कुछ दिन खाते रहनेसे गाँठें अपने आप बैठ जाती हैं।

परहेज—खटाई, तेल व भारी भोजन नहीं करना चाहिये।

मात्रा—डेढ माशा दवा पानीसे या अर्क कासनीसे या तक्रसे लें। दोनों समय शाम सुबह। मूल्य १)

स्वप्नोल

(स्वप्नदोषकी औषधि)

लाभ—अधिक स्त्री-चिन्तन, कुत्सित विचार-धारासे उत्तेजना आकर स्वप्नावस्थामें या अज्ञातावस्थामें रात्रिको वीर्य्यपात होना, और सप्ताहमें कई-कई बार होना इत्यादि विकारको बन्द कर देता है, वीर्य्यको गाढ़ा करता है; अंग शैथिल्यको दूर करता है, स्तम्भन शक्ति व पौरुष बढ़ाता है।

सेवनविधि—रात्रिको १ से २ गोलीतक दूधसे सेवन करें।

२८ गोलीका पैकट मूल्य १)

सिफलोल

(उपदंश आतशककी दवा)

योग—रसकपूर, दारचिकना, संखिया इत्यादिका विशेष योग।

लाभ—बिना मुँह आये ही यह दवा सिफलिसको जड़से उड़ा देती है और पुरानेसे पुराने सिफलिसके फिसादको दो सप्ताहमें दूर कर देती है। यहाँतक कि छोटे-मोटे फोड़े, हड्डियोंके फोड़ेतक मिट जाते हैं।

सेवनविधि—१ कैपसूलको पानीके साथ या दूधके साथ निगल जाना चाहिये। दवा निकालकर न खावें। इससे दस्त आते हैं। १४ कैपसूलका पैकेट १)

हेडीक्योरीन

(सिरदर्दकी चमत्कारिक दवा)

योग—रसचन्द्रिका बटीमें कुछ क्षार नौसादर आदिका संमिश्रण है।

लाभ—सर्दीसे, गर्मीसे, कब्जसे और बुखारके समय होनेवाले दर्दमें इसे दीजिये और १५-२० मिनिटमें इसका अद्भुत् लाभ देखिये। इसको कितना ही सेवन करें हृदय और रक्तपर बुरा प्रभाव नहीं होता।

पुरानेसे पुराने सिरदर्दमें या दौरेसे होनेवाले दर्दमें भी यह अपना पूर्ण लाभ दिखाती है।

सेवन विधि—१ गोली गर्म दूध या जलसे दर्दके समय दें। ४० टिकियोंका पैकट मूल्य ॥)

हुपीन

(बच्चोंकी काली खाँसीकी एकमात्र दवा)

लाभ—काली खाँसी या कुत्ता खाँसी ऐसी बुरी बीमारी है, कि इसकी चिकित्सा कठिन समझी जाती है, पर नहीं; आपको इस दवाके सेवनसे ज्ञात हो जायगा कि काली खाँसीकी चिकित्सा कोई कठिन नहीं। एक सप्ताहके सेवनसे अवश्य लाभ होता है।

सेवन विधि—आधी रत्तीसे १ रत्ती औषध शहदसे दोनों समय सेवन करावें।

१ औंसका पैकट १)

हिमसोल

(गर्मी, बुखार, घबराहटको दूर करनेवाली दवा)

योग—नाग, तवाशीर, इलायची, कमलगट्टा, चन्दन, मिश्री आदिका विशेष योग।

लाभ—बुखारकी अधिकता, घबराहट, अधिक गर्मी धूप, लू लगना, चक्कर, प्यास आदि कष्टमें इसका सेवन कराइये और अमृततुल्य लाभ देखिये। इसके समताकी औषध आपको किसी भी चिकित्सा में दिखायी नहीं देगी। यह प्लेगतकके बढ़ते हुए बुखारको रोक देती है।

सेवन विधि—गर्मी घबराहटके समय शर्बतसे, शीतल जलसे दिनमें, तीन-चार बार सेवन करावें।

कीमत १ औंसका पैकट १)

टिकियाँ बनानेका प्रबन्ध

हमने गोली टिक्की बनानेकी अच्छी मशीनें लगायीं हैं। जो वैद्य किसी भी औषधकी टिक्की और गोली बनवाना चाहें। हमसे पत्रव्यवहार करें। इससे भिन्न बादाम-रोगनकी मशीन भी हमने बेचनेके लिये बनवायी है जो वैद्य लेना चाहें पत्रद्वारा भाव तय कर लें।

—मैनेजर

आयुर्वेद-विज्ञान-ग्रन्थमाला

द्वारा

प्रकाशित पुस्तकें

आसव-विज्ञान

यह किसीसे छिपा नहीं कि आयुर्वेदका एक चमत्कारपूर्ण अंग आसवारिष्टका निर्माणक्रम हमारे पास कितने अपूर्ण रूपमें रह गया है। सौवार बनाइये कठिनतासे दो-चार बार खराब होनेसे बचता है। इसका मुख्य कारण है हमारी प्राचीन रीतिका लुप्त हो जाना। इसी लुप्तप्राय विधिको स्वामीजीने बड़े परिश्रमसे पुनः प्राप्त किया है और उसीको आधुनिक विज्ञानसे परिमार्जितकर उक्त पुस्तकमें सरल सुस्पष्ट रूपमें अंकित किया है। जिसका विस्तार निम्न है—

[१] आसवकी प्राचीनता और उसका ज्ञान, [२] आसवका व्यवहार और उसकी मादकताका अनुभव, [३] नाड़ीयन्त्रका आविष्कार और उसके भिन्न-भिन्न सचित्र रूप, [४] आसव, सुराकी पक्वता और उसके प्रमाण, [५] आयुर्वेदमें आसवका स्थान, [६] आसव बनानेका प्राचीन क्रम व भेद, [७] बने बिगड़े आसवकी परीक्षा, [८] आसव बिगड़नेका कारण और उसका विकृत रूप, [९] आसव और चुक्र अम्लादिमें भेद, [१०] आसव बननेका कारण, [११] आसवमें परिवर्तन और किण्व कीटाणु [१२] आसवोत्पादक वस्तुएँ और उनका परिणाम, [१३] उत्ताप ऋतु परिवर्तनादिसे आसवका बनना, बिगड़ना, [१४] भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें आसवका बनाना, [१५] बने बिगड़े आसवकी परीक्षा [१६] आसवको सुरक्षित रखनेका अनुभूत उपाय, [१७] आसव बनानेका अधिकार व राज्य नियम, [१८] आसवका शुद्धरूप और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण, [१९] आसवके मौलिक पदार्थ व उनका गुण इत्यादि बातोंका खूब अनुभव-जन्य वर्णन है। स्वामीजीने इस पुस्तकको दस वर्षके परिश्रमके पश्चात् लिखा है। मूल्य १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान

यह किसीसे छिपा नहीं कि आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धतिमें भिन्न भिन्न वानस्पत्योद्भूत क्षारोंका काफी प्रयोग होता है। किन्तु हम देखते हैं कि वैद्योंद्वारा बनाए हुए क्षार प्रायः मैले धूसर वर्ण, देखनेमें चित्ताकर्षक नहीं होते।

स्वामीजीने बड़े परिश्रमसे क्षार निर्माण-विधिका अनुभव किया है उसको वैद्योंके लाभार्थ क्रमबद्ध कर दिया है उसमें निम्नलिखित विषयोंका समावेश है—

आयुर्वैदिक-चिकित्सा-पद्धतिमें क्षारोंकी उपयोगिता। १. वनस्पतियोंके मौलिक तत्व व क्षारोद्भव धातुएँ। २. भिन्न-भिन्न क्षारोंका रसायनिक रूप। ३. भिन्न-भिन्न वनस्पतियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके क्षार-जन्य धातुओंकी मात्रा। ४. भिन्न-भिन्न वनस्पति भस्मसे क्षार निकालनेकी विधि। ५. क्षारोंको विशुद्ध स्वच्छ बनाकर उसको कण-रूपमें लाना। ६. भिन्न क्षारोंके गुण और वज्रक्षार आदिके बनानेका क्रम तथा क्षारोंका उपयोग इत्यादि विषयका खूब खुलासा वर्णन है। मूल्य प्रति पुस्तक ॥)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा

(आयुर्वैदिक चिकित्सापद्धतिमें क्रांति उत्पन्न करनेवाली प्रथम पुस्तक)

पन्द्रह वर्षके परिश्रमके पश्चात् श्री स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्यने आयुर्वेदान्तर्गत एक सरल चिकित्सा-पद्धतिको ढूँढ निकाला है जिसके अनु-

सार संचारी तथा असंचारी व्याधियोंकी चिकित्सा सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसी पद्धतिको समक्ष रखकर आपने व्याधि-मूल-विज्ञान, व्याधि-विज्ञान और चिकित्साविज्ञान नामक तीन बृहद् ग्रन्थ लिखे हैं।

पुस्तक और रागोंपर लिखी जाती परन्तु स्वामीजीने मन्थर ज्वरके बढ़ते हुए प्रकोपको देखकर सर्व प्रथम इसी रोगपर लेखनी उठाना उचित समझा।

यह रोग कोई भयंकर रोग नहीं है परन्तु माता-पिताकी अज्ञानता और अन्ध विश्वासके कारण ऐसा भयंकर हो जाता है कि रोगी प्रायः अकालमें ही कालकवलित हो जाते हैं और चिकित्सकोंके बनाये कुछ नहीं बनता।

स्वामीजी अबतक हजारों रोगियोंका उक्त पुस्तकमें वर्णित पद्धतिके अनुसार इलाज करके सफलता प्राप्त कर चुके हैं।

लेख ऐसा सरल और सुन्दर हैं कि बिलकुल आसानीसे समझमें आ जाता है।

पुस्तकका साईज २०×३० के १।१६ है और १७५ पृष्ठमें समाप्त हुई है। मूल्य १)

औषधि गुण परिचय

तथा

सेवनविधि

इसे हाथमें लेतेही आप आधे वैद्य बन जायेंगे! क्योंकि इसमें ☞

प्रायः समस्त विख्यात आयुर्वैदिक एवं हमारी पेटेण्ट औषधियोंके गुण, सेवन-विधि, तथा मात्रा आदिका निरूपण सरल भाषामें किया गया है।

एक आनेका टिकट आनेपर मुफ्त भेजी जायगी।

औषध-प्रवास-पेटिकायें

Medicine Boxes.

अबतक कार्यालय एक ही प्रकारकी प्रवास-पेटिकायें प्रस्तुत करता रहा है। वैद्य-समाजमें इनकी बढ़ती हुई मांगको देखकर कई प्रकारकी बढ़िया डिजायनवाली पेटियें बनवायी गयी हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये उन पेटियोंके भिन्न-भिन्न नाम, विस्तृत वर्णन तथा कीमतें नीचे दी जाती हैं।

नं १ प्रवास-पेटिका
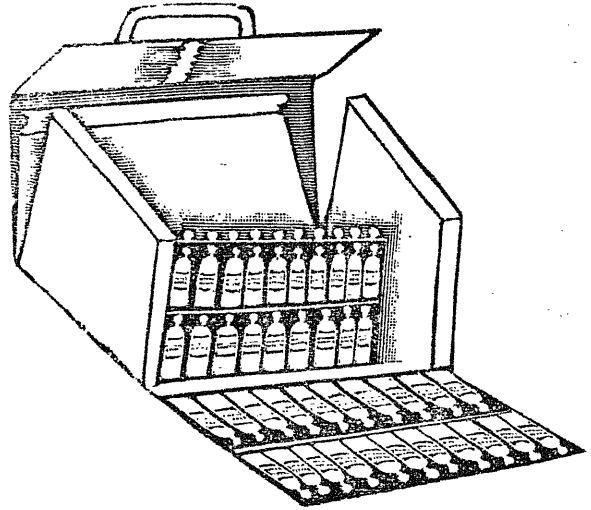
बहुसंख्यक वैद्योंके पत्र हमें प्राप्त हुए हैं। जिनमें प्रार्थना की गयी थी कि प्रवास-पेटिकाका दाम कुछ कम होना चाहिये ताकि इसे सब आसानीसे खरीद सकें। हमें भी वैद्यगणकी यह प्रार्थना उचित ही जान पड़ी लेकिन कठिनाई यह थी कि कारीगर कम दामपर मिलता ही न था। अब बहुत तलाश करनेके बाद एक कारीगर कुछ सस्ती उजरतपर काम करनेको तैयार हो गया है। अब हमें आयुर्वेद-प्रेमियोंको यह सूचना देते हुए हर्ष होता है कि प्रवास-पेटिकाके मूल्यमें २) की भारी रियायत कर दी गयी है। जो सज्जन नाम भी लिखवाना चाहें वे इस सम्बन्धमें मैनेजरसे पत्र व्यवहार करें।

अर्थात् शीशीरहित प्रवास-पेटिकाका मूल्य ५)

,, युक्त ,, ६।)

इसमें होमियोपैथीकी २ ड्रामवाली ६ दर्जन शीशियाँ होती हैं।

भिषगाभरण पेटिका
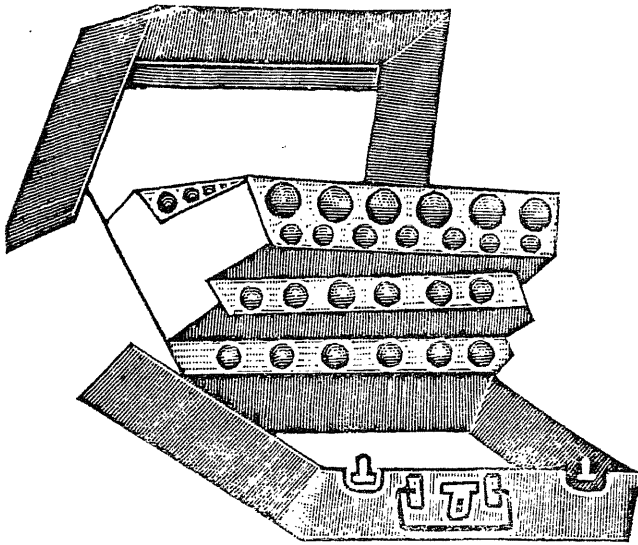
भिषगाभरण पेटिका—यह पेटी देवदारकी बनी और बढ़िया पालिशसे अलंकृत है। इसे देखते ही तबीयत फड़क उठती है। साइज १३×८×६ इंच

इसमें शीशियोंकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। यह वैद्यकी सजी सजाई लेबोटरी है। पेटी खड़ी हो या पड़ी शीशियाँ सीधी रहेंगी। १ औंसकी आसवकी १६ शीशियोंके लिये स्थान बने हुए हैं। २ औंसकी ६ गोल शीशियें चूर्णके लिये सजाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त तेल, भस्म इत्यादिके लिये तीस शीशियोंके लिये व्यवस्था है। वजन २ सेर ८ छ० बिना शीशीके ७) शीशी युक्तका ८॥)

सिद्धौषधिमंजूषा नमूना १—यह पेटी ७ इंच चौड़ी, १०½ इंच लम्बी और ४ इंच ऊँची है। इसमें दो ड्रामकी होम्योपैथिककी ७७ शीशियोंको तरतीबवार रखनेके लिये अत्युत्तम प्रबन्ध है। बक्स बढ़िया देवदारसे बनाया गया है। रेक्सीन क्लाथ, बढ़िया हैंडल ताला इत्यादिसे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। इस पेटीका वजन सिर्फ १३ छटाँक है—तिस परभी मूल्य सिर्फ—२।)

नमूना २—यह आकार, प्रकार तथा बनावटमें पहली पेटीसे मिलती-जुलती है। सिर्फ लम्बाईमें आध इञ्च अधिक है। इसमें आध औंसवाली चालीस शीशियोंके लिये समुचित प्रबन्ध है। वजन १२॥ छ०। मूल्य—२॥)

भैषज्य मणि मंजूषा—बढ़िया देवदारकी बनी, रेक्सीन क्लाथसे मढ़ी, चमचमाती पीतलकी कमानियोंसे कमनीय, हैण्डलसे सजी यह पेटिका देखते ही बनती है। पेटीके ऊपर पता कार्ड वगैरह लगानेके लिये अत्युत्तम प्रबन्ध है।

साइज़ ६ इंच चौड़ी, १४ इंच लम्बी, ५ इंच ऊँची है।

इसमें दो ट्रे हैं जिनमें प्रत्येकमें २ औंसकी ३० शीशियाँ तरतीबवार सजाई जाती हैं। एक ट्रे हटानेपर दूसरी ट्रे दिखायी देगी। एक पार्श्वमें रुई वगैरहके लिये खाना बना हुआ है। ऊपरके ढक्कनमें एक औंसकी २६ लम्बी शीशियोंके लिये व्यवस्था है। वजन १ सेर १३ छटाँक मूल्य ५॥)

नये डिजाइन, नये नमूने

टेबल मेडीसिन बक्स (मेज़ी औषध पेटी) नं. १—इस प्रकारकी पेटी अभीतक किसीने नहीं बनायी। इसके बनानेका श्रेय पञ्जाब आयुर्वैदिक
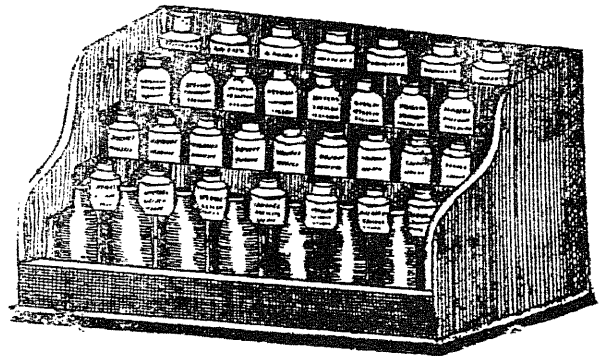
टेबल मेडीसिन बक्स नं० २

फार्मेसीको ही है। यह पेटी शिखराकार है इसके चारों ओर शीशियाँ सजाई जाती हैं इसका साइज १४ ×६॥ × ८ इंच है। इसकी सुन्दरता देखते ही बन पड़ती है। इसके ब्लौकको देखें, कैसा सुन्दर डिजाइन है। ऐसे सुन्दर और इतने सस्ते डिजाइन आपको अन्यत्र नहीं मिल सकते। इसमें २० शीशी चपटी १ औंसकी, १ औंसकी १६ शीशी और ४ औंसकी गोल ५ शीशी रखनेका स्थान है।

बगैर शीशीके	७)
शीशी सहित	८॥)

टेबल मेडिसीन बक्स (मेज़ी औषध पेटी) नं. २—यह पेटी भी मेज़पर रखनेकी है, इसका साइज १४½ × ६½ × ८½ इंच और आकार टाइपराइटरके समान है। इसमें शीशियाँ सीढ़ियोंके तुल्य चढ़ावमें गेलरीकी तरह रखी जाती हैं। मेज़पर इसकी शोभा बहुत उत्तम लगती है। ऐसी पेटी हरएक वैद्य या डाक्टरको अपनी मेज़की शोभा बढ़ानेकेलिये जरूर रखनी चाहिये।

इसमें ४ औंसकी ७ शीशी २ औंसकी ८ शीशी १ औंसकी १४ शीशी और ½ औंसकी ६ शीशी रखनेका स्थान है।

बगैर शीशीके	६॥)
शीशी सहित	८)

नोट—उपर्युक्त सब प्रकारकी पेटियोंके लिये आधा मूल्य पेशगी आना जरूरी है। यदि इनपर नाम आदि लिखवाना हो तो ग्राहकके लिखनेपर नाम भी लिखवाया जा सकता है। पर नाम लिखायीकी कीमत पेटीकी कीमतसे जुदा होगी।

दोरँगे अक्षरोंकी लिखायी एक आना प्रति अक्षर होगी।

२. जो व्यक्ति दर्जनोंकी तादादमें हमसे इकट्ठी पेटियाँ लेना चाहें वे मैनेजरसे पत्रव्यवहार करें।

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसीमें खाली शीशियोंके विक्रयका प्रबन्ध

कलमी शीशीका वजन	प्रति दर्जनका भाव	प्रति गुर्सका भाव
३ माशा	=)	१।)
६ माशा	=)	१॥)
१ तोला	≡)	१॥=)
२॥ ,,	।)	२)
५ ,,	।=)	३॥)
७॥ ,,	॥)	५)
१० ,,	॥=)	६)

शीशियाँ मैन्थल पेचदार ढकनवाली

६ माशा	≡)	२)
१ तोला	।)	२॥)
२॥ ,,	।≡)	४॥)
५ ,,	॥-)	६)
१० ,,	१।)	१४)

टैबलट शीशियाँ

६ माशा	॥)	५॥)
१। तोला	॥)	६)
१ औंस	॥-)	६।)
२ ,,	॥≡)	७॥)

कार्क ४ औंसतक ≡) गुर्स बड़े ।) गुर्स उससे बड़े ।-), ।=) गुर्स

नोट—चौथाई रुपया पेशगी आनेपर ही शीशियाँ भेजी जावेंगी।

मैनेजर
पी० ए० वी० फार्मेसी,
अमृतसर।

चिकित्सा संबंधी उपकरण

सूचिकाभरण पिचकारी
(Injection syringe)
टीका लगाने, सुइद्वारा त्वचाके भीतर दवा पहुँचानेकी पिचकारी । दो शी० की० ३), ६॥), ८।)

शरीरताप-मापक (Thermometer)
उत्तीलका १।) साधारण ॥)

दवाइयाँ मिलानेकी छुरी (Spatula)
बढ़िया ॥।) साधारण ॥)
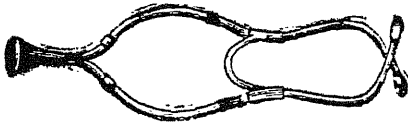
फुफ्फुस-परीक्षयन्त्र
(Stetboscope)
साधारण ३॥) मध्यम ६॥) उत्तम ८॥)
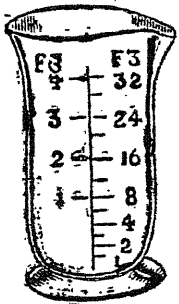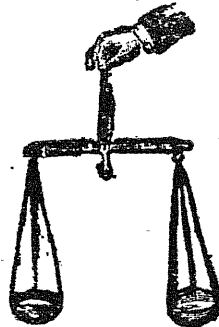
द्रव औषध-मापक
ग्लास १ औं० =)
२ औं० ≡)

औषध तोलनेका
अँगरेजी काँटा
मय बाँटके २)

कान धोनेकी पिचकारी साधारण २), बढ़िया बड़ी ६)
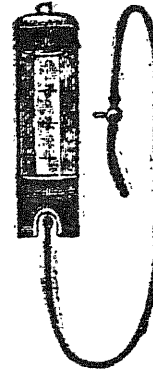
बस्ति यन्त्र रबरकी नाली टोंटी सहित, अनेमलका १॥।)
काँच का २॥।)
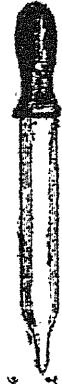
आँखमें दवा डालनेका ड्रापर
=) दर्जन

चीनीके खरल
२ न० का १।) ४ न० २॥।)
६ न० ५॥), ८), १०)

लोहेके खरल
१ फुट व्यास गहराई ६ इंच, मू० ८॥)

नोट—इससे भिन्न प्रत्येक चिकित्सामें काम आनेवाली डाक्टरी औषधियाँ व यंत्र हमारे यहाँसे किफायतके साथ मिल सकते हैं। प्रत्येक अंग्रेजी औषध व यंत्रका आर्डर देते समय चौथाई मूल्य पेशगी अवश्य भेजें।

मैनेजर, दि पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर।

पूर्ण संख्या २३३ —*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708

जिसके साथ अमृतसरका

आयुर्वेद विज्ञान

भी सम्मिलित है

भाग ३९ VOL. 39

सिंह संवत् १९९१

अगस्त, १९३४

संख्या ५ No. 5.

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी०एस-सी०, (गणित और भौतिक-विज्ञान) स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)

रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीव-विज्ञान) श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी०, (जंतु-विज्ञान)

श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज्ज-विज्ञान) सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्के पदाधिकारी

संवत् १९९०–१९९१ वि०

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत् तथा विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्द, दि पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिये।

विषय-सूची

बजरंगबली गुप्त विशारदने बनारस जालिपादेवीके श्रीसीताराम प्रेसमें छापा
और मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावन विहारीसिंहने प्रकाशित किया।

विज्ञानब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३६ } प्रयाग, सिंह, संवत् १९९१ । अगस्त, १९३४ { संख्या ५

मंगलाचरण

चर-गीत, शान्ति-मार्च (बैंडपर)

[ले० स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक]

शान्तिः शान्तिः शान्तिः दिशि दिशि
शान्तिः शान्तिः शान्तिः हृदि हृदि
शान्तिः शान्तिः भवतु सदा
भवतुहि भव-हित-रूपा, या
शान्तिः भव-हित, शान्तिः स्वभिमत, शान्तिः सुविहित, सूपाया
शान्तिः सुविहित-सूपाया
शान्तिः भवहित-रूपा, या
शान्तिः अविकल, शान्तिः अविचल, शान्तिः तप-फल-भूता, या
तप-फल, अविचल,अविकल, अविरल,अविरत-हरि-रति-रूपा, या
या उर-धार्य्या, आर्या या गुरु, या शुभ-कार्य्या, सकल-प्रिया,
या हरि-ध्येया, या ज्ञेया,
गुणि-गण-गदिता, या गेया

हमारे गाँवोंका सुधार

व्यावहारिक प्रयोग—ठोस काम

[ले० पं० हीरालाल शास्त्री, बी० ए०—जीवन-कुटीर, वनस्थली]

१. जीवन-कुटीर, वनस्थली मई १९२९ से अप्रैल १९३४

१. प्रस्तावना

ग्राम सुधारके कार्यमें अपना जीवन बितानेकी बात इस विवरणके लेखकको पहले-पहल १९१७ या १९१८में (जब वह करीब १८ वर्षकी उम्रका विद्यार्थी था) सूझी थी। उसके बाद तीन वर्ष लगाकर कॉलेजकी शिक्षा पूरी करनेपर उसने ६॥ वर्षतक जयपुर राज्यकी नौकरी की। आखिर १९२७ के दिसम्बरमें राज्यकी नौकरी छोड़ दी गयी और फिर १८ महीनेकी तैयारीके बाद मई १९२९में निवाई तहसील (जो कि जयपुर राज्यकी सबसे गरीब और पिछड़ी हुई तहसीलोंमें एक है) के वनथली नामक गाँवमें जीवन-कुटीरकी स्थापना हो गयी।

> भारतवर्ष सात लाख गाँवोंवाला खेतिहर देश है। गाँवोंका सुधार भारतका सुधार है। इसी दृष्टिसे ग्रामसेवाका भारी महत्त्व है। परन्तु इस संबंधमें जवानी जमाखर्च बहुत होता है। काम बहुत थोड़ा दिखायी देता है। ऐसे कोई-कोई स्थान हैं जहाँ गंभीरतासे ठोस काम हो रहा है। ऐसी ही जगह जयपुर राज्यमें वनथली (वनस्थली) एक गाँव है, वहाँ "जीवन-कुटीर" नामक आश्रम इसी मतलबसे पाँच बरससे स्थापित है। इसके संचालक श्रीहीरालालशास्त्री, बी० ए०, लगनके साथ काम करनेवाले धुनके पक्के हैं। विद्वान् हैं, विचारवान हैं, और व्यवहार-कुशल हैं। सांसारिक वैयक्तिक उन्नति और भविष्यकी उज्ज्वलताका सर्वथा परित्याग करके आपने दरिद्र-जीवन स्वीकार कर लिया। उनके कामका पाँच बरसोंका विवरण हम उन्हींके शब्दोंमें नीचे इसलिये देते हैं कि जिन लोगोंको ग्रामसेवाका हौसला हो वह इससे शिक्षा ग्रहण करें और लाभ उठावें।
>
> रा० गौड़।

२. क्षेत्रका विस्तार

शुरुकी कल्पना तो यह थी कि ग्रामसुधारके प्रयोगमें कमसे कम १०,००० जनसंख्याको शामिल किया जावे—परन्तु बादमें अनुभवने बतलाया कि प्राप्त शक्तिके मुकाबिलेमें १०,००० जनसंख्या ज्यादा है। इसलिये अब बृहत्-क्षेत्रके ८४ गाँवोंके अलावा कुटीरका काम पास-पासमें बसे हुए और ५००० जनसंख्या वाले केवल १६ गाँवोंमें फैला हुआ है। कामके बँटवारेके सुभीतेके लिये इन १६ गाँवोंको ५ उपक्षेत्रोंमें बाँट रखा है।

३. ग्राम सेवाकी समस्याकी रूप-रेखा

पिछले पाँच वर्षोंमें हमने ग्रामोंकी दशाका जो प्रत्यक्ष अनुभव किया है उसका कुछ अपूर्ण-सा सार इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

(१) ग्रामवासीको वर्षके अधिकांश महीनोंमें तो कड़ा परिश्रम करना पड़ता है—परन्तु लगभग तीन महीनेतक उसको मजबूरन् बेकार रहना पड़ता है। तीन महीनोंमेंसे बतौर छुट्टीके एक महीना निकाल दिया जाय तब भी ग्रामवासीको दो महीनेकी नकी फुरसत रहती है—जिसके लिये उसको अवश्य ही कोई सहायक धंधा तलाश करना चाहिये।

(२) मामूली तौरसे तो ग्रामवासी समझदार होता है—परन्तु शिक्षा और जानकारी न होनेके कारण वह अपने

हित-सम्बन्धी बड़े मामलोंके विषयमें बड़ा अड़ियल और उन्नतिका विरोधी है।

(३) कुछ तो गरीबीके कारण कुछ आलस्यके स्वभावके कारण ग्रामवासीका घर और सारा गाँव ही रहने योग्य नहीं रहा है। जहाँ कहीं मैला कुचैलापन होता है वहाँ बीमारी भी अवश्य रहती है।

(४) ग्रामवासीके पास न तो ज्ञान और न साधन हैं—और न उसकी प्रवृत्ति ही है कि खेतीमें सुधार किया जावे। पैदावार बढ़ानेके लिये उसके पास पूँजी नहीं है और यह बिलकुल देखी हुई बात है कि उसको अच्छे बैलों, अच्छे बीजों और काफी खादके बिना ही काम चलाना पड़ता है, और इसके सिवाय उसको पानीकी कमी, पाला, टिड्डी आदि शत्रुओंसे भी मुठभेड़ लेनी पड़ती है। कृषकोंके ऋण-की कथा तो प्रसिद्ध ही है—गाँवका बोहरा भी अपने आसामियोंके लिये सहायक न होकर अब बाधक ही बन गया है।

(५) इसलिये ग्रामवासी अपने परिश्रमके मुकाबिले-में कुछ ठीक पैदावार नहीं कर सकता है—और वह जो कुछ बचा सकता है या उधार ला सकता है उस सारी पूँजीको नाशकारी सामाजिक कुरीतियोंमें उड़ा देता है।

ये गाँवके अर्थशास्त्रकी स्थायी बातोंमेंसे कुछ हुईं। परन्तु वर्तमान आर्थिक संकटने तो जो पहलेसे कठिन समस्या थी उसको और भी कठिन बना दिया है—क्योंकि इस संकटके कारण सबसे ज्यादा नुकसान ग्रामवासीको ही पहुँचा है, कारण कि भावोंके गिरनेसे उसकी आमदनी घट गयी है और देनदारी बढ़ गयी है।

४. जनशक्ति

ऊपर बतायी हुई स्थितिमें सुधार करनेका भार जीवन-कुटीरको अपने ऊपर लेना था। इस महान् कार्य्यके लिये कार्यकर्त्ताओंको तैयार करना अपने आपमें एक समस्या है। दो दर्जनसे कम कार्यकर्ता कुटीरमें नहीं आये और एक दर्जन-से कम विद्यार्थी नहीं आये—और फिर एक दर्जनसे कम आदमी फुटकर कामोंके लिये नहीं रखे गये। इन सबमेंसे छटकर अब १५ आदमी हैं। और साफ कहना पड़े तो इन १५में भी सभीको पक्का नहीं समझा जा सकता। पहले तो कार्यकर्ताओंके निर्वाहके लिये मासिक अलाउन्सका नियम था—परन्तु अब हम लोग एक गरीब संयुक्त-परिवार-के रूपमें रहते हैं जिसमें प्रतिदिनका भोजन-खर्च फी आदमी डेढ़ आनेसे ज्यादा नहीं होता है। कुटीरके कार्यकर्ताओंको खूब कड़ा परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु इस सारे परिश्रम-का एकमात्र आधार कार्यकर्ताओंको अपने तीव्र सेवा-भावमें ही तलाश करना पड़ता है। हम तो केवल यही चाह सकते हैं कि स्वार्थत्याग, और कष्टसहनकी योग्यतावाले अधिकाधिक आदमी ग्रामवासीकी इस मूक सेवाके लिये तैयार होकर मैदानमें आवें।

५. धनशक्ति

हमारे मित्रों और दूसरे सहानुभूति रखनेवाले सज्जनोंके पाससे हमको जो सहायता मिल सकी केवल उसीसे हमने अपना खर्च चलाया है; हम चन्दा इकट्ठा करनेको नहीं निकलते हैं और इसी स्थितिमें जहाँ न इनका और न धन-का ही निश्चित ठिकाना है हम केवल अपनी श्रद्धाके भरोसे ही निभ सकते हैं, इसलिये हम आशा करते हैं कि हमारी श्रद्धासे हमको भविष्यमें भी आन्तरिक प्रोत्साहन मिलता रहेगा।

इन पाँच वर्षोंमें हमें २२, ५५६=) सहायतामें मिले। और कुल मिलाकर २१, ८६८।=)॥ खर्च हुए। इसमेंसे १४,९७४=)। कार्यकर्त्ताओंके निर्वाहमें व्यय हुआ। निर्वाहखर्चमेंसे क़रीब ६०००) अर्थात् ५००) मासिक अर्थात् ४० फीसदी उन कार्यकर्ताओं, विद्यार्थियों और अन्य आदमियोंपर खर्च हो गया जो कुटीरमें आये सही, परन्तु जो आखिरतक नहीं निभे। बाकी ९०००) [अर्थात् १५०) मासिक] जो कार्यकर्ता [यानी १५] अबतक टिके उनपर खर्च हुआ समझा जावे। हम व्यवस्था, प्रचार आदि खर्चके लिये प्रायः ५०)का वार्षिक बजट रखा करते हैं—इस मदके कुल ख़र्च २२२६।॥)। परसे ४४५) वार्षिक फलित होते हैं, पूँजी खातेके ४६६७॥)। में १९८१।-)। माल मौजूदके, ८००) से ऊपर कुटीरके जीवनकूपके, ३००) टीणोंके, और बाकी १५००) कच्चे मकानोंके शामिल हैं। इससे स्पष्ट होगा कि हमने बड़ी किफायतसे काम लिया है और क्षमा चाहते हुए हम यह

भी निवेदन कर दें कि हमने अपने खुदके स्टैण्डर्डको जितना कम कर सकते थे कर लिया है। परन्तु इस बहसको आगे बढ़ानेसे हमको अपने खुदके बारेमें कुछ बातें लिखनी पड़ेंगी, जिनको हम अपनी क़लमसे न लिखेंगे तो ही अच्छा होगा। हमारे यहाँ तफसीलवार हिसाब रहता है और जयपुरके दो प्रतिष्ठित व्यापारियोंकेद्वारा हिसाबकी जाँच समय-समयपर करा ली जाती है।

६. ग्रामवासीके ठालीपनका इलाज

यह लिखा जा चुका है कि ग्रामवासीको दो महीनेकी नक्की फुरसत रहती है, जिसको उसे किसी उपयोगी सहायक धन्धेमें लगा लेना चाहिये। हमारी रायमें पूरा या अधूरा जितना हो सके उतना कपड़ा अपने घरमें तैयार कर लेना ग्रामवासीके लिये सबसे अच्छा सहायक धन्धा हो सकता है। कपाससे कपड़ा तैयार करनेकी सब प्रक्रियाओंकी (तथा रङ्गनेकी भी) शिक्षा हम देते हैं, और हमने पींजने, कातने और बुननेके औजारोंके दाम कुल २) परला ठहराये हैं और २) ख़र्च करना तो सभीके लिये संभव होना चाहिये। ग्रामवासी कपासको पैदा करनेवाला है—परन्तु अपनी बढ़ी हुई देनदारीके कारण वह अपने घरके कामके लिये भी थोड़ी बहुत कपास नहीं रख सकता है और यद्यपि ग्रामवासीकी काफी दुर्दशा हो रही है फिर भी वह अपनी शेखी में पींजने और बुननेको नीच जातियोंके करने योग्य काम समझता है। इन दो तथा अन्य कठिनाइयोंके होते हुए भी कुटीरको इस दिशामें काफी सफलता मिली है। हमारे क्षेत्रके १००० परिवारोंमेंसे ४२७ परिवारोंके यहाँ १३१ पींजन और ४५१ चर्खे मौजूद हैं और वे अपने कपड़ोंके लिये अपने घरपर पींजकातकर सूत तय्यार कर लेते हैं। हमने ४४ ग्रामीण लड़कोंको बुनना सीखनेके लिये आमादा किया, उनमेंसे बहुतसे बुनना सीखकर होशियार भी हो गये। परन्तु अफसोस है कि उनमेंसे बिरले ही अपने घरोंमें बुनना चालू करनेके लिये तैयार हैं—क्योंकि उनको यह डर लगता है कि घरपर बुननेका काम छेड़ा तो अपने सगे-सम्बन्धी निन्दा करेंगे। ऊपर कहे हुए १३१ पींजनोंके अलावा हमारी ओरसे बृहत् क्षेत्रके ८४ गाँवोंमें २३० पींजनोंका प्रचार और हुआ, इन ३६१ पींजनोंकेद्वारा कमसे कम ६००) रुईका घरोंमें पींज-कातकर सूत तैयार कर लिया गया और ६००) सूतका कमसे कम १२०,००० वर्गगज कपड़ा तैयार करा लिया गया। ग्रामवासी १२०,००० वर्गगज कपड़ा खरीदते तो उनको आजकलके सस्ते बाजारभावसे भी क़रीब २२५००) खर्च करने पड़ते और वे अपनी ६००) रुईको बेचते तो उनको क़रीब ४५००) मिलते। इस प्रकार ग्रामवासियोंको कमसे कम १८०००) का लाभ हुआ, जिसके साथ हमारे अबतकके सब प्रकारके ख़र्च २१८६८।=)॥। का मुकाबिला मजेसे किया जा सकता है। हमारी सलाहके अनुसार कोई गाँव अपना कपड़ा आप तैयार कर ले तो उस गाँवको अपने आधे राजकरसे कम रुपयेकी बचत नहीं होगी और हम यह कह सकते हैं कि ग्रामवासीको राजकर चुकानेमें हमारे कार्यक्रमके फलस्वरूप कई बार अप्रत्यक्ष रूपसे सहारा मिल चुका है। हम पींजन, चर्खा आदि तैयार करनेकी तथा पींजने, कातने और बुननेकी कलाके सफल प्रयोग कर चुके हैं और इसलिये हम पूर्ण विश्वासके साथ कह सकते हैं कि गाँवका पाँच आदमियोंवाला साधारण परिवार चाहेगा तो अवश्य ही अपने घरमें ही केवल दो महीनेकी फुरसतमें और अपने गाँवमें बने हुए सस्ते औजारोंद्वारा अपनी आवश्यकताके लायक सब कपड़ा तैयार कर लेगा और ऐसा करनेसे उसके खेतीके या दूसरे काममें ज़रा-सी बाधा भी नहीं पहुँचेगी। परन्तु इसके साथ यह भी याद रखना होगा कि ग्रामवासीको पींजने और बुननेके कामोंसे नफरत है और वह अपनी फुरसतका उपयोग भी नहीं करना चाहता है और उसकी नफरत और इस अनिच्छाको तैयार कपड़ेके भावके बेहद गिर जानेसे अवश्य ही बहुत सहारा मिलनेवाला है। इसलिये हमको यह भी कह देना चाहिये कि घरके कपड़ेके कार्यक्रमको चलाना एक अर्सेतक तो प्रवाहके मुकाबिलेमें चलनेके बराबर रहेगा।

७. अज्ञान और जानकारीके अभावका इलाज

कुटीरके लिये नियमपूर्वक चलनेवाली दिनकी पाठशालाएँ खोलना संभव नहीं हुआ। इसलिये हमको दिनमें

दूसरा काम करनेवाले लोगोंके सुभीतेके लिये सुविधानुसार थोड़ी बहुत देर चलनेवाली रात्रिशालायें चलाकर ही संतोष मान लेना पड़ा। इस प्रकार अक्षरशिक्षाके अभावको मिटानेका जैसा बना वैसा उद्योग करते-करते हमने अनुभव किया कि वास्तवमें ग्रामवासीके लिये दिनकी पाठशाला ठीक नहीं है। हमारे पढ़ाईके प्रबन्धके अनुसार गाँवका साधारण लड़का तीन या चार वर्षमें (i) लिखना (ii) छपी हुई पुस्तकें और देहाती लिपिमें लिखा हुआ पढ़ लेना और (iii) व्यावहारिक हिसाब सीख सकता है और उसे एक वर्षका समय और मिल जाय तो उसको आवश्यकतानुसार बाहरकी बातोंका ज्ञान भी कराया जा सकता है। इस समय हमारे पाँचों उपक्षेत्रोंमें प्रायः दो-दो घंटे चलनेवाली पाँच रात्रिशालायें हैं जिनमें औसतन् १५ से २० विद्यार्थी पढ़ते रहे हैं। हमने प्रायः एक पोथीभर गीत बना डाले हैं जिन्हें हम स्त्रियों, लड़कियों और लड़कोंको सिखाते हैं और हमारा विश्वास है कि इन गीतोंकेद्वारा ग्रामवासीकी जानकारी काफी बढ़ेगी।

८. मैले कुचैलेपन और बीमारीका इलाज

हमने ग्रामवासियोंको दवा देनेका काम तो शुरूसे ही छोड़ रखा था, परन्तु पिछले आठ महीनेसे हमने एक आयुर्वेदीय औषधालय ही बना लिया है। (नये) रोगियोंकी कुल संख्या ८००० तक पहुँची है। बिना किसी हिचकिचाहटके रोगीकी सेवा परिचर्या करनेका हम बहुत खास ध्यान रखते हैं। सफाईकी आदत डालनेका काम कठिन साबित हुआ है—व्यक्तिशः सफाई रखनेके लिये प्रचार करनेके अलावा हमको अपने एक उपक्षेत्रमें उत्साही लोगोंकी एक कमेटी बनानेमें सफलता मिली है—गाँवके रास्तों और पास-पड़ोसके साफ रखनेका भार इसी कमेटीने ले लिया है। इस दिशामें काम धीरे-धीरे होगा जिसके कारण तो सभीको मालूम हैं।

९. खेतीकी अवनतिका इलाज

हमने राजकीय कृषि-विभागके साथ सम्पर्क रखा है, और वहाँ बसीके चकमें जिन प्रयोगोंको सफल माना गया, उनमेंसे कुछको हमने भी करके देखा है। परन्तु हमारे अनुभवने हमको बतलाया है कि खासकर वर्तमान दशामें हमारे एकाकी परिश्रमका कोई कहने योग्य फल नहीं निकलेगा। बैलोंकी नसल सुधारनेके लिये हमारी योजना यही रही कि साँड़ प्राप्त करना और उन्हें उनकी परवरिशका प्रबन्ध करके आवश्यकतानुसार गाँवोंमें भेजा देना। इसके अनुसार हम चार पशु ला सके हैं—जिनमेंसे दो तो दे भी दिये गये। एक अर्सेकी झिझकके बाद आखिर हमने बनथली उपक्षेत्रमें एक सहकार सभा बनायी है। इस सभाके २२ मेम्बर हैं और लगभग ७००) की पूँजीसे सभाका काम शुरू हुआ है—पूँजीका थोड़ा भाग मेम्बरोंसे मिला है, बाकी गाँवमेंसे और बाहरसे उधार लिया गया है। सभा अपने मेम्बरोंको खासतौरसे तो राजकरके लिये तथा खेतीके कामके लिये उधार देती है—कभी-कभी और कामोंके लिये भी दे देती है और यह नियम बना हुआ है कि सभाकी अनुमतिके बिना मेम्बर और कहींसे उधार न लावे। हमको इस सभाकी सफलताकी पूरी आशा है और हमारी यह आशा सफल हुई तो हम अपने १६ गाँवोंमें और भी कई सभायें कर देंगे, जिनमें लेन-देनके सिवाय मेम्बरोंके मालको इकट्ठा बेचने आदिका प्रबन्ध भी होगा।

१०. फ़ुज़ूलखर्चीका इलाज

हम नुकते अर्थात् मृतक-भोजको सबसे बुरी सामाजिक कुरीति समझते हैं, जिसने लाखों सम्पन्नघरोंका सत्यानाश कर डाला है। यद्यपि इस रूढ़िके लिये धर्मशास्त्रकी आज्ञा नहीं है फिर भी इसकी जड़ बड़ी गहरी पैठी हुई है। हमने नुकतेके विरुद्ध धावा बोलते ही बनथली और दूसरे दो गाँवोंसे वादा करा लिया कि वे केवल श्राद्ध ही करेंगे और नुकता बिलकुल नहीं करेंगे—और इसीके अनुसार कई अवसरोंपर नुकता बंद भी रह गया। बस इस प्रारम्भिक सफलताके बाद दूसरे गाँवमें विरोधका तूफान खड़ा हो गया और हम देखते हैं कि अब हमारे चाहनेवालोंकी निगाहमें भी हम अप्रिय बन गये हैं। किन्हीं बदमाशोंने कुछ झूँठी अफवाहें उड़ा दीं और वे अफवाहें दूर-दूरतक फैल गयीं। उन अफवाहोंके कारण बनथलीवालोंका प्रायः बहिष्कार-सा हो गया है। हम यही आशा करते हैं कि यह

विरोधका तूफान ज्यादा समयतक न ठहरकर जल्दी ही खतम हो जायगा।

११. अनुभवका सार

यद्यपि हमको बराबर आर्थिक कठिनाईका सामना करना पड़ा है—फिर भी हमने इस बातकी कभी खास परवाह नहीं की। क्योंकि हमारी सबसे बड़ी कठिनाई यह रही है कि ग्रामसुधारको अपने जीवनका लक्ष्य बना सकनेवाले योग्य कार्यकर्त्ता काफी नहीं मिले। परन्तु इस सबसे बड़ी कठिनाईसे भी बड़ी कठिनाई यह हो गयी कि खुद ग्रामवासीको अपने सुधारका उत्साह नहीं है। ग्रामवासीकी जानकारी नहींके बराबर है। वह कई प्रकारके झूठे वहमोंका उपासक है और वह पुरानी चालोंपर अड़ा रहनेवाला भी है—और उसकी विचारकी तथा सूझकी शक्ति नष्ट हो चुकी है, फिर उसकी जानके लिये (१) गाँवका पुजारी, (२) गाँवका बोहरा, (३) गाँवका पटेल, (४) जातिका पंच और ऐसे ही दूसरे कई लोग भी मौजूद हैं—जिनका एकमात्र काम असहाय ग्रामवासीको हैरान करना, ठगना, बहकाना तथा हमारे उद्योगोंको निष्फल करना ही हमारे देखनेमें आया है। हमने सोचा था कि हमारा प्रयोग पाँच वर्षमें पूरा हो जायगा—परन्तु अभी तो पूरा होनेकी स्थिति दिखायी नहीं दे रही है। हमको मालूम है कि हमारी कठिनाइयोंका एक कारण यह भी है कि हमींने जयपुर राज्यके इस प्रान्तमें पहले-पहल इस प्रकारका सार्वजनिक काम छेड़ा है। हम इस नतीजेपर भी पहुँचे हैं कि इस पुनरुद्धारके काममें सब प्रकारके उद्योगोंके एकीकरणकी आवश्यकता है और जबतक चारोंओर उन्नतिका वातावरण नहीं बन जायगा तबतक किसी चुनेहुए क्षेत्रमें किये हुए सुधार-कार्यका पड़ोसके विरोधके कारण नष्ट हो जानेका डर रहेगा। हमको भलीभाँति मालूम है कि ग्रामीण जनताका आर्थिक ह्रास बड़ी तेजीके साथ हो रहा है और इसलिये हमारी निश्चित सम्मति है कि जिन लोगोंका हित इस ओर उलझा हुआ है वे बिलकुल भी समय नष्ट न करें और तुरन्त इस प्रश्नको हाथमें लेकर इस दुखदायी नाशकी गतिको रोकनेकी युक्तियाँ सोच निकालें।

१२. निवेदन

हम खूब जानते हैं कि जनताने हमारी सहायता बड़ी उदारताके साथ की है—और यह भी मान ही लिया जायगा कि हमने भी अपनी ओरसे अपने उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये उद्योग करनेमें कुछ कसर नहीं रखी और हम समझते हैं कि यह भी आमतौरसे स्वीकार कर लिया जायगा कि हम एक प्रकारसे एक वैज्ञानिक प्रयोगमें लगे हुए हैं जिसमें जल्दी ही दिखायी देनेवाली सफलताका दावा नहीं हो सकता और जिसके आखिरकार होनेवाले असरको रुपये, पैसे, समय अथवा मनुष्य-शक्तिके हिसाबसे नहीं नापा जा सकता। हमारे साधनोंका और जिस समस्याको सुलझानेके लिये हम जूझ रहे हैं उसका भी ध्यान रखा जावे तो हमको यह घोषणा करनेमें खुशी होती है कि हमको अबतक जितनी सफलता मिली है वह सर्वथा सन्तोषजनक है। हमारे लिये हताश होनेका कोई सवाल नहीं है—और हमारे कार्यके साथ सहानुभूति रखनेवाले सज्जनोंकी सम्मति निज भावनाकेद्वारा लेकर हम दुगुने उत्साहके साथ और सब प्रकारके तूफानोंको झेल सकनेवाले ध्रुव निश्चयके साथ इसी घड़ी अपने काममें फिरसे लग जानेका संकल्प करते हैं। एक वर्ष पहले या पीछेकी बात भले ही हो—परन्तु हमको जरा-सा सन्देह भी नहीं है कि हमको अपने उद्योगमें आखिरकार सफलता अवश्य मिलेगी।

स्मरणीय

बिना छना और बिना गरम किया हुआ दूध पीनेसे कई प्रकारके रोग हो जानेका डर रहता है।

तुलसीका पौधा रोग फैलानेवाले कीड़ोंका नाश करता है। ज्वरकी अचूक दवा है। इसके सेवनसे प्रसवके बाद स्त्रियोंको किसी प्रकारका रोग नहीं होता।

पीली सरसों तथा शेरका नाखून गलेमें बाँध देनेसे बच्चोंको दाँत शीघ्र और आसानीसे निकल आता है।

—व्रजबिहारीलाल गौड़

अनुभूत विज्ञान

व्याधियोंका मूलकारण

[ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

रोगोंके कारणोंपर भिन्न-भिन्न मत

ग क्यों होते हैं ? कैसे हो जाते हैं ? इनकी उत्पत्तिके कारण क्या हैं ? इसपर भिन्न-भिन्न देशके चिकित्सकोंने अपने-अपने मतानुसार उत्तर दिये हैं। किसीने त्रिदोष, किसीने चतुर्दोषकी विषमावस्थाको रोगोंका मूल कारण माना है। किसी-किसीने कीटाणु-जीवाणु (जीवों) को मूल कारण बताया है। प्राकृतिक चिकित्सक बढ़ेहुए विकृत मलोंको रोगका कारण बताते हैं। इस प्रकार इसपर अनेक मत हैं। यह तो ठीक है कि एक रोगके अनेक कारण नहीं हो सकते। एक कारणसे एकही कार्य होता है। निश्चित लक्षणयुक्त रोगका जो कारण दसमें, बीसमें देखा जाता है: वही सौमें, हजारमें पाया जाता है। देश, काल परिस्थिति, अवस्थाके अनुसार रोगके रूपमें, रोगके चिन्होंमें अन्तर पड़ सकता है, पर कारणमें अन्तर नहीं पड़ सकता। यह एक निश्चित बात है।

हम इस विषयपर आज बीस वर्षसे अनुसन्धान कर रहे हैं, जो परिणाम हमें मिले हैं उन्हें वैद्योंके समक्ष क्रमसे रखना चाहते हैं। आशा है हमारी उक्त चर्चा वैद्य-समुदायके लिये विचार और अनुसन्धानकी सामग्री होगी।

अपना अनुभव

मैं वैद्य हूं, डाक्टर नहीं। आयुर्वेदका प्रेमी हूं, द्वेषी नहीं। इतना होते हुए भी न तो अन्ध परम्पराका भक्त हूँ न 'लकीरकी फकीरी' का अनुकरण करनेवाला हूँ। वैद्यके लिये अन्य रोगी सदा परीक्षाके स्थल बने रहते हैं, परन्तु दुर्भाग्यसे कहिये; या सौभाग्यसे मैं स्वयम् बाल्यकालसे रोगी रहा हूँ, इसलिये सबसे अधिक अपने ऊपर ही अपने रोगोंपर ही परीक्षाका अवसर मिलता रहा, कई वैद्य कहा करते हैं कि वैद्य, डाक्टर स्वयम् बीमार होकर अपनी चिकित्सा नहीं कर सकता। सदासे मेरे विचार इस तर्कके विपरीत रहे हैं। मैं इस बातको मानता था और अब भी मानता हूँ—मानताही नहीं, बल्कि दृढ़ विश्वास हो चुका है, कि जो व्यक्ति स्वयम् अपने शरीरको नहीं जान सकता, अपने रोगको नहीं जान सकता, अपने रोगको स्वयम् निश्चय नहीं कर सकता वह दूसरोंके रोगोंको सही-सही न जान सकता है न सही चिकित्सा कर सकता है: यह हो सकता है कि भिन्न-भिन्न रोगोंके भिन्न-भिन्न कारण हों, और उन भिन्न-भिन्न रोगोंमेंसे अनेक रोग एक व्यक्तिको नहीं भी हो सकते। मुझे भी इसी तरह सब प्रकारके रोग नहीं हुए। परन्तु, फिर भी मैं जिन-जिन रोगोंमें ग्रसित रहा उनके मूल कारणकी खोज करता रहा, तथा अपनी चिकित्सा भी स्वयम् करता हुआ इस बातको समझनेकी चेष्टा करता रहा कि उक्त रोग क्यों होते हैं, तथा इनका शमन क्यों हो जाता है ? धीरे-धीरे अनुभव लेते-लेते इस परिणामपर पहुँच गया हूँ कि अपने शरीरको अब नीरोग कर लिया है। और ठीक ऐसा साध लिया है जैसे बनियाँ तुलादण्डको साध लेता है। मैंने इस बीस वर्षमें शरीरको, शरीरकी क्रियाओंको तथा विकारके मूल कारणोंको, रोगके उत्पादक कारणोंको इतनी अच्छी तरह समझ और जान लिया है कि अब मुझे किसी रोगीको देखनेपर न तो रोगके कारणको ढूँढनेमें परेशानी होती है न रोगीकी चिकित्सा करनेमें। रोगी आज्ञाकारी हो, बस इतनी ही बातसे रोगपर मेरे लिये विजय पाना आसान हो जाता है। मैं इस समय बड़ेसे बड़े असाध्य रोगोंकी चिकित्सा करके उनमें आशासे अधिक सफलता प्राप्त कर रहा हूँ। और प्रत्येक वैद्यसे अनुरोध करता हूँ वह कुछ रोगियोंपर हमारी बतायी विधिसे चिकित्सा-क्रम निर्धारित करें। उन्हें उसमें अवश्य ही सफलता मिलेगी।

व्याधियोंका उत्थान कैसे होता है ?

मनुष्य बीमार क्यों पड़ जाता है ? खाते, पीते, चलते,

फिरते, एकाएक रोग क्यों घेर लेते हैं ? कैसे घेर लेते हैं ? जिससे मनुष्य दुखी रहने लगता है, इस बातकी स्थितिको सबसे पूर्व जानना चाहिये। इसका सच्चा ज्ञान हो जानेपर उसका उपाय बहुत ही सरल हो जाता है। हम इस विषयकी विस्तारके साथ चर्चा करेंगे।

मल क्या है ?

प्राणिमात्रको जन्म लेते ही किसी ऐसी चीजकी आवश्यकता होती है जिससे शरीरकी क्षय, पूर्त्ति और वृद्धि हो सके, तथा उसका प्राप्त जीवन सदा बना रहे। इसीलिये जन्म लेते ही वह उसी समयसे कुछ न कुछ खाते रहते हैं। जितना भी जो कुछ वे खाते हैं, इसे प्रत्येक व्यक्ति देखता है कि वह साराका सारा शरीरमें नहीं खपता। उसका कुछ न कुछ अवशेष मल बच ही जाता है। शरीरकी क्षयकी पूर्तिके अर्थ जो कुछ हम खाते हैं उससे पहला स्थूल संघट्ट पदार्थ जो बचता है उसका नाम मल या विष्ठा है। यह मल शरीरके उन स्थानोंमें बनता है—जिसे शरीरकी पाकशाला कहा जाय तो कोई अनुचित नहीं। जिस प्रकार हम अपने रसोईघरमें बैठकर भोजनकी सामग्री एकत्र करते हैं और उसे बनाने लगते हैं तो उस समय प्रत्येक वस्तुको साफ करते हैं दाल, चावलोंमेंसे कंकड़, मिट्टी, गर्द निकालते हैं, सब्जीमेंसे छिलके या रेशे अलग कर देते हैं, आटेमेंसे चोकर दूर करते हैं, और वह मल या अवशेष अनावश्यक चीजें अपने रसोईघरके एक कोनेमें जमा कर देते हैं। ठीक ऐसा ही प्रबन्ध हमारे शरीरके भीतर है। हम जो कुछ अच्छीसे अच्छी चीज खायँ वह सबकी सब शरीरमें न कभी खप सकती है, न खपेगी ही। क्योंकि अभीतक कोई भी भोजन ऐसा मालूम नहीं हो सका है जो सौ प्रतिशत खपनेवाला हो। फुजुला या मलका बनना एक जरूरी बात है। इसका एक कारण और भी है। यह हरएक वैद्यको स्मरण रखना चाहिये कि मनुष्य मात्रका शरीर जिस भोजनसे पलता है, जिन चीजोंपर उसका निर्वाह है वह सब ठीक शरीरमें विद्यमान पदार्थों-जैसी नहीं होतीं। न वह शक्ल सूरतसे ही मिलती हैं न रसायनिक रचना-रूपसे। आटेका कुछ वर्ण है, तो दालका कुछ, सब्जीका कुछ। इसीप्रकार इन सभोंकी आन्तरिक रचनाओंमें भी विभिन्नता होती है। हमारे वैद्यक-शास्त्रमें—आहारसे जाकर जो रस बनता है—उसमें क्या-क्या पदार्थ होते हैं ? और शरीर उनमेंसे किस-किसको ग्रहण करता है ? तथा उन पदार्थोंके शरीरमें तथा वस्तुओंमें क्या-क्या रूप हैं ? इसको खोजने या जाननेकी चाहे आवश्यकता न दिखायी दी हो, किन्तु, आधुनिक कालमें आकर यह प्रश्न बड़े महत्वके समझे गये। और यह बात विचारणीय हो गयी कि हम जो सैकड़ों प्रकारकी तरकारियाँ, अन्न आदि खाते हैं उन सभोंमें कौन-कौन-सी ऐसी वस्तु होती है जिसको शरीर ग्रहण करता है और इनमें कौन-कौन-सी ऐसी वस्तुएँ हैं जिनको शरीर छोड़ देता है। हमारे यहाँ न तो इसको जाननेकी चेष्टा हुई, न आवश्यक समझा गया ; इसका ज्ञान इस शताब्दीमें आकर ही हुआ। अथवा यों कहो कि यह इस युगके आविष्कारोंमेंसे एक है।

खाद्य पदार्थोंके विभाग

इस समय आधुनिक पद्धतिके अनुसार प्रत्येक वैद्यको भी बताया या पढ़ाया जाता है कि शरीर समस्त खाद्य द्रव्योंमेंसे जिन-जिन सारयुक्त वस्तुओंको ग्रहण करता है उनके यदि स्थूलरूपसे विभाग बना दिये जायँ तो वे सब चार भागोंमें विभाजित हो जाते हैं। यथा;

(१) अस्रजिदीय—अस्रजिदीय खाद्य द्रव्योंका वह सार तत्व है जिससे शरीरका अस्र बनता है। अस्र संस्कृतमें मांसको कहते हैं। यह अस्रजिद (Proteid) भिन्न खाद्य द्रव्योंमें भिन्न-भिन्न रूप, वर्ण और जातिका होता है जिसकी अबतक १८ किस्में ज्ञात हुई हैं। इन भिन्न-भिन्न प्रकारके अस्रजोंका नामकरण 'इन' प्रत्यय लगाकर किया गया है। इसीलिये इन १८ प्रकारोंका नाम अस्रजिन है। जहाँ सामूहिक रूपसे मांस-जनक वस्तुओंका सम्बोधन किया जाता है वहाँ 'इद' प्रत्यय लगाकर इन्हें अस्रजिद कहते हैं। जहाँ भिन्न-भिन्न मांसजनक वस्तुओंको बताना होता है वहाँ इन्हें अस्रजिन कहते हैं और उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं, यथा—दूधके अस्रजिनका नाम 'पनीरिन', अण्डेकी सफेदीका नाम 'अण्डसितिन, जर्दीका 'अण्ड पीतिन, रक्तवालीका' लोहूबिन, आदि-आदि।

(२) शार्करी—शार्करी खाद्य-द्रव्योंका वह सारवान् तत्व है जिससे शरीरको शक्ति और स्फूर्ति मिलती है। शार्करी

वह पदार्थ हैं जिनसे फलोज और द्राक्षोज नामक शर्कराएँ बनती हैं। यथा—चावलकी माड़ी, आटेका निशास्ता अरारोट साबूदाना, त्वक्क्षीर आदि यह सभी माँड़ी कहे जाते हैं। दूसरी ओर गन्नेकी शकर फलोंकी शकर, शहद आदि जो शर्करा कहलाती हैं, इन सभोंसे शरीरमें द्राक्षोज, फलोज नामक शर्करा बनती है इसीलिये इन्हें शार्करी कहते हैं।

(३) स्नेही—स्नेही खाद्य-द्रव्योंका वह सारवान् द्रव्य है जिससे शरीरको उत्ताप-शक्ति और स्फूर्त्ति प्राप्त होती है। यह खाद्य वनस्पतियोंके बीजोंमें भिन्न तेलके नामसे रहता है। इधर पशुओंमें मक्खन, घी, चर्बीके नामसे पुकारा जाता है। ये जितनी भी घी, तेल चर्बी आदि स्नेह-प्रद चीजें हैं सब स्नेही कहलाती हैं। और सब रासायनिक दृष्टिसे एकही कक्षाकी हैं।

(४) लवण—चौथी वस्तु जो खाद्य द्रव्योंमेंसे साररूप ग्रहण करता है वह सैंधव, पांशव मद्र आदिके अनेक लवण होते हैं। यह लवण शरीरमें विद्यमान रहकर शरीरकी क्रियाको बढ़ा देते हैं अर्थात् इनकी शरीरमें विद्यमानता उत्प्रेरकका कार्य करती है।

यही चार प्रकारकी सारवान् वस्तुएँ हैं जिनको शरीर, प्रत्येक खाद्य द्रव्यको उदरकी पाकशालामें पहुँचाकर वहाँ इनका इसी प्रकार विभाजन करता है जैसे हम रसोईघरमें करते हैं। हमारे उदरकी पाकशालाएँ जिन-जिन खाद्य द्रव्यों मेंसे उक्त सारवान् द्रव्य भिन्न होकर अच्छी घुलित दशामें आ जाते हैं उन्हें अन्त्राशयकी आचूषक झिल्लियाँ चूसती रहती हैं। जो चूसनेसे अवशेष बच जाते हैं वह मल रूप कहलाते हैं।

इस उदरीय पाकशालाकी व्यवस्था

इस उदरकी पाक-शालामें अनेक प्रकारके खाद्य द्रव्य एकमें मिलकर किस तरह पचते हैं? इनको पकानेवाला कौन है? तथा पुनः इनका विभाजन किस प्रकार होता है? कौनसे पाकशालाके अवयव इनका विभाजन करते हैं इसका स्पष्ट उल्लेख किसी वैद्यक ग्रंथमें नहीं मिलता। हमारे यहाँ तो जिस प्रकार भौतिक जगत्में कार्यको देखकर कारणका अनुमान कर लिया जाता था उसी प्रकार यहाँ भी किया गया। शरीरमें उत्तापकी स्थितिको देखकर तथा कभी-कभी उत्तापकी बढ़ी हुई हालतको मालूम कर यह विश्वास किया कि शरीरके भीतर भी बाह्य जगत्के अग्नितद्वत् कोई अग्निका रूप विद्यमान रहता है, जिससे ही भोजनका परिपाक तथा शरीरको चूल्हेपर चढ़े बर्त्तनवत् उष्णता मिलती है। इसीलिये उस देहस्थ अग्निके स्थानको अग्न्याशयके नामसे सम्बोधित किया। और वहाँ तिल-प्रमाण अग्निका रूप सदा विद्यमान रहता है ऐसा माना। वह तिल-प्रमाण अग्नि ही सारे भोजनके पचनका काम करती है तथा ज्वरकालमें वही अग्नि अजीर्ण दोषसे दबकर बाहरकी ओर त्वचामें ऊपर आती है। यथा—"दोषोऽजीर्णाज्ज्वरे कुर्यात्क्षिप्त्वाग्निं कोष्टतस्त्वचा।"—ऐसा विश्वास किया। पर उदरीय पाक-शालाकी व्यवस्था—जैसा कि विश्वास किया गया था—अनुसन्धान करनेपर ऐसी नहीं मिली। बल्कि प्रयोगोंसे पता चला कि उदरीय पाक-शालामें जाकर भोजन पचता नहीं, विश्लेपित होता है। और यह विश्लेषीकरण किसी अग्निसे नहीं होता प्रत्युत उक्त पाकशालाके मार्गमें स्थल-स्थलपर कुछ ऐसे अवयव विद्यमान हैं जो उक्त खाद्य पदार्थोंके शरीरमें आनेपर उसमें कुछ विश्लेपक द्रव्य (रस) मिलने लगते हैं। उन विश्लेषक द्रव्योंके मिलते ही खाद्य द्रव्योंके भिन्न-भिन्न सारवान् अंशोंपर रासायनिक क्रिया आरम्भ हो जाती है और वह एक रूपसे दूसरे रूपमें जाने लगते हैं।

कई वैद्य उदरीय पाक-शालाको उदरके मध्य समझते होंगे, यह बात नहीं। पाक-शाला मुँहसे लेकर गुदापर्यन्त समस्त अन्न-प्रणालीका नाम है। क्योंकि, पाक-शालामें यह विश्लेषणका काम मुँहमें खाद्य द्रव्यके आते ही यहींसे आरम्भ हो जाता है और गुद-चक्रपर्यन्त चलता रहता है।

यह विश्लेषण कैसे होता है?

भोजनका एक रूपसे दूसरे रूपमें बदलना या साधारण भाषामें कहो पकना—यह काम अग्निसे या अग्नितद्वत् गुण-धर्मके किसी पदार्थद्वारा नहीं होता यह काम उसी प्रकार सजीव जगत्के सूक्ष्मतम जीवोंद्वारा होता है जैसे हमारे रसोईघरमें मनुष्यों (बड़े जीवों) द्वारा होता है।

हमारा शरीर और कीटाणु

हमारा शरीर एक राज्यके तुल्य है। एक राज्यमें जिस प्रकार शासक, न्यायकर्त्ता, सैन्य, दास, रक्षक, व्यापारी,

सब प्रकारके मनुष्य रहा करते हैं उसी प्रकार शरीरमें हैं। शरीरमें शासक भी हैं, सैनिक भी हैं, न्यायी भी हैं, रक्षक भी हैं, दास भी हैं। आप कहेंगे कि शरीरमें गुलाम कहाँसे आये? गुलाम या दास तो आजतक हम विजातियोंको पकड़कर बनाते चले आये हैं। हमारे शरीरमें विजाती व्यक्तियोंका क्या काम? यह बात नहीं। हमारे शरीररूपी राज्यने विजाती जीवों (कीटाणुओं) को पकड़कर अपने कुछ अवयवोंके सुपुर्द कर रखा है, जो उनको जीवित बनाये ही नहीं रखते, प्रत्युत उनके समूहको सदा शरीरकी सेवाके लिये खूब परिवर्द्धित होने और पलनेका अवसर देते हैं ताकि वह सदा शरीररूपी राज्यके लिये उन वस्तुओंको तय्यार करें, बनावें, जिनकी शरीरको आवश्यकता है। अर्थात् शरीरस्थ गुलामोंका काम है शरीरके लिये भोजनका तय्यार करना। यह दास अपने कर्त्तव्यका पालन बहुत अच्छी प्रकार करते हैं। जिस समय हम रोटीका ग्रास अपने मुँहमें डालते हैं उसी समय हमारे मुँहसे लार निकलने लगती है। पाठको! पूर्व कालमें मुँहकी लारका महत्व चाहे कुछ न समझा जाता हो लेकिन इस समय यह भोजन पचानेके लिये बड़े महत्त्वकी चीज समझी जाती है। लार या लाला-रसमें ही वह गुलाम (कीटाणु) सौ-पचास नहीं लाखों, करोड़ोंकी संख्यामें विद्यमान होते हैं, जो भोजनके मुँहमें आते ही शरीरके अवयव लाला ग्रन्थीसे लाला-रसके साथ श्रवकर—रसकर आने लगते हैं और मुँहकी चर्वण-क्रियासे भोजनमें मिलते रहते हैं। ग्रासके चर्वणका अभिप्राय ही है लाला-रसका युक्त द्रव्यमें मिलाना। यह प्रयोगोंसे देखा गया है कि जबतक मण्ड-जातीय पदार्थोंमें लालामें विद्यमान ललीन नामके कीटाणुओंका मिश्रण न हो तबतक उन मण्डमय पदार्थोंमें परिवर्त्तन नहीं आता। मण्डमय पदार्थ इनके खाद्य हैं इनकी भोजनीय क्रियासे मण्डमय पदार्थ शर्कराके रूपमें बदलने लगते हैं। जबतक यह मण्डको खाकर उसे शर्करामें न बदल दें तब तक वह मण्ड या श्वेतसारीय द्रव्य शरीरके किसी कामके नहीं। शरीर इनको सात्म्य रूप नहीं कर सकता। इसकी परीक्षा किसी मण्डमय पदार्थमें थूककर कुछ देर बाद उसे चखनेसे हो सकती है जिस प्रकार लालीन नामक कीटाणुओं-द्वारा श्वेतसारीय पदार्थोंका विश्लेषण होता है ठीक इसी प्रकार उस भोजनके आमाशय या ओझरीमें पहुँचनेपर अस्रजिदीय पदार्थोंके विश्लेषणार्थ आमाशयिक ग्रन्थियोंसे ओझरीन नामक दस्यु या प्राचीन कीटाणुओंका मिश्रण होता है। लाला मिश्रणका जो व्यापार हमारे रोटी चबानेके समय होता है, ठीक ऐसा ही व्यापार वहाँ ओझरी-मन्थनसे होने लगता है। पेटमें पहुँचकर आमाशयिक मांसपेशियोंकी गतिसे भुक्त आहारका आमाशयिक रसके साथ—मन्थनके समय खूब मिश्रण होता है। इसीसे ओझरीन या पाचीन-जैव सारे भोजनमें मिलकर उसके भिन्न-भिन्न अस्रजिनोंको खाकर विश्लेषित करते हैं, और उन्हें इस रूपमें बदल देते हैं जिसे शरीर ग्रहण कर सके। इसी तरह जैसे-जैसे भोजन आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे और अन्नप्रणालीके भिन्न-भिन्न स्थानके अवयव भिन्न-भिन्न प्रकारके दस्युओंको ठीक करने—शरीरके योग्य बनाने—के लिये भेजते रहते हैं अन्नप्रणालीके यह आगेके मुख्य अवयव क्लोम, यकृत, क्षुद्रान्त्र ग्रन्थियाँ आदि हैं।

दस्युओंका सीमित काम

यहाँ यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि शरीरमें पचनका या भोजनके रूपपरिवर्तनका काम सजीव जगत्‌केद्वारा होता है। और उसके होनेकी एक सीमा है। यह क्यों? और कैसे? सुनिये, जिस प्रकार बाह्य जगत्‌में हमारे कार्य-व्यापार एक सीमित होते हैं। हममें शक्ति एक मन बोझ उठानेकी है तो हमसे दो मन बोझ कभी नहीं उठेगा। जितनी कुछ शक्ति हममें है उतना ही हम करेंगे। यही बात शरीरके अवयवों और शरीरके दस्युओंपर लागू है। यहाँ यह भी अच्छी प्रकार स्मरण रखना चाहिये कि शरीरके भिन्न-भिन्न पाचक दस्यु शरीरके उक्त कथित अवयवोंमें भी बनते या वृद्धि पाते रहते हैं। और वह बढ़कर वहीं जमा होते रहते हैं। किन्तु उनके जमा होनेका स्थान परिमित होता है उनका विवर्द्धन भी परिमित होता है। यद्यपि भिन्न-भिन्न मनुष्योंमें भिन्न-भिन्न ग्रन्थियाँ भिन्न-भिन्न मात्रामें दस्यु जीवोंकी संख्या या मात्रा तय्यार कर सकती हैं तथापि जितने समयमें जैवी जगत्‌का विवर्द्धन और विभाजन-क्रम चलता है उसीके अनुसार उतने ही समयमें इनका भी होता है। और जितनी इनकी मात्रा

संस्कृत कवियोंका प्रकृति-निरीक्षण

[ले० पंडितवर श्री बलदेव उपाध्याय]

कविकी प्रतिभा-परिचायक

कविके मानसिक भावोंका पता कविकृत वर्णनोंसे ही लगता है। वस्तुवर्णन पढ़कर ही मनुष्य कविके हृदयकी गम्भीरता या छिछलेपनको जान सकता है। वर्णनके ही आधारपर कविकी निरीक्षण शक्तिका पता लगाया जा सकता है। जिस कविमें वस्तुओंको सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करनेकी शक्ति नहीं है वह वस्तुओंका समुचित वर्णन क्या कर पायेगा? अनुभवी लेखक ही जिसे निरीक्षण करनेकी शक्ति है किसी दृश्यका यथार्थ वर्णन कर सकता है। अच्छे वर्णनोंको पढ़कर हम कविके अनुभवीपनेको जान सकते हैं। वर्णन दोनों प्रकारके दृश्योंका होता है—कृत्रिम जैसे राजसभा, राजमहल, युद्ध इत्यादि और प्राकृतिक जैसे तपोवन, नदी, पर्वत, जंगल आदि। परन्तु प्राकृतिक वर्णनोंको पढ़कर कविकी निरीक्षण शक्ति जितनी जानी जा सकती है उतनी राजसभा आदि कृत्रिम दृश्योंके वर्णनोंसे नहीं। कारण इसका यह है कि कृत्रिम दृश्योंमें समय तथा देशकृत भेद होता है। उन्हें पढ़कर मनुष्य ठीक नहीं बता सकता कि वर्णन कितना अनुभव-जन्य है और कितना कवि-कल्पना-जन्य। परन्तु प्राकृतिक दृश्य सब मनुष्योंके सामने सदैव एकसे विद्यमान रहते हैं। इससे यह न समझना चाहिये कि उनमें समय तथा देशकृत अन्तर नहीं होता—होता है जरूर, परन्तु बात यह है कि वर्णनोंको पढ़कर और उन दृश्योंको अपनी आँखोंसे देखकर हम वर्णनकी यथार्थताको अच्छी तरह जान सकते हैं, कविकी निरीक्षण शक्तिको भली-भाँति जाँच सकते हैं। यही कारण है कि समालोचक कविकृत प्राकृतिक वर्णनोंका ही, उसके अनुभव तथा निरीक्षण शक्तिको जाननेके लिये, आश्रय लेता है। दूसरा कारण यह भी है कि कविको युद्धादिका विशद वर्णन करनेके लिये इन्हें अपनी आँखोंसे देखना जरूरी है, परन्तु सब कवियोंको तो ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता है अतः समुचित चित्रणमें वह यदि समर्थ न हों तो उनकी निरीक्षण शक्तिपर दोपारोपण करना न्याय-संगत नहीं होगा। इसके विपरीत प्रकृति सबके सामने उपस्थित है। यह कोई दोष नहीं दे सकता कि मेरी वहाँतक पहुँच नहीं है, इस लिये मैं उत्तम वर्णन नहीं कर सका। यदि आँख खोलकर देखनेकी शक्ति ईश्वरने दी है तो प्रकृतिका अवलोकन सर्वदा हो सकता है। अतः इतना सुभीता रहनेपर भी यदि कवि समुचित प्राकृतिक वर्णन नहीं कर सकता तो उसमें अवलोकन शक्तिका बहुत अंशोंमें अभाव है, यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है।

कविताकी भारी सामग्री

प्रत्येक भाषाके साहित्यमें काव्यकला-कुशलोंके लिये प्रकृति कविताकी एक बड़ी भारी सामग्री है। प्रातःकाल सूर्यकी सुनहरी किरणें जब वृक्षोंकी चोटीको छूती हैं और सायंकाल जब रक्त रविबिम्ब क्षितिजके नीचे जानेको उद्यत हो जाता है कौन ऐसा सच्चा कवि है जिसकी हृदयतंत्री इन दृश्योंसे बजने न लगती हो?

अंग्रेजी साहित्यकी विशेषता

अंग्रेजी साहित्यकी यह विशेषता है कि प्रकृतिके ऊपर भिन्न-भिन्न प्रकारकी कवितायें की गयी हैं। प्रत्येक महाकवि प्रकृतिको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखता है। वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, टेनिसन—सभोंने प्रकृतिको सूक्ष्मतया देखा और उनको इसमें नयी-नयी चीजें नये-नये सिद्धान्त, दिखायी दिये। वर्ड्सवर्थ प्रकृतिको

होनी चाहिये उतनी होती है। इससे भिन्न समय और कार्य-शक्तिके अनुसार ही यह उतना काम कर सकते हैं, अधिक नहीं।

सारांश

हमारे शरीरमें भोजनके पचनकी व्यवस्था जैसी जगत्के द्वारा पूर्ण होती है जिनका कार्य समयके अनुसार एक सीमाके भीतर होता है। उसमें साधारणतया कोई फेरफार डाला नहीं जा सकता। (क्रमशः)

मनुष्यसे भी बढ़कर शिक्षक मानता है तो टेनिसनको प्रकृतिमें अटल नियमोंकी आभा दिखायी पड़ रही है। उधर (Shelley) शेली को सौन्दर्यकी पराकाष्ठाका अनुभव वहीं हो रहा है और उसे प्रकृति सुभग सौन्दर्य सम्पन्न नायिका-सी जान पड़ती है। भारतीय संस्कृत कवियोंमें भी ऐसे सिद्धान्तोंकी कमी नहीं है। परंतु इन लोगोंके सम्पूर्ण ग्रंथोंको अच्छी तरह मथा जाय तब कहीं सिद्धांतरूपी अमृत मिलनेकी आशा है। प्रकृतिको छोड़, प्राकृतिक दृश्योंका भी विशद वर्णन अंग्रेजी कवियोंने अच्छा किया है। आज-कल कोरे अंग्रेजी-साहित्यके पढ़नेवाले नवयुवक यह झट कह बैठनेमें नहीं सकुचते कि भारतीय कवियोंमें किसीने भी प्रकृतिका यथार्थ वर्णन कहीं भी नहीं किया है। परंतु यह सिद्धांत सर्वथा भ्रममूलक है। साहित्यका अध्ययन तथा मनन करनेवाले समालोचक इस एक देशीय सिद्धांतको अस्वीकार करनेमें कभी नहीं हिचकेंगे। इस सार्वजनिक भ्राँतिका मूलोच्छेद करनेके लिये संस्कृत कवियोंके प्राकृतिक वर्णनका दिग्दर्शन यहाँ कराया जायगा। सबसे पहले कविता-कामिनीकान्त कालिदासके ही वर्णनोंपर विचार कीजिये।

तपोवन-वर्णन

भारतीय तथा यूरोपीय सभ्यतामें बड़ा अन्तर है। भारत तथा यूरोपके स्थान विशेषोंसे ही सभ्यताके भेदका अनुमान किया जा सकता है। यदि एक पूर्वकी ओर है तो दूसरी पश्चिमकी ओर। यदि पहली सूर्यकी रोशनीमें चमकनेवाली है तो दूसरी प्रगाढ़ अन्धकारमें सूर्य-रश्मिके उजालेको टकटोर रही है। यूरोपीय सभ्यता पूर्णतया आधिभौतिक है। शरीरके ही श्रृङ्गार करनेपर लगी हुई है। इसे पता नहीं कि आत्मापर कितनी धूल पड़ी हुई है। Eat, drink and be merry—खाओ, पीओ और चैन करो, वहाँका यह लक्ष्य है, यही महामंत्र है। परंतु भारतीय सभ्यता पूरी आध्यात्मिक है। भारतीय जीवनकी नींव धर्मकी सुदृढ़ भित्तिपर खड़ी है, आत्माकी उन्नति ही अन्तिम ध्येय है; सांसारिक सुखोंको भारतीय अनित्य समझते हैं। परंतु ध्यान रहे सुखके साधनोंके पानेके पहले ही यह सिद्धान्त नहीं बना लिया गया, प्रत्युत् सुखोंको अच्छी तरह भोगकर उन्हें तुच्छ जान छोड़ दिया। भौतिक उन्नति अच्छी तरह हो जानेके बाद भारतका ध्यान आत्माकी ओर अटल विश्वाससे लग गया। जब अन्तिम अवस्था, संन्यास, तपोवनोंमें ही बितायी जाती थी तब हम सोच सकते हैं कि यह तपोवन कैसा आदर्श होगा। भारतके जातीय कवि कालिदासके ग्रन्थरत्नोंमें इसका विशद चित्र खींचा हुआ मिलता है। रघुवंश तथा शकुन्तला नाटकोंमें कालिदासने तपोवनका ऐसा अच्छा वर्णन किया है कि वैसा आदर्श चित्रण संस्कृत-साहित्यमें बहुत कम मिलता है।

पुत्रोत्पत्तिके लिये महाराज दिलीप अपनी धर्मपत्नी सुदक्षिणाके साथ सूर्य-कुल-गुरु महर्षि वशिष्ठके पास जा रहे हैं। जाते-जाते आश्रम मिलता है, जिसका वर्णन कालिदासने इस प्रकार किया है—

> वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
> पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः॥४९॥
> आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।
> अपत्यैरिव नीवार भाग धेयोचितैर्मृगैः॥५०॥
> सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
> विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्॥५१॥
> आतपायत्यं संक्षिप्त नीवारासु निषादिभिः।
> मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गणभूमिषु॥५२॥
>
> —रघुवंश १ स०

"सायंकाल समिध, कुश और फलोंको लेकर मुनि लोग दूसरे वनोंसे लौट रहे हैं। पाँतकी पाँत पर्णकुटियाँ बनी हुई हैं, जिनमें अपनी स्त्रियों तथा सन्तानोंके साथ वह निवास करते हैं। ग्रीष्मऋतुके बीत जानेपर आंगनमें नीवारकी राशि लगी हुई है। पुत्रोंके साथ पाले गये कोई-कोई मृग आंगनमें बैठे जुगाली कर रहे हैं, कोई-कोई कुटीके द्वारको रोक बैठे हैं। ऋषिकन्याएँ पौधोंको सींच रही हैं। पौधोंके नीचे थाले बनाये गये हैं; उनमें पानी भरा हुआ है। पक्षिगण उसी जलसे अपनी प्यास बुझाकर पेड़ोंकी शाखाओंपर विश्राम कर रहे हैं। पवित्र अग्नि जल रही है। उसमें घीकी आहुति दी जा रही है। साथ ही वेदमंत्रोंकी ध्वनिसे वह स्थान गूँज रहा है। धूम तथा सुगन्ध वायुमें चारों ओर फैल रहे हैं।"

कैसा अच्छा तात्त्विक वर्णन है। पढ़ते-पढ़ते मालूम

होता है कि तपोवनका चित्र खींचकर सामने रख दिया गया है। शकुन्तलामें भी इससे कहीं अच्छा कण्वमुनिके आश्रमका वर्णन है। पाठक ध्यानपूर्वक पढ़िये—

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखाद्भ्रष्टाः तरूणामधः
प्रस्निग्धाःक्वचिदिङ्गुदीफलभिदः दृश्यन्त एवोपलाः
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगाः
तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखा निष्यन्दरेखांकिताः
—शाकुन्तल, प्र० अंक

"आश्रमके वृक्षोंके खोखलोंमें रंगविरंगे सुग्गे रहते हैं। खानेके लिये धानकी पकी बालियाँ यह तोड़ लाये हैं। इन्हीं बालियोंके कुछ दाने उनके मुखसे गिर गये हैं। ऋषि लोगोंने इंगुदीफलका पत्थरपर कुचलकर तेल निकाला है। इसलिये शिलाएँ तेलसे चिकनी दिखायी देती हैं। ऋषियोंमें मृगोंका विश्वास इतना हो गया है कि शब्द सुननेपर भी वह भगते नहीं, खड़े-खड़े जुगाली करते रहते हैं। वल्कल परिधान है। स्नान करनेके बाद भीगे वल्कलोंको यह आश्रममें लाते हैं, इसीलिये सरोवरके रास्तोंपर वस्त्रोंकी शिखासे चूनेवाले पानीका चिह्न बन गया है।"

कहिये कैसा अच्छा वर्णन है। वृक्षोंके नीचे गिरे दानों, चिकनी शिलाओं, पानीके टपकनेसे चिह्नवाले रास्तोंको देखकर कौन नहीं कह सकता कि हो न हो यह ऋषियों के आश्रमकी प्रान्तभूमि है। स्वयं आश्रमका शाब्दिक चित्रण जरा देखिये —

कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतमूलाः।
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन॥

आश्रमके समीप ही नदी बह रही है। वायुके झोकोंसे उसमें छोटी-छोटी लहरें उठ रही हैं। नदीके किनारे पेड़ोंकी कतार है। छोटी-छोटी लहरोंके लगनेसे वृक्षोंके जड़की मिट्टी धुल गयी है। अग्निकुण्ड ऋषियोंके यज्ञ करनेके लिये वृक्षोंके नीचे बने हुए हैं। आगमें घीकी आहुति दी जाती है। होम-धूमके उठनेसे वृक्षोंके कोमल पत्तोंका लाल रंग कुछ मलीन पड़ गया।

निस्सन्देह यह वर्णन हृदयग्राही है। चित्रकार जो कार्य तपोवनके अच्छे चित्रोंको खींचकर कर सकता है उसीको कविने शब्दोंमें बड़ी खूबीके साथ सम्पादन कर दिया है।

कवि को आश्रमकी प्रत्येक चीजके साथ सहानुभूति है: उसे आश्रमके वृक्ष और मृगछौने याद आये बिना नहीं रह सकते। उनका वर्णन उसे किसी प्रकार छोड़ते नहीं बनता। वाल्मीकिके आश्रमका छोटा चित्र देख लीजिये—

सायं मृगाध्यासित वेदि पार्श्वं, स्वमाश्रमं श्रान्तमृगं निनाय।
(रघु० १४ स०)।

वेदियोंके पास मृग सानन्द बैठे हुए हैं। ऋषि लोग मृगछौनोंको अपनी सन्तानकी अपेक्षा कम प्यारकी दृष्टिसे नहीं देखते। रघुवंशके पंचमसर्गमें रघुने आश्रमकी कुशलवार्ता पूछते-पूछते इन मृगोंके बच्चोंका भी हाल पूछा है—

क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वात् अभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु।
तदंकशय्याच्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः॥

ऋषियोंको यज्ञके लिये कुशकी आवश्यकता रहती है। मृगके छौने उन्हींके अंकुरोंको खा डालते हैं। तो भी मुनिगण इन्हें इतना प्यार करते हैं कि बच्चोंको खानेसे कभी मना नहीं करते। मृगियोंके जब बच्चे पैदा होते हैं, प्रेमके वश यह लोग अपनी गोदीमें लेकर रातको उन्हें सुलाया करते हैं। इसलिये बच्चोंके नाभिनाल वहीं गिरे हुए हैं। भला इससे बढ़कर विश्वप्रेमका विमल दृश्य और कहाँ दिखायी देगा। पशुओंके बच्चोंके साथ इतना प्रेम-व्यवहार विदेशीय साहित्यमें कहीं नहीं मिलता। आश्रमके वृक्षोंके विषयमें कवि कहता है कि—

निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि
(१३ स० रघु०)

मालूम होता है यतियोंकी देखादेखी वृक्ष भी तपस्विव्रत धारणकर निश्चल खड़े होकर योगाभ्यास कर रहे हैं। महाकवि श्रीहर्षने तो यहाँतक कह डाला है कि वृद्धे योगियोंके रूपमें वायुसे कम्पित वृक्ष अतिथि-सत्कारके लिये अपने मीठे फलोंको लिये तनेकी छड़ीके सहारे खड़े कंप रहे हैं। क्या ही अच्छी उक्ति है! प्रकृति-निरीक्षण और कल्पनाका कैसा अच्छा सम्मिलन है!

तपस्वीके घरमें कौन-सी सामग्री है? इसे भी जरा सुन लीजिये—

ता इंगुदीस्नेहकृतप्रदीप मास्तीर्ण मेध्याजिनतल्पमन्तः।
तस्यै सपर्यापनुदं दिनान्ते निवासहेतोरुटजं वितेरुः॥
(रघु० १४ स० ८१ श्लोक)

विषस्य विषमौषधम्

[ले० डा० कमलाप्रसाद, एम्० बी०, हजारीबाग]

वैक्सिन क्या है ?

आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रमें वैक्सिनको बहुत बड़ा स्थान प्राप्त है। इसका प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। यह वैक्सिन क्या है? यह एक प्रकारका कीटाणु-विष है। (Pathogenic Organisms) अंग विकृतिकारक कीटाणुओंद्वारा प्रादुर्भूत विषों (Toxins) का मानव-शरीरपर इतना हानिकारक प्रभाव पड़ता है कि बहुत तरहके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगोंको दूर करनेके लिये अन्य ओषधियोंके अतिरिक्त उन्हीं कीटाणुओंके विषका प्रयोग किया जाता है। किसी विशेष कीटाणुके हजार, दो हजार, लाख वा दस लाख गिन लिये जाते हैं, और तब उन्हें निष्प्राण कर दिया जाता है, अर्थात् कीटाणुओंके शरीर एवं विष तो ज्योंके त्यों रह जाते हैं किन्तु वे स्वयं जीवित नहीं रह जाते। इन मृतशरीर-कीटाणुओंके घोलको वैक्सिन (Vaccine) कहते हैं।

वैक्सिनका प्रभाव

यह वैक्सिन सुईद्वारा शरीरमें प्रवेश कराये जानेपर प्रतिविष तैयार करता है। कीटाणु विष और शरीरोत्पन्न

पर्णकुटीमें दीपक जल रहा है। इंगुदी-फलसे तेल निकाला गया है। ज़मीनपर मृगचर्मका बिस्तर बिछा हुआ है। बस और कुछ नहीं है। सोनेके लिये मृगचर्म और अन्धकार दूर करनेके लिये दीपक! बस घरमें केवल यही सामान है।

नीचे लिखे श्लोकोंमें कालिदासने मुनिजीवनके सरल सुखोंका, खासा वर्णन किया है—

अध्यूष्यतीरां मुनि संनिवेशैः स्तमोपहन्त्रीं तमसां विगाह्य।
तत्सैकतोत्संगबलिक्रियाभिः संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः॥
पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो बीजं च वालेयमकृष्टरोहि।
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषङ्गा मुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम्॥
पयोघटैराश्रमबालवृक्षान् संवर्धयन्तीः स्वबलानुरूपैः।
असंशयं प्राक् तनयोपपत्तेः स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्॥

परित्यक्त सीताको वाल्मीकिजी शान्त कर रहे हैं।

तमसाके तीरपर ध्यान-मग्न मुनियोंके आसन मारकर बैठनेसे कुछ भी स्थान खाली नहीं रहता। ऐसी तमसामें जो अज्ञानान्धकारको दूर कर देनेवाली है स्नान करने और उसके बालुकामय प्रदेशोंपर बैठकर बलिप्रदान करनेसे तुम्हारे हृदयको शान्ति मिलेगी। मुनि-कन्याएँ ऋतुमें होनेवाले फलफूल लाती हैं और पूजाके योग्य बिना जोते बोये उत्पन्न होनेवाले नीवारको इकट्ठा करती हैं। यह तुम्हारे नये दुःखको दूर कर देंगी। यह बालिकाएँ अपने बलके अनुसार छोटे-बड़े घड़ोंमें जल भर-भरकर पौधोंको सींचा करती हैं। लड़के होनेके पहले मुनि-कन्याओंके साथ रहनेसे तुम पुत्र-प्रेम सीख जाओगी।

वाल्मीकिके इन वचनोंमें मुनि-जीवनके सुखोंका कैसा वर्णन है। घड़ोंसे पौधोंको सींचना, पूजाके लिये धान बटोरना, भोजनके लिये फलफूल लाना, स्नानकर बलिप्रदान करना, बालिकाओंके लिये यह कैसे निर्दोष और सात्विक काम हैं। इस जीवनमें कैसा विचित्र आनन्द है। मुनि-कन्याएँ प्रकृतिके साथ कितनी सहानुभूति प्रकट कर रही हैं। भावी मातृजीवनकी प्रेममयी शिक्षा, सन्तानका लालन पालन—यह कन्याएँ तपोवनमें सीख रही हैं। छोटी बहिनोंके समान लतिकाओंसे यह प्रेम रखती हैं। नित्यप्रति जलसे सींचकर देखभाल करना उनका काम है। ऐसी संगतिसे कैसा अच्छा विश्व-प्रेम उनके हृदयमें उदय होगा, यह अनुभवसे ही जाना जा सकता है। कैसा निर्दोष आनन्दका सोता बह रहा है? स्वर्गीय जीवन यह नहीं है तो और कैसा है?

आश्रम और मुनियोंके जीवनका वर्णन पढ़ कौन सहृदय ऐसा होगा, जिसके नेत्रोंके सामने यह चित्र खिंच नहीं जाता। कौन ऐसा है जो इसे पढ़कर भी कालिदासको प्रकृतिका सूक्ष्म निरीक्षक न मानता हो?

परीक्षित प्रयोग

नासाश्राव या नकसीर

[ले०—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

नासाश्रावका शरीरपर प्रभाव

आजकल बहुधा गर्मीके कारण अनेक व्यक्तियोंके नासिका-मार्गसे अकस्मात् रक्तका श्राव होने लगता है। कइयोंको तोला दो तोला रक्त जाकर बन्द हो जाता है, कइयोंको बन्द नहीं होता। ऐसे व्यक्तियोंका अधिक रक्त जब शरीरसे निकल जाता है तो उनकी शारीरिक स्थिति बिगड़ जाती है, कई वहींपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। कइयोंके हृदयकी धड़कनके बन्द हो जानेका भय उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार नासासे रक्त-श्राव क्यों होता है? किन कारणोंसे होने लग जाता है। हम प्रथम इसपर कुछ प्रकाश डालेंगे। तत्पश्चात् भिन्न-भिन्न कारणोद्भूत नासाश्रावके अनुभूत योग देंगे।

प्रतिविष दोनों (शरीरके रक्तमें मिलकर एक दूसरेको) निश्चेष्ट कर देते हैं, किन्तु कृत्रिम उपायसे तैयार किया (अर्थात् वैक्सिन प्रवेश कराकर) प्रतिविष मात्रामें विष (वैक्सिन) की अपेक्षा कहीं अधिक होता है, फलतः यह शरीरमें वर्तमान पहलेके विषको भी नष्ट कर देता है, जिससे रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं।

टुबर्कुलिनका प्रभाव

यक्ष्मा-कीटाणुओंका पता प्रथमतः कौक नामक वैज्ञानिकको चला था। उसने इसका वैक्सिन—जिसे टुबर्कुलिन (Tuberculin) कहते हैं—भी तैयार किया। जिस समय यह तैयार हुआ था, चिकित्सा-संसारको पूरी आशा हो गयी थी कि इसकेद्वारा यक्ष्माको समूल नष्ट कर दिया जा सकेगा, किन्तु यह आशा दुराशामात्र सिद्ध हुई और यद्यपि किसी-किसी विशेष प्रकारके यक्ष्माकी चिकित्साके लिये इसका प्रयोग किया जाता है, तथापि टुबर्कुलिनका व्यवहार प्रायः नगण्य है।

बी० सी० जी०

इधर कुछ दिनोंसे फ्रांसका एक यक्ष्मा विशेषज्ञ काल्मेट्टी इस चिंतामें था कि जैसे हैजेसे बचनेके लिये हैजा कीटाणुका वैक्सिन शरीरमें प्रवेश कराया जाता है, उसी प्रकार यक्ष्मासे बचनेके लिये भी कोई ऐसा ही पदार्थ मिल जाता। इस महानुभावका अथक-परिश्रम सार्थक हुआ। इसने यह सिद्धकर दिखाया कि यक्ष्मासे बचनेके लिये यक्ष्मा-कीटाणुओंको ही शरीरमें प्रवेश कराना होगा। कुछ यक्ष्मा-कीटाणु किसी उचित माध्यममें उपजाकर बढ़ाये जाते हैं। इन नवोत्पन्न कीटाणुओंसे दूसरे कीटाणु उत्पन्न कराये जाते हैं, और यह क्रिया ६०। ७० बार दुहरायी जाती है, तथा बार-बार कृत्रिम खाद्यपर उपजाये जानेके कारण अन्तमें ये कीटाणु इतने शक्ति-हीन हो जाते हैं कि शरीरमें प्रवेश कराये जानेपर भी रोग नहीं उत्पन्न कर सकते, किन्तु कुछ ऐसे प्रतिविष (Anti-toxin) उत्पन्न कर देते हैं कि शक्ति-सम्पन्न दूसरे यक्ष्मा-कीटाणु भी शरीरमें पहुँचकर उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते प्रत्युत स्वयं मर मिटते हैं।

बी० सी० जी० का प्रयोग और उसका फल

यह प्रयोग आरम्भमें बन्दरोंके शरीरपर किया गया था, और लाभदायक सिद्ध होनेपर यक्ष्मा-रोगियोंकी नवजात सन्तानोंपर किया गया। क्रमशः इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। इसके द्वारा वास्तविक यक्ष्मा रोगीको तो कुछ सहायता नहीं मिलती किन्तु सम्भवतः भावी सन्तानको यक्ष्मासे डरनेका कोई कारण नहीं रह जायगा। इस विष वा निर्जीव कीटाणुका नाम है बी० सी० जी० (B. C. G. वा Bacillus Calmettee Guerin)।

नासास्त्रावका कारण

यह विकार अक्सर उन व्यक्तियोंको अधिक होता है जिनके अन्त्रप्रणालीमें पचन-विकृतिसे एक प्रकारका सन्धान हुआ करता है जिससे शरीरके भीतर उष्णता अधिक रहने लग जाता है और इस उष्णतासे अन्नप्रणालीकी श्लेष्मिक कहते हैं। कलामें रुक्षता अधिक बनी रहती है। उक्त उष्णतासे शरीरका उत्ताप नहीं बढ़ता प्रत्युत कुछ रक्तमें ऐसे विषरूप वायव्य विद्यमान रहते हैं जिनके कारण रक्तकी सान्द्रता श्लेष्मिक कलाकी सान्द्रता और पिच्छलता घट जाती है। इसी कारण श्लेष्मिक कलामें सदा कुछ-न-कुछ रुक्षता बढ़ी रहती है।

रूक्षताका असर

जिन व्यक्तियोंमें उक्त रुक्षता बढ़ी हुई होती है उनका कण्ठ, जिह्वा और नासामार्ग प्रायः शुष्क रहते हैं। सुबहको जब ऐसे व्यक्ति सोकर उठते हैं तो उनकी जिह्वा और कण्ठ रुक्षताके कारण इतने शुष्क व ऐंठे हुए होते हैं कि जैसे शुष्क-चर्म। कई व्यक्तियोंके नासिका-मार्गमें शुष्कताके कारण विकृत पपड़ी (छिछड़े) बनती रहती है। और उस पपड़ीके स्थानपर उसके नीचे कइयोंकी श्लेष्मिक कला उस पपड़ीसे चिपककर उतरते समय छूट जाती है इसीसे रक्तस्राव होने लगता है। कइयोंके नासामार्गमें क्षत बने ही रहते हैं। ऐसे व्यक्तियोंको प्रायः रक्तस्राव हुआ करता है।

पचन-प्रणाली-दोषसे रक्तस्राव होनेका कुपरिणाम

जिनको पचनप्रणाली-दोषसे रक्तस्रावी सन्धान उठा करता है उनको यह विकार यदि कुछ कालतक बने रहे तो यकृति भी इस सन्धानी विषसे प्रभावित होता रहता है और यकृत भी इस विष-प्रभावसे उत्तप्त रहने लग जाता है। इस यकृतिके उत्ताप-वृद्धिका रक्तपर विशेष प्रभाव पड़ता है। और रक्तके शीघ्र जमनेकी शक्ति घट जाती है। रक्तकी प्रगाढ़तामें भी कुछ कमी आ जाती है। परीक्षाओंसे इस बातका पता चला है कि ऐसी दशामें यकृतकी रक्त-नियमन-शक्तिमें अन्तर आ जाता है। इसीसे रक्तमें उठनेवाले सन्धानको पूर्णतया शान्त नहीं कर सकता। यकृतके ऐसे विकारको प्रचलित-भाषामें—जिगरमें गर्मी है, जिगर ताव खा रहा है, यकृत उत्तप्त हो रहा है—आदि नामसे पुकारा जाता है। जब इस प्रकार यकृत उक्त सन्धानी विषसे प्रभावित बना रहता है तो ऐसे व्यक्तियोंको बारहों महीने नासिकासे रक्तस्राव होता रहता है और ऐसे व्यक्तिके नासामार्गमें प्रायः छिछड़ा या पपड़ी बनती रहती है।

चिकित्सा

शर्बत दीनार

बीज कासनी ६ तोला, असली फूल गुलाब ६ तोला, गावजवान ३ तोला, बीज कसूस ९ तोला (इस बीज कसूसको पोटलीमें भिन्न बाँधकर क्वाथ द्रव्योंमें डालना चाहिये), कासनीकी जड़ १२ तोला, नीलकमलके पुष्प ३ तोला सबको अष्टगुण जल अर्थात् ४ सेर जलमें रात्रिको भिगोकर प्रभात मन्द-मन्द अग्निपर क्वाथ करें जब चतुर्थांश जल रहे तो उतारकर छान लें और इस क्वाथमें १ सेर मिश्री मिलाकर इसका चासनीदार शर्बत तय्यार करें। और जब शर्बत शीतल हो जाय तो इसमें २॥ तोले सफेद चीनीको खूब बारीक पीसकर चुटकीसे छोड़कर करछीसे चलाते हुए धीरे-धीरे सारे चूर्णको इसमें मिलाते हैं। इस शर्बतकी मात्रा ३ तोला है।

शर्बतका गुण

यह शर्बत साधारण रेचक है और उदरसे उठनेवाले सन्धानी विषके मूल कारणको समूल उखाड़ फेंकता है। यकृत-दाह और यकृत-प्रदाह, यकृत-वृद्धि तथा अन्य यकृत सम्बन्धी सूक्ष्म विकारोंमें अत्यन्त लाभप्रद है। प्रभातके समय तो रक्त-स्रावीको इसे सेवन करना चाहिये।

दूसरी विधि

दूधके खोआको घृतमें भूनकर उसमें मीठा मिलाकर उसके पेड़े बना लेने चाहिये और बबूलकी कच्ची फलियाँ तोड़कर सायामें सुखा इसका चूर्ण बना लेना चाहिये। ६ माशा बबूलफलीका चूर्ण फाँककर ऊपर उसके पेड़ेका शर्बत शामके समय पीना चाहिये। जिन व्यक्तियोंको बबूलकी फली कच्ची प्राप्त न हो सकें वह कुछ दिन ईसब गोलका छिलका (सत) ६ माशा फाँककर ऊपरसे पेड़ेका शर्बत पियें। गर्मियोंमें पेड़ेका शर्बत दो-तीन बारतक भी पिया जा सकता है। या जब रक्तस्रावका जोर हो उस समय भी कई बार पी सकते हैं।

भाषातत्वके कतिपय स्थूल नियम

[ले० आचार्य्य नरेन्द्रदेव, एम्-ए., एल्-एल्-बी.]

प्रकृति और प्राकृत

कृत भाषाओंकी उत्पत्ति और विकास-का इतिहास रहस्यपूर्ण है। वैयाकरण तथा अलंकार शास्त्रज्ञोंके मतानुसार प्राकृत भाषाओंकी उत्पत्ति संस्कृतसे हुई है। वह प्राकृत शब्दकी व्युत्पत्ति 'प्रकृति'से करते हैं। 'प्रकृति'का अर्थ बीज अथवा मूलतत्व है। 'प्रकृति' उसे कहते हैं जो दूसरे पदार्थ-का प्रारंभक हो। आचार्योंके मतमें संस्कृत ही प्रकृति है। यही मत डाक्टर भंडारकरका भी है। इसके विरुद्ध पिशेल ऐसे प्राकृतके धुरंधर विद्वानोंका मत भी विचारणीय है। पिशेल महोदय केवल संस्कृतको प्राकृतकी जननी नहीं मानते। संस्कृत व्याकरण तथा कोशका प्रभाव सभीको स्वीकृत है। इस लेखका यह विषय नहीं है कि इसकी विवेचना करें कि इन दो मतोंमें कौनसा मत हमको ग्राह्य है। केवल इतना दिखलाना यहाँपर पर्याप्त होगा कि इस विषयमें विद्वानोंमें मतभेद है।

---

२. नासाश्रावका कारण

(Hoemophilia) सहज रक्त-श्रावका रोग होता है। यह रोग कुछ व्यक्तियोंको परम्परासे होता है। और स्त्रियोंको न होकर केवल पुरुषोंको ही देखा जाता है। अर्थात् जिस माताके पुत्रको यह रोग होगा उसकी कन्याको नहीं होगा किन्तु कन्याके जो पुत्र होगा उसको होगा। इसी प्रकार जिन-जिन घरोंमें वह कन्याएँ ब्याही जायँगी उनके पुत्रोंमें यह रोग आगे चला जायगा।

रोगका लक्षण

इस रोगसे ग्रसित व्यक्तिको प्रायः किसी भी स्थानके क्षतसे जब रक्तका श्राव जारी हो जाता है तो बड़ी कठिनतासे रुकता है। यदि इस रोगसे ग्रसित व्यक्ति अधिक कालतक जीवित रहें तो उन्हें नासाश्राव (नकसीर) या रक्तार्श आदिसे प्रायः रक्त-श्रावका रोग लग जाता है जिसके कारण उनका शरीर प्रायः पीला रक्त-रहित दिखाई देता है।

रोगका कारण

इस रोगमें रक्तके जमनेकी स्वभावतः शक्तिमें ह्रास हो जाता है। प्रायः जब किसी व्यक्तिके कहींसे रक्त-श्राव हो रहा हो तो रक्तमें यह शक्ति पायी जाती है कि वह बाहर-की हवाके लगते ही जमने लगता है। इसीसे जहाँसे रक्त निकल रहा है। वहाँ हवाके लगनेसे रक्त जमता चला जाता है और कुछ देरमें रक्त जमकर क्षत स्थानको बन्द कर देता है। परन्तु जब रक्तके जमनेकी शक्ति घट गयी हो तो ऐसी दशामें जिस क्षतसे रक्तका श्राव आरम्भ हो जाता है वहाँ-पर हवाके लगते रहनेपर भी वह नहीं जमता इसी कारण रक्तका श्राव शरीरसे बन्द नहीं होता। प्रायः ऐसे रोगी अक्सर रक्तश्रावसे मर जाया करते हैं।

इस रोगका प्रभाव

जो जीवित रहते हैं, उनमें रक्तके जमनेकी मध्यम श्रेणीकी शक्ति पायी जाती है। ऐसे ही व्यक्तियोंको प्रायः नासा-श्राव रक्तार्श आदिका रोग लग जाता है। ऐसे रोगी-के शरीरकी रक्त-वाहनियाँ प्रायः पतली होती हैं। तथा कइयोंको सन्धि-स्थलोंमें जैसे घुटने, कोहनी आदिके जोड़ोंमें रक्तका संचय देखा जाता है। कइयोंको त्वचाके नीचे भी रक्तके संचित होनेके लाल-लाल धब्बे देखे जाते हैं।

चिकित्सा

ऐसे रक्त-श्रावी या नासाश्रावी रोगोंको निम्नलिखित औषध विशेष लाभदायी सिद्ध हुई है। संगजराहत या दूधपथरी १॥ माशा, गाजर सुखाकर चूर्ण की हुई ६ माशा, दोनोंको मिलाकर एक मात्रा बना लें। इसको गाजर (गृञ्जन) के अर्कसे एक समय नित्य सेवन करावें। कुछ सप्ताहके सेवनसे रक्तके जमनेकी शक्ति भी बढ़ जाती है और नासिका-से रक्तका जाना बिलकुल रुक जाता है। यह योग साधारण या अन्य कारणोंसे उत्पन्न नासाश्रावपर भी लाभकारी है।

संस्कृत और प्राकृत

'संस्कृत' शब्दका अर्थ "संस्कार-संपन्न" है। वृक्षकी लकड़ी अपने स्वाभाविक रूपमें है, परन्तु जब उसको काट छांटकर कोई विशेष आकार दिया जाता है तब कहा जाता है कि लकड़ीमें एक विशेष प्रकारका संस्कार हुआ है। संस्कृतको देववाणी कहते हैं। काव्यादर्शमें कहा है कि—

संस्कृत नामदैवी वाग त्वाख्याता महर्षिभिः।

—परिच्छेद १, श्लो० ३३

"दैवी" का अर्थ टीकाकार 'दैवत संस्कार संपन्ना देवैरुच्चार्यमाणा वा' करते हैं। अर्थात् संस्कृत वह भाषा है जो दैवत संस्कार संपन्न है अथवा जो देवताओंकी भाषा है। पहले अर्थके अनुसार संस्कृत एक विशेष संपन्न भाषा है। इसके विपरीत प्राकृत वह भाषा है जिसे साधारणजन जो व्याकरणशास्त्रमें व्युत्पन्न नहीं हैं बोलते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि शिष्टोंकी भाषा संस्कृत थी और सर्वसाधारणकी भाषा प्राकृत थी। शिष्टका लक्षण महाभारतमें निम्न प्रकारसे है:—

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो मुनिः
न च वागंगचपल इति शिष्टस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् जिसमें किसी प्रकारकी चपलता न हो उसे शिष्ट कहते हैं।

शब्दोंके रूप बदलना

प्राकृत व्याकरणके नियमोंपर विचार करनेसे स्पष्ट प्रतीत होगा कि बहुतसे शब्दोंके रूप केवल असावधानताके कारण परिवर्तित हो गये हैं। मनुष्य स्वभावसे ही आलसी है। वह केवल व्यवसायके लिये व्यवसाय नहीं करना चाहता। जबतक कार्य सुगमतापूर्वक चला जाता है तबतक वह विशेष प्रयत्न नहीं करना चाहता। यही कारण है कि बोलनेमें असावधानता होना स्वाभाविक है। भाषाके विकासमें यह भी एक कारण है। संस्कृत भाषामें भी इसके उदाहरण मिलते हैं, परन्तु प्राकृतमें यह नियम व्यापक रूपसे पाया जाता है। यदि यह विचार यथार्थ है तो इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृतका व्यवहार करनेवाले शुद्ध प्राकृतका व्यवहार करनेवालोंकी अपेक्षा अपनेको शिष्ट समझते होंगे। और यदि संस्कृत ही प्राकृतकी जननी है तो यह विचार और भी अधिक सत्य प्रमाणित होगा।

वर्णव्यत्यय

बहुतसे शब्दोंमें वर्णव्यत्यय होनेसे रूप बदल जाता है यथा; लखनऊके लिये नखलऊ, लारके लिये राल बाराणसीके लिये बनारस, तिलकके लिये टिकली इत्यादि। यह प्रयोग केवल असावधानताके कारण होते हैं। शिष्ट लोग ऐसी असावधानताको दोष समझते हैं और उनकी सदा चेष्टा रहती है कि दुष्ट शब्दोंका प्रयोग न करें। श्रुति है—"एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यक् ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति" अर्थात् सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् प्रयुक्त एक शब्द समस्त इच्छाओंको पूरा करता है। पढ़े-लिखे लोग जब कभी किसीको 'नखलऊ' कहते सुनते हैं तो उसका उपहास करते हैं। परन्तु जब एक बिगड़े शब्दका व्यवहार अधिक हो जाता है और लोग उसके मूल स्वरूपको भूल जाते हैं तब वह विकृत शब्द शिष्टोंकी भाषामें कभी-कभी स्थान पा जाता है। शहरके लोग 'राल' शब्दका ही प्रयोग करते हैं, यथा—तुम्हारी राल क्यों टपकती है, यद्यपि ग्रामीण लोग 'लार' शब्दका प्रयोग करते हैं जो संस्कृतके 'लाला' शब्दसे बना है। प्राकृतमें ही ऐसी असावधानता नहीं पायी जाती है, परन्तु संस्कृतमें भी वर्णव्यत्ययके उदाहरण मिलते हैं, यह दूसरी बात है कि उनकी संख्या कम हो। उदाहरणके लिये 'सिंह' संस्कृतका एक शब्द है। परन्तु यह 'हिंस्' धातुसे बना है, जिसका अर्थ हिंसा करना है। अतः यह शब्द वर्णव्यत्ययके नियमके अनुसार बना है। 'कश्यप' एक मुनि हो गये हैं। यह शब्द 'पश्' धातुसे बना है, जिसका अर्थ देखना है। पहले इसका रूप 'पश्यक' रहा होगा। 'पश्' धातु मंत्रोंमें व्यवहृत होते देखा गया है। अन्यथा 'कश्यप' शब्दका यथार्थ निर्वचन नहीं हो सकता। 'दृश्' धातुके वर्तमान कालका रूप 'पश्यति' होता है, परन्तु यह वैदिक पश् धातुसे बना है। जब 'पश्' धातुका प्रयोग लुप्त हो गया तब भी 'पश्यति' का व्यवहार पूर्व रूपसे वैसा ही रहा, परन्तु यह समझा जाने लगा कि 'दृश्' धातुमें तिङन्त प्रत्यय लगानेसे यह रूप सिद्ध हुआ है। पतंजलिने वर्णव्यत्ययके उदाहरण अपने महाभाष्यमें दिये हैं—"वर्ण-

व्यत्यये । कृते स्तर्कः । कसेः सिकताः । हिंसे हिंसः । १ । १ । २ ।" प्राकृत भाषासे भी कई अन्य उदाहरण उद्धृत किये जा सकते हैं। जैसे णिडाल = सं० ललाट्, कीचड़ = प्रा० चिक्खल्ल, हलु = सं० लघु ; नहान सं० स्नान इत्यादि।

बहुतसे प्राकृत शब्दोंपर विचार करनेसे पाया जायगा कि 'र' के स्थानमें 'ल' का आदेश हो गया है। यथा-सं० हरिद्रा = प्रा० हलदी, दरिद्री = दलिद्री, पर्यंक = पर्लंक = पलंग। कहीं एक ही अर्थमें दो शब्दोंका प्रयोग होता है, जिनमें केवल इतना ही अन्तर है कि एकमें 'र' के स्थानमें 'ल' का प्रयोग हुआ है। यथा-फरना, फलना; तरे, तले ; चाउर, चावल इत्यादि। आपने बहुतसे गँवारोंको "बैरिस्टर" के स्थानमें 'बलहटर' कहते सुना होगा। इनको कोई यह सिखलाने नहीं जाता कि वह 'र' के स्थानमें 'ल' का प्रयोग करें। उनके लिये यह स्वाभाविक है। अतः प्राकृत भाषामें जहाँ कहीं हम 'र' के स्थानमें 'ल' के आदेशका विधान पाते हैं तो हमको यह न समझ लेना चाहिये कि यह शब्दशास्त्रके पंडितोंकी आज्ञा है। नहीं इस आदेशका कोई आन्तरिक कारण है जो भाषाविकासमें सहायक होता है।

पहले भाषा फिर व्याकरण

पहले भाषा है तब व्याकरण। भाषाकी शब्दावलीपर विचार कर वैयाकरण उन नियमोंको खोज निकालते हैं, जिनके आश्रयसे शब्दोंकी रचना हुई है। प्राकृतको छोड़ दीजिये। संस्कृतमें भी यह नियम बहुधा देखा जाता है। यथा—रोहित, लोहित ; रोम, लोम ; शुक्र, शुक्ल; मिश्र, मिश्ल (वेद) ; रभ्, लभ ; इत्यादि। अब हमको इसपर विचार करना है कि इस आदेशका क्या कारण है।

वर्णोच्चारणमें विभिन्नता

बच्चोंकी भाषापर यदि आपने सूक्ष्मतया विचार किया होगा तो आपको पता होगा कि बच्चे भी 'र' के स्थानमें 'ल' का प्रयोग करते हैं। उनसे 'र' का उच्चारण नहीं हो सकता। अब यदि हम शब्दोत्पत्तिपर ध्यान दें तो इस आदेशका कारण स्पष्ट हो जायगा। कण्ठ और वक्षस्थलके मध्य देशमें शरीरवर्ती वायुके आघातसे शब्दकी उत्पत्ति होती है। 'र' के उच्चारणमें जिह्वाग्रके मध्यभागसे दन्तमूलके ऊपरके भागको स्पर्श करना पड़ता है और 'ल' के उच्चारणमें जिह्वाग्रके मध्यभागसे दन्त मूलको ही छूते हैं। अतः 'ल' के उच्चारणमें उतना प्रयत्न नहीं करना पड़ता है जितना कि 'र' के उच्चारणमें करना पड़ता है। बच्चोंके उच्चारणस्थानोंका पूर्ण रूपसे विकास नहीं होता है, इसी कारण उनको शुद्ध उच्चारणमें कठिनता प्रतीत होती है।

मनुष्य उतना ही प्रयत्न करना चाहता है जितनेसे उसका कार्य चल सके और उसे लोग समझ सकें। शब्दोत्पत्तिमें कष्टसाध्य और सूक्ष्म प्रक्रियाएँ होती हैं। यही कारण है कि लोग 'र' के स्थानमें कहीं-कहीं 'ल' का प्रयोग करते हैं। उच्चारण स्थानोंपर प्रदेश विशेषके जलवायुका भी प्रभाव पड़ता है। यह प्रायः देखा गया है कि एक प्रान्तके लोग 'ल' का बहुधा प्रयोग करते हैं (मागधीमें) अलमोड़ाके लोग 'स' के स्थानमें 'श' का अधिक प्रयोग करते हैं। उनके लिये दन्त्य स का उच्चारण करना कष्टसाध्य है।

ध्वनि और उनकी उत्पत्ति

तैत्तिरीय प्रातिशाख्यमें शब्दोत्पत्तिपर सूक्ष्म विचार किया गया है। उसीके अनुसार हम प्रत्येक ध्वनिकी उत्पत्ति बतावेंगे।

अ—'अ' के उच्चारणमें दोनों ओठ और जबड़े न तो बहुत संश्लिष्ट रहते हैं और न एक दूसरेसे अत्यन्त फैले हुए।

इ—'इ' के उच्चारणमें जिह्वाका मध्यभाग तालुमें फेंकना पड़ता है।

उ—'उ' में ओठोंको गोल करके शब्द करना पड़ता है।

ए—'ए' के उच्चारणमें ओठोंको कुछ ही पास लाना पड़ता है और जबड़े विशेष रूपसे मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिह्वा मध्यके अन्त भागोंसे ऊपरके जबड़ेके मूल-प्रान्त प्रदेशको छूना होता है।

ओ—'ओ' के उच्चारणमें जबड़े बहुत नहीं फैलते और ओठ संश्लिष्ट हो जाते हैं।

ऐ, औ—'ऐ' 'औ' का आदि अकारका अर्धकालसम है। 'ऐ' का शेष भाग इकार है, 'औ' का शेष भाग उकार है।

ऋ, ऌ—इन वर्णोंके उच्चारणमें दोनों जबड़े बहुत पास

आ जाते हैं और जिह्वाका अग्रभाग दन्त-पंक्तिके उच्च प्रदेशमें फेंकना पड़ता है।

कवर्ग—कवर्गके उच्चारणमें जिह्वाके मूलसे जबड़ोंके मूल भागका स्पर्श किया जाता है।

चवर्ग, श—जिह्वामध्यसे तालु छूना पड़ता है।

टवर्ग, ष—जिह्वाग्रका आवेष्टन करके उससे मूर्द्धाको छूते हैं।

तवर्ग, स—जिह्वाग्रसे दन्तमूल छूते हैं।

पवर्ग—पवर्गके उच्चारणमें दोनों ओठ परस्पर मिलते हैं।

य—जिह्वाके मध्यके अन्त भागसे तालुको छूते हैं।

र—जिह्वाग्रके मध्यभागसे दन्तमूलके ऊपरके भागको स्पर्श करते हैं।

ल—जिह्वाग्रके मध्य भागसे दन्तमूलको छूते हैं।

व—अधरोष्ठके प्रान्त भागोंसे ऊपरके दातोंके अग्रभागको छूते हैं।

संयुक्तवर्णके उच्चारणमें एक स्थानसे स्थानान्तरमें जाना पड़ता है। यह साधारण जनोंके लिये कष्टसाध्य है। उदाहरणके लिये सं० चक्रका प्रा० चक्क, चाक रूप ले लीजिये। 'चक्र' के उच्चारणमें, जैसा पाठकोंको अब मालूम होगा, पहले जिह्वाग्रके मध्यभागसे दन्तमूलके ऊपरी भागको स्पर्श करना पड़ता है, फिर दोनों ओठोंका परस्पर संश्लेष-विश्लेष करना पड़ता है। इस प्रयत्नकी मात्रा कम करनेसे चक्क रूप होता है। यहाँ जिन वर्णोंका संयोग होता है वह एक ही रूपके हो जाते हैं। संयोगके उच्चारणमें जो भार स्थान एक दूसरेपर डालते हैं वह भार वैसा ही रहता है, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। धीरे-धीरे 'चक्क' का 'चाक' हो जाता है। यहाँ उच्चारणकाल सम करनेके लिये पूर्वके स्वरको दीर्घ कर दिया है। एक और उदाहरण लीजिये। कहीं-कहीं न' के स्थान में 'ल' का प्रयोग पाया जाता है। यथाः—

पन्हव=पल्हव : मिनैंडर=मिलिंद, जनम=जलम ; नील=लील।

बाजे लोग हनुमानजीके स्थानमें हलमानजी कहते हैं। इसका कारण यही है कि 'न' और 'ल' के उच्चारणमें थोड़ा ही अन्तर है। इसीलिये 'न' के स्थानमें 'ल' और 'ल' के स्थानमें कहीं-कहीं 'न' (यथा ; ललाट=णिडाल) पाया जाता है। जापानी 'न' को 'ल' उच्चारण करते हैं। अब प्राकृतके निम्नलिखित नियमोंपर विचार कीजिये।

यस्यजः (प्राकृत लक्षण, व्यंजनविधान; सूत्र १५)

अर्थात् 'य' के स्थानमें 'ज' का आदेश होता है। यथा यौवन=जुव्वणं=जोवन ; सूर्य्य=सूरज ; यात्रा=जत्ता= हि० जात्रा इत्यादि।

'य' के उच्चारणमें जिह्वामध्यके अन्त भागसे तालुको छूते हैं और 'ज' के उच्चारणमें जिह्वामध्यसे तालु छूना पड़ता है। दोनोंके उच्चारणमें बहुत सूक्ष्म अन्तर है। यही कारण है कि 'य' के स्थानमें 'ज' का आदेश होता है। अब हम प्राकृत व्याकरणके एक दूसरे नियमपर विचार करते हैं। यवयोरिदुतौ (प्राकृत लक्षण—व्यंजन विधान, सूत्र ३१) 'य' के स्थानमें 'इ' और 'व' के स्थानमें 'उ' आदेश होता है। यह आदेश भी उपर्युक्त कारणसे होता है। इसी प्रकार अन्य कई नियम भी समझाये जा सकते हैं।

दो ध्वनि एक प्रकारकी एक साथ करनेमें बड़ी सावधानताकी आवश्यकता होती है। इसी कारण उसमें विभेद कर देते हैं। उदाहरणके लिये 'मुकुट' शब्दको ले लीजिये। भाषामें लोग 'मुकट' या 'मकुट' कहते हैं। 'मु' और 'कु' ध्वनि समान हैं, क्योंकि दोनोंमें 'उ' स्वरका योग है। शुद्ध उच्चारणमें विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता पड़ती है, जो कष्टसाध्य है। 'मकुट' अथवा 'मुकट' कहनेमें ही सुगमता होती है। इसके कुछ अन्य उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। यथाः—सं० नुपूर = प्रा० नेउर; पुरुष = प्रा० पुरिस; गुरु = प्रा० गरु। संस्कृतमें भी इसके उदाहरण मिलेंगे। 'श्रु' धातुके वर्तमानकालके उत्तम पुरुष बहुवचनका रूप श्रृणुमः' होता है। यहाँ 'श्रु' के स्थानमें 'श्रृ' का प्रयोग होता है। यह केवल असमान ध्वनि करनेके लिये है।

कहीं-कहीं दो व्यंजनोंके बीच जिनका उच्चारण कठिन है एक स्वरका सन्निवेश कर देते हैं। संयोगस्येष्ट स्वरागमोमध्ये (प्राकृत लक्षण, व्यंजनविधान ३०) इसे स्वरभक्ति कहते हैं। यथाः—भ्रम = भरम; रत्न = रतन; वर्ष = बरिस; पद्म = पदुम; अग्नि = अगनी इत्यादि। मंत्रोंमें भी स्वरभक्तिके उदाहरण मिलते हैं। जहाँ कहीं व्यंजन का संयोग 'र'

से होता है वहाँ छन्दरचनासे स्पष्ट मालूम हो जाता है कि दोनोंके बीचमें एक मात्राकालसे भी कममें उच्चारण होनेवाले स्वरका उच्चारण करना आवश्यक है। यथाः—इन्द्र=इंदर।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानके व्यंजनोंके बीच एक व्यंजन कहीं-कहीं सन्निविष्ट कर देते हैं।

यथाः—वानर = बान्दर; ताम्र = तम्ब, आम्र = अंब। 'न' और 'द' का उच्चारणस्थान एक ही है, 'म' और 'ब' भी एक ही वर्गके होनेके कारण एक ही स्थानसे उच्चारित होते हैं। इस नवीन अक्षर के आगमका कारण यह है कि इससे स्थानपरिवर्तनमें सहायता मिलती है।

जिस प्रकार असमान ध्वनिका नियम है उसी प्रकार एक-से दो अक्षर एक साथ प्रयुक्त नहीं होते। यथा—शष्पपिंजरः=शष्पिंजरः इसे अंगरेज़ी में 'haplology' कहते हैं। वेदमें इसके उदाहरण मिलते हैं। यथाः—शीर्ष+संक्ति=शीर्षक्ति।

उच्चारणकी सुगमताके लिये यह देखा गया है कि जब कोई शब्द एक संयुक्तवर्णसे आरम्भ होता है तब उसके पूर्व एक स्वरकी वृद्धि हो जाती है। शब्दके मध्य अथवा अवसानमें जब संयुक्तवर्ण प्रयुक्त होता है तब उच्चारणमें उतनी कठिनाई नहीं होती, कारण यह है कि पूर्ववर्ती स्वर सहायक होता है, परन्तु बिना पूर्ववर्ती स्वरकी सहायताके एक संयुक्तवर्णका उच्चारण करना दुष्कर होता है। इसी कारण व्यवहारमें हम देखते हैं कि लोग, एक स्वरका सहारा लेते हैं। यथाः—स्नान=अस्नान, स्त्री = (पाली) इत्थी= इस्त्री (भाषा)। स्कूल = इस्कूल; स्टेशन = इस्टेशन। भाषातत्वका एक व्यापक नियम जो भाषाविकासमें विशेष रूपसे सहायक होता है "मिथ्या सादृश्य" (false analogy) है। भाषाको सुगम बनानेका यह सहज उपाय है। 'श्रु' धातुके वर्तमानकाल तथा अन्य लकारोंमें 'नु' का आगम होता है। कुछ कालके अनन्तर लोग भूल गये कि 'नु' का आगम केवल कतिपय लकारोंमें ही होता है और भविष्यकाल में भी 'नु' का आगम करने लगे। यही कारण है कि पाली तथा प्राकृत में 'श्रु' के स्थानमें धातुका रूप 'सुण' हो जाता है। आधुनिक भाषाओंमें भी इसी रूपमें यह धातु पाया जाता है। इस प्रकार 'क्री' धातुका 'किण', 'ज्ञा' का 'जाण', 'बुध्' का 'बुज्झ' हो जाता है। संस्कृतमें 'कृ' धातुसे परे 'उ' प्रत्यय होता है। यथाः—करोति, कुर्वन्ति इत्यादि। यह धातु तनादिगणका है। परन्तु प्राकृतमें भ्वादि अथवा चुरादिगणके नियमोंका अनुसरण करते हुए 'करइ' या 'करेइ' होता है। Dicken's के अधम पात्र 'I knowed,' 'You was' ऐसे अशुद्ध वाक्योंका प्रयोग करते हैं। किसी विशेष शब्दके साथ किसी विशेष प्रत्ययका प्रयोग देखकर अन्य शब्दोंमें भी वही प्रत्यय प्रयुक्त करना मनुष्यके लिये स्वाभाविक है। मनुष्य व्याकरणके नियमोंको यथासाध्य व्यापक बनाना चाहता है। सादृश्य नियमका प्रभाव संस्कृतमें भी पाया जाता है। इस संबंधमें (Bhandarkar Commemoration Volume) में पंडित विनायक सखाराम घाटेका एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेखमें घाटे महोदयने इस नियमके कई उदाहरण दिये हैं। इनमेंसे दो-एक हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

तृतीयाके एक वचनके अर्थमें शब्दके अन्तमें 'आ' प्रत्ययका आगम होता है। परन्तु अकारान्त शब्दोंके तृतीया एकवचनमें हम 'आ' के स्थानमें 'न' पाते हैं और 'अ' 'ए' में परिवर्तित हो जाता है। वेदमें भी बहुधा ऐसा ही देखा गया है, यद्यपि 'यज्ञा' 'महिला' इत्यादि रूप भी मिलते हैं। इसका कारण यह है कि सर्वनाम शब्दोंके समान अकारान्त शब्दोंके तृतीया एकवचनका रूप होता है। 'तेन' के समान 'बालकेन' रूप होता है। षष्ठी बहुवचनके अर्थमें 'आम्' प्रत्ययका प्रयोग होता है परन्तु अकारान्त शब्दोंमें 'आनाम्' पाया जाता है। नकारान्त शब्दोंके समान आकारान्त शब्द भी षष्ठी बहुवचनमें आनाम्का प्रयोग करने लगे। यथा—आत्मनाम्, बालानाम् (बाला) इसका कारण यह है कि 'आत्मा' और 'बाला' के रूपोंमें सदृशता है। 'आम' प्रत्ययका यदि आगम होता तो 'बालाम्' रूप सिद्ध होता, जो द्वितीया एकवचनका भी रूप है। इससे विभेद करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। 'बालाः' और 'देवाः' भी समान रूपके हैं। इस कारण अकारान्त शब्दोंमें भी 'आनाम' का प्रयोग हुआ। आकारान्त शब्द पुल्लिंग तृतीया एकवचनका रूप सर्वनाम शब्दोंके सदृश

आँखोंका अचूक इलाज

दवाकी जरूरत नहीं

[डा० रघुबीरसरन अग्रवाल, एल्. एस्. एम्.एफ्., नेत्रचिकित्सक, बुलन्दशहर]

१. उपक्रम

डॉक्टर बेटसने जो अमेरिकाके एक प्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक हो चुके हैं, अपने जीवनके लगातार तीस वर्षोंकी खोज और परिश्रमसे दृष्टिको तीव्र करनेके कुछ साधनोंका आविष्कार किया है। मेरे अनुभवमें भी उनके प्रयोग अधिक फलदायक सिद्ध हुए हैं। उन प्रयोगोंके साधनसे दृष्टि-शक्ति बढ़ जाती है और नेत्र शीघ्र स्वस्थ हो जाते हैं। इसके सिवा मुझे एक महात्मासे एक ॐका चार्ट (पत्र) मिला है, उसमें ॐके चारोंओर चक्षु-व्यायाम लिखे हुए हैं। महात्माका कहना है कि यह 'ॐ पत्रक' भोज-पत्रपर लिखा काश्मीरमें मिला था। आँखों-के लिये जो व्यायाम उसमें लिखे थे, उनमेंसे हरएकका मैंने उनसे अर्थ पूछा। मुझे सुनकर आश्चर्य हुआ कि वे वही बातें थीं, जो डॉक्टरबेट्स आज हमें बता रहे हैं। डॉक्टर बेट्सने अपनी पुस्तकमें यह बात स्वीकार की है कि भारतवर्ष-

> [गत साठ-सत्तर वरसोंके भीतर दुनियामें स्वाभाविक चिकित्साकी एक लहर बह गयी। सभी सभ्य देशोंमें वर्त्तमान सभ्यताके कारण फैले हुए अनेक अस्वास्थ्यकर दोषों और रोगोंके निवारणके लिये स्वाभाविक उपाय भी निकले। पथ्याहार, जल, वायु, ताप, प्रकाश, मिट्टी, व्यायाम, विद्युत् आदिसे सभी रोगोंका उपचार होने लगा। हालमें ही बुलंदशहरमें स्वाभाविक रीतिसे नेत्रचिकित्साके लिये एक अस्पताल खुला है और उसके डाक्टर श्रीरघुबीरसरन अग्रवालने जिस विधिसे नेत्र-चिकित्सा करनी आरंभ की है और गत छः वर्षोंमें उन्हें इसमें जैसी अभूतपूर्व सफलता मिली है उससे अनुमान होता है कि कमसे कम नेत्र चिकित्सामें क्रान्ति हो जायगी और चिकित्साके इतिहासमें बुलन्दशहर और डा० अग्रवालका नाम अजर-अमर हो जायगा। आजकल आप व्यायामद्वारा बहरेपनका भी इलाज करते हैं और आशा है कि आगे हम इस पद्धतिके विस्तृत लेख देंगे। सम्प्रति यहाँ हम "चाँद" के उस लेखका मुख्यांश लेखककी आज्ञासे कुछ परिवर्त्तित रूपमें आवश्यक चित्रोंके साथ देते हैं जिसे डाकटर अग्रवालने उसकी गत अपरैलकी संख्यामें छपवाया था। "विज्ञान" के सभी पाठक जिन्हें आँखका कोई कष्ट हो इस लेखको सावधानीसे पढ़ें और वह सब कुछ करें जिससे कि उनकी आँखोंको लाभ पहुँचे।] --रा० गौड़

है। यथा:—'विधया' 'तया' के ढंगपर है। वेदमें 'अश्वा' रूप पाया जाता है; परन्तु धीरे-धीरे 'अश्वया' का प्रयोग होने लगा।

जितने नियमोंका उल्लेख ऊपर हुआ है उनसे स्पष्ट है कि मनुष्य यथासंभव विशेष प्रयत्नसे पराङ्मुख होता है। उसकी सदा यही चेष्टा रहती है कि सुगमतापूर्वक अपना कार्य निकाल लें। भाषाके नियमोंको व्यापक बनाना और भाषाको सरल करना मनुष्यका सहज स्वभाव है। भाषा-विकासमें यही नियम सहायक होते हैं। प्राकृतमें ही केवल इन नियमोंका कार्य दृष्टि-गोचर होता है, ऐसा नहीं है। संस्कृतके विकासका भी क्रम एक ही समान है। संस्कृतमें भी इन नियमोंका व्यापार प्रत्यक्ष है। यही अवस्था अन्य भाषाओंकी भी है। भाषा-तत्वके कतिपय स्थूल-नियमोंका ही इस लेखमें विचार किया गया है। नियम जितना ही चित्ताकर्षक है उतना ही गंभीर है। यदि यह लेख 'विज्ञान' के पाठकोंको रोचक प्रतीत हुआ तो भाषा-तत्वपर फिर कभी लिखनेका साहस करूँगा।

में बहुतसे चमत्कार भरे पड़े हैं, जिन्हें हमारे वैज्ञानिक आज-तक नहीं जानते । अस्तु ।

मैंने यह उचित समझा कि उन नेत्र-व्यायामोंको सरल भाषामें लिखकर जनताके सामने रखूँ, जिससे उसकी आँखें खुलें और वह अपने प्राचीन साधनोंको सीखे, उनसे लाभ उठावे । साथ ही डॉक्टर बेट्सके प्रयोग भी दूँ, जिससे उनकी पुष्टि हो ।

ये व्यायाम अत्यन्त सरल और अति लाभदायक प्रमाणित हो चुके हैं। बालकोंपर तो इनका जादूका-सा असर पड़ता है। प्रत्येक बारह वर्षसे कम आयुवाले बालककी दृष्टि इससे शीघ्र अच्छी हो जाती है। कई बच्चोंको, जिन्हें कुछ दिखाई न देता था, इस व्यायामकी बदौलत देखने लग गये और उनकी दृष्टि बिल्कुल ठीक हो गयी। स्वयं मैं ही नौ वर्षसे ऐनक लगाता था, पर इन्हीं व्यायामोंद्वारा मैंने उसका परित्याग कर दिया। अब मेरी दृष्टि अच्छी है। रोग-रहित व्यक्तिको भी ये व्यायाम लाभकारी हैं। उनकी आँखोंमें इन व्यायामोंके करनेसे भविष्यमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होगा। अतः प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि इस लेखमें निर्देश किये हुए प्रयोगोंद्वारा अपने नेत्रोंको स्वस्थ बनावे। यदि दुर्भाग्य या अनिवार्य असुविधाओंके कारण वे अपने नेत्र नीरोग करनेमें असमर्थ हों, तो कमसे कम अन्य लोगोंको और विशेषकर छोटे बच्चोंको तो चश्मेके रोगसे अवश्य बचावें और उनका भविष्य सुधारें ।

डॉ० रघुबीरसरन अग्रवाल

२. पलकें मारना क्यों जरूरी है ।

स्वस्थ नेत्रोंका यह स्वभाव है कि जल्दी-जल्दी पलक गिराया करते हैं। पलक मारनेसे नेत्रोंको आराम मिलता है। जो चीज देखते हैं वह साफ दिखाई देती है। जिनकी दृष्टि कमजोर है, वे देरीसे और अस्वाभाविक रूपसे पलक मारते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है मानो वे बड़े प्रयाससे पलक मार रहे हैं। वे झटका देकर और अनियमित रूपसे ऐसे पलक गिराते हैं, मानों पलक मारनेमें उन्हें बड़ा कष्ट होता है और परिश्रम करना पड़ता है। छोटे बच्चे बड़े ही स्वाभाविक ढङ्गसे पलक मारते हैं। वे पलक मारनेमें इतनी फुर्ती करते हैं कि यह नहीं मालूम पड़ता कि कब पलक गिरी और कब उठी। पलक मारनेकी औसत प्रति सैकण्ड एकबार होनी चाहिये ।

पढ़ने-लिखने, सीने-पिरोने, हजामत बनाने, खेलने-कूदने, कसरत करने आदि हर समय पलक मारते रहना चाहिये। कोई भी काम करो, पलक मारना मत भूलो। यह याद रहे कि जिसे भली प्रकार पलक गिराना आ गया, उसने नेत्रोंको स्वस्थ बनानेका बड़ा भारी मार्ग तय कर लिया ।

पलक न गिरनेसे दृष्टि कमजोर हो जाती है, यह इस बातसे ही प्रमाणित हो सकता है कि किसी वस्तु या अक्षरको निर्निमेष (बिना पलक गिराये) देखो। वह अक्षर या वस्तु धुँधली दिखायी देने लगेगी। फिर पलक मारो तो वह वस्तु एकदम साफ दिखायी देगी। अक्षरकी कालिमा बढ़ी हुई प्रतीत होगी ।

इसलिये इस छोटेसे सुलभ अभ्यासको कभी न भूलिये ।

३. पलक मारनेकी कसरत

(१) यदि स्वाभाविक रूपसे पलक गिराना न आवे, तो किसी छोटे बच्चेके पास जाकर देखो कि वह कैसे पलक मारता है। फिर आरामसे एक कुर्सीपर बैठ जाओ। आँखें बन्द करके ध्यान करो, मानो तुम उस बच्चेको पलक मारते हुए प्रत्यक्ष देख रहे हो। पाँच मिनट बाद अपनी आँखें खोलो और बच्चेकी तरह पलक मारो। बार-बार अभ्यास करनेसे इस क्रियामें पूर्ण सफलता प्राप्त हो जायगी ।

(२) गिनती गिनो। हरएक गिनतीपर पलक मारो ।

(३) दर्पणके सामने बैठकर पलक मारनेका अभ्यास करो।
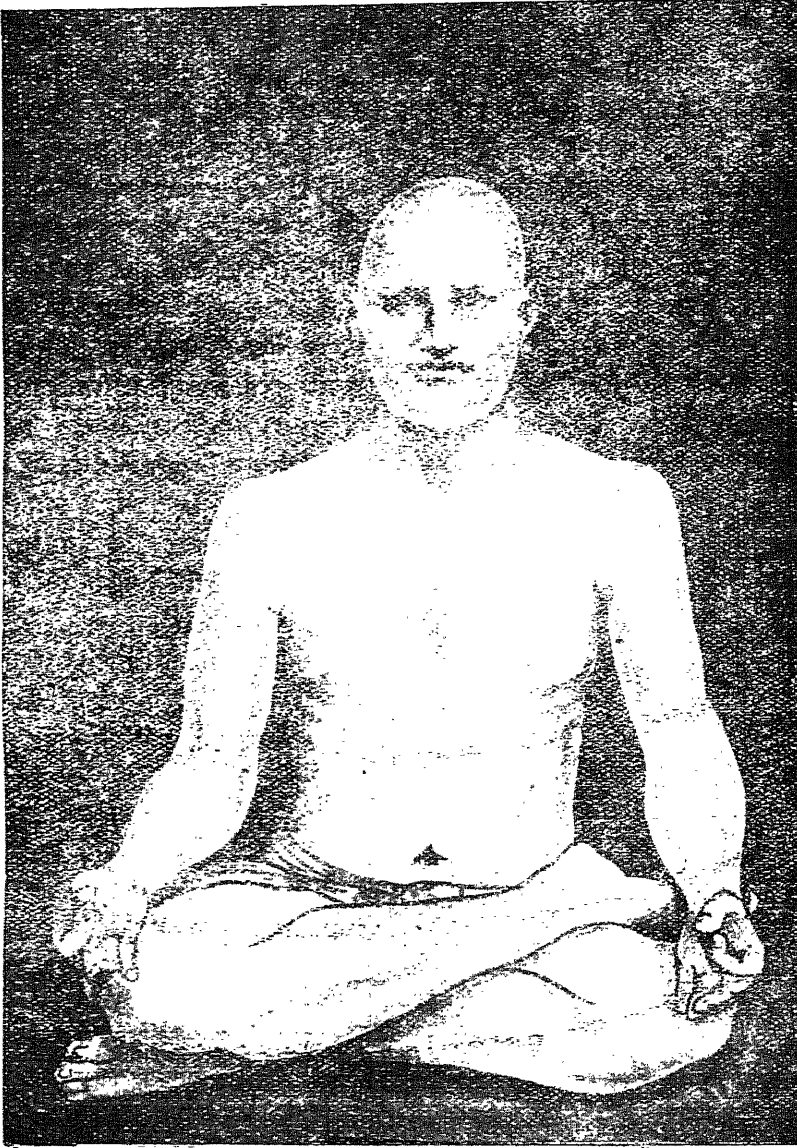
महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

(४) दोनों हाथोंको मुट्ठी बाँधकर घुटनोंपर रख लो। एक बार एक तरफके हाथके नखोंको देखकर पलक मारो। दूसरी बार दूसरे हाथके नाखूनोंको गर्दन घुमाकर देखो और पलक मारो। जिधर दृष्टि जाय उधर गर्दन घुमाना चाहिये। नेत्रोंको मत घुमाओ।

(५) एक जेबघड़ीको कानके पास लगाकर प्रत्येक टिक्-टिक्पर पलक मारो।

(६) चलते समय प्रत्येक कदमपर पलक मारते चलो। पलक मारो! पलक मारो!! पलक मारे जाओ!!!

४. खास बातें जिनपर बराबर ध्यान रहना चाहिये

(१) इस अभ्यासके आरम्भ करनेके साथ ही चश्मा लगाना छोड़ देना चाहिये। क्योंकि बिना चश्मा छोड़े विशेष लाभ होना असम्भव है।

(२) लिखने-पढ़ने, सीने-पिरोनेके समय सामनेकी कोई वस्तु देखना हो, तो पहले एक पलकके लिये आँखें बन्द कर लो, फिर उस वस्तुको देखो।

(३) जब कोई वस्तु ऊपर-नीचे या दाहिनी-बायीं ओर हो और उसे देखना हो, तो सिरको वैसा ही रखो। दृष्टिको बाँकी, तिरछी या ऊँची-नीची करके मत देखो। जब कभी ऊपरकी ओर देखना हो तो ठुड्डीको ऊपर उठाकर देखो। दाहिनी ओर देखना हो तो ठुड्डीको दाहिनी ओर घुमाओ, तब उस तरफ देखो। तात्पर्य यह कि जिधर

देखना हो, उसी ओर ठुड्डी घुमाकर देखना चाहिये। ऊपरकी किसी वस्तुको ठुड्डी नीचे किये पलक ताने, आँखें फाड़े और उचकायी हुई रखकर देखनेसे वह वस्तु धुँधली दीखती है। पलक साधारण गिरे रहें और ठुड्डी ऊपर उठाकर देखनेसे वह वस्तु स्पष्ट दिखाई देगी, इस बातका सर्वदा ध्यान रहे।

(४) रात्रिको जल्दी सो जाना चाहिये। सोते समय नेत्रोंको हथेलियोंसे ढक लो। ध्यान करते-करते सो जाओ। प्रातःकाल उठते ही पाँच मिनट इसी प्रकार ध्यान करो और फिर आँखें खोलो।

(५) कमजोर दृष्टिवालोंके लिये दिनमें दो-चार बार पाँच या सात मिनटतक खाली आँख बन्द किये बैठे रहना लाभदायक है।

(६) चश्मा छोड़नेके लिये कमसे कम दो या तीन घण्टे नित्य व्यायाम करना ही चाहिये।

(७) अपनी दृष्टिका ब्यौरेवार वर्णन एक रजिस्टरमें लिखा करो।

(८) जब कभी मस्तकमें दर्द हो या आँखोंमें खिंचाव आवे तो क्रिया तुरन्त बन्द करके पामिङ्ग करो। और यह समझ लो कि वह क्रिया करनेका उचित ढङ्ग तुम नहीं समझ सके हो।

(९) दूसरोंको भी ये प्रयोग सिखलाओ। इससे तुम्हारा ज्ञान बढ़ेगा।

(१०) दृष्टि-पटपर देखनेसे आँखोंके देखनेकी शक्ति बढ़ती है। क्योंकि दृष्टिका व्यायाम होता है और पामिङ्ग आदि ध्यानोंसे उन्हें विश्राम मिलता है। व्यायामकी अपेक्षा विश्राम ही अधिक दिया जाता है। इसलिये दो-चार घण्टेकी इन क्रियाओंको विधिवत् करनेसे नेत्रोंमें थकावट आदि नहीं आती।

(११) आँखकी ज्योति बढ़ानेके लिये नाकसे पानी पीना भी अच्छा है। उषापानसे नेत्रकी नाड़ियोंको ठण्डक पहुँचती है। सबेरे सूर्योदयसे प्रथम एक गिलासमें कुछ ठण्डा पानी लेकर नाक साफ करके जो सुर चलता हो उससे गिलास लगा दो। दूसरे नकसुरेको एक अँगुलीसे दबाकर बन्द कर लो। उकडू बैठकर ठुड्डी कुछ ऊपर उठाकर धीरे-धीरे नाकके छेदमें पानी जाने दो। साँसकेद्वारा पानी खींचनेका प्रयत्न मत करो। शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। प्रथम दिन एकआध तोला ही पियो। अभ्यासद्वारा ही आध सेरतक बढ़ा लो। नाकसे पानी पीनेमें जबरदस्ती मत करो। उषापानसे बाल भौंरेके समान काले और दृष्टि गृद्धके समान तीव्र होती है, ऐसा प्राचीन ग्रन्थ बताते हैं।

(१२) इस चिकित्सामें धैर्यकी बड़ी आवश्यकता है। आँखें सुधर जानेपर भी चार या पाँच मिनिट दृष्टि-पटपर दैनिक अभ्यास कर लेना चाहिये।

(१३) प्रत्येक मनुष्यको प्रातःकाल सूर्यकी ओर मुख करके कमसे कम दस मिनिट पर्यन्त नित्य बैठना चाहिये। ऐसा करनेसे नेत्रोंकी ज्योति बलहीन न होगी और वे भविष्यमें नेत्र-सम्बन्धी पीड़ाओंसे बचे रहेंगे।

(१४) ठण्डे चश्मे, धूपसे बचानेवाले चश्मे, मोटर चश्मे, आदिका उपयोग त्याग देना चाहिये। इनसे सिवा हानिके कोई लाभ नहीं।

(१५) सूर्यके प्रकाशमें टहलो, खेलो और दृष्टिदोलन (Long Swing) करो।

(१६) नित्य टहलना अत्यंत लाभप्रद है। प्रातःकालका समय अच्छा है। टहलते समय हर कदमपर पलक मारना चाहिये। यह ध्यान रखना उचित है कि सड़क और उसके आस-पासकी वस्तुएँ पीछेकी ओर चलती हैं और तुम आगेकी ओर। निर्बल दृष्टिवालोंको यह ध्यान अच्छा लाभ पहुँचाता है।

(१७) वे मिठाइयाँ, जो बेसन, मैदा, खोयासे बनी हों, न खाओ। पेटकी बीमारी नेत्रोंके ऊपर भी असर डालती है। सुपाच्य और हलका भोजन करो। गरिष्ठ और कब्ज पैदा करनेवाली चीजोंसे दूर रहो। गेहूँका दलिया, चोकरयुक्त रोटी, तरकारी, दाल, चावल, फल आदि पथ्यकारक भोजन हितकारी हैं। टमाटरका उपयोग नेत्रोंको लाभदायक है। नाड़ीका साग भी अच्छा है। शहदका सेवन करो। कभी-कभी पानीमें नींबूका रस डालकर भी पीना चाहिये। पर नींबूके बीजोंसे बचना चाहिये।

(१८) नित्य-प्रति दृष्टि-पटपर अभ्यास करो। दृष्टि-पटके अभ्यासकी विधि अलग दी गयी है।

(१९) प्रत्येक घर और पाठशालामें दृष्टि-पट होना चाहिये। घरके प्रत्येक सदस्यको नित्य एक आँख बन्द करके दृष्टि-पटको पढ़ना चाहिये। फिर दूसरीसे। इससे आँखें आजन्म बलवान और स्वस्थ बनी रहती हैं। पाठशालामें प्रत्येक बालकको यह दृष्टि-पट स्कूलका कार्य आरम्भ करनेसे पहले शान्ति-पूर्वक प्रत्येक आँखसे पढ़ लेना चाहिये। दृष्टि-पट पढ़नेकी यह विधि है—

दृष्टि-पटसे १० फ़ीट दूर खड़े हो जाओ। अपने एक हाथको गायके कान ऐसा बनाओ, तब इस हाथसे एक आँखको हलकेसे ढको। आँखपर किसी प्रकारका भी दबाव न हो। अब दूसरी आँख जो खुली है, उससे पलक मार-मारकर सब लकीरोंके अक्षर पढ़ जाओ। जिनके नेत्र कमजोर होंगे वे भी यदि नित्य नियमानुसार यह दृष्टि-पट पढ़ लिया करेंगे तो कुछ समय बाद उनकी दृष्टि तीव्र हो जायगी। बच्चोंकी दृष्टि अच्छी रखने और स्वस्थ रखनेका यह उत्तम साधन है। इस प्रयोगको पाठशालाओंमें प्रचलित करके परीक्षा ली गयी है। इसका लाभ शत-प्रतिशत होता पाया गया है। प्रत्येक पाठशालाके अध्यापकोंको इस सरल प्रयोगद्वारा बच्चोंकी आँखें स्वस्थ रखनी चाहिये।

दृष्टि-पट

(२०) बच्चोंको विशेषकर करवट न सोना चाहिये। इससे नेत्र ऊपरको फट जाते हैं। और सिर नीचेको झुकता है। यदि कोई करवटसे ही सोता हो तो नेत्रोंको भी उसी ओर झुकाये रखना चाहिये, जिधरकी ओर करवट ली जाती है।

(२१) बहुधा वे व्यक्ति, जिनकी दृष्टि मन्द होती है, एकटक देखा करते हैं और पलक मारना भूल जाते हैं। उन्हें अपने मित्रों, घरके लोगों इत्यादिसे कह देना चाहिये कि वे समय-समयपर उनको पलक मारनेकी याद दिला दें।

(२२) धूप, गर्मी और सूर्यकी किरणोंमें जो अन्तर

है, उसे अच्छी तरह समझ लो। कड़ी धूप हानिकारक हो सकती है। गर्मी पृथ्वीके तपनेसे होती है। वह नेत्रोंको लाभ नहीं दे सकती। सूर्यकी किरणें प्रातःकाल स्निग्ध और मन्द होती हैं। दोपहरको धूप और गर्मी बढ़ जाती है। ऐसे समयमें यदि ग्रीष्मऋतुमें धूपमें बैठोगे तो नाकसे खून आने लगेगा। दो-चार मिनिट बैठनेसे कोई हानि नहीं होती।

(२३) प्रत्येक प्रयोगको अच्छी तरह पढ़ लो, खूब समझ लो, तब अभ्यास आरम्भ करो।

५. ध्यान और प्रणवका महत्त्व

शास्त्रोंमें ध्यानकी बड़ी महिमा गायी गयी है। मस्तिष्कको शान्ति देनेवाले साधनोंमें ध्यान ही प्रधान है। यदि किसीसे पूछो तो वह मानसिक शान्तिके हेतु सन्ध्या-वन्दनका आदेश देगा या माला जपनेका। परन्तु इन उपचारोंसे चित्त एकाग्र नहीं होता। जब योग-मार्गद्वारा ध्यान लगाया जाय, तो अपूर्व शान्ति मिलती है। यह मानसिक स्फूर्ति और ध्यानद्वारा प्राप्त शान्ति नेत्र-ज्योतिको बढ़ाती है। बड़े-बड़े महात्माओंके बारेमें कहा जाता है कि उनके नेत्रोंसे ज्योति निकलती है, उनके नेत्र बड़े विशाल और ओजस्वी हैं, उनसे तेज टपकता है। यह सब ध्यानकी महिमा है।

जब कोई साधक ध्यान करने बैठता है, तो संसार भरके प्रपञ्च आकर खड़े हो जाते हैं। वे मस्तिष्कमें बड़ी उथल-पुथल मचा देते हैं। हम यहाँपर अत्यन्त सरल एवं अनुभूत प्रयोग देंगे, जो निस्सन्देह मस्तिष्कको शान्ति प्रदान करें।

ॐ परिक्रमा चक्र

'ॐ परिक्रमा चक्र'—सिद्धासन लगाकर बैठ जाओ। शरीरकी स्थिति ऐसी हो, जैसी महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीके चित्रोंमें पद्मासन बैठा देखते हो। पालथी मारकर अपने हाथोंके अँगूठोंको अँगूठेके पासकी दूसरी अँगुलीके ऊपर रखो। कमर, रीढ़की हड्डी, गर्दन एक सीधमें हो। अब अँगूठेको तर्जनी-पर गोल चक्रमें घुमाओ। अपने शरीरको भी अँगूठेके चक्रके साथ गोलाकारमें घुमाओ। नेत्र बन्द करो और ॐका जाप करो। एक चक्रको एक ॐ कहकर पूरा करो (ॐकी जगह जो चाहें, अन्य अक्षर जप सकते हैं) चक्रको छोटेसे-छोटा बनाओ और अवधान तर्जनी और ॐ कहनेपर रखो। कुछ देर बाद आनन्दकी हिलोर उठने लगेगी। कुछ नींद-सी आने लगेगी। एक घण्टा भी यदि ध्याना-वस्थित दशामें व्यतीत हो जायगा, तो भी केवल यही भास होगा मानो पाँच ही मिनिट व्यतीत हुए हैं।

प्रथम तो बड़ा चक्र लगाना पड़ता है। फिर ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जाता है, चक्र छोटा होता जाता है। आगे चलकर ऐसी अवस्था आ पहुँचती है कि शरीर तो स्थिर मालूम देता है, परन्तु शरीरके अन्दर-ही-अन्दर एक चक्र-सा मालूम देता है। दूसरे देखनेवाले इस अन्तर्चक्रको नहीं देख सकते। यह तो केवल अनुभवद्वारा ही जाना जाता है। नेत्र भी चक्रमें घूमतेसे प्रतीत होते हैं। यह साधन बड़ा दिव्य है। इससे मस्तिष्क स्वस्थ रहता है और नेत्रकी ज्योति बढ़ती है। यदि यह साधन सूर्यकी ओर मुख करके किया जाय, तो नेत्र-दृष्टिको शीघ्र तीव्र करता है। दृष्टि-पट पर अपनी
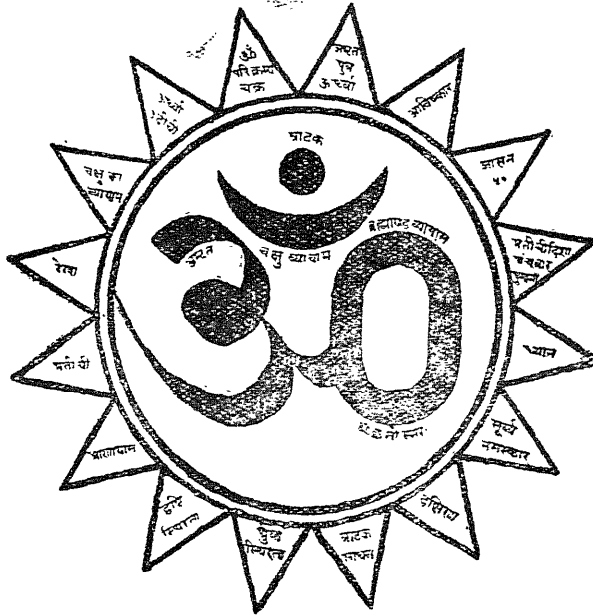
ज्योतिकी जाँचकर इस दिव्य साधनकी परीक्षा कर सकते हो।

पहले अपनी दृष्टिको दृष्टि-पट (Eye-testing Chart) पर १० फ़ीटकी दूरीसे जाँच लो, फिर ध्यान करनेके बाद जाँचो। ज्योति बढ़ी हुई मालूम पड़ेगी। नेत्रोंमें चन्द्रमा जैसी शीतलता, मस्तिष्कमें अपार शान्ति और समस्त शरीरमें सुखका अनुभव होगा। इस ध्यानसे नेत्र, मस्तिष्क और शरीर सम्बन्धी अनेक पीड़ाएँ शान्त होती हैं।

ध्यान परमात्माके गुणोंका भी कर सकते हो। प्रथमाभ्यासीको उस वस्तुका ध्यान अच्छा हो सकता है, जिससे उसे प्रेम हो। माताएँ अपने बच्चोंका, बालिकाएँ अपनी गुड़ियोंका अच्छा ध्यान कर सकती हैं। ध्यान करते समय अपने चित्तको किसी एक ही जगह स्थिर मत रखो। जगहें बदलते रहो। यदि ॐ का ध्यान करना हो तो ॐका चार्ट अपने सामने रखो और खुले नेत्रोंसे ॐके हरएक भागको देख लो। फिर नेत्र बन्द करके ध्यान करो। ॐकी एक मानसिक प्रतिमा बनाओ। बारी-बारीसे ॐके सब भागोंको देख जाओ। आँख बन्द किये ॐका जो भाग देखोगे, वह अधिक काला दिखाई देगा। एकदम पूरे ॐका ध्यान न करो। जब ध्यान भङ्ग हो जाय या ॐका वह भाग, जो तुम देखना चाहते हो, न दीखे तो आँख खोलकर ॐ पत्रकको देख लो और फिर ध्यान आरम्भ करो। यदि ध्यान करते समय नेत्र या सिरमें भारीपन मालूम पड़े, तो जान लो कि ध्यानमें गलती कर रहे हो।

माला जपनेसे भी मस्तिष्कमें शान्ति पैदा होती है और ज्योति बढ़ती है। उत्तम प्रकार माला जपनेका ढङ्ग यह है कि शरीर गोल चक्रमें घुमाया जाय और अँगूठा भी दानेकी गोलाईपर चक्र-सा घूमता हुआ दानेको नीचे सरकाता जाय।

६. पामिङ्ग या आँखें ढकना

डॉक्टर बेट्स अपने ध्यानको पामिङ्ग कहते हैं और नेत्रोंके लिये इसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। पलक मारनेसे आँखोंको विश्राम मिलता है, आँख बन्द करनेसे उससे अधिक और दोनों हथेलियोंसे बन्द आँखोंको हलकेसे ढक लें तो और भी अधिक विश्राम मिलता है। परन्तु अधिक विश्राम तो आँखोंको तब मिलता है, जब आँखें सरलतासे बन्दकर दोनों हथेलियोंसे ढकनेके बाद किसी प्रिय वस्तुका ध्यान किया जाय। ये मानसिक मूर्तियाँ नेत्र-दृष्टिको बढ़ानेमें बड़ी सहायक होती हैं। पाँचसे लगाकर पन्द्रह मिनिटके अभ्याससे सिर-दर्द, आँखोंकी थकावट दूर होकर नवीन शक्ति प्राप्त होती है।

बच्चे आँखमिचौनीका खेल खेलते हैं। इस आँखमिचौनीका परिष्कृत और वैज्ञानिक रूप पामिङ्ग है। यह खेल नेत्रोंके हितार्थ ही बनाया गया है और अत्यन्त प्राचीनकालसे भारतवर्षके लगभग सभी प्रान्तोंमें प्रचलित है।

७. पामिङ्गद्वारा दृष्टि तेज होती है। उसका अभ्यास करो।

दृष्टि-पत्रकको दीवारमें अच्छे प्रकाशमें लगाओ। इससे

पामिङ्ग करता हुआ एक युवक, जिसकी बायीं आँख खराब है।

त्राटक साधनसे सावधान

अविहित अभ्यासकी हानियोंसे बचो

[ले० डॉ० रघुबीरसरन अग्रवाल, एल. एस्. एम्. एफ्. नेत्र-चिकित्सक, बुलन्दशहर]

त्राटक

स्वस्थ नेत्रोंका यह स्वभाव है कि वे जिस वस्तुके जिस भागको देखते हैं वही भाग अच्छा स्पष्ट और तेज दिखाई देता है। और उस वस्तुका अन्य भाग कम साफ दिखाई देता है। वह साधन जिसकेद्वारा जिस जगह हम देखें वह हमें अधिक स्पष्ट दिखाई दे, **त्राटक** कहलाता है।

कल्पना करो कि हम ॐ के ऊपर चन्द्रकी विन्दीको देखते हैं तो हमें वह विन्दी बिलकुल साफ, घनी काली दीखनी चाहिये और नीचेके भाग कम काले और कम साफ, और नीचेके भागको देखेंगे तो वह अधिक साफ काला दीखेगा। और ॐ के ऊपरका भाग धुँधला तथा अस्पष्ट दीखेगा। त्राटकके विषयमें जनसाधारणमें एक बड़ा भारी भ्रम फैला हुआ है। वे अपनी दृष्टिको एक जगह या विन्दुपर बिना पलक झपाये स्थिरतापूर्वक जमाये रखनेको त्राटक समझते हैं। इस घातक भ्रमने कई मनुष्योंकी दृष्टिमें विकार उत्पन्न कर दिया। कई तो दृष्टि-हीन हो गये और कई इस साधना-का कड़वा फल अभी बड़े दुःखके साथ चख रहे हैं। हमारे

दस फीटकी दूरीपर एक कुर्सीपर बैठ जाओ। दृष्टिपटकी ऊँचाई उतनी होनी चाहिये, जितनी कि तुम्हारी आँखें। अब अपने हाथ और उँगलियोंको गायके कानकी आकृतिका बनाओ और दायें हाथकी दाहिनी आँखपर इस प्रकार हलकेसे रखो कि हथेलीका खड्डा आँखके ऊपर रहे और उँगलियाँ कुछ तिरछी होकर बायीं भौंहके ऊपर होकर बायें कपालको ढक लें। दूसरे हाथको भी ऐसा ही बनाकर बायीं आँखके ऊपर रखो और बायीं उँगलियोंको दायें हाथकी उँगलियोंके ऊपर कुछ दायीं ओर झुका हुआ रखो। इसी अवस्थामें अन्दर आँख खोलकर देखो कि अँगुलियों आदिके छिद्रोंमेंसे किसीसे प्रकाश तो नहीं आता। यदि आता हो, तो उसे बन्द करो ; और आँखें मूँद लो। अब ध्यान करो, जैसा कि ऊपर कह आये हैं। चलती-फिरती और स्थिर वस्तुओंकी मानसिक प्रतिमा देखो। यह प्रतिमाएँ काँपती हुई दिखाई देंगी। जो वस्तु हम रात-दिन देखते हैं और जो हमारे मनको प्यारी लगती है, उसका ध्यान अच्छा होता है। हरएकका ध्यान अपना-अपना अलग होता है। केवल बात इतनी ही है कि घूमती चीजें, जैसे झूला, चकई, लट्टूका घूमना, वृक्षोंका हिलना आदि देखना चाहिये। ५ से १५ मिनिटतक इस प्रकार ध्यान करनेपर अपनी एक हथेली हटाओ। आहिस्तेसे आँख खोलो और पलक मार-मारकर दृष्टि-पत्रके अक्षर पढ़ो। पहले तो अक्षर बड़े साफ और घने काले दीखेंगे। पर कुछ देर बाद फिर धुँधले पड़ते मालूम होंगे। ज्योंही धुंधले अक्षर दीखने लगें, आँखको बन्द कर हथेलीसे ढककर दूसरी आँख खोलो और उससे पलक मार-मारकर पढ़ना आरम्भ करो ; फिर पामिङ्ग करना शुरू कर दो और १०-१५ मिनिट बाद पुनः उसी भाँति अक्षरोंको पढ़ो। पामिङ्ग करते समय यदि दोनों हाथ थक जावें, तो उनको मेज़पर टेक लो या कोहनीके नीचे तकिया लगा लो। खड़े-खड़े पामिङ्ग नहीं करना चाहिये। लेटे हुए पामिङ्ग करना अच्छा है। क्षीण दृष्टिवालेको दिनमें कमसे कम चार या पाँच बार पामिङ्ग करना ही चाहिये। उसे चाहिये कि वह पामिङ्ग करते-करते सो जाय और प्रातः उठते ही पामिङ्ग करे। यदि दोनों नेत्र एक समान कमजोर हों, तो दोनों आँखें खोलकर अक्षर पढ़नेका अभ्यास करो। बच्चोंको पामिङ्गके समय कोई मनोरञ्जक कहानी सुनाओ।

नेत्र और सूर्य-चिकित्सा

[ले०—डा० रघुबीरसरन अग्रवाल, एल्. एस्. एम्. एफ्. नेत्र-चिकित्सक, बुलंदशहर]

विषय-प्रवेश

ॐ विश्वतश्चक्षुः

सूर्य प्राणका केन्द्र है। प्रत्येक जीवधारी उससे जीवन प्राप्त करता है। इस भूमंडलका सब वैभव उसीकी कृपाका फल है। तभी तो पूज्य ऋषियोंने उसे संसारकी आँखोंका देवता माना है। आज उसी जीवनदातासे हम अपनी आँख बचाते फिरते हैं। हम अपने नेत्रोंको नाना भाँतिके आवरणोंमें छिपाते हैं। कोई धूपके ठंडे चश्मे लगाते हैं कोई और ढंगका। ग्रीष्म-ऋतुमें इन काले चश्मोंको धारण किये अगणित नरनारी बालक-युवा-वृद्ध सड़कोंपर छाँहवाली बाजूको चलते-फिरते दिखाई देते हैं कोई छाता लगाते हैं कोई टोप लगाकर आँखोंको बचानेका व्यर्थ अभिमान करते हैं।

शहरोंमें चश्मा बेचनेवालोंकी धूम मची रहती है।

पास इसके कई प्रमाण हैं। पंडित श्यामरावजी मैंडलोई, मास्टर बालाघाट, त्राटककेद्वारा चिर-रोगी हो गये उनकी दृष्टि $\frac{3}{60}$ है। खेद है! वे अभी पलक मारते शायद ही दीखते हैं। मेरे लेक्चरके वक्त Scout camp बालाघाटमें वे आगे थे और जब मैंने त्राटकके इस फलका वर्णन किया तो उन्होंने ठंढी आह भरी। उस सुदामा अध्यापककी आँखें लाल आभाहीन और आँसुओंसे भरी रहती हैं। बा० दे० शर्मा दूसरे प्रमाण भी हैं (यदि चाहें) इस प्रकार बिना पलक झपाये स्थिर दृष्टिसे देखनेपर सरमें दर्द और नेत्रोंमें वेदना होती है। आँसू आते हैं, नेत्र बुरी तरह खिंचते हैं, वस्तु धुँधली दीखती है। यह साधन अप्राकृतिक है। इसके विरुद्ध उस बिन्दुके नीचे ऊपर दाहिनी और बायीं ओर पलक मार-मारकर अपनी दृष्टि घुमाते रहो तो आँखें हल्की और जहाँ देखोगे वहीं भाग खूब अच्छा काला और साफ दीखेगा साथ ही इन बातोंका ज्ञान हो जायगा।

इस पाठके व्यायाम

ॐ पत्रकको ५ से १० फुट दूर टाँगो। ॐके पूरबसे पश्चिम और पश्चिमसे पूरबको दृष्टि घुमाओ। ॐको देखनेकी चेष्टा न करो। जब दृष्टि पूरबकी ओर ले जाओगे तो ॐ पश्चिमकी ओर चलेगा और जब दृष्टि पश्चिमकी ओर जावेगी तो ॐ पूरबकी गति करेगा। पलक मारना हर समय स्मरण रखना चाहिये यह अभ्यास नेत्र-हितकारी है।

रेखा-व्यायाम

ॐ के आसपास जो नोकदार (कोणकार) रेखा है उसपर अपनी दृष्टि घुमाओ। हर रेखापर पलक मारो। जब रेखाकी नोककी ओर दृष्टि जावेगी तो रेखा गोलेकी ओर चलती मालूम होगी। जब रेखाके दूसरे किनारेकी ओर दृष्टि चलेगी तो रेखा नोककी ओर चलेगी। यह भी अनुभव करोगे कि रेखाके जिस हिस्से-पर दृष्टि जायगी वह हिस्सा अधिक काला दिखाई देगा। यह रेखाव्यायाम कहलाता है। इससे (Astigmatism)* को बहुत लाभ होता है बीच-बीचमें आँख मूँदकर रेखा-व्यायामका ध्यान करना भी हितकारक है।

ॐ के चारोंओर जो गोला है उसपर अपनी दृष्टिको पलक मारते हुए घुमाओ तो यह मालूम होगा कि ॐ भी एक चक्रमें घूम रहा है पर वह चक्र हमारी दृष्टिके चक्रसे उलटा है। नेत्र बन्द करके भी यह व्यायाम किया जा सकता है। इससे मस्तिष्कको शांति मिलती है।

यह व्यायाम पहले एक फुटकी दूरीसे करो। फिर शनैः शनैः दूरी बढ़ाते जाओ। यदि किसी समय सिरमें दर्द या चक्कर आने लगे तो समझो कि क्रियामें चूक है। तुरन्त आँखें बन्द कर लो और पॉमिंग करो पुनः अभ्यास आरम्भ करो। पलक मारते रहना मत भूलो और अपने नेत्रोंका कुछ ध्यान न रखो। दृष्टिको सिरके साथ-साथ घुमाओ। किसी भी वस्तुको घूरकर मत देखो। यदि फिर भी सिरमें दर्द आदि हो तो किसी स्वस्थ नेत्रवालेसे प्रयोग कराके अपनी भूल सुधारो।

* किसी दिशामें बढ़ा हुआ आकार दिखाई देनेका दोष।

जहाँ-तहाँ सुनाई पड़ता है—लेओ ठंढी ऐनक चार आनेकी। प्रत्येक सद्गृहस्थ यह अपना कर्तव्य समझता है कि वह घरमें एक ठंढी ऐनक रखे और जब कभी तनिक धूपमें जानेका काम पड़ता है उसे अवश्य लगावे।

सूर्य-प्रकाशसे लाभ

सूर्यका प्रकाश आज जब साधारणकी दृष्टिमें उनकी आँखोंको बिकारी बना देनेवाला माना जाने लगा है, लोग अंधेरे कमरेमें रहते हैं। हाथोंसे आँखोंको ढके चलते हैं। छाता तो लगाते ही हैं जरा आँखमें कष्ट हुआ कि डाक्टरके पास पहुँचते हैं। डाक्टरसाहब फौरन चश्मा तजवीज कर देते हैं। पर उनका दर्द बढ़ता जाता है। वे ज्यों-ज्यों सूर्यके प्रकाशसे भागते हैं त्यों-त्यों उनकी आँखें रोगी होती जाती हैं। भारतवर्ष सुनहले प्रकाशका देश है। इसपर भगवान भुवन-भास्करकी जीवनप्रद रश्मियाँ प्रतिदिन बिखरी रहती हैं। वे इसके निवासियोंको बलवान हृष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली नेत्रोंवाला बनाना चाहती हैं। अतः भाइयो, आप इस अमूल्य वरदानसे क्यों वंचित रहते हैं। लंकाके दरिद्री मत बनो। प्रकृतिने मानुषी आँखोंको सूर्यके प्रकाशको सहन करनेके योग्य बनाया है। ऐनक आदिका व्यवहार अप्राकृतिक है। प्रकृतिके विरुद्ध कदम उठाना विनाशकी ओर जाना है। और आज उसी ओर अंधेके समान जनता दौड़ी हुई जा रही है।

सूय-किरण-शक्ति

सूर्यकी किरणोंमें वह शक्ति है जो तुम्हें नवीन बल सम्पन्न आँखें देगी तुम्हारे प्रत्येक नेत्र-विकारका समूल नाश करेगी और सर्वदाके लिये चश्मेकी दासतासे तुम्हें मुक्ति-प्रदान करेगी।

सावधान हो जाओ। आज तुम्हारे जीवनका स्वर्णप्रभात है।

चिकित्सा-विधि

अपनी दृष्टिको पहले दृष्टि-पत्रपर जाँच लो। प्रातःकालका समय सर्वोत्तम है। अब सूर्यकी ओर मुख करके बैठ जाओ, नेत्र बन्द कर लो। अपनी गर्दन, मस्तक और मूँदे हुए नेत्रोंको धीरे-धीरे दाहिनी ओरसे बायीं ओर और बायीं ओरसे दायीं ओर घुमाओ, जिस प्रकार कि साँप अपने फनको तुम्बीकी आवाजपर हिलाता है। नेत्र सिरके साथ घूमता रहे, यह न हो कि सिर घूमता रहे और नेत्र या दृष्टि न घूमे और यदि घूमे तो दूसरी तरफ।

यह प्रयोग १० मिनिटसे ३० मिनिटतक करते रहो फिर पीठ सूर्यकी ओर करके या छाँहमें आकर दोनों हथेलियोंसे नेत्रोंको ढक लो तनिक भी प्रकाश अन्दर न आने दो। नेत्रोंको बन्द करके किसी प्रिय वस्तुका ध्यान करो। हथेली हलके-से रखो। आँखोंपर कोई दबाव न पड़े। पाँच या सात मिनटके बाद हाथ हटाओ।

लाभ

आँखें खोलकर फिर अपनी दृष्टि काममें लाओ। अब यह बढ़ी हुई मालूम होगी और नेत्रोंमें अपूर्व शीतलता प्रतीत होगी। इस अभ्यासको प्रतिदिन दोबार करना लाभदायक है। इससे नेत्र-पीड़ा दूर होगी। दृष्टि तीव्र होगी। चकाचौंध आना प्रकाशको देखनेपर आँखोंमें दर्द होना दूर होगा और नेत्र निर्मल होंगे।

सूर्य-किरणोंसे कब लाभ उठाओ

जब सूर्यकी ओर मुख किये बैठे होओ, तो सूर्यकी ओर देखनेकी चेष्टा मत करो। जब कड़ी गर्मी हो या तेज धूप हो तब मत बैठो। प्रातःकालकी किरणें अच्छी होती हैं उनसे रंग काला नहीं पड़ता। इस समयकी किरणें चमड़ेमें खूबसूरती ला देती हैं और त्वचा निर्विकार हो जाती है।

वर्षाऋतुमें सूर्य न दीखनेपर

वर्षाऋतुमें सूर्यकी किरणें न मिलें तो जिन्हें साधन हो २५० पावरकी बिजलीकी बत्तीको काममें ला सकते हैं। इससे ६ इञ्चकी दूरीपर आँखें बन्द करके बैठ जाओ और ऊपर बताये अनुसार प्रयोग करो। आरम्भमें तेज प्रकाश मत लो, कम पावरकी बत्तीसे बढ़ाते-बढ़ाते ठीक प्रमाणपर आ जाओ। स्वस्थ नेत्र तेजसे तेज प्रकाशकी ओर बिना कष्टके देख सकते हैं।

खुली आँखोंसे सूर्यकी ओर देखना भी लाभकारी है। परन्तु इस प्रयोगको स्वस्थ नेत्रवाले ही करें या वे व्यक्ति जिन्होंने अभ्यासद्वारा अपनी दृष्टि-शक्तिको बढ़ा लिया है।

सूर्यकी ओर देखनके साधन

पहले नीचा मुँह किये हलके-हलके पलक मारो और जरा

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

१. मैडेम कुरीका देहावसान

श्रीमती कुरीका ४ जुलाईको देहावसान हो गया, आप संसारकी परम यशस्विनी वैज्ञानिक महिला थीं। आपके रेडियम सम्बन्धी अनुसन्धानोंकी उपयोगिताके सम्बन्धमें कुछ भी कहना व्यर्थ है। मैडेमकुरीका जन्म ७ नवम्बर १८६७ को पोलैण्ड प्रदेशके वारसा नगरमें हुआ था और आपका पूर्व नाम मेरी स्क्लोडौस्का (Sklodowska) था। अपने देशकी राजनीतिक परिस्थितिसे तंग आकर इन्हें भागना पड़ा और वहाँसे फ्रांसमें आकर आश्रय लिया। सौरबोन नगरमें बड़ी कठिनतासे प्रारम्भिक दिन बीते। साधारण नौकरोंका कार्य्य करके जीविका चलायी। पर इसी बीच इनका परिचय फ्रांसके दो प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंसे हो गया—एक तो लिपमेनसे जो रंगीन फोटोग्राफीके यशस्वी आविष्कर्त्ताओंमेंसे थे, और दूसरे, प्रसिद्ध गणितज्ञ पोयँकारेसे

मस्त हाथीकी तरह झूमने लगो। इसी अवस्थामें अपनी ठोढ़ीको शनैः शनैः ऊँची करते जाओ और झूम-झूमकर पलक मारकर सूर्यके दायें बायें (Right left) जल्दीसे देखते रहो। दृष्टिको स्थिर मत रखो और पलक मारते रहना मत भूलो। जब दायीं ओरसे बायीं ओर देखोगे तो ऐसा मालूम होगा मानो सूर्य दायीं ओर घूमा और जब बायीं ओरसे दायीं ओर देखोगे तो सूर्य बायीं ओर घूमता दृष्टिगोचर होगा। यह कल्पना घूमते समय अवश्य करनी चाहिये। एक बात और स्मरण रखो कि सूर्यकी ओर टकटकी बाँधकर कदापि मत देखो और साथही झूम-झूमकर पलक मार-मारकर दायें-बायें देखना भी मत भूलो।

सूर्यकी ओर देखनेसे नीला, पीला, लाल आदि अनेक रंग दिखाई देता है वह शिथलीकरण प्रयोगसे दूर किया जा सकता है। इन प्रयोगोंकी विस्तृत व्याख्या (Dr. Bates Pirinciple of Perfect Sight Without Glasses) नामक अंग्रेजी पुस्तकमें की गयी है।

सूर्य चिकित्साके बाद ५ से १५ मिनटतक पामिंग करना चाहिये। (देखो दृष्टि पामिंग पृष्ठ) रंगोंका दिखना इससे दूर होगा।

चकाचौंध दूर करनेका उपचार

जिन्हें धूपमें चलनेपर चकाचौंध आती है वे बहुधा आँख ऊपर करके चलते हैं और पलक नहीं मारते। चलते समय उन्हें चाहिये कि नीचे देखकर चलें पलक मारते रहें और यह ध्यान करें कि चलनेकी सड़क पीछेकी ओर चलती है और वे आगे जा रहे हैं।

इस बालककी बायीं आँख जन्मसे अंधी थी। इलाजसे अब यह दोनों आँखोंसे बराबर पढ़ लेता है। इसका इलाज इसी पद्धतिसेहुआ।

लाभ

सूर्य-चिकित्सासे नेत्रोंके अनेक रोग शान्त हो जाते हैं यथा, पीला मोतिया, मोतियाबिन्द, आँखका दुखना, आँख-जख्म, फूली इत्यादि।

पाठकगण अचंभित होंगे कि कई बच्चे जो जन्मसे अंधे थे सूर्य चिकित्सासे अच्छे हो गये। प्रत्येक चक्षुरोगी जिनको डाक्टरोंने निराश ही छोड़ दिया था जल्द इस सरल प्रयोगने नेत्र प्रदान किये हैं। सूर्य नेत्रदाता है। प्राचीन कालसे यह धर्म है।

फलतः लिपमेनने मेरी स्क्लोडौस्काको अपने एक कुशाग्र बुद्धि छात्र पीरीकुरीके साथ लगा दिया। दोनोंमें घनिष्ठता

आरंभ हुई और अन्तमें, दोनों एक सूत्रमें आबद्ध हो गये। पीरीकुरीका समय भौतिक विज्ञानके प्रयोगोंमें व्यतीत होता था और मेरी भी उनकी सहायता करने लगीं, सन् १८९६ के लगभग कुरीके एक सहयोगी बैक्वेरेलने रेडियो-एक्टिविटीका आविष्कार किया, और यूरेनियम् (पिनाकम्) तत्वकी खोज की। श्रीमती कुरी भी इस कार्य्यमें जुट गयीं।

पिचव्लैण्डी नामक खनिजमें यूरेनियमके कारण तो रश्मि-शक्ति थी ही, पर मैडेमकुरीको यह विश्वास होने लगा कि इस पदार्थमें और भी दूसरा कोई ऐसा तत्व विद्यमान है जिसमें यूरेनियमसे भी अधिक रश्मि-शक्तित्व है। पर यह तत्त्व क्या है, यह खोज निकालना ही दुस्तर कार्य्य था। इन लोगोंके पास इतना धन न था कि पिचव्लैण्डीकी बहुत-सी मात्रा खरीद करके प्रयोग आरंभ करते। बड़े यत्नके पश्चात् आस्ट्रिया गवर्नमेंटको लिखनेपर इन्हें एक टन खनिज प्राप्त हुआ। दोनों पति-पत्नी इस खनिजमेंसे रश्मि-शक्ति तत्त्व निकालनेमें जुट पड़े। पहले एक तत्त्व मिला जो यूरेनियमसे अधिक शक्तिमान् था—इसका नाम श्रीमती कुरीने अपने देशके नामपर पोलोनियम रखा। पर ये और आगे बढ़े और रेडियम् नामक अत्यन्त बहुमूल्य तत्त्वकी खोज कर ही तो डाली। ये सब खोजें १८९८ से १९०२ के बीचमें हुईं। अब इनका यश संसारमें फैल गया। सन् १९०३ में श्रीमान् और श्रीमती कुरी एवं बेक्वरेलको नोबेल पारितोषिक भौतिक विज्ञानका मिला। आगे जाकर १९११ ई० में फिर रसायनका नोबेल पारितोषिक कुरीको रेडियमके कार्यके लिये भेंट किया गया।

रेडियमकी खोजने वैज्ञानिकोंके दार्शनिक दृष्टिकोणमें बड़ा परिवर्तन कर दिया। सिद्धान्त रूपसे तो यह एक बड़ा ही मूल्यवान् पदार्थ है। तत्त्वोंके विकासके इतिहासपर इसने बड़ा ही अच्छा प्रकाश डाला है। दूसरी ओर चिकित्सा-पद्धतिमें इसने नयी ही क्रान्ति उत्पन्न कर दी। कैन्सर रोगका तो यही एक इलाज माना जाता है। इस समय संसारमें २०–३० औन्स रेडियम मौजूद है और लगभग सभीका सब चिकित्सामें व्यवहृत होता है। इसका प्रभाव इतना तीक्ष्ण है कि प्रयोगकर्त्ताको इससे बचनेके लिये सदा सतर्क रहना पड़ता है। रेडियमकी थोड़ी-सी मात्राको ६–१० इन्च मोटे सीसेके पात्रमें रखते हैं, क्योंकि इसकी किरणें साधारण पदार्थोंके आरपार योंही चली जाकर विघातक प्रभाव डाल सकती हैं।

सन् १९०६ में पीरीकुरी ठोकर लगकर गिर जानेके कारण अकस्मात् मृत्युग्रास हो गये। श्रीमती कुरीको जो दुःख हुआ वह तो अकथनीय है, पर तो भी उन्होंने अपना कार्य न छोड़ा, गत महायुद्धके बाद ही पेरिसमें एक रेडियम इन्सटीच्यूट खोल दिया गया था जिसकी अध्यापिका कुरीको बनाया गया।

श्रीमती कुरीकी पुत्री इरीन और दामाद कुरीजोलियोट भी आजकल भौतिक विज्ञानमें महत्त्वका कार्य्य कर रहे हैं। न्यूट्रोन और पोजीट्रोनके अविष्कारमें उन्होंने अच्छा यश कमा लिया है।

श्रीमती कुरीके देहावसानसे महिला-जगत्को तो अवश्य

क्षति पहुँचेगी ही, इसमें सन्देह ही क्या। वैज्ञानिक महिलाओंमें तो वे शिरोमणि थी हीं।

—सत्य प्रकाश

२. भारतवर्षका खनिज व्यवसाय

ज्योलोजिकल सर्वे आव्-इण्डियाने भारतवर्षके खनिजोंका जो १९३२ का वृत्तान्त प्रकाशित किया है, उससे कुछ अंक यहाँ दिये जाते हैं—

खनिज	देशमें प्राप्त खनिज	बाहरसे कितना आया
स्फटम् (अल्यूमीनियम)	—	२३८ हंडरवेट
एण्टीमनी मिश्रित सीसा	६४२ टन	—
संक्षीणम् (ताल या संखिया)	—	१६४९ हंडरवेट
एस्बेस्टस	९० टन	—
बेराइट	२९५७ टन	२१७३ टन
बेरील	२८१ टन	—
बिस्मथ	२७ पौंड	—
सुहागा, टंकिकाम्ल	—	२९१९७ हंडरवेट
पीतल, कांसा आदि	५४४० टन	२७६०० टन
मिट्टी	११७३८७ टन	—
चीनी मिट्टी	१३४९७ टन	१९५३७ टन
कोयला आदि	२०१५३३८७ टन	४७५४४ टन
अमोनियम गन्धेत	९४७४ टन	३२६४० टन
तांबा	४४४३ टन	१२९ टन
हीरा	१२५४'१ कैरट	—
लोह-मांगनीज़	३६६ टन	—
लोह संकर	४९५	—
फेल्सपार	४७३ टन	—
फुलर-मिट्टी	४३५९ टन	—
सोना	३२९६८२ औंस	२०१०११ औंस
ग्रेफाइट	५ टन	२०३ टन
गिप्सम	५४७४१ टन	—
इलमेनाइट	५००५२'५ टन	—
लोहा — खनिज	१७६०५०१ टन	—
पिग	९१३३१४ टन	४९७ टन
इस्पात	४३०३३३ टन	९१०७७ टन
सीसा	४४३१४६ टन	१५७ टन
मैगनेसाइट	१३८६४ टन	—
मांगनीज़ खनिज	२१२६०४ टन	—
अभ्रक	३२७१३ हंडरवेट	१९५ हंडर
मोनेज़ाइट	६५४'३ टन	—
निकल-स्पाइस	३५८० टन	
शोरा	१८०३८२ हंडर	—
पारा	—	३३२६०१ पौंड
नमक	१३१९६२० टन	५५२७४१ टन
चाँदी	६०२६७३७ औंस	५३३४९६० औंस
गंधक	—	३२३८३९ हंडर
वंगम् (टिन) खनिज	४५२५ टन	
धातु	—	४९२७९ हंडर
वुल्फ्राम खनिज	२०२२'९ टन	—
यशद (ज़िंक) खनिज	४४४८४ टन	
धातु	—	१६७२३ टन
ज़िरकोन	४९०'६ टन	

—सत्यप्रकाश

३. भारी पानी

आजकल वैज्ञानिक जगत्में भारी पानीकी धूम है। गतवर्ष (१९३३) अमरीकाके एक रसायन यूरेने इस बातकी घोषणा की थी कि हमारे सामान्य जलमें थोड़ी-सी मात्रा ६००० भागमें लगभग १ भाग भारी पानीकी वर्तमान है। यह पानी साधारण पानीकी अपेक्षा कुछ भारी होता है और इसके अन्य भौतिक गुण भी भिन्न होते हैं। यह पानी भी उदजन और ओषजनसे मिलकर बना है पर भेद केवल इतना है कि इसमें उदजन एक नये प्रकारका है, यह उदजन हमारे मामूली उदजनसे दुगुना भारी है अर्थात् इसका परमाणुभार एक नहीं बल्कि दो है, इस नये उदजनका नाम यूरेने डाइट्रियम (Deutrium) रखा था और अमरीकावासी इसको इसी नामसे पुकारते हैं पर अंग्रेजी वैज्ञानिकोंने इसको एक दूसरा नाम डाइप्लोजन (diplogen) दिया है। इस नामकरणके सम्बन्धमें जनतामें बड़ा मतभेद है।

साहित्य-विश्लेषण

[समालोचनार्थ सभी पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियाँ आनी चाहियें। एक ही प्रति भेजनेवाले सज्जनको, यदि इस स्तंभमें उनके ग्रंथरत्नकी समालोचना न निकले, तो आश्चर्य न करना चाहिये। समालोचनार्थ सभी पुस्तकें प्रधान सम्पादकके पास आनी चाहियें]

मन्थर ज्वरकी अनुभूत-चिकित्सा—आयुर्वेद विज्ञान ग्रंथमालाका तीसरा पुष्प लेखक-स्वामी हरिशरणानन्द, प्रकाशक—दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी,

अमरीकाके रसायनज्ञ लेविस और मैकडानल्डने भारी पानीकी समुचित मात्रा तैयार कर ली है। इसके बनानेके लिये उन्होंने २० लीटर पानी लिया जिसमें थोड़ा-सा क्षार भी मिला हुआ था। इस पानीका २५० एम्पीयर धाराद्वारा विद्युत् विश्लेषण किया गया, यहाँतक कि केवल १० प्रतिशत पानी रह गया और शेष उड़ गया। फिर कर्बन द्विजोषिद प्रवाहित करके इसके क्षारको थोड़ासा शिथिल करके इसे स्रवित किया गया। फिर विद्युत् विश्लेषण आरम्भ हुआ और इन प्रक्रियाओंको इस प्रकार कई बार दोहराया गया। अन्तमें ०.५ घ० शम०के लगभग भारी पानी मिला।

यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि यह पानी कितना मूल्यवान होगा, क्योंकि २० लीटर पानीको उड़ानेके लिये बिजलीका बड़ा भारी खर्च पड़ता है। १ घ० शम० पानीका जिसमें लगभग ३० प्रतिशत भारी पानी हो, सौ रुपयेके लगभग आजकल मूल्य है। कई कम्पनियोंने इसका व्यापार आरम्भ किया है क्योंकि आजकल प्रयोगशालाओंमें इसकी बड़ी माँग है। इस नये तरहके भारी उदजन (डाइप्लोजन)के आविष्कारसे वैज्ञानिक जगत्में क्रान्ति मच गयी है और जो प्रयोग साधारण उदजनमें किये जाते थे, वे इस भारी उदजनसे दोहराये जा रहे हैं।

भारी पानीके द्रवणांक क्वथनांक आदि साधारण पानीके अंकोंसे बहुत भिन्न हैं। नीचेकी सारिणीसे दोनोंके गुणोंकी तुलना की जा सकती है—

गुण	साधारण जल	भारी जल
घनत्व (२०° श पर)	०.९९८२	१.१०५६
द्रवणांक	०° श	३.८° श
क्वथनाङ्क	१००° श	१०१.४२° श
अधिकतम घनत्ववाला तापक्रम	४° श	११.६° श
स्निग्धता (२०° पर)	१०.८७	१४.२
पृष्ठतनाव	७२.७५	६७.८
नमककी घुलनशीलता २५° श पर	३५९ ग्राम प्रतिलीटर	३०५ ग्राम प्रतिलीटर

कीटाणुओं और प्राणियोंके लिये भारी पानी साधारण जलकी अपेक्षा हानिकर है। बहुतसे बीज जो साधारण पानीके प्रयोग करनेपर भलीभाँति अंकुरित होते हैं, भारी पानीमें देरसे उगते हैं। अभी इन विषयोंपर प्रयोग बहुत ही कम किये गये हैं, क्योंकि भारी पानी दुर्लभ पदार्थ ही है पर ज्यों-ज्यों यह सस्ता बिकने लगेगा, इसके रहस्योंपर विशेष प्रकाश डाला जा सकेगा। —सत्यप्रकाश

४. पं० चन्द्रशेखर शास्त्रीका स्वर्गवास

पं० चन्द्रशेखर शास्त्री संस्कृत साहित्यके धुरन्धर विद्वान थे और संस्कृत तथा राष्ट्रभाषाके एक प्रमुख साहित्यकार। उन्होंने शारदा नामकी एक बड़ी ही सुन्दर मासिक पत्रिका अपने बूतेपर निकाली थी और लगभग चार बरसों तक चलायी। यह बड़े साहस और त्यागका काम था। शास्त्रीजी समाज-विज्ञानके विशेषज्ञ थे और इस सम्बन्धकी कई बड़ी अच्छी पोथियाँ लिखी हैं। "विज्ञान" पर उनकी बड़ी कृपा रहती थी। उनके कई लेख इसमें निकल चुके हैं। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके तो वह एक स्तंभ थे। उनकी प्रतिभा चतुर्मुखी थी। उनके असामयिक निधनसे हिन्दीकी भारी हानि हुई और हममेंसे अनेक राष्ट्रभाषाभक्तोंका एक सरल हृदय, सच्चा, विद्वान् और आवश्यकता पड़नेपर कंधेसे-कंधा भिड़ाकर काम करनेवाला सहकारी मित्र और सुहृद सदाके लिये खो गया! उनके शोकाकुल पुत्र एवं परिवारके साथ सहवेदनाके सिवा और हमारे बसकी बात ही क्या है? —रा० गौड़

अमृतसर, मार्च सन् १६२६ प्रथम संस्करण २०००, डवलक्राउन १६ पेजेके १६६+१६ पृष्ठ=१७८ पृ० की पोथीका मूल्य १)

मंथरज्वर या टैफॉइड या आंत्रज्वर या मोतीझिरा ऐसा फैल गया है कि उसके ऊपर आयुर्वेदीय साहित्यका अभाव कष्टदायक हो रहा था। स्वामीजीने इस ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा लिखकर इस बड़े अभावकी पूर्ति की है। इस पुस्तकमें आदिसे अन्ततक पूर्ण वैज्ञानिक ढंगसे बड़े ऊहापोहसे इस रोगकी उत्पत्ति, विकास और परिणामपर विचार किया है, किसी पहलूको छोड़ा नहीं। पाश्चात्य पथालोजीसे हमारे वैद्य प्रायः अनभिज्ञ होते हैं और इसपर साहित्यका अभाव होनेके कारण यदि कोई तत्संबन्धी चर्चा करे तो उसपर ध्यानतक नहीं देना चाहते। चिकित्सामें उनकी अनेक बारकी असफलता उनके लिये पहेली-सी रहती है। स्वामीजीने मोतीझिरेकी पथोलोजीको बड़ी स्पष्टतासे समझाया है। इस पुस्तकको पढ़कर प्रत्येक वैद्यको डाक्टरी कालिजमें पढ़ लेनेका लाभ होगा। फिर भी ऐसा न समझना चाहिये कि पथालोजीके सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानोंमें भी मतैक्य है। अनेक धारणाएँ नित्य बँधती, ढीली होती और टूटती रहती हैं। इसलिये अच्छा यही है कि हम चिकित्सामें तो अनुभवके आधारपर व्यवहार करें और धारणाओंके लिये संसारकी वैज्ञानिक प्रगतिका निरन्तर ध्यानसे निरीक्षण करते रहें और सत्यका ग्रहण एवं असत्यके त्यागके लिये निरन्तर यत्नवान रहें।

स्वामीजीने अपने ग्रंथके १६० पृष्ठोंमेंसे १४५ पृष्ठोंमें जितना विषय दिया वह वैद्योंके लिये है और वे ही पढ़कर उससे लाभ उठा सकते हैं। पिछले १५ पृष्ठोंमें उन्होंने इलाजके ढंग और ओषधियाँ बतायी हैं, पर ये भी वैद्योंके लिये ही उपयोगी हैं। साधारण पाठककी तृप्ति इतनेसे नहीं होती। वह तो चाहेगा कि उसके घर कोई रोगी हो और उसे योग्य वैद्य सहजमें न मिले तो उसका भी काम चल सके। वह गजपुटमें आँच न दे सकेगा। शुद्ध दवा तैयार न कर सकेगा। परन्तु बनी बनाई दवाका सेवन तो कठिन नहीं है। अतः यदि चिकित्साविधिके विस्तारमें इस पोथीके सौ पृष्ठ और बढ़ जाते तो इसकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाती। वैद्योंके लिये भी वह अंश व्यर्थ न होता। हमें आशा है कि अगले संस्करणमें हमारी सलाहपर स्वामीजी अवश्य ध्यान देंगे।

पुस्तकमें एकाध स्थलमें ऐसी बातें भी हैं जिनसे मतभेद संभव है। जैसे, अँतड़ियोंमें यदि खराश हो तो होमियोपैथकी रायमें पेटकी अवस्थासे छेड़छाड़में जोखिम है, अतः वह रेचक ओषधियाँ देना ठीक नहीं समझता। पृ० १५५ पर लिखा है "ऐलोपैथी, होमियोपैथी और यूनानी चिकित्सामें मुझे अबतक इनमें एक भी ऐसी औषध नहीं मिली जो इन दानोंको निकालनेमें शरीरकी सहायता करती हो।" होमियोपैथीका सिद्धान्त है कि शरीरस्थ विषोंके निकालनेका सर्वोत्तम उपाय दानोंका निकलना है, अतः चतुर होमियोपैथ ऐसी ही चीजें देता है कि दाने निकल आवें और अनेक ओषधियाँ इसमें दाने निकलनेमें सहायता देनेवाली हैं। मेरा तो इस विषयमें अनेक बारका निश्चायक अनुभव है। फिर भी ऐसे मतभेदोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। छापेकी भूलें बहुत हैं, परन्तु ऐसी मुझे नहीं देख पड़ी जिनसे अर्थका एकदम अनर्थ हो जाय।

पुस्तक वैद्योंके लिये अनमोल है और हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यमें इसके छपनेसे बहुत उपयोगी वृद्धि हुई है। इसे वैद्यककी परीक्षाओंके पाठ्य ग्रंथोंमें अवश्य रखना चाहिये।

—रा० गौ०

त्रिदोष-मीमांसा—सम्पादक—स्वामी हरिशरणानन्दजी, प्रकाशक—आयुर्वेद विज्ञान ग्रंथमाला आफिस, अमृतसर, प्रथम संस्करण, फर्वरी १६३४, फुलिसकेप ८ पेजेके २३२+१६ पृ०=२४८ पृष्ठकी सजिल्द पोथीका मूल्य १)

आयुर्वेदके लिये यह एक क्रान्तिकारी पुस्तक है। आयुर्वेदकी सारी धारणाएँ त्रिदोषपर अवलंबित हैं। डाक्टरी विद्याकी पथोलोजी त्रिदोषको नहीं मानती। स्वामीजीने इसी वैज्ञानिक पक्षको लेकर त्रिदोषकी धारणाका खंडन किया है और वैद्य-संसारको चुनौती दी है कि वह त्रिदोष-सिद्धान्तका वैज्ञानिक मंडन करे। स्वामीजीने त्रिदोषवादकी कड़ी आलोचना करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी है। आपके तर्क कहीं-कहीं आयुर्-

सामाजिक खंडनके ढंगके हो गये हैं। सचमुच विश्वविद्यालयोंके आयुर्वेद-विभागोंको चाहिये कि त्रिदोष—धारणाका साम्प्रतिक रोग-विज्ञानसे उचित अंशोंमें समन्वय करें और जहाँ-जहाँ जिन-जिन बातोंमें वह सिद्धान्त संशोध्य हो वहाँ संशोधन और सुधार करें।

इस पुस्तकसे समस्त आयुर्वेद-विद्यालयोंको अनुसंधानके लिये उत्तेजना मिलती है, अतः सुयोग्य आयुर्वेदाचार्य्योंका कर्त्तव्य है कि इस ग्रंथके विषयका गंभीरता और मनोयोगसे परिशीलन करें और स्वामीजीके विचारोंका मनन करें।

—रा० गौ०

1. The Date of Karkacharya, **डिमाई अठपेजेके १० पृष्ठ। कागजका कवर। मूल्य ।=)**
2. Pre-University Education in India, **डबलक्रौन १६ पेजेके ३६ पृष्ठ, मूल्य १)**
3. Some Fascinating Viewpoints of Vedic Studies, **डबलक्रौन १६ पेजेके ४२ पृष्ठ, मूल्य १)**
4. Rabindranath as Seen through His "Gardener", **डबलक्रौन १६ पेजेके ५४ पृष्ठ, मूल्य १)**
5. The Great Astronomer of Ujjain, **डबलक्रौन १६ पेजेके ८ पृष्ठ, मूल्य =)**

इन सब पुस्तिकाओंके लेखक और प्रकाशक श्रीमान् गोविन्द बलवन्त माकोडेजी हैं। यह सभी अँग्रेजीमें हैं। इनके विषय इनके नामसे ही प्रकट हैं। कहना नहीं होगा कि योग्य लेखकने तत्तद् विषयोंका बड़ी सुन्दरतासे वर्णन किया है। छपाई-सफाई सुन्दर है। मूल्य अधिक है। परंतु प्रत्येक पुस्तिका रोचक, शिक्षाप्रद और ज्ञानदायक है अतः इन्हें अवश्य पढ़ना चाहिये। नं० १ में करकाचार्य्यके समयका निश्चय है जो १५००० वर्षके लगभग ठहरता है और जिससे वेदोंकी प्राचीनता बहुत बढ़ी हुई सिद्ध होती है। इसी तरह नं० ३ में भी बड़े महत्वके विषय हैं और वेदकी प्राचीनताको पुष्ट करते हैं। —रा० गौ०

(१) रामायणांतील अनार्य नांवें (मराठी)—१९३४, डबल क्राउन १६ पेजेकी १६+४ पृ० = २० पृ० की पोथीका मूल्य ।)।

(२) प्राचीन भारतकी गणितशास्त्रमें प्रगति—(मराठी) सन् १९३४ डबलक्रौन १६ पेजेके ३६+८=४४ पृष्ठ, अजिल्द मूल्य ।।।), डाक व्यय अलग। छपाई सफाई सुंदर।

(३) शालिनीचें निवडक पत्रें (खंड दूसरा)—(मराठी) सन् १९३३, डबल क्रौन—१६ पेजेके, १०८+१६ = १२४, अजिल्द मूल्य १), गृहिणीभूषण पुस्तकमालाका पुष्प दूसरा।

तीनों पुस्तकें मराठीमें हैं। इनके लेखक और प्रकाशक हैं श्रीगोविन्द बलवन्त माकोडे। इनके विषय इनके नामसे ही प्रकट हैं। पहलीमें रामायणमें जो अनार्य नाम आये हैं उनके विषयमें खोज है। विषय बड़ा ही रोचक है, यद्यपि इन नामोंकी व्युत्पत्तिमें बहुत मतभेद संभव है। दूसरी पुस्तकमें भी इस बातका अनुसन्धान है कि प्राचीनकालमें भारतीयोंकी गणितकी जानकारी कितने ऊँचे दरजेकी थी। तीसरी पोथीका विषय गार्हस्थ्य है। पोथी पत्रोंके रूपमें रोचक ढंगसे लिखी गयी है। पुस्तकें अच्छी हैं छपाई सफाई अच्छी है, परन्तु मूल्य अधिक है। माकोडेजीकी पुस्तकें फिर भी बड़े महत्त्वकी हैं और पठनीय हैं।

—रा० गौ०

१. प्रेमी भक्त, २. युरोपकी भक्त स्त्रियाँ सचित्र, संक्षिप्त भक्त-चरितमाला ८ और ९, सम्पादक—श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार, मुद्रक तथा प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस—गोरखपुर संवत् १९९० तथा १९९१, प्रथम संस्करण प्रत्येक ५२५० डबलक्राउन सोलह पेजेके १००+८=१०८ पृष्ठकी सचित्र पोथीका मूल्य क्रमशः ।-) तथा ।)

यह दोनों भक्तचरितमालाके आठवें और नवें पुष्प हैं। सातवें पुष्पतककी आलोचना पहले हो चुकी है। आठवेंकी कथाएँ जहाँ आदर्श-प्रेम और निष्फल आनन्दके चित्र हैं वहाँ नवेंकी कथाएँ त्याग और सेवाकी मूर्त्तियाँ हैं। इनको पढ़कर प्रेमाभक्ति और सेवा और त्यागके भाव सहज ही मनमें उत्पन्न होते हैं। कहना नहीं होगा कि आध्यात्मिक विकासके मार्गमें भक्तोंके चरित बड़े सहायक होते हैं। यह माला बड़ी

ही उपयोगी है और भक्तिप्रवण पाठकोंकी कहानी पढ़नेकी भी भूखको तृप्त करती है। —रा० गौ०

मूल गोसाईं-चरित—श्री वेणीमाधवदासजी-कृत, सचित्र, मुद्रक तथा प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस—गोरखपुर, संवत् १९९१ वि० प्रथम संस्करण ३२५०, डबलक्राउन १६ पेजे की ३६+४=४० पृष्ठ संख्याका मूल्य -)। मात्र।

वेणीमाधवदासका यह ग्रन्थ गोस्वामीजीका एकमात्र प्रामाणिक जीवनचरित माना जाता है क्योंकि प्रियादासके कवित्त इसके बहुत बादके हैं। गीताप्रेसने इसे प्रकाशित करके तुलसी भक्तोंके अध्ययनकी एक अच्छी सामग्री उनके सामने रखी है। पाठ तो साधारणतया शुद्ध जान पड़ता है, तो भी कई जगह वर्त्तनीके भेदसे संदेह होता है कि शायद पोथी पर्याप्त सावधानीसे हस्तलिखित प्रतिसे मिलायी नहीं गयी है। इसपर विस्तारसे सप्रमाण विचार करनेका साधन प्रस्तुत नहीं है, अतः इतना ही कहा जा सकता है। जो हो, इतनी छोटीसी पोथीका लाभ उठानेके लिये ही मुझे पं० रामकिशोर शुक्लद्वारा सम्पादित रामचरितमानस मँगवाना पड़ा था। आज पहलीवार, गीताप्रेसकी बदौलत यह अलभ्य लाभ कुल पाँच पैसेमें मिल रहा है। पाठ करनेवाले प्रेमी भक्तों और साधुओंके लिये यह कितना बड़ा सुभीता है। गीताप्रेसके महदुपकारके अनेक कामोंमेंसे यह काम एक उत्कृष्ट नमूना है। — रा० गौ०

हजरत मुहम्मद—लेखक पं० सुंदरलालजी, प्रकाशक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, विशाल भारत कार्यालय १२०-१-२ अपर सरकूलर रोड कलकत्ता, डबलक्राउन १६ पेजेके ३२+४=३६ पृष्ठकी पोथीका मूल्य -)॥

यह छोटीसी पोथी हिन्दीके पाठकोंके लिये महत्त्वकी चीज है। हिन्दू-मुसलमानोंके पारस्परिक विरोध और साम्प्रदायिक खंडन-मंडनके कारण मुसलमानोंके लिये हिन्दू पूज्योंके प्रति और हिन्दुओंके लिये मुसलमान पूज्योंके प्रति अकारण ही द्वेष-बुद्धि और घृणाका भाव मनोंमें पैदा हो जाता है। पं० सुन्दरलालका यह व्याख्यान मौलूद-शरीफ़के मौकेपर हुआ है। हिन्दू-मुसलिम एक दूसरेको समझें, पारस्परिक विचारोंका समन्वय करें, परस्परके पूज्योंका सम्मान सत्कार करें, पारस्परिक एकताके साधनोंकी खोज करें, तो आये दिनके झगड़े बीती रातोंके भयानक सपने सरीखे हो जायँ। इस छोटी-सी पोथीके पढ़नेसे पता चलेगा कि मुहम्मदसाहबका चरित कितना पवित्र कितना उदार कितना पावन कितना ऊँचा था। वह भारतमें उत्पन्न हुए होते तो आज रामकृष्णकी तरह यहाँ अवतार माने और पूजे जाते। यह छोटी पोथी मुझे तो संतोष नहीं देती। उनके पावन-चरित अधिक विस्तारसे हिन्दू रूपमें हिन्दुओंके समक्ष आना चाहिये, इसलामकी तबलीगकी नीयतसे नहीं, बल्कि सद्भाव उत्पन्न करनेके लिये। —रा० गौ०

श्रीबदरी-केदारकी झाँकी, सचित्र—लेखक श्रीमहावीरप्रसाद मालवीय वैद्य 'वीर', मुद्रक तथा प्रकाशक घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस-गोरखपुर, संवत् १९९१ वि० प्रथम संस्करण ३२५०, डबलक्रौन १६ पेजीके १००+१६=११६ पृष्ठकी पोथीका मूल्य ।)

बदरी-केदार-यात्रापर अनेक छोटी-मोटी पोथियाँ हैं। और साधुशरणप्रसादजीका भारत-भ्रमण तो प्रामाणिक ग्रंथ है। पर चार आनेके मूल्यमें यह सचित्र पोथी सस्ती भी है और स्पष्ट भी। नकशा भी है और आजतक रास्तेमें और ठहरनेकी चट्टियोंमें जो सुधार और परिवर्त्तन हुए हैं उनका समावेश भी है। किसी यात्रीको बिना इस पोथीके यात्राका आरंभ न करना चाहिये। कैलाश और मानसरोवरादि छोड़कर शेष उत्तराखंडके प्रायः सभी तीर्थोंका इसमें वर्णन है। गीताप्रेस इसी प्रकार और तीर्थोंका भी वर्णन छपावे तो धर्म्मप्रवण यात्रियोंका बड़ा उपकार हो।

—रा० गौ०

धर्म-ज्योति—लेखक—जगतनारायण बी० एस्-सी० एफ़० टी० एस्०, प्रकाशक—बिहार प्रान्तीय थियोसौफिकल फेडरेशन पटना, प्रथम संस्करण, सन् १९३४, डबल क्राउन सोलह पेजेके ४१२+२०=४३२ पृष्ठकी पोथीका मूल्य १॥

ब्रह्म-विद्या महासभा अर्थात् थियोसोफिकल सोसैटीका उद्देश्य सब धर्म्मोंका समन्वय और वसुधैव कुटुम्बकमूके भावका प्रचार है। प्रस्तुत ग्रंथ ब्रह्मविद्या सम्बन्धी एक पाठ्य

ग्रंथकी तरह लिखी गयी है। इसमें उसके सभी मुख्य सिद्धान्त स्पष्ट और सरलरीतिसे बतलाये गये हैं। उदार हिन्दू धर्म्मका ही इस रूपमें प्रतिपादन हुआ है और उसके वैज्ञानिक आधारपर प्रायः सभी जगह विचार किया गया है। हिन्दू धर्म्मके सभी पहलुओंको जो लोग वैज्ञानिक ढंगपर प्रतिपादित देखना चाहते हैं उनके लिये हिन्दीमें तो यह ग्रंथ एक ही है। इतनी बड़ी और उपादेय पुस्तकका दाम १।) अधिक नहीं है।

—रा० गौ०

संत—जिल्द ८ नं० ११,१२, नवम्बर, दिसम्बर १९३३, सम्पादक-महर्षि शिवव्रतलालजी, राधास्वामी धाम जिला मिर्ज़ापुर, अनुवादक, सहायक सम्पादक तथा प्रकाशक—दीवान बंसधारीलाल, १२ जिल्दोंका चन्दा ४।) नमूनेकी प्रति ।।)

संतके इस संयुक्तांकमें पुराणोंके अनुसार दसों अवतार-के चरितका वर्णन महर्षि शिवव्रतलालजी वर्म्मनने बड़ी ओजस्विनी और सजीव भाषामें किया है। परन्तु भाषामें वर्त्तनीके दोष इतने हैं कि समझना भी कठिन हो गया है। पुराणोंके नामोंमें "ब्रह्योयोरत" "भूष्य" "स्वामन" आदि बड़े विलक्षण हैं। इसी तरह "विशिष्ट" के बदले "वशिष्ट" प्रणामके बदले "प्रणम", "उद्दंडता" के बदले "उदंडता" आदि अशुद्धियोंसे यह पोथी भरी पड़ी है। उर्दूसे अनुवाद करनेवाला ही इसके लिये जिम्मेदार मालूम होता है। लेखकने विषयका प्रतिपादन फिर भी श्रद्धापूर्वक किया है। और इस दृष्टिसे पुस्तक पठनीय है।

—रा० गौ०

दुलारे-दोहावली—प्रणेता दुलारेलाल भार्गव, मिलनेका पता "गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ, द्वितीया-वृत्ति। सादी प्रति ≈) स्टिफ़ प्रति ।), जिल्ददार प्रति ।।)।

कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदासने उत्तम प्रकारके काव्यकी परिभाषा भरतकी वाणीकी प्रशंसाके बहाने इस प्रकार की है—

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे
अरथ अमित अति आखर थोरे
जिमि मुख मुकुर मुकुर निजपानी
गहि न जाइ असि अद्भुत बानी।

कविवर बिहारीलालने ऐसी परिभाषाको चरितार्थ करनेके लिये दोहोंमें काव्य-रचना की। सतसईके सिवा बिहारीकी और कोई रचना पायी नहीं जाती। उसने पारिभाषिक महाकाव्य नहीं लिखा तब भी इन नन्हें-नन्हें दोहोंकी बदौलत महाकवि कहलाया। अबतक यह बिहारीके लिये ही कहा जाता था कि—

"सतसैया को दोहरौ अरु नावक को तीर,
देखत तौ छोटो लगे बेधै सकल सरीर"

परन्तु "दुलारे-दोहावली" देखकर ऐसा जान पड़ता है कि ऊपरके वाक्यमें बिहारीके साथ हमें "दुलारे" को भी जोड़ना पड़ेगा। रतनाकरजीके वियोगसे हमें यह भारी दुःख हुआ था कि ब्रजभाषाकी कविताकी इतिश्री हो गयी। परन्तु इस शतकको देखकर और सतसई बन जानेकी आशापर हमें विश्वास हो गया कि ब्रजभाषा अभी आगे-की कुछ शताब्दियोंके लिये तो अवश्य अमर हो जायगी। जैसे हमारे मित्र स्व० पं० पद्मसिंह शर्म्माने सतसईको संजीवनी पिलायी थी वैसे ही इस दोहावलीद्वारा हमारे मित्र दुलारे लालजीने मृतप्राय ब्रजभाषाको संजीवनी पिलायी है। हम इस अभिनव बिहारीका ब्रजभाषा काव्यो-द्यानमें सहर्ष स्वागत करते हैं। रा० गौ०

ज्योत्स्ना—रचयिता श्री विद्याभूषण 'विभु', प्रकाशक—रायसाहब रामदयाल अगरवाला, कटरा, प्रयाग। सन् १९२९। डबल-क्राउन सोलहपेजीके १०८+१६=१२४ पृष्ठवाली अजिल्द पोथीका मूल्य ।।≈) छपाई, सफाई सुंदर।

प्रस्तुत पोथीमें आह्वान, भूल, साह्याद्रि, विभूति, प्रभातीतारा, सूखी पत्ती, याद्धा आदि शीर्षकोंवाली कोई ६७ रचनायें हैं। जो प्रकृतिके विभिन्न पहलुओं, भूगोल, इतिहास, धर्म, समाज, नेता, कवि, महात्मा, मन, अनुभव आदि विषयोंको लेकर रची गयी हैं। एक प्रकारसे कविने मानव-जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डालनेकी कोशिश की है।

जबसे कालेजोंमें हिन्दीकी शिक्षा दी जाने लगी है और हिन्दीका प्रचार बढ़ रहा है तबसे हिन्दीमें और खासकर खड़ी बोलीमें कविता करनेकी बाढ़-सी आ गयी है। हिन्दीके

लिये ये शुभ लक्षण ही हैं पर स्वयं-भू कवियोंको आँख खोलकर लिखना चाहिये। यह पोथी ऐसे कवियोंके एवं बालकोंके बड़े कामकी चीज है। साहित्य-रसिकोंका भी काफी मनोरंजन कर सकती है।

भाषा सजीव, और विचार उत्तम हैं। कहीं-कहीं बहुत सुंदर कवित्व हैं। पुस्तक सुन्दर पठनीय और संग्रहणीय है।

—रघुवर दयालु मिश्र 'मान'

केशवकी काव्यकला—लेखक—पं० कृष्णशंकर शुक्ल, एम्० ए०, प्रकाशक साहित्य-ग्रन्थमाला-कार्यालय, काशी। सं० १९९० विक्रमी। डबल क्राउन सोलह पेजीके २१८+४ पृष्ठ=२२२ पृष्ठ सुन्दर सजिल्दका मूल्य १।।), छपाई सफाई उत्तम।

प्रस्तुत पोथीमें महाकवि केशवकी काव्यालोचना है। आरंभमें पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्यरत्नने इसका उपक्रम लिखा है। लेखकने कविका संक्षिप्त परिचय और ग्रंथ तथा टीकाकारोंकी चर्चा करते हुए फिर केशवके काव्यकी आलोचना की है। उसमें भाव-व्यंजना, बाह्य दृश्य-चित्रण, प्रबन्ध-कल्पना तथा चरित्र-चित्रण, केशवके संवाद, अलंकार, भाषा, रामचन्द्रिका तथा संस्कृत-ग्रन्थ, आध्यात्मिक-सिद्धान्त, कुछ उद्वेगजनक बातें, कविप्रिया तथा संस्कृतके आचार्य, आचार्यत्व तथा पांडित्य, प्रधान शीर्षक रखे हैं। और आरंभमें केशवका चित्र भी दिया है। पोथी आचार्य रामचन्द्र शुक्लको उनके चित्रके साथ भेंट की गयी है।

सचमुच पं० कृष्णशंकरजी शुक्ल एम्० ए० ने 'केशवकी काव्यकला' के रूपमें महाकवि केशवको नये ढंगसे प्रकाशमें लाकर हिन्दी-संसारका बड़ा उपकार किया है। इस पोथीके लिखे जानेसे 'आमके आम और गुठलियोंके दाम' हुए हैं। सर्व-साधारणको केशव और उनके काव्यके समझनेका सहज सुलभ मार्ग मिला है। नवसिखिये कवियों को रीति-काव्य जाननेका साधन और काव्यमर्मज्ञोंको केशवपर विचार करनेका।

आजका आलोचना-क्षेत्र कितना गर्द-गुबारसे पूर्ण है। पच्छाहीं चश्मेंसे देखनेवाले नये स्कूलके शिक्षक नामधारी साहित्य-मर्मज्ञोंने हमारे परम पूजनीय और श्रद्धाभाजन आदिकवि वाल्मीकि, वेद-व्यास और कालिदास प्रभृति महात्मा और महाकवियोंसे लेकर आजतकके अभागिनी खरी खूसट गँवारी ब्रजभाषामें कविता करनेवालोंको भरपेट कोसनेकी क़सम-सी खा ली है। तिसपर छायावादने तो मायावादके अंजर-पंजर ही ढीले करनेकी ठान ली है। अनंतके पुजारियोंने पुरानी शैलीका अंत करनेका बीड़ा ही उठा लिया है, आलोचनाका कुल्हाड़ा लेकर नन्दनवन विध्वंस करनेमें जुट पड़े हैं। उन्हें कम्पनी गार्डेन लगानेकी ही सनक सवार हो गयी है। हर्ष है कि हमारे शुक्लजीने बिल्कुल ऐसे ही हृदय और मस्तिष्कसे काम नहीं लिया है। एक काव्य मर्मज्ञ, विचारशील आलोचकके नाते कुछ ठंढे दिल और दिमागसे भी काम लिया है।

समयके प्रवाहका ध्यान रखना बुरी बात नहीं है। बुद्धिमत्ता है। जब संस्कृतके उद्भट विद्वान् केशवने बेचारी हिन्दीमें कविता करते हुए समयके प्रवाहके साथ सहानुभूति दिखानेके लिये इन शब्दोंमें—"भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुलके दास। भाषा कवि भो मंदमति, तेहि कुल केसवदास।" लिखा ही है तब आजके आलोचक इसका ध्यान न रखें यह बड़ी हिम्मतका काम है। शुक्लजीको भी आजकलके प्रवाहका ध्यान रखना पड़ा है। शुक्लजीके मतसे केशव महाकवि तो हैं ही नहीं—यद्यपि पोथीके चित्रमें 'महाकवि केवशदास' ही छपा है।—आचार्य-पदके योग्य भी नहीं ठहरते! ऐसी ही बहुत सी बातोंमें मेरा गहरा मतभेद है। हाँ, एक यह बात भी खटकने योग्य है कि शुक्लजीने "केशवके पिंगल" पर बिल्कुल विचार ही नहीं किया। पर हृदय खोलकर यह मानना ही पड़ता है कि शुक्लजीने तहतक पहुँचनेकी कोशिशकी है, उसमें अच्छे सफल हुए हैं। प्रस्तुत पोथी पठनीय और संग्रहणीय है। खासकर कविताके नये और पुराने दोनों स्कूलोंके गुरु-चेलाओंके मनन करनेकी इसमें प्रचुर सामग्री है। आलोचना-प्रेमियोंके संग्रहकी सुंदर वस्तु है।

—रघुबरदयालु मिश्र 'मान'

स्थायी ग्राहकोंको विशेष सुभीता

वैज्ञानिक साहित्य तीन चौथाई मूल्यमें

पढ़िये पढ़िये

विज्ञानके प्रचारके लिये हमने निश्चय किया है कि स्थायी ग्राहकोंको हम पौनी कीमतपर सभी पुस्तकें देंगे। इसके लिये नियमावली नीचे पढ़िये।

(१) जो सज्जन हमारे कार्य्यालयमें केवल १) पेशगी जमा करके अपना नाम स्थायी ग्राहकोंमें लिखा लेंगे, उन्हें वैज्ञानिक साहित्यकी वह सभी पुस्तकें जो विज्ञानपरिषत् कार्यालय प्रयाग तथा आयुर्वेद-विज्ञानग्रंथमाला कार्य्यालय अमृतसर प्रकाशित करेंगे, तीन चौथाई मूल्यपर मिल सकेंगी।

(२) स्थायी ग्राहक बननेकी तारीखके बाद जितनी पुस्तकें छपती जायँगी उनकी सूचना विज्ञानमें छपती जायगी और इस सूचनाके छपनेके एक मासके भीतर यदि स्थायी ग्राहक मना न करेगा तो उसके नाम वह पुस्तकें वी० पी० कर दी जायँगी और ग्राहकको वी० पी० छुड़ा लेना पड़ेगा। न छुड़ानेपर हानिकी रकम उस रूपयेमेंसे मुजरा कर ली जायगी।

(३) स्थायी ग्राहकको अधिकार होगा कि पहलेकी छपी चाहे जो पुस्तकें पौन मूल्यपर ले ले।

(४) जो सज्जन विज्ञानके ग्राहक होंगे उन्हें स्थायी ग्राहकका अधिकार केवल ।।) जमा करनेपर मिल जायगा और उनका नाम और पता स्थायी ग्राहकोंमें लिख लिया जायगा।

(५) विज्ञानकी पुरानी फाइलें जो अलभ्य हैं इन नियमोंके अन्तर्गत नहीं हैं।

(६) जो पुस्तकें स्टाकमें ५० से कम रह जायँगी, वह नये संस्करणके छपनेतक इन नियमोंसे मुक्त रहेंगी।

मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग।

वैज्ञानिक साहित्यकी सूची

एक तो इसीकी पीठपर देखें। आयुर्वेद-विज्ञान-ग्रंथमालाकी विस्तृत सूची गत अंकमें त्रैमासिक सूचीपत्रके पृष्ठ ३१पर पढ़िये।

महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले॰ प्रो॰ रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो॰ सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।)

२—मिफताह-उल-फनून—(वि॰ प्र॰ भाग १का उर्दू भाषान्तर) अनु॰ प्रो॰ सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले॰ प्रो॰ प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव ... ॥=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु॰ स्व॰ प्रो॰ मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले॰ अध्यापक महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले॰ प्रो॰ गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी। इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है। १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले॰ श्री पं॰ महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी. एल्. टी., विशारद।

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार .. ... ॥।)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
- चन्द्रग्रहणाधिकारसे ग्रहयुत्यधिकारतक १॥)
- उदयास्ताधिकारसे भूगोलाध्यायतक ॥।)

८—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले॰ अ॰ सालिग्राम वर्मा, एम. ए., बी. एस-सी. ... -)

९—ज़ीनत वहश व तयर—अनु॰ स्व॰ प्रो॰ मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

१०—केला—ले॰ श्री॰ गङ्गाशङ्कर पचौली ... =)

११—सुवर्णकारी—ले॰ श्री॰ गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

१२—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले॰ श्री॰ पं॰ महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।-)

१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले॰ स्वर्गीय पं॰ गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. एल. टी. ।)

१४—चुम्बक—प्रो॰ सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ।=)

१५—क्षयरोग—ले॰ डा॰ त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी, एम. बी., बी. एस.। ... -)

१६—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले॰ प्रो॰ रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१७—कृत्रिम काष्ठ—ले॰ श्री॰ गङ्गाशङ्कर पचौली =)

१८—आलू—ले॰ श्री॰ गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१९—फसलके शत्रु—ले॰ श्रीशङ्करराव जोषी ।-)

२०—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले॰ डा॰ बी॰ के॰ मित्र, एल. एम. एस ... ।)

२१—कपास और भारतवर्ष—ले॰ पं॰ तेज शङ्कर कोचक, बी. ए. एस-सी ... -)

२२—मनुष्यका आहार—ले॰ श्री॰ गोपीनाथजी गुप्त वैद्य ... ... १)

२३—वर्षा और वनस्पति—ले॰ पं॰ शङ्करराव जोषी ।)

२४—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु॰ श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... -)॥

२५—वैज्ञानिक परिमाण—ले॰ डा॰ निहाल करण सेठी, डी. एस-सी तथा श्री सत्य-प्रकाश डी॰ एस-सी॰ ... ... १॥)

२६—कार्बनिक रसायन—ले॰ श्री॰ सत्यप्रकाश डी॰ एस-सी॰ ... ... २॥)

२७—साधारण रसायन—ले॰ श्री॰ सत्यप्रकाश डी॰ एस-सी॰ ... ... २॥)

२८—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, प्रथम भाग—ले॰ श्री॰ सत्यप्रकाश, डी॰ एस-सी॰ ॥)

२९—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—ले॰ श्री॰ सत्यप्रकाश, डी॰ एस-सी॰ १।)

३०—सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन—ले॰ श्री युधिष्ठिर भार्गव, एम॰ एस-सी॰ ... =)

३१—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग— १॥)

३२—समीकरण मीमांसा दूसरा भाग—ले॰ स्वर्गीय श्री पं॰ सुधाकर द्विवेदी ... ॥=)

३३—केदार-बद्री-यात्रा ... ... ।)

पता—मंत्री, विज्ञान-परिषत्, प्रयाग।

कीड़ोंकी भारी आबादीसे लाभ

पूर्ण संख्या—*Approved the Directors of public Instruction, United Provinces and*
२३४ *Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708

जिसके साथ अमृतसरका

आयुर्वेद विज्ञान

भी सम्मिलित है

भाग ३९ VOL. 39

कन्यार्क संवत् १९९१

सितम्बर, १९३४

संख्या ६ No. 6

प्रकाशक—

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌के पदाधिकारी

संवत्‌ १९९०-१९९१ वि०

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये ।

२—विज्ञान एवं विज्ञानपरिषत्‌ तथा विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्‌, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्द, दि पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिये ।

विषय-सूची

दत्तात्रय लक्ष्मण निघोजकरने श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयागके लिए वृन्दावन विहारीसिंहने प्रकाशित किया ।

न्यूमोनिओल

(बच्चों और बूढ़ों के लिये न्यूमोनिया की दवा)

न्यूमोनिया की प्रत्येक अवस्था में इसका सेवन डेढ़ डेढ़ घण्टे के बाद किसी वैद्य व डाक्टर की देख रेख में कराते रहने से फुफ्फुस और ब्रांको नाली पर पड़ा हुआ न्यूमोनिया का प्रभाव दब जाता है और रोगी मियाद पूरी होने तक अच्छा हो जाता है।

सेवन विधि—बढ़ी हुई बीमारी में घण्टा घण्टा बाद शहद और अद्रक रस सेवन करावें। १४ गोली का मूल्य १)

न्यूरेलजीन

(सूर्यावर्त संज्ञक की सूची वेधी अद्भुत औषध)

योग—पेटेण्ट होने से बतलाया नहीं जा सकता।

लाभ—आयुर्वेद में सर्व प्रथम सूचीवेधन द्वारा सिर दर्द को लाभ पहुँचाने वाली अद्भुत औषध है। एक बार के सूची वेधन करने पर दर्द इस तरह जाता है जिस तरह मंत्रद्वारा भूत।

सेवन विधि—मामूली सूई को शुद्ध करके उसकी नोक पर दवा लगाकर १०, १५ दफा दर्द के मूल स्थान पर चोभ दें और पुनः दवा को पोंछ डालें। बस दर्द छूमन्त्र समझें। एक शीशी हजारों बार काम में लाइये। मूल्य १)

पुन्सोल

(नामर्दी की अचूक दवा)

योग—चन्द्रोदय वंग, केशर आदि का विशेष योग।

लाभ—जिन व्यक्तियों को इच्छानुसार समय पर चैतन्योदय नहीं होता, या मैथुन के समय शिथिलता आ जाती है। यह विकार चाहे हस्त मैथुन जन्य हो, या क्षीण वीर्यता के कारण अथवा मानसिक हो, सब में लाभ करता है।

सेवन विधि—दूध से एक गोली नित्य सेवन करावें।

१४ खुराक का मूल्य १)

पुन्सोलीन

योग—संखिया, केशर, वीरबहूटी अकरकरा, कनेरछाल आदि।

लाभ—ध्वज भंग चाहे प्रकृति विपरीत मैथुन से हुआ हो, या मानसिक विकार से अथवा अति मैथुन से हो, एक बार तो यह अपना फल अवश्य दिखाता है और नष्ट हुई शक्ति को पुनः नवजीवन देता है। आगे मनुष्य का भाग्य।

सेवन विधि—रात्रि को सोते समय दो बूंद तेल को इन्द्री के ऊपर लगाकर मालिश करें। जब तेल सूख जाय तो पान का पत्र बाँध दें। दवा इन्द्री के नीचे भाग में न लगने पावे इस बात का सदा ध्यान रखें।

एक सप्ताह के सेवन योग्य पैकेट मूल्य १)

मिलने का पता—मैनेजर दी पी० ए० वी० फार्मेसी,

अमृतसर

चिकित्सा संबंधी उपकरण

सूचिकाभरण पिचकारी
(Injection syringe)
टीका लगाने, सुई द्वारा त्वचा के भीतर दवा पहुँचाने की पिचकारी । [illegible] ३), ३॥) ८।)

शरीरताप-मापक (Thermometer)
ज्वीलका १।) साधारण ॥)

दवाइयाँ मिलाने की छुरी (Spatula)
बढ़िया ।||) साधारण ||)

फुफ्फुस परीक्ष्ययन्त्र
(Stethoscope)
साधारण ३) मध्यम ६॥) उत्तम ८॥)

द्रव औषध-मापक
ग्लास १ औं० ≈)
२ औं० ≡)

औषध तोलनेका
अँगरेजी काँटा
मय बाँटके २)

कान धोने की पिचकारी साधारण २), बढ़िया बड़ी ६)

बस्ति यन्त्र रबर की नाली टोंटी सहित, अनेमलका १।।)
काँच का २।।)

आँख में दवा डालने का ड्रापर
≈) दर्जन

चीनी के खरल
२ नं० का १) ४ नं० २।।)
६ नं० ५॥), ८), १०)

लोहेके खरल
१ फुट व्यास गहराई ६ इंच, मू० ८॥)

नोट—इससे भिन्न प्रत्येक चिकित्सा में काम आने-वाली डाक्टरी औषधियाँ और यंत्र हमारे यहाँसे किफायतके साथ मिल सकते हैं । प्रत्येक अंग्रेजी औषध और यंत्र का आर्डर देते समय चौथाई मूल्य पेशगी अवश्य भेजें ।

मैनेजर, दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अमृतसर

सफरी औषध पेटियाँ

नये डिजाइन, नये नमूने

टेबल मेडीसिन बक्स (मेज़ी औषध पेटी) नं० १—इस प्रकारकी पेटी अभीतक किसीने नहीं बनायी। इसके बनानेका श्रेय पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी को ही है। यह पेटी त्रिभु-जाकार है इसमें चारों ओर सीढ़ियाँ सजाई जाती हैं इसका साइज १४ × ९॥ × ८ इंच है। इसकी सुन्दरता देखते ही बन पड़ती है। इसके ब्लोकको देखें, कैसा सुन्दर डिजाइन है। ऐसे सुन्दर और इतने सस्ते डिजाइन आपको अन्यत्र नहीं मिल सकते। इसमें २० शीशी चपटी १ औंस की, १ औंस की १६ शीशी और ४ औंस की गोल ५ शीशी रखने का स्थान है।

बगैर शीशीके ६)

शीशी सहित ८॥)

विषगाभरण पेटिका

टेबल मेडासिन बक्स (मेज़ी औषध पेटी) नं० २—यह पेटी भी मेज़पर रखनेकी है, इसका साइज १४½ × ९½ × ८½ इञ्च और आकार टाइप राइटर के समान है। इसमें शीशियाँ सीढ़ियों के तुल्य चढ़ावमें गेलरी की तरह रखी जाती हैं। मेज़ पर इसकी शोभा बहुत उत्तम लगती है। ऐसी पेटी हरएक वैद्य या डाक्टरको अपनी मेज़की शोभा बढ़ानेके लिये जरूर रखनी चाहिये।

टेबल मेडीसिन बक्स नं० २

इसमें ४ औंसकी ७ शी०, २ औंसकी ८ शी०, १ औंस की १४ शी० और ½ औंसकी ९ शी० रखनेका स्थान है। बगैर शी० ६॥), शीशी युक्त ८)

विषगाभरण पेटिका—यह पेटी देव-दारकी बनी और बढ़िया पालिशसे अलंकृत है। इसे देखते ही तबीयत फड़क उठती है। साइज १२ × ८ × ६ इंच।

इसमें शीशियोंकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। यह वैद्यकी सजी सजाई लेबोटरी है। पेटी खड़ी हो या पड़ी शीशियाँ सीधी रहेंगी। १ औंसकी आसवकी १६ शीशियोंके लिये स्थान बने हुए हैं। २ औंसकी ६ गोल शीशियें चूर्णके लिये सजाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त तेल, भस्म इत्यादि के लिये तीस शीशियों के लिये व्यवस्था है। वजन २ सेर ८ छ० बिना शीशीके ७) शीशी युक्तका ८॥)

सिद्धौषधिमंजूषा नमूना १—यह पेटी ७ इंच चौड़ी, १०½ इञ्च लम्बी और ४ इञ्च ऊँची है। इसमें दो ड्रामकी होम्योपैथिककी ७७ शीशियोंको तरतीबवार रखनेके लिये अत्युत्तम प्रबन्ध है। बक्स बढ़िया देवदारसे बनाया गया है। रेक्सीन क्लाथ, बढ़िया हैंडल ताला इत्यादिसे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। इस पेटीका वजन सिर्फ १२ छटाँक है—तिस पर भी मूल्य सिर्फ—२।)

मिलने का पता—पी० ए० वी० फार्मेसी अमृतसर

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३९ } प्रयाग, कन्यार्क, संवत् १९९१ । सितम्बर, १९३४ { संख्या ६

मंगलाचरण

[ले० स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक]

जयति सुमति-सम्पन्न सुजन, जग-धन्य जन्म-धर
सुचि-सनेह-गुन-गेह, ध्येय-ध्रुव, धीर-बीर-बर
त्यों नित दया-द्रवन्त सन्त, द्रुत-दुरित-अंत-कर
जग-जीवन, जग-बन्धु, जटिल-छल-छन्द-दुन्द-हर
त्यों ललित-कलित-कौसल कला—
दिग-दिगन्त दीपित-करन
बिग्यान-बीर बिजयन्ति जग,
बिबिधि बिघन-बाधा-हरन

तुच्छ कीड़ोंकी भारी आबादीसे रोजगार

मानव-समाजका उनसे अपरिमित लाभ

[लेखक—ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालङ्कार, एम्० एस्. सी०,
विशारद, सब-रजिस्ट्रार तहसील हाटा, गोरखपुर ।]

१. मनुष्यकी महत्ता
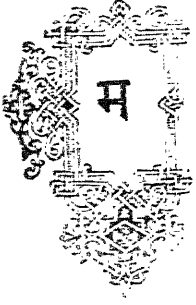
नुष्य अशरफुल-मख्लूकात—सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाता है। उसकी समाज-व्यवस्था एवं श्रम-विभाग-प्रणाली अनुपम और अनुकरणीय है। जीवनकी होड़में—आत्म-रक्षा और स्वजाति-रक्षाके हेतु वह अपनी बुद्धिमत्ता एवं श्रमशीलतासे विविध उपयोगी कलाओं और वस्तुओंके निर्माण एवं अनुसंधानमें निरंतर लगा रहता है। उसके समस्त आविष्कारों और अनुसंधानोंका एकमात्र उद्देश्य यह होता है कि वे उसके जीवन व्यापारमें किसी-न-किसी प्रकार सहायक हों। सर्व श्रेष्ठ होनेके कारण उसकी यह धारणा बिलकुल निराधार नहीं कही जा सकती है कि संसारके समस्त प्राणियोंको उनके चतुर रचयिताने किसी-न-किसी उद्देश्यसे उत्पन्न किया है, कोई प्राणी बेकार नहीं है। हाँ, यह दूसरी बात है कि हमें किसी प्राणी विशेषका सम्यक् ज्ञान न हो और इसी कारण हम उसे व्यर्थ समझ बैठे हों।

२. मनुष्यके बाद ?

बुद्धिमत्ता और समाज-व्यवस्थाकी दृष्टिसे मनुष्य जातिके बाद (बन्दरोंके अतिरिक्त जो मनुष्योंके पूर्वजोंके भाई-बन्धु कहे जाते हैं) कीड़ोंका ही नम्बर है। कुछ बातोंमें तो वे मनुष्योंसे भी बढ़े-चढ़े हैं। सच पूछो तो प्राणियोंमें कीड़ोंकी ही एक जाति है जिसमें प्रतियोगिताकी मात्रा अत्यधिक है किन्तु साथ-ही-साथ नैसर्गिक अवस्थाओंसे लाभान्वित होने तथा परिस्थितिके अनुरूप बननेकी क्षमता भी उनमें अपरिमित है। यही कारण है जीवनकी रगड़में उनकी इतनी काट-छाँट होते हुए भी उन्होंने सम्पूर्ण भूमंडलपर अपना एकच्छत्र राज्य जमा रखा है।

३. कीड़ोंकी आबादी और विस्तार

कीड़ोंकी आबादी और उनके विस्तारका अनुमान करना दुस्तर प्रतीत होता है। प्रायः वे सभी स्थानोंमें पाये जाते हैं। श्री केलाग साहबके मतानुसार ऐसे कीड़ोंकी तीन लाख जातियाँ हैं जिनका विस्तृत हाल हमें मालूम है। किन्तु अभी तो हमें असंख्य कीड़ोंके दर्शनतक नहीं हुए हैं। धरातलपर और नीचे, एवं वायु और समुद्रकी बात जाने दीजिये, अभी तो हम उष्ण कटिबन्धके घने जङ्गलोंतकका पार नहीं पा सके हैं। फिर उनमें पाये जानेवाले कीड़ोंकी गणना ही क्या ? श्री होवर्डका अनुमान है कि सृष्टिमें कुल मिलाकर कीड़ोंकी लगभग पैंतीस लाख जातियाँ मौजूद हैं। अब यह हिसाब लगाना कि संसारमें कितने कीड़े होंगे तभी सम्भव है जब "पारे परार्धगणितं यदि स्यात्" हो। कुछ कीट-शास्त्रवेत्ताओंका अनुमान है कि कीड़ोंकी संख्या संसारके अन्य प्राणियोंकी सम्मिलित संख्यासे दुगुनी है।

४. कीड़ोंकी वंश-वृद्धि

कीड़ोंकी वंश-वृद्धि भी बड़े वेगसे होती है। काड-मक्खीके गर्भमें लगभग नब्बे लाख अंडे होते हैं। यदि सभी अंडोंसे मक्खियाँ निकलें और वे भी उसी भांति अंडे दें और मक्खियाँ निकलें और सभी बनी रहें तो दस मासमें सारी सृष्टि इन मक्खियोंसे ठसाठस भर जाय। घरेलू मक्खी एकबारमें लगभग डेढ़ सौ अंडे देती है। अंडे रखनेके तेईस दिवसके अंतर्गत उनसे उत्पन्न होनेवाली मक्खियाँ भी उतने ही अंडे रखनेके योग्य हो जाती हैं। श्री होवर्ड महोदयने हिसाब लगाकर बताया है कि पाँच मासके भीतर एक मक्खीसे पाँच खरब उनसठ अरब सत्तासी करोड़ मक्खियाँ

हो जायँगी। इसी भाँति अन्य कीड़ोंकी वृद्धि भी बड़े वेगसे होती है। परमात्माका यह अनुग्रह है कि वह कीड़ोंकी संख्या मर्यादित रखता है अन्यथा यह संसार कभीका कीड़ोंसे भर गया होता।

"ज्याइ पालि मारत केहि भाँती, धन्य अखिल रखवाल!"

—(पूर्ण)

५. मानव-समाजके लाभ-हानिमें कीड़ोंका हाथ

उनकी संख्या और जीवन-व्यापारको दृष्टिमें रखते हुए अब हमें उनकी उपयोगिता एवं महत्तापर विचार करना है अर्थात् हमें यह देखना है कि मनुष्य-जातिके हानि-लाभमें उनका कहाँतक हाथ है। कुछ कीड़े मनुष्य जातिके हेतु अत्यंत उपयोगी होते हैं। वे हमारी फसलों, बागों और जंगलोंकी उपज और वृद्धिमें भारी मदद देते हैं। इसके अतिरिक्त मधुमक्षिका, लाहके कीड़े इत्यादि अपने अनवरत श्रम और जाँनिसारीसे हमें भांति-भांतिके उपयोगी और अमूल्य पदार्थ देते हैं जिनसे प्रतिवर्ष हमें करोड़ों रुपयेका लाभ होता है।
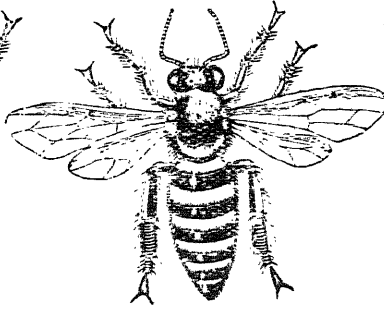
लाभदायक कीड़ोंके अतिरिक्त हम कुछ ऐसे कीड़े भी पाते हैं जिनके कारण मानव-समाजको निशि-वासर नाना भांतिके संकटोंका सामना करना पड़ता है। वे विविध रोगोंका प्रचार-प्रसार कर मनुष्यों और उनके पालतू जानवरोंके प्राणोंको संकटमें डाले रहते हैं। यही नहीं, अनेक कीड़े तो मनुष्यके कला-कौशल—उनके निर्माण किये हुए मनोहर भवनों और दस्तकारियोंको मटियामेट किया करते हैं। इसके अतिरिक्त फसल, कच्चे माल, भोज्यपदार्थ और वस्त्रादिका विनाश कर उनके व्यापारको भी असीम क्षति पहुँचाते हैं। मनुष्य-जाति इन हानिकारक कीड़ोंसे अपनी और अपने मालकी रक्षाके लिये तरह-तरहकी व्यवस्थायें करती है तिसपर भी उनसे कुछ वश नहीं चलता। कीड़ोंका ही एक वर्ग है जो मनुष्य जातिकी सांसारिक उन्नतिका मान मर्दन किये रहता है।

६. कीड़ों-मकोड़ोंसे मानव-समाजका लाभ

मधुमक्षिका

जब हम ऐसे कीड़ोंकी खोज करते हैं जो मनुष्य-जातिके व्यवहारमें आनेवाले पदार्थोंको स्वतः उत्पन्न करते हैं

तो हमारी दृष्टि मधुमक्षिका, रेशम और लाख आदिके कीड़ोंपर पड़ती है। मधुमक्षिकाओंसे हमें मधु और मोम प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त वे पुष्प-गर्भाधानमें सहायता देकर हमारी फसलों, वाटिकाओं और जङ्गलोंका बड़ा उपकार करती हैं। यद्यपि शकरका प्रचार होनेके कारण मधुकी अब पहले जैसी कदर नहीं रही तथापि औषधि आदिकी सेवन-विधिमें उसका उपयोग अब भी काफी होता है। मोम भी हमारे सैकड़ों काम आता है। मोमबत्तियोंसे हमारे पाठक भलीभांति परिचित हैं। उनके नामसे ही प्रकट है कि उनके निर्माणमें कभी-न-कभी मोमका उपयोग अवश्य रहा होगा। किन्तु अब तो मोमका स्थान चर्बी आदि पदार्थोंने ले लिया है।

७. छत्तेसे मधु लेनेके उत्तम प्रकार

मधुमक्षिकाओंकी उपयोगिताके विचारसे ही अमेरिका आदि उन्नतिशील देशोंमें वे पाली जाती हैं। हमारे देशकी भांति वहाँपर उनके छत्तोंसे मधु निकालकर उन्हें उड़ा नहीं देते हैं और न छत्तोंको ही तोड़ते हैं। क्योंकि व्यापारिक दृष्टिसे यह नीति घातक है। वहाँके लोग शहद निकालते समय धुएँसे मक्षिकाओंको उड़ा देते हैं और कलकी सहायतासे छत्तेमेंसे शहद खींच लेते हैं—छत्ता ज्यों-का-त्यों बना रहता है। धुआँ हटते ही मक्खियाँ पुनः छत्तेपर आ जाती हैं और पहलेकी भांति अपने काममें जुट जाती हैं।

८. रेशमका कीड़ा

रेशमका कीड़ा (क्षौम-कृमि) भी मनुष्य जातिके हेतु अत्यंत लाभप्रद है। यह उन्हींके अथक परिश्रम और जाँनिस्मारीका फल है कि हमें अतीव कोमल और सुन्दर रेशमी वस्त्र उपलब्ध होते हैं। उपयोगिता और गुरुताके कारण अनेक स्थानोंपर इनकी नियमतः कृषि की जाती है और अब ये कीड़े स्वाभाविक (जंगली) अवस्थामें न पाये जाकर प्रायः पालतू अवस्थामें ही पाये जाते हैं। शहतूतकी पत्तियोंको ये बड़े चावसे खाते हैं अतः इनकी खेती ऐसे ही स्थानोंमें सुविधापूर्वक की जा सकती है जहाँ शहतूतके वृक्षोंका बाहुल्य हो।

९. रेशम क्या है ?

इस कीड़ेके शरीरके दोनों छोरोंपर एक-एक ग्रंथि (gland) होती है। ये दोनों ग्रंथियाँ एकही छिद्रद्वारा बाहरको खुलती हैं। इस छिद्रको अंग्रेजीमें (spinneret) कहते हैं। रेशम इन्हीं ग्रंथियोंका रसस्राव (secretion) होता है और उनमेंसे निकलते समय पीत रंगका द्रव्य होता है किन्तु वायुके संसर्गमें आनेसे बादको कड़ा हो जाता है। यह पदार्थ (fibres) तन्तुओंके रूपमें निकलता है। तन्तुओंके निकलते समय कीड़ा उसे अपने आस-पास इस विधिसे लपेटता है कि वह उसके (cocoon) कीट-कोषका काम देता है। एक कीड़ा हजार-बारहसौ गज लम्बा तन्तु बुन सकता है। ग्रंथियोंसे ये रेशमके तन्तु दो-तीन दिनतक निरन्तर निकलते रहते हैं।

१०. कच्चा रेशम

इस अवधिके अनन्तर तापक्रम बढ़ाकर या जल-वाष्पद्वारा कीड़ोंका बलिप्रदान कर दिया जाता है क्योंकि यदि उन (pupae) शंखियोंको पूर्ण अवस्था प्राप्त करनेका अवसर दिया जावे तो वे अपने आस-पास लिपटे हुए तन्तुओंको काटकर बाहर निकल आवें और तागोंको भारी क्षति पहुँचावें इसी कारण कीड़ोंका विनाश कर दिया जाता है। हाँ, कुछ कीड़ोंको बचा लेते हैं जिनसे आगे चलकर अंडे प्राप्त होते हैं। कीड़ोंके मरनेके उपरान्त रेशमकी पिंडियोंसे गड्डियाँ बना लेते हैं। अब तो रसायनज्ञोंकी कृपासे कृत्रिम रेशम प्रचुरतासे उपलब्ध होने लगा है जो रेशमकी अपेक्षा सस्ता भी होता है और हिंसाके भारसे भी रहित होता है। कट्टर अहिंसावादी इसे शौकसे पहने और रसायनज्ञोंके उपकृत हों।

११. लाखका कीड़ा और लाख

जब हम लाखके कीड़ोंकी ओर दृष्टिपात करते हैं तो उन्हें हम मधुमक्षिकाओं और रेशमके कीड़ोंकी अपेक्षा कम उपादेय नहीं पाते हैं। उन कीड़ोंकी भांति हम इनकी भी खेती होते हुए पाते हैं। जिस भांति रेशमके कीड़ोंकी खेती प्रायः शहतूतके वृक्षोंपर की जाती है उसी भांति इस कीड़ेकी खेती पीपल, बेर, परास आदि वृक्षोंपर होती है। लाखके कृषक इन वृक्षोंकी शाखाएँ काट डालते हैं और नयी शाखाओंके निकलते समय कटे हुए स्थानोंपर लाहका बीज (Brood lac) रख देते हैं। इस कीड़ेके शारीरिक रन्ध्रोंसे एक प्रकारका मल निकलता है जो शनैः-शनैः उसके शरीरको ढक लेता है और वायुके संसर्गसे लाखका रूप धारण कर लेता है, लाख तैयार हो जानेपर शाखाओंको काट लेते हैं और उनमेंसे लाख छुटा लेते हैं। कुछ शाखाओंको छोड़ देते हैं ताकि उनके कीड़े आगामी वर्ष बीजका काम दें।

१२. लाखकी उपयोगिता

लाखकी कृषि भारतवर्षमें प्राचीनकालसे होती चली आती है। महाभारतके समयमें भी इसकी तिजारत और कृषि खूब होती थी और उसके उपयोगों अथवा दुरुपयोगोंसे जनता भली-भाँति अवगत थी। लाक्षागृह निर्माण कर पांडवोंको भस्म करनेका प्रयास इस बातका ज्वलन्त

प्रमाण है। आजकल तो बाजारोंमें लाखकी बहुत माँग है क्योंकि उससे अनेक प्रकारकी उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। लाखकी चूड़ियाँ, छड़ी, खिलौने, वार्निश आदि चीजें तैयार की जाती हैं। मुहर (Seal) लगानेमें और स्वर्णकारोंके यहाँ चपरेके रूपमें इसका प्रचुरतासे प्रयोग होता है। इससे ग्रामोफोनकी चूड़ियाँ और महावर बनता है। कोई-कोई इसके पानीको खेतोंमें डालकर उनकी उपज शक्तिकी वृद्धि करते हैं। हाँ, नकली रंगोंके प्रचार-प्रसार होनेसे लाखके रंगका अब बहुत महत्त्व नहीं रह गया है।

१३. रंग उत्पन्न करनेवाले कीड़े

कोचीनेलने कटीली घास निर्म्मूल कर दी

रंग उत्पन्न करनेवाले कीड़ोंमें कोचीनेल (Cochineal) कीड़ेका भी नामोल्लेख करना आवश्यक है। सन् १७९५ ई० में यह कीड़ा रायोडिजेनेरासे भारतमें इस अभिप्रायसे लाया गया था कि यहाँ भी इसके रंगका व्यापार किया जाय किन्तु अभाग्यवश अभीष्टकी प्राप्ति न हो सकी। जलवायुके परिवर्तन अथवा कीड़ेकी जातिके चुनावमें त्रुटि हो जानेसे यह कीड़ा यहाँ निरुपयोगी ही सिद्ध हुआ। रंगके व्यापारके लिये अमेरिकामें इस कीड़ेकी बहुत दिनतक खेती होती रही। किन्तु जबसे कृत्रिम नीले रंगोंका प्रचलन हुआ तबसे व्यापारिक दृष्टिसे इस कीड़ेका उतना आदर नहीं रहा।

आज-कल कोचीनेल कीड़ेका महत्त्व एक दूसरी दृष्टिसे बहुत कुछ बढ़ रहा है। भारतवर्षमें जब इसकेद्वारा रंगके व्यापारको बिल्कुल प्रोत्साहन न मिला तो इसका पालना और उसकी वृद्धिके अर्थ इसकी खेती करना त्याग दिया गया। और यह कीड़ा जंगली हो गया। जंगली होनेपर प्रिकलीपियर नामक पौधेको यह कीड़ा बड़े चावसे खाने लगा। यह पौधा मानव समाजके लिये अत्यंत दुःखदायी और हानिकारक सिद्ध हो चुका था। बीस ही वर्षकी अवधिमें इस कीड़ेने दक्षिणीभारतसे इस अपकारी और दुःखदायी घासका नामोनिशान मिटा दिया, सन् १९१३ ई० में यह कीड़ा यहाँसे अफ्रीका ले जाया गया था और वहाँ भी इसने उस दुःखप्रद घासके उन्मूलनमें आशातीन सफलता प्राप्त की। लैंटाना मक्खी भी इसी प्रकारकी दूसरी कँटीली घासका तहस-नहस करती है। जब मनुष्यको इस कीड़ेकी इस उपयोगिताका पता लगा तो पुनः उसे अपनाया और खेती करना आरंभ कर दिया।

१४—हानिकारी कीड़ोंके शत्रु कीड़े

अभी हालमें कुछ कीड़ोंकी उपादेयता इस रूपमें सिद्ध हुई है कि वे उन कीड़ोंके परमशत्रु हैं जो निशि-वासर हमारी वाटिकाओं और फसलोंको बड़ी क्षति पहुँचाते रहते हैं। इन कीड़ोंकी सहायतासे हम उन अनिष्टकारक कीड़ों (Pest) के उच्छेदमें सफलीभूत होते हैं। इन उपयोगी कीड़ोंकी रक्षा और वृद्धिके भी अनेकों उपाय किये जाते हैं। न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया, कैलीफ़ोर्निया आदि देशोंमें उनके हेतु पराश्रयी-आश्रय (Parasite breeding station) खोले गये हैं और वहाँपर कपास, गन्ने, गेहूँ, सेव, संतरा, चाय आदिके विनाशक कीड़ों (Pest) के घोर शत्रु—ये कीड़े उपजाये जाते हैं। वहाँसे वे उन दूर-देशोंको भी भेजे जाते हैं जहाँपर उपर्युक्त फसलोंको वे कीड़े हानि पहुँचा रहे हैं। इम्पीरियल ब्यूरो आव् इन्टिमालोजीके तत्वावधानमें भी एक इसी प्रकारका पराश्रयी-आश्रय खुला हुआ है और वह देशके हितके लिये बहुत कुछ कर रहा है।

कीट-शास्त्रके इस ढंगके अनुसंधानों और प्रयोगोंमे भारत जैसे कृषि-प्रधान देशका अपरिमित लाभ हो सकता है और इस विषयमें बहुत कुछ करनेकी आवश्यकता है। अभीतक जो कुछ किया गया है अथवा किया जा रहा है वह नहींके बराबर है। इस विषयके जानकारों और देशहितैषियोंको और भी लगन और अनुरागसे काम करना चाहिये। सच्ची देशसेवा यही है। इस देशमें उपजनेवाली ऐसी कौनसी फसल है जिसमें इन हानिकारक कीड़ोंके कारण प्रतिवर्ष लाखों और करोड़ोंकी हानि न सहनी पड़ती हो। भारत जैसे वृहत् देशका एक पक्षसे काम न चलेगा।

१५. स्वच्छतामें सहायक कीड़े

कीट-संसारके हरिजन

कृषि-कर्ममें हमें कीड़ोंसे और भी सहायता मिलती है। इस प्रकार सहायता देनेवाले कीड़े उन भद्र पुरुषोंकी

भांति मानव-समाजकी सेवा करते हैं जो सदैव परोपकार और नेकीमें संलग्न रहते हुए भी प्रत्यक्ष रूपसे मानो कुछ नहीं कर रहे हैं। यदि हमारे पाठकोंको कुछ दिवसके मरे हुए पक्षी या चौपायेके शवको ध्यानपूर्वक अवलोकन करनेका अवसर मिला होगा तो उन्हें वह घृणित और दुर्गन्धमय दृश्य नहीं भूला होगा। उन्हें उस शवपर अनेकों छोटी-छोटी इल्लियाँ दिखाई दी होंगी। इल्लियोंके अतिरिक्त अनेक प्रकारके पतिंगे और कीड़े भी होंगे जो खटक पाते ही आपकी दृष्टिसे अंतर्धान होनेका प्रयत्न करेंगे। उस दृश्यके अवलोकनसे यद्यपि हमारी मनोवृत्ति कुरुचिपूर्ण हो जाती है तथापि वे सब हमारी घृणाके पात्र नहीं हैं वे सब हमारे उपकारमें संलग्न हैं।

१६. कीड़ोंका जमीनको उपजाऊ बनाना

खादके कीड़े

किसी प्राणीकी मृत्यु होते ही सुगनांड उत्पन्न करनेवाले जीवाणु शरीरके निष्प्राण अवयवोंको तोड़-फोड़कर सड़ाने-गलानेकी क्रिया आरंभ कर देते हैं जिसके फलःस्वरूप वह पदार्थ पतला हो जाता है और उसमेंसे विविध भांतिकी गैसोंका आविर्भाव होता है। किसी पदार्थके सड़नेका पता हमें इन्हीं गैसोंकी दुर्गंधसे मिलता है। यदि मृत शरीरतक कीड़ोंकी पहुँच न हो सके तो बैक्टीरिया उसे बहुत समयमें शुष्क और गंधहीन कंकालमें परिवर्तित कर सकेगी। किन्तु कीड़े अपनी प्रखर घ्राण-शक्तिद्वारा शवका पता लगा लेते हैं और उस सड़ते-गलते तरल पदार्थको शीघ्र ही खाकर उसे जल-वायु और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ही निर्दोष नहीं बना देते हैं वरन् उसे इस योग्य भी बना देते हैं कि वनस्पतियाँ उसे अपनी जड़ोंद्वारा मिट्टीमेंसे खींच सकें—उसका शोषण कर सकें। कीड़े उसे बार-बार खाकर मलके रूपमें निकालते हैं और उसका गठन हर बार पहलेसे सीधा-सादा होता जाता है। अतएव यह पदार्थ कीड़ोंके शुभ प्रयत्नसे मिट्टीकी पोषण-शक्तिमें वृद्धि करता है।

प्राणियोंके गोबर, लीद और मल इत्यादिमें अनेकों कीड़े निवास करते हैं। इनसे भी मानव-जातिका महान उपकार होता है। ये कीड़े उस मलके कार्बनिक अंगका भक्षण करते हैं। यह पदार्थ उनकी पाचन-प्रणालीमें पहुँचता है जहाँपर कई भांतिके पाचक रसोंके संसर्गसे उनके गठनमें अनेकों रसायनिक परिवर्तन होते हैं जिसके फलःस्वरूप कीड़ोंके उदरकी भित्तियाँ खायेहुए पदार्थके अल्प भागका शोषण कर लेती हैं और शेष भाग पुनः विष्टाके रूपमें कीड़ेके पेटसे निकल जाता है। कार्बनिक होनेके कारण निर्गत पदार्थको उनसे छोटे-छोटे कीड़े खाते हैं। यह भक्षण, पाचन, शोषण और निर्गतकी क्रिया बार-बार होती है। हर बारकी क्रियामें निष्क्रमण पदार्थकी विषमता (Complexity) घटती जाती है—विषम कार्बनिक पदार्थका गठन सादा होता जाता है और अंतमें उसकी यह अवस्था हो जाती है कि मिट्टीमें मिले हुए उस पदार्थका उपभोग वनस्पतियाँ कर सकती हैं।

१७. जीवनका सम्पूर्ण क्रम

कहने-सुननेमें कटु प्रतीत होते हुए भी यह बात सत्य है कि जीवनका सम्पूर्ण क्रम पदार्थके निर्माण और क्षयकी क्रियाका बार बार दुहराया जाना मात्र है और संसारके (matter) पदार्थकी मात्रा घटती-बढ़ती नहीं है—आज उसकी मात्रा उतनी ही है जितनी उस दिन थी जब संसारमें जीवनका पहले-पहल श्रीगणेश हुआ था। मक्खियाँ और गुबरैले आदि कीड़े गोबर और मलवा आदि पदार्थोंकी क्षय-क्रियामें विशेष वृद्धि करते हैं और शीघ्र ही अस्वस्थ और दूषित पदार्थोंका रुपान्तर कर उन्हें वनस्पतियोंके शोषण-योग्य बना देते हैं। निर्माण-क्रियामें वनस्पतियोंका मुख्य हाथ है। गन्दे पदार्थोंकी गंदगी मिटाकर वे कीड़े प्राकृतिक मेहतरोंका कार्य भी करते हैं।

१८. पुष्प-गर्भाधानमें कीड़ोंका सहयोग

मधुमक्षिकाओंके प्रसंगमें हम यह बता चुके हैं कि पुष्प-गर्भाधान-क्रियामें वे प्रमुख भाग लेती हैं। किन्तु इससे यह न अनुमान कर लेना चाहिये कि इस क्रियामें मधुमक्खियोंके सिवा और कीड़े भाग नहीं लेते हैं। यद्यपि कुछ वनस्पतियोंकी गर्भाधान-क्रियामें जल-वायुका भी हाथ रहता है तथापि इस कार्यके सम्पादनमें प्रमुख हाथ कीड़ोंका ही रहता है। प्राणियोंकी जाति रक्षाके हेतु जिस भांति यह

आवश्यक है कि उनके सन्तान उत्पन्न हो उसी भांति वनस्पतियोंकी उत्पत्ति एवं वृद्धि भी उनकी जाति रक्षाका साधन है। उनके उत्पादनके अर्थ पुष्प-गर्भाधानका होना अत्यावश्यक है। वनस्पतियोंमें पुष्प ही नर-नारी रूप हैं और गमन-शक्ति न होनेके कारण विभिन्न पुष्पोंके रज और परागका परस्पर संयोग करानेके हेतु किसी ऐसे मध्यस्थकी आवश्यकता होती है जो परागको एक पुष्पसे दूसरे पुष्पतक ले जावे। रज और परागका परस्पर संयोग कराना ही पुष्प-गर्भाधान है जिसके सम्पादनमें कीड़ोंका प्रमुख हाथ है।

१९. पुष्पोंकी सुगंध तथा सौंदर्यका कीड़ों-मकोड़ोंसे संबन्ध

पुष्प-गर्भाधान-क्रियामें किसी प्रकारकी कोर-कसर या कमी होनेसे परमात्माकी सृष्टि जोखिममें पड़ जाय इस बातको ही ध्यानमें रख पुष्पोंको मधु, सुगंध, पराग और विविध भांतिके मनोहर रंग आदि कीड़ोंको आकर्षित करनेवाली वस्तुएँ प्रदान की गयी हैं, जिनके कारण उन्हें पुष्पोंके समीप मजबूरन आना पड़ता है। बिना आये उनका गुजारा नहीं; जीवन असंभव है। जितनी ही लाभदायक और उपयोगी पुष्प-गर्भाधान क्रिया, उतनी ही दृढ़ और अचल व्यवस्था! इस व्यवस्थामें परमात्माने कितनी सचेतनता और सावधानीसे काम लिया है।

२०. कीड़ोंद्वारा पुष्प-गर्भाधान कैसे होता है?

बात यह है कि कीड़े पुष्पोंके सौंदर्य और गंधसे मुग्ध होकर उनकी ओर आकर्षित होते हैं और उनपर बैठकर मधु-प्राशन और पराग-कणसे अपनी उदर-पूर्ति करते हैं। इस क्रियामें अनेकों परागकण उनके शरीरके विविध अंगोंमें अनायास ही चिपक जाते हैं। भौंरे और मधुमक्षिकाओंद्वारा पुष्प-गर्भाधान इस कारण अधिक विस्तारसे होता है कि इनकी पिछली टांगोंपर पराग-कण एकत्रित करनेके हेतु छोटी-छोटी टोकरियाँ होती हैं। पुष्पालिंगन-व्यापारमें प्राप्त हुए पराग-कणोंको ये कीड़े दूसरे पुष्पोंकी योनि-नलिकाओंके मुखतक पहुँचाते हैं। जहाँसे वे आकर्षणमय द्रव्य पदार्थद्वारा (Ovule) रज-बिन्दुतक पहुँचाये जाते हैं और वहींपर उनका परस्पर संयोग होता है। जिस भाँति प्राणियोंमें सन्तानोत्पादनके हेतु नर-मादाके वीर्य और रजका संयोग होना अनिवार्य-सा है उसी भांति वनस्पति-संसारमें पुष्प-गर्भाधान-विधिद्वारा सन्तानोत्पादन करना अत्यावश्यक है। और विधियोंके होते हुए भी इसी विधिका बोल बाला है और विज्ञान-वेत्ताओंका यह दृढ़ मत है कि सन्तानोत्पादनकी विविध रीतियों में यही विधि सर्वोत्तम और श्रेयस्कर है। अतः बीजोत्पत्ति अथवा सन्तानोत्पत्तिके लिये पराग-कण और रज-बिन्दुका परस्पर संयोग अत्यावश्यक है। सन्तानोत्पादन ही जीवनका चरम उद्देश्य है।

२१. हमारे जीवनाधार

वनस्पतियोंमें पुष्प-गर्भाधान-क्रियाका होना मानव-समाज एवं अन्य शाकाहारी प्राणियोंके हेतु जीवन-मरणका प्रश्न है। शाकाहारियोंका ही क्यों, मांसाहारी भी तो शाकहारियोंका ही भक्षण करके जीते हैं। फलतः संसारके समस्त प्राणियोंकी जीवनाधार वनस्पतियाँ ही हैं। इनकी प्राप्तिके हेतु उनमें पुनरोत्पादन और वृद्धिका होना अति आवश्यक होता है जो बिना पुष्प-गर्भाधानके हुए असंभव है। जैसा कि हम ऊपर जान चुके हैं कि पुष्प-गर्भाधानकी कुंजी कीड़ोंके हाथमें है। अतएव हमारे जीवनका कीड़ोंसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे हमारे अन्नदाता हैं, जीवनाधार हैं। कितने पुरुष हैं जो कीड़ोंके इस उपकारके हेतु उनके कृतज्ञ हुए हों।

२२. घरेलू मक्खियोंका उपयोग

प्रकृतिकी सफाई और पुष्प-सेचन-क्रियामें घरेलू मक्खियोंका भी हाथ है। यदि इनमें कोई अच्छाई है तो सड़ती-गलती चीजोंमें पायी जानेवाली इनकी इल्लियाँ हैं। इन इल्लियोंसे मनुष्य जातिका महान उपकार होता है। गुबरैले आदि कीड़ोंकी भांति ये इल्लियां भी उन दूषित और गंदे पदार्थोंमें घोर परिवर्तन कर उनसे होनेवाले अनर्थोंसे हमारी रक्षा करती हैं और वनस्पतियोंके उपभोग-योग्य बनाती हैं। इस भांति ये प्राकृतिक मेहतरोंका काम करती हुई हमारी फसलोंमें भी थोड़ी बहुत सहायता देती हैं।

२३. भिड़ या बर्रें और उनका उपयोग

बर्रैयां (Wasps) हमें मक्खियोंसे कम लाभदायक नहीं हैं। वर्षाऋतुमें तो निस्सन्देह वे हमारे मधुर एवं स्वादिष्ट पकवानोंकी ताकमें निरन्तर लगी रहती हैं और कभी-कभी तो उड़ाते समय डंकतक छेदकर हमें भारी व्यथा पहुँचाती हैं। वे हमारी वाटिकाओंके फलों और पत्तियोंको भी अपार हानि पहुँचाती हैं। वे अपनी तीक्ष्ण दाढ़ोंसे

वृक्षोंकी लकड़ी और छालको खा जाती हैं। तथापि हमारी खेतीमें जो लाभ वह पहुँचाती हैं वह इन सब बातोंकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण एवं श्रेयस्कर है। अन्य कीड़ोंको मार-मारकर वे अपने बच्चोंको खिलाती हैं। यदि निरीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि उनमेंसे बहुतेक झींगुर तथा अन्य हानिकारक कीड़ोंकी इल्लियोंको अधमरा करके लिये फिरा करती हैं। अन्यथा कीड़ोंकी ये इल्लियाँ पूर्णावस्थाको पहुँचकर हमें नाना भांतिकी यातनाएँ और हानियाँ पहुँचातीं।
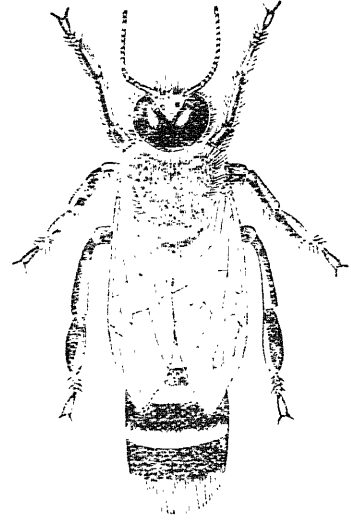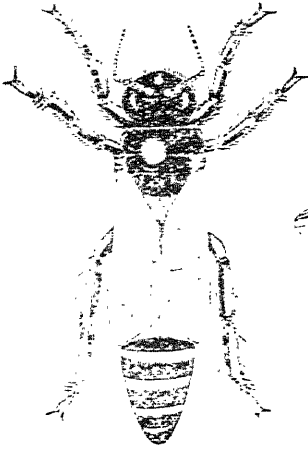
२४. कीड़े सर्वभक्षी मनुष्यका भोजन भी हैं ?

इनके अतिरिक्त मानव-जाति और ढंगोंसे भी कीड़ोंका उपयोग करती है। कहीं-कहीं वे खाये भी जाते हैं। मनुष्य तो सर्वभक्षी ठहरा ही— मेंढक, छछूँदर चूहे, कछुए, पक्षी, बकरे आदि किसीको तो न छोड़ा! पाश्चात्योंने तो और भी हद कर दी। उन्होंने दीमक सदृश मैले-कुचैले कीड़ेतकको न छोड़ा। भारतवर्षमें टिड्डियोंको खाते देखा गया है। यहाँके जंगली लोग एक प्रकारकी मधु-मक्खीकी इल्ली और कोशको भी खाते हैं। टसरके रेशमके कीड़ोंको भी लोग खाते हैं, मेक्सिकोमें एक कीड़ेके अंडे खाये जाते हैं। न्यासालैंडमें मक्खीको खाते हैं, अफ्रीकाके हब्शी दीमक खाते हैं और कुछ लोग उन्हें तम्बाकूके स्थानपर रखकर पीते हैं। कुछ कीड़े दवाके काममें भी आते हैं। गुलाबका कीड़ा कुत्ता काटनेपर दवाके काम आता है। पिपीलिकाम्ल (Formic acid) पहले चींटियोंसे ही तैयार किया जाता था। कुछ कीड़ोंको मनुष्य अपने पालतू पक्षियोंको भी खिलाते हैं।
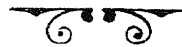
एरंड-रूखकी सम्पत्ति

रेंडी और उसके उपयोग

[ले० श्री श्यामनारायण कपूर बी० एस्-सी० कानपुर ।]

भारत कृषिप्रधान देश है। खेतीमें तिलहन अपना विशेष स्थान रखता है। भारतवर्षमें पैदा होनेवाले तिलहनोंमें अलसी, रेंडी, सरसों, तिल, मूँगफली, गोला, महुआ, कुसुम आदि मुख्य हैं। तिलहनकी खेतीके साथ-साथ तिलहनसे तेल निकालना भी यहाँका एक प्रमुख व्यवसाय है। युक्तप्रान्तके तीन प्रधान उद्योग-धंधों—शकर, तेल और कांच—में इसकी भी गणना है। सरकारकी ओरसे इस व्यवसायको वैज्ञानिक ढंगसे संगठित और संचालित किये जानेके लिये विगत कई वर्षोंसे प्रयत्न किये जा रहे हैं। इन प्रयत्नोंमें बहुत काफी सफलता मिली है परन्तु फिर भी सुधारकी बहुत गुंजाइश है। इन सुधारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेमें पूँजीपतियों और व्यवसायियोंके साथ-ही-साथ किसानोंको भी आगे बढ़कर हिस्सा बटानेकी जरूरत है।

१. बढ़िया खाद

तिलहनकेद्वारा पृथ्वीको उपजाऊ बनानेवाला पौष्टिक अंश बाहर आ जाता है। पृथ्वीको उपजाऊ बनाये रखनेके लिये इस अंशको किसी-न-किसी रूपमें पृथ्वीतक फिर पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है। इसका एकमात्र उपाय पृथ्वीको अच्छी और उपयुक्त खाद देना है। परन्तु भारतीय किसान कुछ अपनी अज्ञानताके कारण और कुछ निर्धनताके कारण अपने खेतोंको उनकी आवश्यक खुराकतक पहुँचानेमें असमर्थ हैं। गोबर जैसी अत्यन्त बहुमूल्य खादका उचित उपयोग न जाननेके कारण उसे ईंधनके तौरपर काममें लाते हैं। गोबरसे भी अधिक पौष्टिक एवं गुणकारी खाद तेलोंकी खली होती है। देशमें तैयार होनेवाली अधिकांश खली विदेशोंको भेज दी जाती है और यहाँकी जमीन एवं करोड़ों दुधारू गायें नित्यप्रति कमजोर होती चली जा रही हैं।

रेंडीकी खलीकी गणना प्रथम श्रेणीकी खादमें की जाती है। विशेषज्ञोंकी रायमें रेंडीकी खली विदेशोंसे आनेवाले 'नाइट्रेट आफ सोडा' से कहीं अधिक गुणकारी और उपयोगी है। इसके व्यवहारसे हम अपने देशकी सम्पत्तिको देशमें रखनेके ही साथ अपने देशकी जमीनको भी अधिक जरखेज और उपजाऊ बना सकेंगे। यह मालूम होनेपर भी कि रेंडीकी खली बहुत बढ़िया खादका काम देती है इसमें काफी अन्वेषण किये जानेकी जरूरत है।

२. कृषि-विभागको क्या करना चाहिये ?

कृषि-विभागको प्रयोग कराकर इसका निर्णय करना चाहिये कि अमुक पदार्थके खेतमें प्रति एकड़ कितनी खलीकी खाद दी जानी चाहिये और किस रूपमें रेंडीकी खलीके साथ और दूसरी प्रकारकी खाद मिलानेकी आवश्यकता है या नहीं ? यदि है तो कब, कितनी और कौनसी ?

इन अन्वेषणों और खोजोंके परिणाम किसानोंको भली-भाँति समझा दिये जाने चाहिये। खाद और उसके व्यवहारके बारेमें आवश्यक हिदायतें हिन्दी और उर्दूमें प्रकाशित कराकर किसानोंमें वितरित करवा दी जावें। कतिपय प्रमुख-प्रमुख केन्द्रोंमें इस खलीके उपयोगके प्रदर्शन भी किये जावें। ऐसा करनेसे किसानोंके साथ-ही-साथ तेल-मिलके संचालकोंको भी काफी लाभ होगा।

३. तिलहन गाहने और राशि उठानेमें तिसानोंकी लापरवाही और उसका फल

खलीको व्यवहारमें ही लानेसे किसानोंके कर्तव्यकी इतिश्री नहीं हो जाती। बीजको संभालकर रखना भी

उन्हींका काम है। तिलहनको खलिहान आदिमें जमा करनेमें तनिक भी सावधानीसे काम नहीं लिया जाता। कूड़ा-करकट, मिट्टी, कंकड़ तथा अन्य ऐसे ही तेलविहीन पदार्थोंको स्वच्छन्दतापूर्वक तिलहनके साथ मिलनेका मौका दिया जाता है। भूलकर भी इस बातको जाननेकी कोशिश नहीं की जाती कि अन्ततोगत्वा इसका कितना बुरा असर पड़ता है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि तिलहनके साथ प्रतिवर्ष लगभग ५ लाख टन कूड़ा-करकट, कंकड़, मिट्टी आदि अनावश्यक और हानिकारक चीजें मिली हुई निकलती हैं। जो तिलहन मिलोंमें खरीदा जाता है उसमें औसतन ५ प्रतिशत चीजें ऐसी मिली होती हैं जिनमें तेल नाममात्रको भी नहीं होता। इससे भारतीय मिलोंको केवल तेलके हिसाबमें प्रतिवर्ष ७५ लाख रुपयेकी हानि होती है। इसके अलावा इन अनावश्यक चीजोंसे मेशीनोंके कल-पुरजे बुरी तरहसे खराब होते हैं वह अलग। यह हानि तेलकी मदमें होनेवाली हानिसे कहीं ज्यादा होती है।

४. मिल-मालिकोंकी लापरवाही

बहुतसे मिल मालिक तिलहनकी सफाईकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। जैसा पाया वैसा ही पेर दिया। उनकी यही ख्वाहिश रहती है कि सस्ते-से-सस्ते बीज खरीदो और अधिक-से-अधिक तेल निकालो। दोनों हाथों लड्डू चाहते हैं। इस नीतिसे सम्भव है कि क्षणिक लाभ भले ही हो जावे परन्तु अन्तमें हानि ही अधिक उठानी पड़ती है।

५. रेंडीके संग्रह और पेरनेके संबंधमें उत्तम सलाहें

उपरोक्त बातें प्रायः सभी प्रकारके बीजोंपर लागू होती हैं। अब हम रेंडीके संग्रह और उसकी पिराईके बारेमें कुछ विशेष बातें बतलावेंगे। सफाई तो प्रायः सभी बीजोंके लिये आवश्यक है परन्तु रेंडीके लिये तो बहुत ही ज्यादा सावधानी रखनेकी जरूरत है। सीलन और नमी रेंडीकी जानी दुश्मन है। जरा-सी भी सीलन रेंडीके बीजको सड़ा देगी और उससे तैयार होनेवाले तेलकी आम्लता (acidity) बहुत ज्यादा बढ़ जायगी। अत्यधिक आम्लता तेलका एक जबरदस्त दुर्गुण है। सड़े हुए, अधकचरे और सीले हुए बीजोंको चुन-चुनकर निकाल बाहर करना चाहिये। इन बीजोंके मामलेमें 'एक मछली सारे तालाबको गंदा करती है' वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है। दो चार सड़े हुए अथवा खराब बीज सारे-के-सारे ढेरको नष्ट करनेकी ताकत रखते हैं।

रेंडीके अच्छे तेलका आम्लअंक (Acid value) ५ स्वीकार किया जाता है। परन्तु अच्छी तरहसे पके हुए बीजका आम्लअंक ·०५ से अधिक नहीं होता। अतएव अच्छे तेलका आम्लअंक यथासम्भव कम-से-कम होना आवश्यक है। आम्लता बढ़नेका एक खास कारण सीले, कच्चे एवं सड़े हुए बीजोंको पेरना है। इसके लिये जिम्मेदारी किसानों एवं बीजके बिक्रेताओंके सिर नहीं मढ़ी जा सकती।

६. मिल-मालिकोंको सलाह

यदि मिलमालिक होशियारीसे काम लें तो आम्लता बहुत काफी कम रखी जा सकती है। जिस मिलमें रेंडीका तेल तैयार किया जाय वह यथासम्भव बहुत साफ रखी जानी चाहिये। बीजोंको इधर-उधर लापरवाहीसे न पड़े रहने दिया जाना चाहिये। एक दिनमें केवल उतने ही बीज कुचले जायँ जितने कि मिलमें पेरे जा सकते हों। बीजोंको बहुत अधिक तादादमें कुचल लेना और फिर उन्हें कई दिनतक ऐसे ही खुली हुई हवामें पड़े रहने देना तेलकी आम्लताको बहुत ज्यादा बढ़ा देता है। प्रथम बार पेरे जानेके बाद जो खली तैयार होती है उसके प्रति भी ऐसी ही सावधानीकी जरूरत है।

७. मिल-मालिकोंकी लापरवाही और उसका फल

कुछ वर्ष पूर्व भारतीय मिलोंमें तैयार होनेवाला अधिकांश रेंडीका तेल भारतीय रेलें खरीद लिया करती थीं और (Lubricating oil) लुबरिकेटिंग तेलकी तरह काममें लाती थीं। परन्तु मिल-मालिकोंकी लापरवाही और असावधानीके कारण तेलकी निकासीका वह मार्ग बिलकुल अवरुद्ध हो गया। उन्हें न तो विशुद्ध तेल

ही दिया जाता था और न समयकी ही पाबन्दी की जाती थी। अस्तु, कुछ रेलवे कम्पनियोंने अब अपनी निजी मिलें खोल ली हैं और कुछने विदेशी खनिज तेलोंका व्यवहार शुरू कर दिया है। खनिज तेल वनस्पति तेलके मुकाबिले-में कुछ सस्ता पड़ता है परन्तु उतना उपयोगी और गुणकारी नहीं होता। विदेशी कम्पनियोंके विक्रीके ढंग और उनके सद्व्यवहारने भारतीय मिल-मालिकोंकी लापरवाही-पर विजय पायी और अब अधिकांश रेलवे कम्पनियाँ रेंडी-के तेलके बजाय खनिज लुबरिकेटिंग तेल व्यवहारमें लाने लगी हैं। यदि भारतीय मिल-मालिक सावधानीसे काम लें तो यह काम फिरसे उनके हाथमें आ सकता है।

८. मिल-मालिकोंकी कमजोरियाँ

पर वे खुद तो यह सब काम जानते नहीं। रुपया खर्च करना चाहते नहीं। अनुभवी, शिक्षित एवं योग्य कार्यकर्त्ताओंको मिलोंमें रखनेसे घबराते हैं। काम सुधरे तो कैसे? बाज-बाज मिल-मालिकोंको तो यहाँतक कहते सुना गया है—अरे भाई, अब तो बड़ा चोट्टा काम हो गया है। लेबोटरी प्रयोगशाला बनाओ। केमिस्टर रखो। बीजको साफ करो, तेलको साफ करो, जाँच कराओ, तब कहीं तेल पास हो। पर यह तो करना ही होगा इसके बिना काम ही नहीं चल सकता।

९. रेंडीके तेलके उपयोग

रेंडीके तेलका उपयोग केवल रेलोंतक ही सीमित नहीं है। मोटरों और हवाईजहाजोंका जमाना है। मोटरों और रेलोंके इंजनोंमें तो किसी तरहसे खनिज तेलोंसे काम चल भी जाता है परन्तु हवाईजहाजोंके इंजनोंमें रेंडीके तेलके बिना काम ही नहीं चल सकता। सभी खनिज तेलोंकी viscosity गर्मीके साथ घटती-बढ़ती रहती है परन्तु रेंडीके तेलकी viscosity पर तापक्रमके घटने-बढ़नेका कोई असर ही नहीं पड़ता। अस्तु, हवाई जहाज़ोंके इंजनोंमें (Lubrication) के लिये ज्यादातर यही तेल व्यवहारमें लाया जाता है।

१०. हमारे यहाँका रेंडीका तेल

भारतवर्षमें रेंडी काफी तादादमें पैदा होती है। तेल भी काफी तैयार किया जाता है परन्तु अधिकांश तेल निम्नश्रेणीका होता है, यदि उच्चश्रेणीका तेल तैयार किया जावे तो बहुत सम्भव है कि भारतीय तेल अकेले भारतमें ही नहीं, वरन् संसारभरमें व्यवहार किया जाने लगे। इससे जो लाभ होगा वह बहुत स्पष्ट है।

११. छिलकेसहित रेंडी पेरनेसे हानियाँ

अभीतक देशभरमें रेंडीको छिलके सहित पेरा जाता है। ग्रामीण कोल्हूओंमें भी और मिलोंमें भी। छिलकेमें नाम-मात्रको भी तेल नहीं होता। छिलके सहित पेरनेमें केवल एक ऊपरी फायदा जान पड़ता है—वह है खलीका वजन बढ़ जाना, यद्यपि वास्तवमें यह कोई लाभ नहीं है। बाकी सब नुकसान-ही-नुकसान हैं। छिलकेसे तेलका रंग बिलकुल बिगड़ जाता है। खली भी खराब हो जाती है। अधिकांश खली विदेशोंको भेजी जाती है। विदेशोंमें अधि-कतर मिलें छिली हुई रेंडीको पेरती हैं। अस्तु, उन मिलोंकी खलीकी तुलनामें भारतीय खलीको अच्छे दाम नहीं मिलते। परन्तु इन सबसे अधिक नुकसान मेशीनोंको होता है। छिलका बहुत ज्यादा सख्त होता है। इससे मेशीनोंके पुर्जे बहुत तेजीसे घिस जाते हैं। इस बातका हमारे यहाँ-की मिलोंमें कोई हिसाब ही नहीं रखा जाता। अगर हिसाब लगाकर तुलनात्मक आँकड़े तैयार किये जाँय तो शायद इन छिलकोंद्वारा मेशीनोंको होनेवाला नुकसान छिलके निकालनेवाली मेशीनके मूल्यसे कहीं अधिक बैठेगा।

१२. रेंडीके तेलके अन्य उपयोग

(Lubricating) तेलकी तरह व्यवहारमें लाये जानेके अलावा, रेंडीके तेलसे और भी कई काम लिये जाते हैं। चमड़े और कपड़ेके व्यवसायमें इसकी बहुत काफी खपत होती है। डाक्टर लोग जुलाब देनेके लिये बहुधा इसी तेलको काममें लाते हैं। परन्तु यह तेल बहुत ज्यादा साफ और शुद्ध होना चाहिये। साफ किया हुआ तेल कुछ और रासायनिक तत्वोंके साथ मिलाकर बालोंमें लगानेके भी काममें आता है। बड़े-बड़े कारखानों और मिलोंमें काममें लाये जानेवाले चमड़ेके (Belts) पट्टोंकी रचनामें भी इसीका उपयोग किया जाता है। वस्त्र-व्यवसायमें

घरेलू उद्योग-धंधे

१. सलेटकी पेंसिल बनाना

सलेटकी पेंसिल तो एक ऐसी चीज है जिसे सभी जानते हैं। इसके संबंधमें विशेष परिचय देनेकी जरूरत नहीं है। लिखने-पढ़ने-वाले बच्चोंके व्यवहारकी चीज है। इसका बनाना एक मामूली-सी बात है। बनानेमें अधिक पैसे भी नहीं लगाने पड़ते।

प्रकृतिकी सहायता

प्रकृतिने हमारे देश भारतवर्षको इस धंधेके लिये वह कारण पैदा कर दिये हैं जो अन्य देशवालोंको शायद स्वप्नमें भी नसीब हो सकें। पेंसिल बनानेका पत्थर हिन्दुस्थानके पहाड़ोंसे बहुत बड़े परिमाणमें और बिना किसी खरचेके मिल सकता है। साथ ही जितने सस्ते मजूर हिन्दुस्थानमें मिल सकते हैं अन्य किसी देशमें नहीं मिल सकते।

उदाहरणार्थ यूरोपके देशोंमें जहाँ एक होशियार मजूर चार-पाँच रुपया रोज पाता है, वहाँ हिन्दुस्थानमें एक होशियार मजूर दस-बारह आना रोजपर ही मिल जाता है। इस दशामें भी भारतवासी ऐसे लाभदायक धंधेकी ओर ध्यान न दें तो इसमें किसका अपराध है? इस धंधेके संबंधमें हम यहाँ कुछ जरूरी बातें बतलाते हैं।

पेंसिलके आविष्कारकी रामकहानी

जिस तरह सलेटीपत्थरको चीरकर सलेट बनायी जाती है, ठीक इसी तरह सलेटकी पेंसिल भी सलेटीपत्थरसे काट-छीलकर बनाया करते थे। पर आज कल यह पेंसिल दूसरे ही ढंगसे तैयार होती है। सलेटीपेंसिलका मसाला आधुनिक युगका एक आविष्कार है। जिसके संबंधमें कहा जाता है कि एक जर्मनने जब यह देखा कि सलेटीपत्थरकी खानमें बहुतसे चूरे और कंकरकी बरबादी हो रही है। इसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है तो उसने इसे पिसवाया और फिर इसकी पेंसिलें बनवायीं। इसको बहुत लाभ हुआ। इसके बाद सलेटकी पेंसिलोंका रिवाज आम हो गया।

मसालेकी पेंसिलकी विशेषताएँ

यद्यपि मसालेकी पेंसिल अच्छाईके विचारसे असली ठोस सलेटीपत्थरकी पेंसिलकी समता नहीं कर सकती, फिर भी उसमें यह विशेषताएँ जरूर हैं कि न तो यह सलेट-की सतहको खरोंचती है और न लिखनेमें किसी तरहकी आवाज पैदा करती है। लिखनेमें भी अच्छी होती है। लिखते वक्त रुकती नहीं है। यद्यपि यह पेंसिल बहुत नरम होती है तो भी इतनी कच्ची नहीं होती कि काममें लाने-योग्य न हो। इन्हीं विशेषताओंके कारण असली सलेट-पेंसिलकी अपेक्षा इसे तरजीह दी जाती है और ऐसी पेंसिलोंकी मार्केटमें खूब खपत होने लगी है।

मसालेकी पेंसिलोंकी किस्में और नुसखे

सलेटी पत्थरके चूरेको लेकर जो पेंसिलें बनायी जाती हैं वे दो तरहकी होती हैं—सख्त और नरम।

सख्त पेंसिल नंबर १—सख्त पेंसिल बनानेके लिये जो मसाला काममें लाया जाता है उसका नुसखा यह है—

सलेटीपत्थरका चूरा बारीक पिसा हुआ—	६ हिस्सा
चूना बारीक पिसा हुआ—	३ हिस्सा
सोडा सिलिकेट—	१० हिस्सा

काममें लाया जानेवाला टर्की रेड आयल (Turkey Red Oil) इसी तेलसे बनता है। यह तेल अलीजेरीन (Alizarine) रंगोंके रंगने तथा पक्के रंगके कपड़े रँगनेमें बहुतायतसे काममें लाया जाता है। रेंडीके तेलसे मुलायम साबुन भी बनाया जाता है। यह साबुन भी ज्यादातर वस्त्रव्यवसायमें ही खपता है। नहाने-धोनेके साबुनोंमें रेंडीका तेल काफी तादादमें व्यवहार किया जाता है।

इन तीनोंको मिलाकर और आटेकी तरह गूँधकर पेंसिलें बनायी जाती हैं।

नरम पेंसिल नंबर २—इसकी मिलावट इस तरह है—

बारीक पिसा हुआ सलेटीपत्थर—१२ पौंड
पिसा हुआ चूना— १ पौंड
पलास्टर आफ पेरिस— १ पौंड

लकड़ीके टबमें इन चीज़ोंको डालकर पानीके साथ खूब मिलायें। और इस तरह हल करें कि गाढ़ी सी लेई बन जाय। इसे आटेकी तरह टबमें गूँध लिया जावे, फिर इस सारे मसालेसे पेंसिल बड़ी आसानीसे तैयार की जा सकती हैं।

तीसरा तरीका

इसके अतिरिक्त एक तीसरा तरीका और भी है जिससे बिल्कुल नरम पेंसिल सफेद रंगकी बन सकती है, जिसके मसालेमें सलेटीपत्थर बिल्कुल नहीं डाला जाता। इसका मसाला इस तरह है—

(३) खड़िया मिट्टी—१० पौंड + सोहागा १ पौंड
(४) खड़िया मिट्टी— ७ पौंड + सज्जी १ पौंड
(५) खड़िया मिट्टी— ७ पौंड + सोडा १ पौंड

खड़िया मिट्टीको बारीक पीसकर १०० नम्बरकी छलनीसे जिसमें प्रत्येक वर्गइंचमें १०० छेद हों छान लें, इसके बाद दोनों चीजोंको मिलाकर पानीके साथ आटेकी तरह खूब गूँध लेना चाहिये। बस पेंसिलका मसाला तैयार हो जायगा। फिर इससे पेंसिलें तैयार कर लें।

पेंसिल बनानेका तरीका

पेंसिल बनानेका तरीका बिल्कुल ही आसान है। आपने सिवइयाँ बनानेकी मशीनें तो जरूर ही देखी होंगी। प्रायः हर घरमें इसे काममें लाया जाता है। बस पेंसिल बनानेका तरीका भी वही है जो सिवइयाँ बनानेका है।

पेंसिल बनानेकी मशीन और उसका उपयोग

इस कामके लिये इसी नमूनेकी मशीन बनवायी जाती है। सिवइयाँ बनानेवाली मशीनकी छलनी पतली चादरकी होती है और सूराख बारीक होते हैं। और इसकी छलनी दो या तीन सूत मोटी पलेटकी होती है और सूराख भी मोटे होते हैं। सूराख बड़ी ही सफाई (सावधानी) से बनवाने चाहिये; जिससे कि पेंसिल साफ तैयार हो सके।

पेंसिलका मसाला सख्त आटेकी तरह गूँधें। इसे मशीनमें डालकर दबानेसे सिवइयोंकी तरह पेंसिलें निकलेंगी। ज्यों-ज्यों पेंसिलें निकलती आवें, उन्हें नालीदार तख्तेपर रखते जावें। और जितने लम्बे आकारका बनाना हो गीली ही काटकर बनालें। नालीदार तख्तेपर रखनेसे पेंसिल टेढ़ी नहीं होती। इस कामके लिये नालीदार तख्ते भी खास तौरपर बनवाने चाहिएँ। जब पेंसिलें सूख जायें भट्टीमें पकालें।

—प्रेम प्रचारकसे

२. साबुन बनाना

यों तो साबुन बनानेके सैकड़ों ही नुसखे हैं। पर एकाध तरीके बड़े ही सरल हैं। यहाँ हम एक ऐसे ही तरीकेको बतलाते हैं।

नुसखा

नारियलका तेल—३ हिस्सा
महुएका तेल—३ हिस्सा
सोडा कास्टिक—१ हिस्सा
पानी—४ हिस्सा

विधि

नारियल तथा महुएके तेलोंमेंसे हर एकको पहले हलका गरम कर लो और फिर आपसमें इन्हें मिला दो। इतनी देरमें कास्टिक सोडा पानीमें घोलकर इस पानीको ठंडा होने दो। जब तेल और सोडेके पानीकी गरमी सम दर्जेकी हो जाए तो सोडेके पानीको तेलमें बारीक धार बाँधकर धीरे-धीरे डालते जाओ और बराबर हिलाते जाओ। जब सारा पानी चुक जाय तो कुछ देर और हिलाते रहो। एक गाढ़ी-सी लेई बन जायगी।

टिकियाँ बनाना

इसको किसी साँचे या और बरतनमें डालकर उसके ऊपर और आसपास बोरी डाल दो। दूसरे रोज साबुन जमकर सख्त हो जायगा। इसकी टिकिया काट लो।

यह साबुन आपको रुपयेका चार सेर पड़ेगा। कपड़े या हाथ धोनेके वास्ते यह साबुन उपयुक्त है। अगर इसी साबुनमें जरा रंग और कोई खुशबू डाल दी जाय तो नहाने-धोनेके काममें भी आ सकता है।

३. बालोंका तेल (हेयर आयल)

बाजारी और घरेलू तेल

आजकल जो तेल बाजारमें मिलते हैं वह जियादातर White oil या साफ किये हुए मिट्टीके तेलसे तैयार किये जाते हैं।

(१) सरसोंका तेल

सरसोंकी कच्ची घानीका तेल बालोंके लिये लाभदायक हैं परन्तु इसकी बू और रंग अच्छे नहीं होते। इसलिये हम लोग इसको आमतौरपर काममें नहीं लाना चाहते।

(२) तिल्ली और नारियलका तेल

हाँ, सरदीके मौसिममें धोयी हुई तिल्लीका तेल और गरमीमें नारियलका तेल इस्तेमाल कर सकते हैं। क्योंकि सरदीके मौसिममें नारियलका तेल जम जाता है।

रंग-रूप बदलना और खुशबू देना

अगर इनमेंसे किसी तेलको Fullers'earth (पीली मिट्टी) या Kieselguhr से गरम करके फिर इसमेंसे छान लिया जाये तो तेलका रंग बहुत हलका रह जाता है। या इसको रतनजोतसे गुलाबी रंग और नीमके पत्तोंसे आँवलेकी तरह सब्जरंग दिया जा सकता है। बादमें जरा-सी कोई खुशबू डाल दी जावे तो रोजाना लगानेके लिये काफी अच्छा तेल बन जाता है।

यह तेल बाजारी तेलोंकी तरह बहुत चमकीला या पतला न होगा, परन्तु बालों और शरीरके चमड़ेके लिये उन तेलोंसे बहुत ही बढ़िया है।

४. स्याही बनाना

बाजारी स्याही

आमतौरपर लिखनेकी नीली स्याही जो आपको मिलती है। वह सिर्फ Methyline blue नीली या Aniline blue और जरा-सी गोंदकी मिलावटसे तैयार की जाती है। आप भी बाजारसे इनमेंसे कोई चीज़ खरीदकर गरम पानीमें हल कर लें और जरा-सा गोंद डाल दें तो यह एक निहायत उम्दा स्याही बन जायगी।

बढ़िया स्याहीका नुसखा

अगर आप बेहतर स्याही तैयार करना चाहें तो उसका नुसखा यह है—

माजू—५० हिस्सा
हीरा कसीस—१० हिस्सा
गोंद—३ हिस्सा
अनीलीनब्लू—४ हिस्सा
पानी—१००० हिस्सा
कारबोलिक एसिड—१ हिस्सा

विधि

पहले माजुओंको तोड़कर छोटे-छोटे टुकड़े कर लो। फिर उनको एक लोहे या मिट्टीके बरतनमें डालकर पानीमें भिगो दो। दस-बारह रोज उनको पानीमें ही पड़ा रहने दो। जो पानी उड़ जाय उसकी बजाय और पानी डालते रहो। फिर उनको उसी पानीमें उबालकर छान लो। एक-दो दफा उन्हीं माजुओंको और पानीमें उबालकर छान लो। अब उन माजुओंके पानी में हीराकसीसका घुला हुआ पानी मिला दो। गोंदको थोड़ेसे पानीमें डालकर एक दिन रहने दो। यह घुल जायेगा। इसको भी पहले पानीमें मिला दो। अब अनीलीन ब्लूको कुछ पानीमें गरम करके घोल लो। और इसको भी बाकी पानीके साथ मिला दो। कुल पानीकी मिकदार १००० हिस्सा होनी चाहिये। बादमें एक हिस्सा कारबोलिक एसिड डालकर बोतलमें भरकर दो-तीन रोज रहने दो। अब कपड़ेमेंसे छान लो। बहुत अच्छी स्याही तैयार हो जायगी।

बहुत जल्दी बनानेकी विधि

अगर बहुत जल्द स्याहीकी जरूरत हो तो बजाय माजुओंको पानीमें दस-बारह रोज भिगोनेके सीधा ही

पानीमें उबाल लो। यद्यपि इस हालतमें माजुओंका पूरा रस नहीं निकल सकेगा। शेष विधि वही है जो ऊपर लिखी जा चुकी है।

[माजुओंकी जगह बहेड़े भी काममें आ सकते हैं। इन्हें ५० की जगह ७५ भाग लेना चाहिये। बहेड़े माजूसे कहीं सस्ते हैं।

—रा. गौ.]

५. कपड़े धोना

कपड़े जल्द खराब क्यों होते हैं ?

मेरे विचारसे हम लोगोंका सबसे अधिक व्यय कपड़ों-पर होता है। चूंकि हम कपड़ोंको सावधानीसे नहीं रखते, वह जल्दी खराब हो जाते हैं।

कपड़े धोनेका नुसखा

कपड़े धोनेका उत्तम नुसखा यह है—

साबुन—६ हिस्सा

एमोनिया—४ हिस्सा

ग्लेसरीन—२ हिस्सा

मेथलेटेड स्पिरिट—४ हिस्सा

पानी—१०० हिस्सा

विधि

लक्स, संलाइट या जल्लू आदि या स्वदेशी साबुन लेकर उसके चाकू या छुरीसे पतले-पतले छिलके कर लो। फिर पानी एक चिलमचीमें डालकर गरम करो और साबुनको उस पानीमें खूब हल कर लो। अब आगसे उतारकर ठंढा होने दो। बादमें शेष चीजें डालकर एक कार्कवाली बोतलमें रख दो और जरूरतके वक्त काम में ले आओ।

यदि बाकीकी चीजें न मिल सकें तो सिर्फ साबुन और एमोनिया ही काफी है। यह रेशमी और ऊनी कपड़े धोनेमें मुफीद साबित हुआ है।

अपने हाथसे कपड़े धोनेमें लाभ

शायद हम धोबीकी मजूरीकी परवाह न करें, लेकिन लापरवाहीसे धोनेसे मुलायम और बारीक कपड़े बहुत जल्द खराब हो जाते हैं और उनकी जिन्दगी शायद आधी या एक तिहाई रह जाती है और वह जल्दी फट जाते हैं।

ड्राई क्लीनिंग (बिना पानीकी धुलाई)

रेशमी निकटाइयाँ पेटरोलमें डालकर मलनेसे बिल्कुल साफ हो जाती हैं। अपने गरम सूट आप पेटरोलसे आसानीसे साफ कर सकते हैं। ब्रुश बेहतर इस्तेमाल करना चाहिये और इसको एक तरफ ही रगड़ना चाहिये वरना मैल आसानीसे दूर नहीं होगा।

६—फर्नीचरको पालिश करना

पालिश तैयार करना

हमारा फर्नीचर—मेज, कुर्सी वगैरह—असावधानी और लापरवाहीके कारण जल्दी गंदा हो जाता है। अगर एक बोतल भर मैथलेटेड स्प्रिट लेकर उसमें लगभग आध पाव लाखका दाना डालकर धूपमें रख दें तो कुछ ही घंटोंके भीतर लाख घुल जायगी। यदि इसमें जरा-सी मुस्तगी और सन्दरस डाल दी जाय तो पालिशमें अच्छी चमक आ जाती है।

पालिश करनेकी विधि

जिस मेज या कुर्सीको पालिश करना हो पहले लकड़ी-के बारीक रेगमालसे इसकी सतह साफ कर लो। फिर एक रुईकी गद्दीमें इस स्प्रिट और लाखकी मिलावट (घोल) को डालकर इसपर लगाते जाओ, फौरन चमक आ जायगी। यद्यपि पालिशके काममें जरा मेहनत और अनुभवकी जरूरत है; तो भी दो-तीन बार करनेसे हम अपना फर्नीचर काफी साफ-सुथरा रख सकते हैं।

—रोशनीसे

आयुर्वेद-विज्ञान

त्रिदोषमीमांसापर किये गये आक्षेपोंका उत्तर

(ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

त्रिदोष-मीमांसा नामक पुस्तकको प्रकाशित किये आज सात मास बीत गये। उस समय इसकी एक-सौसे अधिक कापियाँ बड़े-बड़े आयुर्वेद-ज्ञाताओं तथा पत्रसम्पादकोंकी सेवामें भेजी गयीं। शोक! एक दो व्यक्तियोंके सिवाय—पुस्तक अच्छी है या बुरी—किसीने कोई सम्मति नहीं दी।

पत्र-सम्पादकोंको पुस्तक समालोचनार्थ गयी थीं, परन्तु वैद्यक पत्र क्या, साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ भी-समालोचना तो दूर रही-पुस्तक-प्राप्तिकी सूचनातक न दे चुप ही रहे हैं। क्या यह कृत्य सम्पादकीय नियमके विपरीत नहीं? खैर! त्रिदोष-मीमांसापर सबसे पूर्व यदि किसीने कुछ लिखा है तो वह हैं अनुभूत योगमालाके सम्पादक श्रीविश्वेश्वर दयालुजी वैद्यराज। इनके पश्चात् कुछ लिखनेका साहस किया है कविराज उपेन्द्रनाथदास, काव्य-व्याकरण-सांख्यतीर्थ, सांख्य-सागर, भिषगाचार्य, प्रोफेसर आयुर्वैदिक यूनान तिब्बिया कालेज देहलीने। इन दोनों सज्जनोंने जो कुछ लिखा है उसे वास्तविक विचारपूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि इन्होंने पुस्तकके मूल-विषयको स्पर्शतक नहीं किया। इन दोनोंने पुस्तकके मुखबन्धको ही आलोच्य विषय बनाया है और इतनेका ही आपने चैलेंज देकर उत्तर माँगा है। हम यथाशक्य आपके आक्षेपोंका उत्तर देते हैं।

आयुर्वेद-कालपर विचार

हमने त्रिदोष-मीमांसाके आरम्भमें 'आयुर्वेदका संक्षिप्त परिचय' नामक शीर्षक देकर उसमें आयुर्वेदके आरम्भिक और माध्यमिक कालपर कुछ विचार किया है। वहाँ आयुर्वेदका कब प्रादुर्भाव हुआ? इसपर हमने अपनी कोई सम्मति नहीं दी। हाँ, आयुर्वेदका इस भारत-भूमिपर कब विकास हुआ? इसके मध्य-कालीन इतिहासपर कुछ प्रकाश डाला है, और वहाँ प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया है कि आत्रेय या पुनर्वसुजीका समय लगभग २५०० वर्षके निकलता है। आत्रेयसंहिताके रचियता कलियुगमें ही हुए। इस बातके भी एक-दो प्रमाण हारीतसंहितासे दिये हैं; परन्तु, हमारे योग्य आक्षेपकोंको आत्रेयजीका कलियुगमें होना स्वीकृत नहीं।*

कविराज उपेन्द्रनाथदासजी तो त्रिदोष-सिद्धान्त वा आयुर्वेदोत्पत्ति-कालपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझते। उन्हें तो हमारे विचार करनेके कारण महान् आश्चर्य हो रहा है, और चकित, स्तम्भित, आश्चर्यसागरमें गोते लगाते हुए कह रहे हैं "अहो रे! गरीयान् कालः समायातो योऽश्रुतमपि श्रावयति तथाऽदृष्टमपि दर्शयति।"

आपकी दृष्टिमें मैंने जो कुछ लिखा है, वह अनहोनी बात है। और मैं ऐसा लिखकर लोगोंको भ्रममें डाल रहा हूँ। इस प्रकार जल्पना करते हुए लेखारम्भमें ही आपने, मुझे इश्तिहारी संन्यासी, वैज्ञानिकचञ्चु आदि उपाधियोंसे अलंकृत किया है और साथ ही आप मुझे उपदेश दे रहे हैं कि मैं किसी सद्गुरुके पास चरक सुश्रुत पढ़ूँ, तब कहीं जाकर मुझे त्रिदोष-सिद्धान्त तथा आयुर्वेदके कालका ठीक ज्ञान हो सकता है।

दूसरी ओर आयुर्वेदके काल-निर्णयपर वैद्यराज विश्वेश्वर दयालुजीकी भी यही सम्मति है कि काल-निर्णयके लिये

---

* स्वयं कलियुगका काल झगड़ेमें हैं। यदि कलियुग १२०० वर्षोंका ही माना जाय तो २५०० वर्षका समय ही द्वापरमें चला जायगा। कालका विचार बड़े झगड़ेका प्रश्न है और त्रिदोषकी समस्यासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता।—रा० गौ०

संस्कृत-साहित्यका अवलोकन करूँ, मानो संस्कृत साहित्य इतिहासकी पुस्तकें हैं। सम्भव है संस्कृत-साहित्यमें आत्रेय आदि ऋषियोंका और आयुर्वेद-काल ढूँढनेमें मुझे कष्ट न हो, इसलिये आपने मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण आदिसे कुछ प्रमाण उद्धृत कर काल-ज्ञान कराया है। आपने इन प्रमाणोंके आधारपर यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि प्रथम तो भरद्वाज आत्रेयादि ऋषि गर्भज सन्तान नहीं बल्कि—**"अजान हवे पृश्नीं तपस्यमानाद् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवन् तदृषीणांमृषित्वम्।** अर्थात्—ऋषि ब्रह्माकी तपःशक्तिसे स्वयं—बिना गर्भके—उत्पन्न हुए" ऋषिगर्भज सन्तान नहीं। बल्कि, अमैथुनी सृष्टिके आदि मानव प्राणी हैं। बलिहारी है इस बुद्धि विचार की। जो व्यक्ति विज्ञानके इस प्रबल आलोकमें ब्रह्मा नामक मानवी सृष्टिके आदि पुरुषको कमल (वृक्षयोनि) से उत्पन्न कहते हैं तथा ऋषियोंको मानस सन्तान बताते हैं, वह क्या प्राकृतिक नियमोंपर कुठाराघात नहीं करते? क्या इस समय इस प्रकारकी अप्राकृतिक घटनाका कोई प्रमाण अपने पास रखते हैं?

वैद्यराजजीको स्मरण रखना चाहिये कि अब वह समय नहीं कि ऐसी अनर्गल, असम्बद्ध बातोंपर लोग आँख मींचकर विश्वास कर लें। अब वह समय है जिसमें किसी बातको कहनेपर सिद्ध करनेके लिये क्रमयुक्त, सुसंगत और प्रत्यक्ष प्रमाण माँगा जाता है। यदि आप ब्रह्मा नामक मानवी सृष्टिके आदि पुरुषको कमल नाभिसे तथा ऋषियोंको उस ब्रह्माकी मानस सन्तान सिद्ध करना चाहते हैं तो युक्ति-संगत इस बातको बताइये कि सृष्टिके आरम्भमें बिना स्त्रीपुरुष-समागमके कमल नामक वनस्पतिकी नाभिसे ब्रह्मा नामक व्यक्तिका मानव शरीर किस क्रमसे बढ़कर नाभिसे बाहर हुआ, और वह बाल्यसे युवा हुआ कि युवा रूपमें ही प्रादुर्भूत हुआ? तथा उस ब्रह्मासे संकल्पात्मक ऋषि सन्तानें किस क्रमसे, किस मार्गसे सम्भूत हुईं? और उनका भी विवर्द्धन हुआ, या पूर्णवयस्क हो कुम्हारके पात्रवत् गढ़े-गढ़ाये तय्यार होकर संकल्पसे ही प्रादुर्भूत हो गये?

यदि ब्रह्मानामसे कोई व्यक्ति शरीरधारी नहीं हुआ हो और न उसकी तपःशक्तिसे ऋषि नामक संकल्पात्मक सन्तानोंका यहां अभिप्राय हो, प्रत्युत श्रीयुक्त गौड़जीके मतानुसार इस पौराणिक सृष्टि रचनाको भौतिक घटनाओं तथा अन्तरिक्षमें विद्यमान ग्रहोंकी ओर संकेत माना जाय तो ऋषियोंकी उत्पत्ति और उनकेद्वारा ग्रन्थोंके रचनाकी संगति नहीं बैठती—इसे भी कहीं लगाना चाहिये।

वैद्यराज जी ब्रह्मासे मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता आदि दस संकल्पात्मक सन्तानें होना बताते हैं। इन मानस सन्तानोंसे फिर आगे मानस सन्तान चली हो ऐसा वैद्यराज जी नहीं कहते। प्रत्युत यह मानते हैं कि उनसे आगे गर्भज सन्तानोंका क्रम चला। आप लिखते हैं "अत्रेरपत्यम् आत्रेयम्" अर्थात्—अत्रि ऋषिसे जो गर्भज सन्तान हुई वह आत्रेय कहलायी। यह आत्रेय जी कब हुए? इसको आप निम्नलिखित हिसाबसे बतलाते हैं यथाः—"आत्रेय नामक कई ऋषि हुए हैं, यह आयुर्वेदका सृष्टिकर्त्ता (आत्रेय) कब पैदा हुआ? ५,८,९,१०,११, १२,१३,१४, इन सभी मन्वन्तरोंमें आत्रेयका होना प्रमाणित है। इस समय सातवाँ वैवश्वत मन्वन्तर चल रहा है, तो हमारा आत्रेय इससे प्रथम पाँचवें रैवत मन्वन्तरमें पैदा हुआ होगा, इसमें भी कोई तर्कको स्थान नहीं।" क्या खूब कहा! धन्य हो, वैद्यराज जी! एक तो आप कहते हैं कि "आत्रेय पाँचवें रैवत मन्वन्तरमें पैदा हुआ होगा"—सन्दिग्ध भूत-कालका प्रयोग—फिर कहते हैं तर्कणाके लिये कोई स्थान नहीं, इसीका नाम है अकाट्य युक्ति। इससे आगे आप लिखते हैं "चतुर्युगके ७१बार व्यतीत हो जानेके समयको मन्वन्तर कहते हैं, इस प्रकार एक मन्वन्तर ३०, ८५, ७१, ४२८ वर्ष ६ मास २५ दिन ४२ घड़ीका होता है। आत्रेय पाँचवें मन्वन्तरमें हुए, इस गणनासे २ मन्वन्तर प्रथम होनेवाले आत्रेयको—इस समय जब कि यह २८वाँ कलियुग चल रहा है—कितने दिन हुए, हिसाब लगानेसे ७५,१९,३१,८६५ वर्ष ७ मासके करीब दिन हुए मिलते हैं। (अर्थात् आपके हिसाबसे आत्रेय जी को हुए ७५ करोड़ १९ लाख वर्षसे ऊपर हो गये, इसीलिये आप मेरी ओर संकेत करके लिखते हैं) आत्रेयको २५०० वर्षपूर्व बतलानेवाले जरा समझसे काम लें।"

वैद्यराज जीने खूब ही समझसे काम लिया है। ज्ञात होता है पौराणिक पंडितोंने इन मन्वन्तरोंके घड़ी-घड़ी पल-

पल तककी ठीक-ठीक गणनाके लिये अन्तरिक्षमें बही देकर कोई पक्का गणितज्ञ बिठा रखा है। जो आजका नहीं इन मन्वन्तरोंसे पहलेका बैठा-बैठा घड़ी-घड़ी पल-पल के समयका हिसाब लिखता रहता है और जब वह एक बही भर जाती है तो इन पौराणिक पंडितोंके पास भेज देता है, उधर दूसरी लगा लेता है। इन पौराणिक पंडितोंकी बहियाँ हैं यह पुराण, जिनमें अंकित है कि इस सृष्टिमें कौन कब हुआ? कैसे हुआ? बस यह पुराणरूपी बहियाँ जो आपके पास वहाँसे आयी हैं, दिखाकर बिना साक्षीके ही आप डिग्री हासिल कर लेते हैं।

परन्तु, वैद्यराज जी! अब वह समय गया, जब कि बिना साक्षीके ही—आपके कथनपर—डिगरियाँ हो जाती थीं, अब बिना साक्षीके डिग्री प्राप्त करना सहल नहीं, प्रत्युत असम्भव है।

कोई व्यक्ति यह न समझ ले कि हम ऋषियोंके वा आयुर्वेदोत्पत्तिके समयको नहीं मानते, यह बात नहीं। हम मानते हैं किन्तु, साक्षीयुक्त। हमारे और दकियानूसी विचारकोंमें केवल इतना अन्तर है कि, वह पौराणिक गाथाओं, आप्तवाक्योंको बिना किसी साक्षीके—ऋषि वाक्य समझकर—स्वतः प्रमाण मानते हैं हम इसे बिना साक्षीके परतः प्रमाण मानते हैं। आप कहेंगे साक्षी क्या? और कैसी? सुनिये!

सृष्टिको बने कितना समय हुआ? कैसे बनी? और इसपर सजीव सृष्टिका प्रादुर्भाव कैसे हुआ? कब हुआ? तथा मानव-वंशका आरम्भ किनसे हुआ कैसे हुआ? इत्यादि बातोंको जाननेके लिये हमें इस पृथ्वीपर पृथ्वी-गर्भमें पुरातत्व कोई-न-कोई प्रमाण अवश्य मिलने चाहिये। इस बातपर विश्वास रखकर जिन व्यक्तियोंने खोजा, उन्हें इस भूमण्डलपर उक्त बातोंके सैकड़ों क्या हजारों प्रमाण प्राप्त हुए। भूरचनाशास्त्रने अपनी विधिसे एक प्रकारकी साक्षी दी तो भूगर्भशास्त्रने दूसरे प्रकारकी साक्षी दी, पुरातत्वने तीसरे ही प्रकारकी साक्षियाँ उपस्थित कीं। इसपर विशेषता यह कि एककी साक्षीका दूसरे शास्त्रोंने भी काफी अनुमोदन किया। पर पुराणोंको कथितकाल और व्यक्तियोंके होनेकी साक्षीका आजतक एक भी प्रमाण कहींसे नहीं मिला है।

आधुनिक प्रयोगवादपूर्ण शास्त्रोंकी प्रबल साक्षियोंसे सिद्ध होता है कि इस पृथ्वीकी आयु लगभग दो अरब वर्षके है। और इसपर जीवनका प्रादुर्भाव कोई एक अरब वर्ष व्यतीत होनेके बाद हुआ। और उन जीवोंके विकासकालमें बहुत लम्बा समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् आजसे ३६ लाख वर्षके लगभग हुए जब मानवी सृष्टिके विकासका आरम्भ हुआ। और उसके लाखों वर्षोंके पश्चात् वन-नरोंकी सृष्टिका विकास हुआ।

जिस समय वन-मानवी सृष्टिका विकास हो रहा था उस समय इस भारतके हिमालय नामक पर्व्वतमालाका कोई चिह्नतक न था। उस समय हिमालय कहीं समुद्रके गर्भमें विवर्द्धित हो रहा था। उस समय इस भारतकी भूमिका कोई स्थान जलसे बाहर था तो वह एक मात्र दक्षिणका भाग प्लेटोनिक या आग्नेय चट्टानोंका था। जो इस समय मैसूर रियासत और कोल्हापुर स्टेट आदिका है। आजसे कोई ३० लाख वर्ष पूर्व इस भारत और चीनकी भूमिपर भयंकर विप्लवकारी भूकम्पों, और भूउद्गारोंकी घटना घटित हुई जो लगातार कुछ कालतक आगे भयंकर विप्लवकारी दौरोंपर दौरे होते रहे। इस पृथ्वीके उद्गार और कम्पनोंके कारण इस भारतकी और चीनकी ओरकी भूमि जो समुद्र गर्भमें थी—दो ओरके प्रकम्पित दबावके झटकोंमें दबकर ऊपर उठने लगी और कई बारमें उसी प्रकार मेदरूप पृथ्वी पिचपिचाकर ऊपर आ गयी जैसे किसी भारी दबावमें पड़कर मिट्टीका गीला लोंदा प्रेसके साँचेमेंसे उसके आस-पास निकल पड़ता है। हिमालय समुद्र गर्भसे निकला है, इस बातका प्रमाण वह स्वयम् अपनी रचनासे तथा उसकी चोटीपर मिलनेवाले भीमकाय जल-जन्तुओंके अस्थिपञ्जरोंसे मिलता है।

हिमालयके जन्मके लाखों वर्ष बाद ही सिवालक या शिवालयकी रचना हुई। इसकी रचनाका काल २०–२२ लाख वर्षके लगभग कूता जाता है। इस शिवालयमें अनेक प्राचीन प्राणियोंके अस्थिपञ्जर प्राप्त हुए हैं, उनमें वन-मानवोंके अस्थिपञ्जर भी मिले हैं। उन अस्थिपञ्जरों और आधुनिक मनुष्यके अस्थिपञ्जरोंमें महद् अन्तर है। आधुनिक सभ्यताभिमानी मानव-प्राणीके अस्थिपञ्जरोंसे उनमें

काफी अन्तर है। परन्तु वानरोंके अस्थिपञ्जरोंसे भी वह भिन्न हैं। विकासशास्त्रियोंका कथन है कि इन्हीं प्राचीन वन्य मानवोंसे आधुनिक युगके मनुष्योंका विकास हुआ है। जिसका समय २० लाख वर्षके लगभग ही निकलता है। *

वैद्यराजजी पुराणोंका प्रमाण देकर आयुर्वेदका समय कमसे कम १३ करोड़ वर्ष निकालते हैं और आप यही समय भरद्वाज ऋषिके होनेका भी निश्चित करते हैं। क्योंकि आपके मतसे यही रामचन्द्रजीके होनेका समय निकलता है।

कृपया वैद्यराजजी यह तो बतलावें कि आपके पास इतने लम्बे समयकी साक्षियाँ कौन-कौन-सी हैं? क्या केवल पौराणिक गाथाएँ या और कुछ भी?

चरकसंहिताको कहते हैं कि आत्रेयसंहिताका प्रतिसंस्कृतरूप है। उसके आरम्भमें लिखा है कि—'तदा भूतेष्वनुक्रोशम् पुरस्कृत्यं महर्षयः। समेतः पुण्यकर्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे।'

अर्थात्—प्राणियोंपर दया करके पुण्यकर्मा महर्षिगण हिमालय पर्व्वतके निकट एक सुन्दर स्थानमें एकत्रित हुए।

क्यों वैद्यराजजी! किसी साक्षीसे सिद्ध कर सकते हैं कि आजसे १२ करोड़ वर्ष पूर्व इस पृथ्वीपर हिमालयका चिह्न था?

और देखिये! वैद्यराजजी चरकजीको शेषका अवतार मानते हैं और कहते हैं कि यह सतयुगमें अवतरित हुए। इनका होना मत्स्य और वाराह अवतारके समयके समीप है जिसको हुए भी करोड़ों वर्ष हो गये। हम पूछते हैं कि इस बातकी साक्षी क्या? कि वह शेष भगवानके अवतार थे, और आजसे करोड़ों वर्ष पूर्व हुए।

इसके विपरीत हमारे पास काफी प्रमाण है कि आत्रेयजी तथा चरकजी इसी कलियुगमें हुए। यही नहीं प्रत्युत् बौद्धके समकालीन इनका समय निकलता है और प्रमाणोंको छोड़कर चरकसंहितामें ही इसका प्रमाण लीजिये।

चरकसंहिताके आरम्भमें अनेक ऋषियोंके नाम आये हैं जिन्होंने एकत्र होकर जनताके कल्याणार्थ आयुर्वेदपर विचार किया—उन ऋषियोंमेंसे भिक्षु, आत्रेय, अश्वरप्य (?), वैजवापि, मैमतायिन नामक ऋषि भी हैं। इस नामके ऋषि हमारे न तो किसी ब्राह्मण ग्रंथमें आये हैं न किसी और प्राचीन ग्रंथमें। हाँ, इनका कुछ-कुछ जीवन-चरित्र और इतिहास बौद्ध-ग्रंथोंमें पाया जाता है और यह बौद्ध संन्यासी या ऋषि थे इसका भी प्रमाण उन्हींके ग्रन्थोंमें मिलता है। इस प्रबल साक्षीकी विद्यमानतामें यह कभी माना नहीं जा सकता कि चरकसंहिताकी रचना आजसे करोड़ों वर्ष पुरानी है। लेखनकलाका आविष्कार जब लाखों वर्ष पूर्वका नहीं तथा सुसम्बद्ध विचारयुक्त भाषाका उच्चारण भी अति प्राचीन सिद्ध नहीं होता तो चरकसंहिता किस प्रकार इतनी प्राचीन है, कोई सयुक्तिक प्रमाण तो दीजिये?

कई व्यक्ति आक्षेप कर सकते हैं कि तुम बौद्ध ग्रंथोंको तो प्रमाण मानते हो पर पुराणोंको प्रमाण क्यों नहीं मानते? इसका उत्तर सुनिये।

पुराणोंमें जो इतिहास भाग दिया है अनुसन्धान करनेपर उसकी साक्षी इस भूमण्डलपर आजतक कोई नहीं मिलती। पुराणोंकी ही साक्षीको साक्षी नहीं माना जा सकता। इसके विपरीत बौद्धग्रंथोंमें दिये प्रमाणोंकी साक्षीके इस समयतक मिले अनेक शिलालेख, ताम्रपत्र स्तूपोंपर दिये लेख आदि हैं। इसीलिये हम क्या समस्त इतिहासज्ञ पुराणोंकी अपेक्षा इन ग्रंथोंके इतिहासको महत्वकी दृष्टिसे देखते हैं और इनको प्रमाणभूत मानते हैं।

पञ्च-तत्व-वाद

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह शास्त्रकथित पांच महाभूत—जो पञ्चतत्वोंके नामसे भी विख्यात हैं—जिनसे वात, पित्त, कफ नामक तीन दोषोंकी उत्पत्ति बतायी जाती है—सृष्टिके मूलभूत भी हैं या नहीं? हमने त्रिदोषमीमांसाके आरम्भमें प्रसंगवश इसकी काफी चर्चा की है और वहाँ हमने अनेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया है कि पञ्चमहाभूत इस सृष्टिके या इस शरीरके मूल कारणरूप तत्व नहीं, न इनका त्रिदोषसे ही कोई सम्बन्ध है। आक्षेपकर्ताओंको चाहिये तो यह था कि जिस तरह युक्तियों और प्रमाणोंसे हमने इसे असिद्ध किया था इसी प्रकार वह भी प्रबल

* ये अंक भी अटकलमात्र हैं। सतत वर्द्धमान विज्ञान इन अंकोंमें समय-समयपर परिवर्तन करता चलता है। —रा० गौ०

तर्क और प्रमाणोंसे इसे पुनः सिद्ध करनेकी चेष्टा करते और प्राचीन पञ्चतत्ववादकी स्थितिको दृढ़ बनाते यह तो वह कर नहीं सके। प्रत्युत उन्होंने असम्बद्ध अनर्गल लेख दिया है। पाठकोंके विचारार्थ उसका आंशिक उद्धरण देते हैं।

कविराज उपेन्द्रनाथदास काव्य, व्याकरण, सांख्यतीर्थ; सांख्यसागरजी महाराज आयुर्वेद संदेश आषाढ़के 'सन्निपातांकमें, पंचतत्व और त्रिदोषकी स्थितिको दृढ़ करनेके अर्थ क्या लिखते हैं, देखिये—

"जड़-विज्ञानकी गन्धसे मतिभ्रम हो जानेसे जो लोग अपनेको सर्वज्ञ समझकर वैज्ञानिक नामधारियोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनि करना ही विद्वत्ता समझते हैं, वे कहते हैं, कि प्राचीनकालमें यन्त्रादि नहीं थे, इसीलिये आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी इन पाँच चीजोंको भूत कहते थे, और इन पाँचोंसे जगत्की उत्पत्ति बतलायी जाती थी, आयुर्वेदमें भी वायुको वात, जलको श्लेष्मा, और अग्निको पित्त कल्पित करके इन्हींसे सारे रोगोंकी उत्पत्तिकी कल्पना की गयी थी। वैज्ञानिक यन्त्रोंकी कसौटी तो उनके पास थी ही नहीं, (यदि थी, तो उसके प्रमाण देने चाहिये थे) इसीलिये कोई अधिक खा गया, वह भी सम्भवतः पराया था, क्योंकि ऋषि लोग तो संन्यासी थे, इसीलिये धोखा देकर पराया खाना ही अधिक खा जाते थे। अब पेटमें दर्द अध्मान आदि हुआ 'ऊर्ध्वंगच्छन्तिढेल्कारा अधोगच्छन्ति वायवः' शुरू हुआ, तो उन लोगोंने समझ लिया कि वायु एक दोष है जो अध्मान शूल आदि करता है, साथ ही देखा कि वायुसे पेड़की पत्ती हिलती है, तो उन्होंने भी कल्पना कर ली कि शरीरके अन्दर जितने पदार्थ हिलते-चलते हैं वह भी वायुसे ही चलते होंगे, उनके पास वातनाड़ी (Nerve's) वैज्ञानिक मतमें स्नायुसूत्रके देखनेका साधन तो था नहीं, (यदि था तो आपने क्यों न बतलाया? आपही इसकी सचाईको वैद्यसंसारके सामने क्यों नहीं रखते? ह०) फिर कल्पना लगाकर वे बेचारे क्या कर सकते थे? वैसे ही किसीने न्यौता खाकर उलटी की, किसीने न्यौता न मिलनेसे भूखा रहकर उलटी की, दोनोंकी उलटीसे हरा-हरा पित्त निकला, उन लोगोंने कल्पना की, कि यह अब आमाशयसे निकलता है, खाना भी आमाशयमें जाकर पचता है, यही खानेको पचानेवाला अग्नि वा पित्त होगा, (पाठक देखते जाइये, यह शास्त्रपक्षमें पुष्टिका तर्क चल रहा है। ह०) और किसीने न्यौता खाकर जब बताया कि मेरा खाना पचनेके वक्त आमाशयमें, छातीमें गलेमें आग जैसी जलन होती है, तो कल्पना और भी पक्की हो गयी, कि अग्निभूत ही पित्तका नाम धारण करके, शरीरके अन्दर रहकर शरीरको गर्म रखता है, खाना पकाता है और जब विकृत हो जाता है, तो अनेक रोग भी पैदा करता होगा। अब इन कल्पनावालोंने सोचा, कि केवल आगसे तो भड़भूँजा चना, मक्का आदिको भून सकता है, किन्तु दाल, रोटी आदिको पकाना हो तो बिना जलके जब कोई भी महाराज नहीं पका सकता, तो आमाशयमें जल भी होना चाहिये [बलिहारी है कविराज जीकी बुद्धिकी] किन्तु उल्टी करके देखा कि चिकना-चिकना कफ निकलता है, उधर पेचिशवालेकी टट्टीमें भी कफ निकलता है, बस इससे कल्पना कर ली कि जल ही कफरूपमें शरीरके अन्दर रहकर खानेको पकाता है [हमने कहाँ लिखा है कि कफ खानेको पकाता है? त्रिदोष-मीमांसके पृष्ठांकका हवाला देना था! ह०] अधिक कफ संचित हो जावे, तो उलटीके साथ वा पेचिश होकर निकलता भी है। उन बेचारोंको किसी वैज्ञानिकने यह नहीं समझाया कि वायु अनेक वायवीय अंशोंका मिश्रण है। वायुके विकारको वायवीय कहना तो व्याकरणके अनुसार ठीक है, किन्तु "वायवीयोंका मिश्रण अर्थात् विकारको वायु कहना व्याकरणके अनुसार ठीक कैसे होगा?" इस प्रकारका सन्देह जो पाठक करेगा, उसको स्मरण रखना चाहिये कि तुम्हारे पञ्चभूतोंको वैज्ञानिक नहीं मानते, इसीलिये वह जैसे माननेके योग्य नहीं, ऐसे ही तुम्हारे पुराने व्याकरणको भी वैज्ञानिक नहीं मान सकते। [यहाँपर कविराज जीको वायवीय शब्द-व्याकरणकी रीतिसे वायुका विकार ठीक दिखाई देता है परन्तु, उनका वायु जो स्वयम् ही वायव्योंका विकार है, इसकी उन्हें खबर नहीं। कविराजजी को चाहिये कि प्रथम वह वायुकी अद्वैतताको सिद्ध करें, और इसे अच्छे अभेद्य प्रायोगिक प्रमाणोंसे बतावें, तब 'वायवीय' शब्दकी व्याकरणकी रीतिसे अशुद्धि निकालें। हमने तो वायव्य या वायवीय शब्दका प्रयोग कारण अर्थमें, या (Gsseous)

(Gas) की परिभाषामें दिया है, न कि वायुके विकारार्थमें। ह०] जल भी उदजन और ओषजनका समास है, अग्नि तो द्रव्य ही नहीं, वह तो शक्ति (Energy) मात्र है। [जल दो मौलिकतत्वोंका यौगिक रूप नहीं, तो यह मौलिक कैसे है ? प्रयोगोंसे सिद्ध क्यों न कर दिखलाया ? ह०] क्योंकि मूलतत्वोंकी परिभाषा यह है, कि जिसके विभाग विश्लेषणसे विजातीय सार नहीं निकल सकते। जिसका गुरुत्व है, इत्यादि परिभाषासे सिद्ध हुआ कि वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश एक भी भूत नहीं। जब कि वैज्ञानिक प्रयोगोंसे पञ्चभूत तथा त्रिदोष एक भी सिद्ध नहीं होते तो इनको सुलफाखोर संन्यासियोंकी कल्पना नहीं कहकर विचारशील वैज्ञानिक और क्या कह सकते हैं। [ज्ञात होता है उपर्युक्त सुसम्बद्ध सार्थक पंक्तियाँ कविराज जीने सुलफा पीकर या मदिरा देवीकी आराधना करके होस-हवासकी दुरुस्तीमें लिखी हैं। ह०] अब तो वैज्ञानिक प्रयोगोंसे सिद्ध हुआ है कि उदजन और ओषजन आदि ९०–९२ मूलतत्व (Elements) हैं। इन्हींसे सारे जगत्की उत्पत्ति होती है, मनुष्य शरीरमें तो इनमेंसे केवल १६ या १९ तत्व ही हैं। दो और दो चार होते हैं, यह जैसे सत्य है, वैज्ञानिकोंके यह सिद्धान्त यन्त्रादिकी कसौटीसे परीक्षित सत्य हैं, और त्रिदोष सिद्धान्त अल्पज्ञोंकी कल्पना-मात्र है, जो विज्ञानालोकसे करीब-करीब मिट चुका है। जितना बाकी है वह भी शीघ्र मिटनेवाला है, ऐसा कहनेवालोंको मैं खुला चैलेंज देकर कहता हूँ कि त्रिदोष-सिद्धान्त सम्पूर्ण सत्य है, पाञ्चभौतिक सिद्धान्त भी सम्पूर्ण सत्य है।" [कविराज जी ! ठीक, यह आपका कथन सोलह आने इस प्रमाणके अनुसार सच है यथा—"मुखमस्तीतिवक्तव्यं दश हस्ताहरीतकी" इसमें कोई संशय न करना जो करेगा वह पापका भागी होगा। ह०]

चार कालमोंमें उपर्युक्त कविराज जीका लिखा पञ्चतत्व तथा त्रिदोष-सिद्धान्तपर मेरे लिखेका, यह खण्डनात्मक लेख है। पाठको ! यह खण्डनात्मक युक्ति-युक्त लेख है, या वितण्डा-वाद जरा मेरी पुस्तक और इस खण्डनात्मक उत्तरको मिलाकर पढ़िये, और किसी पत्रके द्वारा अपनी-अपनी राय दीजिये।

त्रिदोषमीमांसामें हमने लिखा है कि पञ्चतत्व सृष्टिके मूलकारण नहीं, न शरीरके मूल कारण हैं। इसपर जो युक्तियाँ, जो प्रमाण हमने रखे हैं उनमेंसे एकका भी तो कविराजजीसे खण्डन करते न बना। उलटे अपना पीछा छुड़ानेकी नीयतसे आगे चलकर पृष्ठ ५१ पर आप लिखते हैं—"पञ्चभूतके वर्णनका यह स्थान नहीं।" यदि पञ्चभूतोंके वर्णनका यह स्थान नहीं था, तो क्या त्रिदोष-सिद्धान्तके वर्णनका भी यह स्थान न था ? आपने कलम तो उठाया है आयुर्वेद संदेश के सन्निपातांकके लिये। क्या सन्निपात त्रिदोषसे भिन्न कोई और बला है ? पाठको ! सन्निपातांकमें आपने यह १२ पृष्ठोंपर खूब लम्बा लेख लिखा है पर त्रिदोष-मीमांसामें दिये त्रिदोष विषयक मुख्य आलोच्य विषयको आपने छुआ-तक नहीं। छुएँ क्यों ? ब्राह्मण जो ठहरे, इस छूतसे कहीं अछूत हो जायँ, तो आफत। फिर बिचारे घरके रहें न घाटके।

कविराज जी महाराज ! जिस योग्यताके बलपर कालेज-की मेजपर खड़े उछल रहे हैं, और चैलेंज दे रहे हैं उस योग्यताकी परीक्षा आपके इस एक ही लेखसे हो गयी है। आप ५००) मुझसे और ५००) क्या हजार अखिल भारतीय आयुर्वेदसम्मेलनसे अवश्य ही प्राप्त करेंगे, यह निश्चय है। इस दक्षिणाके साथ निमन्त्रण भी मिलेगा, स्नान करके बस तय्यार ही रहिये समय बहुत समीप है।

कविराज जीने त्रिदोषसम्बन्धी मीमांसाका उत्तर नहीं दिया, तो न दें। हम आपके आक्षेपोंका प्रमाण सहित उत्तर देंगे।

तत्त्व और इलेक्ट्रोन

आगे चलकर ५२ पृष्ठपर कविराजजी प्रश्न करते हैं—"अब वैज्ञानिक पुंगवसे पूछा जावे कि आयुर्वेदमें जिस जलको पांचभौतिक कहा है, उसमें दो विजातीय तत्वों (Elements) को देखकर तो वैज्ञानिक लोगोंने प्राचीन ऋषियोंको अज्ञ समझ लिया है, अपने जलसे जिन दो तत्त्वोंका आविष्कार किया है, उनमेंसे उदजनके जिस टुकड़ेको आप परमाणु (Atom) कहते थे, उसमेंसे भी एक तो इलेक्ट्रोन (Electron) और एक प्रोटोन (Proton) निकाला गया है। जिसको आप ओषजनके परमाणु

(Atom) करार देते हैं। उसमेंसे १६ तो निकले इलेक्ट्रोन और १३ निकले प्रोटोन, इतनेसे ही किसीको घबराना नहीं चाहिये। वैज्ञानिक सिद्धान्तोंमें तो ऐसा भी परमाणु है जिसके अन्दरसे २३४ इलेक्ट्रोन और २३४ प्रोटोन निकलते हैं। जिसके अन्दरसे दो जातिके ४'८ टुकड़े निकल सकते हैं, वह भी वैज्ञानिक सिद्धान्तमें तो परमाणु (Atom) कैसे हो सकता है, तो सम्भवतः वैज्ञानिक पुंगव जवाब देगा।"

कविराजजीने दर्शनशास्त्र पढ़कर कल्पनाके घोड़े हाँकना ही सीखा है। वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका नाम कहीं कालेजके कोनेमें बैठे-बैठे किसी अध्यापकसे सुन लिया है; जभी बेसिर-पैरके असम्बद्ध लेख देकर अपने पांडित्यका परिचय दे रहे हैं। वैज्ञानिक सिद्धान्तोंको जानने और माननेवाले ऐसी ऊट-पटांग बातें नहीं लिखते कविराजजी! स्मरण रहे कि—आधुनिक विज्ञान आयुर्वेद, रसायन भौतिक गणित, विद्युत्, भूगर्भ कला-कौशल आदि न जाने कितनी शाखाओंमें विभक्त हो चुका है। प्रत्येक विषयके ग्रन्थ अपने-अपने व्यापारकी एक सीमा रखते हैं। कोई भी शास्त्र अपनी सीमासे बाहर नहीं जाता, न उससे परेकी बातोंमें हस्तक्षेप ही करता है।

रसायनशास्त्रको ही देखिये! रसायनशास्त्रका आरम्भ परमाणुसे होता है। रसायन-शास्त्रमें परमाणुको अच्छेद्य अभेद्य माना है। परमाणुसे परे क्या है, इसपर रसायनशास्त्र कोई विचार नहीं करता। क्योंकि यह विषय उसकी सीमासे परे भौतिक शास्त्रका है। हाँ, परमाणुसे अणु किस प्रकार बनते हैं और अणु-समूहसे विश्वके पदार्थोंका रूप कैसे बनता है इसको रसायनशास्त्र बतलाता है। जिन परमाणु या मौलिक तत्त्वोंसे सृष्टिके पदार्थोंकी रचना होती है वह परमाणु भौतिक-शास्त्रमें अवश्य छेद्य, भेद्य होगये हैं, पर रसायनशास्त्रके व्यवहारमें वह आजतक अच्छेद्य, अभेद्य ही माने जाते हैं। और योगांकोंकी रचनामें, हैं भी। जो भौतिकशास्त्र परमाणुका छेदन, भेदन करके उसकी आन्तरिक रचनाका हाल बताता है वह यह बात कहीं नहीं कहता कि परमाणुमेंसे इलेक्ट्रोन, प्रोटोनके निकलनेसे उसका परमाणुत्व जाता रहता है या परमाणुका स्थान इलेक्ट्रोन प्रोटोन ले लेता है।

भौतिक शास्त्रने परमाणुका विश्लेषण करके उसके अन्दरसे जिस सत्ताको मालूम किया है उसको वह कहीं भी तत्त्व (Element) नहीं कहता। न वह परमाणुसे परेकी किसी सत्ताको तत्त्व मानता है। प्रत्युत वह तो स्पष्ट कहता है कि परमाणुके भीतर जो दो प्रकारकी सत्तात्मक चीजें देखी जाती हैं, वह वास्तवमें उस अनादि अनन्त प्रकृतिके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। जिनका नाम इलेक्ट्रोन, प्रोटोन है। भौतिक शास्त्र इन दोनोंको शक्ति और सामर्थ्यरूप मानता है, परमाणु नहीं। [भौतिक शास्त्र इन्हें भी "कण" Partciles मानता है, चाहे यह अन्ततोगत्वा शक्तिके ही घनीभूत रूप क्यों न हों। —रा० गौ०]

'सत्वरजस्तमसः साम्यावस्था प्रकृतिः' और 'प्रकृतेर्महत् महत्तोऽहंकारः' का विधियुक्त वर्णन जैसा हमारे यहाँ सांख्य-शास्त्र करता है। ठीक, इसी बातको आधुनिक भौतिक शास्त्र अपने प्रयोगोंसे सिद्ध करता है। हमारे यहाँ एक प्रकृतिकी सत, रज और तम तीन अवस्थाएँ मानी हैं। इसी प्रकार अब, भौतिक शास्त्र भी इस विश्व-निर्माणकी इस प्राकृतिक शक्ति सामर्थ्यकी इलेक्ट्रोन (Electron) प्रोटोन (Proton) और पोजीट्रोन (Positron) नामसे तीन अवस्थाओं या तीन रूपोंका दिग्दर्शन कराता है। तीनों एक शक्तिके ही रूप हैं। इसी एकामयी आदिशक्तिका नाम प्रकृति है। ऐसा मेरा मत है।

इस शक्ति, सामर्थ्यधारी सत्ताको कोई भी भौतिक शास्त्री परमाणु नहीं मानता; न इनमें समस्त परमाणुके लक्षण ही पाये जाते हैं।

जिस प्रकार हमारे यहाँ सांख्यशास्त्रमें सृष्टि-रचनाका क्रम प्रकृतिरूपी आदिशक्तिसे पदार्थोंकी रचनाका क्रम बतलाया है ठीक इसी प्रकार भौतिक शास्त्र भी शक्ति-सामर्थ्यसम्मेलनसे पदार्थोंका प्रादुर्भाव बतलाता है और "प्रकृतेर्महत् महत्तोऽहंकारः" का वर्णन जैसे शास्त्र करता है, ठीक इसी प्रकार इलेक्ट्रोन प्रोटोन (सत्व, रज) की असमावस्थामें विद्यमानतासे महत्—आकर्षण निराकरण दो क्रियावाला—व्यापकरूपमें उन्हींके भीतरसे प्रादुर्भूत होता है और इसकी विद्यमानताके कारण ही सत, रजकी विषम संख्यामें (असाम्यावस्थामें) एकत्र होनेपर अहंकार

(परमाणु) का प्रादुर्भाव होता है। हमारे सांख्य-शास्त्रमें माना हुआ अहंकार और आधुनिक रसायन-शास्त्रका परमाणु (Atom) एक ही चीज़ है। ऐसा मेरा मत है*। इससे आगे कविराजजी महाराज एक बात और पूछते हैं। आप कहते हैं—"दूसरी बात यह पूँछी जावै, कि जनाब जिस वैज्ञानिक साहित्यकी प्रयोगशालामें ईथर (Ether) का भी वजन नापा गया है, उसके यहाँ ईथर (Ether) भी तत्व (Element) बन गया होगा, कि नहीं।"

कविराजजी महाराज किसी रसायन-शास्त्रीके पास कुछ दिन रहकर उसकी चरण सेवा करिये, तब आपको पता लगेगा कि रसायन-शास्त्र एक दो तत्त्वोंके लक्षण किसी वस्तुमें मिल जानेसे उसे तत्त्व नहीं मानता। तत्त्वोंके समस्त लक्षण जिस पदार्थमें न घटें रसायन-शास्त्र उसको कभी तत्त्व माननेके लिये तय्यार नहीं; यह उसका अचल, अटल सिद्धान्त है। ईथर क्या, इलक्ट्रोन, प्रोटोन आदि जितनी भी आदिसत्ताएँ इस समयतक जानी गयी हैं इनमेंसे एकमें भी परमाणुके समस्त लक्षण नहीं घटते, इसीलिये रसायन-शास्त्र इनमेंसे एकको भी परमाणु नहीं मानता।

इससे आगेके तीन पृष्ठ ऐसे वितण्डा-वादसे कविराजजीने भरे हैं जिनका त्रिदोष मीमांसाके किसी अंशसे कोई सम्बन्ध नहीं दिखता। बल्कि एलोपैथी चिकित्साके विपरीत ऊटपटांग ही लिखा है। जिस विषयका हमारे लिखे उक्त ग्रन्थसे सम्बन्ध नहीं, हम उसके उत्तरदाता नहीं।

लेखको समाप्त करते हुए कविराजीने कई और व्यक्तिगत आक्षेप किये हैं हम 'जैसेको तैसा' वाली इस दुर्नीतिको पसन्द नहीं करते और आपके आक्षेपोंका उत्तर अंश यहीं समाप्त करते हैं। आगे जब आप और कुछ लिखेंगे तब फिर देखा जायगा।

अब आइये वैद्यराज विश्वेश्वरदयालुजीकी ओर। आपने भी कुछ अपने ढंगका निराला विवाद 'अनुभूत योगमाला' मार्च १५ के अंकमें तत्त्वोंके सम्बन्धमें किया है। उसका भी उत्तर देना मैं आवश्यक समझता हूँ।

आप कहते हैं "आयुर्वेद-शास्त्रमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पंच महाभूत या तत्त्व माने हैं" (तथापि, आप कहते हैं) "तत्त्व शब्द कोई खास बला नहीं, बल्कि "गृह्यमाण यथाभूतमविपरीतं तत्त्वं भवति।" अर्थात् जो वस्तु ग्रहण करनेपर अपना रूप न बदले वह तत्त्व होती है। या—वदन्ति तत्तत्त्व विदास्तत्त्वं यज्ज्ञान मद्वयम्। अर्थात्—तत्त्व वह है जिसका ज्ञान एक ही प्रकारका सबको मालूम हो। (इसकी व्याख्यापर आप कहते हैं)—पृथ्वी, जल,

* आधुनिक रसायनशास्त्र जिसे "परमाणु" कहता है, वह मेरे मतसे सांख्यशास्त्रका "अहंकार" कदापि नहीं हो सकता। "परमाणु" और "अहंता" रसायन-विज्ञानके अनुसार नितान्त भिन्न हैं। "सत्व", "रजस्", "तमस्" प्रकृतिके "गुण" कहलाते हैं, वस्तु-सत्ता नहीं समझे जाते। (Elecron, Proton, Positron, Neutron) आदि सभी अत्यन्त सूक्ष्म कण हैं जो डाल्टनवाले परमाणुके घटक हैं। ये "गुण" नहीं हैं। ये वस्तु-सत्ताके ही सूक्ष्म कण हैं। इनमें "भार" भी है, "आयतन" भी है। यह कोई नहीं कह सकता कि आजके यह छः कण ही वस्तु-सत्ताके सूक्ष्मतम कण हैं। कल इन्हींके समकक्ष एवं इनसे भी सूक्ष्म और इनके भी घटक निकल आ सकते हैं अतः "परमाणु" [परम + अणु] शब्द सापेक्ष है और अभिगद्रके अणु, कणादके परमाणु, डाल्टनके परमाणु, आदि शब्दोंका व्यवहार करनेमें ही कुशल है। एलेक्ट्रन आदिमेंसे तीनको चुनकर प्रकृतिके तीनों गुण मान लेना उपयुक्त है। विद्युत् वस्तुतः शक्ति है अथवा वस्तु है इसका अन्तिम निर्णय विज्ञान नहीं कर सका है, परन्तु विद्युत्कणोंके वस्तु कण होनेमें तो कोई सन्देह नहीं है, प्रकाश-कण, तेज-कण आदि भी नाम इसे दे सकते हैं। अतः अग्निकण भी कहनेमें कोई हर्ज नहीं है। अभी बीस ही बरस पहले अग्निको शक्तिका एक रूपमात्र समझते थे, क्योंकि इसमें मात्रा भार और आयतनका अभाव था। अब तो तेजकणोंमें ये तीनों मौजूद पाये गये हैं। अतः अग्नि भी वस्तुसत्ताका एक सूक्ष्म रूप है। यदि अपने यहाँके परस्पर संभूतवादसे इनका समन्वय करना हो तो सांख्यने तो महत्, अहंकार, बुद्धि, मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वीको उत्तरोत्तर सूक्ष्मसे स्थूलकी ओर घनीभूत होता हुआ माना है, जिसमें वायुके बाद अग्निकी गणना होती है। अहंकार और प्रकृतिके गुण तो इन अग्निकणोंसे बहुत दूर पड़ जाते हैं। विज्ञानके पाठकोंको भ्रम न हो इसलिये यह टिप्पणी हमने दी है। आयुर्वेदसम्बन्धी प्रस्तुत वाद-विवादसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

—रा० गौ०।

वायु, अग्नि, आकाश इनका ज्ञान बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतकको अपढ़ और विद्वानोंको एक प्रकारका ही है। इसी प्रकार देशी और विदेशी सभोंको एकसा है। इसी प्रकार कार्य्यमें लानेपर नष्ट न हो, अर्थात् रूपको न बदले फिर अपने सच्चे रूपमें आजाय, वही तत्व है। यह हुई तत्वकी सच्ची परिभाषा। एक वस्तुकी परिभाषा प्रायः एक ही होनी चाहिये। जिससे उसके आन्तरिक सभी महत्वपूर्ण रूप प्रकट हो जायँ, वही परिभाषा है। न कि एक शब्दकी दस पाँच परिभाषाएँ की जायँ।"

पाठकोंको बताना चाहता हूँ कि-मैंने त्रिदोष-मीमांसा-में तत्त्वोंके छः लक्षण दिये हैं, यथा—तन, घनता, मात्रा, रूप, गुणान्तर और अभेद्यता। इन तत्त्वोंमें पाये जानेवाले लक्षणोंको वैद्यराजजीने परिभाषाका नाम दिया है। कृपया प्रथम तो वैद्यराजजी यह बतलावें कि परिभाषा और लक्षण क्या पर्य्याय शब्द हैं? यदि हैं तो इसका प्रमाण। यदि नहीं हैं तो परिभाषाका लक्षणोंसे क्या सम्बन्ध?

दूसरे आप अपने तत्त्वोंकी परिभाषा देते हुए लिखते हैं—"जो वस्तु ग्रहण करनेपर अपना रूप न बदले, अथवा जिसका ज्ञान एक ही प्रकारका सबको मालूम हो। आज-तक तो शास्त्रोंमें हम यही पढ़ते रहे हैं कि—'सत्येन लभ्यात् तपसा ह्येष तत्त्वम् सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्' अर्थात् यह तत्त्वरूप सत्ता सत्यतप सम्यग्ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य्य धारण करनेसे ही मिल सकती है। संसारमें तत्त्व-बातोंको बड़े-बड़े पंडित विद्वान् ही जानते थे, इसीलिये उनको तत्त्वदर्शी तत्त्ववेत्ताकी उपाधिसे अलंकृत किया जाता था। यहाँ आकाश जैसा सूक्ष्म सत्ताका ज्ञान वैद्यराजजी मूर्ख बालकोंको हस्तामलकवत् कराते हैं। बलिहारी है। यह क्या ही आपकी अद्भुत परिभाषा है, क्या ही उत्कट तर्क है। यदि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाशादिका ज्ञान और इनकी तात्विकस्थितिका बोध ज्ञानी, अज्ञानी बालक, वृद्ध सबको एकसा ही होता रहता तो एक मूर्ख और विद्वान्में अन्तर किस बातका था? कृपया यह तो बतलाइये?

यह तो हम शास्त्रमें अवश्य पढ़ते हैं कि—

"आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानीहितेषामधिकोविशेषः ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः॥"

इन वैद्यराजजीने इस परिभाषापर बातकी बातमें हरताल फेर दी। अब रही इनकी पहली परिभाषा—"जो वस्तु ग्रहण करनेपर अपना रूप न बदले, वह तत्त्व है।" वैद्यराजजीने 'ग्रहण' शब्दका क्या स्पष्ट अर्थ है यह नहीं बतलाया।' वस्तु ग्रहणका अर्थ है हाथमें लेना, ग्रहण करना, खा लेना आदि-आदि। यहाँ पर है तत्त्वोंके ग्रहणकी बात। क्या जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी आदि ग्रहण करनेपर अपना रूप नहीं बदलते? यदि इन तत्त्वोंकी यही परिभाषा हो तो यह भी परिभाषा आधुनिक अनुसन्धानसे असत्य सिद्ध हो जाती है। यहाँपर ग्रहणका अर्थ देखना नहीं है न शब्दोंसे इसका यह अर्थ ही निकलता है एक बात और इन पञ्च-तत्त्वोंमेंसे प्रथम तो आकाशका किसी भी तरहसे ग्रहण (ज्ञान) नहीं होता क्योंकि आकाशमें वस्तुत्व नहीं। दूसरे वायुका भी ग्रहण करना (ज्ञानार्थमें) नहीं बनता। इसी प्रकार अग्निका ग्रहण वैद्यराजजीने कैसे किया वे ही बतावेंगे। जल और पृथ्वीका ग्रहण सब कर सकते हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंसे कर सकते हैं। पर रहा यह कि इनका रूप न बदलता हो सो बात नहीं। जल वाष्प बनने-पर अपना रूप बदल लेता है। पेटमें जानेपर विविध उपादानोंसे मिलनेपर अपने रूपमें नहीं रहता। विद्युत्-विश्लेषणमें तो इस बेचारेका अस्तित्व ही मिट जाता है। यही हाल पृथ्वीका है। यह सब बातें प्रयोगोंसे दिखलायी जा सकती हैं। इस प्रकार वैद्यराजजीकी तत्त्वोंकी परिभाषा अशुद्ध सिद्ध होती है। खैर। इसे यहीं छोड़िये।

इससे आगे वैद्यराजजीने तत्त्वोंके सम्बन्धमें तीन प्रश्न और किये हैं, और उनके मुझसे उत्तर माँगे गये हैं, हम यथाक्रम उनके आगे उत्तर देंगे।

वैद्यराज पूछते हैं—"(१) जब वायु रूपधारी आप तत्त्व मानते हैं तो वायु ही तत्त्व हो गया, कारण—उदजन, नोपजन, ओषजनमें रूप नहीं, तभी न आपको वायु रूप-धारी कहना पड़ा, जब उदजन नोपजनका रूप नहीं तब आपको नं० ३ की परिभाषा (एक तत्व दूसरे तत्त्वके गुण-स्वभावसे सदा भिन्न होने चाहिये) से तत्त्व नहीं रहते"।

वैद्यराजजी महाराज! हमने यह कहाँ लिखा है कि उदजन, नोपजन, ओषजनमें रूप नहीं होता। प्रत्युत हमने

तो तत्त्वोंके दूसरे लक्षणमें ही स्पष्ट कर दिया है कि तत्त्वरूप वस्तुमें घनत्व, आयतन, भार, रूप यह चार बातें अवश्य मिलनी चाहिये। उदजन, नोषजन, ओषजन और वायु यह मौलिक और यौगिक सभी रूपधारी हैं। यह बात दूसरी है कि हम साधारण दृष्टिसे इन्हें देख नहीं सकते। इन सभोंका रूप है और प्रयोगोंसे अच्छी प्रकार सिद्ध किया जा सकता है। दूसरे उदजन नोषजनको वायुरूपधारी कहनेसे मेरा अभिप्राय पाठकोंको इनके रूपकी सूक्ष्मताका बताना था। वायुरूपधारी कहकर वायव्योंको हमने वायुसे उपमा दी है, न कि उनकी अरूपताका बोध कराया है।

(२) फिर आप पूछते हैं—"सुहागाको अग्निपर गलानेसे कैसा रूप होता है? उस समय उसका कौनसा पदार्थ जलता है? उसका नाम बताइये। और यह भी बताइये कि वह स्वयम्भू है या मेलसे बना है? जलानेके बाद भी फिर जलानेपर उसमें द्रवत्व यदि आता दिखाई न दे जैसा पहले था तब क्या यह तत्त्व रहा? अपनी पाँचवीं परिभाषाको सन्मुख रखकर उत्तर देनेकी कृपा करना।"

मेरे त्रिदोष-मीमांसामें दिया हुआ, तत्त्वोंका पाँचवां लक्षण निम्न है—

जो तत्वरूप द्रव्य हो उससे सृष्टिके अनेक पदार्थ बनने चाहिये, पर वह किसी और से न बननेवाले हों, अर्थात् स्वतः स्वयम्भू हों। दूसरे तत्वपदार्थ जब सृष्टि-रचनाके समय और तत्त्वपदार्थोंसे मिलें तो उनका असली परम सूक्ष्म रूप या वास्तविक सत्तात्मक रूप नष्ट न होकर बना रहे, पर उनके मेलसे जो पदार्थ सृजित हो उसका आयतन, घनत्व, भार, रूप सब बदल जाय।

वैद्यराजजी! हमने जो यह पाँचवाँ तत्त्वोंका लक्षण दिया है, रसायन-शास्त्रका निश्चित किया हुआ लक्षण है। आप कोई भी साधारणसी रसायन-शास्त्रकी पुस्तक उठा लें या किसी रसायनशास्त्रीसे पूछें तो वह यही बतावेगा। अच्छा आप मुझसेही दूसरे प्रश्नका उत्तर सुन लीजिये—

वैद्यराजजी! रसायन-शास्त्र तत्त्व क्या यौगिक समस्त पदार्थोंकी तीन अवस्थाएँ मानता है, एक ठोस दूसरी द्रव तीसरी वाष्परूप या वायव्य। पदार्थ चाहे तत्त्व हो या यौगिक। वह उत्तापकी न्यूनाधिकता व दबाव पाकर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें बदल जाता है। तत्त्वरूप पदार्थ उत्तापकी न्यूनाधिकताके कारण मौलिकसे यौगिकमें और यौगिक मौलिकरूपमें आजाते हैं। इस विश्वमें उत्ताप प्रकाशादि कुछ ऐसी भौतिक शक्तियाँ हैं जो पदार्थपर पड़कर उसके रूप, गुण, स्वभावको सदा बदला करती हैं।

हमने अपनी पुस्तकमें टंकण या टंक तत्त्वके लिये सुहागा लिख दिया है। हमने सुहागा शब्दका प्रयोग सरलार्थकी दृष्टिसे किया था कि वैद्य इस नामसे अधिक परिचित हैं। वास्तवमें जो सुहागा नामसे हम सब जिस वस्तुको व्यवहारमें लाते हैं यह शुद्ध तत्त्वरूप नहीं होता। बल्कि यह सैंधक्षम्के दो परमाणु टंकणके चार परमाणु और ऊष्मजनके सात परमाणुके योगसे बननेवाला एक यौगिक है इससे भिन्न इसके रवोंमें दस अणु जलके भी विद्यमान होते हैं। जिस समय हम इस व्यावहारिक सुहागेको अग्निपर रखते हैं तो प्रथम वह कुछ द्रव होता है और इस द्रवताके समय उसके जलाणु उससे पृथक् होने लगते हैं तथा कुछ देर वह अग्निपर और रहे तो जलाणु उससे वाष्प बनकर निकलने लगते हैं इसीलिये सुहागा फूलने लगता है। जिस अंशका जल निकल जाता है, वह सुहागेका अंश फूलकर सफेद हो जाता है, अर्थात् अनार्द्र बन जाता है जो अंश फूलनेसे रह जाता है उसमें जलांश विद्यमान रहता है। एकबार जो सुहागा फूल उठता है और उसके जलाणु उससे पृथक् हो जाते हैं तब दूसरी बार उसमें जलाणु न होनेसे उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं आता। हाँ ७०० शतांशसे अधिक इसको आँच दें तो वह पुनः पिघल जाता है। इस बारका इसका पिघलना इसका द्रवणांक कहाता है, अर्थात् उस तीव्र अग्निमें ठोससे द्रवरूपमें आ जाता है। जो पदार्थकी दूसरी अवस्था है। मौलिकरूप सुहागा या टंकण इससे भिन्न चीज है और वह रंग-रूपमें सुहागेसे बिलकुल भिन्न चीज है। वह २००० शतांशकी अग्निपर ही जाकर पिघलने लगता है। और ७०० श० के उत्तापपर ओषजनके साथ यौगिक बना लेता है, इत्यादि।

आपका तीसरा प्रश्न—(३) "धातुरूप तत्त्व सोना, चाँदीकी भस्म करनेपर उनका क्या रूप रहता है। अग्नि-संयोगपर यशदका? पारदसंयोगपर एल्युमिनियमका

साहित्य-विश्लेषण

[समालोचनार्थ साहित्यकी कमसे कम दो-दो प्रतियाँ आनी चाहियें। एक ही प्रति भेजनेवालोंकी समालोचना यदि इन स्तंभोंमें न निकले या अत्यन्त देरसे निकले तो आश्चर्य्य न करना चाहिये। समालोचनार्थ जो भेजा जाय, प्रधान सम्पादकके बनारस शहरके पतेसे।]

सत्तात्मक कौनसा रूप रहता है? यह संयोगिक है या स्वयम्भू? सृष्टिके कौन-कौनसे पदार्थ इनसे बनते हैं? बिना इनके सृष्टि-रचनामें क्या-क्या अड़चनें आ सकती हैं? सोना, चाँदी हमारे देशमें बहुतसे कीमियागर बनाते हैं फिर आपके स्वयम्भू कहाँसे आ कूदे।"

यह हमारे स्वयम्भू कहाँसे आ कूदे हैं इसकी व्याख्या सुनिये।

धातुरूप सोना, चाँदी नामक तत्त्व भस्म करनेपर यौगिक बन जाते हैं। वह यौगिक एक नहीं कई भिन्न-भिन्न तत्त्वोंसे मिलनेके कारण भिन्न होते हैं। यथा—स्वर्ण गन्धिद ($स्व_2$ गं) यह गन्धक तत्त्वके साथ मिलनेसे बनता है। इसका वर्ण गेरुआ होता है। हमारी आयुर्वैदिक रीतिसे बनी स्वर्ण-भस्म यही है। इससे भिन्न स्वर्ण क्लोरीन तत्त्वसे मिलनेपर स्वर्णहरिद (स्वह ३) बनाता है। इसका वर्ण सुनहरापीत होता है। इसी प्रकार चाँदी भी गन्धिद, ($र_2$ गं) गन्धेत् ($रगं ओ_4$) आदि कितने ही यौगिक बनाती है। जिनका रूप आयतन, घनत्व, मात्रा, गुण, स्वभाव, एक दूसरेसे भिन्न होता है। इसी प्रकार यशद धातु तत्त्व भी जब अग्निपर पिघलता है तो ४५० शतांशके उत्तापपर यह वायुके ओषजनसे मिलने लगता है और उस समय यह ओषिद (यओ) में आनेके कारण फूलकर श्वेत वर्णका हो जाता है। इसको यशदका फूल भी कहते हैं। हमारे आयुर्वेदमें इसको आँखोंमें डालते हैं। इस प्रकार मौलिकसे यह भी यौगिक (भस्मरूप) बन जाता है। पारद भी तत्त्व है और एलूमिनियम भी, परन्तु जब पारदको एलूमीनियमकी कटोरीमें डालकर पारदको उस कटोरीमें रगड़ें तो वायुकी उपस्थितिमें ही पारद एलूमेनेत या स्फुटिकेत (या $स्फ_2ओ_3$) बनाता है। यह बात वैद्य लोग नहीं जानते इसीलिये कई धूर्त्तराज एलूमीनियमकी कटोरीमें पारद डालकर कोई बूटीका रस निचोड़कर पारदको मलते हैं जिससे पारद थोड़ी देरमें यौगिक बनाने लगता है, जिसको धूर्त्त लोग पारेकी भस्म बतलाते हैं। यह श्वेतवर्णकी भस्म होती है। यह पारे और एलोमिनियमकी भस्म यौगिक है। इससे आगे आपने पूछा है "सृष्टिके कौनसे पदार्थ इनसे बनते हैं?' बिना इनके सृष्टि-रचनामें क्या-क्या अड़चनें आ सकती हैं?" यह दोनों ही प्रश्न खोलकर लिखें। क्या आपका अभिप्राय सोना चाँदीसे बने सृष्टिके पदार्थोंकी संख्या पूछनेका है? अथवा और कुछ? इसी प्रकार सृष्टि-रचनामें चाँदी, सोना आदि धातुएँ क्या अड़चनें डाल सकती हैं। यह अभिप्राय हो तो इसके उत्तरमें हम कहेंगे कि नहीं डाल सकतीं। रहा कोई और अभिप्राय हो तो उसका खुलासा करें। सन्तोषजनक उत्तर दूँगा। इसके पश्चात् जुलाई ३१का "अनुभूत योगमाला" का अंक मिला। कवर पृष्ठपर आपने 'आपसकी बातें और फैसला' नामक शीर्षकको देखनेका अनुरोध किया है। पृष्ठ उलटते-उलटते जब उक्त शीर्षकपर दृष्टि पड़ी तो आरम्भकी भूमिका जो बाँधी थी उसे पढ़नेसे ज्ञात होने लग पड़ा था कि वैद्यराजजीने त्रिदोष-मीमांसापर अब कलम उठायी है। क्योंकि आप वहाँ लिखते हैं पुस्तकको पढ़ते-पढ़ते शाम हो गयी आप रोटी खाने भी न गये, नोटपर नोट लिखते चले गये। मेरी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न रहा कि अवश्य वैद्यराजजी इसका खण्डन लिखकर वैद्यसमुदायका सन्तोष करेंगे। परन्तु आपने पुस्तकपर एक अक्षर भी न लिखकर उन पत्र-पत्रिकाओंके उद्धरण रख दिये जिन्होंने मुझे शास्त्रार्थके लिये या तो आमन्त्रित किया है या भला बुरा कहकर जी भर कोस लिया है। बस इतना लिखकर अपनी योग्यताकी इतिश्री कर दी है। शाबाश! वैद्यराज जी शाबाश!

भूकम्प पीड़ितोंकी करुण कहानियाँ—सम्पादक रामचन्द्र वर्म्मा, संकलनकर्त्ता—राधानाथ मिश्र, प्रकाशक चुन्नीलाल मालवीय, राजमंदिर काशी। पहला संस्करण मई सन् १९३४। डबल क्राउन १६ पेजेकी १९२+१८ पा० = २१० पृ० की सचित्र पोथीका मूल्य १≈)

बिहारके खंडप्रलयकी यह सच्ची कहानियाँ बड़ी हृदयद्रावक हैं। इनका संकलन बड़े परिश्रमसे हुआ है। इनका सम्पादन और प्रकाशन भी बड़ी योग्यतासे किया गया है। प्रकाशकका निवेदन और सम्पादककी भूमिकामें भूकम्पके भयानक उपद्रवका जो संक्षेपमें वर्णन है, वह यदि सम्पूर्ण पीड़ित क्षेत्रका बहुत दूरसे लिया हुआ छायाचित्रसा है, तो पुस्तकमें दी हुई ५७ कथाएं पाससे ली हुई विशेष घटनाओंकी फोटो हैं। सम्पादकने भाषाको सजीव, रोचक और सुसज्जित कर दिया है। पुस्तकमें १५ चित्र हैं। छपाई सफाई सब सुन्दर है। पुस्तकका दाम अनुचित नहीं है, विशेषतया जब कि उसके लाभका विशिष्ट अंश बिहारकी भूकंपपीड़ित गोशालाओंके सहायतार्थ दिया जायगा।" पुस्तक इतनी अच्छी और रोचक है कि परमार्थके विचारको छोड़कर कथाकी रोचकताके लिये ही हाथों-हाथ बिक जानी चाहिये।

—रा० गौ०

बाल-गीतावली—सम्पादक-साहित्यरत्न भगवतीलालजी 'पुष्प' अध्यापक म्यु० बो० बनारस, प्रकाशक-व्यवस्थापक आनंदाश्रम, गंगापुर, काशी। डबलक्राउन सोलह पेजके एक फर्मेकी पोथी। मूल्य नहीं दिया है।

जबसे शिक्षा-विभागने हिन्दी वर्नाक्यूलर पाठशालाओंके पाठ्य-क्रममें कंठाग्र पद्योंको स्थान दिया है। तबसे स्कूली पोथियोंके प्रकाशकोंने इस विषयपर ढेरों पोथियाँ छपा डाली हैं। उनमें बहुतोंकी गजटिड होकर चल भी रही हैं।

यह बाल-गीतावली आरम्भिक कक्षामें पढ़नेवाले बालकोंके लिये लिखी गयी है। सेवा, मेल, विनय, प्रेम आदि विषयोंपर सरल शब्दोंवाली रचनाओं का सुन्दर संग्रह है जिसमें देश-प्रेमकी पुट दी हुई है। "छिपा है कहाँ जाके प्यारा कन्हैया, हम सब बच्चोंकी टोलीमें आओ प्रभो! अनोखा निराला हमारा वतन है, अय मातृ-भूमि तेरी जय हो सदा विजय हो, तुम राम कहो वे रहीम कहें दोनों की गरज अल्लाह से है।" सरल और स्वाभाविक लयवाली ऐसी ही रचनाएँ इसमें हैं। हर माता-पिताको ऐसी बाल-पोथी अपने बच्चोंके हाथोंमें जरूर देनी चाहिये।

विषबेलि—रचयिता-साहित्यरत्न भगवतीलालजी 'पुष्प' अध्यापक म्यु० बो० बनारस, सम्पादक-जंगबहादुर मिश्र 'रंजन', प्रकाशक-'पुष्प' और 'रंजन' हितैषिणी पुस्तक मालाका प्रथम पुष्प, प्रथमावृत्ति १०००, संवत् १९८४ विक्रमी, डबल क्राउन सोलह पेजेके ३४+१० पृष्ठ = ४४ पृष्ठकी पोथीका मूल्य ≈) मात्र।

प्रस्तुत पोथीमें हमारे भावुक देहाती कविने एक ग्रामीण घटनाका चरित्र-चित्रण किया है। घटना स्वाभाविक और सच्ची-सी है। कुमार्गी पतिके कारण मूर्खा कर्कशा सास-नँनदद्वारा एक कुलवधूकी कैसी लोमहर्षणकारी दुर्दशा होती है, उसे कितनी नारकीय यातनाएँ दी जाती हैं, किस प्रकार वह डाइन सासद्वारा घरसे रातको निकाली जाती है। किस तरह तालाबपर जाकर वह उसकी शरण लेनेको उद्यत होती है। त्रियाचरित्रद्वारा अपनी पिशाचिनी मासे उसकाया जाकर उस कुलवधूका अभागापति तालाबपर जाकर उसी समय पदाघात और वाक्यवाणोंद्वारा उस अवलाको सताता और घसीटकर घर ले जाता है। जहाँ भूखी बाघिन सास-नँनदद्वारा उसे इतनी शारीरिक यातना दी जाती है कि एक दिन एकलौते गोदके बच्चेको छोड़ वह आहें भरती इस संसारसे चल बसती है! बच्चा भी अम्मा! अम्मा!! रटता कुछ दिन बाद माका साथ देता है। अभागिनी बुढ़िया भी कुछ काल बाद चल बसती है और कुमार्गी पति अपनी काली करतूतोंके कारण अन्तमें छुरा भोंककर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देता है। कविने इस खंड-काव्यको 'वज्रपात, विषबेलि और अन्तिम अवस्था' इन तीन सर्गोंमें समाप्त किया है। एक जगह विषबेलिके परिणामपर कविका हृदय भी तो रो दिया है—उसकी कलमसे निकल पड़ा है—

"अति सत्य है प्रिय नारियाँ जिस वंशमें विपदा सहैं,
बस शीघ्र ही वह नष्ट होगा, वाक्य ऐसा बुध कहैं।"

परम कारुणिक दृश्यके लिये 'हरिगीतिका' अच्छा छन्द चुना गया है। कविका यह पहला प्रयास और संभवतः

पहली रचना है। इस दृष्टिसे रचनामें भाषा तथा काव्यके विशेष गुणदोषोंपर गहराईसे ध्यान न देनेसे साधारणतः कोई दोष नहीं मिलता है। भाव बड़े ही हृदयस्पर्शी हैं। पढ़ते ही हृदय रो पड़ता है। पुस्तक पठनीय और आँखें खोलनेवाली है। सहृदयोंके कामकी चीज है।

—रघुबरदयालु मिश्र 'मान'

नागरी-प्रचारिणी पत्रिका—अर्थात् प्राचीन-शोधन सम्बन्धी त्रैमासिक पत्रिका [नवीन संस्करण], भाग १४ अंक ३ और ४ सम्पादक श्यामसुन्दर दास, काशी नागरी-प्रचारिणी सभाद्वारा प्रकाशित। कार्त्तिक और माघ, संवत् १९९०। मूल्य प्रति संख्या २॥)।

पहलेकी तरह यह दोनों अंक भी अत्यन्त उपयोगी और खोजके ठोस पठनीय विषयोंसे परिपूर्ण हैं। "महाभारतका फारसी अनुवाद" "भोजपुरी ग्रामगीतोंमें गौरीका स्थान" वैदिक स्वरका एक परिचय" "रामाज्ञा प्रश्न और रामशलाका" "षष्ठी विभक्तिकी व्यापकता" "भोजपुरी बोलीपर एक दृष्टि" "प्राचीन भारतके न्यायालय" "जायसीका जीवनवृत्त" "राजा उदयादित्य और भोजराजका संबंध" "जटमलकी गोराबादलकी बात" "शाहनामामें भारतकी चर्चा" "विक्रम संवत्" "हिन्दीका एक उपेक्षित उज्ज्वल पक्ष" "हिन्दीमें प्रेमगाथा साहित्य और मलिक मुहम्मद जायसी" और "कबीरका जीवनवृत्त" ये सभी लेख संग्रहणीय हैं। अन्तिम लेखमें कबीरके अवतरणोंकी भाषा राजस्थानी बन गयी है। यह कबीरकी मूल भाषा नहीं हो सकती, प्रत्युत संभावना यह है कि उनकी रचनाओंकी व्यापकताने उन्हें यह प्रान्तीयरूप दे दिया है।

—रा० गौ०

चमचम—बालकोंका सचित्र मासिक पत्र। सम्पादक श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम्० ए० तथा श्रीविश्वप्रकाश बी० ए०, एल-एल्० बी०। कला प्रेस, प्रयागसे प्रकाशित। वार्षिक मूल्य २॥)।

यह मासिक चमकीला, भड़कीला, आँखोंके लिये मोहक और मस्तिष्क और हृदयके लिये मनोहर शिक्षाप्रद बच्चोंका पत्र है। स्वाद और माधुर्य्यमें चमचम मिठाईसे भी अच्छा है। मेरे पास आया तो बच्चोंने इसे ऐसा अपनाया कि आलोचनाके लिये मिलना कठिन हो गया।

इसमें वैज्ञानिक बातें भी रहती हैं। बाल नाट्यशाला भी होती है। "माईके लालोंकी चर्चा" वाले स्तंभमें जीवनियाँ, और "दुनियाँकी सैर" में दर्शनीय स्थानोंके मनोरंजक वर्णन भी होते हैं। और "ज्ञानकी बातोंके क्या कहने हैं?" बिल्लीकी मूँछें क्यों होती हैं?" [विषय सूचीमें मूँछोंकी जगह पूँछें होगयी हैं, जो प्रेसवालोंकी करामात है और बच्चोंके लिये एकसे अधिक पूँछोंका होना भी कुतूहलसे खाली नहीं है, सो प्रेसवाले सम्पादककी सहायतामें किसीसे पिछड़े नहीं हैं।] "चमगादड़ जाड़ेमें क्यों सोता है?" "क्या जानवर भी सपने देखते हैं?" "दर्द क्यों होता है?" यह बातें तो बहुतेरे बच्चोंके बापको भी न मालूम होंगी! सम्पादक महोदय बड़े अनुभवी शिक्षक हैं, अतः उनकी यह कृति बच्चोंके लिये स्वाद और ज्ञान, हृदय और मस्तिष्क दोनोंके लिये अत्युत्तम आहार है। छोटे बालकोंके लिये यह पत्र अत्यन्त उपयोगी है।

—रा० गौ०

अलंकार—सचित्र मासिकपत्र। आषाढ़, १९९१। सम्पादक, आचार्य्य देवशर्मा "अभय" तथा भीमसेन विद्यालंकार। गांधी सेवाश्रम, डा० गुरुकुलकांगड़ी (सहारनपुर)। प्रकाशक, व्यवस्थापक अलंकार, १७ मोहनलाल रोड, लाहौर। एकप्रति ।-)। वार्षिक मूल्य ३)।

अलंकार पत्र पुराना है। स्व० स्वामी श्रद्धानन्दजीके सामने ही निकलता था। वर्ष ४ संख्या ५ तक निकलकर बन्द हो गया था। प्रस्तुत अंक यद्यपि उस सिलसिलेमें संख्या ६ है, तथापि यह वस्तुतः नये संस्करणकी पहली संख्या है। इसके नये संपादककी इस अंकपर पूरी छाप पड़ी हुई है। आदिसे अन्ततक इसके ५६ पृष्ठ ठोस सामग्रीसे भरे हुए हैं। एकसे एक लेख उपयोगी हैं। गुरुकुल जैसी उपयोगी संस्थासे निकले हुए स्नातकों, अलंकारों का मुखपत्र है और है भी स्नातकोंके योग्य ही। हम इसकी हर तरहपर सफलता और प्रचार चाहते हैं। आर्यसमाजसे उद्भूत गुरुकुलके क्षेत्रसे इसका जन्म हुआ

है, तो भी इसके विचार उदार हैं, भाव उदात्त हैं और भाषा तदनुकूल ओजस्वी है। सभी तरहके विचारवाले इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे।

—रा० गौ०।

प्रेमपत्र—अर्थात् समालोचना संबंधी मासिक पत्रिका, सम्पादक श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०। व्यवस्थापक आयुर्वेदाचार्य श्री देवनारायण मिश्र, दारागंज प्रयाग। डिमाई आकारके ४८ पृष्ठकी पत्रिकाका मूल्य ३) वार्षिक और एक अंकका।-) छपाई, सफाई, सुंदर।

'प्रेमपत्र' के चैत्र और वैशाखके अंक हमारे सामने हैं। चैत्रके अंकके लेखोंमें कहानी, कविता आदिके अतिरिक्त 'ठाकुर गोपालशरण सिंहका काव्य, हिन्दी साहित्यमें समालोचनाकी छीछालेदर, हरिऔधजीका विवेचनात्मक गद्य और हमारे पाठकोंकी चिट्ठियाँ विशेष पठनीय आलोचनाएँ हैं। इसी तरह वैशाखके अंकमें हिन्दी काव्यमें राधाकृष्ण, हरिऔधजीका काव्य, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, समालोचनाका दूरबीन, हमारे पाठकोंकी चिट्ठियाँ सुंदर समालोचनाएँ हैं।

यों तो 'प्रेमपत्र' के पाठकोंको कविता, कहानी, गल्प-आदि जो आजकल साहित्यिक पत्रिकाओंके मुख्य स्तंभ बन गये हैं—काव्यगत सभी सामग्री इसमें मिलेगी, पर इस पत्रका मुख्य उद्देश्य सत्समालोचना ही है। इस युगमें जब हमारे हृदय पारस्परिक द्वेषसे जल रहे हैं। आलोचनामें पक्षपातपूर्ण नीतिका जी खोलकर सहारा लिया जा रहा है। एकको रसातल पहुँचाने, दूसरेको आसमानपर चढ़ानेके उद्देश्यसे चक्रगत आन्दोलनके रंगमें रंगी आलोचनाएँ हो रही हैं। उस समय गिरीशजी जैसे सरल और आडम्बरशून्य हृदयवाले सम्पादकके हाथसे ऐसे सत्समालोचक पत्रकी बड़ी आवश्यकता थी।

मैं तो इन अंकोंको एक सांसमें पढ़ गया। पढ़ते समय जान पड़ता था कि मेरी गिरीशजीसे साहित्यिक चर्चा हो रही है। इसका 'प्रेमपत्र' सार्थक नाम है। खरीसे खरी आलोचनाओंमें कहीं भी कटुता नहीं आने पायी है। भाषा और शैलीके संबंधमें क्या कहना है। आप एक ऊँचे कवि और उच्चकोटिके लेखक तथा सम्पादक हैं। पत्रिकाका कलेवर उतना चटकीला नहीं है जितनी उज्वल आत्मा है। प्रत्येक साहित्यसेवीका कर्तव्य है कि हर प्रकारसे गिरीशजीका हाथ बटाकर उनका उत्साह बढ़ावे और 'प्रेमपत्र' को अपनावे।

—रघुबरदयालु मिश्र 'मान'

'प्रभात' का 'हरिजनाङ्क'—सम्पादक—वशिष्ठ नारायणजी वर्म्मा, प्रकाशक तथा मुद्रक—चन्द्रशेखर प्रसाद 'प्रभात' प्रेस, नया चौक, बलिया। पत्रका वार्षिक मूल्य २॥), छमाही १॥) और प्रति अंकका)॥। मात्र। इस जुलाईके अंकका ≈) है जो आकार-प्रकारमें जागरण जैसा ५० पृष्ठका है।

प्रभातके इस अंकको मैंने बड़े चावसे, जी लगाकर, यथाशक्ति शांतचित्त होकर पढ़ा। इस अंकमें लगभग ९–१० कविताएँ हैं जिनमें 'सच्चा साधु, हमारे अछूत' सुरुचि और भावपूर्ण हैं। लेखोंमें 'हरिजन और अस्पृश्यता, हरिजन क्या उचित शब्द नहीं?' हरिजनोंकी हिन्दी सेवा, हरिजनोद्धार कैसे किया जाय? हरिजन समस्या, अस्पृश्यतापर महात्मा गांधीके विचार, शीर्षक लेख और "उद्धार" नामकी कहानी मननीय और हृदयस्पर्शी हैं। हम इन्हें इसलिये अच्छा कहते हैं कि इनके पढ़नेसे ऐसा भान होता है कि ये प्रतिहिंसा-रहित हृदय और शान्त चित्तसे लिखे गये जान पड़ते हैं। शेष लेख और कविताओंका ढंग वही है प्रायः जो रंग व्याख्यान-रंगमंचोंपर पेशेवाले वक्ताओंके धुआँ-धार व्याख्यानों और स्वयंभू-कवियोंकी रचनाओंमें देखनेमें आया करता है।

'हरिजन' जैसे गहन विषयपर सचमुच आज उन्हींको लेख और कविताएँ लिखनेका सच्चा अधिकार है जो पाश्चात्य और पूर्वीय संस्कृति, समाज, राजनीति, अर्थशास्त्र और धर्मविज्ञानके पंडित हैं। जिनके हृदय राग-द्वेष तथा प्रतिहिंसाके भावोंसे रहित हैं। जो संसारमें राम-राज्य लानेके हृदयसे इच्छुक हैं। इस अंकमें ऐसे विचारशील लेखकोंके लेखों और रचनाओंका अभाव-सा खटकनेकी बात है। पर सम्पादकजीके शब्दोंमें 'देश काल-परिस्थितिकी प्रतिकूलता' ने उन्हें वैसा अवसर नहीं दिया। इसका उन्हें दुःख है। हम हृदयसे चाहते हैं कि प्रभात शीघ्र ही 'मध्यान्ह' के रूपमें हमारे सामने आवे। इसके लिये आवश्यक है कि उदार सरस्वती सपूत लेखोंसे, लक्ष्मीपूत धनसे और सुपाठक सुरुचिसे इस पत्रकी सहायताकर इसे उठावें और इसके सहारे स्वयं उठनेका प्रयत्न करें।

—रघुबरदयालु मिश्र 'मान'

सहयोगी विज्ञान

(१) वैज्ञानिक सामयिक साहित्य

कल्पवृक्ष—(हिन्दी) अजमेरके जूनके अंकमें—१. आत्म-श्रद्धा, २. शोक और संतापसे बचनेका मार्ग, ३. जीवनकी सार्थकता, ४. मानसिक विश्राम, ५. मनुष्य-जीवनका यथार्थ ध्येय, ६. जिसको हम स्वाभाविक कहते हैं क्या वह वस्तुतः स्वाभाविक है? ७. क्षीणता, ८. ज्ञान-मार्ग, ९. मानसिक दुर्बलता और ज्ञानतंतुओंकी दुर्बलताको दूर करनेके उपाय। जुलाईके अंकमें—१. जीवनका अभिप्राय, २. जपमें विचित्र शक्ति है, ३. हँसते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिये, ४. दुःखोंकी दवा, ५. दीवान बहादुर अष्टाना साहबका भाषण, ६. मनुष्य-जीवनका यथार्थ ध्येय, ७. एकाग्रता और दिव्यशक्ति प्राप्त करनेके सरल साधन, ८. सर सेठ हुकमचन्द जीका भाषण, ९. भोजनका अध्यात्म-विद्यासे अविच्छिन्न संबंध और १०. अपने हृदय और आत्माका सत्कार करो। अगस्तके अंकमें—१. स्वतंत्रताका मार्ग, २. ज्ञान भंडारकी कुंजी, ३. स्वर्गीय शिखरपर पहुँचा हुआ मनुष्य, ४. कब्जकी पुरानी बीमारी, उसका कारण और उसको दूर करने के उपाय, ५. भावना और सिद्धि, ६. सफलताका मार्ग, ७. अन्तर्दृष्टि और अन्तर्ज्ञान, ८. जीवनका स्रोत परमात्मा ही है, ९. 'योगके कुछ रहस्यपूर्ण चुटकुले' तथा १०. बुरी आदतोंका विनाश करना' लेख हैं।

वैद्यकल्पतरु—(गुजराती) के मईके अंकमें—१. और फर्क क्या था, २. गर्दन तोड़ बुखार, ३. मूँगेके गुण, ४. दिन-चर्या, ५. बरफ, ६. तन्दुरुस्त और स्वच्छ मुख बनानेके सीधे नियम, ७. फारमौसाका कपूर, ८. वैद्यककी चर्चा, ९. अमरसका उपयोग, १०. वैद्य कल्पतरु लेखमालाके अन्तर्गत आरोग्य और आयुष्यके साथ प्राणायामका योग, तथा आरोग्य अथवा शरीर संरक्षण, जूनके अंकमें—१. काम-शास्त्र, २. दिनचर्या, ३. सर्प विषके सम्बन्धमें, ४. पंचामृत पर्पटीका उपयोग, और जुलाईके अंकमें १. जुदा-जुदा देशों-का आरोग्य-संरक्षण, २. सर्पविषके विषयमें, ३. अतीसार, ४. बंगका उपयोग, ५. आयुर्वेद और एकादशीका व्रत, ६. मानसिक उन्माद अथवा मनकी विषमता, ७. शारीरिक आरोग्यके साथ सदाचारका संबंध तथा अगस्तके अंकमें-१. अतिसार चूनामें औषधिके गुण क्या हैं?, २. पीयण क्या है? तथा संकल्प बलका शरीरपर असर, ३. शारीरिक सदाचार और ४. दुराचार, सुंदर लेख हैं।

रोशनी—के अपरैल-मईके अंकमें—१. "सन् १९३३ में विज्ञानके आविष्कार" २. घरेलू अर्थ शास्त्र, ३. पानीके एक बूँदकी कहानी, ४. क्या विज्ञानसे बेकारी बढ़ रही है? ५. कोकेनसे लाभ और हानि" तथा जूनके अंकमें—१. डाक्टर एन्० ए० या जनेक डी० एस्० सी०, २. व्यौ-हारिक फोटोग्राफी, ३. स्वास्थ्यके संबंधमें और बेकारोंके लिये, ४. मनोरंजक वैज्ञानिक खबरें, ५. पाठशालाओंके विद्यार्थियोंका स्वास्थ्य, ६. पंजाब रेडक्रासका मशवरा, ७. गेहूँके रोगका इलाज, ८. पंजाबी किसान, ९. संसारके विभिन्न देशोंके 'समयका नकशा' तथा जुलाईके अंकमें—१. मादाम क्यूरीकी कहानी, २. कठिन मार्ग जो कीर्ति-देवीके मंदिरतक जा पहुँचा, ३. हिजरी क़ुमरीसालोंकी तारीखोंके दिन मालूम करनेका तरीका, ४. स्वास्थ्य बयालीसी ५. नागरिकताके नये अनुशासन तथा ६. देहातके लिये तपतोड़ कुनैन, वैज्ञानिक लेख हैं।

(२) साधारण सामयिक साहित्य

क—मासिक

हंस—के अपरैल-मईके अंकमें—"जल", "टाइप राइटर", "पर्वत-मालाओंका निर्म्माण", जूनके अंकमें—"वाइ-टैमिन क्या हैं?" जुलाईके अंकमें—"वायु-मंडल और उसके तुच्छ पदार्थ", "मणि-मुक्ता" अगस्तके अंकमें—वाइटे-मिन ए, 'यूरोपीय रेलवे, वैज्ञानिक लेख हैं।

भारती—के जूनके अंकमें—"संसारका पुनर्विभाजन" "हम नंगे-भूखे क्यों हैं?", "विश्व-सर्वनाशके चार कारण" जुलाईके अंकमें—"स्त्रियाँ भी धन कमावें" वैज्ञानिक लेख है।

विश्वामित्र—के जुलाईके अंकमें—"सोवियट रूसकी सामाजिक व्यवस्था", "औद्योगिक क्रान्ति", "मध्ययुगका भारतीय समाज", "पूँजीवाद और भावी महायुद्ध" और "वैज्ञानिक चमत्कार" स्तंभ जो हमेशा रहता है, अगस्तके अंकमें—चयनिका स्तंभमें "बंदरोंका बैंक", "मनुष्य-भक्षी जर्मन", "मैडम डिएनके पाँच जुड़वाँ बच्चे", "अमेरिकामें नारी राज्य", अन्तर्राष्ट्रीय स्तंभमें "भूखों मरो और पानी बिना तड़पो", तथा विज्ञान चमत्कार "स्तंभमें", "बोलने-वाली किताब" वैज्ञानिक लेख हैं।

सुधा—के मईके अंकमें—"सेफ्टी रेजर", "ब्लेड तथा उनका प्रयोग" जूनके अंकमें—"पृथ्वीकी आयु" जुलाईके अंकमें—"दूध" "वर्तमान योरपमें त्रिवाद", "किसान कैसे उठें", अगस्तके अंकमें—"हम कैसे जीते हैं"? वैज्ञानिक लेख हैं।

गंगा—के अप्रैलके अंकमें—"स्वास्थ्य और उसकी रक्षा", "स्याही", "भूकम्प-विज्ञान", "सिनेमा" मईके अंकमें—"चार्ल्स डारविन" "काम-वासना", "शासन-विधान", "इस्पात", "वेदमें रोग और उनकी औषधि", "विवाहका भारतीय आदर्श", "चैतन्य-मीमांसा", और जूनके अंकमें—"योग-विज्ञान", "कृत्रिम-रेशम", "डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार", "रेडियम" "हिन्दुस्थानमें साबुनका व्यवसाय", "विज्ञानको भारतका दान" जुलाईके अंकमें—"हिन्दू-गणितका संक्षिप्त इतिहास", "सार्वभौम शान्ति और समाज-विज्ञान", "सामुद्रिक-विज्ञान", "साम्यवाद और उसकी शाखाएँ", "आर्यभट्ट, डा० शंकर ए० भिसे" "वानस्पतिक विज्ञानसे जीवोंका संबन्ध", वैज्ञानिक लेख हैं।

कुमार—के मार्चके अंकमें—"तत्ववेत्ता महापुरुष वैलेस" "टेलीफोन", "चर्म विकार", अप्रैलके अंकमें—"संसारके प्रारंभिक प्राणी" "स्वास्थ्य-प्रद स्नान" वैज्ञानिक लेख हैं।"

अलंकार—के जुलाईके अंकमें—"जप" वैज्ञानिक लेख है।

विशाल भारत—के अगस्तके अंकमें—"मैडमक्यूरी", "साम्यवाद क्यों पैदा हुआ"? प्रजातंत्रका भविष्य, तथा "अराजकता—उसका सिद्धान्त और आदर्श" वैज्ञानिक लेख हैं।

चाँद—के जूनके अंकमें—"गो-रक्षाद्वारा स्वास्थ्य और सम्पत्ति" जुलाईके अंकमें—"कायस्थ जातिकी उत्पत्ति", "औद्योगिक संकटका जन्म", "देहातोंकी सामाजिक दुरवस्था", संबंधोंके विकासके कारण", "गार्हस्थ्य-स्वास्थ्य" "कृत्रिम रेशम", "संघ-शासनका विकास", "कला तत्व" और "शिक्षितोंकी बेकारीका भविष्य" अगस्तके अंकमें—"कोष्ठ-बद्धता और उसकी प्राकृतिक चिकित्सा" वैज्ञानिक लेख हैं।

बालक—के मईके अंकमें—"चेचक", विहारका खनिज धन", जूनके अंकमें—"कूड़ेसे सम्पत्ति कैसे पैदा होती है?" "विचित्र विश्वकी विचित्र बातें", "गर्दन तोड़ बुखार", "पनामाकी नहर", वैज्ञानिक लेख हैं।

उषा—के मार्च-अप्रैलके अंकमें—"जादूकी दुनियाँ" वैज्ञानिक लेख है।

चमचम—के जुलाईके अंकमें—"रँगाई" वैज्ञानिक लेख है।

ख—साप्ताहिक साहित्य

जागरण—के १२ फरवरीके अंकमें—"बेकारीका प्रसाद", "भारतीय किसानोंका कृषिसंबंधी प्राकृतिक भौगोलिक ज्ञान", १६ अप्रैलके अंकमें—"आलू खाकर भी मनुष्य बलवान रह सकता है।" २८ मईके अंकमें—"जीवनमें कार्बनकी उपयोगिता" ४ जूनके अंकमें—"असली और नकली साम्यवाद" ११ जूनके अंकमें—"अंग्रेजीके कुछ शब्द, जिनके हिन्दी पर्यायकी आवश्यकता है" १८ जूनके अंकमें—"साम्यवाद ही क्यों?" "भारतमें फलित-ज्योतिषका विकास", "वर्तमान रूसकी शिक्षा-प्रणाली", २५ जूनके अंकमें—"साम्यवादसे सावधान", "वर्तमान रूसकी शिक्षा प्रणाली", "ज्योतिषकी विभिन्न शाखाओंका समन्वय" २ जुलाईके अंकमें—"नाक्षत्र और सावन दिवस" और २३ जुलाईके अंकमें—"विदेशी बीमा-कम्पनियोंकी लूट" श्रावण कृष्ण ११के अंकमें—"साम्यवाद और उत्पत्तिके साधन" और श्रावण शुक्ल ३के अंकमें—"क्षय और उससे बचनेका उपाय", "क्या बड़ी-बड़ी मशीनोंकी जरूरत नहीं है?" "उल्कापात", वैज्ञानिक लेख हैं।

प्रभात—के ३ जुलाईके अंकमें—"हमारे देशमें तम्बाकू" वैज्ञानिक लेख है।

विकास—के ३० जूनके अंकमें—"भारतीय कला-कौशल और उसका भविष्य" वैज्ञानिक लेख है।

स्वराज्य—के ५ जूनके अंकमें—"यत्र-तत्र-सर्वत्र"के अन्तर्गत बिषय, १२ जूनके अंकमें—"मिट्टीसे रोग-चिकित्सा", "आँखोंका मरहम—नींद", "दुनियाँकी दौड़" १९ जूनके अंकमें—"पशु-चिकित्सा", यह लेख चल रहा है। "नागरी-लिपिमें सुधार और हिन्दी साहित्य सम्मेलन", १० जुलाईके अंकमें—"नीलाम्बरसे तारोंकी वृष्टि" १७ जुलाईके अंकमें—"स्वास्थ्य-विज्ञान" यह स्तंभ प्रायः हर अंकमें रहा करता है। "अगस्तके अंकमें"—"उड़ियाजादूकी करामात", और १४ अगस्तके अंकमें—"रीढ़को ठीक रखो", "सूर्य-प्रकाशमें विटामिन्स वैज्ञानिक लेख हैं ?"

प्रताप—के २२ अप्रैलके अंकमें—"प्लेगसे बचनेके उपाय" और "विधाताके विश्वमें" भी सुंदर नोट हैं, १७ जूनके अंकमें—"नवीन संसारके कुछ महत्वपूर्ण विषय" "चीनमें गाँवोंका पुनर्निर्माण", १५ जुलाईके अंकमें—"जापान सस्ता माल कैसे तैयार करता है ?" २२ जुलाईके अंकमें—"इस्पातके उद्योगका संरक्षण" २९ जुलाईके अंकमें—"कोहेनूर हीरेका इतिहास", "किसान कैसे उठें ?" १२ अगस्तके अंकमें—"भारतीय व्यापारमें ब्रिटिश स्वार्थकी तूती", "भारतकी आर्थिक परतंत्रता", १९ अगस्तके अंकमें—"सोवियटरूसके किसान", २६ अगस्तके अंकमें—"क्या तोंद घट सकती है ?"

जयाजी प्रताप—के १५ मार्चके अंकमें—"कीड़ोंके-द्वारा थूवर नष्ट करनेका आसान तरीका", "प्रलयका विचित्र वरदान-हीरा ?", १९ अप्रैलके अंकमें—"व्यापारसे मशीनोंका संबंध", "सोवियटरूसमें बच्चे क्या पढ़ते हैं ?" ३ मईके अंकमें—"फलोंके मुरब्बे" १७ मईके अंकमें—"हजामत और स्वास्थ्य", ३१ मईके अंकमें—"लाल पानीकी वर्षा" ७जूनके अंकमें—"उद्योगधंधे", "शिक्षा संसार" "खुसीटा या फुट एण्ड माउथ डिजीज" १४ जूनके अंकमें—"वैज्ञानिक संसारके नोट", "पंचांगमें शुद्ध गणितका महत्व", २१ जूनके अंकमें—"शीतला रोग", २८ जूनके अंकमें—"ट्रिक फोटोग्राफी" १२ जुलाईके अंकमें—"रेडियमकी अमर आविष्कर्त्री", "लड़के फेल क्यों होते हैं ?" और १९ जुलाईके अंकमें—"फसलोंको कटा कीड़ोंके नुकसानसे बचानेके उपाय" २६ जुलाईके अंकमें—"वर्षाऋतुमें स्वास्थ्यरक्षा" ९ अगस्तके अंकमें—"कम्युनिज्म" "व्यायाम-संबंधी कुछ उपयोगी बातें", "ग्राम सुधार", "प्राचीन भारतमें वायुयान, १६ अगस्तके "अंमेक—कब्ज (मल-बद्धता) की पुरानी बीमारी", और २३ अगस्तके अंकमें—"यमदूत मक्खियाँ, "उपले बनाना महापाप है"। वैज्ञानिक लेख हैं।

(३) चयनिका

१. बहरा आदमी सुनने लगा

हवाई जहाजपर चढ़नेसे

१९ मार्चकी तारीखमें पत्रोंमें कलकत्तेका यह समाचार छपा था। "हवाई जहाजोंका सरकस दिखानेवाली कम्पनी-के केप्टेन बरनार्डने 'स्टैटसमैन' को एक चिट्ठीमें लिखा है कि हवाई जहाजपर चढ़नेसे एक बहरा आदमी सुनने लगा।

केप्टेन बरनार्ड कहते हैं कि गत सप्ताह हवाई सरकस जब पटियाले गया था तब महाराजके एक हिंदुस्तानी मित्र सरकसके एक हवाई जहाजपर चढ़कर उड़े। वे वर्षोंसे बहरे थे मगर जब हवाई जहाजसे सैर करके लौटे तब उनको सुनाई देने लगा और उनका बहरापन दूर हो गया।

केप्टेन बरनार्ड कहते हैं कि ऐसी घटना पहली ही बार हुई है।"

परन्तु विज्ञानके पिछले एक अंकमें हम इसी प्रकार बहरापन दूर होनेकी घटना दे चुके हैं। —रा० गौ०

२. मुर्देको जिलाया

(क) डा० स्मार्नोकी करामात

अनेक पत्रोंमें मुर्देको जिलानेका एक समाचार छपा है। २८ मईके "स्वराज्य"में इस विषयमें "यत्र-तत्र-सर्वत्र" स्तंभमें इस सम्बन्धका बड़ा ही उपयोगी यह नोट निकला है।

वैज्ञानिक लोग नित्य नये आविष्कारोंद्वारा ईश्वरीय सृष्टिमें जिस सीमातक हस्तक्षेप कर संसारको चकित कर रहे हैं, उसपरसे तो यही कहा जा सकता है कि किसी दिन वे ईश्वरका अस्तित्व ही मिटा देंगे। पिछले कई बर्षोंसे

मनुष्यकी आयु बढ़ानेके जो-जो प्रयत्न हो रहे थे, उनमें हाल हीके एक शस्त्रोपचारने चार चाँद लगा दिये हैं। अर्थात् अब मृतकके शरीरमें शस्त्र-क्रियाद्वारा फिरसे प्राण संचार करके उसे जिला देनेका प्रयोग भी सफलतापूर्वक कर दिखाया गया है। गत २७ फरवरी (१९३४) को रूसके मास्को नगरमें दिनके ग्यारह बजे एक सज्जन रास्ता चलते हुए अचानक गिरकर मर गये। उनकी अवस्था ४३ वर्षकी थी। पुलिस-द्वारा अस्पताल पहुँचाया जानेपर तीन डाक्टरोंने भी उनके मर जानेका सार्टिफिकेट दे दिया। किंतु वहाँके विश्व-विद्यालयके मेडिसिनके प्रोफेसर डॉ० स्मार्नो उस समय अस्पतालमें मौजूद थे; उन्होंने उन लोगोंको कई तरहसे सचेत किया; किंतु डाक्टरोंने उनकी एक न सुनी। तब लाचार होकर उन्हें अपने एक नवीन तथ्यकी सत्यता प्रकट कर दिखानेके लिये तैयार होना पड़ा। उन्होंने मृत देहको आपरेशन-टेबलपर लिटाकर बगलमें चीरा लगाया और 'हार्ट' (हृदय) को खोलकर बाहर निकाल लिया। इसके बाद उसे (हृदय-यंत्र को) "अल्ट्रा शार्ट रेडियो"से पम्प किया। (इस कार्यके लिये डॉ० स्मार्नोने एक विशेष-यंत्र तैयार किया है।) इसीके साथ-साथ उन्होंने एक औषधिका "इन्जेक्शन" भी दिया। लगभग ४५ मिनटके बाद अचानक बंद पड़ा हुआ हृदय सचेतन और गतिमान होगया। इसके बाद ही एक घंटेके अन्दर वह हृदययंत्र रोगीके शरीरमें यथा-स्थान संलग्न करते ही रोगी, तत्काल आँखें मलकर जीवित हो उठा और अबतक वह पूर्ववत् सब काम कर रहा है।

डॉ० स्मार्नोका कथन है कि यदि रोगके कारण हृदयमें किसी प्रकारका जख्म न हुआ हो और साधारणरूपसे अचानक हृदयकी क्रिया बंद होकर किसीकी मृत्यु हो गयी हो तो वह व्यक्ति निश्चय-पूर्वक इस नये प्रयोगद्वारा पुनर्जीवित किया जा सकता है। यह बात तो विज्ञान और आयुर्वेदके शरीरशास्त्र-द्वारा ध्रुव-सत्यरूपमें प्रमाणित हो चुकी है कि 'हृदय' ही हमारे शरीरमें प्राणोंका निवासस्थान है। अतः यदि यह क्षत-विक्षत न हुआ तो अवश्य थोड़ेसे प्रयत्नद्वारा मनुष्यके जीवनके पुनरुद्धारमें इससे सहायता मिल सकती है।

सन् १९१५ में जर्मन-महायुद्धके समय 'चिकित्सा-शिविर'में एक इंजिनियरने एक्स-रे-विभागमें काम करते हुए जब शरीरमें घुसी हुई गोलीका स्थान निश्चित कर दिखाया तो इसके बाद लगातार उसे यही काम करना पड़ा। एक दिन कुछ मृत-देहोंकी परीक्षा करते हुए उसने देखा कि एक मृत व्यक्तिके हृदय यंत्रमें गोली टूटकर घुस गई है और हृदय विद्ध होगया है। किंतु अन्य साथियोंने उसकी इस बातपर विश्वास नहीं किया। इसके बाद जब उसने मृतकके शरीरको चीरकर वह गोली निकाल ली तो क्षण-मात्रका भी विलम्ब न होकर हृदय-धड़कने लगा और वह आदमी पुनर्जीवित होगया।

विएनाके प्रोफेसर 'इजिनसेयर'ने भी एक मृत देहमें पुनः प्राण-संचार किया है। रास्ता चलते हुए ठोकर खाकर एक व्यक्ति गिर पड़ा और मर गया। डॉक्टरोंने भी जाँचके बाद उसे मरा हुआ बतलाकर सार्टिफिकेट दे दिया और दफनानेके लिये उस मृत देहको बाहर निकाला गया। किंतु उस समय प्रो० इजिनमेयर अपने वार्डमें घूम रहे थे; उन्होंने लोगोंसे उस मृतकका हाल सुनकर उसके शरीरकी परीक्षा की और अपने एक नये यंत्र apparatus का उपयोग किया। उन्होंने बिजलीकी तरंगद्वारा मृतकका हृदय-द्वार उन्मुक्त कर हृदय यंत्रको Mesage (मालिश) दिया। केवल बीस ही मिनटके बाद हृदयमें स्पंदन होने लगा और मृतकने निश्वास त्यागा। इसके बाद क्रमशः फिर स्वास्थ्य-लाभकर वह व्यक्ति पूर्ववत् काम करने योग्य हो गया और आज भी वह जीवित है। प्रोफेसर इजिनमेयर-का कहना है कि shoek (धक्के) के कारण उसका हृदय-यंत्र स्तंभित होगया था, वह यथार्थमें मरा नहीं था। वे यह भी कहते हैं कि इस अस्त्रोपचारमें बड़ी फुर्तीसे काम करना पड़ता है और यदि रोगी एकदम दुर्बल न हो गया हो तो ऐसा व्यक्ति निश्चय-पूर्वक पुनर्जीवित हो सकता है।

लगभग सौ वर्ष पूर्व एक फरासी चिकित्सक (लॉरी) ने एक आश्चर्य-जनक प्रयोग-द्वारा मृतकके देहमें प्राण संचार किया था। नेपोलियनकी रूसपर की हुई चढ़ाईके समय "मार्शलद" आर्नाडो भीषण-रूपसे आहत होगये थे और मरा हुआ जानकर उनका शरीर रणक्षेत्रमें ही छोड़ दिया

गया था। किन्तु उसका ए. डी. सी. अपने स्वामीकी देहको तुषाराच्छादित देखकर सर्जन लॉरीके पास उठा लाया। सर्जनने भी उन्हें मृतक जानकर वक्षस्थलमें घुसी हुई गोलीको निकाल लिया और उसके नाक तथा मुँहमें निश्वास-वायुको पहुँचाया। कुछ ही क्षणके पश्चात् मार्शलदने आँखें खोलकर निश्वास त्यागा और तत्काल उठकर बैठ गये। उनके इस पुनर्जीवनको, उस समय, लोगोंने भगवानकी ही कृपाका फल समझा। क्योंकि कृत्रिम श्वासोच्छ्वासकी क्रियापर उस समयतक लोगोंको विश्वास नहीं हुआ था।

इस प्रकार इस युगमें मृतकको, विशेषकर आकस्मिक मृत्यु हो जानेवाले व्यक्तिको पुनर्जीवित करनेके प्रयोगमें आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है।

मैंने विज्ञानमें इससे भी अधिक सरल स्वानुभूत विधि भाग ३७ सिंहकी पाँचवीं संख्यामें पृ० १७१ पर दी थी। किसी तरह धुकधुकी बन्द होने मात्रसे मरे हुए आदमीके लिये इस विधिसे प्रायः सफलता होती है। पाठकोंके सुभीतेके लिये उसे हम फिर उद्धृत करते हैं। इसे याद कर लेना अधिक लाभकर है।

(ख) अनुभूत प्रयोग

मुर्दे को जिलाना

कभी-कभी स्पष्टतः अकारण ही धुकधुकी बन्द हो जाती है और प्राणीकी मृत्यु हो जाती है। ऐसी अवस्थामें ओषधि कोई काम कर नहीं सकती। अचानक अन्त होनेके कारण कोई उपाय मरनेके पूर्व हो नहीं सकता। परन्तु ऐसा देखा गया है कि कभी-कभी मृत्युके २४ घंटेके भीतर ही फिरसे मनुष्य जी उठा है। नीचे लिखी क्रिया कई मौतोंमें सफलतापूर्वक की गयी है और फिरसे साँस और धुकधुकीकी स्थापना हो गयी है। अतः इस क्रियाको सभी मौतोंपर आजमाना चाहिये। परीक्षामें कोई हानि भी नहीं है। यह क्रिया धुकधुकी बन्द होते ही करनी चाहिये। जितनी अधिक देर होगी उतनी ही सफलताकी आशा कम होगी।

लाश टेढ़ी हो गयी हो तो सीधी कर दो। बायाँ पैर और बायाँ हाथ मिलकर माथेमें जल्दी-जल्दी दस बार लगाओ। फिर दाहिने हाथ और दाहिने पैरको मिलाकर ऐसा ही दस बार करो। फिर चारों मिलाकर बीस बार माथेसे लगाओ। फिर बायीं करवट करके, बायें फेफड़ेके ऊपर पीठमें थप्पड़ मारो। बायीं करवट ही रहते दोनों टाँगें इस तरह उठाओ कि कमरतक उठ जाय। तब बायें चूतड़पर आठ थप्पड़ मारो। फिर चित्त करके नरम हाथसे बायें सीनेपर तीस थपथपी दो। अब दोनों हाथ लेकर घुटनोंतक चालीस बार फैलाओ और बटोरो। इसी तरह टाँगें सीधी सीनेतक पचास बार ले जाओ। फिर बार-बार लेटाओ और बैठाओ। फिर आँखें खोलकर ठंढा पानी एक-एक बूँद डाल दो। फिर मूर्द्धापर अर्थात् सिरपर जहाँ बच्चोंका तालू होता है धीरे-धीरे दस थपथपी दो। मुर्दा जब अपनेसे साँस लेने और ताकने लगे, तब यह क्रिया बन्द कर दो।

अनेक बार अल्पमृत्यु उपायके अभावमें हो जाती है। लोग लाशको जलाने या बहाने या दफनानेकी बड़ी जल्दीमें होते हैं। परन्तु साँपके काटनेपर या विषके प्रभावपर अथवा इसी तरहकी अकाल मृत्युकी दशामें लाशको कमसे कम तबतक देखना और सुरक्षित रखना चाहिये जबतक उसका बिगड़ना न आरंभ हो जाय।

(ग) मुरदा बच्चेमें जान डाल दी

डाक्टरोंकी सफल परीक्षा

लण्डनकी खबर है कि वेकफील्डमें कोलिन बाउन नामक एक बच्चा है, जो एक मास पूर्व मुर्दा पैदा हुआ था और जिसके हृदयमें डा० ने abseneiin का इन्जेक्शन देकर जान डाल दी थी। अब इसी प्रकारकी एक खबर न्यूयार्कसे मिली है। वहाँ भी एक बच्चा उपरोक्त प्रकारसे पैदा हुआ और डाक्टरने उसमें जान डाल दी।

३. सतजुगी आदमीकी ठठरी

इक्कीस हाथ लम्बी

मध्यप्रान्तके दैया (स्टेट) जमींदारीके पैनेतिरा ग्रामके पास नदीके किनारे एक अस्थिपञ्जर मिला है जिससे मानव जातिके इतिहासपर बहुत प्रकाश पड़नेकी सम्भावना है। मालूम होता है

कि एक किसानने बालूके ऊपर हड्डी निकली हुई देखी और उसे खींचकर बाहर निकालना चाहा। उसने बड़ा परिश्रम किया पर उसे बाहर न निकाल सका तब वह गाँवमें गया और अपने मित्रोंको इसकी सूचना दी। अनन्तर दैया जमींदारीके मालिकसे अस्थिपञ्जरको खोदकर निकालनेकी अनुमति माँगी गयी। अनुमति मिली और गाँव वालोंने ३१॥ फुट लम्बा अस्थिपञ्जर निकाला। यह मनुष्यका पञ्जर मालूम होता है। पैरकी हड्डियाँ ही १० फुट लम्बी हैं। तीन आदमियोंने मिलकर इस पञ्जरको उठाया और वह रामगढ़के किलेमें रखा गया है।

उपर्युक्त समाचार कई पत्रोंमें निकला है। पुराणोंमें कहीं-कहीं उल्लेख है कि सतयुगमें इक्कीस हाथके आदमी होते थे। क्या यह उन्हींमेंसे किसी-की ठठरी तो नहीं है?

—रा० गौ०

४. बिजलीके खतरेसे बचनेके उपाय

१. नासिखुओंसे फिटिंग न कराइये और सस्ती फिटिंगके लोभमें पड़कर व्यर्थ ही अपनी विपत्ति न बढ़ाइये।

२. बिगड़े हुए टेबिलफैन (या टेबिल लैंप) से काम मत लीजिये।

३. इधर-उधर हटायी जानेवाली दूकानकी बत्तीका होल्डर, पीतलका न रखकर रबरका रखिये। बिजलीका प्रवाह बंद किये बिना बत्तीका वल्व न बदलिये और न लैंप या पंखेको ही उठाइये।

४. इसी तरह टेबिलपर चलते हुए पंखे या जलते हुए लैंपकी तारकी डोरीको भी बिजलीका सम्बन्ध काटे बिना हाथ मत लगाइए। संभव है, कुछ खराबी आ जानेके कारण उसमें भी बिजलीका प्रवाह आ गया हो।

५. सालमें एक बार किसी योग्य आदमीसे फिटिंग तथा पंखे आदिकी जाँच करा लिया कीजिये।

६. दो छेदोंवाला प्लग न लगवाकर तीन छेदोंवाला लगवाइये। इसके दो छेदमें तो बिजलीका प्रवाह ले जाने-वाले दोनों तार लगा दिये जायँगे और तीसरे छेदवाला तार जमीनमें खूब गहरा गाड़ दिया जायगा, जिससे बिजलीका धक्का लगनेकी संभावना न रहेगी।

७. सतर्क रहते हुए बहुत ज्यादा भय भी न कीजिये, क्योंकि बिजलीके धक्केकी अपेक्षा यह विश्वास कि बिजलीसे आदमी फौरन मर जाता है, ज्यादा नुकसान पहुँचाता है।

बिजलीका धक्का लगनेपर क्या करना चाहिये?

न्यूयार्ककी "नेशनल इलेक्ट्रिक लाइट असोसियेशन" नामक संस्थाने बिजलीका धक्का खाये हुए मनुष्यको बचाने-के जो उपाय बताये हैं, उनका सारांश नीचे दिया जाता है—

बिजलीका धक्का लगनेसे आदमी तुरन्त मर नहीं जाता। उसके शरीरकी नसें अवश्य तन जाती हैं और साँस रुक जाती है जिससे वह मुर्दासा जान पड़ने लगता है। यदि ठीक तरहसे साँस लेनेकी क्रिया फिर चालू की जा सके तो उसके प्राण आसानीसे बच सकते हैं।

(१) सबसे पहले स्विच उठाकर बिजलीका प्रवाह बन्द कर दीजिये। फिर धक्का खाये आदमीको बिजलीके संसर्गसे हटाकर सूखी चटाई या सूखे फर्शपर पेटके बल लम्बा लिटा दीजिये—सिर एक ओरको जरा मुड़ा रहे जिससे मुँह और नाकके छेद खुले रहें और साँस लेनेमें सुभीता हो।

स्विचको हटाये बिना बेहोश आदमीको छूनेकी कोशिश न कीजिये नहीं तो आप खुद बेहोश होकर गिर पड़ेंगे। यदि स्विच बन्द करनेका मौका न हो, तो लकड़ीकी कुर्सी या तख्तेपर खड़े होकर धक्का खाये हुए आदमीको झटकेके साथ बिजलीसे अलग कीजिये। लकड़ीके अभावमें आठ-दस तह किया हुआ बोरा या कागज, जो भीगा हुआ न हो काममें लाया जा सकता है। यह भी सम्भव न हो तो आक्रांत मनुष्यके शरीरको छुए बिना केवल उसका ढीला कुरता या अन्य कपड़ेका छोर, यदि वह सूखा हो तो, पकड़कर झटसे उसे अलग खींच लीजिये।

(२) इसके बाद डाक्टरको फौरन बुला भेजिये। जब-तक वह न आ जाय, तबतक नकली स्पन्दन क्रियाकी कोशिश जारी रखिये। पहले जल्दीसे घायल व्यक्तिके मुँहमें

उँगली डालकर देख लीजिये। यदि उसके भीतर सुरती या नकली दाँत वगैरह हों तो उन्हें निकाल दीजिये। तब भीड़ हटाकर, जिसमें ताजी हवा मिलनेमें रुकावट न हो, किसी आदमीसे आप लेटे हुए व्यक्तिकी जीभ बाहर निकालनेको कहकर उसकी जाँघोंके पास घुटने टेककर और सिरकी तरफ मुँह किये हुए बैठ जाइये। अब अपनी हथेलियोंसे उसकी पीठके नीचे कमरसे जरा ऊपरके हिस्सेको पकड़ लीजिये। दोनों हाथोंके अँगूठे एक दूसरेको छूते रहें और उँगलियाँ नीचेकी पसलियोंकी ओर फैली रहें।

—दैनिक "अर्जुन"से

५. लाल नीलम बनानेका तरीका

अलूमीनियमका उपयोग

(ले० लोगैन ब्रस)

लाल अब भी पूर्वका प्यारा रत्न है। हिन्दुस्थानमें ऐसे राजा बहुत ही कम होंगे जिनके पास झलझलाता हुआ लाल सुर्ख-ऐसा एक पत्थर न हो, लेकिन पश्चिममें रसायन-तत्ववेत्ताओंद्वारा नकली लाल बनाने लग जानेसे असली लालोंकी चमक कुछ फीकी पड़ गयी है। ये नकली या कृत्रिम लाल कई चीजोंके सम्मिश्रणसे बनते हैं और चमक वजनसे और रंगमें असली लालोंसे बिलकुल मिलते हैं। आधुनिक विज्ञान नीलम, जमुर्रद (हरित-मणि) और पन्ना भी बना सकता है और ये सारे रत्न बहुत बड़े आकार और वजनके बनाये जा सकते हैं। वे कुदरती रत्नोंकी सारी कसौटियोंपर खरे उतरेंगे। बिजलीकी भट्टीमें कृत्रिम हीरा भी बनाया जा सकता है किन्तु अभीतक बड़े-बड़े हीरे बनानेका रहस्य ज्ञात नहीं हो सका है। अभीतक एक इंचके पचासवें भागसे बड़े व्यासके हीरे नहीं बनाये जा सके हैं ये हीरे यद्यपि खुर्दबीनसे ही देखे जानेके योग्य होते हैं लेकिन उनमें असली हीरों जैसी ही कठोरता होती है और उनके ऊपर वैसे ही चमकीले दाने होते हैं।

नकली रत्नोंका निर्माण करना बड़ा विचित्र-सा काम है। नकली हीरा बनानेमें तो मनुष्यको इतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई है लेकिन वह इतने बड़े-बड़े लाल बनानेमें समर्थ हुआ है जितने बड़े बर्माकी खानोंसे कभी नहीं निकले।

बर्माकी खानोंसे निकलने वाले अधिकतर लाल ढाईसे तीन औन्स तकके वजनके थे लेकिन आज कलके रसायन-शास्त्री बिजलीकी सहायतासे बिजलीकी भट्टियोंमें दस-दस टन (करीब २८० मन)के लाल बनाने लग गये हैं और उनमें असली लालों जैसी चमक ही नहीं होती, वे कठोरता तथा लालके अन्य लक्षणोंमें भी लालसे बिल्कुल मिलते-जुलते होते हैं।

कृत्रिम लाल कैसे बनते हैं ?

नकली हीरा चमकीला दानेदार जमाया हुआ कार्बन होता है, लेकिन लाल, नीलम तथा और भी कई कीमती पत्थर एल्युमिनियम धातुसे बनते हैं। एल्युमिनियमकी औक्साइड्सको लाल बनानेके लिये बिजलीकी भट्टीमें चढ़ा दिया जाता है। भट्टीके भीतरकी ओर एक फुट व्यासके कार्बन झुका दिए जाते हैं और तब उसमें कई हजार इकाइयों (ampers) की एक गोल विद्युद्धारा प्रवाहित की जाती है, विद्युद्धाराको गोल बनानेके लिये भट्टीमें स्टीलकी दीवारें होती हैं जो पानीसे ठण्डी होती रहती हैं इस गोलाकार विद्युद्धारासे एल्युमिनियम गल-गलकर भट्टीमें गिरती जाती है और उससे वह भारी लाल भी बनता चला जाता है, जब पिघली हुई एल्युमिनियमसे यह भर जाती है, और उसमें रखे हुए सब कार्बन भी जल चुकते हैं, तो बिजलीकी धारा रोक दी जाती है और वह गली हुई धातु भट्टीमें ठण्डी होनेके लिये छोड़ दी जाती है। जब उसकी ऊपरकी पपड़ी कठोर हो जाती है तो उसे क्रेनद्वारा उठाकर लोहेकी भट्टीमेंसे निकालकर ठण्डा होनेके लिये एक ओर बालूपर रख देते हैं। वहाँ वह लगभग एक सप्ताहमें धीरे-धीरे ठण्डी हो लेती है।

जब कोई मनुष्य इन लाल बनानेवाली जलती हुई भट्टियों और एक पंक्तिमें रखे हुए भारी-भारी लालोंको देखता है तो वह आश्चर्यमें डूब जाता है और उसका ख्याल बीसवीं सदीके इन बिजलीके चमत्कारोंकी ओर आकर्षित होता है।

—दैनिक 'नवयुग'से

६. जलमें मीन पियासी

[ले०—श्रीमान् घनश्यामदासजी बिडला]

कबीरदासकी एक उक्ति "जलमें मीन पियासी" है। जुलाई की 'सरस्वती' में श्रीयुत घनश्यामदास जी बिड़लाने इसके बदले "पानीमें मीन पियासी" नामका शीर्षक देकर एक लेख लिखा है जिसमें बतलाया है कि वर्त्तमान आर्थिक संकटका कारण क्या है? न तो महामारी है, न राजविप्लव है, न अनावृष्टि या अतिवृष्टि है, न अग्निप्रलय है। खलिहान नाजसे भरे हुए हैं; किन्तु पेट खाली है। माल बेचनेवाले लालायित हैं, गोदाम ठसाठस भरे हुए हैं, उधर लेनेवाले चीजोंके लिये तरस रहे हैं। चीज़ें सभी हैं, किन्तु गाँठमें दाम नहीं। सामने हलवेसे भरी थाली रखी है, पर हाथ बँधे हैं। पुराने जमानेमें जब फसल बहुत होती थी और दाम मंदे होते थे, तब लोग सुकाल कहते थे। आज भी बहुतायत है, दाम भी मंदे हैं तो भी सुकाल नहीं, दुकाल है। इस विचित्रताकी चर्चा करके जो कुछ आप लिखते हैं, वह विज्ञानके पाठकोंको भेंट है।　　　　--रा० गौ०

'यह क्यों? इसीका यहाँ विवेचन करना है। आगे बढ़नेसे पहले हम सिक्केकी करामातको कुछ समझ लें। जब हम कहते हैं कि वस्तुओंके दाम गिर गये या चढ़ गये हैं, तब हमारा मतलब यह होता है कि वस्तुओंकी अमुक माप या तोलके लिये हमको कम या अधिक परिमाणमें सिक्के देने पड़ते हैं। मतलब यह है कि चीजोंके दामकी मापका एक-मात्र साधन इस समय सिक्का है। इसलिये यदि सिक्केके रहस्यको न समझा, तो तेजी-मंदीका खेल समझना आसान नहीं और यह कोई जटिल प्रश्न भी नहीं है। झूठ-मूठ लोगोंने इसे जटिल विषय मान लिया है। अच्छा, सिक्केके बारेमें एक भ्रांत धारणा तो यह है कि सिक्केके दाम स्थिर हैं। उदाहरणके लिये लोग समझते हैं कि एक रुपयेके १६ आने और ६४ पैसे बँधे हैं; इसलिये इसके दाम स्थिर हैं। किन्तु यह एक बड़ी भारी गलत-फहमी है। यदि हम यह कहें कि आध सेर पानीकी कीमत आध सेर जल है, तो इससे यह साबित नहीं होता कि पानीकी कीमत स्थिर है। पानीकी कीमत मापनेमें आप पानीको ही मापदंड नहीं बना सकते। तो फिर सिक्केकी कीमत मापनेमें उसीके अंग १६ आने या चौंसठ पैसेको क्यों मापदंड माना जाय? जैसे हम चीजोंकी कीमतकी माप सिक्केसे करते हैं, वैसे ही सिक्केकी कीमतकी माप वस्तुओंसे ही हो सकती है और जब हम सिक्केको वस्तुओंसे मापेंगे, तब पता चलेगा कि सिक्केकी दर वस्तुओंसे कहीं अधिक अस्थिर है। मान लीजिये कि हम एक ऐसे मुल्कमें पहुँच गये हैं जहाँ सोना चारों तरफ मिट्टीकी तरह पड़ा हो और अन्नकी काफी तंगी हो, तो यह कहा जायगा कि वहाँ अन्न खूब महँगा है। दूसरे शब्दोंमें यह भी कहा जा सकता है कि सोना वहाँ काफी सस्ता है। अलास्का वगैरहमें जब नयी-नयी सोनेकी खान निकली थी, यही हाल था। मिट्टीमें मिला हुआ सोना चारों तरफ नजर आता था; पर खाने-पीनेकी चीजोंकी इतनी तंगी थी कि एक पैसेकी चीज एक रुपयातक बिकती थी। सिक्केकी भी वहाँ कमी थी, अक्सर लोग दाम चुकानेमें सोनेकी मिट्टीका प्रयोग किया करते थे। वहाँ यह कहा जा सकता था कि चीजें बहुत महँगी थीं। यह भी कहा जा सकता था कि सोना बहुत सस्ता था। दोनोंके माने एक ही हुए। इसी तरह आज मंदीके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि चीजें बहुत सस्ती हैं और दूसरे शब्दोंमें इसी बातको यों भी कह सकते हैं कि सिक्का बहुत महँगा है। चीजोंकी पैदाइश कम करनेसे भी महँगी आती है। पैदाइश कम करनेसे जैसे 'न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी', वैसे न रहेंगी चीजें, न होगी सिक्केकी माँग। इस हिसाबसे सिक्केकी कमी होते हुए भी अपेक्षाकृत बहुतायत हो जाती है और चीजोंकी महँगी आ जाती है; किन्तु जो महँगी कम पैदाइशसे होती है, वह आमवात रोगका मोटापा है और जो महँगापन उपजकी वृद्धि-के साथ-साथ सिक्कोंकी बहुतायतसे होता है वह स्वास्थ्यकर वृद्धि है। १९०० से १९२० तक चीजोंकी उपज बढ़ी, दाम भी बढ़े; क्योंकि सिक्कोंकी तंगी न थी। उन वर्षोंमें नयी-नयी सोनेकी खानें खोज निकाली गयीं और इसलिये सोने

या उसके प्रतिनिधि सिक्कोंकी कमी न होने पायी। १९२०से १९२९ तक चीजोंकी पैदाइशके हिसाबसे सिक्कोंका चलन नहीं बढ़ा। सोनेकी कोई नयी खान नहीं निकली, इसलिये सोनेकी उपज न बढ़ी और इसलिये सिक्कोंकी तंगी १९२९ के बाद महसूस होने लगी। फल-स्वरूप दाम गिरने शुरू हुए। मंदीवाड़ेमें चीजोंकी उपज घटनी स्वाभाविक थी। दाम भी घटे और उपज भी घटी। यह डबल मार हुई। एक यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है—माना कि सिक्का दामोंको मापता है और सिक्केकी महँगीके कारण वर्तमान समयमें इतनी मंदी है और सिक्केकी बहुतायत होनेसे तेजी भी आ सकती है; पर क्या कोई और तरीका इस अर्थसंकटमेंसे निकलनेका नहीं, क्या सिक्केकी अवहेलना करके हम इस पाशमेंसे नहीं निकल सकते? हाँ, यदि सिक्केकी अवहेलना करें तो; किन्तु जबतक कानून हमपर सिक्केका साम्राज्य लादता है, तबतक हम इसकी अवहेलना नहीं कर सकते। आज सिक्का कानूनन हमारे जीवनकी हर-हरकतमें गुँथा हुआ है। प्राचीन समयमें इसका कार्य-क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं था। उस जमानेमें नौकरोंकी नौकरी जिन्समें चुकायी जाती थी और जिन्सोंका दाम जिन्सोंमें चुकाया जाता था। उधारका लेन-देन भी जिन्सोंमें काफी हो जाता था और जमीनकी मालगुजारी जिन्सोंमें चुकायी जाती थी। सिक्का विशेषतया धनकी खान ही था; इसलिये उसका कार्यक्षेत्र संकुचित था। पर अब वह बात नहीं रही। अगर कर्ज, वेतन या मालगुजारी चुकाना है, तो हमें अपनी जिन्सको पहले सिक्केमें तबदील कर लेना होगा। इस परिस्थितिने सिक्केका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया है। और इतना विस्तृत कार्यक्षेत्र होते हुए, यदि सिक्केका चलन पूरी तादादमें न हो, तो उसका नतीजा यही होगा कि सिक्का महँगा होगा और जिन्सोंके दाम गिरेंगे। यों समझिये कि यदि काशीके तमाम आद-मियोंपर यह कैद लगा दी जावे कि जितनी बार वे खाना खायें या पानी पीवें उतना ही बार विश्वनाथजीका दर्शन किया करें, तो उसका नतीजा यही होगा कि विश्वनाथ-बाबाके दर्शनके लिये बड़ी दौड़ादौड़ होगी। या तो ऐसी हालतमें हमें विश्वनाथको किसी ऐसी ऊँची जगह बैठाना होगा, जहाँसे बिना कष्ट और विशेष प्रयत्नके सभीको दर्शन सुलभ हो और यदि हम उन्हें आजकी तंग गलियोंमें ही रखेंगे तो नतीजा यह होगा कि हर शख्स मुश्किलसे भी रोज दर्शन न कर सकेगा। और उसके अर्थ यही होंगे कि बहुतोंको भूखा और प्यासा रहना पड़ेगा। सिक्केकी आजकी हालतसे यह उपमा बहुत मिलती-जुलती है। यह भी जान लेना चाहिये कि जबतक सिक्केका सोनेसे सम्बन्ध है, इसको सस्ता करना भी आसान काम नहीं। सोना एक परिमित तादादमें पैदा होता है। अन्य चीजोंकी उपज जिस तरहसे बढ़ी, उसी रफ्तारसे सोनेकी उपज नहीं बढ़ी। नतीजा यह हुआ कि लोगोंको जब सिक्केकी अधिक आवश्यकता पड़ी, तब सोना इतने सिक्के नहीं दे सका, परिणाम यह हुआ कि सोना महँगा हो गया और चीजें मंदी हो गयीं।

जहाँ सिक्का खुद नहीं पहुँच सका, वहाँ सिक्केके प्रति-निधि नोट इत्यादि पहुँचे; परन्तु अन्तमें प्रतिनिधियोंको भी सीमाबद्ध ही रखना पड़ता है। यदि एक सिक्केके बेहद प्रतिनिधि बन जायँ, तो स्वभावतया सिक्केकी वकत घटेगी। जहाँ सीमाका उल्लंघन किया कि सिक्केकी कीमत घटी और उसकी कीमतके घटने अर्थात् दामके गिरनेसे चीजोंके दाम अपने आप बढ़ते हैं।

लड़ाईके बाद सब राष्ट्रोंने सिक्केको फिर सोनेके साथ बाँधकर (Reversion to the Gold Standard) प्रतिनिधियोंको सीमाबद्ध करना शुरू किया। (Deflation) और जब चीजोंकी उपज बढ़ने लगी और सिक्केकी माँग बढ़ी और सिक्का या उसके प्रतिनिधि सब जगह नहीं पहुँच पाये, तब चीजोंका दाम गिरना शुरू हुआ। सन् १९१४ में यदि हम दामोंको सौकी संख्यामें मान लें, तो इस हिसाब-से भिन्न-भिन्न देशोंमें घटती-बढ़ती कैसी हुई होगी उसका ब्यौरा इस प्रकार होगा—

	१९१४	१९२०	१९३३
इंगलैंड	१००	२९५	९४
अमेरिका	१००	१९७	९४
भारतवर्ष	१००	२०२	८७

अब साफ समझमें आ जायगा कि दाम कैसे गिरे और क्यों गिरे। अब यह भी समझमें आ जायगा कि यह आर्थिक

संकट क्यों हुआ। यदि दामोंके गिरनेके साथ-साथ मालगुजारी, कर, कर्ज, व्याज, तनख्वाह जैसी देनदारियाँ—जिनका देना सिक्केके रूपमें निश्चित है—किसी कानूनद्वारा घटा दी जा सकतीं, तो यह आर्थिक संकट कभी न होता।

अमेरिका, इङ्गलैंड, जापान वगैरह मुल्कोंने इन बर्षों में सिक्केका सोनेसे सम्बन्ध-विच्छेद करके उसकी इज्जत और कीमत इसीलिये गिरायी है कि चीजोंके दाम चढ़ें। कुछ दाम चढ़े भी हैं, परन्तु बहुत नहीं। बात यह है कि जबतक सिक्केके दाम इतने न गिराये जायँगे, कि आवश्यकताके अनुसार सबको उसका मिलना सुलभ हो जाय, दामोंका चढ़ना असम्भव है। मेरा अपना खयाल है कि हुंडीकी दर इतनी ज्यादा गिरा दी जानी चाहिये और तबतक गिराते चले जाना चाहिये जबतक दाम सन् १९२६के दामोंकी सतहपर न आ जायँ। क्षतिग्रस्त लोग ही अधिक संख्याके हैं, इसीलिये मौजूदा हालतको 'पानीमें भी मीन पियासी' कहना उपयुक्त है।

अब इस मर्जकी दवा क्या है? दवा तो है; पर सस्ता नहीं है। एक तरीका यह है, कि हम कर्ज, मालगुजारी, वेतन, व्याजको उतने ही परिमाणमें कानूनन कम कर दें, जितने कि दाम गिरे हैं। दूसरा तरीका यह है, कि हम दाम उतने ऊँचे कर दें, जितने कि १९२६के करीब थे। दूसरा ज्यादा व्यावहारिक है; पर दाम कैसे चढ़ें? सिक्का सस्ता होनेसे। सिक्का सस्ता करनेका एक तरीका तो यह है कि हम इसके सोनेके प्रतिनिधित्वको कम कर दें। इस समय हमारा रुपया १ शि० ६ पें० अँगरेज़ी सिक्केका प्रतिनिधि है। अब यदि रुपयेको सस्ता बनाना हो तो क्या करना होगा? एक तो यह तरीका हो सकता है, कि जहाँ पहले हमारे सिक्केकी कीमत ८·४७ ग्रेन सोना था, वहाँ अब उसका प्रतिनिधित्व घटाकर हम उसकी कीमत केवल ४·२३ ग्रेन सोना ही रख दें। उसका नतीजा यह होगा, कि सिक्केकी बहुतायत होगी, इसकी कीमत स्वभावतः पहलेसे सस्ती होगी और चीज़ोंके दाम चढ़ेंगे। और यह भी कहा जा सकता है कि दाम चढ़के, फिर तो नहीं गिर जायँगे। इसका भी कोई निश्चय नहीं। सोनेकी नयी-नयी खानें तो निकलती ही नहीं। चीजोंकी उपज बढ़नेपर यदि यह सस्ता किया हुआ सिक्का भी सब जगह न पहुँच सके, तो फिर दाम गिरने लगेंगे। इसलिये रामबाण औषध तो यह होगी कि सिक्काका सदाके लिये सोनेसे सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया जावे। सोना खाया जा सकता नहीं पिया जा सकता नहीं, पहना जा सकता नहीं। खूबसूरतीमें भी यह ऐसी कौन-सी लाजवाब चीज है? फिर सिक्का सोनेका ही प्रतिनिधि क्यों हो? सिक्का आटा, दाल, गेहूँ, कपड़ा, मक्खन, तेल, नमक, शक्करका और विशेषकर कायिक परिश्रमका ही प्रतिनिधि क्यों न हो? सिक्केकी कीमत मापनेके लिये जहाँ हम सोनेका उपयोग करते हैं, वहाँ हम जिन्सोंका उपयोग क्यों न करें? इसके बजाय कि रुपया इतने ग्रेन सोनेका प्रतिनिधि हो, यह इतने सेर गेहूँ, इतने छटाँक घी, शक्कर या अन्य वस्तुका ही प्रतिनिधि क्यों न हो जाय? सोनेकी खानें सिक्केके चलनके लिये अपर्याप्त हो सकती हैं; किन्तु जिन्सोंकी कमी कभी नहीं हो सकती। जबतक मनुष्य रहेंगे, तबतक खेत रहेंगे और अन्य तरहकी अनेक चीजोंकी पैदाइश रहेगी; इसलिये सिक्केका मुवक्किल सोना न होकर जिन्स हो, तभी सिक्का सदाके लिये बहुतायतसे चलनमें रह सकता है। तभी सिक्का सुलभ हो सकता है, तभी चीजोंके दाम स्थिर और तलपटके दोनों पासे समान रह सकते हैं। अनुचित मंदी और तेजीकी रुकावट भी तभी रह सकती है, जब सिक्का सोनेका प्रतिनिधि न होकर जिन्सोंका प्रतिनिधि हो; मगर यह तो कोरी बकवास हुई। आज कौन पूछता है? असलमें तो होगा वही जो होर साहब या उनके जाँनशीन चाहेंगे।

'बूट डासनने बनाया मैंने एक मज़मूँ लिखा।
मुल्कमें मज़मूँ न फैला और जूता चल गया॥'
खैर, मज़मूँ ही सही।

गतवर्षके कुछ महत्वके आविष्कार

रसायनविज्ञानका परमाणु केन्द्रस्थित एक धनाणु और उसके चारों ओर घूमनेवाले कई ऋणाणुओंका बना हुआ है। ऐसा मालूम किया गया है कि धनाणु आयतनमें ऋणाणुओंका दो-सौवाँ भाग है परन्तु भारमें लगभग दो हजार गुना अधिक भारी है। इन्हीं दो प्रकारके विद्युत्कणोंसे विविधि और सभी परमाणुओंकी रचना हुई है। इन सबमें भार और आयतनका अंतर इसीलिये है कि प्रत्येकमें धनाणुओं और ऋणाणुओंकी घटक संख्या विविधि है। ऐसी दशामें एक मौलिक पदार्थका दूसरे मौलिक पदार्थमें बदला जाना भी संभव है और शायद बहुत शीघ्र ही यह भी सुननेमें आवे कि किसीने पारेसे या तांबेसे सहजमें ही सोना बना लिया है।

पिछले साल ब्लेकेट और आकलीनीने केम्ब्रिजमें बड़े महत्वके अनुसन्धान किये। उन्होंने यह मालूम किया कि जिसे हम अबतक धनाणु कहते आये हैं वह वस्तुतः धनाणु नहीं है। उसे प्रथमाणु कहना चाहिये। धनाणु तो एक अत्यन्त सूक्ष्म धन विद्युत्कण है जो एक सेकंडके करोड़वें हिस्सेतकके समयमें बना रहता और रह सकता हैं। उसका भार उतना ही है जितना एक ऋणाणुका। यह धनाणु और ऋणाणु अपने छोटेसे जीवनके अन्तमें मिलकर कणका रूप बदलकर शक्ति या तरंगके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इस विद्युत्कणके मालूम होनेसे एक विशेष महत्वका निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रकाश और विद्युत्की तरंगमाला इन्हीं धनाणुओं और ऋणाणुओंके मिलनेसे बनती है और ऋणाणुओंकी अधिकता तरंग-निर्माणसे बचे हुए कणोंके कारण है।

सन् १९३३की दूसरी खोज भारी पानीके संबंधमें है जिसका वर्णन पिछले अंकमें हो चुका है।

बर्लिनके नीडहम और वाडिंगटनने यह महत्वकी बात सिद्ध की है कि सेलोंमें अमुक-अमुक भाग अमुक अंग बनानेका काम करते हैं और यदि कोई विशेष भाग निकाल दिया जाय या नष्ट हो जाय तो उसकी जगहकी पूर्ति किन-किन रासायनिक वस्तुओंसे की जा सकती है। आहिताण्डोंमें किन सेलोंसे आँखें बनती है और किनसे कान? अनुवीक्षण यंत्रसे सब सेल एक-से ही देख पड़ते हैं। बर्लिनके इन दो विद्वानोंने प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि सेलोंका एक विशेष भाग यदि आहिताण्डसे अलग कर दिया जाय तो वह विशेष अंग बनना बन्द हो जाता है और यदि उसकी जगह विशेष औषधिकी पिचकारी दी जाय तो वह अंग फिर बनने लग जाता है। यह बड़े महत्वका आविष्कार है। सम्भव है कि भविष्यमें लिंग परिवर्तनके लिये ओषधियाँ बोतलोंमें भर-भरकर बिकने लगें। —रा० गौ०

जल कब विष है, कब अमृत ?

मूर्छा, पित्त, गरमी, दाह, विषविकार, रक्तविकार, श्रम, भ्रम, श्वास, वमन और ऊर्ध्व रक्तपित्त इन रोगोंमे शीतलजल लाभदायक है।

सन्निपातके रोगीको ठंडा पानी देना जहर है।

वायुरोग, गलग्रह, अफरा, जुलाबके बाद, कब्ज, अरुचि संग्रहणी, ज्वरके बाद, पाखाना शूल इन रोगोंमें ठंडा पानी मना है। यदि आवश्यकता हो तो उबाला हुआ पानी दे सकते हैं।

रक्तपित्त, मूर्च्छा, रक्तविकार और पित्तप्रधान रोगोंमें गरम पानी अति हानिकारक है।

अरुचि, मंदाग्नि, शोथ, क्षय, उदररोग, कोढ़, नेत्ररोग, नवीनज्वर, व्रण और मधुमेहमें थोड़ा-थोड़ा पानी पीना लाभदायक है।

वमनके लिये उबाला पानी एक-एक चम्मच धीरे-धीरे पीना लाभदायक है।

सन्निपातके रोगीको उबालापानी दिया जा सकता है।

[ब्र० बि० गौ०

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌का मुखपत्र

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी० (*गणित और भौतिक-विज्ञान*)

रामशरणदास, डी० एस्-सी० (*जीव-विज्ञान*)

श्रीरंजन, डी० एस्-सी० (*उद्भिज्ज-विज्ञान*)

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (*आयुर्वेद-विज्ञान*)

श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी०, (*जंतु-विज्ञान*)

सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, (*रसायन-विज्ञान*)

भाग ३९

मेषार्क—कन्यार्क, संवत् १९९१

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

(५) भौतिक-विज्ञान

(६) विविध

(७) समालोचना

(८) साहित्य-विश्लेषण

(९) सम्पादकीय टिप्पणियाँ

(१०) सहयोगी विज्ञान

स्थायी ग्राहकोंको विशेष सुभीता

वैज्ञानिक साहित्य तीन चौथाई मूल्यमें

पढ़िये ! पढ़िये !

विज्ञानके प्रचारके लिये हमने निश्चय किया है कि स्थायी ग्राहकोंको हम पौनी कीमतपर सभी पुस्तकें देंगे । इसके लिये नियमावली नीचे पढ़िये ।

(१) जो सज्जन हमारे कार्य्यालयमें केवल १) पेशगी जमा करके अपना नाम स्थायी ग्राहकोंमें लिखा लेंगे, उन्हें वैज्ञानिक साहित्यकी वह सभी पुस्तकें जो विज्ञानपरिषत् कार्यालय प्रयाग तथा आयुर्वेद-विज्ञानग्रंथमाला कार्य्यालय अमृतसर प्रकाशित करेंगे, तीन चौथाई मूल्यपर मिल सकेंगी ।

(२) स्थायी ग्राहक बननेकी तारीखके बाद जितनी पुस्तकें छपती जायँगी उनकी सूचना विज्ञानमें छपती जायगी और इस सूचनाके छपनेके एक मासके भीतर यदि स्थायी ग्राहक मना न करेगा तो उसके नाम वह पुस्तकें वी० पी० कर दी जायँगी और ग्राहकको वी० पी० छुड़ा लेना पड़ेगा । न छुड़ानेपर हानिकी रकम उस रुपयेमेंसे मुजरा कर ली जायगी ।

(३) स्थायी ग्राहकको अधिकार होगा कि पहलेकी छपी चाहे जो पुस्तकें पौन मूल्यपर ले ले ।

(४) जो सज्जन विज्ञानके ग्राहक होंगे उन्हें स्थायी ग्राहकका अधिकार केवल ॥) जमा करनेपर मिल जायगा और उनका नाम और पता स्थायी ग्राहकोंमें लिख लिया जायगा ।

(५) विज्ञानकी पुरानी फाइलें जो अलभ्य हैं इन नियमोंके अन्तर्गत नहीं हैं ।

(६) जो पुस्तकें स्टाकमें ५० से कम रह जायँगी, वह नये संस्करणके छपनेतक इन नियमोंसे मुक्त रहेंगी ।

मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग ।

वैज्ञानिक साहित्यकी सूची

एक तो इसीकी पीठपर देखें । आयुर्वेद-विज्ञान-ग्रंथमालाकी विस्तृत सूची जुलाईके अंकमें त्रैमासिक सूचीपत्रके पृष्ठ ३१ पर पढ़िये ।

महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम्. ए., तथा प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम्. एस्-सी. ... ... ।)

२—मिफ़्ताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम्. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम्. ए. तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव ... ॥=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० स्व० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम्. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीरप्रसाद, बी. एस्-सी., एल्. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम्. एस्-सी.। इसमें रसायनविज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है। १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस्-सी. एल्. टी., विशारद।

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ॥।)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
- चन्द्रग्रहणाधिकारसे ग्रहयुत्यधिकारतक १॥)
- उदयास्ताधिकारसे भूगोलाध्यायतक ॥।)

८—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० सालिग्राम वर्मा, एम्. ए., बी. एस्-सी. ... -)

९—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० स्व० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम्. ए. ... ... -)

१०—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... =)

११—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

१२—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० श्री० पं० महावीर प्रसाद, बी. एस्-सी., एल्. टी. विशारद ... ।-)

१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. एल्. टी. ।)

१४—चुम्बक—प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम्. एस्-सी. ।=)

१५—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस्-सी., एम्. बी. बी. एस्. ... -)

१६—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम्. ए. ... ... -)

१७—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

१८—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१९—फसलके शत्रु—ले० श्रीशङ्करराव जोशी ।-)

२०—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल्. एम्. एस्. ... ।)

२१—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज-शङ्कर कोचक, बी. ए. एस्-सी. ... -)

२२—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथजी गुप्त वैद्य ... ... १)

२३—वर्षा और वनस्पति—ले० पं० शङ्करराव जोशी ।)

२४—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम्. ए. ... -)॥

२५—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल-करण सेठी, डी. एस्-सी. तथा श्री सत्यप्रकाश डी० एस्-सी० ... ... १॥)

२६—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश डी० एस्-सी० ... ... २॥)

२७—साधारण रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश डी० एस्-सी० ... ... २॥)

२८—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, प्रथम भाग—ले० श्री० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० ... ॥)

२९—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—ले० श्री० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० १।)

३०—सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन—ले० श्री० युधिष्ठिर भार्गव, एम्० एस्-सी० ... =)

३१—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग— १॥)

३२—समीकरण मीमांसा दूसरा भाग—ले० स्वर्गीय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी ... ॥=)

३३—केदार-बद्री-यात्रा ... ... ।)

पता—मंत्री, विज्ञान-परिषत्, प्रयाग।

तुच्छ कीड़ोंकी बाढ़से भारी हानि

पूर्ण संख्या—*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and*
२२५ *Central Provinces, for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708

जिसके साथ अमृतसरका

आयुर्वेद-विज्ञान

भी सम्मिलित है

भाग ४० VOL. 40

तुलाऽर्क, संवत् १९९१

अकतूबर, १९३४

संख्या १ No. 1

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्के पदाधिकारी

संवत् १९९०–१९९१ वि०

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये ।

२—विज्ञान एवं विज्ञानपरिषत् तथा विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्द, दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिये ।

दत्तात्रय लक्ष्मण निघोजकरने श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेसमें मुद्रित किया

तथा मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयागके लिए वृन्दावन विहारीसिंहने प्रकाशित किया ।

महत्वपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ४० } प्रयाग, तुलाऽर्क, संवत् १९९१। अकतूबर, सन् १९३४ ई० { संख्या १

मंगलाचरण

[ले० स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक]

जगमें होता नित्य अवैधिक व्यत्यय दीखै
प्रायः दैविक कृत्य अनित्य, अनिश्चय दीखै
परिवर्त्तन - रथ - चक्र, वक्र - पथ - उद्धत दीखै
आवर्तन - क्रम, क्रम-विहीन, भ्रम-आवृत दीखै
पर जो सुविज्ञ विज्ञान-बल-
अनुशीलनमें लग्न हैं
उनको सारे विधि कृत्य-क्रम
सूझैं सरल अभग्न हैं ।७।५।

तुच्छ कीड़ोंकी बाढ़से भारी हानि

उनसे मानवसमाजका मुकाबला

[लेखक—ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालङ्कार, एम्० एस्-सी०
विशारद, सब-रजिस्ट्रार, तहसील हाटा, गोरखपुर]

१. घरेलू मक्खियाँ हमारी भारी बैरिन हैं

घरेलू मक्खियोंकी उपयोगिताका उल्लेख हम पिछले लेखमें कर चुके हैं। अब हम उनके जीवनके दूसरे पहलू-का वर्णन करेंगे। यह प्राणी मानव-समाजको जो हानियाँ पहुँ-चाता है उनकी तुलनामें उससे होने-वाले लाभ कुछ भी नहीं ठहरते। हाँ, यह अवश्य है कि इन हानियोंके मूल कारण हमीं हैं।

२. घरेलू मक्खियाँ हमें कैसे हानि पहुँचाती हैं ?

वे प्रायः हमारे भोज्य पदार्थोंको अपनी छूतसे दूषित करके ही हमें विविध भाँतिके संकटोंमें डालती हैं। यदि हम अपनी खाद्य सामग्रीको सम्यक्‌रूपसे ढाँककर सुरक्षित रखें और मक्खियोंको उनके संसर्गमें न आने दें तो वे हमें तनिक भी हानि न पहुँचा सकें। अतः हमारी अज्ञानता अथवा असावधानीके कारण उन्हें हमारे भोज्य पदार्थोंको दूषित करनेका अवसर मिल जाता है जिसके फलस्वरूप हम विविध रोगोंके शिकार बन जाते हैं।

३. मनुष्यका भयंकर शत्रु और उससे बचाव

*मक्खियाँ सर्व भक्षक और अत्याहार-प्रिय होती हैं। वे सड़े-गले एवं गन्दे पदार्थोंका भक्षण उसी लगन और चावसे करती हैं जिस भाँति हमारे स्वादिष्ट और सुगंधित पकवानोंका। अत्याहार-प्रिय होनेके कारण वे दिन-भर खाती हैं। खानेके पदार्थको देखते ही 'परान्नं दुर्लभं लोके, शरीराणि पुनः पुनः' मंत्रका जाप करती हुई वे उसपर टूट पड़ती हैं। प्रश्न हो सकता है कि जब यह नन्हा-सा कीड़ा तमाम दिन खाता है तो यह भोजन समाता कहाँ है ? कीड़ेकी पाचन-नलीमें तो इतना स्थान है नहीं। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह प्राणी अपरिपक्व भोजन-का वमन और विष्टाके रूपमें त्याग कर और भोजनके हेतु स्थान रिक्त करता है। अर्थात् यह दिन-भर खाती हैं और दिन-भर वमन और विष्टा करती हैं। घरोंमें लटकती हुई रस्सियाँ, लम्पें, किवाड़ोंके शीशे—सभी तो इनके मल और वमनसे काले बने रहते हैं। इनकी अत्याहार-प्रियता और अपरिपक्व भोजनको बहिरानेकी तुच्छ और घृणित प्रकृतिके कारण हमारे बिरले ही खाद्य पदार्थ उनकी उगलन और विष्टासे सुरक्षित रह पाते हैं। छोटा प्राणी होनेके कारण यह भोजनपर स्वयं बैठ जाता है और खाते-खाते उसीपर मलोत्सर्ग भी करता जाता है। पेट भरा होनेपर भी यदि दूसरे स्थानपर भोजन दिखाई दिया, तो यह मक्खी चट उसे भी खाना आरंभ कर देती है।

मान लीजिये एक मक्खी अभी कहींसे विष्टा खाकर मकानमें आयी है और दूध-दहीके खुले पात्रपर आसन जमाती है और उसे खाने लगती है; साथ-ही-साथ उस पदार्थपर मलोत्सर्ग और कै भी करती जाती है। यही नहीं, विष्टा खाते समय उसके कुछ कण इसके परों, बालों, टाँगों और सिरमें चिपक जाते हैं और जब वह हमारे दूध-दहीपर

* डार्लिङ्गटोनिया नामक एक विचित्र पौधेका पता लगा है। इसको सर्प-वृक्ष भी कहते हैं। इसके पत्तोंकी शकल बिलकुल साँपकी तरह होती है। इस पौधेमें यह विचित्रता है कि वह कीड़े या मक्खियाँ खाकर ही जीवित रह सकता है। इसकी खुशबूसे आकर्षित होकर मक्खियाँ आती हैं। एक-एक पौधा रोज दस बारह मक्खियाँ खा जाता है। —प्रतापसे

बैठकर अपनी टाँगोंसे अपने विविध अंगोंको स्वच्छ करने लगती है तो विष्टाके कण दूध-दहीमें गिर पड़ते हैं। इस गन्दे पदार्थमें अथवा उसके वमन और विष्टामें रोगोत्पादक जीवाणुओंका होना बहुत संभव है जिसके फलस्वरूप इस न कर (Carriers of disease) रोग-वाहकका कार्य करती हैं । इनकेद्वारा हैजा, प्रवाहिका, मोतीझिरा (टाइफोइड), विसूचिका आदि छूतके रोगोंका रोगी मनुष्योंसे नीरोग मनुष्योंमें विस्तार होता है। भोजन-थैली (Crop)

गंधग्राहक इन्द्रिय
दो बड़े संयुक्त नेत्र
तीनों गोलाकार नेत्र (ocelli)
शिर रेखा
धड़
पंख
श्वासेन्द्रियाँ (Trachae)
उत्तोलक (balancer)
टाँगें
पिछला भाग
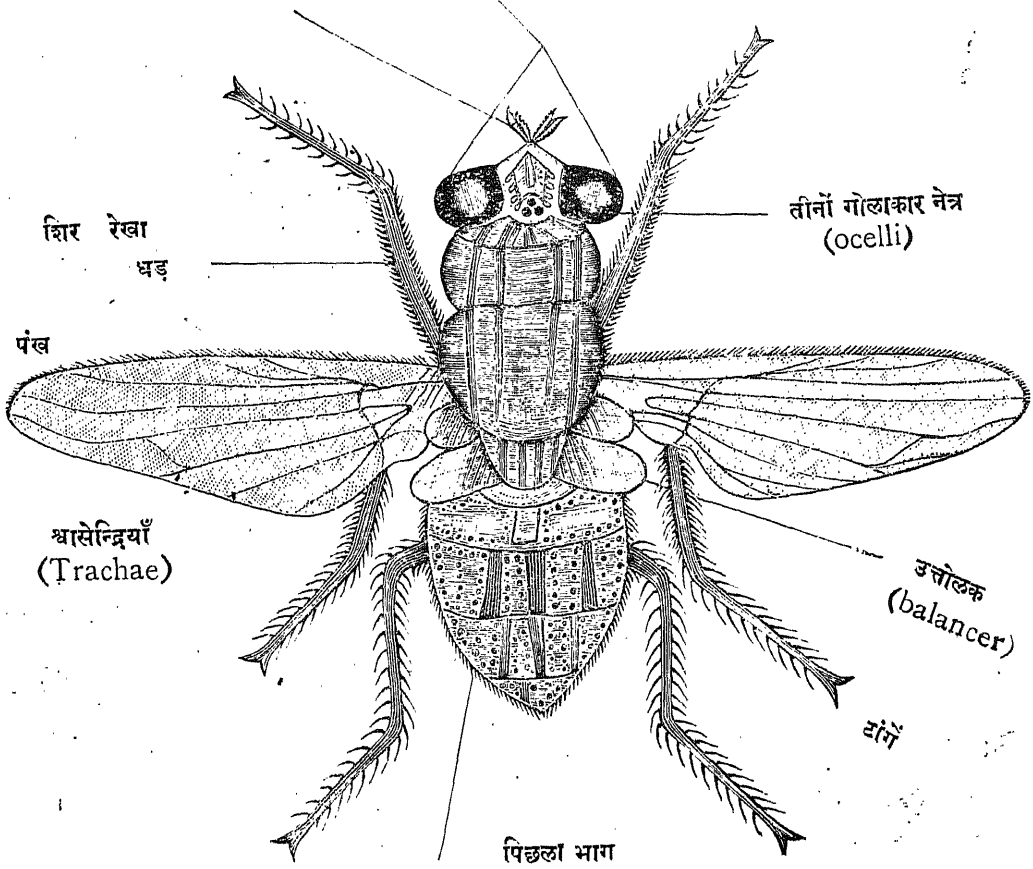
घरेलू मक्खी (पंख फैले हुए)

दूषित भोजनका उपभोग करनेवाला मनुष्य भी उन रोगाणुओंका शिकार हो जाता है—दूध-दहीको खानेवालेके भी वह रोग हो जाता है।

४. हैजा आदि छूतके रोगोंमें मक्खीका खास हाथ

इस भांति घरेलू मक्खियाँ स्वतः रोगोत्पादनका काम

टाइफोइड (मोतीझिरा) के शलाकाकार जीवाणु

मक्खीका भोजन-भंडार है। समय-कुसमय भोजन न मिलनेपर, यह थैली प्राणीके लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है। किन्तु रोगोंके प्रसारमें यह अत्यंत भयानक वस्तु है। क्योंकि भोजनके साथ निगले हुए रोगो-

त्पादक जीवाणु इसके भीतर बहुत दिनोंतक रहकर भी रोगोत्पादन करनेके योग्य बने रहते हैं। यह देखा जा चुका है कि टाइफोइडके कीटाणु इस भोजन-थैलीमें एक मासके रहनेके बाद भी रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

५. मल और मैलेकी चलती-फिरती मशीन

रोग-वाहक और उसके विस्तारके अतिरिक्त मक्खीके खाने और उगलनेकी क्रिया भी कम घृणास्पद नहीं है। मलबा खाकर किसी खाद्य अथवा पेय पदार्थपर बैठकर, उसका वमन कर देना अतीव निकृष्ट कर्म है। उसके लिये तो साधारण-सी बात हुई और मिला दी गयी हमारे भोजनमें विष्टा! डोम-चमार आदि नीच कही जानेवाली जातिके मनुष्योंके अवलोकनमात्रसे नाक-भौं सिकोड़ने वाले महानुभाव तनिक विचारें तो सही कि जिस थोथी उच्चता और पवित्रताकी वे निरंतर डींग हांका करते हैं उसको धूलमें मिला देनेवाली ये घृणित मक्खियां हैं अथवा उन्हींकेद्वारा पददलित और नुची-खुची ये दीन जातियाँ! क्या उनकी रहन-सहन और प्रकृति मक्खियोंसे भी अधिक घृणित और हानिकारक है? कदापि नहीं!

६. मक्खीके अतिरिक्त अन्य हानिकारक कीड़े-मकोड़े

यहाँतक हमने ऐसे कीड़ोंका वर्णन किया है जो मानव-समाजको किसी-न-किसी रूपमें लाभ पहुँचाते हैं। उनमें केवल मक्खी ही ऐसी है जो लाभकी अपेक्षा कहीं अधिक हानिकारक है। कुछ कीड़े तो ऐसे पाये जाते हैं जिनके सृजन करनेमें परमात्माका क्या उद्देश्य है? समझमें ही नहीं आता, क्योंकि उनके जीवनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य जातिको हानि पहुँचाना ही प्रतीत होता है।

७. जूँ, खटमल और मच्छर भी रोग-वाहक कीड़े हैं

संसारके कई भागोंमें मनुष्यके शरीरमें पाये जानेवाले जूँ (louse) सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं तथा उनकी गणना घरेलू प्राणियोंमें की जाती है। कुछ दिन हुए जब विलायतकी देहाती महिलाएँ उन्हें सौभाग्यसूचक एवं बहु प्रसवशीलताका द्योतक समझती थीं। सन् १९१९में विलायत-बोर्डके मदरसोंके बीस प्रतिशत विद्यार्थियोंमें जुएँ मौजूद थे*। किन्तु आजकल सभ्य समाज जूँको हेय दृष्टिसे देखता है यद्यपि अभीतक निश्चय-पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्राणी स्वतः मनुष्योंको कोई हानि पहुँचाता है। हाँ,

मादा जूं नर
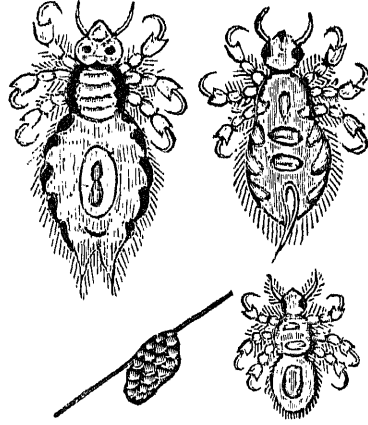
अंडा बच्चा

वे मक्खियोंकी भांति एक पुरुषसे दूसरे पुरुषतक रोग-वाहकका कार्य अवश्य करते हैं। टाइफस जैसे घातक एवं भयानक रोगका प्रचार और विस्तार वहीं हो सकता है जहाँ जूँ और खटमलोंका बाहुल्य होता है। ये कीड़े रोगीके रोगाणुमय रक्तको चूसते हैं और किसी दूसरे स्वस्थ पुरुषके संघर्षणमें आनेपर कीटाणुमय मलका त्याग करते हैं। उनके काटे हुए स्थानपर कुछ खुजली-सी उत्पन्न होती है। खुजलानेकी क्रियामें वह कीटाणुमय मल भी रगड़ खाता है जिसके फलस्वरूप वे रोगाणु इस स्वस्थ पुरुषके रक्तमें प्रवेश कर टाइफस रोगका संचार करते हैं। युद्धके समयमें यह देखा जा चुका है कि ट्रेंचफीवर और एक प्रकारके पारीसे आनेवाले ज्वरका प्रचार-प्रसार जूँद्वारा ही हुआ था।

लेवर्न, रास और ग्रासी आदि अनुसंधान-कर्त्ताओंका

* Dendy, A.; Lecture to Section D. (Zoology) of the British Association Bournemouth meeting, 1919, (page 13).

कथन है कि जूँ, खटमल और घरेलू मक्खियोंकी भाँति कुछ मच्छर भी ऐसे पाये जाते हैं जो मनुष्यों, पक्षियों तथा

जंघाओंपर पाये जानेवाले जूं

अन्य प्राणियोंमें नाना भांतिके रोगोंके विस्तारके कारण होते हैं। मच्छर भी स्वतः निर्दोष होते हैं, वे केवल रोग-वाहन-

[(Guinea-worm) नारू या नहरूआ रोगके कीड़े]

का कार्य करते हैं। अफ्रीकाके ढोरोंमें एक अत्यंत घातक रोगका संक्रमण (Tse-tse fly) चीची मक्खीद्वारा होता है, डेंगू ज्वरके कीटाणुओंको ले जानेवाला स्टेगोमाइया मच्छर मनुष्य-समाजको अत्यंत दुःखप्रद सिद्ध हुआ है। फीलपाव और मलेरिया ज्वरका प्रचार-प्रसार भी मच्छरोंद्वारा ही होता है। नारू रोगका विस्तार साइक्लाप्स कीड़ोंद्वारा होता है। यह रोग उन्हीं मनुष्योंमें पाया जाता है जो गंदे तालाबोंके जलको पीते हैं।

८. वे कीड़े जो रोगके कारण हैं

पिस्सू और जिग्गर

अनेक कीड़े ऐसे भी होते हैं जो रोगोंके वाहक न होकर स्वयं उनके कारण होते हैं। हमारे पाठक पिस्सुओंसे सुपरिचित होंगे। वे भी मच्छरों और मक्खियोंकी भांति प्लेग जैसे सांघातिक रोगके कीटाणु-वाहकमात्र हैं किन्तु जिग्गर ("Jigger) अथवा शीगो पिस्सू तो स्वयम् मानव-शरीरको नोच-नोच कर घाव कर देते हैं जो कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। किंतु सीधे हानि पहुँचानेवाले कीड़ोंमें सबसे अधिक दु:खदायी मक्खियाँ ही होती हैं क्योंकि जब इनकी इल्लियाँ मानव-शरीरमें पायी जाती हैं तब चिकित्सा-विशारदोंके मतमें मियासिस (Mijiasis) रोगका होना निश्चय-सा हो जाता है।
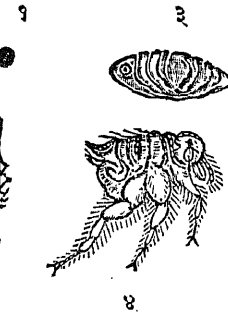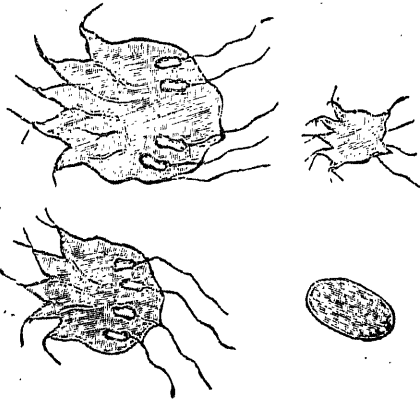
प्लेग का पिस्सू

१. अंडा। २. लहरवा। ३ शंखी। ४. पूरा कीड़ा। इसके जीवनचक्रकी ये चार अवस्थाएँ होती हैं।

९. रक्तशोषक डरमैटोबिया

"जिगर" के सिवा ऐसे बहुत कम कीड़े पाये जाते हैं जो मनुष्यकी त्वचाको छेदकर घाव कर देते हैं। हाँ, डरमैटोबिया नामक मक्खी मानव-शरीरमें अपने लहरवोंका प्रवेश एक विशेष उपायसे करती है। बहुत दिनोंतक विज्ञान-संसार इस बातका ठीक पता न लगा सका कि हमारे शरीरमें इस मक्खीके लहरवोंका समावेश किस भांति होता है। इस विषयमें जितने मुँह उतनी ही बातें थीं। बहुत खोज-बीनके उपरान्त अब इसका रहस्य खुला है। जैथीनोसोमा नामक रक्तपायी मच्छरके पेटके निचले भागमें यह मक्खी अपने अंडे रखती है और वहीं उसके विकासका आरंभ होता है। जब यह मच्छर मानव-त्वचाको छेदकर उसका रक्तशोषण करता है तब इस मक्खीके नन्हे-नन्हे लहरवे उन छेदोंद्वारा भीतर घुस जाते हैं।

१०. पशुओंको कष्टदायी कीड़े-मकोड़े

बघई मक्खीकी रामकहानी

कीड़े हमारे पालतू जानवरोंको भी खूब सताते हैं। कुछ रोग-वाहकका काम करते हैं तो कुछ स्वयं दुःखदायी होते हैं। बघई मक्खी पशुओंके बालोंमें अंडे देती है। अंडोंसे लहरवे निकलते हैं जो पशुकी त्वचाको छेदकर उसके शरीरमें पैठ जाते हैं। वहाँ वे भ्रमण करते हुए पशुकी पीठके अधोभागमें पहुँच जाते हैं। इतने कालमें वे बढ़ भी काफी जाते हैं। वहाँ पहुँचकर वे पीठकी त्वचाको छेदते हैं और उस छिद्रके सन्निकट अपने (Breathing pore) श्वासोच्छ्वास-छिद्रको मिलाकर रखते हैं ताकि साँस लेनेमें बाहरी वायुका उपयोग कर सकें। त्वचाके छेदे हुए स्थान पककर घाव हो जाते हैं और कभी-कभी इनके कारण पशुओंको असहनीय व्यथाका सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त छिद्रोंके कारण इन पशुओंके चरसे (Hide) भी खराब हो जाते हैं और उनका मूल्य अत्यधिक घट जाता है। इस तरह इन नन्हे-नन्हे कीड़ोंके कारण देशको प्रतिवर्ष लाखों और करोड़ों रुपयेका घाटा सहन करना पड़ता है।

११. घोड़ेकी बघई और उसकी पैदाइश

घोड़ेकी बघई (Gastrophilus) भी पशुके बालोंमें अंडे देती है; अंडोंसे लहरवोंका उद्भव होता है। घोड़ा जब अपने शरीरको चाटता है तो ये लहरवे उसकी जीभके साथ उसके मुँहमें पहुँच जाते हैं। तदनंतर पशुके आमाशयमें पहुँचकर वे उसकी दीवारमें अपने मुँहके (Hooks) आकड़ोंकी सहायतासे चिमट जाते हैं और वहीं अपना भोजन ग्रहण करते हैं। भोजनके सिवा उन्हें वायुकी भी आवश्यकता होती है। वहाँ वायु कहाँ? चारा खाते समय थोड़ी-बहुत वायु बुलबुलोंके रूपमें पशुके उदरमें आ जाती है और उसीका उपयोग ये लहरवे करते हैं। नयी आवश्यकताओंके अनुसार नवीन अंगोंका उदय हुआ। उनके शरीरमें कुछ रक्ताणुमय कोष-समूह होते हैं जो वायुको शोषण करनेमें अतीव सिद्धहस्त होते हैं। लहरवेके पाश्चात्य (Posterior) सिरेपर एक थैली होती है जिसमें वायुके बुलबुले एकत्रित हो जाते हैं और वहींपर रक्ताणुओंद्वारा ओषजनका शोषण किया जाता है। पूर्ण अवस्था प्राप्त होनेपर लहरवे पशुकी लीदके साथ बाहर निकल आते हैं और मक्खियोंका रूप धारण कर लेते हैं। इन अंतःस्थ परोपजीवी लहरवोंके ऊधमके कारण घोड़ोंको घोर दुःख सहने पड़ते हैं और कभी-कभी तो उनके चङ्गुलमें फँसकर उन्हें अकाल ही यमलोकको प्रस्थान करना पड़ता है। लहरवोंके बाहर निकल आनेपर घोड़ेका स्वास्थ्य ज्यों-का-त्यों हो जाता है।

१२. बैलकी बघई

बैलकी बघईकी भी लगभग यही दशा है। यह उसकी खालको छेदकर उसीमें अंडे देती है। ये अंडे बैलके शारीरिक तापसे परिपक्व होते हैं। अंडोंसे निकलकर लहरवे उन्हीं छिद्रोंमें जो इतने समयमें घावोंका रूप धारण कर लेते हैं, निवास करते हैं और उन्हींके पीबसे अपना भरण-पोषण करते हैं।

१३. भेड़की बघई और उसका जीवन

इसी भाँति भेड़की बघई (Breeze fly) भेड़की नासिकामें अंडे देती हैं। लहरवोंके दो नख होते हैं जिनकी सहायतासे वे भेड़के मस्तिष्कतक पहुँच जाते हैं। मध्य अफ्रीकामें पायी जानेवाली ट्रिस्टी मक्खीकी तो और भी भयंकर दशा है। उसके अत्याचारों और उपद्रवोंकी मात्रा

तो यहाँतक बढ़ गयी है कि उन भू-भागोंमें मनुष्योंतकका टिकना असंभव है। ये मक्खियाँ घोड़े, बैल, कुत्ते आदिकी तो घोर शत्रु हैं, उनके काटते ही ये निरपराध प्राणी यम-लोकको प्रयाण कर जाते हैं।

१४. वनस्पतिको हानि पहुँचानेवाले कीड़े

वनस्पतिका भयंकर शत्रु टिड्डीदल

इससे भी अधिक हानि हमें वे कीड़े पहुँचाते हैं जो हमारी फसलों, वाटिकाओं और जंगलोंके विनाशमें निरंतर लगे रहते हैं। वास्तवमें विरली ही वनस्पति ऐसी होगी जिसकी उपज और रक्षामें हमें कीड़ोंसे विपुल हानि न उठानी पड़ती हो। टिड्डियोंके उपद्रवोंसे हमारे पाठक सुपरिचित ही होंगे। जब ये अपने कूचका बिगुल बजाकर किसी देश या प्रांतमें धावा बोल देती हैं तो चारों ओर त्राहि-त्राहि मच जाती है। क्षतिकी सीमा यहाँतक पहुँच जाती है कि फसलों और वन-वाटिकाओंकी पत्तियों और छाल-तकको सफाचट कर जाती हैं, फल-फूलोंकी तो गणना ही क्या? भारतवर्षके किसी-न-किसी प्रांतमें इनके आक्रमण हुआ ही करते हैं। सन् १९३० ई० में संयुक्त प्रान्तके कुछ जिलोंमें इनके आक्रमणसे अनेक कृषक बरबाद हो गये थे। हजारों बीघोंकी आराजीपर टिड्डियाँ ही नजर आती थीं। उस दुर्दशाका तो कहना ही क्या था जब उड़नेसे पूर्व उन्होंने वहाँ अंडे दे दिये थे और उनसे निकले बच्चोंने बहुत उपद्रव मचाये। देशपर आनेवाली छः ईतियोंमेंसे टिड्डी (शलभ) भी एक है। उनका आक्रमण सब तरह दुःख-दायी होता है। जीते-जी फसलों और वाटिकाओंकी तबाही करें और यदि कहीं अभाग्यवश एकदम मर गयीं तो उनके सड़नेसे अनेकों बीमारियाँ फैल जाती हैं जिससे देशके धन और जन दोनोंकी ही तबाही होती है।

१५. टिड्डीदलसे वनस्पति-रक्षाके विभिन्न उपाय

ऐसे विकट शत्रुओंसे अपनी रक्षा किस भाँति की जावे? यह समस्या संसारके सम्मुख बहुत दिनोंसे उपस्थित है। अनेकों उपाय किये गये किन्तु अबतक उनमें अचूक एक भी सिद्ध न हुआ। उनकी संख्याकी तुलनामें ये उपाय कुछ भी न ठहरे, टिड्डियोंकी परिमित संख्यापर ही उनका प्रयोग किया जा सका। कीड़ोंके विनाशमें अभीतक संक्षीणम् (आरसेनिक) लवण अतीव उपयोगी सिद्ध हुए हैं। वे जलमें घुलते नहीं, अतः वर्षा आदिका जल उसे पौधोंपरसे धो नहीं सकता। सस्ते होनेके साथ साथ वे आसानीसे उपलब्ध भी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विषोंकी अपेक्षा ये तीव्रतामें भी बहुत बढ़े-चढ़े होते हैं। आजकल संक्षीणम् घोलोंकी अपेक्षा उनका चूर्ण ही अधिक काममें लाया जाता है। उड़ती हुई टिड्डियोंपर विषैले चूर्णके छिड़-कनेमें वायुयानोंसे भारी मदद मिलती है। सभी समृद्धि-शाली देश इस ओर कुछ-न-कुछ कर रहे हैं। आजकल* (Rhodesia) रोडेसियामें सुदान सरकारके एक उच्च कर्म-चारी श्री किंग साहब इस विषयमें बहुत दिलचस्पी लेते हैं। टिड्डियोंके उड़ते हुए दलोंपर विषैला चूर्ण छिड़ककर उन्हें विनाश करनेका प्रयोग वे हालमें ही करने जा रहे हैं। प्रयोगशालामें उक्त साहबने यह अनुभव किया है कि (Sodium arsenite) सैन्धकम् संक्षीणितके महीन चूर्णसे टिड्डियाँ फौरन मर जाती हैं। उड़ती हुई टिड्डियोंपर विषैला चूर्ण छिड़कनेके लिये वायुयान ही एकमात्र साधन है। रोडेसियाके प्रयोगमें हरकुलीज नामक वायु-यानका उपयोग किया जायगा। इसके पंखोंका निर्माण इस भाँति किया गया है कि वे विषैले चूर्णको भलीभाँति छिड़क सकें। इस बातका भी ध्यान रखा गया है कि छिड़के हुए चूर्णसे मनुष्यों और फसलोंको किसी प्रकारकी हानि न हो। इस प्रयोगमें होनेवाले व्ययका अनुमान लग-भग बयालिस सौ पाउंड है। केवल अफ्रीकाके कुछ प्रान्तोंमें टिड्डीके कारण प्रतिवर्ष लगभग पन्द्रह लाख पौंडकी हानि होती है। फिर इनकेद्वारा मानव-समाजको जो क्षति पहुँचती है उसका तो वारपार ही नहीं।

१६. विभिन्न फसलोंको हानि पहुँचानेवाले विभिन्न कीड़े

टिड्डियोंके सिवा और कीड़े भी हमारी फसलोंको बरबाद करते हैं। घोट कीड़ा चनेके दाने, पोस्तकी बोंड़ी, बाजरे-की बाली आदिको खाते हैं। कपासके बिनौलोंको भी

* *Discovery* (London), May, 1934.

इस कीड़ेसे भारी क्षति पहुँचती हैं। (Rice Bug) गंधी धानकी खेतीको नष्ट-भ्रष्ट करती है। गोभीका पतंगा

गंधी (Rice Bug)
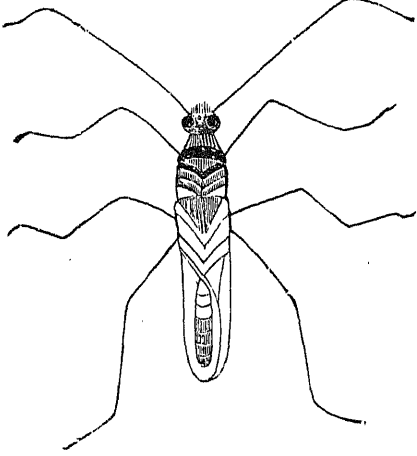
(यह कीड़ा बालियों और पत्तों को हानि पहुँचाता है। खेतमें एकबार भी प्रवेश हो जानेसे फसलकी रक्षा करना दुस्तर हो जाता है। धुँआ करनेसे यह खेतमें नहीं घुसता)

गोभीकी फसलको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। झींगुर भी खाता है और कभी-कभी तो यह खेत-के-खेत सफाचट कर जाते हैं। शिकरा तितली आलूकी फसलको हानिकर है। सेब-तितलीके लहरवे सेबके फलोंको खाते हैं और मैगपाई-तितली दाख और करौंदेके पौधोंको हानि पहुँचाती हैं। चिकटा (Plant lice) शीतकालमें अमरूद आदिके वृक्षोंपर दिखाई देता है और ग्रीष्मऋतुमें गुलाबके पत्तों पर। यह पत्तोंका रस चूस लेता है और पौधा कुछ दिनोंके बाद जीर्ण-शीर्ण होकर मुरझा जाता है। गुलाबकी पँखुरियोंका विनाशक कीड़ा 'एफिड' कहलाता है। एक प्रकारका कीड़ा अंडीके पत्तों और बीजोंको भारी हानि पहुँचाता है।

१७. चींटियोंसे हानि

चींटियाँ भी मनुष्योंको लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक पहुँचाती हैं। पत्तियोंके विनाश करनेवाले असंख्य कीड़ोंको वे बड़े अनुरागसे खाती हैं। कभी-कभी चिकित्सक घावके सीनेमें उनका उपयोग करते हैं। जैसा हम पहले कह चुके हैं पिपीलिकाम्लका आरम्भ इन्हीं चींटियों (पिपीलिकाओं) से ही हुआ था। कुछ अंशमें पुष्प-सेचनमें भी सहायक होती हैं। किन्तु इस कार्यमें सहायताकी अपेक्षा बाधा ही अधिक डालती हैं। अपने छत्तोंके निर्माण करते समय
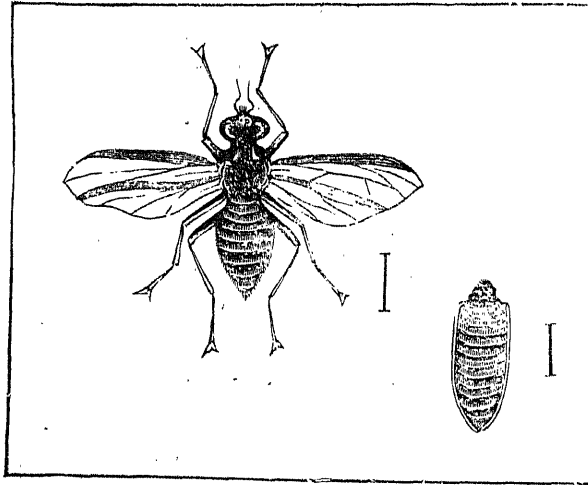
अंडीके बीजका १—कीड़ा और २—इल्ली

हमारी खूब ही हानि करता है। सूड़ी कपासकी खेतीको हानि पहुँचाती है। काकचैफर भी बनस्पतियोंको बड़े चावसे

वनस्पतियोंको ये अपार हानि पहुँचाती हैं। खलियानों और कोठारोंसे अनाज ढोकर अपने छत्तोंमें भर लेती हैं। कहीं-

कहींपर उनके छत्तोंमें दो-दो तीन-तीन मनतक अन्न एकत्रित पाया गया है और विचित्रता तो यह है कि पृथ्वीके अधोभागमें होते हुए भी अनाजमें अंकुर नहीं फूटते। भोजनकी टोहमें वे निशि-दिन घूमा करती हैं और ज्यों ही उसकी गंधतक मिली हजारोंकी संख्यामें पहुँच जाती हैं। मिठाईको वे बड़े चावसे खाती हैं। चाहे जैसे चुरा-छिपाकर मिठाईको रखिये पर चीटियाँ वहाँ किसी-न-किसी तरह पहुँच ही जायँगी। जहाँ रविकी भी पहुँच नहीं, वहाँ कविकी भाँति चीटियाँ पहुँच जाती हैं। लाखकी खेतीको चीटियोंसे बड़ी हानि पहुँचती है। कभी-कभी इनके काटनेसे मनुष्य व्याकुल हो जाता है।

१८. घरेलू भयानक शत्रुओंमें मक्खीकी नानी

दीमकें

जिस लकड़ीका हमारे घरों और घरेलू वस्तुओंके निर्माणमें उपयोग होता है उसे भी कीड़े बहुत हानि पहुँचाते हैं। ऐसे कीड़ोंमें दीमक (white ant) प्रधान है। ये प्रकाशसे भागती हैं। अतः घरोंमें नहीं दिखाई देतीं। इनकी उपस्थितिका आभास हमें तभी होता है जब ये किसी लकड़ीको काटकर भीतर-ही-भीतर खोखली कर देती हैं। हानिकी मात्रा यहाँतक पहुँच जाती है कि लकड़ी अंगुलीतकके इशारेसे धसक जाती है किन्तु उसका बाह्य-रूप ज्यों-का-त्यों बना रहता है। बाहरसे उसकी भीतरी दशाका ज्ञान नहीं होता।

१९. दीमककी करतूतोंकी एक मजेदार कहानी

मिसेज लीने एक स्थानपर लिखा है कि एक बार कार्यवश उन्हें चार-पाँच मासके लिये बाहर जाना पड़ा और इस अवधिके लिये उन्हें अपना मकान बन्द करना पड़ा। लौटनेपर एक अनोखा दृश्य दिखाई दिया। मेज कुर्सी आदि देखनेमें तो वैसी ही प्रतीत होती थीं जैसी चलते समय उन्हें वे छोड़ गयी थीं किन्तु कमरेके अन्दरकी मेजपर सामान रखते ही वह भसभसा गयी और सारा सामान नीचे गिर पड़ा। उस समय मेम साहिबाने एक कुर्सीपर बैठना चाहा किन्तु जैसे ही उसकी बाँहपर उन्होंने हाथ रखा, कुर्सीकी बाँह गायब हो गयी। यह देख उनके विस्मयका ठिकाना न रहा। तब वे उस आराम-कुर्सीकी ओर बढ़ीं जो देखनेमें अच्छी दशामें प्रतीत होती थी किन्तु उसपर लेटते ही वह चरचराकर बैठ गयी और मेम साहिबाको धराशायी होना पड़ा। अब तो मेम साहिबा बहुत परेशान हुईं। बहुत देख-भाल और सोच-विचारके उपरान्त उनकी समझमें आया कि यह सब दीमकोंकी करनीका फल है। श्रीमीटरलिंकका कथन है कि दीमकें हम लोगोंसे अधिक विवेकी होती हैं क्योंकि वे काठको पचाने, कंकड़ोंको घोलने और शरीररचनामें इच्छानुकूल परिवर्तन करनेमें अतीव निपुण होती हैं। लकड़ीके अतिरिक्त अन्य घरेलू सामानकी भी इनके कारण भयानक स्थिति रहती है। वस्त्र, पुस्तक अथवा अन्य कोई सामान तनिक असावधानीसे रख दिया कि उसकी कुशल नहीं है। यह बात विशेषकर उन्हीं स्थानोंपर होती है जहाँ दीमकोंकी भरमार होती है।

२०. ऊनी कपड़ों और स्निग्ध पदार्थोंके कीड़े

दीमककी भांति किसारी-पतंग (Teneae Pellionella) भी सूती और ऊनी वस्त्रोंको खाकर नष्ट कर देती है। किसारीकी एक अन्य जातिका कीड़ा ऊनी कालीनको नष्ट करता है। ग्रीजमाथ चर्बी, मक्खन आदि स्निग्ध पदार्थोंको बरबाद करती हैं।

२१. कठफोड़े कीड़े

दीमकके अतिरिक्त और भी अनेकों ऐसे कीड़े हैं जो मकानोंमें लगी हुई अथवा रखी हुई लकड़ीको विशेष क्षति पहुँचाते हैं। विलायतके अनेकों प्राचीन भवनोंके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता पड़ी है क्योंकि उनमें लगी हुई सुन्दर (oak) बलूतकी लकड़ीको (wood-boring beetles) काठ छेदनेवाले कीड़ोंने भारी क्षति पहुँचायी है। देवदारकी लकड़ीमें छेद करनेवाली एक मक्खी होती है। यह मक्खी अपनी (ovipositor) लम्बी योनिसे इसे छेदकर

कठफोड़ा कीड़ा

उसमें अंडे रखती है। अंडोंसे निकली हुई इल्लियाँ लकड़ीको काट-काटकर उसमें लम्बे छेद बनाती हैं।

गाल मक्षिकाएँ

इसी भांति गाल मक्षिकाएँ भी बलूतके वृक्षोंमें अंडे जमा करती हैं। ये कीड़े ऐसी सुन्दर और मजबूत लकड़ीको पोला करके लकड़ीके व्यापारको भारी धक्का पहुँचाते हैं।

गोट-माथ

फ्रांसमें एक तितली पायी जाती है जिसे गोट-माथ कहते हैं। इसकी इल्लियाँ दूसरे कीड़ोंकी इल्लियोंसे कुछ भिन्न होती हैं। ये पुराने वृक्षोंमें रहकर उनके धड़ोंको खाया करतीं हैं। इन कीड़ोंसे प्रमुखतः झाऊके पुराने वृक्षोंको ही अधिक हानि होती है। वे उन्हींको खाकर गिराया करते हैं। फ्रांस-में ही क्यों, ऐसे कीड़े तो लगभग सभी देशोंमें होते हैं। आक्रान्त वृक्षोंमें कुछ तो टूटकर गिर पड़ते हैं और कुछ उकठ जाते हैं।

बढ़ई मक्खी

भारतवर्षमें भी एक मक्खी पायी जाती है जिसे बढ़ई-मक्खी कहते हैं। देखनेमें तो यह बड़ी भली मालूम होती है किन्तु कर्म इसके अत्यंत क्षुद्र होते हैं। घरोंकी धरनों और काठ-कबाड़की लकड़ीमें यह अपने बच्चोंके रहनेके लिये छोटी-छोटी कोठरियाँ बनाकर उन्हींमें अंडे देती है। कोठ-रियोंके मुँह बन्द करनेके लिये यह लकड़ीके छोटे-छोटे टुकड़ोंको काटकर लगाती है? इन टुकड़ोंको मक्खी अपने लसदार थूकसे सटा देती है। कोठरीके भीतर जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो उनकी दीवारोंको काटकर बाहर निकल आते हैं।

भौंरा

भौंरा भी हमारे मकानकी लकड़ीको बहुत हानि पहुँ-चाता है।

कच्ची दीवार काटनेवाले कीड़े

लकड़ीको बरबाद करनेके अतिरिक्त कुछ कीड़े मकानकी कच्ची दीवारोंमें अंडे देते हैं। अंडोंसे बच्चे निकलते हैं जो दीवारोंको काट-काटकर खोखली बना देते हैं।

२२. झींगुर, घुन और आटेके कीड़े

झींगुर, घुन और आटेके कीड़ोंकी काली करतूतें भी हमारे पाठकोंसे छिपी नहीं हैं। झींगुर कागज, फल और आटेसे अपना भरण-पोषण करते हैं। इसके मुँहसे एक लसदार पदार्थ निकलता है जिसके लगनेसे खाने-पीनेकी वस्तुएँ खराब हो जाती हैं। घुन और आटेके कीड़ोंने महायुद्धके अवसरपर भोजनकी सामग्रीको इस वेगसे बरबाद किया था कि यदि कहीं कुछ दिन और युद्ध जारी रहता तो युद्धके परिणामके निर्णयकर्त्ता यही कीड़े होते।

भारतीय मधु-मक्षिका
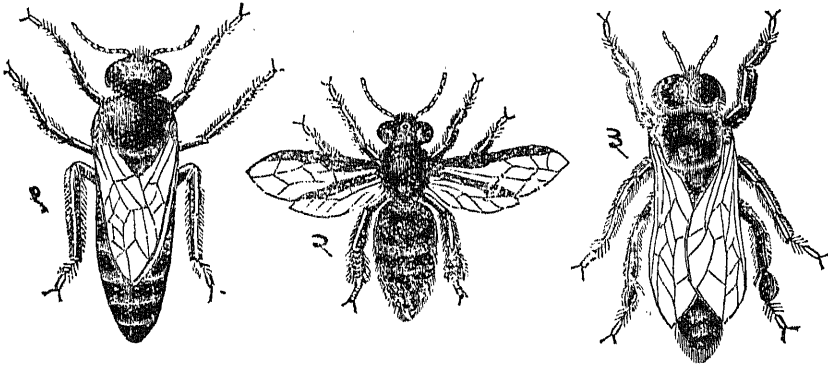
रानी मक्खी परिचारिका या मजदूर नर

(शहदके छत्तोंमें पायी जानेवाली तीन प्रकारकी मक्खियाँ)

२३. प्रकृतिने कीड़े मकोड़ोंकी सृष्टि क्यों की ?

कीड़ोंके इस संक्षिप्त विवरणसे पाठकोंको स्पष्ट रूपसे

यह विदित हो गया होगा कि कीट-वर्गके अधिकतर प्राणी मनुष्य-जातिको हानि ही पहुँचाते हैं, मधु-मक्षिका, लाह, रेशम आदिके लाभदायक कीड़ोंकी उपादेयता हानिकारक कीड़ोंकी तुलनामें कुछ भी नहीं ठहरती है। सचमुच यह दैव-दुर्विपाक ही है कि कीड़ोंके समान समर्थ और सुव्यवस्थित प्राणी-समूह मानव-समाजके लिये हानिकारक हो। यह निर्विवाद है कि कीट-विषयक ज्ञानमें अभिवृद्धि होनेपर हमें और भी अनेकों कल्याणकारी कीड़ोंकी जानकारी होगी।

हमें नीचा दिखानेके लिये ?

यदि हम हानिकारक कहे जानेवाले कीड़ोंके अस्तित्वके औचित्यपर विचार करें तो हम कह सकते हैं कि पड़ी हुई बेकार लकड़ी और हमारे उपयोगमें आनेवाली लकड़ीके भेदका विवेक उनमें उत्पन्न हो जायगा और बेकार लकड़ीको ही हानि पहुँचाना आरंभ कर देंगे उसी दिनसे वे कीड़े हमारे लिये लाभ पहुँचाने लगेंगे। फिर विविध प्रकारके रोगोत्पादक कीड़े भी प्रकृति और मानव समाज दोनोंको लाभदायक हैं क्योंकि उनके यत्नसे मनुष्यों और पशुओंकी संख्या मर्यादित रहती है। भूमिसे जितना खाद्य पदार्थ उपजता है, प्रकृति उतनेही खानेवालोंकी रक्षा करती है; शेषका अंत कर देती है। मनुष्योंकी आबादीको मर्यादित रखकर वे उस कालको आनेसे रोकते हैं जब 'मानस कौं मानस भरि खैहैं।' उसी भांति फसलोंको

चट्टानी मधु-मक्षिका (rockbee)
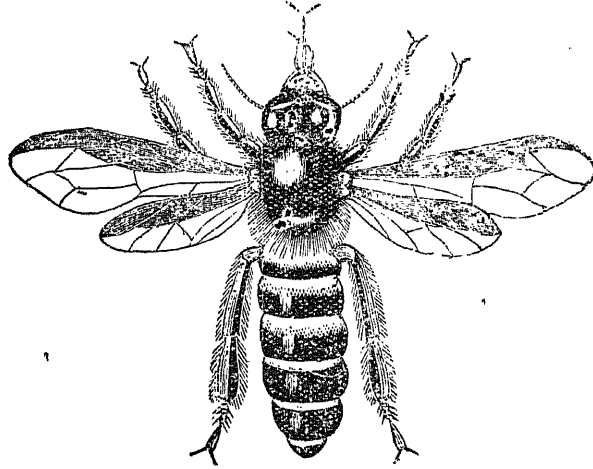
मजदूर

अत्यन्त विषैली होनेके कारण यह मक्खियाँ हाथीतकको मार डालती हैं

परमात्माने मानव-समाजको नीचा दिखानेके लिये ही कीट-समाजका सृजन किया है। कारण कि प्राणि-संसारमें कीड़ोंका ही एक वर्ग है जो मनुष्योंकी नाकमें दम किये रहता है।

हानिकर कीड़े भी कब लाभदायक सिद्ध होंगे ?

हम कह सकते है कि वृक्ष-विनाशक कीड़े प्रायः उन्हीं वृक्षोंको हानि पहुँचाते हैं जो या तो रुग्ण हैं अथवा जंगलोंमें गिरे-पड़े हुए हैं। अर्थात् ये काठ-भक्षक कीड़े गुबरैले और सड़े-गले गंदे पदार्थोंका भक्षण करनेवाले कीड़ोंकी भांति प्राकृतिक मेहतरोंका कार्य करते हैं। जिस दिन जंगलोंमें हानि पहुँचानेवाले कीड़े भी किसी जाति-विशेषके वृक्षोंको मर्यादित रखकर प्रकृतिको बड़ी सहायता पहुँचाते हैं।

२४. विकास-बाधक कीड़ोंके संबंधमें हमारा कर्तव्य

किन्तु इस भांतिकी धारणा सृष्टिके रचयिताकी हो सकती है, मनुष्योंकी तो नहीं हो सकती। क्योंकि हममें तो 'आत्म-रक्षा'का ही भाव प्रधान है, अतः हम उसी पंथके पांथ होंगे जिससे हमारी आत्मरक्षा और जातिरक्षा हो। इस इष्ट-प्राप्तिके लिये हमें समस्त हानिकारक कीड़ोंके विनाश-

अनाजोंका महाराजाधिराज, भूखोंका कल्पवृक्ष

सोया-सेमके दानोंकी, सोया-बीन्सकी, खेती करो

[ले०—श्रीडाह्यालाल ह० जानी, बी. एजी. (अग्री. इका.), गोल्ड मेडलिस्ट, रणपुर, काठियावाड़]
[हिन्दीकार श्रीराधारमण याज्ञिक, काशी ।]

१. आहारकी समस्या

जीवनके प्रश्न अनेक हैं। उनमें खुराकका प्रश्न सर्वप्रथम है। खुराकसे ही जीव टिकता है और जीवनका विकास होता है। "अन्नाद्भवन्तिभूतानि"—अन्नसे ही जीवोंकी उत्पत्ति है। और इसीके आधारसे जीव स्थित रहता है।

भारत जैसे दीन-हीन और गरीब देशके सामने सब प्रश्नोंके पहले खुराक—रोटीका प्रश्न आ खड़ा होता है। भारतमें आहार-शास्त्र और अर्थशास्त्रके बीच द्वन्द्व चला करता है। इसलिये गरीबीके कारण खुराकको कम करना पड़ता है।

२. रोटीका सवाल !

आज तो भारतको पेटभर खानेके लिये अनाज मिलता नहीं है। भारतमें करोड़ों भूखों मरते हैं। भारतकी प्रजाके तिहाई हिस्सेको तो हर समय उपवास-सा ही बना रहता है। भूखे तथा अधभूखे कंगालोंकी हृदय-विदारक कथा कहनेका यह प्रसङ्ग नहीं है।

इस देहका चर्खा चालू रखनेके लिये तथा स्फूर्ति-युक्त रखनेके लिये—अर्थात् अस्थिपञ्जरको निभानेके लिये—देहमें गरमी और शक्ति पहुँचानेके लिये, जहाँ इस शरीररूपी मशीनके बेलटमें पूरा कोयला ही नहीं मिलता, वहाँ पोषण होनेकी क्या बात ?

३. खुराककी कमीमें ?

जहाँ देहको जीवित रखनेवाला भोजन (निर्वाहक आहार—फायरफूड) ही कम मिलता है वहाँ शरीरका विकास करनेवाले (निर्मायक आहार—बिल्डिङ्ग फूड) भोजनके मिलनेमें कितनी कठिनता होती होगी यह बात बिलकुल स्पष्ट है।

जन्मसे यौवनपर्यन्त शरीरका विकास होनेके लिये, उसी प्रकार जन्मसे मरण-पर्यन्त प्रति क्षण होनेवाले (सेल्स) कणोंका एवं स्नायुओंका खर्च पूरा करनेके लिये

के उपाय करने पड़ेंगे। जो कीड़े हमारे जीवन-व्यापार और उन्नति-शाली आयोजनाओंमें बाधक हैं हमें उनका खोज-खोजकर उन्मूलन करना पड़ेगा। मानव समाजकी दृष्टिमें यदि यह भावना समीचीन नहीं है तो यह निश्चय है कि कुछ समयमें कीड़े हमें अपने वशीभूत कर लेंगे। कई विद्वानोंके मतमें मच्छरोंके उपद्रवोंके कारण सभ्यताके विकासमें बड़ी बाधाएँ पड़ीं और कई बार तो उसका अंतही इनके कारण हो गया था। मलेरियाके कारण यूनानकी प्राचीन सभ्यताका पतन हुआ और इसी भयानक रोगके कारण अफ्रीकामें कई बार सभ्यताकी उन्नतिमें बाधाएँ पहुँचीं। मच्छरोंको वशीभूत करनेमें हमें बहुत कुछ सफलता मिली है। इसी सफलताका यह प्रसाद है कि संसारके कई प्रदेशोंका जलवायु पहलेकी अपेक्षा कहीं उत्तम और स्वास्थ्यकर होगया है और अब वे मनुष्य और घरेलू जानवरोंकी आबादीके योग्य हो गये हैं। इसी भांति फसलोंके विनाशक कीड़ोंको वशीभूत करनेमें हमें काफी सफलता मिल रही है। किन्तु 'दिल्ली अभी बहुत दूर है।' ईश्वर हमें बल दें कि इन लोकोपयोगी कार्योंमें हम और भी लगनसे जुट जायँ और शीघ्र ही कल्याणकारी इष्टकी प्राप्ति हो।*

'यहि आसा अटक्यो रह्यो, अलि गुलाबके मूल।
ऐहैं बहुरि बसंतरितु, इन डारनि वे फूल॥'

* इस लेखके लिखनेमें हमने बालफोर ब्राउनकी 'इंसेक्ट' नामक पुस्तकसे सहायता ली है।—लेखक

खुराककी जरूरत रहती है। जिसको यह नहीं मिलता उसे अपने स्नायुओंके ऊपर निर्वाह करना पड़ता है।

भारतकी चतुर्थांश प्रजाको ही दूध, घीका मुँह देखनेको मिलता है? इन २५ प्रतिशत भाग्यशाली मनुष्योंको प्रतिवर्ष प्रायः ८ सेर घी और प्रतिदिन ३ छटाँक दूध मिलता है। जिन्हें मिलता है उन्हें यही कहा जा सकता है कि 'एक चुहिया जितना पेशाब करती है उतना घी और चुल्लूभर दूध मिलता है। बाकी तीन हिस्सेको तो दूध-घी दुर्लभ है, इसका तो ये बेचारे मुँह भी नहीं देखने पाते हैं। मट्ठा भी कभी-कभी सब लोगोंके लिये कितनी दुर्लभ वस्तु हो जाती है यह तो जानी हुई बात है।

४. हमारी दयनीय दशा

आजकल भारतकी पृथ्वी, भारतकी वनस्पति, भारतके पशु और स्वयं भारतवासी, ये सब पोषणके बिना कितने क्षीण और गरीब हो गये हैं। पृथ्वी और खेतोंको किसान खाद और पानी देकर बलवान नहीं बना सकता है और पृथ्वी धान्य और वनस्पतियोंका पोषण नहीं कर सकती और वनस्पति पशु प्राणियों और मनुष्योंका पोषण नहीं कर सकती। उसी प्रकार पशु प्राणी, मनुष्योंका पोषण नहीं कर सकते।

इस तरह भारतमें हर स्थानमें अपोषण-पोषणाभाव (Denutrition) ही दिखाई पड़ता है और उसका असर प्रतिवर्ष ६० लाख मृत्यु और सवाचार करोड़ विधवा तथा २३ वर्षकी आयु इत्यादि रूपमें दिखाई पड़ता है।

५. हमारे लिये मांस अनुपयोगी क्यों है?

भारतकी भारतीय प्रजा ज्यादातर मांसाहारी नहीं है। जो आधा भाग किसी तरह मांसाहारी गिना जा सकता है उसको मांस मिलना मँहगा पड़ता है। भारत कृषि-प्रधान देश है। जिस देशमें पैंतीस करोड़की विस्तृत जनता रहती हो, जहाँ खेती लायक मुख्य यथेष्ट भूमि बाकी न रही हो और जहाँ भूमि-कर परिस्थितिवशात् असह्य हो उठा हो वहाँ मांसका विकास करना कठिन और व्यर्थ हो जायगा।

सौ खोके एक लेनेमें जैसी बेवकूफी होगी वैसी ही अनाज छोड़कर मांस पैदा करनेमें होगी। इस प्रकार भारतमें पोषणके लिये मांसाहारका विकास करनेके लिये क्षेत्र ओछा ही है। मछली और अंडेका प्रश्न रहा सो इसका विकास किसी अंशमें हो सकता है। परन्तु इतनेपर भी भारतका आहार-प्रश्न ज्योंका त्यों रह जायगा। भारतका और वर्तमान विश्व-संस्कृतिका आहारादर्श (डायरेक्टिक आईडियल) दुग्धान्न-कृष्यान्न (Lactico-Vegetarianism) है।

६. गो-सेवा न करनेके अभिशाप

भारतके अभाग्यसे आजकल दुग्धान्नोंका अत्यन्त अभाव और तेजी है। पोषणके लिये प्रजाको मांसादि तो पूरा नहीं पड़े और दुग्धादि मिले नहीं ऐसी विषम अवस्था आजकल भारतमें दिखलाई पड़ रही है। भारत गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक होनेका दावा करता है पर उसका फल कुछ नहीं होता। भारतमें अच्छी गौएँ और सच्चे ब्राह्मण, इनका दुष्काल है। आज भारतमें गौ, ब्राह्मण और उनके पोषक तीनों इतने ओछे हो गये हैं कि कोई किसीका कल्याण नहीं कर सकता।

शरीरकी पुष्टि और विकासके लिये 'दुग्धान्न' जैसे अच्छे पदार्थोंका मिलना संभव नहीं है। मांस, मछली और अंडेसे अच्छे और सस्ते दुग्धान्नका भारतमें अभाव होना, सच्ची गो सेवाकी तरफसे अपनी दृष्टि हटा लेनेका प्रमाण-स्वरूप है। भारतमें प्रतिवर्ष १५ करोड़ रुपया पशुशाला आदिके लिये खर्चा जाता है। इसका फल क्या है कि एक तरफ तो पशु निर्बल और दरिद्र होते जाते हैं और दूसरी तरफ कटोरेमें दूधका और प्रजामें पोषणका अभाव है और वह अत्यन्त कष्ट पाती है और शीघ्रतासे मरणकी ओर अग्रसर होती जाती है।

७. विवेक-शून्य दयाका फल

इन पन्द्रह करोड़ रुपयोंके बदले पन्द्रह लाख या एक टका भी पशुओंकी सच्ची रक्षामें खर्चा जाता तो आज पशुओं और मनुष्योंकी यह दशा न होती। भारतको विवेक-रहित दयाने गिराया है और विवेक-पूर्ण सहायता ही उसको ऊँचा बनावेगी। Charities have killed and chilled India, and bounties shall resurrect it. इस सत्यको हम लोग जितनी जल्दी समझेंगे उतनी ही जल्दी हम लोगोंका कल्याण होगा।

८. मांस सस्ता क्यों ?

भारतमें बकरी या भेड़के बजाय गायका मांस अधिक सस्ता मिलता है। यह फल अपनी कुढङ्गी गो-सेवाका है कि और किसीका? आजकल तो दूधकी अपेक्षा मांस और अण्डेसे कम खर्चेमें अच्छा और अधिक पोषण मिलता है। ऐसे समयमें अपने वैज्ञानिकोंको विचित्र तरीकेकी गो-सेवा न करने लगनी चाहिये।

९. पौष्टिक पदार्थ कौन है ?

पहले अपनेको पोषण या पौष्टिक आहारका अर्थ अच्छी तरहसे समझना चाहिये। घी-गुड़को हम लोग पौष्टिक मानते हैं। यह बात ठीक नहीं हैं। जो आहार अच्छी तरहसे शरीरमें गरमी और शक्तिका संचार करे उसे पौष्टिक नहीं कहते हैं, जो आहार शरीरकी कमजोरी या व्ययको पूरा करे, शरीरमें रक्त, मांस, हड्डी, ज्ञानतन्तु, वीर्य इत्यादि सात धातुओंके कणकोषकी आकांक्षा पूरी करे और नूतन शक्तिकी वृद्धि करे उसे पोषण कहते हैं।

१०. हमारी भूल

इस दृष्टिसे घी-गुड़से दूध अधिक पौष्टिक है। जिस खुराकमें जितने अधिक परिमाणमें गरमी और शक्ति मिलती है उतने ही अधिक लोग उसे पोषणकारक भूलसे मानने लगते हैं। आजकल (Calorific Value) ऊष्मांकके आधारपर पोषकत्व नहीं मापा जाता है, किन्तु खुराकमें निर्मायक, रचक, घटक अंश कितना है और कैसा है, इस आधारपर पौष्टिकताकी परीक्षा होती है।

जिसमें नोपजन होता ही नहीं उसमें पौष्टिकता भी नहीं होती यह निर्विवाद बात है। जिसमें नोपजन होता है उसे नोपज या नोपिल कहते हैं। अंग्रेजीमें जिसे प्रोटीन [हि० प्रत्यामिन] कहते हैं वह विशेष रूपसे "नोपिल" होता है। प्रोटीनका वाच्यार्थ है "मुख्य"। अब भारतका प्रोटीन-प्रश्न विचारनेके लिये सामने आता है।

११. हमारी शारीरिक दुर्बलताका मूल

भारतकी जमीनको खाद रूपसे नोपिल नहीं मिलता इसलिये उपज कम होती है। इसी प्रकार भारतके पशु प्राणियों और मनुष्योंको यथेष्ट प्रत्यामिन नहीं मिलता इसलिये हमलोगोंका शरीर दरिद्र, दुर्बल, और भद्दा मालूम पड़ता है। मांस, अंडे, मछलीमें वह होता है पर उसका विचार यहाँ करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। दूधमें मुख्य रूपसे प्रत्यामिन होता है यह कहा जा सकता है। इसलिये दूधकी पैदाइश दुग्धान्नोंमें है यह बिलकुल स्पष्ट है। पर इस प्रकार, दूधसे ही घी और मक्खन बननेपर भी उसमें प्रोटीन बिलकुल नहीं होता। इसलिये यह पोषणकारक नहीं कहा जा सकता। वह तो (Fat—वसा) स्नेहके भागके रहनेसे ऊष्माप्रद और बलप्रद होता है।

अपनी देहका विकास करनेके लिये और उसकी कमी पूरी करनेके लिये ढाई सेर प्रतिदिन दूध चाहिये। जब उस चतुर्थांशको, जिसे दूध मिलता है, पूरा नहीं पड़ता तो इस तरहके पोषणके अभावकी दशामें करना क्या चाहिये ?

१२. हमारी गो-सेवा

गायोंका अच्छी तरह पालन हो सके ऐसी घास, चारा पैदा करनेकी जमीन नहीं है। ऐसी स्वाश्रयी गायें जो अपने आप निभ सकें बहुत कम हैं। जीवदयाके ऊपर निर्वाह करनेवाली पराश्रयी गायें और उनका निर्वाह करनेकी बेढंगी गो-सेवा आज देशको भार-रूप और शापरूप है। तब ऐसे समयमें यह प्रश्न दिमागका द्वार खटखटाता है।

१३. आहार-मीमांसा

प्रत्यामिन किस पदार्थमें कितना है ?

प्रोटीन या प्रत्यामिनें तीन प्रकारकी होती हैं, पूर्ण (perfect) अपूर्ण, (imperfect) और न्यून (deficient)। पूर्ण प्रत्यामिन यदि थोड़ी ही मिले तो अपूर्ण और न्यूनसे अच्छा पोषण मिल सकता है।

दूध, मांस अण्डा इत्यादि प्राणिज पदार्थोंमें पूर्ण प्रत्यामिनें होती हैं। मूंगफली, बादाम, शाक-भाजी, गेहूँ इत्यादि धान्योंमें और मूंग, मोठ, मटर आदि द्विदल अन्नोंमें (Legumes) न्यूनाधिक अंशमें प्रत्यामिनें होती तो हैं पर अपूर्ण और न्यून ही होती हैं।

पूर्ण प्रत्यामिन बिना काम नहीं चलता, इसीलिये पूज्य गांधीजी जैसे आहार-चिकित्सकको अन्तमें बकरीका दूध लेना ही पड़ता है। धान्योंके बजाय द्विदल अन्नोंमें, ज्यादा प्रत्यामिनें होती हैं। किन्तु बहुत द्विदल अन्नोंमें 'हलकी' अपूर्ण और न्यून प्रत्यामिन होती है इसलिये यह ठीक

नहीं पड़ती और पोषणके लिये ओछी होती है। घी, तेल ऐसे सान्द्र (कान्सेन्ट्रेटेड) आहारकी जरूरत होती है। इसका थोड़ा आटा और गुड़ बहुत कम काम देता है ।

१४. सोया-सेमका आहार-मूल्य और उसकी विशेषता

दूधकी तरह, किन्तु उससे अधिक प्रोटीन, घी, तेलका तर या स्नेहल भाग, अच्छे प्रकारकी चीनी और अधिक परिमाणमें चूना, लोहा और फास्फोरसकी तरहके उत्तम नमक तथा खाद्योज १,२ औ ४ ये सब अधिक तथा उत्तम प्रकारसे किसी सुलभ पदार्थमें हों तो कितनी अच्छी बात है ?

जब प्रजाको दूध-घी सपना हो रहा है, मोरके आँसूकी तरह मट्ठेकी बराबर आकांक्षा ही बनी रहती है और जहाँ घीका मुँह देखनेको नहीं मिलता, वहाँ यदि ऐसा कोई पदार्थ हो जो कि दर्दमन्दका दर्द मिटावे, भूखोंकी भूख शान्त करे, निर्बलको बल दे और क्षीणको पुष्ट करे, तो क्या कहने ?

इस समय यदि ऐसा पदार्थ भारतको मिल जाय तो आशीर्वाद-रूप ही हो जाय। पोषण, मूल्य, आरोग्य और उपयोग इन तमाम दृष्टियोंसे अत्यन्त सस्ता, सादा और सुलभ जो कोई पदार्थ मिल जाय तो हर एकको बहुत अच्छा लगे।

ऐसा एक पदार्थ—ऐसा एक अनाज—भारतमें होने लगा है। किसी कवि या आलङ्कारिकने नहीं किन्तु रसायन-शास्त्रियों और सरकारने इस अनाजकी महत्ता समझ उसे "अन्नसम्राट्" की उपाधि दी है। यह अनाज एक प्रकारका द्विदल अन्न है। पर इसमें द्विदल अन्नोंकी भांति अवगुण नहीं हैं। किन्तु उलटे इसमें घी, मांस, दूध, अंडा आदिके गुण अधिक अंशमें हैं। इस अन्नसम्राट्का नाम सोयासेम (सोया-बीन) है। अब इस अन्न-सम्राट्का परिचय लेना चाहिये।

१५. धान्य-सम्राट् क्यों ?

सोया-सेम द्विदल जातिका है। इसीलिये इसे द्विदल-राज (Legume-King) कहते हैं। चीन, जापान, कोरिया, मंचूरिया इत्यादि देशोंमें, और हमारे पूर्वोत्तर सीमापरके गारो पहाड़ और इसी तरहके जंगली प्रदेशोंमें सोया-बीन्सको लोग हजारों वर्षोंसे जानते हैं और वहाँ इसका अच्छी तरह उपयोग होता है।

१६. मजेदार भूल

चीन, जापान आदि बौद्ध धर्मी देशोंमें पशुओंके दूधका व्यवहार करना अधर्म समझा जाता है, क्योंकि, दूधमें तो उनके बच्चोंका हक है, अपना नहीं। और पशुओंका दूध पिलानेसे बच्चोंके उनकी तरह सींग पैदा होंगे इस भय और वहमसे वहाँ आदिसे ही पशु दूधका व्यवहार बहुत कम होता रहा है।

१७. सोया-सेम क्या है ?

चीन, जापानमें अवश्य ही अब लोग इस भय और वहमको छोड़कर दूध और मांसका व्यवहार बढ़ाने लगे हैं। सोया-सेम पीली मंगोल जातिकी गायरूप है। इन लोगोंका यही दूध है और उससे बना हुआ दही, मक्खन, पनीर है। चाह, काफी, आइस्क्रीम, सिखरन, हलुवा मिठाई इत्यादि विभिन्न प्रकारके पदार्थ इससे बन सकते हैं। दूधसे जितने प्रकारके पदार्थ बन सकते हैं उतने ही नहीं किन्तु मटर और चना आदिका जिस-जिस प्रकार उपयोग होता है उस-उस प्रकार इसका भी उपयोग हो सकता है।

१८. विविध स्वादिष्ट पदार्थोंकी कामधेनु

नीचे लिखे प्रकारकी वस्तुएँ इससे बन सकतीं हैं—बेढ़ई, परौठा, टिकड़ा, रोटी डबलरोटी, बिस्कुट, पूरी, भुजिया, बड़ा, पापड़, सेव, मीठे सेव, चबेना, सोयापाक (मगज या मोहनथालकी तरह एक पकवान) इसी प्रकार इसका दूध बना करके दूधकी तरह तमाम उपयोग हो सकता है। पनीर (Cheese), आइस्क्रीम, काफी, केसीन, मार्गरीन, मेकेरोनी इत्यादि अनेक प्रकारके पदार्थ इससे बन सकते हैं।

गत फरवरी मासमें, बम्बईमें दवाखानोंकी मदद करनेके लिये जो एच्० ओ० एच्० मेला हुआ था उसमें श्री महाराज जयाजीरावके आश्रयमें एक जापानी कम्पनीने एक दूकान और उपाहार-गृह खोला था उसमें हजारों लोगोंने उपर्युक्त पदार्थोंको मास-डेढ़-मासतक चखा था। इसे सब कोई जानते हैं।

१९. गरीब भारतके लिये आशीर्वाद

किन्तु सोया-सेम अमीर-गरीब विशेषकर भारतकी गरीब जनताको जिसे दूध, मांस या किसी पौष्टिक पदार्थके खरीदनेकी शक्ति नहीं है, उसे यह एक आशीर्वाद-रूप होगा, यह निर्विवाद है।

२०. तुलनात्मक महत्व

सोया-सेमको 'धान्य-सम्राट्'की उपाधि देनेके प्रमाणस्वरूप धान्यगुण-विश्लेषक कोष्ठ

अनाज	पोषण प्रतिशत	पोषणांश पारस्परिक निष्पत्ति	ऊष्मांक कलारी	प्रोटीन पोषक तत्व	स्नेह या चरबी	मंड और चीनी	क्षार
%	%		%	%	%	%	%
सोया-बीन्स	५५.५	१.८	२१००	४०	२०.३	२४.६	४.८
दूध	२२.७	४.४	४८०	३.५	४	३.५	०.७१
घी	०	०	२९००	०	१००	०	०
अंडा	६२.५	१.६	७२०	१४.८	१०.५	०	१.५
मांस	४१.६	.२४	५७६	२४	२.५	०	१.५
गेहूँ	१५.४	६.४	१७५०	१२	१.७	७३.७	१.५
मटर	३८	२.६४	४८८	२४	१.५	६०.०	३.०

२१. विशेषताएँ

चर्बीकी अधिकता

उपर्युक्त कोष्ठसे देखा जा सकता है कि मांस और अण्डेके सिवाय पोषणांशमें सोया-सेम ही प्रथम आता है। और सोया-सेममें अन्य द्विदल अन्नोंसे चरबी अधिक अंशमें है। यह इसके नोषिलको अधिक सुपाच्य बनाता है और इसकी यह विशेष बड़ाई है कि इसका स्नेहल भाग घी, मक्खनकी तरह उत्तम जातिका होता है।

विभिन्न रोगोंमें

काडलीवर ऑइलकी तरह इसमें पोषक असर होता है। इसके अन्दरका 'ग्लिसाइन नोषिल' पूर्ण प्रत्यामिन है। इसके (कार्बोहाइड्रेट्स) कर्बोज्जेतोंमें दो भाग चीनी और एक भाग डेक्सट्रीन होता है, किन्तु मंड नहीं होता। इसलिये क्षय, कृशता और प्रमेहके लिये यह बहुत उपयोगी होता है। इसकी खिचड़ी, काफी और कांजी रोगीको दी जाती है। इसका पनीर बहुत बढ़िया बनता है।

२२. प्रोटीनका महत्व

प्रोटीन प्रजाको उद्यमी और उत्साही बना सकती है। विज्ञानका यह सिद्धान्त है कि जिस प्रजाको प्रत्यामिनें नहीं मिलतीं वह निर्बल, वचन-शूर झगड़ालू तथा भाग्यका भरोसा करनेवाली होती है। भारतके लिये यह बात अच्छी तरह लागू हो जाती है। भारतके मध्यम वर्गकी खुराककी परीक्षा करके यह स्वीकार किया गया है कि इसमें पोषण चतुर्थांश या पंचमांश रहता है। गरीब लोगोंको तो इतना भी दुर्लभ है।

२३. हमारे कल्याणका मार्ग

इस खराब स्थितिको सोया-सेमकी खेती तथा प्रचार करके हटाया जा सकता है। हमारे नेता लोग जितनी जल्दी इस तरफ अपना उत्साह दिखावेंगे और किसान लोग जितना यथायोग्य लाभ उठावेंगे उतना ही उनका कल्याण होगा।

२४. उपयोगके विविध ढंग

गरम पानीमें सोया-सेमका आटा डालकर कपड़ेसे छान लेनेसे इसका दूध बन जाता है। उसका दूधकी तरह तमाम रीतिसे उपयोग हो सकता है। इसीसे मलाईकी बरफ, पनीर, हलुवा, मिठाई आदि अनेक पदार्थ बनते हैं। चना आदिकी तरह इसे सेक या भून करके भी खाते हैं। नीले

दानेका ओला बनता है। सेके हुए दानोंकी काफी और कांजी बनती है।

२५. औद्योगिक महत्व

तेल निकालनेका ढंग

तिल और मूंगफलीकी तरह कोल्हूमें पेरकर इसका तेल नहीं निकलता। इसको उबालकर इसका सत निकाला जाता है। तेजाबमें डालकर इसका तेल निकाला जाता है। (solvent method) घोलविधिसे भी इसका तेल निकाला जाता है।

२६. विविध वस्तुओंके बनानेमें उपयोग

इसके बाद कला-कौशलमें भी इसका बड़ा अच्छा उपयोग होता है। जिस तरह रँगनेके लिये अलसीसे तेल निकलता है उसी तरह इससे भी निकल सकता है। इससे ग्लिसरीन बन सकती है और ग्लिसरीनसे बननेवाली कीमती दवाएँ और बारूद आदि बन सकती हैं। और मार्गेरीन, चिकनाई, वार्निश, रंग, साबुन, सेल्युलोइड, छापनेकी स्याही, बनावटी रबर, सरेश, नकली चमड़ा, एनामेल इत्यादि विविध वस्तुओंके बनानेमें इसका उपयोग होता है।

२७. सोया-सेमको क्यों अपनायें ?

चीन, जापान आदि देशोंको जो हजारों वर्षसे पाल रहा है ऐसे अद्‌भुत और पौष्टिक अनाजका यदि हमारा देश उपयोग न करे तो किस प्रकार काम चलेगा !

भारतके पोषणके लिये उसकी राष्ट्रिय कमजोरी या शक्ति-ह्रासको दूर करना पड़ेगा। क्षय, मधुप्रमेह आदि शक्ति-नाशक रोगोंसे बचना होगा। उसकी तेईस वर्षकी अल्पायुसे मुक्त होना होगा और उसकी जीवनशक्ति सुधारकर संसारके संग्राममें लड़नेयोग्य बनाना होगा। इनके लिये उसे पोषण चाहिये।

भारतकी गायें अब इस कमीको पूरा कर सकें ऐसा होना कठिन है। और मांस, अंडा आदि इसे मिले या यह इनका व्यवहार करना पसंद करे, यह भी नहीं हो सकता। ऐसे समय शीघ्र ही इसे सोया-सेमसे लाभ उठाना चाहिये।

२८. पाश्चात्योंमें इसका प्रचार

सोया-सेमके प्रचार और इसके तत्त्वोंकी परीक्षाके लिये पाश्चात्य लोग कटिबद्ध हो गये हैं। करीब सौ वर्षसे उसका लाभ उठा रहे हैं। यूरोप, फ्रांस, स्वीटजलैंण्ड, जर्मनी, इटली और बल्कन राज्योंमें इसे बोया और व्यवहारमें लाया जाता है।

मुसोलिनी अपनी सेनाके लिये डबलरोटीमें पाँचवाँ भाग सोया-सेमका मिलवाता है और उसकी वैज्ञानिक परीक्षा कराता है। रूसकी पांच वार्षिक योजनामें सोया-सेमका प्रधान स्थान था। मास्कोमें सोया-संशोधक-संस्था भी खुली है।

इस तरहके उपयोगी धान्यको यदि भारतवर्ष ग्रहण करेगा तो निस्संदेह उसका कल्याण होगा।

२९. अन्य अवान्तर लाभ

जिस प्रकार अन्य द्विदल धान्य पैदा होते हैं उसी परिमाणमें इसे भी खेत या बागीचोंमें पैदा किया जा सकता है। और दूसरे द्विदल धान्योंकी तरह इससे भी जमीन सुधरती है। यह मलेरियाके कीड़ोंका शत्रुस्वरूप है। ये अनेक अवान्तर लाभ इसमें हैं।

३०. भारतकी समृद्धिका साधन

भारतमें पोषणके लिये तथा भावी कला-कौशलके उपयोगके लिये इसे बड़ी मात्रामें पैदा करनेकी आवश्यकता है। भारतने आलू, टमाटर, गोभी, तम्बाकू, काफी, मूँगफली आदि चीजोंको जिस प्रकार अपनाया है और जिस तरह अपनी सैकड़ों चीजोंको संसारमें फैलाया है उसी प्रकार यदि इस अनाजका स्वागत करेगा तो भारत निस्संदेह निश्शंक और सुखी रहेगा।

३१. कृषि-विषयक ज्ञान

सोया-सेमकी जातियाँ

साधारणतया सोयाबीन्सकी बारह सौ जातियाँ होती हैं। इनमें तीसके लगभग मुख्य हैं। इसका पौधा फुट-सवा-फुट ऊँचा होता है। उसीमें डालियाँ आदि फूटती हैं। मूँग, उड़दकी तरह इसकी पत्ती होती है और चपटी-सी फली होती है तथा हरएक फलीमें तीन-चार दाने होते हैं।

कुछमें मटरकी तरह चपटा दाना होता है, और किसीमें गोला और लम्बा होता है। दाने सफेद, भूरे, पीले, चित-

शरीरके सिंहद्वारकी चौकसी

फाटककी सामग्री दाँतोंकी रक्षा

(ले०—श्री सातकौड़ी दत्त, प्रयाग विश्वविद्यालय)

१. शरीर-प्रासादमें दाँतोंका स्थान

दि मानवी शरीरकी तुलना एक प्रासादके साथ की जावे तो मुँह उस प्रासादका सिंहद्वार और दोनों जबड़े उसके फाटक कहला सकते हैं। बहुधा यह देखा जाता है कि दाँतोंके रहते लोग उनकी रक्षाका ध्यान नहीं रखते और उनकी उपयोगिताकी अवहेलना कर देते हैं। कवि कालिदासने लिखा है "वदसि यदि किञ्चिदपि दन्त-रुचि कौमुदी" दाँतकी शोभा और माधुरी किस प्रकार उत्तरोत्तर प्रकृष्ट बनायी जा सकती है इन सब बातोंका विश्लेषण मैं यहाँ करूँगा।

२. दाँतोंके प्रकार और उनके निकलनेकी अवधि

दाँतोंका यत्न शैशवसे ही होना चाहिये। शिशु जब धरतीपर गिरता है तब दाँत नहीं रहते परन्तु (tooth germ) दाँतोंके अणु (gums) मसूढ़ोंमें रहते हैं। जो दूधके दाँतके रूपमें छः-मासपश्चात् दृष्टिगोचर होते हैं। सम्पूर्ण दूधके दाँत (milk tooth) बीस रहते हैं। सबसे पहले शिशुके नीचेके दो दाँत निकलते हैं—ये दो दाँत (incisors or cutting teeth) काटनेके दाँत कहलाते हैं। तत्पश्चात् दो-तीन सप्ताहकी अवधिमें ऊपरके भी दो दाँत निकल आते हैं। कुछ समय बाद अगल-बगलमें दो दाँत निकलते हैं जिन्हें (lateral incisors) "पार्श्विक तीक्ष्ण दंत" कहते हैं। शिशुके कोमल मुखमें एक

कबरे तरह-तरहके रंगके होते हैं। पर उसमें पीली जात बढ़िया होती है।

३२. फसलें और उनकी तैयारी

इसकी फसल चौमासे और जाड़ेमें, इस प्रकार सालमें दो बार हो सकती है। साढ़े तीन या चार महीनेमें यह पक जाता है। बारहसे चालीस इञ्चतक वर्षा इसके लिये उपयुक्त है। समशीतोष्ण हवा ठीक है। खराब जमीन इससे सुधरती है और भूरी, काली तथा बलुई सभी जमीन इसके लिये ठीक है। प्रति एकड़ दस या पन्द्रह सेर बीज बोना चाहिये। इस समय बड़ौदा राज्यमें ५) का ३।८ मिलता है। यहाँका सेर दूसरे सेरोंसे सवाया अधिक होता है।*

जितना इसका प्रचार बढ़ेगा उतना सस्ता भी होगा। अभी चीन-जापानसे सीधा मँगाना पड़ता है।

* हिन्द-प्रान्तमें यदि रुपयेका सोलह सेर भी पड़े तो खासा सस्ता दीनबन्धु अनाज है। —रा० गौड़

३३. किसान बीज कहाँसे लें?

भारतके प्रान्तोंमें इतस्ततः इसका प्रचार होने लगा है। बड़ौदाराज्य इसका प्रचार कर रहा है। इसके लिये पुरस्कार भी राज्यने घोषित किये हैं। दूसरे राज्य भी कुछ करने लगे हैं। किन्तु जैसे-जैसे इसका प्रचार अधिक होगा वैसे-वैसे जनताको इसका लाभ भी आमतौरपर होगा। जितना संभव हो सके उतने विस्तारपर इसका काम होना चाहिये। बड़ौदाराज्यने इसके प्रचारके लिये फण्ड खोला है। 'सौराष्ट्र-सेवा-समिति' की भी इच्छा है कि इसका प्रचार हो। इसलिये यह अपना साथ देनेके लिये हर समय उद्यत रहती है। एतत्सम्बन्धी यत्किञ्चित् ज्ञान देनेको तैयार रहती है। अब किसान और देश-हितचिन्तक इसके अधिक प्रचारमें मन लगावें, बस यही बाकी है 'शुभस्य शीघ्रम्'†।

† इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये विज्ञानके पाठक इस लेखके सुयोग्य लेखकको जवाबी पत्र भेजकर पूछ सकते हैं। पूरा पता लेखके आरम्भमें दिया हुआ है। —रा० गौड़

वर्षके भीतर ही कई दाँत मोतीके समान निकले दृष्टिगोचर होने लगते हैं। डेढ़ वर्षके भीतर और चार दाँत निकलते हैं जिन्हें चर्वणी (first molars) कहते हैं। तीक्ष्णदंत (incisors) और चर्वणीके बीचमें मांसिलदाँत (canine) निकलते हैं। इसके पश्चात् द्वितीय चर्वणी निकल आती है जिसकी निर्धारित अवधि पाँच-छः वर्ष है।

३. नीरोग रहनेकी पहली कुंजी

यदि स्वस्थ और नीरोग रहनेकी इच्छा किसी व्यक्तिमें है तो उसका यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह अपने दाँतोंकी सुरक्षा करे। दाँतोंके खराब होनेसे नाना प्रकारकी व्याधियाँ आक्रमण करना आरम्भ कर देती हैं। सबसे पहले उदर-व्याधि आरंभ होती है।

४. दूधके दाँतोंकी रक्षामें असावधानी करनेके कुफल

बाल्यकालमें दूधके दाँतोंकी रक्षा करनी परमावश्यक है क्योंकि यदि दूधके दाँत ही खराब हो गये तो भविष्यमें स्थायी दाँतोंके भी खराब होनेका भय रहता है। दूधके दाँतोंमें (Infection) लग जाना बड़ा सरल है, यदि वे नियमपूर्वक न साफ किये जावें। यही कारण है कि जब दूधके दाँतोंमें कीड़ा लग जाता है तब स्थायी दाँतोंमें भी कीड़े (caries) लग जाते हैं। इस प्रकार प्रारंभकी असावधानीसे अनेक व्याधियाँ उठ खड़ी होती हैं। जैसे पायरिया, रक्तशील मसूढ़े (bleeding gums) इत्यादि।

५. दाँतोंको बलिष्ठ और सुन्दर रखनेके उपाय

(१) शिशु साधारण व्यायाम करता रहे।

(२) दाँतोंके लिये सबसे अच्छा भोजन है (calcium containing) खटिकमय पदार्थ—जैसे—दूध, जौ, फलोंके रस इत्यादि। शिशुके लिये (Glaxo) ग्लेक्सो और Horlick भी बहुत पौष्टिक पदार्थ हैं और साधन होनेपर उनका उपयोग बच्चोंके लिये होना चाहिये।

(३) जब शिशुके दाँत निकलते हैं तब उनके नियमित परिचालनके लिये कुछ कड़े पदार्थ (solid food) भी देने चाहिये। जैसे—बिसकुट।

(४) प्रतिदिन शिशुके दाँत साफ किये जायँ। रूमालमें थोड़ी ग्लिसरीन (glycerine) लेकर जीभ और दाँतोंपर भलीभांति मल देना चाहिये।

६. दंत-रक्षामें हलकी धूपका उपयोग

शिशुको स्वस्थ रखने तथा दाँतोंकी रक्षाके लिये कुछ समयतक हलकी धूपमें लिटाना चाहिये। सबेरे आठ बजेसे दस बजेतक और संध्या समय साढ़े तीनसे साढ़े पाँच बजेतक उत्तम समय है। यदि शिशुके दाँतोंकी सावधानी और रक्षा न हुई तो जीवनभरके लिये उसे इन अमूल्य मोतियोंसे हाथ धोना पड़ेगा।

७. नमकके जलकी कुल्ली

रातको भोजन करनेके पश्चात् अच्छी तरह दाँत साफ करके सोना चाहिये। मुँहमें एक और जीवाणु (Bacillus gingirilis) सदैव रहते हैं और खाद्य पदार्थपर अपना अधिकार किये रहते हैं जिसके फलस्वरूप दाँतोंका स्वच्छ आवरण (enamel) खराब हो जाता है दाँतोंको नियमित रूपसे नमकके जलद्वारा कुल्ली करके साफ रखना चाहिये।

बालक अथवा युवा कोई भी हो, दाँत एक अमूल्य निधि है और इस कारण प्रत्येकको उनकी रक्षा करनी चाहिये।

दाँतोंकी नयी परीक्षा

थोड़े दिनोंसे दन्त-चिकित्साकी एक नयी पद्धति निकली है। दांतोंमें कीड़े हैं या नहीं और यदि हैं तो किस दांतमें इसका पता लगानेके लिये एक धातुके बने यंत्रसे दांत ठोंके और बजाये जाते हैं। जिस दाँतमें कीड़ा होता है उसका शब्द अन्य दाँतोंसे शब्दोंसे भिन्न होता है। इस प्रकार शब्दोंका मिलान करके सब संक्रामित दांतोंका पता लगा लिया जाता है और तब इलाज किया जाताहै। —(प्रतापसे)

भूकम्पका गलत लेखा

सीस्मोग्राफ नामक यन्त्रकी सहायतासे भूकम्पका पता लगाया जाता है। भूकम्पसे जमीनके हिलनेपर इस यन्त्रमें एक कागजपर पेंसिलद्वारा टेढ़ा-मेढ़ा निशान बन जाता है। परन्तु यह यन्त्र इतना नाजुक होता है कि जिस कमरेमें वह रखा रहता है उसमें एक हथौड़ेके गिरनेसे भी भूकम्प के निशान बन जाते हैं। इस प्रकार भूकम्पकी खबरें प्रायः गलत भी निकला करती हैं। —(प्रतापसे)

टेलीफोनका संचालन क्यों रुकता है ?

[लेखक—'तरंगित' जोधपुर]

रॉबर्ट ई० मार्टिनने कनाडाके सुप्रसिद्ध मासिक 'पोयूलर साइन्स'में टेलीफोनके विषयमें मार्मिक एवं विश्वस्त आधारपर एक बड़ा लेख लिखा था, जिसमें टेलीफोनके रुकनेकी सूचनाओंका सचित्र वर्णन था। यहाँपर उसीको समष्टिमें ढालनेका प्रयत्न किया गया है।

१. टेलीफोनकी उपयोगिता

टेलीफोनकी व्यापकताके कारण इसकी उपयोगिता भी कुछ कम नहीं है। बातचीत-द्वारा भावोंके आदान-प्रदानका उत्तम साधन है। वार्तालापसे बहुधा मनका मवाद निकल जाता है, चित्रवृत्ति हल्की एवं उत्तेजित हो जाती है। जबसे टेलीफोनका यथेष्ट प्रचार हुआ है, बातचीतकी सुविधा भी बढ़ गयी है। मनुष्यकी एक छोटी आवश्यकता भी अपना महत्व रखती है, क्योंकि उसका सम्पर्क मानव-जातिसे है तथा उसका प्रभाव जीवन-व्यापी है।

२. टेलीफोनकी गतिपर नमीका प्रभाव

टेलीफोनकी गतिमें मकड़ी बाधक !

यह तो सभी जानते हैं कि विद्युत् अग्नि नहीं है, क्योंकि जहाँ अग्नि जलमें शान्त हो जाती है, यह और भी उद्दीप्त होती है। वास्तवमें इसका विकास-स्थान जल ही है। कोयला अब विद्युत् उत्पन्न करनेमें काम नहीं आता। ब्राजीलमें एक मकड़ी जाला बुनती है। अतः मकड़ीके मुँहकी तरावटसे टेलीफोन-केबिल (लोहेका मोटा तार जिसपर डोरे लिपटे रहते हैं) तर हो गया, और विद्युत्-प्रवाह अपना मार्ग छोड़कर चूने लगा। प्रवाहमें परिवर्तन होनेके कारण सन्देशके शब्द निश्चित स्थानमें नहीं पहुँच सकते थे, इस कारण बातचीत करनेवाले टेलीफोनको ठीक करनेका बार-बार आग्रह करने लगे, किन्तु बड़े असमंजसका अवसर उपस्थित हुआ। जब दोनों अपना उत्तर न पाकर केवल 'सन्-सन्' सुनते। यंत्र ठीक करनेवाले ऑफिसर (Telephone-trouble-man) बड़ी देख-रेखके उपरान्त इसका रहस्य समझ सके।

३. नन्हें बच्चेसे टेलीफोनकी गतिमें बाधा

एक बार एक बालकने कौतूहलमें बड़ा गड़बड़ मचा दिया। घरमें आग लग गयी थी, इसकी सूचना देनी अत्यन्त आवश्यक थी, पर 'मेसेज रिशीवर'का यंत्र बेकार हो गया था। उचित समयपर सहायता न मिलनेपर बड़ी हानि हुई। टेलीफोनके परिचितोंने जब इसका निरीक्षण किया तो उन्हें एक विचित्र बात मालूम हुई। एक नन्हा बच्चा खेलके लिये टेलीफोनके फ्लेक्सिबिल वायरको चबा रहा था, जिसकी नमी भीतर पहुँचकर भिन्न-भिन्न धारायें बहानेमें सहायक हो रही थी।

४. टेलीफोन बिगाड़नेमें बनैले पशुओंका हाथ

निर्जन एवं बनैले स्थानोंमें टेलीफोनलाइन खतरेसे खाली नहीं है। हर समय बनैले पशुओंसे तोड़-मोड़का भय बना रहता है, अतः निरीक्षक सशंक एवं चौकन्ने रहते हैं। आफ्रिकामें जिराफ—जो अपनी गर्दनमें ऊँटको भी चुनौती देते हैं,—कभी-कभी भयंकर उत्पात करते देखे गये हैं। अमेरिकामें प्यूमा और जैगोरका आतंक सदा बना रहता है।

५. बन्दरोंका उपद्रव

विनोदप्रिय बन्दर कभी-कभी इन तारोंके सहारे जमनास्टिक करते पाये गये हैं। वे तारोंको थामकर खूब झूलते हैं तथा खींचतानकर खंभोंकी जड़ोंको हिला देते हैं, मानो कोई भूचाल आया हो। ये बन्दर इन तारोंपर सबल होनेके कारण चौकड़ी भी भरते हैं, और पासके जीवित विद्युत्तारसे लगकर कभी-कभी मर भी जाते हैं।

६. भीगे रूमालकी करामात

यह तो सिद्ध है कि आर्द्रता टेलीफोनके लिये विरोधी है। एक बार दफ्तरके टाइपिस्टने अपना भीगा रूमाल सुखानेके लिये तारपर रख छोड़ा। जब वह टेलीफोन सुनने

लगा तो उसे कुछ सुनाई न दिया। यह रहस्य उसकी समझमें न आया। टेलीफोनके पदाधिकारीने जब इसकी छान-बीन की तो विनम्र शब्दोंमें कहा—'महाशयजी, अपना गीला रूमाल फिर कभी फ्लेग्बिल वायरपर न छोड़ियेगा।'

७. धातुएँ गतिमें बाधक

टेलीफोन और पक्षी

पक्षी भी चालाकीके लिये एक हैं। जिस प्रकार छोटा बालक प्रत्येक वस्तुको मुखका ग्रास बनाता है। वैसेही पक्षी भी चोंचके चम्मचमें उठा लेते हैं। कभी-कभी वे विरोधी धातुके टुकड़ोंको लाकर तारोंमें भर देते हैं, जिससे प्रवाहका मार्ग पलट जाता है। पीतलके तारमें यदि जस्तेका टुकड़ा समा जायगा, तो विद्युत्प्रवाह अपना मार्ग बदल लेगा। दूसरे शब्दोंमें सन्देश न पहुँच सकेगा।

८. मजेदार घटना

एक बार एक ऐसी घटना घटी, जिसे सुनकर आश्चर्य एवं हास्य दोनों होते हैं। कुत्ता स्वामिभक्तिके लिये प्रसिद्ध है, अतः प्रत्येक पाश्चात्य उसे अपने घरमें पालता है। एक बार साहब बहादुरने उसे चेनसे बाँधकर उसका सम्बन्ध टेलीफोनके वायरसे जोड़ दिया। उनको यह विदित न था कि इसका इतना व्यापक प्रभाव पड़ेगा। यंत्रका रिसीवर पकड़कर जब साहब "हेलो! हेलो!" करते, कुत्ता भी भौंक-भौंककर साहबको तंग करता। साहब समझे कि कुत्ता मानवीय बोली बोलनेका प्रयास कर रहा है, किन्तु जब उनको अपनी बातका प्रत्युत्तर न मिला तो वे बड़ी उधेड़-बुनमें पड़े। थोड़ी देरके पश्चात् जब निरीक्षकने आकर देखा तो उसने बतलाया कि टेलीफोनसे कुत्तेको बाँधकर उन्होंने कितनी भूल की थी। वास्तवमें टेलीफोन कोई स्त्री न थी, जिसका चेनसे सम्बन्ध स्थापित कर, वे पुरोहितकी भाँति मंत्रोच्चारण कर रहे थे। बात यह थी कि जिस शृंखलासे श्वान बँधा हुआ था, वह चालक (Conducter) थी, जो विद्युत्का अंश ग्रहणकर कुत्तेमें करेंट दौड़ा रही थी। इसी प्रवाहसे कुत्ता भौंकता था।

९. जन्तुओंके अंडे और टेलीफोन

छोटे-छोटे जन्तु कभी वायरमें अपने अंडे छोड़ देते हैं, जो उत्पातका कारण होते हैं। वास्तवमें जिनको हम छोटा कहते हैं, वे ही टेलीफोनके लिये घातक सिद्ध होते हैं। जीवनमें छोटी-छोटी बातोंकी उपेक्षा करना भूल है क्योंकि छोटी-छोटी बातें ही मिलकर जीवन बनाती हैं, छोटे-छोटे अनुभव ही आविष्कारकी राह बनाते हैं।

१०. प्रकृति-प्रकोप

इसके अतिरिक्त प्रकृतिका उबाल या कोप भी टेलीफोनको हानि पहुँचाता है। मेक्सिकोकी खाड़ीसे एक बार प्रचंड अंधड़ उठा, जिसने विशालकाय वृक्षोंको भी समूल उखाड़ फेंका। मकान पिटी हुई गेंदकी भाँति ढह गये। उस समय टेलीफोनकी पंक्ति भी उखड़कर भूमिसे लग गयी। उस अंधड़से बड़ी हानि हुई थी। ऐसी ही घटना न्यूजीलेंडमें बर्फके तूफानद्वारा हुई। इस तूफानका प्रभाव ३६०० मीलतक था। लगभग ५,०००,००० डालर मूल्यकी टेलीफोन तथा बिजलीकी पंक्तियाँ नष्ट हो गयीं। यही क्यों, तारोंपर ४ टन बर्फ जम गया। दश लाख गज तार वृक्षोंसे उलझकर बेकार हो गये थे। १९२१ के इस तुषार-तूफानसे असीम हानि हुई।

११. टेलीफोनकी रक्षाके लिये नवीन सुधार

इन हानियोंने वैज्ञानिकोंको सतर्क कर दिया है। अब टेलीफोनमें पतले तारोंके स्थानमें सीसासे ढका हुआ तार (Lead sheathed cable) प्रयुक्त होता है, जिसमें जंगली जानवर हानि नहीं पहुँचा सकते। इसके अतिरिक्त टेलीफोनके तार अब धरतीके भीतर डाले जाते हैं, जिससे विशेष सुविधा हो गयी है। न्यूयार्कमें ८,०००,००० मील केबिल धरतीके भीतर टेलीफोनका संदेश ले जाता है। वहाँपर केवल एक लाइन १,००,०००,००० डालर व्यय करती है, जिससे वे नये-नये केबिल डाल सकें। ऊपरी लाइनोंको हानिसे बचानेके लिये भिन्न-भिन्न सीसेके (Alloys) मिश्रणोंद्वारा चेष्टा की जाती है, पर पूर्ण सफलता नहीं मिली है। छोटे-छोटे जन्तु, पक्षी, वर्षा, तूफान तथा दैवकोप ही टेलीफोनको हानिप्रद हैं।

टेलीफोनकी ऊपरी लाइन अधिक ऊँची नहीं होती। ताजियेकी ऊँचाईसे कुछ ही अधिक भारतमें देखे जाते हैं, पर आरजेन्टाइनमें टेलीफोनके तार १२,३०० फीट ऊँचे हैं, क्योंकि पर्वतोंके कारण धरातल मिलना कठिन हो गया है।

साधारण मिट्टीकी कीमियागरी

खेतके लायक धरती

[लेखक—साहित्यरत्न श्री भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, अध्यापक ग्रामोपयोगी शिक्षा म्यु० बो० काशी]

१. कृषिकी महत्ता

यद्यपि भारत कृषि-प्रधान देश प्रसिद्ध है फिर भी कृषिका ऋणी सारा संसार है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो इससे रहित सृष्टिकी सत्ताका कुछ अस्तित्व ही नहीं है। बीज-वपनमें ही प्राकृतिक कलाओंकी भी सार्थकता है। कृपिके लिये बीज तथा क्षेत्र दोनोंकी अनुकूलता अनिवार्य है। एकके बिना दूसरेकी सृष्टि असम्भव है। यद्यपि दोनोंमें अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है फिर भी क्षेत्रकी प्रधानता सर्वमान्य है।

२. मिट्टीके भेद

वास्तवमें मिट्टीके दो भेद हैं:—१. चिकनी (डाकर या मटियार)। २—रेतीली (बलुई)। इन्हींके सम्मिश्रण अथवा न्यूनाधिकतासे अनेक भेद हो जाते हैं। जैसे, मटियार दुमट, बलुई-मटियार आदि।

३. चिकनी मिट्टी और उसका उपयोग

चिकनी मिट्टीके कण महीन होते हैं। उसके दबानेसे उसके कण जमे ही रहते हैं। उसके कणोंमें यह विशेषता होती है कि वे पानी पानेपर चिपकने लगते हैं और शीघ्र नहीं सूखते। ऐसी मिट्टीसे ईंटें, मूर्तियाँ आदि बनानेमें सरलता होती है।

४. बलुई

किन्तु बलुईके गुण इसके बिलकुल विपरीत होते हैं। इसके कण बड़े और छूनेमें कड़े होते हैं। पानी पानेपर शीघ्रही सूख जाते हैं।

५. कृषि-योग्य मिट्टियाँ और उनकी फसलें

मिट्टियोंमें सबसे अच्छी मिट्टी दुमट है। इसके पश्चात् मटियार-दुमट और बलुई-मटियारका नम्बर है। दुमट-मिट्टी सब जिन्सोंके योग्य होती हैं। बलुई-दुमट ज्वार, बाजरा, मोठ आदिके लिये, मटियार-दुमट धान, मूँजी, चना आदिके लिये और चूनेदार मिट्टी दालदार पौधे—जैसे उर्द, मूँग, मटर आदिके लिये परमोपयोगी होती है। सबसे खराब खालिस बलुई और मटियार मिट्टी है।

६. मिट्टीमें चिकनी मिट्टीके भाग

मिट्टीके भेद	प्रति सैकड़ा चिकनी मिट्टी जो उसमें पायी जाती है
१—बलुई (रेतीली)	१० से २० तक।
२—बलुई-दुमट	२० से ४० तक।
३—दुमट	४० से ७० तक।
४—मटियार-दुमट	७० से ८५ तक।
५—मटियार (डाकर)	८५ से ९५ तक।

७. बढ़िया मिट्टीकी पहचान

अच्छी मिट्टी वही कही जाती है, जिसपर वायु, गर्मी तथा पानीका अवसरानुसार पर्य्याप्त प्रभाव पड़े तथा बीजों-

---

१२. समय-समयपर सुधारकी आवश्यकता

समय-समयपर टेलीफोनमें सुधारकी योजना की जाती है। प्राचीन पद्धतिके स्थानमें अब क्रमांककी शैली चली है, जो यंत्र चलानेवालेके लिये सुविधा-जनक है। भूगर्भ-स्थित टेलीफोन भी कभी-कभी खराब होते देखे गये हैं, क्योंकि धरतीकी छेदीली (porous) अवस्थाके कारण जल प्रविष्ट होकर प्रवाह बदल डालता है। न्यूयॉर्कमें एक बार १००० टेलीफोन इसी प्रकार अकृतकार्य हो गये थे। हमें आशा है कि वैज्ञानिक इसे सुव्यस्थित करनेकी भरसक चेष्टा करेंगे, जिससे ये असुविधायें देखनेको न मिलें। अस्तु!

के उगने, बढ़ने, फूलने, फलने तथा स्वस्थ रखनेमें पूर्ण योग दे सके। जिस मिट्टीमें बालू ५० से ७० प्रतिशत, चिकनी मिट्टी २० से ३० प्रतिशत, काम लायक चूना ५ से १० प्रतिशत तथा वनस्पत्यांश ५ से १० प्रतिशत होते हैं, वह मिट्टी अच्छी समझी जाती है।

८. चिकनी मिट्टीको भुरभुरी बनानेकी विधि

चिकनी मिट्टी सब बीजोंके लिये उपयोगी नहीं है। इसे भुरभुरी बनाकर सभी बीजोंके योग्य बनाया जा सकता है। इस काममें सफलता पानेके लिये प्रथम बालू परम उपयोगी है। मिट्टीकी चिकनाहटकी न्यूनाधिकताका ध्यान रखते हुए प्रति एकड़ ५० या ६० गाड़ी रेत देना लाभदायक होता है। दूसरे साधनमें इसके लिये चूना उपयुक्त वस्तु है। चूनेकी मात्रा प्रति एकड़ २० मनके लगभग उपयोगी मानी गयी है। स्मरण रहे कि चूनेसे तात्पर्य बिना बुझे हुए चूनेसे है। बुझा चूना इतना गुणकारी न होगा। हरे पौधोंकी खाद भी चिकनीको भुरभुरी बनानेमें बहुत सहायता पहुँचाती है। इसका पूरा प्रभाव अधिक मात्रामें तब पड़ता है, जब हरे पौधे कुछ बड़े होनेपर खेतमें जुतवा दिये जायँ और खूब सड़ गलकर उन्हें मिट्टीमें मिल जानेका पूरा अवसर दिया जाय। ताजे गोबरकी खाद भी इस काममें सफल होनेकी मुख्य वस्तु है, किन्तु खेतमें छोड़ देने मात्रसे काम न चलेगा उसे मिट्टीमें इस प्रकार मिला देना ही लाभदायक होगा कि वे सूख न जायँ। चिकनी मिट्टी जला देनेसे भी भुरभुरी हो जाती है। जलानेका काम उसपर पुराने छप्पर, सूखी पत्तियाँ अथवा ऐसेही व्यर्थ जानेवाले खर पतवार रखकर किया जा सकता है।

९. जली मिट्टीमें खाद क्यों दी जाय?

मिट्टी जलानेसे भुरभुरी होनेके अतिरिक्त उसमें तेजाबसे घुलनेवाले खाद्य पदार्थकी मात्रा भी बढ़ जाती है। इस वृद्धताका परिमाण ६ से १० प्रति सैकड़ातक अनुमानतः होता है। मिट्टीके जलनेसे उसमेंकी दूषित गेस निकल जाती है; अस्तु, इसकी पूर्तिके लिये खादका देना परमावश्यक है।

१०. मिट्टीके रासायनिक तत्व और उनका प्रभाव

पत्थरके कणोंकी करतूत

मिट्टीमें अनेक रासायनिक तत्व विद्यमान हैं जो आवश्यकतानुसार समय-समयपर अपना विशेष प्रभाव डालते और उसे फल-प्रद होनेके योग्य बनाते हैं। सबसे अधिक मात्राका तत्व "पत्थरके कण" हैं जो मिट्टीमें ७२.५२० प्रतिशत पाये जाते हैं। इनकी मात्रा रेतीली मिट्टीमें ८० प्रतिशत तथा चिकनीमें ६० से ७० प्रतिशत होती है। ये कण जब रासायनिक ढंगसे फिटकिरी और पानीके साथ मिलते हैं तो चिकनी मिट्टी बन जाते हैं। ये कण मिट्टीको भुरभुरी बनानेमें पूरा योग देते हैं। इनसे रहित मिट्टीकी उपयोगिता निःतत्व है। यह उपयोगी भूमिका एक परमावश्यक अंश है, साथही केवल इन्हींका होना भी कम अनुपयुक्त नहीं?

११. फिटकिरीका मिश्रण

दूसरा रासायनिक तत्व, जो अन्य तत्वोंकी अपेक्षा अधिक मात्रामें रहता है, "फिटकिरीका मिश्रण" है। साधारणतः मिट्टीमें इसकी मात्रा ९.७०१ प्रतिशत होती है। चिकनी मिट्टीमें इसका अस्तित्व ६ से १० प्रतिशत और रेतीलीमें १ से ४ प्रतिशततक पाया जाता है। पृथक् रहकर यह पौधोंका खाद्य नहीं बन सकता। जवाखार, सज्जी, मैगनेशिया, चूना तथा लोहेका संयोग पाकर यह पौधेका खाद्य बननेका सौभाग्य प्राप्त करता है। मिट्टीमें इसकी विद्यमानता इसलिये आवश्यक है कि यह मिट्टीकी वस्तुओंको बहिर्गत होनेमें अवरोधक होता है।

१२. वनस्पति-तैल और उनका प्रभाव

तीसरे नम्बरपर आनेवाला परमोपयोगी एवं लाभदायक अंश "वनस्पति-सम्बन्धी वस्तु" हैं, जिनकी मात्रा अनुमानतः ५.०३० प्रतिशत मानी गयी है। मिट्टीको उपयोगी बनानेमें इस तत्वका विशेष हाथ रहता है। ये तत्व व्यर्थ जानेवाली वस्तुओंको भी उपयोगी बना देते हैं। इनकेद्वारा प्रकृतिके अद्भुत नन्हें-भोजनालयका अतीव उपयोगी सामान कार्बोनिक एसिड बनता है तथा न घुलने-

वाली वस्तुओंको भी घुला देनेवाला शोरेका तेजाब तय्यार होता है। इस तत्वसे भी कुछ अधिक मात्रामें रहनेवाला और पौधोंका सर्वस्व तत्व "लोहेका जंग" है, जो मिट्टीमें अनुमानतः ६.३२० प्रतिशत पाया जाता है। मिट्टीमें यह दो रूपोंमें मिलता है। इसका हरे रंगमें रहना उतना लाभदायक नहीं प्रत्युत रक्त वर्णता ही विशेष उपयोगी होती है। यह तत्व पौधोंकी हरियालीका मुख्य आधार है। इसके अभावमें पौधोंका हरा रहना अत्यन्त असम्भव है।

१३. मात्रामें न्यून, अन्य उपयोगी तत्व

मिट्टीको उपयोगी बनाकर पौधोंके उपयुक्त लाभदायक वस्तुओंके एकत्रीकरणमें योग देनेवाले ऐसे ही और भी अनेकों तत्व हैं, जो मात्रामें उपर्युक्त तत्वोंसे न्यून हैं।

१. चूना

"चूना" नामक तत्व साधारणतः २.५३० प्रतिशत पाया जाता है। अच्छी भूमिमें इसकी मात्रा २५ से ३० प्रतिशत तथा खड़ियामें ९० प्रतिशत रहती है।

२. जवाखार

इसी प्रकार "जवाखार" भी जो पौधोंके लिये आवश्यक है साधारणत १.२०० प्रतिशत मिट्टीमें सम्मिलित रहता है। इसका अस्तित्व चिकनी मिट्टीमें २ प्रतिशत होता है।

३. सोडा, मेगनेशिया आदि

पौधोंके लिये उपयोगी "सज्जी, खार या सोडा" और "मैगनेशिया" भी मिट्टीमें पाये जाते हैं, जिनका परिमाण क्रमशः ०,८२२ प्रतिशत तथा ०,८४० प्रतिशत आँका गया है।

४. कोयला और आक्सीजन

वनस्पतियोंके सड़ने-गलनेसे पैदा होनेवाला "कोयला और आक्सीजन" भी महत्व-पूर्ण अंश है, जो मिट्टीमें ०·८३१ प्रतिशत मात्रामें उपलब्ध होता है।

५. तेजाब और उनकी उपयोगिता

इनके अतिरिक्त अनेक प्रकारके तेजाबके अंश भी होते हैं, जो मिट्टीके साथ रहकर उसे उपयोगी बनाते रहते हैं। जैसे; "फास्फोरसका तेजाब" जो साधारण मिट्टीमें ०·१५० प्रतिशत और अच्छी भूमिमें ५ प्रतिशत मिलता है। यह पौधोंका बड़ा ही आवश्यक खाद्य है। इससे भूमिकी उत्पादन शक्ति तथा पौधोंकी बाढ़में वृद्धि होती है। "गन्धकका तेजाब" ०·०५० प्रतिशत तथा ०·००१ प्रतिशत "शोरेका तेजाब" भी मिट्टीमें मिलता है। 'गन्धकके तेजाबके कारण भूमिकी व्यर्थ होनेवाली चीजें भी सार्थक होकर प्रकट होती हैं। शोरेका तेजाब बिजलीकी कड़कसे सम्पादित होकर अनेक व्यर्थ अँशोंको उपयुक्तताके साँचेमें ढाल देता है। अन्तिम तथा अधिक होनेपर हानिप्रद अंश "नमक" है। इसकी माध्यमिक मात्रा प्रतिशत ०,००५ है।

१४. मिट्टीके तांत्रिक गुण

तांत्रिक गुणोंकी निर्भरता

मिट्टीमें अनेक तान्त्रिक गुण भी विद्यमान हैं; जो उसे उपयोगी बनाते तथा पौधोंकी उत्पत्ति एवं बाढ़-वृद्धिपर अपना पूर्ण प्रभाव प्रस्तारित करते हैं। ये तान्त्रिक उपजाऊ गुण प्रायः मिट्टीके वजन, बनावट, जल-शोषण-शक्ति, वायु-शोषण-शक्ति, पानीको वाष्प-रूपमें उड़ानेकी शक्ति, उष्णता-शोषण-शक्ति तथा आन्तरिक मिट्टीपर निर्भर है।

१५. हलकी और भारी मिट्टी तथा उसकी विशेषता

मिट्टीके वजनसे अभिप्राय उसके भारी या हलकी होनेसे है। भारी मिट्टीमें खनिज अंश अधिक तथा वनस्पत्यांश न्यून मात्रामें होते हैं। हलकी मिट्टी भारी मिट्टीकी अपेक्षा अधिक उपयोगी मानी गयी है। १ घनफुट मिट्टीमें रेत १२० पौण्ड, दुमट १०० पौण्ड, चिकनी ८० पौण्ड तथा बनस्पति ढेला ५० पौण्ड अनुमाना गया है। अस्तु; भारी मिट्टी क्रमानुसार बालू, दुमट, चिकनी तथा वनस्पतिसे बनी मिट्टी कही जा सकती है। स्मरण रहे कि प्रायः रेतीलीको हलकी और चिकनीको भारी इसलिये भी कहते हैं कि एकके जोतनेमें कम और दूसरेके जोतनेमें अधिक श्रम पड़ता है।

१६. भूखी मिट्टी और उसकी विशेषता

बनावटमें मिट्टीका पोला, सख्त आदि होना देखा जाता है। अधिक पोली जमीन अच्छी नहीं कही जाती क्योंकि पौधोंके लाभकी दी जाने वाली खाद्य वस्तुयें नीचे चली जाती हैं। इसीलिये ऐसी भूमिकी मिट्टीको 'भूखी मिट्टी' के नामसे पुकारते हैं। मिट्टीका ठोस या सख्त होना भी

उसकी अनुपयुक्तताका प्रमाण है, क्योंकि ऐसा होनेसे दिये जानेवाले खाद्यांश भीतर नहीं जा सकते, जिससे पौधोंको उनसे लाभकी कुछ भी सम्भावना नहीं ।

१७. जल-शोषक मिट्टी और उसका प्रभाव

जल-वायु सोखनेकी शक्ति रखनेवाली मिट्टी प्रायः अच्छी होती है, क्योंकि ये पौधोंकी वृद्धिके मुख्य अंश हैं । पानी सोखनेकी शक्ति 'दुमट' में अधिक होती है । अधिक रवाकी अवधारण करनेवाली मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है । मिट्टीमें यह शक्ति हरी खाद या गोबर देनेसे बढ़ती है । मिट्टीके कणोंसे जितनीही पतली नलियाँ मिट्टीमें होंगी उसमें उतनाही अधिक पानी चढ़ेगा । अनुभव-कर्ताओंका मत है कि रेतीली मिट्टीमें २० इंच, दुमटमें ३० इंच, चिकनीमें ३० से ३६ इंच और वनस्पति सम्पन्न मिट्टीमें ६० इंच से अधिक पानी चढ़ता है । शबलरके निर्णयानुसार १०० पौण्ड रेत बालू कुछ भी पानी नहीं चूसती, रेतीला चूना ४ पौण्ड, चिकनी मिट्टी (६० प्रतिशत) २८ पौण्ड, अधिक चिकनी मिट्टी (८० प्रतिशत) ४१ पौ०, बिलकुल चिकनी ५० पौण्ड, बगीचेकी मिट्टी ५१ पौण्ड और वनस्पतियोंसे निर्मित मिट्टी १२० पौण्ड पानी चूस सकती है ।

१८. जलको भाप बनाकर उड़ानेवाली मिट्टी और उससे हानि

जिस प्रकार पौधोंके जीवन-सर्वस्व, जलके चूसनेकी शक्ति अच्छी भूमिमें होती है उसी प्रकार ख़राब भूमिमें यह शक्ति भी होती है कि वह जलको वाष्परूपमें उड़ा देती है । यही कारण है कि उसपर पौधे नहीं उग सकते ।

१९. मिट्टियाँ और उनकी उष्णताशोषक शक्ति

पौधोंके लिये सूर्यकी स्वाभाविक गर्मी ही विशेष उपयोगी एवं लाभप्रद है। तथ्य यह है कि यदि वायुमें ९०अंशकी गर्मी होगी तो खालिस रेतमें १२६°, बगीचेकी मिट्टीमें ११४° और खड़िया मिट्टीमें ८७ गर्मी होगी, वैज्ञानिकोंका अनुभव-सिद्ध निर्णय है कि—

१—अधिक बलुई भूमि देरमें गर्म होती और देरतक गर्म रहती है अतः सबसे गर्म होती है ।

२—काली भूमि सफेद भूमिकी अपेक्षा अधिक गर्मी सोखती है ।

३—चिकनी मिट्टी इस कारण देरमें गर्म होती है कि उसमें पानीकी मात्रा अधिक होती है ।

४—दक्षिण ढालवाली भूमि सूर्यके अधिक ठहरनेके कारण गर्म होती है ।

नीचेकी भूमिके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यदि नीचेकी मिट्टी अच्छी होगी तो ऊपरकी मिट्टी भी अच्छी होगी ।

२०. अनुर्वरताके कारण तथा दूरीकरणके उपाय

भूमिके अनुर्वरा होनेके अनेक कारणोंमें मुख्य कारण उसमें आवश्यकतासे अधिक बालू, चिकनी, चूना, घुलनेवाला नमक, वनस्पति अथवा लोहेके अंशका होना है । प्रायः भूमिके ऊपरी धरातलके नीचे पत्थरकी चट्टानोंके आ जानेसे भी ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाया करती है । प्रायः भूमि पानीके अभावमें भी अनुर्वरा हो जाया करती है । भूमिके उर्वरा होनेके लिये उसपर निश्चित समयतक पानीका ठहराव अति उपयोगी है । भूमिके अन्दर विशेष खटाईका अंश भी उसे इस अवस्थाको पहुँचा देता है । प्रायः भूमि इस कारण भी अनुर्वरा हो जाती है कि उसमें पौधोंके खाद्यका अंश विशेष एकदम नहीं होता । ऐसी भूमिके सुधारके लिये नीचेकी तालिकाके अनुसार काम करना विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है—

अनुर्वरताका कारण		दूरीकरणका उपाय
यदि बालूकी अधिकता हो	तो	चिकनी मिट्टी या सड़ा गोबर छोड़ना चाहिये ।
„ चिकनाईकी „	„	बालू या बिना सड़ा गोबर छोड़ना चाहिये ।
„ वनस्पतिकी „	„	चूना छोड़ना चाहिये,
„ चूनेकी „	„	वनस्पति „ „
„ घुलनेवाले नमककी „	„	नाली द्वारा खेत धो डालना चाहिये या ढाक, बबूल, बेर, केला आदिके वृक्ष लगाने चाहिये ।
„ लोहेके घुलनेवाले कच्चे मिश्रणकी अधिकता हो	„	चूना मलना चाहिये ।
„ भीतर चट्टान हो	„	चट्टान निकाल दी जाय या

	ऊपरी धरातल पर अधिक मिट्टी डालकर उसे खूब मोटा बनाया जाय और खाद डालकर उसे अनुकूल बनाया जाय।
„ अधिक पानी ठहरता हो „	नाली बनाकर नमकका भाग निकाल दिया जाय।
„ खटाईकी अधिकता हो „	चूना डालना चाहिये।
„ खाद्य विशेषकी कमी हो „	गोबर, खली या पाखानेकी खाद देनी चाहिये या भेड़ें बिठायी जायँ।

२१. भूमिपर प्रकृतिका प्रभाव

भूमिको हम जिस रूपमें आज देखते हैं, यह रूप कदाचित् पहले न था। प्रकृतिके प्रभावोंने इसे अनेक रूपोंमें परिवर्तित किया और भविष्यमें न जाने कितनी अवस्थाओंमें-से इसे गुजरना होगा। प्रकृति अनेक विभिन्न रूपोंसे इसपर अपना प्रभाव डालती है।

ऋतु-प्रभाव

शीत, वर्षा, ताप, लू, ओले, बिजली, जीव-जन्तु आदि ही उसके परिवर्तनके उपक्रम हैं। इनके कारण भूमिका धरातल प्रतिघातक होकर नवीन स्वरूप धारण करता रहता है। जैसा विद्वानोंका अनुभव है कि "पृथ्वी एक आगका गोला थी" किन्तु शीत, वर्षा, ओलों आदिने मिलकर उसे शीतल किया और करते जा रहे हैं। शीत एवं तापके घोर संघर्षणोंसे उसके परत टूट फूटकर विचित्र विकृतावस्थामें आये, चट्टानें टूटकर रेतके कणके रूपमें आयीं—टीले खाई और खाइयाँ समतल रूपमें हो गयीं।

बिजलीकी कड़कका प्रभाव

बिजलीकी कड़कने उसमें तेजाबका अंश छोड़ा, जिसके फलस्वरूप न घुलनेवाले अंश भी घुल गये।

जीवजन्तुओंका प्रभाव

जीवजन्तुओंने भी हमारा कम उपकार नहीं किया! उन्होंने भी अकाट्य एवं अनवरत परिश्रमद्वारा भूमिकी ऊपरी सतहको अपने कोमल सूँडरूपी अस्त्रोंसे कतरकर भुरभुरी कर दिया और उसे समतल बनानेमें कोई कोर कसर न रखी।

प्रकृतिके प्रकोपोंका प्रभाव

प्रकृतिके प्रभाव डालनेके उपक्रमोंमें तूफान, बाढ़, भूकम्प, उल्कापात आदि भी हमारे बड़े कामके हैं यद्यपि इनसे हानियाँ भी कम नहीं होतीं। इन सबके आघातसे भूमिके परतोंमें उलट-फेर हो जानेके कारण हमें नयी शक्ति-वाली भूमि प्राप्त हो जाती है अथवा प्राचीन अनुर्वरा भूमि-के ऊपर अधिकांश मात्रामें पौधोंका खाद्य लेकर नयी मिट्टी आकर लद जाती है। अभी हालकी बाढ़से भागे हुए एक तराई-वासी आदमीसे मुझसे बातचीत हुई थी। अनेक दुःखद समस्याओंके कथनके उपरान्त उसने हर्षोल्लासमय शब्दोंमें यह भी कहा कि "भैया नुकसान तो अवश्य होता है, फिर भी हमलोग इसे गंगामैयाका प्रसाद समझते हैं; क्योंकि आगेके कई वर्षोंकी कृषिसे हमलोग इस हानिका कई गुना उत्पन्न कर लेंगे"। इस वाक्यमें कितना तथ्य है—सोचने-समझनेकी बात है।

२२. भारतकी कृषि-भूमि और किसान

कृषिप्रधान भारतदेशकी भूमिको भी इन आघात प्रत्याघातोंका सामना करना पड़ा है। आज उसकी भूमि उत्पादन-शक्तिसे शून्य-सी हो चली है। अधिकांश कृषक उन्नत-उपायोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण कृषिकर्ममें असफल होकर भाग्यको कोस रहे हैं। अत्यधिक कालसे कृषिमें घाटा होनेके कारण आर्थिक बल भी उन्हें जवाब दे रहा है। वे अनेकों उसासें लेनेपर भी अपनी भूमिको अपने अनुकूल नहीं कर सकते हैं।

२३. किसानोंके प्रति देश और सरकारका कर्तव्य

हाँ, भू-पति समुदाय चाहे तो उन्हें आर्थिक बल-प्रदान कर फिर भारत-भूमिको उर्वरा बना सकता है। सरकार भी यद्यपि कृषिकी उन्नतिमें सोलहो आने दिलचस्पी दिखला रही है—अनेक कृषि-स्कूल खोल रही है—आदर्श कृषि-फार्म तय्यार कर रही है; फिर भी इसका प्रभाव अभी उतना नहीं हुआ है, जितना संजीवनीका मृतकपर होता है। फिर भी आशा अच्छी है क्योंकि वर्तमानकालिक ग्रामोपयोगी शिक्षाद्वारा कृषि-सम्बन्धी अभिज्ञताके प्रसार-की आशा प्रत्येक कृषकके घरमें की जा सकती है। राज-

घरेलू उद्योग-धन्धे

देवियोंके लिये उपयोगी धंधे

पुराना चलन

हमारी देवियाँ बहुतसे घरेलू काम कर सकती हैं। पुराने जमानेमें हमारी बूढ़ी माताएँ खेस, चादरें, तौलिये, लिहाफ, खादी और दूसरे पहननेके कपड़ोंके लिये सारा सूत घरमें अपने आप तैयार किया करती थीं। अब इस कामको हमारी देवियाँ लज्जाका कारण समझती हैं। इंगलैंड जैसे धनी देशमें ९० प्रतिशत घरोंमें नौकर नहीं होते और महिलायें ही घरका सारा काम अपने आप करती हैं, यहाँतक कि कड़ी सरदीमें भी वही अपने मकान के फर्श, सीढ़ियाँ आदि स्वयं धोती हैं।

१. भोजन बनाना

हमारी देवियोंके लिये सबसे आवश्यक काम भोजन बनानेका है, परन्तु वे इस काममें पूरा जी नहीं लगातीं। हमारे बच्चे आलू, चने, मिठाई वगैरह साधारणतया बाजारसे ही लेकर खाते हैं। आमतौरपर बाजारी घी खराब होता है जिससे बच्चोंका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। यदि रोटी और साग-भाजीके अतिरिक्त मिठाई, अचार, चटनी, मुरब्बे तथा नित्य काम आनेवाली दूसरी चीजें घरमें तैयार की जायँ तो हमारे लिये बड़ा लाभदायक होगा। जिन घरोंमें केक, बिस्कुट, पेस्ट्री इस्तेमाल किये जाते हैं वहाँ स्त्रियाँ यह चीजें खुद तैयार कर सकती हैं।

बरतन धोनेका पुराना ढंग

आजकल बरतन धोना एक भारी मुसीबत समझी जाती है, इस कामके लिये आमतौरपर राख जिसमें कोयला मिला हुआ होता है काममें लायी जाती है। जिससे कपड़े और हाथ खराब हो जाते हैं। अगर राख छानकर या सफेद मिट्टी अर्थात् (Clay) काममें लायी जाय तो यह तकलीफ नहीं होती।

नया ढंग

लगभग तमाम बरतन सोप पाउडरसे बहुत जल्दी साफ हो सकते हैं। इसका नुसखा बहुत सरल है—

मामूली साबुन एक हिस्सा तथा गरम सोडा चार हिस्सा, इन दोनों चीज़ोंको मिलाकर पीस लो और किसी बरतनमें रख दो। जब जरूरत हो दो या तीन प्रतिशत पाउडर गरम पानीमें घोल लो। सब बरतनोंको इस साबुनके गरम पानीमें कुछ मिनट रहने दो। बादमें एक-एकको निकालकर कपड़ेके टुकड़ेसे इस पानीमें मलते जाओ। अंतमें साफ पानीसे धोते जाओ। कुछ ही मिनटमें बरतन निहायत साफ हो जायँगे।

२. सीने-पिरोनेका काम

कपड़े सीना

जनानी और मरदानी कमीज़ों, बच्चोंके फराक, जनाने और मरदाने सलवार आदिकी सिलाईपर हमारा काफ़ी खर्च होता है। यह कपड़े आसानीसे घरमें तैयार हो सकते हैं। कपड़ेकी बचतके अतिरिक्त सिलाईकी रकम काफी बच सकती है और स्त्रियाँ अपनी रुचि और पसंदके अनुसार अच्छे-अच्छे नमूनोंके कपड़े घरमें स्वयं तैयार कर सकती हैं।

रफू करना

अगर किसी कीमती कपड़ेमें तेजाब या कोई और चीज गिर जानेसे कहीं सूराख हो जाय तो वह सावधानीसे रफू करनेसे बिल्कुल दुरुस्त हो सकता है। रफू करना एक ऐसा हुनर है जो कि मामूली मेहनतसे पुरानी चीज़ोंको नया बना देता है।

कशीदा आदि काढ़ना

कपड़े पर हर किस्मकी कशीदाकारी, फूलकारी और

नीतिक दृष्टिसे भी भारतीय कृषकोंपर अनुकम्पाकी छाया-सी लगी दीख पड़ती है। भगवान जाने भविष्यके गर्भमें क्या है ?

उन्नत देशके देहाती कैसे रहते हैं ?

[ले०—पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी. एस्-सी., एल. टी., विशारद, हेडमास्टर, बलिया ।]

१. डेनमार्क और भारतके किसान

यूरोपमें डेनमार्क एक छोटासा देश है। इसका क्षेत्रफल १४८२९ वर्गमील और जनसंख्या तीस लाखके लगभग है। भारतवर्षमें लखनऊ-कमिश्नरीका जितना क्षेत्रफल है उसका सवाया डेनमार्कका है। जन संख्यामें लखनऊ-कमिश्नरी इससे बढ़ी हुई है, क्योंकि १९११ की मनुष्य गणनाके अनुसार इसकी जनसंख्या साठ लाख है।* डेनमार्कके मनुष्य अधिकतर खेती करते हैं, परन्तु यहाँके खेतीहर निरे गँवार नहीं होते, वरन् इस प्रकार अपना जीवन बिताते हैं कि भारतवर्षके बहुतसे नगरोंके रहनेवाले भी वैसा नहीं करते। यह खेतीहर गाँवोंमें रहते हुए और खेती करते हुए भी पढ़ने लिखनेसे इतना सम्बन्ध रखते हैं कि अपने देशमें तथा अन्य देशोंमें क्या हो रहा है, इसकी वह पूरी जानकारी रखते हैं। अपने देशके पार्लामेंटमें कौन सदस्य प्रजाके हितका कितना ध्यान रखता है, यह उनसे छिपा नहीं रहता। इसी डेनमार्कके गाँव-निवासियोंके रहन-सहनके सम्बन्धमें कार्नहिल मेगजीनमें एडिथ सेलर नामके सज्जन लिखते हैं—

२. डेनमार्कके किसानोंकी विशेषताएँ

"जिन जिन देशोंको मैं जानता हूँ उनमें डेनमार्क ही अकेला ऐसा देश है जिसने यह दिखा दिया है कि देहातके रहनेवालोंको किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये। यहांके देहाती बड़े ही चतुर होते हैं। इनको यह जाननेकी उतनी ही इच्छा रहती है कि देशमें और संसारमें क्या हो रहा है जितनी कि पढ़े लिखे नगर निवासियोंको होती है।

विज्ञान और राजनीतिमें रुचि

यहाँकी भाषामें जब पहले पहल विज्ञानकी प्रारम्भिक पुस्तकें सस्ती सस्ती छपीं तब नगर निवासियोंसे अधिक देहातियोंने ही इनको खरीदा। पार्लामेंटमें स्थान चाहनेवाले सदस्योंसे देहातमें ही भांति भांतिके रहस्यके प्रश्न पूछे जाते हैं और यहींके रहनेवाले इनके कामोंको बड़ी सावधानीसे

जालीका काम, रेशमी और मखमलके कपड़ोंपर बारडर डालना और सलमे सितारेका काम करनेसे न सिर्फ हम अपने खर्चेको कम कर सकते हैं बल्कि कई गरीब अनाथ घर इससे अपने निर्वाहके लिये आमदनी पैदा कर सकते हैं।

३. ऊनी, सूती और रेशमी काम

गरम स्वेटर, मफलर, मोजे आदि घरोंमें आसानीसे तैयार हो सकते हैं। निवार, दरियाँ और कालीनें बुने जा सकते हैं। तिल्लेका काम पेशावरमें बहुत ही बढ़िया अक्सर घरोंमें किया जाता है। यदि हमारी देवियाँ इस काममें कुछ अधिक दिलचस्पी लें तो मेरे विचारमें बहुत मजबूत और अच्छी चीजें और बाजारसे सस्ती बन सकती हैं।

४. धुलाई और रंगाई आदि

धुलाई

हम पहले कह आये हैं कि हमको अपने रेशमी और ऊनी कपड़े जरूर घरमें ही धोने चाहिये। बाजारमें जो एक आना फी कपड़ा देते हैं।

रंगाई

आमतौरपर कपड़ा रंगनेके वास्ते (Basic colours) इस्तेमाल किये जाते हैं जो चमकीले मगर कच्चे होते हैं और सस्ते होते हैं और पानीमें आसानीसे घुल जाते हैं। इसलिये हम कुछ ही मिनटोंमें इनसे कपड़े रंग सकते हैं।

छपाई

ठप्पोंसे मेजपोशों, पलंगपोशों, चादरों और साड़ियोंपर विभिन्न रंग और डिजायनकी छपाई आसानीसे हो सकती है।

—[र० द० मिश्रद्वारा 'रोशनी'से संकलित]

---

* यह एक पुराना लेख है, जो आज भी हमारे किसान भाइयोंके लिये शिक्षाप्रद है। —रा० गौ०

देखते रहते हैं और किसी अनुचित कामपर आलोचना करते हैं ।

स्वाध्याय और जानकारीमें रुचि

डेनमार्कके गांवोंमें ऐसा कोई घर नहीं है जहाँ समाचार-पत्र और पुस्तकें न मिलती हों, और ऐसा कोई किसान नहीं जो इङ्गलैंड और उपनिवेशोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश मजूरोंसे अधिक जानकारी न रखता हो। बोअर-युद्धके समय मैं डेनमार्कमें था। उस समय मुझसे मालूम नहीं कितनी बार यह पूछा गया कि इस युद्धका क्या कारण है। एक बूढ़ी स्त्रीके मुँहसे यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यदि अलिवर क्रोमवेल जीवित होते तो यह युद्ध न छिड़ने पाता। विज्ञान और राजनीतिमें ही यहांके किसान प्रेम नहीं दिखाते, वरन् इतिहास, साहित्य और जनश्रुतिमें भी नगर निवासियोंसे अधिक रुचि दिखाते हैं। इन देहातियोंकी इस जिज्ञासा-वृत्तिके लिये आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं, है, क्योंकि इनको भी पढ़ने लिखने और अध्ययन करनेका उतना ही अवसर मिलता है जितना किसी नगर-निवासीको मिल सकता है वरन् नगर निवासियोंसे देहातियोंको पढ़ने लिखनेका अधिक समय मिलता है।

३. डेनमार्कवालोंके उन्नत जीवनके कारण

डेनमार्कके देहातियोंकी यह अनुपम दशा क्यों है यह जाननेके लिए उस संस्थाके विषयमें कुछ जानना जरूरी है जिससे यहाँके देहाती अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उन्नति करनेमें समर्थ हुए हैं।

मिलन-मंदिर

डेनमार्कके प्रायः प्रत्येक गाँवमें एक मिलन मन्दिर (meeting house) होता है, जिसको उस गाँवके निवासी अपने खर्चसे बनवाते हैं और जिसके प्रबन्धके लिए अपनेमेंसे ही कुछ सदस्योंकी समिति नियुक्त करते हैं। यह मन्दिर सारे गाँवका सामाजिक केन्द्र होता है, जहाँ पुरुष और स्त्रियाँ सभी दिल बहलाने, पढ़ने लिखने और गपशप करनेको इकट्ठे होते हैं। गाँवकी समृद्धिके अनुसार मिलन-मन्दिरका आकार भी होता है। कहीं-कहीं तो यह देखने लायक एक रमणीक भवन होता है और कहीं पुरानी झोपड़ीसे ही काम लिया जाता है। चाहे मिलन मन्दिर छोटा हो चाहे बड़ा, प्रत्येकमें एक सभा-भवन (hall) होता है, जिसमें प्रकाशका पूरा प्रबन्ध रखा जाता है और जो इतना बड़ा होता है कि गाँवके सभी अवस्थाके पुरुष, स्त्री, इसमें सुखपूर्वक बैठ सकते हैं। सभा भवनके एक किनारे एक ऊँचा चबूतरा होता है और दूसरे किनारे वाचनालय और पुस्तकालय। कहीं-कहीं वाचनालय और पुस्तकालयके लिये अलग कमरे रहते हैं।

पुस्तकालय और वाचनालय

डेनमार्कके देहाती इस बातका बड़ा खयाल रखते हैं कि सबके पढ़ने लायक समाचार पत्र ही नहीं वरन् साप्ताहिक और समालोचनपत्र और पत्रिकाएं तथा पुस्तकें मिल सकें। यह बात भी नहीं है कि यह लोग पुस्तकालयकी पुस्तकोंपर ही भरोसा रखें। वह अपने पाससे भी पुस्तकें मँगा मँगाकर पढ़ते हैं और यदि निर्धन हुए तो कई मिलकर किसी पुस्तक या समाचारपत्रको मँगाते हैं और बारी बारीसे पढ़ते हैं ।

विविध कार्य

जिस गाँवका प्रबन्ध उत्तम हुआ वहांके मिलन-मन्दिरमें पढ़ने-लिखने और गप-शपके सिवा कोई न कोई ऐसा काम भी होता है जिसमें गाँवके सारे निवासी सम्मिलित होते हैं।

व्यायाम

जाड़ेके महीनोंमें सप्ताहमें कमसे कम एक दिन सन्ध्याके समय गाँवभरके युवक शारीरिक उन्नतिके लिए इकट्ठे होते हैं जहाँ एक अवैतनिक पहलवान सबको तरह तरहकी कसरत सिखलाता है ।

व्याख्यान और वाद-विवाद

सप्ताहमें एक दिन बालक-युवा वृद्ध नरनारी व्याख्यान सुननेके लिए आते हैं। महीनेमें दो बार वाग्वर्द्धिनी सभा होती है, जिसमें गाँवके सब लोग आते हैं और वादविवाद करते हैं।

नियामक सभायें

नियम सिखलानेके लिये विश्वविद्यालयके विद्यार्थी भी आते हैं।

संगीत और नाटक

महीनेमें दो बार गाने-बजानेकी मण्डली भी अपना गुण दिखला जाती है। कभी कभी निजी नाटक मंडलियाँ भी लोगोंके चित्तको प्रसन्न कर जाती हैं।

व्याख्यानदाताओंको कभी कभी पुरस्कार दे दिया जाता है, परन्तु अधिकतर व्याख्यानदाता लोक-सेवा और परोपकारके विचारसे ही काम करते हैं, क्योंकि यह या तो किसी कालेजके प्रोफेसर हुए या विद्यार्थी या राजनीतिज्ञ जो गाँवका सुधारना भी ऐसा ही कर्तव्य समझते हैं जैसा पढ़ना, पढ़ाना।

गाँवोंमें राजनीतिक सभाएँ

छोटेसे गाँवमें भी एक राजनीतिक संस्था होती है, जो गवर्मेंटके कामोंको ध्यानसे देखती रहती है और उचित कामके लिए बधाई तथा अनुचितके लिए चेतावनी देती रहती है।

सैनिक शालायें

एक ऐसी संस्था भी होती है, जिसमें लोग तरह तरहके अस्त्र-शस्त्र चलाना सीखते हैं, जिससे काम पड़नेपर देशकी रक्षा कर सकें।

कृषि सुधारिणी संस्था और सहयोग समिति

प्रायः प्रत्येक गाँवमें एक कृषिसुधारिणी संस्था भी होती है, जिसके सदस्य यह विचार करते हैं कि भूमिकी उपज किस प्रकार बढ़ाई जाय। इसीके साथ-साथ सहयोग समिति भी होती है, जिसकेद्वारा गाँवके सब आदमी आवश्यक सामग्री खरीदते और अपने खेतकी उपज बेचते हैं। यह सब समितियाँ सरकारी कृषिविभागसे सम्बन्ध रखती हैं, जिसका काम यह होता है कि नवीन अनुभवकी बातें किसानोंको बतलाता रहे और अपने कर्मचारियोंको देहातोंमें इसलिये भेजा करे कि जो बात लोगोंकी समझमें न आवे उसे अच्छी तरह समझा दें।

४. किसान हाईस्कूल और कृषिविद्यालय

इन मिलनमन्दिरों, कृषिसुधारिणी समितियों तथा व्याख्यानोंसे ही डेनमार्कके गाँवमें जैसी आदर्श उन्नति होनी चाहिए होती है, परन्तु वहाँके निवासी इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं रहते। किसान हाईस्कूल और कृषिविद्यालयसे भी काम लेते हैं। डेनमार्ककी कुल जनसंख्या तीस लाख है, जिसके लिए ७५ हाईस्कूल हैं, जहाँ किसान ही नहीं वरन् किसानोंकी सहायता करनेवाले मजूर भी जाड़ेके दिनोंमें जब कुछ काम काज नहीं रहता इतिहास, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनीति, स्वास्थ्य, विज्ञान और अन्य उपयोगी बातें सीखते हैं। प्रतिवर्ष दस सहस्र शिक्षार्थी जिसमें एक तिहाई मजूर होते हैं सत्तारे (अवकाश) के महीनोंमें हाईस्कूलमें जाते हैं।

५. व्याख्यान और वाग्वर्द्धिनी सभाएँ

यह जब पढ़कर अपने अपने गाँवोंको लौटते हैं तब जो कुछ नयी नयी बातें सीखते हैं उनको व्याख्यानों और वाग्वर्द्धिनी सभाओं द्वारा गाँववालोंको सिखाते हैं। इन वाद-विवादोंसे डेन्मार्कके किसानोंको बड़ा लाभ होता है। इनसे उनकी बुद्धि तीव्र ही नहीं होती वरन् उनको ऐसी बातोंसे भी प्रेम हो जाता है जिनका उनसे विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह याद रखना चाहिये कि इन वादविवादोंमें सम्मिलित होकर लाभ उठानेमें एक टका भी खर्च नहीं करना पड़ता। हाईस्कूलमें पढ़ने या पढ़ानेके लिये भी उनको बहुत कम खर्च करना पड़ता है।

६. विपदाओंके हाथमें समृद्धिकी कुंजी

परन्तु क्या डेन्मार्ककी यह दशा सदासे ऐसी ही चली आ रही है और डेन्मार्कके निवासियोंको इसके लिये कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ा है? इतिहास उत्तर देता है, नहीं। इनकी वर्तमान समृद्धिका कारण उनकी पिछली आपत्तियाँ हैं। जब उनका समुद्री बेड़ा छिन गया और इनके शक्तिहीन होनेके कारण इनके देशका एक बड़ा प्रान्त श्लेशविग-होल्स्टन (Schleswig-Holstein) भी १९०५ वि० में शत्रुओंके हाथ चला गया तब इस देशको इतना धक्का पहुँचा कि नगर और गाँव सब जगहके रहनेवाले किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये और यही जान पड़ने लगा कि अब उनका अन्त आ गया और अब यह सदाके लिये धूलमें मिल गये। ऐसा होनेमें कुछ भी कसर नहीं थी यदि सच्चे देशभक्तोंकी एक मंडली, जीजानसे धर्मके पंथपर चलनेवालोंकी नाईं, श्रद्धा और विश्वासके साथ उन्नति करनेके लिये कटिबद्ध न हो जाती। धर्मगुरु (Grundtvig) ग्रुंटविगने इंगलैंडसे हार खानेपर जो काम जारी किया था उसीको इस मंडलीने फिर जारी किया। यह मंडली देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे-तक जाती और लोगोंको बड़े जोरदार शब्दोंमें सिखलाती कि "जागो, उठो और अपने-अपने काममें फिर लग जाओ, हाथपर हाथ धरे बैठे रहना और भाग्यको कोसना पुरुषोंका काम नहीं है।" इसका परिणाम यह हुआ कि देशमें एक

दमसे जागृति हो गयी। एक दूसरेसे ऐसा प्रेम हो गया जैसा पहले स्वप्नमें भी नहीं समझा गया था। लोगोंमें यह भाव उत्पन्न हो गया कि बिना सबके मिले ऐसी आपत्तिके समय निर्वाह होना कठिन है। इसलिये जहाँतक हो सके प्रत्येकको अपने देश भाईकी सहायता करनी चाहिये और सबसे पहले किसानोंको ही सहायता पहुँचानेकी जरूरत है, क्योंकि यही सबके जीवनाधार हैं।

७. डेनमार्कके किसानोंकी पूर्वावस्था

इस समय देहातकी दशा बड़ी ही शोचनीय थी। बहुत सी भूमि अच्छी तरह बोयी जोती न जानेके कारण ऊसर हो गयी थी। किसान जितना बोझ उठा सकते थे उससे कहीं अधिक उनके सिरपर था। साथ ही साथ चरित्रबलमें भी यह लोग गिरे हुए थे।

८. ऐहिक उन्नतिके काम

इसलिए ऊपरवाली मंडलीका पहला काम यह था कि इनको इसकी शिक्षा दी जाय कि अच्छी खेती किस प्रकार हो सकती है। इस मंडलीने उन कड़ी शर्तोंको भी सुगम करानेकी चेष्टा की जिनपर किसानोंको खेत दिये जाते थे। बड़े बड़े कृषिविद्या विशारद गाँव गाँव घूमकर व्याख्यान देते, प्रयोग दिखलाते, खेती करनेकी वैज्ञानिक रीतियाँ बतलाते, खरीदने और बेचनेके लिए सहयोग समितियाँ स्थापित करनेमें किसानोंको सहायता देते और समझाते कि एक दूसरेसे मिलकर कैसे काम करना चाहिये। कुछ समयमें वहाँकी सरकार भी इस काममें हाथ बँटाने लगी। कृषिविद्यालय और भ्रमणकारी स्कूल खोले गये, जो घूम घूमकर किसानों-को ही नहीं वरन् मजूरोंको भी उनके काम उनके पास जाकर सिखाते थे।

१०. मानसिक उन्नतिके काम

इस मंडलीने ऐहिक उन्नति करनेका ही बीड़ा नहीं उठाया था। इसने समझ लिया था कि अन्न-वस्त्रसे ही मनुष्य जीवन पूर्ण नहीं होता वरन् इसके साथ-साथ चरित्र बलके उन्नत करनेकी भी आवश्यकता है। इसलिये इसने विचारा कि इन किसानोंका जीवन तभी सुफल होगा जब यह उदासीके गढ़ेसे निकलकर संसारके दुःख सुखका सामना प्रसन्नतापूर्वक करें, उत्तम नागरिक बनें और अपनी ही उन्नति न करें वरन् देशको भी लाभ पहुँचावें, क्योंकि सबकी भलाईके साथ अपनी भलाई होती है। वैसे तो इस मण्डलीमें भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्य थे, परन्तु उपर्युक्त बातपर सबका मत एक हो गया। कुछ तो किसानोंको यह सिखलानेमें लगे कि खेती किस प्रकार की जाय कि उनको सब तरहका सुख मिले। कुछ इस यत्नमें थे कि कभी-कभी मन बहलाने और चित्तको प्रसन्न रखनेकी सामग्री होनी चाहिये और कुछ यह चाहते थे कि इन किसानोंके हृदयमें ऐसी आशा उत्पन्न कर दी जाय कि वह अपना जीवन भले काममें लगावें। बड़े बड़े धर्मोपदेशक छोटे छोटे गांवके गिरजा घरोंमें बड़े ही मनोहर धर्मोपदेश देते; धुरंधर राज-नीति विशारद गांवके मैदानोंमें दिलको फड़का देनेवाले व्याख्यान देते; पुराने खलिहानोंमें नामी-नामी गायक और बजैया संगीत, नाटक और देशभक्तिकी कविताओंद्वारा लोगोंके चित्तको लुभाते और अपने पूर्वजोंके वीर कर्मोंकी प्रशंसाद्वारा दिखलाते कि मनुष्य क्या कर सकता है और हम लोगोंको आगे क्या करना चाहिए। सप्ताहमें कमसे कम एक दिन प्रत्येक गांवमें इस तरहका जमाव हुआ करता था। इसमें लोगोंके मन बहलानेका ही ध्यान नहीं रखा जाता था, कुछ ऐसी चर्चा भी होती थी जिससे किसान स्वयम् कुछ सोचें, विचारें। एक पंथ दो काज हों, उनका मन भी बहले और शिक्षा भी मिले।

११. परिणाम

परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनोंमें किसान भाइयोंको पढ़ने लिखनेकी चाट पड़ गयी, जिससे पुस्तकोंकी मांग खूब ही बढ़ी और व्याख्याताओंमेंसे तरह तरहके प्रश्न करनेका हियाव पड़ने लगा। देश तथा संसारकी बात जाननेके लिये मिलन-मन्दिरकी आवश्यकता जान पड़ने लगी जिनको अपने खर्चसे बनवाकर अथवा किरायेपर लेकर वाचनालय तथा पुस्तकालयका प्रबन्ध किया जाने लगा। जब किसानोंमें जागृति हो गयी तो मण्डलीका उद्देश पूरा हो गया। अब केवल इस बातकी कमी थी कि कुछ समयतक यह काम ऐसे ही होता रहे। अन्तमें डेन्मार्कके देहाती गुण-ग्राहकता और चतुराईमें नगरनिवासियोंसे भी बढ़ गये।

१२. हमारी अवस्था

भारतवर्षके गांवोंकी बात छोड़िये और सोचिये कि

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

(१) "साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यम्"

गंगाकी धारामें सब कुछ खप जाता है। "सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई ॥" "गंगाका विज्ञानांक" अनूठा ही निकला। ऐसी अपूर्व वस्तु सर्वथा निर्दोष हो तो चतुर चतुराननकी चतुराईमें ही बट्टा लग जाय। "विज्ञानांक" की समालोचना करते हुए मैंने श्रीबालगोविंदप्रसादजीके साहसिक कार्य्यका उल्लेख किया था, वह तो पाठकोंको याद ही होगा। उसी तरहके एक और साहसिक कार्य्यपर तो पूरा शास्त्रार्थ ही छिड़ गया।

साहित्य-सरोवरमें नये खिले हुए किसी "कमल"ने वैज्ञानिक उद्यानके सौरभमय "कपूर"के सुगन्धका अपहरण किया। "कमल"के कालानुसार विकासपर यदि "दिनकर" उसके सौरभका शोषण करे, तो उसका अधिकार है। शोषण करके बरस देनेवाले सूर्य्यकी इस क्रियाको, जो वह सदा दिन-दहाड़े करता है, चोरी कोई न कहेगा। यह तो सीनाजोरी कहलायेगी। जिस प्रकार पूँजीपति मजदूरोंसे और स्वेच्छाचारी शासक जनतासे धनापहरण करके भी चोर या डाकू नहीं कहला सकता, उसी प्रकार "दिनकर" "कमल"का सौरभापहरण करते हुए भी "प्रकृत" दस्यु नहीं कहला सकता। ये सभी "साहसिक" वन्दनीय हैं।

'विज्ञानांक"में "टेलीफोनका आविष्कार और विकास" नामका एक लेख पृ० १४९ १५६ पर छपा है। इसके लेखक हैं पटना विश्वविद्यालयके एक कलाकुमार। कानपुरके श्री श्यामनारायणजी कपूरने गंगाके आषाढ़के प्रवाहमें लिखा है कि यह लेख आदिसे अन्ततक मेरे दो लेखोंका एकत्रीकरण है और "पटना विश्वविद्यालयके एक कलाकुमार"ने अखिल-प्रबन्धापहरण किया है। कथा लंबी है। परन्तु सारांश यह है कि किसी तरह दोनों लेख श्री पं० कामेश्वर शर्मा "कमल"के हाथ लगे और उन्होंने अपने मित्र श्री रामधारीसिंहजी 'दिनकर" बी. ए. (आनर्स), हेडमास्टर इङ्गलिश हाई स्कूल, बरबीघा (मुँगेर) के उस कल्पित नामसे "गंगा"को भेज दिया था। 'दिनकर" जी कहते हैं कि लेख मेरा ही है 'कमल" जीको मैंने दिया था कि दोहराकर "गंगा"को भेज दें। "गंगामें जैसा छपा है वह मेरे लेखका प्रायः अक्षुण्ण रूप है।"

कपूरजीका कहना है कि इसका पूर्वार्ध मैंने "सतीश कुमारवसु"के कल्पित नामसे ३० अक्टूबर १९३२ के दैनिक प्रतापमें छपवाया था, और "कलाकुमार"ने इसे समूचा हड़प लिया है। प्रतापका वह अंक अलभ्य वस्तु नहीं है। हाथ कंगनको आरसी क्या है। उठाकर देख लीजिये, मिला लीजिये।

यहाँ खेदके साथ मुझे लिखना पड़ता है कि कपूरजीका अभियोग यथार्थ है, दावा बिल्कुल सही है। मैंने "टेलीफोनकी जन्म कथा" नामक प्रतापवाले लेखको "विज्ञानांक" के "टेलीफोनका आविष्कार और विकास" से मिलाया। यत्रतत्र इतने थोड़े शाब्दिक परिवर्त्तन हैं कि हम कह सकते हैं कि "सतीश कुमार" और "कलाकुमार" इन दोनों "कुमारोंके" लेखोंमें कोई अन्तर नहीं है, एकने दूसरेकी नकल जरूर की है। आरंभके पहले कालमकी ८-२३ पंक्तियाँ भिन्न हैं, बस। शेष पहली पंक्तिसे सातवें कालमकी तीन चौथाई तकमें सतीश-कुमारका लेख समाप्त हो जाता है। यहाँतक दोनों लेख एक ही हैं। यत्रतत्र जो शाब्दिक परिवर्त्तन हैं, उनसे अधिक परिवर्त्तन बहुधा मैं स्वयं आगत लेखोंमें कर दिया करता हूँ। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये शाब्दिक परिवर्त्तन केवल सम्पादकजीके हैं, या "कमलजी"के हैं या संभवतः दोनोंके हैं। डेढ़ बरस पहलेके "सतीशकुमार" ये "कलाकुमार" ही होते तब तो झगड़ेका रुख और हो जाता। परन्तु सौभाग्यवश "कलाकुमारजी" प्रतापवाले उक्त लेखके लेखक होनेका दावा नहीं

कितने शहर ऐसे हैं जहाँ पठन पाठनका और विद्या, बुद्धि और बलमें उन्नति करनेका लोगोंको वैसा ही सुभीता है, जैसा डेनमार्कके छोटे-छोटे गांवोंमें है। यदि ऐसा सुभीता नहीं है तो यहांके धर्मशिक्षकों, राजनीति-विशारदों, प्रोफ़ेसरों, अध्यापकों और विद्यार्थियोंका क्या कर्तव्य है?

करते। उनकी समझमें संयोगसे दोनों लेख टकरा गये हैं। दोनोंको मिलाकर पढ़ जानेवाला इस दरजेके संयोगवादपर कभी विश्वास नहीं कर सकता। मुझे ऐसा मालूम होता है कि "कमलजी" और "दिनकरजी" दोनों घनिष्ट मित्र हैं। "कमल"जीने दिनकरजीका कल्पित नाम देकर यह लेख उनके गले मढ़ दिया है। दिनकरजी अब लाचार होकर दीदा-दिलेरीसे अपनी और अपने मित्रकी रक्षा करना चाहते हैं। परन्तु उस डेढ़ बरस पहलेके छपे लेखको उन्होंने देखातक नहीं है, नहीं तो इस दीदा-दिलेरीकी हिम्मत न पड़ती। फिर भी वह लेख ऐसा अकाट्य प्रमाण है जिसके सामने गंगामें दिया हुआ उनका लेख "चोरी और सीनाजोरी"सा लगता है। "कमल"जीने यदि अपने दोनों मित्रोंसे यह विनोद किया है, तो विनोद अवश्य भद्दा हो गया और सौंदर्य्य, उदारता, सत्य और उच्चाशयताकी रक्षा इसीमें है कि कमलजी रहस्यको खोलकर दोनोंसे क्षमा-प्रार्थना कर लें। "कमल"जी एक पावँसे गंगाजीमें खड़े होकर भी कहें कि हमने "प्रताप"वाले लेखका अपहरण नहीं किया है, तो भी हम मान नहीं सकते।

दिनकरजीके उत्तरको पढ़कर मुझे निश्चय होता है कि उन्होंने अपने सिर मढ़ा हुआ वह लेख छपनेसे पहले देखातक नहीं था। बिना देखे ही अपना लिया। अन्यथा, जिस आदमीने स्वयं सरासर नकल की हो वह इस तरहका उत्तर देनेकी ढिठाई कर ही नहीं सकता। "कमल"जी इस मामलेमें शायद इसीलिये चुप हैं। इस झगड़ेपर विचार करके मैं इसी अनुमानपर पहुँचता हूँ कि दिनकरजी निर्दोष हैं, उन्हें "कमल" द्वारा फाँसे जानेसे इस अपयश-पंकमें फँसना पड़ा है। कहाँ "दिनकर" और कहाँ पंकज—वाला पंक! "मित्र" हैं इसीलिये "कमल"के "कीचड़में" फँस गये। फिर भी दिनकरजीने जिस ढंगपर "कपूर"जीका उत्तर दिया है, वह अनुचित है, और उनकी "उच्चता" और "पद"के अत्यन्त अनुपयुक्त है। हमारी समझमें श्री बालगोविन्द प्रसादजीने चुप रहकर बुद्धिमत्ताका काम किया है।

"दिनकर" जीसे हम कहेंगे कि "कमल"जीकी मित्रताके पीछे बदनाम न हों। "अस कुमित्र परिहरेहि भलाई।"

दिनकरजीको हम एक और कथा सुनाते हैं। उनको इस कथामें रस आयेगा। यह भी किसी "कमल" की ही कथा है।

एक और "कमल"जीकी कहानी उनके "मित्र" "रवि"ने [रविवर्म्मा भटनागरने] "माधुरी"के "अंक"में बैठकर कही है। वह यह है कि "कमल"ने "पद्म"की [श्री पदुमलाल बख्शीकी] "कला"की अक्षरशः चोरी की और "कला और उसका मूल" नाम देकर (अगस्तकी) माधुरीमें वह लेख "प्रकाशित" किया। चोरीसे माल उड़ा लाना और फिर प्रकाशित कर देना यह भारी साहस और चौर-कलाकी पराकाष्ठा है। माधुरीके "कमल" महोदय "रवि"की "आततचक्षु"में चोर भले ही हों, पर हैं रसिक। उन्होंने उड़ाया तो "पद्म"का ही माल उड़ाया, गैरका माल नहीं, "गंगा"वाले "कमल"की तरह "कपूर"का सौरभ नहीं चुराने गये, इसे कहते हैं "कला"। दुर्भाग्यवश ये "रवि" महोदय रसिक नहीं हैं, नहीं तो इस कलापर रीझकर इन्हें "साहित्य-दूषण"की भद्दी उपाधि न देते। इस उपाधिमें "दूषण" है और अनुप्रास तो है ही नहीं। "माधुरी" वाले "कमल"जीको "साहित्य-साहसिक" कहना चाहिये।

मैं "दिनकर"जीसे विनीत भावसे पूछूँगा कि—

प्रभु, सोइ कमल कि अपर कोउ, जाहि कहत "रवि" "चोर"
"कामेश्वर"पद उभय लखि, होत चकित मनमोर।"

सहयोगी "स्वराज्य" भी इस चोरीपर क्षुब्ध हो उठा है। उससे रहा न गया। लिखता है—

[हिन्दी सामयिक साहित्यजगतमें शर्विलकोंकी इतनी उछल-कूद मची हुई है कि उनपर बन्धन लगाना एक प्रकारसे कठिन हो रहा है। कई साहित्यिक कहलानेकी झूठी हविस रखनेवाले व्यक्ति दिनदहाड़े अपनी चोरीकी कृतियाँ छपवाकर संपादकोंकी आँखोंमें धूल झोंकते रहते हैं। संपादकके लिये प्रत्येक लेखकी छान बीन करना विशेषकर इस दृष्टिसे कि वह मौलिक है या चुराया हुआ, एक प्रकारसे असंभव ही है। उसका लक्ष्य तो लेखके विषयकी ओर ही अधिकतयासे रहता है। परन्तु जब पाठकोंद्वारा "चोर लेखक"का ध्यान आकर्षित कराया जाय तो संपादकको चाहिये कि वह उसकी कड़े-से-कड़े शब्दोंमें भर्त्सना करे और भविष्यमें उसके लेखोंको छापते समय विशेष रूपसे सतर्क रहे।—सं० स्व०]"

परन्तु, हमारा सहयोगी क्रोधमें यह भूल गया कि साहित्यमें अभी उसका ज़माना आया कहाँ। जब उसका

जमाना आयेगा तब उसकी दुहाई फिरेगी। भर्त्सना क्या करेगी ? शर्विलकोंपर उसका क्या अंकुश हो सकता है ? "रवि"के अनुसार शर्विलकोंने तो लज्जा-कुत्तीको कभी दुतकार दिया है। हाँ, उनके लेखोंका ही सदाके लिये बहिष्कार कर दिया जाय, तो कुछ असर पड़ सकता है। परन्तु सम्पादकोंका ऐसा संगठन है कहाँ ?

और फिर किस-किसको चोरीका यह दंड दिया जायगा। संगीन चोरी करनेवाले ही तो पकड़े जाते हैं। परन्तु छोटी-छोटी चोरियोंकी तो गिनती नहीं। ऐसे-ऐसे नामी और यशस्वी लेखक भी वास्तविक चोरीसे मुक्त नहीं हैं जिनका सिक्का जमा हुआ है, और जो आवश्यकता पड़नेपर साहित्य-जगत्में विचारकका पद ग्रहण करने योग्य समझे जा सकते हैं। जब दंड और न्यायकी बात सोची जाती है तो कम ही लोग बच जाते हैं। इसीलिये हमें इन चोरियोंको तो अभी विनोदकी ही दृष्टिसे देखना होगा। आत्म-शुद्धि और आत्म-शासनद्वारा ही लेखकोंका समुदाय सुधर सकेगा।

—रा० गौड़

(२) मजूर-किसान-ग्रंथमाला

हमने मजूर-किसान-ग्रंथमालाका जो प्रस्ताव पाठकोंके सामने रखा था, उसे कई पाठकोंने पसन्द किया परन्तु समर्थोंकी ओरसे कोई समर्थन नहीं हुआ। जान पड़ता है कि साम्यवादी आन्दोलनके होते हुए भी धनवानों पूंजीपतियोंकी आंखें नहीं खुलतीं। पच्छाहीं साम्यवाद बड़े-बड़े कारखानोंको इसीलिये तो सरकारी कर देना चाहता है, जमीदारी प्रथाको इसीलिये तो उठा देना चाहता है कि स्वार्थरत पूँजीपति और जमीदार मजूरों और किसानोंको समृद्ध करनेमें समर्थ होते हुए भी सहायता नहीं देता। यदि आज भी वह चेत जाय और इन दरिद्रोंको सुखी करने और ऊँचे उठानेमें सहारा दे, उन्हें सन्तुष्ट करे तो पाश्चात्य साम्यवादकी पैनी धार अवश्य ही कुंठित-सी हो जाय। यदि जमीदार अपने कर्त्तव्य समझ जाय और अपने जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्त्तिसे बचे धनको भोगविलासमें न लगाकर अपने असामियोंको उन्नत, समृद्ध और सुखी करनेमें लगावे तो उसकी जमीदारीपर तो स्थायित्वकी मुहर लग जाय। आज यदि पूंजीपति देशकी दरिद्रता अपने ऊपर लेकर अपना धन भोगविलाससे बचाकर मजूरोंकी भलाईमें लगा दे, उन्हें दे दे तो मजूर फिर असंतुष्ट किस बातपर हों ? परन्तु अभी वह बुद्धि नहीं आयी है। इसीलिये मजूर-किसान-ग्रंथमाला निकालनेका प्रोत्साहन हमको किसी समर्थने न दिया। फिर भी "विज्ञान" धनवानोंका पत्र नहीं है। सरस्वतीके सेवकोंका प्रयास है। अतः उसे अपनी ही शक्तिपर निर्भर करना पड़ेगा। हम लेख तो उस तरहके दे ही रहे हैं। जब कभी अवसर होगा या संभव होगा, ऐसी पुस्तकें भी हम निकालेंगे ही।

हमारे एक समर्थ मित्रने लिखा है कि "वास्तविक कार्य्यमें किसानों तथा मजूरोंको ये पुस्तकें कहाँतक लाभ पहुँचायेंगी, यह विवादग्रस्त विषय है। वे बिल्कुल निरक्षर होते हैं, तथा उन्हें अपने विषयमें Theoretical ज्ञानकी अपेक्षा Practical ज्ञान अधिक होता है। तथा पुस्तकें प्रायः ऐसी होती हैं जिनमें व्यावहारिक ज्ञानकी अपेक्षा सैद्धान्तिक ज्ञान अधिक रहता है तथा प्रायः ऐसे ही लेखकोंद्वारा लिखी जाती हैं। अतएव मजूरों तथा किसानोंको इन पुस्तकोंसे व्यावहारिक ज्ञान कहाँतक होकर उन्हें कुछ अधिक उपार्जन-योग्य शक्ति मिलेगी, इसमें मुझे संशय है। लेकिन यदि कमसे कम ५०० ग्राहक भी हो जायँ तो कुछ पुस्तक प्रकाशन कर देख लिया जाय। बिना ग्राहकोंके पुस्तक छपानेमें बहुत कम लाभ है।"

उनकी निरक्षरता और व्यावहारिक ज्ञान दोनोंही निर्विवाद तथ्य हैं। अबतक पुस्तकें भी अधिक सैद्धान्तिक ही निकलती रही हैं, और लेखक तो प्रायः कोरे वाच-ज्ञानी ही होते आये हैं। ये अबतकके दोष हैं, जिनको हमने उस लेखमें स्वीकार किया है और बतलाया है कि हमारा प्रयत्न अधिक व्यावहारिक पुस्तकें प्रायः व्यावहारिक लेखकोंसे लिखवानेका होगा और निरक्षरता दूर करना तो इस ग्रंथमालाका पहला उद्देश्य होगा। कोई दूसरा इन दोषोंको दूर कर दे तब हम निर्विघ्न मैदानमें काम करनेको उतरें, यह हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारे समर्थ मित्रने हमारे लेखको शायद यथेष्ट ध्यानसे नहीं पढ़ा।

मित्रवर पं० ओंकारनाथ शर्म्माका प्रस्ताव था कि एक लिमिटेड कम्पनी खोल दी जाय। इसमेंभी मुझे यह कठिनाई दीखती है कि रोजगारी लोग रुपया वहीं लगायेंगे जहाँ देखेंगे कि हानिका भय नहीं हैं और लाभकी संभावना अधिक है। इस मालाके निकालनेमें अवश्य हानिका भय है

(४) सुन्दरियो ! नकली सौन्दर्य्यके लोभमें प्राण न दो

(१) जहरीले पौडरों और क्रीमोंसे बचो

"रोशनी" में भक्त पूरनसिंहजीका इस विषयका एक उपयोगी लेख छपा है। विज्ञानके पाठकोंको वह कुछ परिवर्त्तित रूपमें भेंट है।

"जापानके दी-उसाका समाचारपत्र मंची, अपने १९ जुलाईके अंकमें इस तरह लिखता है—

नयी अनोखी बीमारी

सन् १९०९ की बात है कि जापान देशमें जिसे एशियाका ब्रिटानियाँ समझा जाता है एक भयंकर बीमारी फैली। जिसमें पचास प्रतिशत रोगी जरूर मर जाते थे। डाक्टरोंने इस बीमारीका कारण खोज निकालनेकी बड़ी कोशिश की, परन्तु बहुत समयतक उन्हें इस संबंधमें सफलता नहीं मिली। अंतमें डाक्टरोंने यह पता लगाया कि यह बीमारी एक बाहरी जहरसे फैलनेवाले रोगसे मिलती-जुलती है।

इस बीमारीमें चार विशेषताएँ पायी जाती हैं—

१. यह बीमारी दूधपीते बच्चोंतक ही सीमित है।

२. अन्य ऋतुओंकी अपेक्षा गर्मीकी ऋतुमें ही इसका बहुत जोर रहता है।

और लाभकी संभावना नहीं है, क्योंकि हमारा उद्देश्य ही नहीं है कि हम मजूरों और किसानोंसे, जो हमारे देशके कंगाल हैं उनसे, धनका चोषण करें।

हम इस प्रस्तावसे सहमत हैं कि ५०० ग्राहक भी हो जायँ तो इस मालाका प्रकाशन हम आरंभ कर दें। रा० गौ०

३. गाँव-गाँवमें पुस्तकालय

सुधाके यशस्वी संचालक और सम्पादक पं० दुलारेलालजी भार्गवका कार्य्यक्रम गाँव-गाँवमें पुस्तकालय खोलनेका था। ऐसा ही उपयोगी प्रस्ताव जनताके संमुख श्रीरघुनाथप्रसादजी सिंघानियाँका है। यदि इन पुस्तकालयोंसे मजूरों और किसानोंको प्रकृत लाभ हो तो हम अवश्य ऐसे प्रस्तावोंका स्वागत करें। उनको लाभ तभी पहुँच सकता है जब पुस्तकालयका साहित्य भूखे दरिद्रोंको एक रोटी दे सके। साहित्य, इतिहास, नाटक, धर्मशास्त्र, दर्शन, उपन्यास और कहानियाँ उनके किस कामकी। फिर वह तो निरक्षर हैं। उनके लिये पुस्तकालयकी उपयोगिता क्या है? वही पुस्तकालय उनके लिये उपयोगी हो सकता है जो पहले उन्हें साक्षर बनावे और फिर घरेलू धंधोंको सिखाकर उनकी दरिद्रता दूर करे। ज्ञान-विज्ञान, कलाकौशल, धर्म्माचार और मनोरंजन, सभी कामकी चीजें हैं, परन्तु इनका उपयोग पेट भरेपर हो सकता है। "भूखे भजन न होहि गोपाला।" इसीलिये गाँव-गाँवके पुस्तकालय अच्छे हैं, पर होने चाहिये वास्तवमें उपयोगी।

प्रकाशन-कार्य्य करनेवाले आजकल पुस्तकालयों और पढ़नेवालोंकी बहुतायत चाहते हैं। पुस्तकालय बिक्रीके लिये विज्ञापनका काम भी करते हैं। इसीलिये प्रकाशकका स्वार्थ पुस्तकालयों और साक्षरोंकी बहुलताके साथ आबद्ध है। अतः प्रकाशकवृन्द ऐसे पुस्तकालयोंको अवश्य प्रोत्साहन देना चाहेंगे। हमारा प्रस्ताव है कि प्रकाशक केवल अपना लाभ न देखें। अपने पढ़नेवालोंके लाभकी बात अधिक ध्यानमें रखें तो उन्हें अन्ततः अवश्य लाभ होगा। प्रकाशकोंके लिये हमारा मजूर-किसान-ग्रन्थमालावाला प्रस्ताव ऐसा ही है। उससे प्रकाशकोंका भी लाभ है। अन्यथा, कोरे स्वार्थ-प्रेरित आन्दोलनसे देशकी हानि है। —रा० गौड़

भ्रमसंशोधन

विज्ञानकी पिछली संख्यामें,—भाग ३९ संख्या ६ में, —पृ० १९९ पर पहले कालमकी पंक्ति १९ में, "उपयुक्त" के बदले "अयुक्त" पढ़ना चाहिये। —रा० गौ०

३. केवल नौजवान माताओंके बच्चोंमें यह बीमारी पायी जाती है।

४. धनी स्त्रियोंके बच्चे गरीबोंके मुकाबिलेमें अधिक इसके शिकार होते हैं और यह केवल उन बच्चोंमें पायी जाती है जो अपनी माँका दूध पीते हैं; यद्यपि माँके दूधसे बढ़कर बच्चेके लिये और कोई खुराक नहीं।

डाक्टरोंका निर्णय कि यह पौडरादिका विष है

उपर्युक्त कारणोंसे डाक्टर लोग इस नतीजेपर पहुँचे कि हो-न-हो केवल माताओंके दूधमें कोई जहर मिल जाता होगा। अन्तमें इस लंबी जाँच-पड़तालके बाद—जो लगभग चौथाई शताब्दीतक जारी रही—जापानकी राजधानी तोकियोके दो नामी डाक्टरोंने सन् १९२३ में अपना निर्णय देशके सामने रख दिया—

"बच्चोंके दूधमें सीसेका जहर मिल जाता है। वह इस तरह कि गर्मीके मौसिममें धनी स्त्रियाँ अपने और अपने बच्चोंके चेहरेपर बल्कि शरीरपर भी बहुत अधिक पौडर मलती हैं। और चूँकि इस मौसिममें पसीना अधिक आता है, ऐसा करनेसे स्त्रियोंके शरीरके चमड़ेमेंसे भी पौडरों और क्रीमोंमें मौजूद सीसेका जहर उनके दूधमें प्रवेश कर जाता है और बच्चोंके अपने मुँह और शरीरपर मला हुआ पौडर, क्रीम आदि दूध पीते समय उन बेचारोंके मुँहके भीतर चला जाता है। जिससे उनको यह बीमारी बरबस ही लग जाती है। चूँकि धनी स्त्रियाँ गरीब स्त्रियोंकी अपेक्षा इस पौडरका इस्तेमाल बहुत अधिक करती थीं और बड़ी मोटी तह जमाया करती थीं और जवान स्त्रियाँ बूढ़ी स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक पौडर मलती थीं, इसलिये स्पष्ट है कि अमीर जवान अवस्थावाली स्त्रियोंके बच्चे इसके अधिक शिकार हुए।"

जापानका सरकारी आदेश

इसलिये जापानने अपने देशमें चेहरे और बदनपर मले जानेवाले इन पौडरों और क्रीमोंका रिवाज कम करनेका फैसला कर लिया है।"

इन जहरोंका मलना बन्द करो

क्या हिन्दुस्थानकी शिक्षित लेडियाँ भी जो आजकलकी माताएँ हैं, इस ओर ध्यान न देंगी? और अपने लाड़ले बच्चोंपर अपने हाथों इस अत्याचारको जारी रखेंगी?

(२) चुड़ैल चूड़ियोंके पीछे अकाल ही सती मत हो

युरोप और अमेरिकामें सुन्दरियाँ कृत्रिम सौन्दर्य्यके पीछे प्राण दे रही हैं। घूँघरवाले बालोंकी रचना कृत्रिम रीतिसे बिजलीकी धाराकेद्वारा की जाती है। इसमें अनेक युवतियोंके सिर बेतरह झुलस गये हैं। परमात्माकी कृपासे अभी इस कुवासनाका यहाँ प्रचार नहीं हुआ है। परन्तु सेलुलोइडकी चूड़ियाँ बाजारोंमें जोरोंसे फैल गयी हैं। सेलुलोइड कई भकसे जलजानेवाली वस्तुओंसे बना हुआ विविध रंगोंका अत्यन्त सुन्दर पारदर्शी पदार्थ है। कभी इसका कालर बड़ा सुन्दर बनता था। परन्तु इसका कालर पहने कई सिगरेट पीनेवाले दियासलाईसे सिगरेट जलाते समय जल मरे। दियासलाई कालरमें लग गयी और कालर भकसे जल उठा। ऊँची अग्नि-शिखाओंके बीच सिर घिरकर जलभुन गया, खड़े-खड़े सिगरेट पीनेवाला जल मरा। ऐसी घटनाओंके कारण कालरोंका बनना बन्द हो गया। परन्तु इस स्वार्थी व्यापारका सत्यानाश हो कि उसी सेलुलोइडकी बनी बड़ी सुन्दर चूड़ियोंका बाजारमें प्रचार हो रहा है और हमारी देवियाँ सुहागके इस चिह्नको शौकसे पहन रही हैं। इन पहननेवालियोंमें शायद ही कोई ऐसी हों जिन्हें आग, दियासलाई, दीपशिखा आदिसे काम न पड़ता हो। यह भारी जोखिम हर चूड़ी पहननेवालीके सामने है। और दुर्भाग्यसे अगर चूड़ीमें आग लगी तो यह बुझनेवाली आग नहीं है। इससे जीतेजी चिताप्रवेशवाला दृश्य उपस्थित हो सकता है। एक हाथकी लगी आगको घबराहटमें बुझानेको दूसरा हाथ फटसे लग जायगा और उसकी चूड़ियाँ भी जलने लगेंगी। बदनके कपड़ोंमें आग लग जायगी और

"यह आग वह नहीं जिसे पानी बुझा सके"

बेचारी चूड़ियाँ पहननेवाली इस चुड़ैलके पीछे सती ही हो जायँगी। जो चाहे चूड़ियाँ मोल लेकर एक दियासलाई लगाकर जला ले और देख ले। जलनेको तो लाखकी चूड़ियाँ भी जल जाती हैं, परन्तु सेलुलोइडक चूड़ियोंकी तरह उनमें ऊँची लपटें नहीं निकलतीं और वह झट बुझ जाती हैं। इसीलिये सावधान, सेलुलोइडकी चूड़ियोंसे सावधान।

—रा० गौड़

सहयोगी विज्ञान

(चयन)

१—जमीदारी प्रथाकी कथा

(लेखक—श्रीयुत पं० वंशीधर मिश्र, एम्० ए० एल्-एल्० बी)

धर कुछ समयसे जमीदारी प्रथाको उठा देनेके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें लेख निकले हैं। जमीदारी प्रथासे हानि-लाभपर विचार करनेके पूर्व जमीदारी-प्रथाके इतिहास और विकासपर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है।

इस विश्वव्यापी आर्थिक संकटके पूर्व भूमिके मूल्यमें अत्यधिक वृद्धि हुई थी। इधर ४-५ वर्षोंमें भूमिके मूल्यमें कमी हुई है। जिस किसीके पास चार पैसे हो जाते थे, वह जमीदारी खरीदनेके लिये व्यग्र हो उठता था। किसी उद्योग-धन्धेमें धन लगानेके बजाय लोग जमीदारी खरीदनेके लिये ही आतुर हो उठते थे। पूंजी लगानेकी यह पद्धति बिलकुल नयी है और ब्रिटिश शासनके परिणामस्वरूप अस्तित्वमें आयी है। अंगरेजी शासनके स्थापित होनेके पूर्व पूंजी लगानेका यह ढंग भारतमें न था।

जमीदारी खरीदकर भूमिमें पूंजी लगानेसे लाभ पर्याप्त होता था। एक सरकारी रिपोर्टके अनुसार पंजाबमें खेती न करनेवाले भूमि-स्वामीको लगभग तीन प्रतिशत लाभ प्रतिवर्ष होता है। उस कमेटीकी रायमें भूमिमें धन लगाना अन्य प्रकारसे धन लगानेसे कम लाभ-प्रद नहीं है। इसका कारण भूमिके मूल्यमें वृद्धि है। सन् १९१९ और १९२९ के बीचमें भूमिके मूल्यमें १०० प्रतिशत वृद्धि हुई है। इस मूल्य-वृद्धिको तथा तीन प्रतिशत प्रतिवर्ष आयको ध्यानमें रखते हुए सन् १९१९ में १००) भूमिमें जमीदारी खरीदकर लगानेसे और सन् १९२९ में बेंचनेसे लाभ १३०) अर्थात् १३) प्रति वर्ष हुआ। यह लाभ बैंकमें रुपये डिपाजिट करनेसे कहीं अधिक है।

आइनेअकबरीमें मकानों, अन्नों, सब्जियों तथा अन्य वस्तुओंके मूल्यकी दर दी हुई है पर भूमिके मूल्यका कहीं वर्णन नहीं है। मुगल-शासन-कालके भारतके किसी आर्थिक इतिहासमें भूमिका मूल्य नहीं दिया हुआ है। इससे मालूम होता है कि उस समय आजकी भाँति भूमि बेंची या खरीदी न जाती थी।

इस बातकी पुष्टि सन् १६ वीं और १७ वीं शताब्दीमें प्रचलित भूमि जोतनेके प्रकारसे भी होती है। मुगल बादशाहोंके समय कृषक-प्रथा आजसे बिलकुल भिन्न थी। यू० पी० में आज कल ७५ प्रतिशत भूमि काश्तकारोंद्वारा जोती-बोयी जाती है और भूमिकी उपज तीन हिस्सेदारोंमें विभक्त होती है—काश्तकार, जमींदार और सरकार। पर अकबरके समयमें भूमिकी उपज केवल काश्तकारों और सरकारके बीचमें ही बाँटी जाती थी। विख्यात विद्वान् मूरलैण्डको १४ वीं शताब्दीमें, मुगलोंके शासनके पूर्व, भारतमें केवल लगान देनेवाले कृषकोंके अस्तित्वका प्रमाण नहीं मिला है। आईनेअकबरीके पढ़नेसे भी यह ज्ञात होता है कि काश्तकारों और सरकारके बीच कोई आजकी भाँति मध्यस्थ न था। अकबरका खेत जोतनेवाले काश्तकारोंसे सीधा सम्बन्ध था। यह निश्चित है कि १६ वीं और १७ वीं शताब्दीमें उत्तर भारतमें भूमिके जोतनेवाले ही थे, आजकी भाँति गैरकाश्तकार भूमिके स्वामी न थे।

अकबरके समय काश्तकारोंसे लगान वसूल करनेके लिये ठेकेदार न थे। लगान वसूल करनेवालोंको सरकारी खजानेसे वेतन मिलता था। बादको अकबरने अपने शासन-कालके अन्तिम भागमें कहीं-कहीं वेतन देनेके स्थानपर कुछ प्रदेश भूमि दे दी थी। पर इसका अर्थ यही था कि वे अक्सर भूमिकी उपजका सरकारका भाग ही पाते थे, उससे अधिक नहीं। सरकारका भाग सारे राजमें निश्चित था। सरकारके भागको वसूल करनेके लिये ठेका देनेकी प्रथा अकबरके निर्बल उत्तराधिकारियोंके समय प्रचलित हुई और जो अपने निकृष्ट रूपमें दक्षिण भारतमें व्यवहृत हुई।

अकबरके समयके भूमि पानेवाले अफसरों और आजके

जमीदारोंमें बड़ा अन्तर है। वे अफसर बादशाहके नौकर होते थे, क्योंकि उनको बादशाहकी जरूरतके लिये सेना रखनी होती थी। युद्धके समय वे अपने सैनिकोंके साथ रणभूमिपर आ जाते थे। वे सरकार और किसानके बीचमें दलाल न थे, सरकारके प्रतिनिधि थे। दूसरे उनको अन्य महत्वपूर्ण कर्त्तव्योंका भी पालन करना पड़ता था। इसके विपरीत वर्तमान जमीदार भूमिकी उपजके भागी दलालके रूपमें हैं और सरकारके प्रतिनिधि नहीं है। जमीदार अब कोई कर्त्तव्य पूरा नहीं करते हैं। वे अफसर काश्तकारोंकी रक्षा करते थे और आज काश्तकार (पुलीस और फौजमें भरती होकर) जमीदारोंकी रक्षा करते हैं। आजकी अवस्था उस समयसे बिलकुल विपरीत है।

जमीदारी भूमि पूँजी लगानेका एक उपाय होनेसे आयका एक जरिया है, जिसमें, किसी प्रयत्न या परिश्रम-की जरूरत नहीं होती। यह समझना भ्रम होगा कि जब एक मनुष्य भूमिमें १० हजार रुपया लगाता है तो भूमि-की किसी प्रकारकी उन्नति होती है। वह मनुष्य जो १० हजार रुपया भूमिमें लगाता है वह तो भूमिका मूल्य होता है। भूमिकी उन्नति और बात है और उसमें पूँजी लगाना और। और उससे लाभ भी अलग होता है। काश्तकार हल, बैल, बीज, खाद आदि सबका प्रबन्ध करता है और मालगुजारीकी रकमके अतिरिक्त और धन देता है।

जमीदारोंमेंसे बहुत ऐसे हैं जिन्होंने जमीदारीकी भूमि स्वयं नहीं खरीदी है किन्तु विरासतन पायी है। ऐसी अवस्थामें भूमिसे विशुद्ध आय भू-स्वामियोंको राष्ट्रकी ओरसे भेंटमात्र होती है और जिसके बदलेमें वे कोई सेवा राष्ट्रकी नहीं करते। विरासतकी प्रथा और नियमकी बुराई इस स्थल-पर निकृष्ट रूपमें देखनेको मिलती है, क्योंकि अभी हम देखेंगे कि भूमिकी उपज उत्पत्ति साधकके रूपमें पूँजीके असदृश है।

जब गैर काश्तकार स्वामी भूमि खरीदता है तो वह अपनी पूँजी भूमिमें नहीं लगाता है। भूमिमें धन लगाना पूँजी मालसे भिन्न है। एक मनुष्य एक एकड़ भूमिमें एक हजार रुपया लगानेसे अर्थात् एक एकड़ भूमि एक हजार रुपयेमें खरीदनेसे उससे कोई लाभ नहीं पाता है। यदि क्रेता स्वयं उस भूमिको न जोते न काश्तकारोंको जोतनेको दे तो वह भूमि कुछ उत्पन्न न करेगी। काश्तकार बैल, हल आदिके रूपमें पूँजीकी सहायतासे कृषि—सम्पत्ति उत्पन्न करता है। भू-स्वामी (जमीदार) उस सम्पत्तिके एक बड़े भागका दावेदार भूमिको किरायेपर देकर होता है, जिसे वह भूमिके मूल्यपर प्रति शतक समझता है। पर यह बात कि एक मनुष्यने भूमिके लिये मूल्य दिया है बहुत कम महत्व रखती है। अनेक जमीदारोंने अपनी भूमिके लिये कुछ भी नहीं दिया है और इसपर भी भूमिपर उनका स्वामित्व उनके लिये आयका साधन है। गैर काश्तकार व्यक्ति जो भूमिको खरीदता है स्वभावतः भूमिसे अपनी (Net income) विशुद्ध आयको अपनी पूँजी लागतपर रिटर्न समझता है पर आयका वास्तविक साधन उस मनुष्यका श्रम है जो भूमिपर अपने पासकी पूँजीसे काम करता है।

यह कहा जा सकता है कि एक हजार रुपये किसी अन्य उद्योग-धन्धेमें लगानेसे या कर्ज देनेसे या बैंकमें जमा करनेसे कुछ आय होती है इसलिये जमीदार भी भूमिको खरीदनेके लिये लगायी गयी पूँजीपर कुछ रिटर्न पानेका स्वत्व रखता है। इसका उत्तर यह है कि भूमि प्रकृतिका मुक्त हस्तदान है और भूमि अपुनरुत्पादनीय है, पूँजी मानव-श्रमसे बनती है, वह जमीदारके अस्तित्वपर या भूमिके मूल्य दिये जानेपर निर्भर नहीं करती। जमीदारी प्रथाके विनाशके साथ भूमि नष्ट न होगी। सच बात तो यह है कि जमीदारी प्रथाके दूर होते ही काश्तकारको अपने श्रमका पूरा पुरस्कार–उपजके मिलनेसे कृषि उत्पत्तिमें वृद्धि होगी, क्योंकि जब काश्तकार अपने श्रमकी उपजको एक ऐसे शख्सके हाथ बाँटता है जो स्वयं श्रम नहीं करता है तो वह काश्तकार अपने कामको पूरे मनसे नहीं करता है।

गैरकाश्तकार भू-स्वामीकी आय सामाजिक लाभकी दृष्टिसे अनावश्यक है। वह शोषणकर्त्ता है, क्योंकि वह दूसरेके श्रमके फलपर निर्भर करता है।

दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि जमीदारसे कृषि और कृषकोंको कोई लाभ नहीं पहुँचता है पर वर्तमान अन्यायपूर्ण व्यवस्थाके अनुसार वह भूमिकी सम्पूर्ण (net income) विशुद्ध आयके एक महान अंशका उपभोग करता है।

पंजाबके कृषकोंकी अवस्था अन्य प्रांतोंके कृषकोंकी अवस्थासे बहुत अच्छी है। पंजाबके कृषिविभागके मि० स्टीवर्टने गवेषणा करनेके बाद लिखा है कि "लायलपुर जिलेमें बटाईके अनुसार काश्तकार एक एकड़ भूमिपर अपने श्रमके बदलेमें औसतन १९) प्राप्त करता है पर जमीदार ३०) पाता है।" अन्य जिलोंमें काश्तकार और भी कम पाता है। विद्वानोंने हिसाब लगाकर बताया है कि काश्तकार अपने सख्त श्रमसे जहाँ एक रुपया उपार्जन करता है जमीदार वहाँ उसका तीन गुना।

विद्वानोंने यह भी हिसाब लगाया है कि पंजाबमें जिन जिलोंमें नहरसे सिंचाई होती है वहाँ एक जवान श्रमीकी आय औसतन एक दिनमें चार आनासे अधिक नहीं होती है। जहाँ सिंचाई कुआँसे होती है वहाँ एक जवान श्रमीकी आय और कम होगी। इस आयकी तुलना अकबरके समयसे होना उचित है।

ठीक-ठीक तुलना करना तो सम्भव नहीं है, क्योंकि अकबरके समयके काश्तकारकी आयका हमें पता नहीं है। आईने-अकबरीमें मजदूरोंकी मजदूरीकी शरह दी हुई है। एक निकृष्ट बढ़ईको अकबरके समयमें दो दाम नित्य प्रति मिलते थे और प्रथम श्रेणीके बढ़ईको सात दाम प्रति दिन। सबसे कम मजदूरी उस समय गुलामको एक दाम प्रति दिनके हिसाबसे मिलती थी। एक रुपया ४० दामोंके बराबर होता था। अगर यह मान लिया जाय कि अकबरके समयका किसान सबसे नीची श्रेणीके बढ़ईसे अच्छी हालतमें न था पर साथ ही गुलामसे भी खराब अवस्थामें न था, तो कोई एतराज किसीको न होगा। विद्वानोंने यह सिद्ध कर लिया है कि अकबरके समयमें रुपयाकी क्रयशक्ति आजसे १३ गुना थी। इस हिसाबसे अकबरके समय १ दाम रोज पानेवाला श्रमी आज ५=) पावेगा। इससे यह निष्कर्ष निकला कि अकबरके समयके निकृष्ट गुलामकी आर्थिक अवस्था पंजाबके काश्तकारकी आर्थिक अवस्थासे कहीं अच्छी थी, जबकि पंजाबकी कृषि भारतवर्षमें सबसे अधिक सम्पन्न मानी जाती है।

जब भारतमें सबसे अच्छी कृषिवाले प्रांत पंजाबके काश्तकारकी आय ३५० वर्ष पूर्व अकबरके समयके निकृष्ट गुलामकी आयसे कम है, तो अन्य प्रांतोंके काश्तकारोंकी आर्थिक अवस्था कितनी गिरी हुई है, यह सहजमें अनुमान किया जा सकता है।

किसानोंकी इस आर्थिक दुरवस्थाके कई कारण हैं पर उनमें सबसे प्रमुख स्थान जमीदारी प्रथाको प्राप्त है। बगैर जमीदारी प्रथाके विनाशके किसानोंकी आर्थिक अवस्था सुधरना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। —प्रतापसे

२—मनुष्य और सभ्यताका प्रारम्भ

सितम्बरके पहले पक्षमें डा० राधाकमल मुकर्जीने लखनऊ युनिवर्सिटीमें मनुष्य और सभ्यताके प्रारम्भपर भाषण दिया। उन्होंने कहा कि लगभग १० लाख वर्ष पहले मनुष्य और उसके बाद हिमालयकी उत्पत्ति हुई। जमीनके ऊपर उठते ही उसका तापमान कम हुआ और जंगल कम हो गये। बन्दरों और अर्ध मनुष्योंको नीचे आना पड़ा। खतरनाक जानवरोंसे बचनेके लिये मनुष्यने केवल बुद्धिसे ही नहीं एकतासे भी काम लिया। प्रारम्भिक परिवार इधर उधर घूमा करते थे। शिकार करनेके पश्चात् काफी समयके बाद लौटकर लोग प्रसन्न होते थे। उसी समयसे नाच और गाने की उत्पत्ति हुई। बर्फके युगके बाद मौसिमी विभाजन वर्तमान रूपमें परिवर्तित हो गया और घासके मैदानोंके ऊपर जंगल पैदा हो गये। ऐसी अवस्थामें घासके मैदानोंके लोगोंने जानवर पालना और चराना तथा खुले मैदानोंमें खेती करना शुरू कर दिया। जंगलोंको हटानेकी आवश्यकता पड़नेपर लोगोंने आगका आविष्कार किया जिससे सभ्यतामें काफी उन्नति हुई। अग्निसे बहुत बड़ी सामाजिक उन्नति हुई। किसानोंने आगे बढ़कर दलदलोंकी जमीन भी ठीक की। नदियों तथा नालोंके पानीका विभाजन कर खेतीके काममें लानेके साथ ही साथ गाँवोंकी उत्पत्ति हुई। नदियोंके मार्ग तथा बाढ़ोंके समयका अनुमान करनेके लिये चन्द्रमा की उपासना और ज्योतिषका जन्म हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे लोगोंने कई प्रकारके देवी-देवताओंको पूजना शुरू किया। जंगलों और घासके मैदानोंकी सभ्यतामें अन्तर पड़ने लगा। मनुष्योंकी संख्या बढ़ी और इसके साथ-ही-साथ खेती तथा व्यवसायको बढ़ानेके लिये जंगल काटे जाने लगे जिसके फलस्वरूप आज बड़े-बड़े रेतीले मैदान नजर आते हैं। प्रकृति और अन्य चीजोंके साथ मनुष्यका सम्बन्ध बढ़नेके साथ-ही-साथ सभ्यता भी बढ़ती गयी। —प्रतापसे

३. मनुष्यकी आयु कितनी हो सकती है ?

डा० रविप्रतापसिंह श्रीनेतने २३ सितम्बरके "प्रताप" में इस शीर्षकके साथ एक उपयोगी लेख दिया है। उसका आवश्यक अंश हम "विज्ञान"के पाठकोंके लाभार्थ यहाँ देते हैं— —रा० गौ०

मनुष्योचित आयु पानेके लिये प्रकृतिका अनुशीलन पहली बात है, फिर अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों-का स्वस्थ संगठन। इसके लिये हमें शरीरगत रक्त-प्रणा-लियों तथा शिराओंकी सफाई करनी चाहिये तथा समुचित व्यायामकी सहायतासे उनके भीतर पाये जानेवाले मैल तथा विषाक्त वाष्प-रूपी पदार्थोंको निकालना चाहिये। यह क्रिया रोमछिद्रोंद्वारा निकलनेवाले दुर्गन्धित (Sweat) पसीने-पर निर्भर है। यह ध्यान रहे कि शरीरका प्रत्येक भाग इस तरहकी वर्जिशसे बचने न पाये, अन्यथा एक स्थानकी विषाक्त चीजें दूसरे निष्क्रिय स्थानमें जाकर एकत्रित हो जावेंगी और शारीरिक तथा मानसिक व्याधियोंका आक्रमण न रुक सकेगा। दूसरी मार्केकी बात है आँतोंकी सफाई तथा उनका नरम रहना। यह तभी सम्भव है जब हमारा हाजमा दुरुस्त हो। हाजमा ठीक रखनेके लिये साधारण तथा सात्विक भोजनका होना जरूरी है। खाये हुए अन्नको पचानेके लिये शारीरिक व्यायामकी जरूरत है। यह व्या-याम मनुष्यकी व्यक्तिगत प्रकृति, उसके व्यवसाय, मौसम तथा उस स्थानकी जलवायुपर निर्भर है। खाद्य-पदार्थोंमें हरी शाक-भाजी, फल तथा जल्द हजम हो जानेवाली चीजें रहनी चाहिये।

पेटकी तमाम मशीनरीको सात दिनमें एकदिनके लिये बिलकुल आराम देनेकी आवश्यकता है। इस आरामके दिनके पहले या बादमें उस छुट्टीके दिनकी कसर निका-लनेकी गरजसे भोजन अधिक न करना चाहिये। यदि किसी दिन पेटपर व्यभिचार या जियादती करनेका मौका आ ही जावे तो यह सोचकर बैठना चाहिये कि पेट तो मेरा ही है और इसकी रक्षा करनेमें मेरी ही रक्षा होगी !

कब्ज हटानेके लिये जहरीले रेचनों तथा जुलाबोंकी जरूरत मुतलक नहीं, उस समय या तो उपवास रहना चाहिये अथवा तुलसीके पत्तीकी चाय बनाकर पीना चाहिये। अदरख (ginger) और काला नमक (Black salt) थोड़ासा खानेपर काम चल जाता है। अमीर लोगों-को, जो हमेशा ही कब्जके शिकार रहते हैं, (Paraffine Liquid) पैराफिन लिक्वेड का इस्तेमाल करना चाहिये। बच्चोंके लिये तो Paraffine एक अद्भुत औषधि है। इससे कभी भी नुकसान नहीं होता। हां, यह बात जरूर है कि अति हर चीजकी नुकसान पहुँचानेवाली होती है। यदि रोज ही इसका प्रयोग किया गया तो हानि होना अवश्य-म्भावी है। परन्तु यह बात मानी हुई है कि दूसरे जुलाबोंसे यह लाख दर्जे अच्छा होता है। पीनेके लिये शुद्ध ठण्डे जल, फलोंके रस अथवा (Butter-Milk) तक्रको छोड़-कर और कोई चीज न पीनी चाहिये। बीड़ी, पान, तम्बाकू शराब आदिका पूरा बहिष्कार करना लाजिम है।

शरीरके अतिरिक्त मन, मस्तिष्क और हृदयको ठीक रखनेकी बड़ी आवश्यकता है। यह ध्यान रहे कि मन ही सारे शरीरपर शासन करता है और इसलिये ही उसका स्वस्थ तथा प्रसन्न रहना पहली बात है। मानसिक शक्तियों-के पूर्ण विकासके लिये सत् साहित्य, सत्संग तथा सत् व्यायामकी जरूरत है। मानव शरीरपर सबसे अधिक तथा विनाशकारी प्रभाव चिंताओंका होता है। हमारे मन तथा शरीरके स्वास्थ्यका असली श्राद्ध ये चिंतायें ही करती हैं। कुटुम्ब या परिवारका कोई भी जिम्मेवार व्यक्ति ऐसा न होगा जिसे चिंतायें न घेरती हों और जो उनके विना-शकारी प्रभावका कायल न हो किन्तु, तिसपर भी जहाँ-तक हो सके, उनसे दूर रहना ही श्रेयष्कर है।

डिफनेस्सीन ऑयल

जिन भाइयों को अधिक क्वनैन, जमाल गोटा (जैपाल बीज) संखिया वगैरः अत्यन्त गर्म खुश्क चीजें खाने से कानों में खुश्की पंहुच कर बहरापन होजाता है और कानों में ज्यादा पपड़ीदार सूखी मैल बनती रहती है, या कान में सूखा दर्द रहता है कान की भिल्ली नरम पड़ जाती है, और किसी तिनका का स्पर्श भी असह्य होता है, उनके लिये यह तेल अत्यन्त लाभदायी है।

सेवन विधि--रात्री को सोते समय शीशी को हिला कर इस तेल की चार बूंद कान में डाल कर सो जांय, तेल कान में ही पड़ा रहे। दूसरे दिन दूसरे कान में छोड़े। इस तरह कुछ दिन करने पर एक तो कान में भिल्ली या मैल का बना रहना बंद हो जाता है, दूसरे सुनाई देने लग जाता है। कुछ दिन के सेवन से कान खुल जाते हैं। मूल्य १)

कॅटारीन

दमा की बीमारी, पुरानी खांसी, या किसी और फेफड़े की बीमारी के कारण जब श्लेष्म अत्याधिक निकलती हो, सुबह के समय सेरों बल्गम खारज होती हो, और बल्गम की अधिकता से रोगी अधिक कमजोर हो चुका हो तो कॅटारीन के सेवन से अजहद लाभ होता है। पहिले ही दिन बल्गम घट कर बहुत कम होजाती है। बल्गम घटने पर रोगी को बहुत आराम मिलने लगता है।

मात्रा--चौथाई ग्रेन पान पत्र पर लगाकर खायें।

फार्मूला--आर्सेनिक सल्फर मिश्रित वनस्पति तेल।

पथ्य--खटाई, तेल, कब्जकारी वस्तुएं मूल्य १)

आस्थमीन

यह दवा दमा के दौरे पर अच्छा काम देती है तथा दो तीन मास नित्य सेवन करते रहने पर दमा जाता रहता है।

सेवन विधि--१ गोली सुबह शाम पानी के साथ सेवन करें

मूल्य १)

डायसेण्ट्री पिल्स

यह औषधि पेचिश के लिये अत्यन्त लाभकारी है। नई बीमारी में सेवन से पहिले हलका सा जुलाब जरूर दें। जुलाब होजाने के तीन चार घण्टे बाद दही, जल या तक्र के साथ सेवन करें। दिन में दो दफा दें सुबह शाम।

पथ्य पेचिश के दिनों में दही से व छाछ से चावल खायें। मूल्य १)

Prurigon

नई खारश, पुरानी खारश, सूखी खारश, दाद, मसादाद मण्डल कुष्ठ, चर्म दल कुष्ठ आदि जिल्दी बीमारियों मे यह दवा अत्यन्त मुफीद है।

सेवन विधि--१ औंस कड़वे तेल में मिलाकर खूब घोटें, जब बारीक हो जाय तो ४ औंस तेल मिलाकर रख लें। इसकी खूब मालिश करें और एक घंटे के बाद स्नान कर डालें। दिन में एक या दो बार इस तरह मालिश करें। मूल्य १)

मिलने का पता—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर।

चिकित्सा संबंधी उपकरण

सूचिकाभरण पिचकारी
(Injection syringe)
टीका लगाने, सुई द्वारा त्वचा के भीतर दवा पहुँचाने की पिचकारी । दो शी० की० २), ६॥) ८।)

शरीरताप-मापक (Thermometer)
ज्वीलका १।) साधारण ॥)

दवाइयाँ मिलाने की छुरी (Spatula)
बढ़िया ।॥) साधारण ॥)

फुफ्फुस परीक्ष्ययन्त्र
(Stethoscope)
साधारण ३) मध्यम ६॥) उत्तम ८॥)

द्रव औषध-मापक
ग्लास १ औं० ≠)
२ औं० ≡)

औषध तोलनेका
अँगरेजी काँटा
मय बाँटके २)

कान धोने की पिचकारी साधारण २), बढ़िया बड़ी ६)

बस्ति यन्त्र रबर की नाली टोंटी सहित, अनेमलका १।।)
काँच का २।।)

आँख में दवा डालने का ड्रापर
≠) दर्जन

चीनी के खरल
२ नं० का १) ४ नं० २।।)
६ नं० ५॥), ८), १०)

लोहेके खरल
१ फुट व्यास गहराई ६ इंच, मू० ८।।)

नोट—इससे भिन्न प्रत्येक चिकित्सा में काम आनेवाली डाक्टरी औषधियाँ और यंत्र हमारे यहाँसे किफायतके साथ मिल सकते हैं । प्रत्येक अंग्रेजी औषध और यंत्र का आर्डर देते समय चौथाई मूल्य पेशगी अवश्य भेजें ।

मैनेजर, दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अमृतसर

❀ सफ़री औषध पेटियाँ ❀

नये डिजाइन, नये नमूने

टेबल मेडीसिन बक्स (मेज़ी औषध पेटी) नं० १—इस प्रकारकी पेटी अभीतक किसीने नहीं बनायी। इसके बनानेका श्रेय पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी को ही है। यह पेटी शिखराकार है इसमें चारों ओर शीशियाँ सजाई जाती हैं इसका साइज १४ × ९॥ × ८ इञ्च है। इसकी सुन्दरता देखते ही बन पड़ती है। इसके ब्लोकको देखें, कैसा सुन्दर डिजाइन है। ऐसे सुन्दर और इतने सस्ते डिजाइन आपको अन्यत्र नहीं मिल सकते। इसमें २० शीशी चपटी १ औंस की, १ औंस की १६ शीशी और ४ औंस की गोल ५ शीशी रखने का स्थान है।

बगैर शीशीके	७)
शीशी सहित	८॥)

विषगाभरण पेटिका

टेबल मेडासिन बक्स (मेज़ी औषध पेटी) नं० २—यह पेटी भी मेज़पर रखनेकी है, इसका साइज १४½ × ९½ × ८½ इञ्च और आकार टाइप राइटर के समान है। इसमें शीशियाँ सीढ़ियों के तुल्य चढ़ावमें गेलरी की तरह रखी जाती हैं। मेज़ पर इसकी शोभा बहुत उत्तम लगती है। ऐसी पेटी हरएक वैद्य या डाक्टरको अपनी मेज़की शोभा बढ़ानेके लिये जरूर रखनी चाहिये।

टेबल मेडीसिन बक्स नं० २

इसमें ४ औंसकी ७ शी०, २ औंसकी ८ शी०, १ औंस की १४ शी० और ½ औंसकी ९ शी० रखनेका स्थान है। बगैर शी० ६॥), शीशी युक्त ८)

भिषगाभरण पेटिका—यह पेटी देवदारकी बनी और बढ़िया पालिशसे अलंकृत है। इसे देखते ही तबीयत फड़क उठती है। साइज १३ × ८ × ६ इंच।

इसमें शीशियोंकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। यह वैद्यकी सजी सजाई लेबोटरी है। पेटी खड़ी हो या पड़ी शीशियाँ सीधी रहेंगी। १ औंसकी आसवकी १६ शीशियोंके लिये स्थान बने हुए हैं। २ औंसकी ६ गोल शीशियें चूर्णके लिये सजाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त तेल, भस्म इत्यादि के लिये तीस शीशियों के लिये व्यवस्था है। वजन २ सेर ८ छ० बिना शीशीके ७) शीशी युक्तका ८॥)

सिद्धौषधिमंजूषा नमूना १—यह पेटी ७ इंच चौड़ी, १०½ इञ्च लम्बी और ४ इञ्च ऊँची है। इसमें दो ड्रामकी होम्योपैथिककी ७७ शीशियोंको तरतीबवार रखनेके लिये अत्युत्तम प्रबन्ध है। बक्स बढ़िया देवदारसे बनाया गया है। रेक्सीन क्लाथ, बढ़िया हैंडल ताला इत्यादिसे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। इस पेटीका वजन सिर्फ १३ छटाँक है—तिस पर भी मूल्य सिर्फ—२।)

मिलने का पता—पी० ए० वी० फार्मेसी अमृतसर

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

प्रवास पेटिका

यह वही औषधियों की **प्रवास पेटिका** है जिसकी मांग वैद्य समाज देर से कर रहा था। दयारकी बढ़िया लकड़ीसे बनी और (Rexin Cloth) रेक्सीन क्लाथ से मढ़ी है।

इसे फोलियो लॉक्स (Folio Locks) लगाये गये हैं। उठाने में हल्की, देखने में सुंदर, अपने ढंग की अनूठी वस्तु है। इस में ५-६ दर्जन बढ़िया शीशियां तरकीब वार रक्खी गई हैं खूबी यह है कि हरएक रस तथा गुटिका आठ २ माशे की मात्रामें इसमें रखिये फिर आपको बीमार देखने जाते समय औषधालय में बार २ नहीं जाना पड़ेगा। यह अन्य कार्यालयों की बनी हुई पेटिकाओं की तरह भारी, कच्ची, तथा ट्रंक की तरह असुविधा जनक नहीं। इसका साइज ९×५×६॥ इंच के लगभग है। थर्मामीटर, कैंची, चाकू रूई, पेट्टी आदिके लिये अलहदा खाने बने हुए हैं। **आज ही पत्र लिखिये।**

कीमत शीशीयों वाली पेटिका की ८) बगैर शीशियों के ७)

नोट—जिन सज्जनों ने **प्रवास पेटिका** के बारेमें पूछ ताछ की है उन्हें इस कारण उत्तर नहीं दिये जासके थे, क्योंकि पेटिकाएँ कारखाने से नहीं आई थीं। जिन सज्जनों को आवश्यकता हो अब पत्र व्यवहार करें।

मिलने का पता—**मैनेजर दी पी. ए. वी. फार्मेसी,**

अमृतसर।

भारी रियायत ! भारी रियायत !!

हम वैद्य व्यापारियों के लिये जो २ थोक माल बारम्बार तय्यार करते हैं, उन में से विशेष रूप से इस समय भारी मात्रा में च्यवन प्राश, लाक्षादि तेल और बसन्त मालती बनाये जारहे हैं। जो व्यक्ति कम से कम २० सेर च्यवन प्राश, और १० सेर लाक्षादि तेल तथा ५ तोला वसन्त मालती खरीदेंगें उन को तीनों वस्तुयें निम्न लिखित भाव पर दी जायगी।

१. **च्यवन प्राश** (शार्ङ्गधर) २० सेर लेने पर ५०) म.
,, ,, ,, १० ,, ६०) ,,
,, ,, ,, ५ ,, ७०) ,,

२. **लाक्षादि तेल** (शार्ङ्गधर) १००) मन
३. **स्वर्णवसन्त मालती** (योगरत्नाकर) ४०) छटांक

मैनेजर

॥ आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थ माला का पहला पुष्प ॥

आसव विज्ञान

छप गया।

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेद का एक चमत्कार पूर्ण अंग आसवारिष्ट का निर्माण क्रम हमारे पास कितना अपूर्ण रूप में रह गया है। सौ बार बनाइये कठिनता से चार दो बार खराब होने से बचता है। इसका मुख्य कारण है हमारी प्राचीन रीति का लुप्त हो जाना। इसी लुप्त प्रायः विधि को स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से पुनः प्राप्त किया है और उसे आधुनिक विज्ञान से परिमार्जित कर उक्त पुस्तक में सरल स्पष्ट रूप में अङ्कित किया है। स्वामी जी ने इस पुस्तक को दस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् लिखा है। मूल्य केवल १)

पता—आयुर्वेद-विज्ञान-ग्रन्थ-माला अमृतसर।

॥ आयुर्वेद-विज्ञान ग्रन्थ-माला का दूसरा पुष्प ॥

क्षार-निर्माण-विज्ञान

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति में भिन्न २ वनस्पत्योद्भव क्षारों का काफी प्रयोग होता है। किन्तु हम देखते हैं कि वैद्यों द्वारा बनाये हुए क्षार प्रायः मैले तथा धूसर वर्ण होते हैं और देखने में चित्ताकर्षक नहीं होते।

हमने बड़े परिश्रम से जिस क्षार-निर्माण विधि का अनुभव किया है, उसको वैद्यों के लाभार्थ क्रम-बद्ध कर दिया है। इसमें भिन्न २ क्षारों के गुण और वज्रक्षार आदि के बनाने का क्रम तथा क्षारों का उपयोग इत्यादि विषय का खूब खुलासा वर्णन है। मूल्य प्रति पुस्तक ।=)

पता—आयुर्वेद-विज्ञान-माला अमृतसर।

विषय-सूची

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌के पदाधिकारी

संवत् १९९०–१९९१ वि०

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये ।

२—विज्ञान, विज्ञानपरिषत्, विज्ञापन तथा वैज्ञानिक साहित्यके प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र तथा मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये ।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्द, दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिये ।

दत्तात्रय लक्ष्मण निघोजकरने श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयागके लिए वृन्दावन विहारीसिंहने विज्ञान कार्यालय काशीसे प्रकाशित किया ।

स्थायी ग्राहकोंको विशेष सुभीता

वैज्ञानिक साहित्य तीन चौथाई मूल्यमें

पढ़िये ! पढ़िये !

विज्ञानके प्रचारके लिये हमने निश्चय किया है कि स्थायी ग्राहकोंको हम पौनी कीमतपर सभी पुस्तकें देंगे। इसके लिये नियमावली नीचे पढ़िये।

(१) जो सज्जन हमारे कार्य्यालयमें केवल १) पेशगी जमा करके अपना नाम स्थायी ग्राहकोंमें लिखा लेंगे, उन्हें वैज्ञानिक साहित्यकी वह सभी पुस्तकें जो विज्ञानपरिषत् कार्यालय प्रयाग तथा आयुर्वेद-विज्ञानग्रंथमाला कार्य्यालय अमृतसर प्रकाशित करेंगे, तीन चौथाई मूल्यपर मिल सकेंगी।

(२) स्थायी ग्राहक बननेकी तारीखके बाद जितनी पुस्तकें छपती जायँगी उनकी सूचना विज्ञानमें छपती जायगी और इस सूचनाके छपनेके एक मासके भीतर यदि स्थायी ग्राहक मना न करेगा तो उसके नाम वह पुस्तकें वी० पी० कर दी जायँगी और ग्राहकको वी० पी० छुड़ा लेना पड़ेगा। न छुड़ानेपर हानिकी रकम उस रुपयेमेंसे मुजरा कर ली जायगी।

(३) स्थायी ग्राहकको अधिकार होगा कि पहलेकी छपी चाहे जो पुस्तकें पौन मूल्यपर ले ले।

(४) जो सज्जन विज्ञानके ग्राहक होंगे उन्हें स्थायी ग्राहकका अधिकार केवल ॥) जमा करनेपर मिल जायगा और उनका नाम और पता स्थायी ग्राहकोंमें लिख लिया जायगा।

(५) विज्ञानकी पुरानी फाइलें जो अलभ्य हैं इन नियमोंके अन्तर्गत नहीं हैं।

(६) जो पुस्तकें स्टाकमें ५० से कम रह जायँगी, वह नये संस्करणके छपनेतक इन नियमोंसे मुक्त रहेंगी।

मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग।

वैज्ञानिक साहित्यकी सूची

एक तो इसीकी पीठपर देखें। आयुर्वेद-विज्ञान-ग्रंथमालाकी विस्तृत सूची इसीअंकमें दि पो० ए० वी० फारमेसी अमृतसरके विज्ञापनमें पढ़िये।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ४० } प्रयाग, वृश्चिकार्क, संवत् १९९१। नवम्बर, सन् १९३४ ई० { संख्या २

मंगलाचरण

जुगनूसे उद्योत जगत अनगिनत दिखाये,
रवि शशि भी अति तुच्छ तिमिर रजकन ठहराये,
मानव-गौरव-चित्र वास्तविक ही दरसाये,
ज्ञान-शिखामें अहंकार औ' दाप जलाये,
तत्वज्ञानीके मार्गको,
जिसने आलोकित किया,
जय जय जिसने अहमिति मिटा
आत्मरूप दिखला दिया ।७।४।

—रा० गौ०

सिनेमाके बोलते-चालते चित्र कैसे बनते हैं ?

(ले० श्री भगवानदास तोषनीवाल, प्रयाग-विश्वविद्यालय)

बोलते-चालते चित्र (Sound Motion Pictures) जिनको अकसर टाकीज़ भी कहते हैं वैज्ञानिकोंके अनवरत परिश्रम एवं प्रयोगोंका परिणाम हैं। इनकी लोकप्रियता देखते हुए उनको हार्दिक धन्यवाद देते ही बन पड़ता है। कुछ ही वर्ष पूर्व बोलते-चालते चित्र एक अनहोनी-सी बात प्रतीत होते थे, लेकिन आज-कल यह काफी साधारण और कुछ-कुछ पुराने भी हो चले हैं। फिर भी बहुतसे ऐसे मनुष्य पाये जायँगे जो इनको एक आश्चर्यजनक और अद्वितीय वस्तु मानते हैं। अस्तु, इस लेखमें यह बतलाया जायगा कि चित्रोंमें आवाज कैसे पैदा होती है ? चित्रोंकी गति तथा हाव-भाव और शब्दोंमें समकालीनता किस प्रकारसे प्रकट की जाती है ? और उनमें स्वाभाविकता किस प्रकारसे समाविष्ट की जाती है ? लगभग सौ बरस हुए कि **मूक-चित्रोंका आविष्कार** हुआ और वे बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भतक काफी उन्नति कर चुके थे। मूक चित्रोंका बनाना संसारका एक प्रमुख व्यवसाय हो चला था और पाश्चात्य देशोंके बड़े-बड़े धनकुबेर इस व्यवसायमें काफी दिलचस्पी ले रहे थे। लेकिन इधर तो मूक-चित्रोंको हर तरहपर उन्नत करनेके साधन बनाये जा रहे थे और उधर इनकी शुरू-शुरूमें बढ़नेवाली लोकप्रियताका धीरे-धीरे ह्रास हो रहा था। इस समस्याने सिनेमा-संसारके कार्यकर्ताओंको काफी चिन्तित बना दिया। और अब वह इसी कोशिशमें लगे कि छाया-चित्रोंमें कोई और नवीनता पैदा की जाय।

विज्ञानने टाकीज़का आविष्कार करके संसारको एक अद्भुत शक्ति प्रदान की है। जिससे मनुष्य क्या नहीं कर सकता। टाकीज़के द्वारा शहर-शहरमें युनिवर्सिटीका काम फैलाया जा सकता है। प्रोफेसरोंके लेक्चर सचित्र सोदाहरण पहुँचाये जा सकते हैं। वैज्ञानिक शिक्षा बड़ी मनोहर और रोचक बनायी जा सकती है। सार्वजनिक शिक्षाका ऐसा उत्तम साधन दूसरा हो नहीं सकता। पाश्चात्य देशोंमें टाकीज़का ऐसा सदुपयोग हो भी रहा है। परन्तु हमारे अभागे देशमें इस महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कारका दुरुपयोग ही दिखाई दे रहा है। इसपर अलग लेख पाठक इसी अंकमें पढ़ेंगे। —रा० गौ०

बोलते चित्रोंकी नींव कब पड़ी ?

साधारण जनताका अनुमान कि सवाक्-चित्र केवल गत दस-बारह बरसोंमें ही निकाले गये हैं, छाया मात्र है। सत्य तो यह है कि इनके आविष्कारका बीज संवत् १९२३ से ही बो दिया गया था जब कि मैक्स्वेलने यह सिद्ध कर दिया कि प्रकाश विद्युत्-चुम्बकीय तरंगोंका ही एक स्वरूप है। संवत् १९३० में विलोबीस्मिथ नामक एक अंग्रेज भद्र पुरुषने यह मालूम किया कि (शशिन्) सैलेनियमकी विद्युत्चालकता प्रकाशके साथ-साथ, जो कि उसके ऊपर फेंका जाता है, शक्ति-शाली और कमजोर होती जाती है। इस आविष्कारका उपयोग सैलेनियम सेलके बनानेमें किया गया और समय आनेपर इसकी त्रुटियोंने वैज्ञानिकोंको फोटो-इलैक्ट्रिक सेल आविष्कार करनेके लिये लाचार किया। इस एक छोटी लेकिन अनुपम वस्तुका प्रयोग हमको आगे चलकर मालूम होगा। यह एक किस्मका बाल्व है (चित्र नं० ५) जिसका भीतरी भाग सोडियम या और किसी प्रकाश प्रभावित धातुसे ढका रहता है। यह धातु ऋणोदका कार्य भी करता है और इसमें यह विशेषता होती है कि जब प्रकाश इसपर गिरता है तो ऋणाणु पैदा होकर विद्युत्-तरङ्गोंका निर्माण होता है। वाल्वका एक थोड़ासा भाग साफ रखा जाता है जिससे कि रोशनी उसके अन्दर प्रवेश कर सके। इस भागको खिड़की कहते हैं इसका धनोद एक

दूसरी धातुका, अँगूठीकी शक्लका बना हुआ होता है। आजकल फोटो-इलैक्ट्रिक सेलकी जगह एक दूसरी किस्मकी सेल व्यवहारमें आने लगी है जिसको सिलवर-आक्सीजन-सीज़ियम सेल कहते हैं इसमें कई एक विशेपतायें पायी जाती हैं।

संवत् १९३४ में एडीसनने अपना सर्वप्रथम फोनोग्राफ बनाया। और आगे चलकर जो कुछ अनुसन्धान उसने इस क्षेत्रमें किये वह केवल इसी दृष्टिसे किये गये कि उसके फोनोग्राफकी आवाजके साथ-साथ चलती-फिरती तस्वीरें भी नजर आवें। संवत् १९७७ तक रेडियो ब्रोडकास्टिंग जिसको कि हम बोलते-चालते चित्रोंका पुरखा कह सकते हैं काफी उन्नति कर चुका था और अच्छी तादादमें व्यवहारमें आने लग गया था। संवत् १९७९–८२ के मध्याह्न कालमें सवाक्-चित्रोंके नमूने काफ़ी सफलताके साथ दिखाये जाने लगे और दो मशीनें जो कि पूर्ण रूपसे अपना कार्य कर रही थीं (Phonofilm of De Forest) डिफारेस्टका फोनो फिल्म और (General Electric Pallaphotophone) साधारण वैद्युत पालाफोटोफोनके नामसे प्रसिद्ध हैं। और इसी कालमें जर्मनी और डैनमार्कमें भी किये जानेवाले प्रयोगोंका पता चला। न्यूयार्कमें २१ श्रावण संवत् १९८३ को वार्नर बन्धुओंने और (Vitaphone Corporation) विटाफ़ोन कारपोरेशनने डोन जुओन नामक सवाक्‌चित्र दिखाया। जनवरी संवत् १९८३ में प्रथम मूवीटोन न्यूज़रील तय्यार की गयी और अकतूबरमें दी ज़ास सिंगर नामक चित्रने पूर्ण सफलता प्राप्त की। इसके पीछे (Holly wood) हालीवुडमें जो कि मूक-चित्रोंकी राजधानी माना जाता है, सवाक्-चित्र बनने शुरू हुए। फिर तो इसकी उन्नतिकी कोई सीमा नहीं रही।

यह बात सूझी कैसे ?

सबसे पहले सवाक्‌चित्र बनानेके लिये वैज्ञानिकोंका ध्यान ग्रामोफोनकी तरफ आकर्षित हुआ और वे फिल्मके साथ-साथ ग्रामोफोन रेकार्ड बनाने लगे। लेकिन वे चित्रोंकी गति और आवाज़में समकालीनता जैसी कि होनी चाहिये नहीं ला सके। इसके कई एक कारण हैं। पहले तो चित्रको और रिकार्डोंको एक ही गतिसे चलाना ज़रूरी है। दूसरे एक रिकार्ड अधिकसे अधिक ६–७ मिनटतक आवाज़ पैदा करता है और एक रील करीब पन्द्रह मिनिटतक दिखायी जाती है, एवम् रिकार्डोंको बार-बार बदलना पड़ता है और उसमें काफी समय नष्ट हो जाता है। यह कमी कुछ हदतक दो (Projecting Machines) विक्षेपक मशीनोंके व्यवहारसे दूर की जा सकती है, लेकिन और भी कई एक इसमें ऐसी त्रुटियाँ पायी जाती हैं कि इस पद्धतिको पूर्ण सफलता मिलनी भी कठिन हो जाती है। इसके बाद वैज्ञानिकोंने एक दूसरी पद्धतिका आविष्कार किया जिसको ध्वनिमार्ग पद्धति (Sound Track System) कहते हैं।

इस पद्धतिमें आवाज फिल्मपर ही फोटोग्राफिक चिह्न-स्वरूप अंकित हो जाती है और आजकल इसकी भी दो शाखाएँ हैं जिनको परिवर्तनशील घनत्वविधि (Variable Density Method) और परिवर्तनशील क्षेत्र-विधि (Variable area Method) कहते हैं।

फिल्मकी आदर्श (Standard) चौड़ाई ३'५ सेन्टिमीटर और उसपर लिये गये चित्रकी लम्बाई और चौड़ाई १'८ और २'१ सेन्टिमीटर है। चित्रके दोनों तरफ छिद्रोंके लिये जगह छोड़ दी जाती है। मूकचित्रोंके बनानेके समय एक सेकेंडमें १६ चित्र लिये जाते हैं और २४ चित्र प्रति
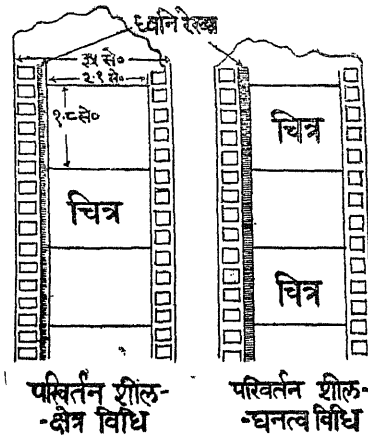
चित्र नं० १

सेकेंड दिखाये जाते हैं। लेकिन सवाक्-चित्र प्रति सेकेंड २४ ही बनाये और दिखाये जाते हैं और उसपर अंकित चित्रकी चौड़ाई भी ०'२५ सेन्टिमीटर कम हो जाती है।

(Variable Density Type) परिवर्त्य-घनत्व-वाली ध्वनि मार्गपद्धतिमें आवाज बारीक लकीरोंके रूपमें अंकित होती है जिनका घनत्व आवाजके हिसाबसे कम या अधिक होता रहता है। इस प्रकारके चित्र बनानेके दो तरीके हैं, जो (Western Electric System) पाश्चात्य वैद्युत-पद्धति फाक्स मूवीटोन सिस्टेमके नामसे प्रसिद्ध हैं। परिवर्त्य-क्षेत्रवाली ध्वनिमार्ग-पद्धतिमें आवाज पहाड़की शिखाओंकी तरह अंकित होती है और यह आर० सी० ए० फोटोफोन पद्धतिसे बनायी जाती है। इन तीनों पद्धतियोंका उल्लेख अलग अलग किया जायगा।

(Studio) स्टूडियोमें चित्र लेते समय आवाज़ पकड़नेके लिये भिन्न-भिन्न जगहोंपर सूक्ष्म शब्दग्राही यन्त्र (Microphones) रखे जाते हैं। यह एक प्रकारकी डिबियाके शक्लका होता है जिनमें दो झिल्लियाँ होती हैं इन दोनों झिल्लियोंके मध्यमें (Carbon) करबनके छोटे-छोटे कण रहते हैं और दोनों एक दूसरेसे एक (Non-Conducting) अचालक वस्तुसे अलगायी रहती हैं। इनमेंसे एक झिल्ली ऋणध्रुवसे और दूसरी धनध्रुवसे मिली रहती हैं। हैं और फिर मिश्रक (Pannel) पानेलमें भेजी जाती हैं। इस यन्त्रका काम छटनी करना होता है। अर्थात् इसकी मददसे प्रत्येक सूक्ष्म-शब्दग्राही यन्त्रसे आयी हुई विद्युत् तरंगोंको जरूरतके अनुकूल शक्तिमें परिवर्तन करके एक साथ मिला सकते हैं। यह यन्त्र एक विशेष प्रकारके बने हुए मकानमें जिसको मानिटोर या मिश्रकघर कहते हैं रखा रहता है और एक कुशल संचालक इसमें बैठा हुआ अपना कार्य करता रहता है। इस मकानमें विशेष प्रकारकी बनी हुई काँचकी खिड़कियाँ लगी रहती हैं जिनमेंसे आदमी बाहर देख तो सकता है लेकिन आवाज भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। अब मिश्रकघरसे विद्युत्-धारा विस्तृत करके रेकोर्डिङ्ग मशीनमें भेज दी जाती है।

आर०सी०ए० पद्धतिकी (Recording machine) ध्वनिलेखक यन्त्रको (Vibrator) "संस्फुरक" कहते हैं। यह एक प्रकारका विद्युतधारा-मापक (Galvanometer) होता है। इस यंत्रमें चुंबकके दो ध्रुवोंके मध्यमें एक तार रहता है और तारके ऊपर एक शीशा (आइना) लगा रहता है। जब मिश्रक पानेलसे आयी हुई विद्युत्धारा
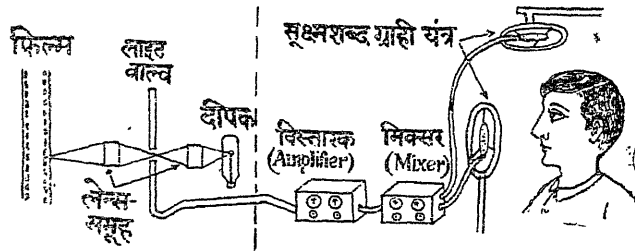
चित्र नं० २

जब कि आवाज़की तरंगें आगेवाली (Diaphragm) झिल्लीपर पड़ती हैं तो करबनके कण दबते और फैलते हैं जिससे शब्दोंकी लहरें विद्युत्की तरङ्गोंमें बदल जाती हैं। यह तो केवल एक ही प्रकारका मैक्रोफ़ोन हुआ जो कि करबन मैक्रोफोनके नामसे प्रसिद्ध है। और भी कई प्रकारके मैक्रोफोन होते हैं लेकिन (Dynamical) डैनामिकल और कंडेसर मैक्रोफोन अकसर काममें लाये जाते हैं। इस प्रकार पैदा की हुई बिजलीकी तरंगें पहले प्रत्येक मैक्रोफोनके (Circuit) चक्करमें ही विस्तृत (amplify) की जाती इस तारमेंसे गुजरती है तो यह हरकत करने लगता है। फलस्वरूप आइना भी हिलने लगता है। आइनेके ऊपर प्रकाशकी एक रेखा जैसा कि चित्रमें बताया गया है एक (Exciting lamp) उद्दीपकद्वारा फेंकी जाती है जो कि उससे प्रतिद्वंद्वित होकर लैंसेज और (Slit) स्लिटमें होती हुई फिलमपर अंकित हो जाती है। इस प्रकारसे फिलमपर अंकित की हुई आवाजकी तस्वीर ०.०००७५ इञ्च चौड़ी और ०.०७ इंच लम्बी होती हैं।

फाक्स मूवीटोन-पद्धति आवाजको अंकित करनेके लिये

एक किस्मका यंत्र जिसको ऐओलाइट (Aeolight) कहते हैं काममें लाते हैं। इस यंत्रको थियोडोर केस नामक एक
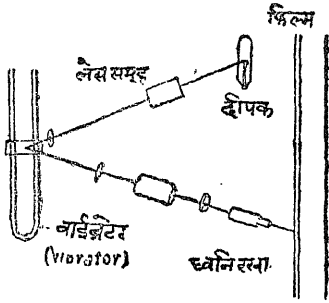
चित्र नं० ३

वैज्ञानिकने निर्माण किया था। यह दो धातुओंसे बनी हुई एक प्रकारकी नली (Two Element Tube) है। धनध्रुव (Positive Terminal) निकलका बना हुआ होता है और ऋणध्रुव (Negative Terminal) एक दूसरी धातुका बना हुआ वक्रतन्तुकी शकलका होता है। इस नलीके अन्दर एक प्रकारकी निष्क्रिय गैस जिसको हीलियम कहते हैं क्षीण दबावपर भरी रहती है। जब इन दोनों ध्रुवोंको ऊँचे वोल्टेजकी विद्युत्धारा दी जाती है तो यह गैस (Ionise) उत्तेजित हो जाती है और उसमेंसे प्रकाश निकलने लगता है। मिश्रक पानेलसे आयी हुई धारा इन्हीं ध्रुवोंद्वारा इस नलीमें भेजी जाती है जिसके फलस्वरूप प्रकाश विद्युत्धाराकी शक्तिके साथ-साथ कम और अधिक होता रहता है। इस नलीके साथ एक क्वार्ट ्ज (Quartz) नामक मणिकी स्लिट (Slit) लगी रहती है जिसमेंसे होकर यह प्रकाश फिल्मपर अंकित हो जाता है।
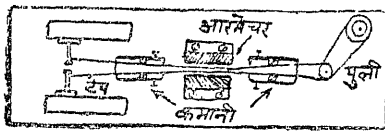
लाइट वाल्व

चित्र नं ४

पच्छाहीं वैद्युत पद्धतिमें ध्वनिलेखन (Light Valve) लाइट-वाल्वद्वारा होता है। इस यन्त्रमें (Dealumin) डी-अल्यूमिनके तारका एक फंदा चुंबकीय क्षेत्रमें स्थित होता है। यह फंदा एक घिर्नी और (Windlasses) खूँटियोंसे जकड़ा रहता है और इसके मध्यका भाग दो (Pincers) कमानियोंद्वारा एक (Slit) स्लिटके आकारमें बना दिया जाता है जो कि ०.००१ इञ्च चौड़ी होती है। मिश्रक पैनेलसे आयी हुई विद्युत्धारा इस फंदेमें भेजी जाती है जिसकी वजहसे इस स्लिटकी चौड़ाई कम या विशेष होती रहती है। एक प्रकाशकी रेखा इस स्लिटमें प्रवेश करती हुई घूमती हुई फिल्मपर अंकित कर ली जाती है (देखो चित्र नं० २)।

प्रायः (Studio) स्टूडियोंमें चित्र एक नेगेटिव फिल्मपर और आवाज दूसरेपर अंकित की जाती हैं। ऐसा करनेके बहुतसे कारण हैं। पहले तो यह कि इस पद्धतिसे दो मशीनें चलायी जा सकती हैं और आवाज़की दोहरी प्रति ली जा सकती हैं, दूसरे यह दोनों नेगेटिव भिन्न-भिन्न तरीकोंसे डेवलप किये जा सकते हैं। लेकिन फाक्स-मूवीटोन-पद्धतिमें आवाज़ और चित्र एक ही नेगेटिवपर लिये जाते हैं।

जब इन नेगेटिवोंसे पाजिटिव बनाते हैं तो ध्वनि-रेखा जिस चित्रसे सम्बंध रखती है उसके १६ चित्रोंके पश्चात् अङ्कित की जाती है। ऐसा करना इसलिये जरूरी होता है कि जब फिल्म दिखायी जाती है तो चित्रको तो रुक-रुकके चलना होता है क्योंकि वैज्ञानिकोंने यह मालूम किया है कि दृश्यको आँखसे सिलसिलेवार देखनेके लिये प्रति चित्रको करीब $\frac{1}{24}$ सेकेंडतक स्थिर रहना जरूरी है और ध्वनि-रेखाकी गति स्थिर वेगकी रहनी ही चाहिये। इस फिल्मका ऊपरी भाग तो रुक-रुककर चलाया जाता है और फिर बीचमें एक फन्दा देनेके पश्चात् नीचेका भाग जिसमें कि ध्वनि-रेखा ऊपरके चित्रसे सम्बंध रखनेवाली होती है एक स्थिर वेगवाली गतिसे चलायी जाती है। लेकिन इन दोनों हिस्सोंकी रफ्तार प्रति सेकेंडके हिसाबसे बराबर होती है यह सब चित्र नं० ५ को देखनेसे स्पष्ट हो जायगी।

विक्षेपक (Projector) एक लैम्प विभाग (Lamp compartment) एक फोटो इलैक्ट्रिक-सेल विभाग (Photo-Electric Cell Compartment) एक फिल्म-विभाग (Film Compartment) दो मेगजीन (Magazines) और (Driving Mechanism) चलानेवाली कलसे मिलकर सम्पूर्ण (Reproducing Machine) पुनरुत्पादन-यंत्र बनता है।

विक्षेपक (Projecting) मशीन ठीक मूक-चित्रोंके व्यवहारमें आनेवाली मशीनकी तरह होती है। एक तेज रोशनी (Carbon arc Lamp) करबन-आर्क-लैम्पसे फिल्मपर फोकस की जाती है और चित्रकी छाया घूमती
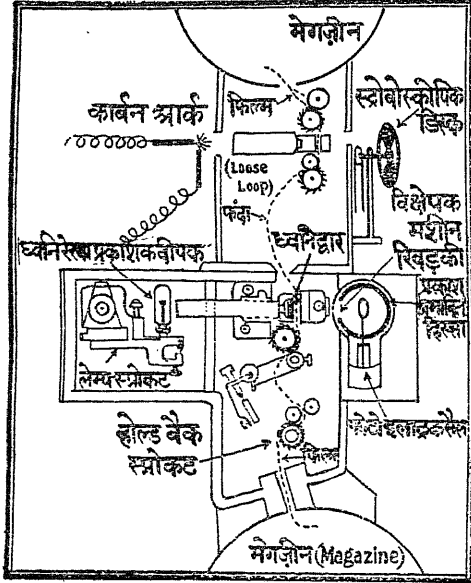
चित्र नं० ५

हुई स्ट्रोबोस्कोपिक डिस्कमेंसे होती हुई परदेपर फेंकी जाती है। इस डिस्ककी वजहसे चित्रका रुक-रुकके चलना नहीं दिखाई देता। क्योंकि जब फिल्मका खाली हिस्सा रोशनीके सामनेसे गुजरता है तो यह डिस्क रोशनीको रोक लेती है, और (Persistence of Vision) दृष्टि सातत्यकी वजहसे चित्र हमको ठीक मालूम होता रहता है।

लैम्प-विभागमें एक उद्दीपक (Exciting Lamp) होता है। इस लैम्पके तन्तु आड़े होते हैं। और यह लैम्प एक खास प्रकारके बने हुए (Bracket) स्टेण्डपर लगा रहता है। उद्दीपकका प्रकाश ध्वनि-रेखाको रोशन करता है और फिर यह रोशनी ध्वनि-रेखासे छनती हुई (Photo Electric Cell) फोटो-इलेक्ट्रिक सेलकी खिड़कीद्वारा उसमें प्रवेश करके विद्युत्धारा पैदा करती है। यह विद्युत् तरङ्गें प्रकाशके साथ-साथ शक्तिशाली अथवा कमजोर होती हैं। फिर यही परिवर्तनशील विद्युत्-तरङ्गें विस्तृत करनेके बादमें विद्युत्-तारोंद्वारा लाउड स्पीकरमें भेजी जाती हैं जहाँ वे आवाजकी तरङ्गोंमें परिवर्तित हो जाती हैं और दर्शकोंको सुनाई देने लगती हैं। लाउड स्पीकर झिल्लीसे बने हुए होते हैं। यह झिल्ली विद्युत्-चुम्बकके आगे रहती है और जब परिवर्तनशील विद्युत्-धारा इस (Electromagnet) विद्युत्-चुम्बकके चारों तरफ घूमती हैं तो इस झिल्लीमें कम्पन पैदा हो जाते हैं और शब्द निकलने लगते हैं। यह लाउड स्पीकर परदेके पीछे रखे रहते हैं।

फिल्म ऊपरवाली मेगजीनसे चलकर फिल्म-विभागमें होती हुई नीचेवाली मेगजीनमें जाती है। फिल्म और उद्दीपकके मध्यमें प्रकाश सम्बन्धी कुछ यंत्र होते हैं जो कि उद्दीपकके प्रकाशको एक बारीक रेखामें जिसकी चौड़ाई ०·००१ इंच होती है परिवर्तित कर देते हैं और फिर यह रेखा (Sound Gate) ध्वनिद्वारमेंसे होती हुई (Photo Electric Cell) फोटो-इलेक्ट्रिक सेल-में प्रवेश करती है। फिल्म (Sound Gate) ध्वनि-द्वारसे होती हुई पीछे रखनेवाले (Sprocket) स्प्राकेटमें जाती है जो इसको समान गतिसे खींचकर नीचेवाली मेगज़ीनमें भेज देता है।

आजकल ग्रामोफोन इतने साधारणताके दर्जेतक पहुँच गये हैं कि जनताको उनसे प्रायः नफरत हो चली है। रेडियो भी साधारग हो चला है और टेलीविज़न (Television) अभी भविष्यके गर्भमें ही विद्यमान है। इसलिये सवाक्-चित्रोंने ही अपना आधिपत्य जमा रखा है। इसकी वजहसे मूक चित्रोंको भी काफी धक्का लगा है और उसका व्यवसाय करीब-करीब शून्य हो चला है। बोलते-चालते चित्रोंका भविष्य काफी चमकता हुआ मालूम होता है और अगर ये ठीक रास्तेपर प्रयोगमें लाये जाने लगे तो विद्या-सम्बन्धी कार्योंमें पूर्ण सफलता पहुँचा सकते हैं।* संवत् १९८८में अध्यापकोंके अन्तर्-

*विज्ञानके ऐसे महत्त्वपूर्ण आविष्कारका आजकल कैसा दुरुपयोग हो रहा है। संदिग्ध चरित्रा नारियोंके बहुधा अर्धनग्न और अश्लील चित्र दिखाये जाते हैं और अभिनय कलाकी कपालक्रिया की जाती है। एक दरिद्र देशमें जहाँकी आधी आबादीको भरपेट भोजन न

विज्ञानका स्वर्णमय सदुपयोग, घरेलू धंधे

१—भाँति-भाँतिकी रोशनाइयाँ बनाइये

[डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्‌-सी०, (प्रयागविश्वविद्यालय,) दयानिवास, प्रयाग]

रोशनाई क्या है ?

रोशनाईकी परिभाषा करना आजकल कठिन हो गया है। साधारण दृष्टिसे कहा जा सकता है कि रोशनाई वह चीज है जिससे कागजपर लिखा जा सकता हो, अथवा जो छपाईके काममें आती हो अथवा टाइपराइटरके फीतोंमें जो लगायी जाती हो, इत्यादि। हम यहाँ सूक्ष्मतः कुछ रोशनाइयोंका विवरण देंगे।

१—देशी स्याही

"धूम कुसंगति कारिख होई।
लिखिय पुरान मंजु-मसि सोई॥"

भारतीय और चीनी कारिख बहुत प्रसिद्ध हैं। इसकी समता करनेवाली और कोई स्याही तो आजकल बनायी नहीं गयी है। इसके बनानेकी कई विधियाँ हैं। चीनी कारिख वनस्पतियोंको अथवा तिलके तेलको जलाकर बनायी जाती है। इन चीजोंके जलनेपर धुआँ निकलता है, और इस धुएँपर ठंडा बर्तन रखनेसे काला काजल जमा हो जाता है। इसका ही व्यवहार स्याहीके रूपमें करते हैं। हिन्दुस्थानी स्याहीमें इस काजलके साथ थोड़ा-सा गोंद घोंटकर मिलाते हैं और २% के लगभग कपूर और सूक्ष्म मात्रामें कस्तूरी भी छोड़ते हैं।

इस स्याहीके तैयार करनेकी एक परिष्कृत विधि इस प्रकार है। तारपीन या मिट्टीके तेलका दीपक जलाओ इसकी लौके ऊपर १०० फुट लम्बी जस्तेकी नली तिरछी

राष्ट्रिय युनियनने जो विद्या-सम्बंधी प्रयोग पाश्चात्य वैद्युत कम्पनी (Western Electric Co.,) ब्रिटिश इंडस्ट्रियलफिल्म (British Industrial Films) और ब्रिटिशमूवीटोन न्यूज़ (British Movietone News) कम्पनियोंके सहयोगसे किये गये थे उनसे निर्णय किया गया था कि सवाक्-चित्र विद्याकी भिन्न-भिन्न शाखाओंमें बहुत सहायता पहुँचा सकते हैं। सवाक्-चित्र आजकल एक उच्च कोटिकी मनोरंजनकी वस्तु हो चले हैं लेकिन भारतवर्षमें जो अभीतक चित्र बने हैं उनमें कई प्रकारकी त्रुटियोंका समावेश है। सर्व प्रथम गानोंका असमयानुकूल होना बहुत ही अखरता है और त्रुटिको दूर करना बहुत ही जरूरी है। लेकिन इधर जो कुछ हालमें श्रेष्ठतर चित्र बने हैं वह फिर भी सन्तोषप्रद मालूम होते हैं।

(Television) दूरदर्शनके आविष्कार होनेसे अब भविष्यमें यह आशा की जाती है कि हम संसारकी सर्वश्रेष्ठ फिल्मोंको रेडियोकी मददसे अपने-अपने घरपर ही देख और सुन सकेंगे और हमको सिनेमाघरतक जानेका कष्ट न उठाना पड़ेगा। लेकिन ऐसा होनेमें अभी कुछ समयकी आवश्यकता है। यही नहीं बल्कि अब वह समय आनेवाला है जब कि हमको बोलते हुए पत्र और पत्रिकाएँ मिलेंगी। ऐसे पत्र और पत्रिकाओंके लिये आवाज साधारण कागज़पर चिह्न-स्वरूपमें अंकित की जायगी और प्रकाश इनपर फेंका जायगा। फिर यह प्रकाश वहाँसे परावर्तित होकर (Photo Electric Cell) फोटो-इलेक्ट्रिक सैलपर पड़ेगा और इस प्रकार इस सेलसे पैदा की हुई विद्युत्-धाराएँ विस्तृत होनेके पश्चात् लाउड स्पीकरसे सुनाई देने लगेंगी।

मिलता हो और आये दिन भाँति भाँतिकी विपदाओंसे ग्रस्त हो, आचार भ्रष्ट करनेवाले तमाशे दिखाकर पूंजीपति लोग पैसे चूस लेते हैं और उन पैसोंको किसी रूपमें उस दरिद्र जनताको लौटाना तो दूर रहा, विदेशोंसे अधिकाधिक व्यसन सामग्री लेकर अपने देशसे सदाके लिये निकाल दिया जाता है। बोलते-चालते चित्रोंसे शिक्षाके महदुद्देश्योंकी पूर्ति बहुत अच्छी तरह हो सकती है, परन्तु विषयोपभोगके सामने शिक्षा तो विष है, मुफ़्त भी मिले तो कोई न ले।

—रा० गौ०

करके लगा दो। धुआँ जब नलीमें होकर जायगा तो इसके अन्दर जम जायगा। दीपकके निकटवाले नलीके भागमें साधारण काजल होगा जिससे छापाखानेकी स्याही तैयार की जाती है। पर दूरके भागोंमें अति सूक्ष्म काजल होगा, जो सुन्दर लिखावटके काममें लाया जा सकता है।

इस काजलको और भी अधिक शुद्ध किया जा सकता है। ऐसा करनेके लिये काजलमें थोड़ासा शोरेका तेजाब डालकर लेई-सी बना लो और फिर कुछ स्रवित जल मिलाकर गरम करो, जब भूरी भापें निकलना बन्द हो जायँ तो आग परसे उतार लो। ऐसा करनेसे काजलकी चपचपाहट दूर हो जायगी। अब इसमें पानी और मिलाकर रख दो। काजल नीचे बैठ जायगा। कई बार पानीसे धो डालो। अब इसे दाहक सोडाके तीव्र घोलके साथ गरम करके और भी शुद्ध कर लो, और बार-बार धोकर सुखा लो। इसमें गोंदका स्वच्छ घोल मिलाकर लेई-सी बना लो, और गरम करके सुखा लो। इसमें थोड़ी-सी कस्तूरी (मद्यमें घोलकर) मिला दो। इन उपायोंसे बहुत ही अच्छी **देशी स्याही** बनती है।

२—ब्ल्यू-ब्लैक और ब्लैक स्याही

अधिकतर इन स्याहियोंमें टैनिकाम्ल और कसीसका सहयोग होता है। टैनिकाम्ल साधारणतया आँवलेके समान पदार्थोंको पानीके साथ उबालकर प्राप्त किया जाता है। माजूफलसे भी हम इसे पा सकते हैं। कई प्रकारकी वृक्षोंकी छालमें भी यह होता है। ये सब टैनिकाम्ल लोह लवणोंके संयोगसे नील-कृष्ण रंग देते हैं। पानीके साथ छाल अथवा फलोंमेंसे टैनिकाम्ल निकाल लो और छाननेके बाद इसमें उपयुक्त मात्रामें कसीस (लोहस गन्धेत) मिलाओ। इसकी मात्रा प्रत्येक फलके लिये अलग-अलग होगी जो कि प्रारम्भिक प्रयोग करनेपर मालूम हो सकती है। इसमें थोड़ासा कोई नीला रंग ऊपरसे छोड़ दो जिससे कि रंग चटकीला और सुंदर हो जायगा। हवाके संसर्गसे इस स्याहीका रंग गहरा और पक्का हो जाता है।

इस रोशनाईमें अरबी गोंद (अथवा नीम और बबूलका गोंद) और थोड़ी-सी शकर भी मिलानी पड़ती है जिससे कि रोशनाई तलछटके रूपमें बैठ न जाय और घोलरूपमें स्थायी बनी रहे। पर शकरका व्यवहार न करना ही अच्छा है क्योंकि इसकी विद्यमानतामें स्याहीमें फँफूँदी लगनी आरंभ हो जाती है। कार्बोलिक एसिडके हलके घोलकी कुछ बूँदें मिलाकर रखनेसे स्याही बिगड़ने नहीं पाती (०·०१% मात्रा काफी है)।

	ब्राइंड इंक	अंग्रेजी इंक	अमरीकन
माजूफल	१२०० भाग	२०	२४
कसीस	८०० ,,	५	५
गोंद	८०० ,,	५	५
पानी	२४००० ,,	२४०	२००
क्रिओसोट	३ ,,	—	—

इन स्याहियोंमें अम्ल होता है इसलिये इनसे लिखनेमें निब खराब हो जाते हैं। अतः बहुतसी स्याहियोंमें थोड़ासा क्षार भी मिला देते हैं—जैसे लिंककी स्टीलपेन इङ्कमें—

माजूफल	२२४	पानी	३२००
कसीस	९६	अमोनिया	२
गोंद	८०	स्पिरिट	१२८

इस स्याहीमें कुछ लोग तूतियाका भी व्यवहार करते हैं—

माजूफल	११२	गोंद	४०
कसीस	४८	जल	१६००
तूतिया	२		

(Logwood) लागवुडका सत और फिटकरी भी आवश्यकतानुसार मिलायी जा सकती है। प्रयोग करनेपर इन चीज़ोंकी उचित मात्रायें निर्धारित की जा सकती हैं।

माजूफल, हड़, बहेड़ा, आँवला आदि न लेकर उनकी जगह बाजारसे गैलिक एसिड, टैनिक एसिड, पायरोगैलिक एसिड, या क्रासीटैनिक एसिड मोल लिये जा सकते हैं जो दवाखानोंमें शुद्धावस्थामें बिकते हैं। कसीसके सुन्दर हरे रवे लेना चाहिये। गोंदका घोल भी साफ़ होना चाहिये। स्याहीमें रुचिके अनुसार ऊपरसे कुछ रंगोंको छोड़ देना भी श्रेयस्कर है।

३—लागवुड टैनिन स्याहियाँ

ऊपर जिन स्याहियोंका उल्लेख किया गया है उन्हें टैनिक-एसिड स्याहियाँ कहते हैं। विदेशी स्याहियाँ लागवुडकी भी बहुत बनती हैं। लागवुड पेड़ वेस्टइण्डीज़ और अमरीकामें बहुत पाया जाता है। इसकी लकड़ी लाल या कत्थई रंगकी होती है। इस लकड़ीमें हिमेटोक्सिलिन (haematoxylin) नामक रंग विद्यमान होता है। पानी-के साथ उबालकर इस रंगका सत निकाल लिया जाता है। इस सतमें लोह-लवण मिलानेसे गहरा नील-कृष्ण रंग प्राप्त होता है। इस गुणके कारण लागवुडका व्यवसाय रोशनाई तैयार करनेमें बहुत किया जाता है। लागवुडका सत भी बिकनेको बहुत आता है।

यद्यपि लागवुड कसीसके साथ गहरा रंग देता है, तो भी अधिकतर टैनिक स्याहियोंके सहयोगमें ही कसीस-का उपयोग किया जाता है। टैनिक स्याहियोंके रंगमें यह अच्छी चमक ला देता है।

	कैम्पीची-स्याही	हिमेटोक्सिलिन-स्याही
माजूफल	१	४०
कसीस	१	३०
लागवुड छाल	१	५०
गोंद	१	२५
पानी	१८०	२००
सिरका	१८०	—

४—मजीठकी स्याहियाँ (एलीजेरिन इङ्क)

एलीजेरिन स्याहियोंके नामसे बाजारमें बहुत-सी स्याहियाँ बेची जाती हैं। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि इन स्याहियोंका मजीठके रंगसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। यह नाम केवल धोखेमें डालनेके लिये ही रख छोड़ा गया है। मजीठके रंग बहुत सुन्दर होते हैं और ये स्याहियाँ भी बहुत सुन्दर होती हैं, और इसी लिये इनका यह नाम पड़ा है।

ऊपर जिन स्याहियोंका वर्णन किया गया है वे लोह टैनेट या लोह गैलेट होती हैं, और उनमें गोंद इसलिये छोड़ा जाता है कि वे पानीमें घुली रहें, और दवातमें नीचे बैठ न जायँ। यदि इन स्याहियोंमें सिरका या गन्धक-का तेजाब मिला दिया जाय तो स्याही नीचे बिल्कुल न बैठने पायगी और घोल ठीक बना रहेगा। वस्तुतः वे स्याहियाँ जो एलीजेरीन नामसे प्रचलित हैं, केवल पूर्वोक्त टैनेट-स्याही ही हैं, पर केवल इतना भेद है कि उनमें सिरकाम्ल और कभी-कभी गंधकाम्ल भी मिला रहता है। इन स्याहियोंका घोल पीला या पीला-भूरा मालूम पड़ता है और लिखावट आरंभमें हरी-सी दिखाई पड़ती है, पर हवामें रखनेके कुछ घंटोंमें ही यह बिल्कुल काली हो जाती है, इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि खुला छोड़नेपर कुछ सिरकाम्ल उड़ जाता है, और इसलिये स्याही जम जाती है और दूसरा यह कि शेष सिरकाम्ल कागजके क्षारसे शिथिल हो जाता है। कागज बनानेमें चूनेका व्यवहार किया जाता है और यह चूना कागज तैयार हो जानेपर भी न्यूनाधिक मात्रामें कागजमें रही जाता है जो कि अम्लोंके मिटानेमें क्षारका काम करता है।

इन मजीठी स्याहियोंमें अम्ल होनेके कारण निबोंको आरम्भमें हानि पहुँचती है पर जब निबपर थोड़ी-सी स्याही सूख जाती है तो उसका पर्त्त निबको फिर अम्लके हानिकर प्रभावसे बचाये रखता है। पर हाँ, स्याहीमें अधिक अम्ल न डालना चाहिये। अम्ल डालनेका कारण तो यह है कि इसकी विद्यमानतामें स्याही वर्षोंतक ठीक द्रवावस्थामें बनी रह सकती है और तलछट नहीं बैठने पाती। स्याही के ठीक द्रव बने रहनेके कारण लिखनेमें भी कोई बाधा नहीं पड़ती।

पर इन स्याहियोंका एक दोष यह है कि जैसा कहा जा चुका है, इनकी लिखावट आरम्भमें पीतहरे रंगकी होती है, और काला रंग कुछ घंटोंके बाद ही प्रकट होता है। अक्षरके स्पष्ट न दिखाई पड़नेके कारण यह एक असुविधा ही है। अतः इन स्याहियोंमें थोड़ा-सा नील रंग (इण्डिगो-

कारमीन या कोई अन्य एनीलिन रंग) मिला दिया जाता है जिससे यह दोष मिट जाता है। आरंभमें लिखावटका रंग नीला होता है और बादको गहरा ब्ल्यू-ब्लैक मालूम पड़ने लगता है।

	काउण्टर एलीजेरीन स्याही	एलीजेरीन इङ्क प्रथमश्रेणी
माजूफल	२०	४०
कसीस	१२	१५
गोंद	२	१०
सिरकाम्ल	२००	१०
इण्डिगो कारमीन	४०	५
जल	—	१००

एलीजेरीन इण्डिगोइंकके लिये २० भाग माजूफल पीसकर पानीमें भिगोये जाते हैं। २ भाग नील और ४ भाग लोहेका बुरादा ८ भाग वाष्पवान गन्धकाम्लमें घोला जाता है, और इस घोलको माजूफलवाले घोलमें मिला दिया जाता है। गन्धकाम्लकी मात्राको शिथिल करनेके लिये ४ भाग चूना छोड़कर छान लिया जाता है। अन्य एलीजेरीन स्याहियाँ भी इसी प्रकार तैयार की जाती हैं।

५—शुद्ध लागवुड स्याहियाँ

लागवुड और टैनिकाम्ल दोनोंकी मिश्रित स्याहियोंका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पर इसकी सबसे अच्छी स्याही क्रोमपोटाश (पोटाशियन क्रोमेट) के साथ बनती है। क्रोम-पोटाशके घोलके साथ लागवुडका घोल चटकीला काला रंग देता है। लोहलवणोंका प्रश्न न होनेके कारण तलछट बैठनेकी इन स्याहियोंमें बिलकुल संभावना ही नहीं रहती, और यह बड़ा भारी गुण है। **पर क्रोमपोटाशकी मात्रा प्रयोगोंके आधारपर ठीक निश्चित कर लेनी चाहिये।** यदि लाल पोटाश कम पड़ेगा तो रंग फीका उतरेगा और यदि आवश्यक मात्रासे अधिक पड़ जायगा तो क्रोम पोटाशके प्रभावसे लिखावट आरंभमें तो अच्छी मालूम होगी पर बादको भूरा रंग निकल आयगा। प्रत्येक प्रकारकी लागवुडके लिये यह मात्रा पृथक्-पृथक् है पर सामान्यतया ४० पौण्ड (लगभग बीस सेर) लागवुडका २४ गैलन (एक कनस्टरभर) पानीमें काढ़ा बनाओ और इसमें २ पौंड (एक सेर) क्रोमपोटाश २ गैलन पानीमें घोलकर मिला दो। ऐसा करने से सन्तोष-प्रद स्याही बन जायगी। पोटाश मिलाते समय बराबर हिलाते रहना चाहिये, और थोड़ी-थोड़ी मात्रामें मिलाना चाहिये।

ये स्याहियाँ सस्ती, खूब काली, और बहुत स्थायी होती हैं। कुछ अनुमाप नीचे दिये जाते हैं।

लागवुडका सत	२०००	(१)
क्रोम पोटाश	१०	
पानी	१००,०००	
लागवुडका सत	४४०	(२)
डेक्सट्रिन	८०	
पानी	१०८०	
फिटकरी	७२	
गन्धकाम्ल	६	
क्रोम पोटाश	३	

६—प्रतिलिपियाँ उतारनेकी स्याही (Copying Ink)

ऐसी स्याही जो खुली रखनेपर फौरन सूखती न हो, इस कामके लिये बड़ी उपयोगी है। इन स्याहियोंमें जल-ग्राही कोई न कोई पदार्थ मिला दिया जाता है। यह पदार्थ हवामेंसे नमी बराबर सोखता रहता है और स्याही सूखने नहीं पाती और एक बार स्याहीसे लिख देनेपर कई प्रतियाँ उतारी जा सकती हैं। पानी ले लेनेवाले सामान्य पदार्थ ये हैं—शकर, डेक्सट्रिन, ग्लिसरीन, या खटिक हरिद (कैल-शम् क्लोराइड)। इन पदार्थोंकी थोड़ी ही मात्रा डालनी चाहिये नहीं तो अक्षर फैलकर बिगड़ जायँगे।

वैसे तो ऊपर जिन स्याहियोंका उल्लेख किया गया है वे सभी उपयुक्त जलग्राही पदार्थोंके सहयोगसे प्रतिलिपियों-के काममें आ सकती हैं, पर इस कामके लिये रंगोंके घोलोंका अधिक व्यवहार किया जाता है क्योंकि इनकी भेदकशक्ति अधिक होती है, और इसलिये इनसे प्रतियाँ अधिक ली जा सकती हैं। प्रतिलिपियाँ उतारनेके लिये तरह-तरहके "कौपीइंग-प्रेस" नामक यंत्र आते हैं जिसमें दबानेके लिये विशेष आयोजनायें होती हैं (या तो पेंचसे कसकर दबाते

हैं या लीवरके सिद्धान्तके अनुसार)। कोपीइङ्ग-इङ्कके कुछ अनुमाप इस प्रकार हैं—

१.	माजूफल	१२०
	कसीस	३०
	गोंद	२०
	द्राक्षशर्करा	१०
	पानी	१०००
२.	लागवुडसत	२००
	कसीस	८
	क्रोम पोटाश	२
	इंडिगोकारमीन	१६
	ग्लैसरीन	२०
	पानी	१०००

नीचे (Knafel) नेफेलकी स्याहीका नुसखा दिया जाता है जो नक्शानवीसोंके बड़े कामकी चीज है। इससे कागजको बिना भिगोये ही दो तीन बहुत सुंदर और सुस्पष्ट प्रतियाँ उतर आती हैं। यह कुछ कीमती अवश्य है पर उपयोगिताको ध्यानमें रखते हुए यह मूल्य कुछ अधिक नहीं है—

पायेरागैलिक एसिडका घोल	२४०
तूतिया	४
लोह हरिद (फैरिक क्लोराइड)	१०
पिनाक-सिरकेत (यूरेनियम एसीटेट)	२

फोटो उतारनेवालोंकी दूकानपर पायरोगैलिक एसिड सस्ता मिल ही जाता है। तूतिया और लोह हरिद भी सस्ते हैं। यूरेनियम एसीटेटके ही दाम अधिक हैं। जिसकी नकल उतारना हो उसे इस रोशनाईसे कागजपर खींचो और फिर इसके ऊपर मोटा चिकना चमकदार कागज रख दो और ऊपरसे कुछ मोटी किताबोंको रखकर दबा दो। ४–५ दिनमें कागजपर सुन्दर प्रतिलिपि उतर आयगी।

आजकल हेक्टोग्राफ, क्रोमोग्राफ, लीथोग्राफ, पोलीमिलीग्राफ आदिके प्रचलित होनेके कारण कोपीइङ्ग-इङ्कोंका रिवाज उठ-सा गया है।

७—हेक्टोग्राफ

इस मामूली यंत्रद्वारा ५०–१०० प्रतियाँ बड़े मजेसे छापी जा सकती हैं।

हेक्टोग्राफका बनाना—इसके बनानेकी आसान विधि इस प्रकार है। बहुत अच्छा सरेस लो। विलायती सरेस जो कम्पोजीशनके नामसे बेचा जाता है इस कामके लिये बहुत अच्छा होगा। इसे २४ घंटे पानीमें फूलने दो, और फिर पानी अलग करके इसे इनेमेलके बर्तनमें धीमी आँचसे गरमाओ। जब सब सरेस पिघल जाय तो इसमें ग्लैसरीन अच्छी प्रकार मिलाओ। मिलाते समय मिश्रणको धीमी आँचपर गरम ही बना रखना चाहिये और सावधानी-पूर्वक हिलाते-मिलाते जाना चाहिये। ऊपर जो झाग उठ आवे उसे किसी चमचेसे हलकेसे उतार देना चाहिये। इसके बाद अब इसे साँचेमें उँडेलकर ठंडा होनेके लिये रख देना चाहिये। ठंडा होनेपर यह ठोस जम जायगा।

हेक्टोग्राफके बनानेमें पानीकी मात्रापर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। यदि अधिक गरम हो जानेके कारण पानी कम रह गया हो, तो हेक्टोग्राफसे थोड़ीसी प्रतियां उतर सकेंगी। पर यदि पानी आवश्यकतासे अधिक रह गया होगा तो हेक्टोग्राफ बहुत लचलचा होगा और इसमें चिपचिपाहट इतनी होगी कि इसपरसे कागज कठिनतासे छूटेगा। यदि पानी कम रह गया हो तो सरेसको फिर पिघलाकर थोड़ा-सा गरम पानी मिला देना चाहिये। यदि अधिक पानी रह गया हो तो थोड़ासा और गरम करना चाहिये।

सरेसकी जगहपर जिलेटिन भी लिया जा सकता है। हेक्टोग्राफके दो नुसखे यहाँ दिये जाते हैं—

सरेस	१००	१००
ग्लैसरिन (२८ डिगरी बौमे)	५००	४००
जल	—	२००

हेक्टोग्राफकी स्याही—हेक्टोग्राफकी स्याहीमें दो गुण होने चाहिये, एक तो यह कि यह हेक्टोग्राफसे चिपक सके और दूसरा यह कि यह स्याही हेक्टोग्राफसे कागजपर फिर उतर सके। इन स्याहियोंमें चटकीला रंग ग्लैसरिन

और पानीके मिश्रणमें घुला रहता है। जलमें घुलनेवाले एनीलिन रंग इस काममें लाये जाते हैं। आवश्यक मात्रामें ग्लैसरिन लेकर ५०° शतक गरम करो और फिर इसमें रंग मिला दो। बिना पानीके भी ये रंग गरम करनेपर ग्लैसरिनमें घुल जायँगे। फिर गरम पानी मिलाकर ग्लैसरिनमें घुली हुई स्याहीको पतला कर लो। जब सब रंग अच्छी प्रकार घुल मिल जाय तो ५० % के लगभग स्पिरिट मिला दो।

स्याहीके लिये नीला या बैंगनी रंग उपयुक्त हैं। कुछ नुसखे इस प्रकार हैं—

(१) वाटर-सोल्यूबिल ब्ल्यू	१०	नीली स्याही
ग्लैसरिन	१०	
पानी	५८—१००	
(२) मिथाइल वायलेट	१०	(२) बैंगनी
हलका सिरकाम्ल	५	
९०% स्पिरिट	१०	
पानी	१०	
ग्लैसरिन	५	
(३) मिथाइल वायलेट	१०	बगनी
मद्यसार	१०	
गोंद	१०	
पानी	७०	
(४) डायमण्ड मैजण्टा	२०	लाल
मद्यसार	२०	
सिरकाम्ल	५	
गोंद	२०	
पानी	१४०	
(५) डायमण्ड मैजण्टा	१०	लाल
मद्य	१०	
ग्लैसरिन	१०	
पानी	५०	
(६) वाटर सोल्यूबिल ब्ल्यू	१०	हरी
पिकरिक एसिड	१०	
९०% स्पिरिट	३०	
ग्लैसरिन	१०	
पानी	३०	
(७) मिथाइल वायलेट	१०	काली
निग्रोसिन	२०	
मद्य	१०	
ग्लैसरिन	३०	
गोंद	५	

८—टाइपराइटरकी स्याही

टाइपराइटरके फीतोंमें चटकीले रंगवाली स्याही लगायी जाती है, और ऐसी योजना रहती है कि इस स्याहीमें हमेशा कुछ न कुछ नमी बनी रहे, और यह सूखने न पावे। जब टाइपराइटरके टाइप इस फीतेपर 'खट' से पड़ते हैं तो दूसरी ओर लगे हुए कागजपर ये अक्षर उतर आते हैं। टाइपराइटरकी स्याहीमें रंग ग्लैसरिनमें घुला रहता है। इसके तैयार करनेकी विधि इस प्रकार है।

शुद्ध ग्लैसरिन गरम करो और उसमें थोड़ा-थोड़ा करके उतनी ही मात्रा वाटर-सोल्यूबिल-ब्ल्यू रंगकी मिला दो। ठंढा होनेपर बालूकी तरहका पदार्थ मिलेगा क्योंकि कुछ रंग रवेके रूपमें पृथक् हो जायगा। अब इसमें सावधानीसे हिलाते हुए इतना पानी मिलाओ कि रंग सब ठीक-ठीक घुल जाय। पानी उतना ही छोड़ो जितना घुलनेके लिये ठीक काफी हो, अधिक नहीं। इस प्रकार नील-कृष्ण रंगकी स्याही तैयार हो जायगी। पतले रेशमका बना हुआ फीता इस स्याहीमें पैठाकर निकालो और फिर फीतेको अति दबाववाले बेलनोंके नीचेसे दबाकर निकालो। इस प्रकार नीली स्याहीका फीता तैयार हो गया जिससे कई महीने बराबर काम लिया जा सकता है।

वाटर-सोल्यूबिल-ब्ल्यू रंगके स्थानमें मिथाइल वायलेट रंगका व्यवहार करनेसे बैंगनी रंगका फीता तैयार किया जा सकता है।

अमोनियम फेरोगैलेटको फोरमलडीहाइड या एसीटोनके साथ मिलाकर काले रंगकी स्याही बनायी जा सकती है जिससे टाइप राइटरके काले फीते तैयार किये जा सकते हैं।

मुहर छापनेकी स्याहियाँ भी इसी प्रकारकी होती हैं।

२—खादीसे उकतानेवालोंके चरणोंमें

(लेखक—श्री प्रभुदास गांधी)

जिला बदाऊंके गुलरिया ग्रामके लिखे-पढ़े किसानों-की मददसे आंकड़े एकत्रित किये हैं। गाँवकी ढाई हजार आबादीमें कूर्मि क्षत्रिय किसानोंकी आबादी एक हजारकी है। इस जातिने परम्परा-से चर्खेकी उपासना नहीं छोड़ी है। लग्नादि उत्सवोंमें कूर्मि स्त्रियाँ जापानी और विलायती चटकीले भड़कीले वस्त्र पहनती हैं किन्तु घरमें प्रायः शुद्ध खादी ही प्रयोगमें लाती हैं। कपासकी फसल तैयार होनेपर सब कूर्मि स्त्रियाँ खेतोंमेंसे बीन-बीनकर अच्छे-से अच्छे कपासको चुन लाती हैं और वर्ष भरके कातनेके लिये स्वच्छ रुई जमा कर रखती हैं। हम लोगोंने घर-घर जाकर मर्दुमशुमारी, सालाना कपड़ेका खर्च, चर्खाशुमारी, लिख ली, बादमें समझदार किसानोंसे पूछ-पूछकर औसत निकालकर निम्न-कोष्टक बनाया गया। जन्माष्टमी और देवछठके स्थानीय मेलोंमें उसका बड़ा नक्शा बनाकर उसपर व्याख्यान दिये गये। अबतक किसीने हमारे इन आंकड़ोंपर आपत्ति नहीं उठायी है बल्कि उन्हें कम ही बताया है। वे आंकड़े पृष्ठ ५४ में देखिये।

> **खादीका आन्दोलन आज लगभग चौदह बरसोंसे चल रहा है। देशमें प्रचार भी खादीका अच्छा ही समझा जाता है। खादी दीन-बन्धु है। इसका प्रचार जितना ही बढ़ेगा उतना ही दरिद्र भूखे और बेकार किसानको रोटी और काम मिलेगा। देशकी बेकारी दूर होगी। जितना प्रचार हुआ है उससे कई लाख आदमियोंको जीविका मिल रही है। मिलोंसे इतना कभी संभव न था। परन्तु बेकारोंकी संख्या तो हमारे देशमें कई करोड़की है। खादीका प्रचार तो अभी और होना और बहुत होना है। फिर भी बहुतसे अदूरदर्शी लोग उससे उकता गये हैं। अनेक ऐसा समझते हैं कि देशको यथेष्ट लाभ नहीं हुआ या नहीं हो रहा है। इस भ्रमको दूर करनेके लिये श्री प्रभुदास गांधीने नीचे लिखे आंकड़ोंसे युक्त एक सुन्दर लेख कई पत्रोंमें छपवाया है। उसके आवश्यक अंश विज्ञानके पाठकोंके लाभार्थ हम यहाँ देते हैं। —रा० गौ०**

इन आँकड़ोंका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

(१) विदेशी वस्त्र तीन और पाँच रुपये गजतक बिकते हैं। सस्तेसे सस्ता कपड़ा भी =)॥ गजसे कममें देहाती दुकानें या फेरिये नहीं देते। अतः ।) गजकी औसत बहुत ही कम है। चमकीले, भड़कीले, जुराब, कोट, नकली सिल्ककी साड़ी, पगड़ी आदि पहननेकी आदतके कारण प्रत्येक व्यक्ति सालभरमें ५० गजसे अधिक कपड़ा बरतता है कम नहीं। याद रखें कि सारी गिनती सिंगल अर्जके गजोंमें की है। जैसे ५ गजकी ४५ इंचकी धोतीको ७॥ सिंगल गज माना है।

(२) जापानी कपड़ोंसे देशी मिलोंके कपड़े ज्यादा टिकनेवाले होनेके कारण, तथा स्वदेशी पहननेकी वृत्तिवाले कपड़ोंकी फिजूलखर्ची कम करते हैं, इस कारण मिलके कपड़ेकी सालाना औसत अन्दाजन ४० गजकी पड़ती है।

(३) गाढ़ा मिलके कपड़े-से भी मजबूत होनेके कारण ५ गज और भी कम बरता जायगा।

(४) चर्खा संघकी ब्लीच खादी जल्दी फटती है। अतः ४० गज।

(५) घर बने कपड़े ठोस होते हैं, बहुत टिकते हैं। फटनेके बाद भी उसे जल्दी रुखसत नहीं मिलती इसलिये ३० गजसे कम कपड़ेमें गुजर हो जाती है। =) गज खादी इस तरह पड़ेगी। २ छटांक रुई ढाई पैसे, धुनाई आधा पैसा बुनाई -) छीजन आधा पैसा, अन्य खर्च आधा पैसा। कुल =)

(६) कपास)॥ बुनाई -) छीजन और अन्य खर्च १ पैसा, कुल -)॥।

(७) बुनाई -) छीजन आधा पैसा अन्य खर्च आधा पैसा, कुल -)।

(८) बुनाईके बदलेमें कपड़ेके वजनका सूत देनेपर कुछ खर्च नहीं पड़ेगा।

विभिन्न प्रकारके वस्त्रोंमें होनेवाले व्ययका विवरण

कपड़ेकी किस्म	प्रत्येकव्यक्तिकी वर्ष भरकी आवश्यकता ३० इंच अर्जके गजोंमें	फी गज कपड़ेकी औसत दर	एक आदमीका साल भरके कपड़ेमें क्या खर्च पड़ेगा	पांच आदमी के कुटुम्बके साल भरके कपड़ोंके लिये गृहस्थ-को होनेवाला खर्च
विदेशी वस्त्र (विलायती, जापानी)	५०	I)	१२॥)	६२॥)
मिलका कपड़ा (स्वदेशी)	४०	≡)	७॥)	३७॥)
गाढ़ा (मिलका सूत, करघे-की बुनाई)	३५	=)	४।=)	२१॥।=)
बाजारू खादी [चर्खासंघकी]	४०	≡)॥।	९।=)	४६॥।=)
मोलकी रुई धुनवाकर घरकते सूतकी बनवायी हुई स्थानीय खादी	३०	=)	३॥)	१८॥)
मोलकी कपाससे घरमें उटाई, धुनाई, कताईसे बनी खादी	३०	-)॥।	३।)॥	१६।=)॥
घरकी कपास, घरकी उटाई, घरकी धुनाई, और घरकी कताईकी खादी	३०	-)।	२।-)॥	११॥≡)॥
जुलाहेको बुनाईके बदलेमें सूत देनेपर।		×	×	×
पांच आदमीके कुटुम्बमें साल भर सिर्फ १ चर्खा रोजाना सात घंटे चलानेपर	कपड़ेका खर्च कुछ न पड़कर कमसे कम५) आमदनी होगी।			

विज्ञानके दारुण दुरुपयोग

१—सिनेमामें अधनंगियोंका निर्लज्ज नाच

दर्शकोंके चरित्रको चौपट करता है, इन नारकी तमाशोंसे बचो

[तीस चालीस बरस पहले तंबाकू पीना, सुरती-तम्बाकू-खाना, शराब या भंग पीना, रंडियोंका नाच देखना, रेनाल्डके नावेल पढ़ना अवगुण समझे जाते थे। यहाँतक कि गाना-बजानातक, आवारोंके संसर्गके कारण, अच्छी निगाहोंसे नहीं देखा जाता था। बड़ोंके सामने तो ये काम कभी किये नहीं जाते थे। चोरी छिपे ये काम करनेवाले आवारा समझे जाते थे। इनके प्रचारके विरुद्ध नौजवानोंमें प्रतिज्ञापत्र लिखाये जाते थे। पढ़े लिखे समझदार अभिभावक अपने अधीन नवयुवकोंको इन अवगुणोंसे भरसक बचाये रहते थे।

परन्तु आज तो नन्हें-नन्हें बच्चे बीड़ी-सिगरेट पीते हैं, सुरती-तम्बाकू खाते हैं। उपन्यास तो गन्देसे गन्दे पढ़े जा रहे हैं और सिनेमाने तो कुशिक्षाकी हद कर दी है। हमारी यूनिवर्सिटियोंके होनहार नौजवान और लड़कियाँ भी इस बुराईके शिकार हो रहे हैं। हम इन कालमोंमें सिनेमाकी खराबियोंपर पहले भी लिख चुके हैं। "रोशनी" में गतवर्ष सितम्बरके अङ्कमें मास्टर केसर सिंहजी चोपड़ाने इस विषयपर एक अच्छा लेख दिया था, वही यहाँ पाठकोंकी भेंट है। रा० गौ०]

---

[९] १ गज कपड़ेका वजन २ छटाँकके हिसाबसे १५० गज़ कपड़ेके लिये अधिकसे अधिक २० सेर रुई कातनी पड़ेगी। इस गांवमें अच्छा कातनेवाली ६ नं० का सूत दिन भरमें औसत पाव-सेर कात लेती हैं। इस हिसाबसे २० सेर कातनेमें छुट्टीके कुछ दिन छोड़नेपर भी ४ महीने लगेंगे। साल भरमें सारे कुटुम्बकी आवश्यकतासे तिगुना सूत १ चर्खेपर आसानीसे कत जायगा। इस कारण आमदनी होना स्वाभाविक है।

ये नौ बातें गौरसे सोचनेपर खादीके विरोधका क्या कारण है पता नहीं चलता। अमेरिका, रूस, जापान राष्ट्र फी ५ आदमी १ मोटर गाड़ी लेनेकी दौड़ लगा रहे हैं। उन भीमसेनोंकी दौड़ोंमें शरीक होनेसे हमारा भूखा राष्ट्र सिर्फ थकान और बेहोशी ही पा सकता है। अगर हम अपने स्थिर गतिसे चलनेवाले चर्खेपर डटे रहें और फी ५ आदमी १ चर्खा देशमें चालू करा दें तो यह तो सम्भव नहीं कि हममेंसे कोई फोर्ड-सा धनी हो जाय किन्तु इसमें कोई शंका नहीं कि साराका सारा राष्ट्र जरूर पनप जायगा। लेकिन इतने बड़े राष्ट्रकी बात छोटे मुँहसे करना छोड़कर सिर्फ गुलरिया गाँवके ही कुछ सूचक आँकड़े देकर मैं इस निवेदनको समाप्त करूँगा। इस गाँवमें कुटुम्ब ३९८ हैं, ३७५ चर्खे हैं प्रत्येक चर्खा साल भरमें चार महीनेसे अधिक नहीं चलता, सूत भद्दा, मोटा और कच्चा होता है, बुनाईकी बड़ी दिक्कत है फिर भी चर्खेके कारण प्रत्येक व्यक्ति ४० गजमें २५ गज कपड़ा घरका बुना पहनता है। १५ गज मोल लेता है। इस तरह ३०८४५ गज कपड़ा ५ गाँवसे मोल लिया जाता है। यह अन्दाज घर-घरके मुखियोंके दिये हुए जबानी हिसाबसे मिला है। किन्तु इतना निश्चित है कि साल भरमें साढ़े सात हजारसे ड्योढ़ी दूनी रकम गाँवसे कपड़ेके पीछे बह जाती है। जब कि मालगुजारी ६४००) ही है। अगर गाँवमें चर्खा न होता तो ७५०० के बजाय ३००००) कपड़ेके पीछे इस गाँवसे निकल जाते। अगर गाँववाले शास्त्रीय ढंगसे अग्निहोत्रकी तरह घर-घरमें चर्खाहोत्र भी करने लग जायँ तो साल भरमें हर एक गाँव ५००००) खेल-खेलमें अपनी आमदनीमें बढ़ा सके और वैसा करनेमें दूसरी किसी आमदनीको नुकसान कुछ भी नहीं होगा।

अङ्कोंसे पूर्ण इस निवेदनको समाप्त करनेसे पूर्व मैं पाठकोंसे विशेषतः खादी प्रेमियोंसे प्रार्थना करूँगा कि वे अपने-अपने गांव, कस्बे और जिलोंके आंकड़ोंसे गुलरियाके इन आंकड़ोंकी तुलना करें। मेरी बातका खण्डन या अनुमोदन करें। खंडन करनेवालोंसे मुझे अपने यहाँकी परिस्थितिका अध्ययन करनेकी नयी दृष्टि मिलेगी और अपनी भूल सुधारनेका सुयोग प्राप्त होगा।

तब और अब

कोई समय था—यह मेरे बचपनके समयकी बात है—कि बच्चों और नौजवानोंसे प्लेज (pledge) अर्थात् प्रतिज्ञा-पत्र लिखाया जाता था कि "प्रतिज्ञापालक (मैं) न शराब पीऊँगा और न रंडीका नाच देखूँगा।" और इसका फलयह हुआ कि वेश्याओंके नाचका चलन भद्र और सभ्य हिन्दू मुसलमानोंके घरोंसे—क्योंकि भारतीय ईसाइयोंने तो कभी इस निर्लज्जताको अपने यहाँ घुसने ही नहीं दिया—धीरे-धीरे इस तरह मिट गया जैसे गलत लिखे गये अक्षरपर हरताल फिर जाती है। पर अब यह रोग नये रूपमें प्रकट हुआ है जिसका उपचार कठिन है क्योंकि जबसे सवाक् चित्रपट (Talkies Cinema) आरंभ हुए हैं और युरोपके वर्त्तमान फैशनोंने भारतीय संसारपर अपना सिक्का जमाया है। (ऐक्ट्रेसिज़) नटियोंका स्त्रीपार्ट करनेके लिये हर खेलमें शामिल होना जरुरी है।

पहले जमानेमें तो खेलका प्लाट लोगोंको थियेटरमें ले जानेके लिये आकर्षणका कारण हुआ करता था। पर अब केवल इतना बताया जाना ही दर्शकोंके लिये अलम् है कि मिस्टर बिलमोरिया, मिस सुलोचना अथवा माया मछन्दर वाली ऐक्ट्रस (नटी) काम करती है। इत्यादि।

न जाने किस लिये ?

ईश्वर जाने आजकल लोगोंने—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सबने—किस अभिप्रायसे धर्मका जामा पहन रखा है ? संभवतः म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, छोटी (प्रान्तीय) और बड़ी (भारतीय) कौंसिलोंमें जाने और 'तू-तू-मैं-मैं' करने और हाकिमोंको दूसरे धर्मवालोंके विरुद्ध नमक-मिर्च लगाकर सच-झूठ बोलकर धूर्तपना करने और अपना स्वार्थ सिद्ध करने न कि धर्मके आदेशोंपर चलकर अपने परमात्मा, वाह गुरु, रब, अल्लाह, गॉडको—गरज कि जिस नामसे उसे पुकारते हैं—खुश करने। उसके भक्तोंको सुख आराम देने, उनकी सेवा करनेके लिये और इस तरह आत्म-संतोष-के लिये है। अथवा—

"आक़बतकी ख़बर खुदा जाने, आज तो चैनसे गुजरती है !!!" और किन्हीं किन्हींका तो यहाँतक विश्वास है कि
"हमको मालूम है जिन्नतकी हक़ीक़त लेकिन,
दिलके खुश करनेको गालिब यह ख़याल अच्छा है !!"

वे दुराचारी हैं

हम उन लोगोंको जरूर समयवादी कहेंगे यदि समयवादके मानी 'नास्तिक' नहीं बल्कि सदाचारविरोधी हों। जोकि मुँहसे तो एक छोड़ सौ बार ईश्वरके अस्तित्वको स्वीकारते हैं पर अपने व्यावहारिक जीवनमें भूलकर भी ईश्वरीय आज्ञाओंपर नहीं चलते हैं।

सिनेमाके शौकीन

आजकलके नौजवान लड़कों और लड़कियों प्रधानतः (Collegians) कालेजमें शिक्षा पानेवालोंको तो शामको सिनेमाका एक शो (show) देखे बिना खाना नहीं पचता।

सिनेमा-संचालकोंका असली स्वरूप

अब हमारे सिनेमा-संचालकोंकी भी झाँकी कीजिये। ये लोग (Sinema stars) सिनेमा-सितारों अर्थात् नाचनेवाली पेशावर वेश्याओंको, न सिर्फ तस्वीरोंमें ही नौजवान लड़के लड़कियों, सभ्य स्त्री-पुरुषोंके सामने पेश करते हैं बल्कि उनको जीती-जागती सूरतमें रंगमंचपर ला हाजिर करते हैं और नोटिसें निकालते हैं—

"लीजिये एक टिकटमें दो मजे !"

"तमाशा और नाच दोनों !"

क्या ऐसे सिनेमा-संचालक अपनी छातीपर हाथ रखकर कह सकते हैं कि आया उन्होंने वही पेशा तो इख्तियार नहीं कर लिया जो बीस साल पहले पेशेवर रंडियाँ किया करती थीं ? ईश्वरके लिये अपनी भावी सन्तानोंपर तरस खाओ ! और इस निर्लजताभरी कमाईको—पापमय वृत्ति-छोड़ो।

दर्शकोंकी मनोवृत्ति

और फिर वे दर्शक हैं कि "पछिये कार गन्दले" जैसे गंदे गीतोंकी सिफारिश ही नहीं करते बल्कि जबतक सुन न लें, आसमान सिरपर उठाये रखते हैं।

हमारा प्रस्ताव

इसलिये हम पंजाब गवर्नमेन्ट, गवर्नमेन्ट हिन्द और कौंसिलके मेम्बरोंसे जोरदार शब्दोंमें सिफारिश करते हैं कि जिस तरह ईरानकी गवर्नमेन्टने सिनेमाके लिये कानून बनाया है उसी तरह हमारे देशके लिये भी; एक तो बारह सालसे कम उम्रके बच्चोंके लिये ऐसा सिनेमा देखना निषेध माना जाय और दूसरे वेश्याओंका स्टेजपर आना कानूनन जुर्म करार दिया जाय।

पत्र-पत्रिकाओंका कर्तव्य

हम इस संबंधमें लाहौरके दैनिक उर्दू अखबार 'मिलाप' को सम्मानकी दृष्टिसे देखे बिना नहीं रह सकते जिसने अपनी आदर्श मनोवृत्तिका परिचय देते हुए अपने समाचार-पत्रके कालम इस आन्दोलनके लिये खोल रखे हैं। आशा है कि दूसरे पत्र-पत्रिकायें भी इसके विरुद्ध लिखना उस समयतक जारी रखेंगे जबतक कि इसको कानूनी तौरपर बन्द न करा लें।

'मिलाप'से

हम १५ अगस्त १९३३ के 'मिलाप' से कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—

"मिलाप" में 'नाच और सिनेमा'के संबंधमें लाला खुशहालचन्दजी 'खुरशेद' ने (हस्ताक्षरों) अपनी सहीसे जो-जो लेख प्रकाशित किये हैं उनसे सिनेमा जानेवाली पबलिककी एक बड़ी भारी सेवा की है। मिलापका यह कदम उसके आत्मबल और दृढ़ताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस प्रकारके साहससे सिद्ध कर दिया है कि जिस बातको एक व्यक्ति सिद्धान्ततः पाप समझता है तो उसको कहनेके लिये कभी मुँह बन्द नहीं रहना चाहिये।

अन्य समाचारपत्र भी नाच-गानेके प्रोत्साहनको समझते तो बुरा हैं पर अप्रत्यक्ष कारणोंसे उनका प्रकाशन बन्द नहीं करते अथवा यों कहिये कि उनके बन्द करनेकी घोषणा नहीं करते। पर आपने अपने समाचारपत्रमें ऐसी नोटिसोंके प्रकाशनकी आज्ञा न देनेमें एक बहुत बड़े आत्मत्यागका उदाहरण रख दिया है। और एक सच्चे आर्य पुरुषकी तरह वही किया है जिसकी आर्यसमाज़ प्रत्येक आर्यसमाजीसे आशा रखता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी टीका-टिप्पणियोंसे जनतामें नाच और गानेके विरुद्ध प्रबल उत्साह पैदा हो गया है। परन्तु इन सिनेमाओंके मार्गमें जो इस चेतावनीके बाद भी ऐसे नाचोंका प्रबन्ध करनेपर तुले हुए हैं; रचनात्मक बाधा डालनेके लिये आपने कोई कार्य-क्रम निश्चित नहीं किया। सिवाय इसके कि लोग अपनी इच्छासे इनका बहिष्कार करें। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि इस विषयपर आप फिर लेखनी उठायें और लोगोंको इस निर्लज्जतासे मुक्त होनेके लिये कोई ठोस कार्य-क्रम निश्चित करें।

थोड़े दिन हुए मुझे एक सिनेमामें जानेका इत्तिफाक हुआ। कार्य-क्रमके अनुसार मिस........रंगमंचपर पधारीं। इनका पहनावा पेरिसके हालके नये-से-नये फैशनसे भी ज्यादा मुख्तसर (अत्यल्प) और (विरोध) ऐतराजके काबिल था। इसपर तुर्रा यह कि थोड़ी-थोड़ी देर बाद इनमें ऐसे परिवर्तन करके जो इन्हें पहलेसे ज्यादा नंगी कर देते थे, नाचती थीं। कहनेका तात्पर्य यह कि रानें (जंघायें) पूरी तौरपर खुल गयीं और तंग लंगोटी जो उन्होंने मेहरबानीके साथ पहन रखी थी; नृत्यके अंगसंचालनके बीच भलीभाँति दीखने लगी।

गाने जो उन्होंने (रंगमंच) स्टेजपर गाये आमतौरपर बड़े ही गंदे और सदाचारके विरुद्ध अश्लील थे। (ऐक्टिंग) हावभाव इससे भी अधिक कुरुचिपूर्ण। तिसपर दर्शकोंकी ओरसे बहुत बड़ी संख्यामें सामूहिक रूपसे बड़े जोरोंसे बार-बार (Once more ! Once more) वंसमोरके नारे लगते रहे। एक बार तो जब मिस साहिबा अपना मामूली प्रोग्राम पूरा कर चुकी थीं; ऐसा जोरदार आन्दोलन मचाया गया कि विशाल सिनेमा-भवन थर्रा उठा और लगभग पन्द्रह मिनिटके लगातार उपद्रवके बाद होहल्ला मचानेवालोंने अभीष्ट लैलाको पा लिया। क्योंकि कार्यक्रमके अनुसार मिस साहिबाके इस स्टेजपर अन्तिम दर्शन थे। इसलिये इनकी अनुपम सेवाओंके उपहार-स्वरूप एक शायर साहबने स्वरचित कसीदा पढ़नेका प्रयत्न किया। उपस्थितोंने बहुत बुरी तरह वावैला (हायतोबा) करते हुए इस बातका प्रमाण दिया कि वह ऐसी औरतोंकी शानमें प्रशंसात्मक कसीदे पढ़नेकी वाहियातीसे तो भलीभाँति परिचित हैं। अलबत्ता अर्द्धनग्न सौन्दर्यके सामने अपने हृदय और

मस्तिष्क दोनोंको खो बैठते हैं अथवा यों कहिये कि अपनेको खो बैठते हैं। तो यह उनकी मजबूरी है! इसके बाद आदरणीय प्रबन्धकोंकी ओरसे मिस साहिबाको स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया। मेरी दृष्टिमें जहाँतक संगीत और नृत्यमें कलाका संबन्ध है, मिस साहिबाने किसी योग्यताका परिचय नहीं दिया था। पदक उनकी जिन विशेषताओंका पुरस्कार है वह स्पष्ट है।

उपस्थितोंमें प्रायः अजान बच्चोंके सिवाय जो किशोरावस्थामें प्रवेश कर रही हैं, सभ्य घरोंकी ऐसी महिलाएँ और छोटी-छोटी लड़कियाँ भी थीं। बड़ी लज्जाकी बात है कि भारतकी हिन्दू और मुस्लिम सभ्य घरोंकी बेटियाँ जो संसारमें आदर्श लज्जाशीला बनकर पवित्र सतीत्वके कोनेमें तो जीवन काटें और ऐसे समागमोंमें स्वच्छन्दतापूर्वक भाग लें! जहाँ शर्म जल गयी हो, और हया मिट चुकी हो। क्या एक सरल बुद्धि और दिमाग रखनेवाली भोली भाली बच्ची मिस साहिबाके भड़कीले फैशन और उनकी आव-भगत देखकर स्पर्द्धाका अनुभव नहीं करती होगी?

वह विचार और ज्ञान जो नौजवान (युवक) लड़के और (युवती) लड़कियाँ वहाँसे प्रायः लाते हैं किस तरह गलत रास्तेपर ले जानेवाले होते हैं। इस लज्जाजनक बुराईको दूर करनके लिये मिलापने जिस मार्गका अनुसरण किया है वह श्लाघ्य है। मैं हृदयसे इसकी सफलता चाहता हूँ। और इस सम्बन्धमें उसने जो आत्मत्याग किया है वह प्रशंसनीय है। क्या आशा की जा सकती है कि लाहौर-निवासी इस दिनदूने रातचौगुने बढ़ते हुए भयंकर रोगका सदाचारके नाते तुरत इलाज करके जीवन और प्राणमय जीवनका प्रमाण देंगे?"

सिनेमा संसारमें

सिनेमाओंने इस कदर तरक्की कर ली है कि आज हर शहरमें बीसियों सिनेमाहाउस मौजूद हैं। और आमतौरपर लोग सिनेमामें दिलचस्पी लेते हैं। इस दिलचस्पीमें मर्द और औरतें दोनों बराबरकी शरीक हैं।

हमारे चरित्रपर प्रभाव

इस बातकी व्याख्याकी आवश्यकता नहीं है कि जो चीज व्यावहारिक रूपमें सामने लायी जाती है उसका प्रभाव देरतक बाकी रहता है। इसलिये यह बात स्वतः सिद्ध है कि (चित्रपट) फिल्मके परदेपर नित्य दीखनेवाले दृश्य एक-न-एक दिन मानव विचार और हृदयमें जरूर ही परिवर्तन पैदा कर देंगे। कहावत भी है—"भृंगी प्रसंगतें भृंगिहि होत सो तौ जगमें जड़ कीट महा है।"

फिल्मके परदेपर प्रायः ऐसी घटनाएँ और ऐसे दृश्य भी सामने लाये जाते हैं जो बड़े ही कुरुचिपूर्ण होते हैं। और इन्हें औरतें क्या मर्द भी शायद देखना पसन्द न करेंगे। परन्तु आमतौरपर इसका कोई खयाल नहीं किया जाता। माना कि अभी हिन्दुस्थानमें इस चीजको महज दिलबहलावका जरिया माना गया है, पर हमारे भोलेभाले हिन्दुस्थानियोंको शायद मालूम नहीं है इन सदाचरणोंमें यहींसे परिवर्तन आरम्भ होने लगते हैं।

पाश्चात्योंको अभिशाप

पाश्चात्य, जिन्हें अपनी आधुनिक सभ्यतापर बड़ा गुमान है। और जो अपनेको सभ्यता और उन्नतिका ठीकेदार समझते हैं। आज वहाँ भी यह बात बड़ी कड़ाईके साथ अनुभव की जा रही है और वही सभ्यता उनके लिये अभिशाप बन गयी है?

पाश्चात्योंमें अपराधोंकी बाढ़

पाश्चात्योंमें आमतौरपर नाचघरों आदिमें जिस कदर नग्नता और अश्लीलताके प्रदर्शन किये जाते हैं उनकी कोई मिसाल नहीं मिल सकती। चुनांचे सिनेमामें भी नवीन आविष्कारका सेहरा इसीके सिर है। और वहाँ आज इसकी कलासे रोजाना लाखों पौण्डका फायदा लोग उठाते हैं लेकिन यह बात भी याद रखने के काबिल है कि जिस कदर वहाँ सिनेमामें उन्नति हो रही है उसी कदर वहाँ अपराधोंकी संख्यामें वृद्धि भी हो रही है।

विज्ञानका दुरुपयोग

वहाँ जरायमपेशा लोग जुर्म करते समय वैज्ञानिक ढंगपर अपने प्रदर्शन करते हैं। और विज्ञानके अनोखे-अनोखे आविष्कारोंसे इन लोगोंको लाभ उठानेका अवसर मिलता है।

२—विश्व-शान्तिके घातक 'शस्त्र-कारखाने'

निःशस्त्रीकरण क्योंकर सफल हो !

(लेखक—एक भारती आर्य)

बारूद विज्ञानका ही आविष्कार है। बारूदसे लेकर डैनामाइट, मशीनगन, आर्मर्डकार, विषैली गैस, विमान, जेपलिन, पनडुब्बी, किलातोड़ तोपें, जलस्थल सुरंग, युद्धपोत इत्यादि-इत्यादि हिंसाके यावत् साधन विज्ञानके ही अनुसन्धानके फल हैं। विज्ञान-वृक्षके ये वे फल हैं जिनको खाकर मनुष्यका पतन हो रहा है। विज्ञानका यह दुरुपयोग भी पूंजीपतियोंके हाथमें है। वे जैसे हो वैसे राष्ट्रोंका परस्पर युद्ध कराके अपना उल्लू सीधा करते हैं। निःशस्त्रीकरणकी असफलताका यह रहस्य "एक भारतीय आर्य्य" के नामसे किसी लेखकने १६ सितम्बरके साप्ताहिक "प्रताप"में खोला है। विज्ञानके इस महा घातक दुरुपयोगकी कहानी "विज्ञान"के पाठकोंकी जानकारीके लिये हम यहाँ देते हैं।

—रा० गौ०

आमतौरपर शांतिके समय शस्त्र-व्ययकी समानता आगके बीमेकी किस्त–प्रीमियमसे दी जाती है। यह समानता और भी अधिक उपयुक्त होती यदि इसका अर्थ यह भी न निकला होता कि आगकी बीमा कम्पनियाँ ही खास आग लगानेवाली होती हैं।

शस्त्र-कारखानोंके हथकंडे

राष्ट्रसंघने सन् १९२० में एक कमीशन मुकर्रर किया था कि वह युद्ध सम्बन्धी शस्त्र-व्यवसायकी जाँच करके रिपोर्ट दे और संसारके युद्ध शस्त्रोंके घटानेके विषयमें अपने प्रस्ताव पेश करे। उस कमीशनने जाँच करनेके बाद मालूम किया कि युद्ध-शस्त्रोंको बनानेवाले युद्धोंको उकसाते, वे रिश्वत देकर या अन्य प्रकारसे सार्वजनिक अफसरोंपर अपना बेजा प्रभाव डालते, झूठी और भड़कानेवाली खबरें फैलाते, समाचारपत्र और अनेक प्रकारकी प्रचारक संस्थायें चलाते, प्रतियोगितासे बचनेके लिये दृढ़ आर्म्स ट्रस्ट बनाते और फिर बहुत ही अधिक दामोंपर अपना माल बेचते हैं।

खेद है कि जिन प्रमाणोंके बलपर यह इल्जाम लगाये गये थे वे प्रकाशित ही नहीं किये गये थे। पर उन इल्जामोंके पक्षमें कुछ थोड़ा-सा सबूत इकट्ठा किया जा सकता है और यही प्रस्तुत लेखकका मूल विषय है। युद्ध रोकनेके लिये शस्त्रोंरूपी बीमाका प्रीमियम यानी विश्व-भरका शस्त्र-व्यय, आज १२ अरब रुपयेके करीब है और वह दिनपर दिन बढ़ता जाता है। ऐसी दशामें यह १२

मुजरिमोंका मददगार सिनेमा

एक साधारण जुर्म करनेवालेको अपने पेशेमें उन्नति करनेके लिये सिनेमासे बहुत बड़ी मदद मिलती है।

किस प्रकार

चूंकि खेलमें घटनाओंसे सहायता ली जाती है और जबतक इन घटनाओंमें कोई आश्चर्यजनकता न हो तबतक वे सर्वसाधारणके चित्ताकर्षणका कारण नहीं बन सकतीं। इसलिये प्रयत्न किया जाता है ऐसी आश्चर्यान्वित गुत्थियोंवाली घटनायें और दृश्य उपस्थित किये जायँ जो सर्वसाधारणको अधिक से अधिक अपनी ओर खींच सकें। इसलिये केवल एक दिलचस्पीके लिये ही सिनेमाके कलाकार जीवनके एक रुखको बिलकुल भुला देते हैं और इनको विचारनेका अवसर ही नहीं मिलता, कि इससे हमारे सुखमय जीवन और राष्ट्रिय जीवनपर क्या प्रभाव पड़ेगा।

—"रोशनी"से [अनुवादक र० द० मिश्र]

अरबकी रकम जिनकी जेबोंमें जाती है, उनकी स्थिति और कार्य प्रणालीका यहाँ अवलोकन करना बड़ा रोचक विषय प्रतीत होता है । पाठक स्वयं देखेंगे कि यह विषय कितना कौतूहलोत्पादक और रोंगटे खड़े करनेवाला है! यद्यपि विषय बड़ा है पर यथाशक्ति छोटा करनेका प्रयत्न करूँगा ।

जड़में पूँजीवाद

शस्त्र-व्यवसायकी जाँच करते समय सबसे पहले हमारी निगाह इसकी बहु-जटिलता, असीम पूँजीवादिता-पर पड़ती है । वर्तमान युगके युद्धोंके लिये बहुत अधिक शस्त्र पैदा करनेकी शक्ति रखनेवाले कारखानोंका होना अनिवार्य है । ३० लाख मनुष्योंकी जान लेना और दूसरे ४० करोड़को जख्मी करना एक ऐसा कार्य-व्यवसाय है जिसके लिये अत्यन्त कलाकुशल पद्धतिकी आवश्यकता पड़ती है । आजकलके युद्ध-सम्बन्धी अनेक प्रकारके हथियार बनानेवाले व्यवसायका अन्य दूसरे खास-खास व्यवसायों—स्टील, कैमीकल्स आदिसे घना सम्बन्ध है । आज केवल थोड़ेसे इने-गिने बड़े भारी कारखाने ही सारी दुनियाँ भरके शस्त्र-व्यवसायको अपने हाथोंमें किये हुए हैं और हर प्रकारके जा-बेजा तरीकोंसे अपने अनाप-शनाप मुनाफोंकी खूब होशियारीसे हिफाजत करते हैं । देशभक्तिकी डींग मारते हुए भी युद्ध शस्त्र बनानेवाले कारखाने मित्र या शत्रु सब प्रकारके देशों और फिर जिस किसीके पास खरीदनेको पैसा भर हो, उन्हें अपना माल धड़ाधड़ बेंचते हैं ।

षड्यन्त्र और देशद्रोह

हम देखते हैं कि महायुद्धके समयमें जर्मनीके कारखाने शत्रु राष्ट्रोंके पास प्रतिमास २५०००० टन माल भेजते थे । इसी तरहपर फ्रान्स और इङ्गलैण्डका कच्चा माल शस्त्र बनाये जानेके लिये स्वीडन और अन्य निष्पक्ष देशोंसे होकर जर्मनीके शस्त्रोंके कारखानोंमें पहुँचता था । कैसी रोंगटे खड़े करनेवाली बात है कि जर्मनीकी क्रुप्स फैक्टरीकी बनाई तोपें जर्मनीके शत्रुओंको बेची जाती थीं और फिर वही तोपें जर्मनीके ऊपर गोले बरसाती थीं । इङ्गलेण्डकी विकर्स फैक्टरीमें बनी हुई बन्दूकें गैलीपोलीमें अंग्रेज सिपाहियोंके ही मारनेके लिये काममें लायी गयीं । जर्मनीके 'वायर एण्ड केबुल वर्क्स'के बनाये हुए तारके जालोंसे जर्मन लोग ही डावोमेण्टमें पकड़कर चीरे गये और जर्मनीकी 'क्रुप्स' फैक्टरीके बनाये हुए बम क्रुप्सके ही देशवासियोंपर अँधाधुंध बरसाये गये ।

इन शस्त्र उत्पन्न करनेवाले कारखानोंमें इंगलेण्डकी 'विकर्स आर्मस्ट्रांग' जर्मनीकी 'क्रुप्स' फ्रांसकी 'श्लीडर' जापानकी मित्सुई और अमेरिकाकी बेथालहम स्टील कारपोरेशन नामक कम्पनियाँ प्रमुख और विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं । ये कम्पनियाँ थोड़े दिनोंमें ही शस्त्रका व्यापार करके विभिन्न राष्ट्रोंको परस्पर लड़ाकर षड्यन्त्र, रचकर तथा झूठी बातें फैलाकर मालामाल हो गयीं और बराबर इन्हीं ढंगोंसे उन्नति कर रही हैं ।

अब हम दो एक घटनाओंका उल्लेख करके यह जाननेकी कोशिश करेंगे कि किस तरह ये अस्त्र-शस्त्र बनानेवाले झूठी खबरें आदि फैलाकर राष्ट्रोंको अकसर धोखा देते और इस प्रकारसे अपना कारोबार बढ़ाते हैं । धोखा देकर अपना हित सिद्ध करना तो इनका नित्यका काम है ।

पुटीलाफ-काण्ड

अन्ताराष्ट्रिय विषयोंमें रुचि रखनेवाले अधिकांश पाठक पुटीलाफ काण्डसे परिचित होंगे। १९१४के जनवरी मासमें पेरिस-इको नामक समाचारपत्रने सेण्ट पीटर्सबर्गसे प्राप्त एक एक तारको छापा । उसका आशय यह था कि रूसका शस्त्र-कारखाना 'पुटीलाफ़' जो आर्थिक संकटमें है अपनेको 'जर्मनीके 'क्रुप' कारखानेके हाथ बेचनेको तैयार है और क्रुप उसे खरीदनेको बहुत उत्सुक है । इस खबरको शस्त्र-कारखानोंके समाचार पत्रोंने बड़े जोर-शोर से छापना शुरू किया । इस समाचारको पढ़कर फ्रांसके सरकारी और राजनैतिक क्षेत्रमें हलचल मच गयी । कारण यह था कि इस 'पुटीलाफ' कारखानेके पास फ्रांस सरकारके बहुतसे आर्डर थे । इससे फ्रांसवाले डरे कि "पुटीलाफ" के क्रुपके हाथमें चले जानेसे फ्रांसकी शस्त्र-सम्बन्धी बहुतसी गुप्त योजनायें उसके दुश्मन राष्ट्र जर्मनीके हाथ लग जायँगी । इधर रूसमें 'पुटीलाफ' कम्पनीने रूस सरकारसे २० लाख पौंड (यानी ३ करोड़ तीस लाख रुपयेके क़रीब) अपनी स्थिति सँभालनेके लिये मांगा । दूसरी ओर श्नीडर क्रूसाट,

(फ्रांस का शस्त्र-फर्म) पहलेसे ही 'पुटीलाफ'की व्यवस्थामें काफी रुचि रखती थी, उसने शीघ्र ही यह रकम उसे दे दी। और फिर अन्तमें फ्रांस सरकारने रूसको २ करोड़ ५० लाख पौंड (३३ करोड़ ३४ लाख रुपयेके लगभग) का कर्ज इस पुटीलाफ कारखानेको जर्मनीके हाथ जानेसे बचानेके लिये दिया। कुछ ही दिन बाद इस काण्डका भण्डाफोड़ हुआ और स्पष्ट प्रमाणोंद्वारा यह साबित किया गया कि 'विकर्स'के एजेण्ट सर जहराफ और रूस सरकारके युद्ध-विभागके सदस्योंने गुप्तमन्त्रणा करके यह षड्यन्त्र रचा था जिससे कि रूसके युद्ध-विभागकी शक्ति बढ़ जावे। जहराफका इस षड्यन्त्रमें शामिल होनेका यह मकसद था कि 'विकर्स' को भी कुछ भाग मिल जायगा। इन लोगोंकी इच्छाकी पूर्ति भी हो गयी। रूसको फ्रांससे रुपया मिल गया और उधर विकर्सको इन नये माल तैयार करनेके ठेकोंमेंसे बहुत काफी भाग मिल गया। इसी तरहपर ये लोग विभिन्न राष्ट्रोंकी सरकारोंकी झूठी खबरें उड़ाकर डरवाते हैं कि उनका विपक्षी बुरी तरहसे बहुत जोरोंके साथ "गुप्त रूप" से अपनी सैनिक-शक्ति बढ़ा रहा है, और इस प्रकारके भय दिखलाकर उस सरकारको भी अपनी सैनिक शक्ति बढ़ानेको मजबूर करके उनसे शस्त्रोंको खरीदनेके लिये मनमाने आर्डर ले लेते हैं। सन् १९०९ में इसी तरहसे डरवाये गये लार्ड बैलफोरने पार्लियामेंटको यह खबर सुनाकर घबराहट में डाल दिया कि ३ सालके अन्दर जर्मनीका जहाज़ी बेड़ा इंगलैंड से कई गुना आगे बढ़ जायगा। पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि मुझे यह खबर बहुत ही गुप्त और विश्वस्त-सूत्रसे मिली है। स्थितिकी गम्भीरताका विचार कर सतर्क रहनेके लिये शीघ्र नये जहाज बनानेके लिये २८ लाख पौंड (३ करोड़ ७४ लाख रुपयेके लगभग) मंजूर कर दिये गये। जहाजोंको खरीद लेनेके बाद भण्डाफोड़ हुआ कि यह गुप्त विश्वस्तसूत्रसे मिली हुई खबर झूठी थी। इधर इंगलैंडने व्यर्थ में २८ लाख पौंडके जहाज खरीद लिये थे जिनकी कोई जरूरत न थी।

एकबार विकर्स कम्पनीका एजेण्ट सर जहराफ हवाखोरीके लिये 'एथेन्स' गये और वहाँपर एक 'सब मैरीन' ग्रीसको टर्कीका डर दिखला कर बेच दी। इसके बाद टर्की गये और वहाँकी सरकारसे यह कहा कि ग्रीसने चुपके-चुपके एक 'सबमैरीन' खरीदी है इसमें कोई रहस्य है और इस कारण टर्कीको सतर्क रहना चाहिये। तुर्क सरकार चकमें में आ गयी और उनसे सबमैरीनें खरीद लीं, इस तरहकी घटनाएँ नित्य प्रति होती हैं। स्थानाभावके कारण इतना ही इशारा काफी है। पाठक स्वयं ख्याल कर सकते हैं कि ये लोग विश्व-शान्तिके कितने बाधक हैं।

इनके हिस्सेदार कौन हैं ?

इस समयपर इन आग बरसानेवाले, सर्व विध्वंसकारी, और जहर उगलनेवाले कारखानोंके हिस्सेदारोंपर एक दृष्टि डालना अनुचित न होगा। जरा ध्यानसे देखियेगा कि ऐसे कारखानोंके हिस्से रखनेवालोंमें कौन-कौन लोग हैं। १९१५ में इङ्गलैन्डके "आर्म-स्ट्रांग" कम्पनीके स्टाकहोल्डरोंमें ६० नोबुलमेन, २० नाइट, १५ बैरोनेट, ८ पार्लियामेण्टके मेम्बर और दो फौज और नौसेनाके अफसर थे।

अब जरा 'विकर्स' का भी मुलाहिजा कीजिये। इसके स्टाकहोल्डरोंमें १९१५ में थे—कैसिल, एडीलेड और न्यूपोर्टके बिशप महोदय, लार्ड लाइड जार्ज, लण्डनके भूतपूर्व लार्ड मेयर चार्ल्स वैकफील, साइन चेम्बरलेन, दोनों लार्ड हेलसप, आदि-आदि। इन नामोंको देखकर दाँतोंके बीच उँगली दबानेके सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता।

अमेरिकाकी फर्में वहाँके सरकारी युद्ध-विभागद्वारा १९२४ में स्थापित 'अडजेस्टेबुल प्राइस कन्ट्रैक्ट' की संरक्षतामें बहुत आसानी और सावधानीसे अपने मुनाफोंकी हिफाजत करती हैं। इस कंट्रैक्टके अनुसार उन फर्मोंको साधारण मुनाफा और लागतके दाम अवश्य दिये जाते हैं, पर तिसपर भी ये अपनी प्रचारक उत्तेजक प्रवृत्तियोंसे बाज नहीं आतीं। युद्ध व्यवसाइयोंके मुनाफोंको देखकर आँखे चकाचौंध हो जाती हैं और तब पता चलता है कि यह विश्वकी शान्तिके लिये तो एकदम कालस्वरूप हैं।

शस्त्र-कम्पनियोंके मुनाफे

अमेरिकाके 'वेथलिहेम स्टील कारपोरेशन'के (बी क्लास) द्वितीय श्रेणीके साधारण स्टाकहोल्डरोंको १९१७ में २०० फीसदीका डिवीडेन्ड मिला था। इस कारपोरेशनके मुनाफे १९१४ में ९० लाख डालर (आजकल २ करोड़ ३४

लाख रुपयेके लगभग) थे पर केवल ४ साल बाद १९१२ में बढ़कर ५ करोड़ ७० लाख डालर (१४ करोड़ ८२ लाख रुपयेके करीब) हो गये। डेलवियरकी 'हरकुलीज पाउडर' कम्पनीने १९१४ में केवल ८ फीसदी डिवीडेन्ट दिया था, पर १९१५ में ९५ फीसदी बाँटा, और १९२२ में १०० फीसदीका डिवीडेण्ड घोषित किया। (एना कोन्डा कापर कम्पनी) १९१४ में घाटेमें थी पर १९१६ में ही ३ करोड़ ३० लाख डालर (८ करोड़ ५२ लाख रुपयेके लगभग) का मुनाफा घोषित किया। 'यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कारपोरेशन' ने महायुद्धके पहले ३ सालमें १ करोड़ ८० लाख (४ करोड़ ६८ लाख रुपयेके लगभग) का मुनाफा कमाया, १९१६से १९२२ तकके अन्दर ६३ करोड़ ३० लाख डालर (१ अरब ६४ करोड़ ५० लाख रुपये) का मुनाफा उठाया। यह तो हुआ अमेरिकाकी फर्मोंका हाल। जब कि एक शान्ति-प्रिय, युद्ध-विरोधी, विश्वके राजनैतिक झगड़ोंमें निष्पक्ष और गत महायुद्धमें तटस्थ रहनेवाले देशके कारखानोंके मुनाफोंकी यह दशा है तब तो फिर उन कारखानोंकी कौन बात करे जिनके देश स्वयं युद्धमें आग बरसाते थे। फ्रांसकी श्नीडर कंपनीने १९१८ में १२० फीसदीका डिवीडेण्ड बाँटा था। युद्धके समयमें तो खैर सभी कारखानोंको असंख्य मुनाफे हुए पर हम यह जाननेकी कोशिश करेंगे कि शान्तिके जमानेमें इनके मुनाफोंकी क्या दशा रहती है। इस जाँचके लिये हम उपरोक्त कारखानोंमेंसे सबसे छोटे कारखानेको लेंगे ताकि हमें दूसरे बड़े कारखानोंके मुनाफोंका ज्ञान, उनकी गिरीसे गिरी हालतमें भी ठीक तरहसे प्राप्त हो जाय।

शान्तिके समय मुनाफा

हम जैकोस्लैविया स्थित 'स्कोडा' कम्पनीको लेंगे। क्योंकि यही हमें सबसे छोटी और सबसे गिरी हालतमें नजर आती है। यह श्नीडरकी एक अधिकृत शाखा है। इस कम्पनीके डिवीडेण्ड १९२०में ५, १९२१में ८॥, १९२२ में १०, १९२३में १०, १९२४में १२$\frac{१}{२}$, १९२५में १३$\frac{३}{४}$, १९२६में १५$\frac{३}{४}$, १९२७में १७$\frac{१}{२}$, १९२८में २१$\frac{७}{८}$, १९२९में २८$\frac{३}{४}$ और १९३०में भी ढाई फीसदी बाँटे गये थे। स्कोडा कम्पनीके डिवीडेण्ड विवरणसे स्पष्ट है कि शान्तिके समयमें भी शस्त्र-कारखानोंको कुछ कम मुनाफे नहीं होते। इन कंपनियोंने आपसमें एक दूसरेसे सम्बन्ध जोड़कर एक पूर्ण एकाधिकारी ट्रस्ट-सा कायम करके प्रतियोगिताका डर ही मेट दिया है। फिर प्रतियोगिताके न होनेके कारण यह मनमाने दामोंपर अपना माल बेचते हैं। इस सम्बन्धमें भी कुछ प्रमाण एकत्र करके पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करनेमें हम समर्थ हैं।

मनमाने दाम

१९०५ से लगाकर १९१५ तकके अन्दरमें 'डू पान्टकी कम्पनी' ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाको, २,५०,००,००० डालरकी कीमतकी बारूद, ५३ सेन्टसे लगाकर ८० सेन्ट प्रति पौंडके हिसाबसे बेची (१०० सेन्टका १ डालर होता है)। पर सरकारी विशेषज्ञोंने स्वयं इस किस्मकी बारूद तैयार की तो उसकी प्रति टनके हिसाबसे किसी कदर ज्यादा न निकली लागत केवल ३८ सेण्ट प्रति पौंड पड़ी। १९३० में इसी कम्पनीने अमेरिकन सरकारको ७००० बम (४$\frac{७}{१०}$ इंची) २५.२६ डालर प्रतिशतके हिसाबसे बेचे, पर गवर्नमेंटकी फैक्टरी "फ्रैंकफोर्ड आर्सिनल" ने बम १४।१५.४५ डालर प्रतिशतके हिसाबसे तैयार कर दिये। युद्धके कुछ ही दिन पहले अमेरिकन युद्ध-विभागने बेथलिहेम, मिडवेल और कार्नेगी कम्पनियोंसे ४४० डालर प्रति टनके हिसाबसे आर्मर प्लेट खरीदे परन्तु सरकारी जाँचके बादमें मय साधारण मुनाफेके उनकी कीमत २४७ डालर।

इंगलैंडमें ब्रिटिश सरकारको धुआँ-रहित बारूदके लिये एकबार २ शिलिंग ३ पेन्स प्रतिपौंड देना पड़ा। परन्तु शक होनेपर एक कमीशन उसकी लागत मालूम करनेके लिये मुकर्रर किया गया। उस कमीशनने मालूम किया कि इस कीमतके अनुसार कम्पनीको १०५ फीसदीका मुनाफा था। इसके बाद इसकी कीमत घटाकर १ शि० ७$\frac{३}{४}$ पेन्स प्रति पौंड कर दी गयी। इस तरह केवल इसी एक चीजपर इङ्गलैंडकी सरकारको ४ करोड़ ९० लाख पौंडकी सालाना बचत हो गयी। इसी प्रकारकी कई और घटनायें हैं पर स्थानाभावके कारण उनका उल्लेख करना व्यर्थ ही है। इन्हीं दो-तीन घटनाओंसे उनका भी अनुमान किया जा सकता है।

त्रिदोष-मीमांसा और उसके आक्षेपकर्त्ताओंकी निन्द्य विधि*

लिखित शास्त्रार्थको व्यक्तिगत आक्षेपोंसे दूषित किया

(ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

१. लिखित शास्त्रार्थ अधिक महत्त्वपूर्ण होता है ।

कविराज उपेन्द्रनाथदास प्रोफेसर तिब्बिया कालेज देहली, कविराज लाला हरदयाल जी वैद्य वाचस्पति अध्यापक दयानन्द आयुर्वैदिक कालेज, तथा आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेन्द्रमोहन जी बी० ए०, प्रिन्सिपल दयानन्द आयुर्वैदिक कालेज तथा सम्पादक आयुर्वेद-संदेश, इन तीनों व्यक्तियोंने मिलकर त्रिदोषकी दृढ़ भित्तिको गिरती हुई देख बड़ा बलवान् सहारा दिया है । त्रिदोष-मीमांसा नामक पुस्तक त्रिदोषकी प्राचीन दृढ़ भित्तिको अपने प्रबल युक्तिपूर्ण आक्षेपकी ठोकरसे गिरानेवाली ही थी कि इस प्रबल मुष्टिकी चोटको वज्रवत् त्रिदोष-भित्तिपर गिरता देख उसे तो रोकनेमें इन सज्जनोंने अपनेको असमर्थ देखा, परन्तु संसारमें यश लूटनेकी इच्छासे, कोई और उपाय सुलभ न देखकर, अपनी-अपनी विद्वत्ताका परिचय गालियों और व्यक्तिगत आक्षेपोंसे देने लगे हैं । अपने पक्षकी निर्बलताका वे इससे अच्छा प्रमाण दे नहीं सकते थे । इस बातका नमूना देखना हो तो अभी हालका (अक्तूबरका, आठवाँ अंक) आयुर्वेद-संदेश पढ़ लीजिये । कविराज उपेन्द्रनाथदास जी तो अपनी पगड़ी बगलमें दबाकर मौखिक शास्त्रार्थके लिये बारम्बार ललकार रहे हैं । आप कहते हैं—

"ऐसे गम्भीर विषयका उत्तर दूर बैठकर देना कठिन है, क्योंकि कभी-कभी आपसे कुछ पूछना पड़ेगा । दूसरी बात यह है कि उत्तरदाताका परीक्षकोंसे तथा परीक्षकोंका परस्पर भी एक दूसरेसे दूर रहकर ऐसे गम्भीर विषयपर विचार नहीं किया जा सकता । कोई परीक्षक ऐसे गम्भीर विषयपर सत्य निर्णय करनेके लिये जबतक विद्वत्सभामें सम्मिलित होकर उत्तरदाताके उत्तरकी युक्ति तथा तर्कद्वारा परीक्षा न करे, तबतक सत्य सिद्धान्तका निर्णय नहीं कर सकता ।"

* इस लेखमें जो प्रत्याक्षेप हैं, उनके लिये लेखक व्यक्तिगत रूपसे जिम्मेदार है । रा० गौ०

निःशस्त्रीकरणकी चर्चा मजाक है !

इन भयंकर कालस्वरूप कारखानों, इनके इस प्रकारके मालिक, इनकी ऐसी कार्यपद्धति, इनकी जटिलता, इनके-द्वारा संचालित समाचारपत्र, इनकी असीम पूँजीवादिता, इनके अपरिमेय मुनाफों, इनके जहराफों जैसे गुप्तचरोंके रहते हुए निःशस्त्रीकरणकी चर्चा करना केवल मजाक करना है । इन असाध्य व्याधियोंके रहते संसारमें स्थायी शान्ति कायम करनेकी सदिच्छा केवल हवामें किले खड़े करनेका सुन्दर स्वप्न है । स्थायी शांतिके लिये इन व्याधियोंको मिटाना जरूरी है । पर हम देखते हैं कि इन कारखानोंकी स्टाक होल्डरोंकी लिस्टोंमें प्रभावशाली सार्वजनिक व्यक्ति—विशप, लार्ड, नोबुल, नाइट, सरकारी उच्च कर्मचारी लोग भरे हैं जिनके हाथों देशकी राजनीति कठपुतलीकी भाँति नाचती है, भला हम इन महानुभावोंसे कैसे आशा कर सकते हैं कि ये अपनी राजनैतिक चालोंद्वारा सच्चे दिलसे निःशस्त्रीकरणको सफल बनानेके लिये कभी भी चेष्टा करके अपनी पूँजीको खतरेमें डालनेको तैयार होंगे ?

इस लेखमें लेखकका केवल एक आशय—यथाशक्ति प्राप्त प्रमाणोंद्वारा राष्ट्र-संघद्वारा स्थापित कमीशनके इन कारखानोंके खिलाफ, इल्जामी निर्णयोंकी सत्यता सिद्ध करना था । इसी कारण लेखक केवल प्रमाण देकर चुप रहता है और स्वयं आलोचना करनेसे यथासाध्य दूर रहा है । क्योंकि दर असल उसका आशय केवल प्रमाण देना था । पता नहीं लेखक अपने प्रयत्नमें कहाँतक सफल रहा है । इसका निर्णय तो पाठकोंपर ही निर्भर है ।

शास्त्रार्थ कितनी तरहसे किया जाता है, और इसके कितने भेद हैं, इससे तो आप बिलकुल अनभिज्ञ नहीं हो सकते, किन्तु जान पड़ता है कि आप एकमात्र मौखिक शास्त्रार्थके अभ्यासी हैं। कविराज जीको यह बात अपने जेहननशीन कर लेनी चाहिये कि मौखिक शास्त्रार्थसे लेख-बद्ध शास्त्रार्थ कई बातोंमें अधिक महत्व रखता है। लेखबद्ध शास्त्रार्थमें वादी या प्रतिवादी अपने कथनसे फिर नहीं सकता। एकबार उसने जो कुछ लिखकर दे दिया उसको वह बदल नहीं सकता। लिखकर देना अपनी सबलता, निर्बलता, सत्यता, असत्यताको दूसरेके हवाले कर देना है। जब मेरी ओरसे त्रिदोष विषयक समस्त आलोच्य बातें लिखकर उपस्थित कर दी गयीं हैं। हम अमृतसरमें बैठे हैं लिखनेवाले। आप दिल्लीमें बैठे हैं पढ़नेवाले, और वहाँसे बैठे-बैठे आप लाहौरके 'आयुर्वेद-संदेश'के पृष्ठके पृष्ठ वितण्डा-वादसे काले कर रहे हैं। यह क्या है? क्या यह शास्त्रार्थ नहीं?

किसी विषयपर वादी-प्रतिवादीमें मौखिक या लेख-बद्ध विवाद करना, विचार करना शास्त्रार्थ कहाता है। पूर्वकालमें भी लेखबद्ध शास्त्रार्थ होते थे जिसका प्रमाण शंकर-दिग्विजय आदि हैं। यदि उक्त शास्त्रार्थ मौखिक होते तो हम आज उन शास्त्रार्थोंके स्वरूपको कभी भी न जान पाते। सदियोंपर सदियाँ व्यतीत होती चली जाती हैं उनके पश्चात् जो भी बड़ेसे बड़े विद्वान् होते हैं सब उन शास्त्रार्थोंको पढ़ते हैं और उनकी योग्यताको मालूम कर लेते हैं, मौखिक होते तो मुखसे निकलते ही हवामें विलीन हो गये होते। फिर मौखिक शास्त्रार्थको सुनने-वाले ही कितने होते हैं? लेखबद्ध शास्त्रार्थको आप चाहे कविराज गणनाथसेन जीके पास भेजिये, चाहे श्रीलक्ष्मीपति जीके या यादव जी त्रिविक्रम जी आचार्यके पास, हरएक विद्वान् उन्हें पढ़कर वादी-प्रतिवादीके पक्षको अच्छे प्रकार देख सकता है, समझ सकता है और अपना निर्णय भी विद्वन्मण्डलीके समक्ष रख सकता है। आपको हमारे निर्णीत निर्णायकोंपर विश्वास न हो तो आप ही अपनी ओरसे नये नाम तजवीज कर दीजिये, अथवा निर्णायकोंके निश्चयका काम अखिल भारतीय वैद्यमहामण्डलके सुपुर्द कर दीजिये, और फिर कलम उठाइये।

२—व्यक्तिगत आक्षेपसे आक्षेपककी निर्बलता सिद्ध होती है।

आप कलम उठायँगे क्या? दस पंक्तियाँ लिखते नहीं हैं कि चट निग्रहकोटिमें आ जाते हैं। 'आयुर्वेद-संदेश'में लिखने तो बैठे हैं त्रिदोष-मीमांसापर, किन्तु आपके समस्त लेखको पढ़ जाइये पुस्तकके मूल विषयको आप स्पर्शतक नहीं करते। कहीं तो आप मुझपर व्यक्तिगत आक्षेप करते हैं, कहीं मेरे स्वतन्त्र विचारोंके प्रति जहर उगलते हैं, कहीं डाक्टरोंको भला-बुरा कहते हैं, तो कहीं विज्ञान-वादको कोसते हैं, यह है आपके शास्त्रार्थका क्रम।

आप अपने लेखोंको,—जो त्रिदोष-मीमांसाके खंडनमें लिखे गये हैं,—किसी विद्वान् व्यक्तिके पास भेजकर जरा उनसे पूछिये तो सही कि यह उत्तर कैसा है? फिर आपको अपनी सफलताका पता लग जायगा। पर आप लिखेंगे ही क्यों? आपकी दृष्टिमें तो अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलन परीक्षाकी फीस बटोरनेसे ही छुट्टी नहीं पाता। आप लिखते हैं कि "मैं सम्मेलनके पदाधिकारियोंकी असलियतको जानता हूँ। आवश्यक होगा तो पदाधिकारियोंद्वारा मिले पत्रको भी जनताके सामने रख दूँगा।"

इसका अर्थ यह है कि अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलन-में सब स्वार्थी और अयोग्य लोग एकत्र हो रहे हैं। क्योंकि आप लिखते हैं कि "आयुर्वेद विरोधके लिये योग्य व्यवस्था करनेका समय उनके पास नहीं है।" यह अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलनपर कितना अनुचित और असह्य दोषारोपण है। इसी प्रकार माननीय डा० प्रसादीलाल जी झा० एल० एम्० एस्० की निःस्वार्थ आयुर्वेद सेवाओंपर खूब पानी फेरा है। आप उनके सम्बन्धमें मेरी निम्न-पंक्तिका उद्धरण देकर कि—"आप लगातार छः वर्षतक अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलनके प्रधान मन्त्री रहकर आयुर्वेद-संसारकी सेवा कर चुके हैं" आप लिखते हैं "स्वामीजीका यह कथन कहाँतक सत्य है डाक्टर साहबसे पूछे जानेपर वह स्वयं बता सकते हैं।"

उक्त कथनका स्पष्ट अर्थ यह है कि मैं झूठ बोलता हूँ, डाक्टर साहबने आयुर्वेदकी कोई सेवा नहीं की, न वह मन्त्री ही रहे।

कविराज जी महाराज जिन दिनों डाक्टर प्रसादीलाल जी झाने आयुर्वेद-सम्मेलनको सुव्यवस्थित करनेके लिये मन्त्रित्व-पदको स्वीकार किया था तथा इसके लिये जो कुछ उन्हें आर्थिक, शारीरिक तथा मानसिक हानियाँ उठानी पड़ीं उनसे पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल, पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री, पं० रघुबरदयाल जी भट्ट, पं० रामेश्वर जी शास्त्री आदि कानपुर निवासियोंसे पूछिये तब आपको उनकी सेवाओंकी असलियतका ज्ञान हो सकता है। पर आपको हो किस तरह, जिस जमानेमें डाक्टर साहबने आयुर्वेदकी सेवा की थी सम्भव है उस समय कविराज जी किसी पाठशालाके विद्यार्थी हों!

३—निर्बल तार्किक पूर्वपक्षका अत्यन्ताभाव चाहता है

पर आपकी दृष्टिमें तो कोई योग्य नहीं जँचता। "अनुभूत योगमाला" का सम्पादक बिचारा अपनी मतिके अनुसार त्रिदोष-मीमांसाके सम्बन्धमें समालोचना करते हुए लिख बैठा कि "समस्त विद्वान् वैद्योंसे हमारा अनुरोध है कि इस पुस्तकको शीघ्र ही मँगवाकर इसपर खूब ही कटाक्ष करके उसको जलवा दें, वरना आयुर्वेदका नाम-निशान मिट जानेका भय है" कविराज जी लिखते हैं "यह भी स्वामी जीका ही इश्तिहार मालूम पड़ता है।" 'अन्धेको अँधेरेमें बहुत दूरकी सूझी' जरा "अनुभूत योगमाला" के सम्पादक पं० विश्वेश्वरदयालु जीको पत्र लिखकर पूछ तो लीजिये कि कितने पैसे विज्ञापनके मिले थे, तब इसकी भी असलियतका आपको ज्ञान हो जायगा। इसी प्रकार अखिल भारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलनपर भी आपने लांछन लगाया है। आप कहते हैं कि "वैद्य-सम्मेलन कुछ कर लेता, तो सबसे अच्छा हुआ होता, लेकिन खास कारणसे उदासीन रहना चाहता है।" पाठको, इस पंक्तिका अर्थ क्या है? यही न, कि यह भी कुछ पैसे लेकर खा गया है इसीलिये इसने चुप्पी साध ली है। कविराज जीकी कितनी कलुषित वृत्ति है, कितने कुत्सित विचार हैं।

४. लुढ़के पहाड़से और फोड़े घरकी सिल

कहा समालोचना त्रिदोष-मीमांसाकी, और कहां वैद्य-मण्डल और विद्वान् वैद्योंको कोसना! वास्तवमें बात तो यह है कि इनकी हां में हां मिलाकर इनकी पीठ ठोकनेवाला इनमेंसे कोई नहीं मिलता, इसीलिये आप बौखला उठे हैं। सम्भव है त्रिदोष-मीमांसा पढ़कर कहीं त्रिदोषके आवेशमें इतने न आ गये हों कि आपको सन्निपात हो गया हो और इसीलिये आप प्रलाप करने लग रहे हों।

अब लीजिये कविराज हरदयाल जीके तर्कका नमूना। आपके लेखका शीर्षक है "त्रिदोष-मीमांसा" और सर्व प्रथम आपने अपना नजला विज्ञानके सम्पादक श्रीयुत रामदास जी गौड़ एम्० ए० पर गिराया है। गत जुलाईके अंकमें उन्होंने आयुर्वेदको विज्ञानका अंग बनानेकी इच्छासे एक टिप्पणी दी और आयुर्वेदको विज्ञानका अंग स्वीकार कर अपनी अपार उदारतासे विज्ञानमें आयुर्वेद-विज्ञानको भी स्थान दिया तथा आयुर्वेदपर वैज्ञानिक रीतिसे विवेचनके लिये सर्वोत्तम द्वार खोल दिया। इनका ऐसा करना वैद्य-वाचस्पति जीके लिये असह्य हो गया। आपकी दृष्टिमें यह कार्य उचित नहीं हुआ जो आयुर्वेद-विज्ञानको सम्मिलित कर लिया। इसलिये आपपर पक्षपातका दोष लगाया, और लिखा कि "सम्भव है कुटुंबाधिपतिके नाते और मनुष्य स्वभावसे ऐसा किया हो।" जिस प्रकार प्रिन्सिपल साहबको खुश करनेके लिये लिखनेका अभ्यास न होते हुए भी जैसे-तैसे जोर मारकर लिख ही डाला, उसी तरहकी अपनी जैसी ही दूसरोंकी वृत्ति भी समझ ली। खैर इसे जाने दीजिये। आप लिखते हैं "हमारा विचार है कि अभीतक किसी वैद्यने त्रिदोष-मीमांसाकी समालोचना नहीं की। समालोचनाके पचड़ेमें न फँसकर स्वामी हरिशरणानन्दकी सेवामें प्रार्थना की थी कि त्रिदोष-मीमांसामें जो विचार दिये गये हैं, वह भ्रममूलक हैं। उन्हें आप विद्वानोंकी सभामें सिद्ध करें।" हमने तो समस्त विद्वानोंके पास एक-एक प्रति भेजकर अपने पक्षको उनके सामने रख दिया है। इतनी अच्छी तरह कि जैसा चाहिये। क्या किसी मौखिक विवादमें इस प्रकार रखा जा सकता था? पर आपतो लिखते हैं कि "उस पुस्तकमें समालोच्य विषय ही कौनसा है?" जब उसमें समालोचनाके योग्य कोई विषय ही नहीं था, तो आपने लेखनी ही क्यों उठायी?" यह है आपकी योग्यताका पहला नमूना। अब दूसरा लीजिये—

आप लिखते हैं "स्वामी जी अपनेको वैद्य लिखते हैं।

इस नाते उन्होंने तीनों दोषोंकी मीमांसा लिखकर आयुर्वेद और वैद्योंका उपकार करना चाहा है। आयुर्वेद तो बिचारा मौनावलम्बी है परन्तु, इस सदीके वैद्योंके मस्तिष्कमें स्वामी जीकी घुटन्त और विज्ञान-परिमार्जित खोपड़ीके विचार बैठ नहीं सके। इस बातका हमें खेद है। इससे प्रथम भी स्वामी जीने 'आसव-विज्ञान' लिखकर आयुर्वेदका उपकार करना चाहा था। उसमें विज्ञानकी दुहाई देकर भोलेभाले वैद्योंका धन खींचनेका पूर्ण प्रयत्न था। उस पुस्तककी पद्धति-के अनुसार अनेक वैद्योंने विज्ञान बाबाके वाक्यको प्रमाण मानकर अपने तरलोंका सत्यानाश किया, स्वामी जीने आसव-विज्ञानको भली प्रकार समझनेका कष्ट नहीं किया। मद्य-निर्म्माण-विधिकी कुछ बातोंकी नकल करके उसे आसव-विज्ञानमें घुसेड़कर रुपया कमानेका सफल प्रयत्न अवश्य किया गया है।"

पाठको! आपने भी एक पुस्तक लिखी है आरोग्यता-पर, जिसको छपे आज ८–१० वर्षके लगभग हो गये। वह आजतक पड़ी सड़ रही है कोई वैद्य पूछतातक नहीं। आसव-विज्ञान दो हजार छपा था, सब बिक गया। अब दूसरा संस्करण खूब परिवर्द्धित और परिस्फुट होकर निक-लनेवाला है। इस पुस्तकके सम्बन्धमें अबतक अच्छे-अच्छे वैद्योंके मेरे पास सौ-डेढ़ सौ प्रशंसापत्र आ चुके हैं। जिस आसव और मद्य-निर्माणविधिको हमने प्राचीनतम ग्रंथोंसे सिद्ध किया है उसको आप आधुनिक मद्य-निर्म्माणविधिकी नकल बताते हैं। यह हैं प्राचीन आयुर्वेदका गौरव बढ़ानेवाले आयुर्वेदके संरक्षक और दावेदार! यह है त्रिदोष-मीमांसा शीर्षककी समालोचनाका दूसरा नमूना!

अब लीजिये आपके बृहद् दिमागकी तीसरी बानगी! आप लिखते हैं "त्रिदोषमीमांसामें स्वामी जीने न सिर्फ तीनों दोषोंके अस्तित्वसे इन्कार किया, प्रत्युत सृष्टितत्व, पञ्चमहा-भूत, षट्रस आदि अनेक विषयोंपर भी अपनी समझके अनूठे नमूने पेश किये हैं। जिनपर हम यथाक्रम प्रकाश डालेंगे। आज षट्रसोंपर विचार करेंगे। त्रिदोषमीमांसामें पृष्ठ १२९ पर स्वामी जीका नजला बिचारे मधुर रसपर गिरा है। 'मधुर रस और उसका रासायनिक रूप' यह शीर्षक देकर स्वामीजी फर्माते हैं—'अंगूर, गन्ना, सेब, नासपाती, केला' आदि फल खानेपर मीठे लगते हैं। इस मधुरताका कारण यह है, कि इन फलोंमें किसी न किसी जातिकी शर्कराके कणोंकी विद्यमानता होती है।" पुस्तकसे इतना उद्धरण देकर आप उसकी मीमांसा किस प्रकार करते हैं जरा देखिये। आप कहते हैं, "विज्ञान-रहित भारतीयोंको स्वामी जीका कोटिशः धन्यवाद करना चाहिये। जिन्होंने हमें यह बतानेकी कृपा की, कि फल इसलिये मीठे लगते हैं, कि उनमें शर्कराके कण विद्यमान होते हैं। भाई! इस बातको खूब याद कर लो और अपना पुराना संस्कार भूल जाओ, वह जमाना गया, जब तुम केले, अंगूरमें नमकके कण मानकर मधुर रसका आस्वादन करते थे। बड़ी भारी खोज और विज्ञानका कचूमर निकालनेके बाद जो फारमूला मधुर रसका आपके हवाले किया है, उसे भाई याद रखना। किये करायेपर पानी न फेरना। सिर्फ १) में इतना सस्ता विज्ञान प्राप्त न होगा। हमारी भी आपको यही नेक सलाह है। मानोगे, खिज्ञानियोंमें धरे जाओगे, न मानोगे, पछता-ओगे।" देखा समालोचनाका नमूना। और देखिये—

५—गुणात्मक और मात्रात्मक परीक्षामें भेदसे अनभिज्ञता

पृष्ठ १३३ पर 'अम्लरस और उसका रासायनिकरूप' इस शीर्षकमें स्वामी जीने सबसे प्रथम यह फैसला दिया है, कि **'अम्लताकी परीक्षा ठीक तौरपर जिह्वा नहीं कर सकती'** बहुत अच्छा। पृ० १३४ पर अम्लकी परीक्षाके शीर्षकमें सर्वप्रथम स्वामी जी लिखते हैं—'**जो स्वादमें खटास रखता हो** वह खनिजाम्ल और उद्भिदाम्ल भेदसे दो प्रकारका है।' "इन पंक्तियोंके सम्बन्धमें हम पूँछना चाहते हैं कि पृ० १३३ और १३४ वाली कौनसी बात सच्ची मानी जाय?"

आपको पैनी बुद्धि दोनों कथनोंको विरोधी और असंगत समझती है। जो व्यक्ति पृ० १३३ और १३४ की उक्त पंक्तिमें विभेद मालूम नहीं कर सकता वह विद्यार्थियोंको पढ़ाता और समझाता क्या होगा? आश्चर्य है कि वैद्य-वाचस्पति जी अध्यापक कैसे बना दिये गये? सिफारिश मात्रके बलसे?

वैद्य वाचस्पति जी महाराज! अम्लताकी परीक्षा ठीक

तौरपर जिह्वा नहीं कर सकती इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि समस्त आम्लिक पदार्थोंमें विद्यमान अम्लताकी मात्रा एक-जैसी नहीं देखी जाती। कोई फल साधारण खट्टे होते हैं, कोई मध्यम श्रेणीके, कोई अत्यन्त अम्ल। कौन अम्ल कितनी अधिक मात्रामें अम्लता रखता है, इसका बोध ठीक-ठीक जिह्वासे नहीं हो सकता। अम्लताकी मात्राको नापनेके साधन ही अन्य हैं। इससे आगे अम्लताकी परीक्षाकी दूसरी पंक्ति 'जो स्वादमें खटास रखता हो' इसका उपर्युक्त पंक्तिसे कोई विरोध नहीं। स्वाद जिसका अम्ल हो वह अम्ल कहलाते हैं। इस स्वादसे अम्लताकी मात्राका क्या सम्बन्ध ?

हमने त्रिदोष मीमांसामें पृष्ठ १२९ पर लिखा है "कई व्यक्ति कहेंगे कि शंखद्राव जैसे खनिजाम्ल प्राचीन समयमें भी पाये जाते हैं।" इस पूर्व पक्षका उत्तर मेरी ओरसे दिया गया है कि 'वास्तवमें शंखद्राव जैसे द्रव्य प्राचीन नहीं, प्रत्युत चिकित्सा-पद्धतिके प्रचलित समयसे बहुत पीछेके हैं।' पर मेरी उक्त पंक्तिको काट-छाँटकर वैद्य-वाचस्पति जी लिखते हैं पृष्ठ १३५ पर 'अम्लभेद' शीर्षकमें स्वामी जी लिखते हैं 'आयुर्वैदिक चिकित्सामें कज्जलाम्लोंका उल्लेख पाया जाता है। अकाज्जलिक अम्ल आधुनिक युगकी उपज हैं'। पर पृष्ठ १२९ पर स्वामीजी फरमाते हैं 'शंखद्राव जैसे खनिजाम्ल प्राचीन समयमें भी पाये जाते हैं'। यह है धोखादिहीका नमूना। पाठक मेरी पुस्तककी उपर्युक्त पंक्तिको पढ़िये। तत्पश्चात् वैद्य-वाचस्पति जीके परोक्ष उलटे हुए अवतरणके साथ उसको मिलाइये। फिर देखिये यह पंक्तिका बदलना वैद्य-वाचस्पति जी महाराजकी यह कैसी सचाई और ईमान्दारी है। कहाँ तो हमने पूर्व पक्षको लेकर लिखा है कि "कई व्यक्ति कहेंगे" इस पूर्वपक्ष बोधक वाक्यको आप सफाचट कर गये और आगेकी पंक्ति उत्तर पक्षकी बना दी। धन्य हो! आयुर्वेदके संरक्षको! तुम्हारी लीला अपरम्पार! तुम अवश्य ही त्रिदोषकी गिरती हुई भित्तिको अपने छल प्रवञ्चनासे थाम लोगे! अब हमें विश्वास हो गया!

अब कुछ प्रिन्सिपल साहबकी तर्कशैलीका नमूना भी पाठकोंके विचारार्थ रख देना चाहता हूँ।

६. "विज्ञान"के सम्बन्धमें प्रिंसिपल जीका अज्ञान

आपने आयुर्वेद-सन्देशकी सार-सूचनोंमें "आखिर स्वामीजी बोले" शीर्षक देकर लेखारम्भ किया है। और आरम्भमें ही आप लिखते हैं "पहले तो हमारी टिप्पणियोंको पढ़कर प्रायः चुप साध रखी थी, परन्तु अन्ततः निरन्तर आक्षेपों और चेलैंजोंसे उद्विग्न होकर बोलनेका साहस किया है। अपने भाव प्रकट करनेके लिये आपने प्रयागके 'विज्ञान' की शरण ली है। विज्ञानवादियोंका आश्रय विज्ञान ही हो सकता है। स्वामीजीका अपना पत्र आयुर्वेदविज्ञान अल्पजीवनके पश्चात् पंचत्वको प्राप्त हो चुका है। उसकी स्मृति जीवित-जागृत रखनेके लिये विज्ञानके टाइटिलपर 'जिसके साथ अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान' भी सम्मिलित है—यह शब्द छपवा दिये हैं और विशेष सम्पादकोंकी सूचीमें स्वामीजीका नाम भी मुद्रित है। स्वामीजीके 'चिरस्मृत पत्र'को इस प्रकारका अवलम्बन देनेसे न जाने विज्ञानको क्या लाभ होगा। कहीं शवसम्पर्कसे उसे भी हानि न पहुँचे। स्वामीजीका त्रिदोष-मीमांसा शीर्षकसे विज्ञापन और औषधसूची भी उस पत्रमें निरन्तर छपती है। सम्भव है, इसी नातेसे उनका गठजोड़ हुआ हो।

"अब स्वामीजी जैसे आयुर्वेद-विरोधीको आश्रय प्रदान करके उसने अपनी निष्पक्षता अथवा प्राचीन विद्यासे स्नेहका सम्बन्ध तोड़ दिया है और साथ ही वैद्योंपर संकीर्णताका दोषारोपण भी किया है।"

"जब विज्ञानको स्वामीजी जैसे विज्ञापनदाता मिल जायँ, जिनकी ३६ पृष्ठकी लम्बी औषध सूचीसे विज्ञानका परिमाण द्विगुण हो जाय और जिनके लेखोंमें प्राचीन विद्याके प्रति विष भरा हो तब विज्ञानको दूसरे वैद्य, जो आयुर्वेदको यथार्थ रूपसे समझने और समझानेकी चेष्टा करते हों, किस प्रकार उदार प्रतीत हो सकते हैं।"

प्रिन्सिपलजी महाराज! हमने विज्ञानकी अबसे ही शरण नहीं ली प्रत्युत जबसे होश संभाला तबसे ही विज्ञानकी शरणमें जा चुका हूँ। आपको स्मरण रहे कि विज्ञान जिस विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र है उसका मैं उस समयसे सदस्य और सेवक हूँ, जबसे इस संस्थाने जन्म ग्रहण किया था। यही

नहीं आपको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी मेरी नहीं बल्कि विज्ञान-परिषद्की मिलकियत है। विज्ञानमें फार्मेसीकी सूची विज्ञापनरूपमें नहीं छपती प्रत्युत उसको अधिकार है कि जिस रूपमें चाहे उसे प्रकाशित करे। उसको अपने कार्यको जिस रूपमें चाहे चलानेका पूर्ण अधिकार है।

आपने बिना समझे-बूझे जो विज्ञानपर दोषारोपण किये हैं और उसकी नीतिपर लाञ्छन लगाया है यह आपके हृदयकी स्वच्छता और उदारताका परिचायक नहीं है। आपकी इस जल्पनाके मूलमें भयानक भ्रान्ति है*। आपको स्मरण रखना चाहिये कि विज्ञान अपने या बेगाने किसीका पक्षपात नहीं करता। वह सदासे सत्यान्वेषी, सत्यप्रिय, सत्यभाषी रहा है। उसका हृदय न कभी संकीर्ण हुआ है न अब होगा।

७. फार्मेसीकी सफलतापर निष्फल ईर्षा

मुझे आप आयुर्वेदविरोधी कह रहे हैं। त्रिदोषमीमांसा लिखकर सत्यका अन्वेषण करना यदि आयुर्वेदविरोधी बात हो सकती है तो कौनसी आयुर्वेद-संरक्षक बात होगी, या है, जिसे आप सब कर रहे हैं? आप सब आयुर्वेदके संरक्षक बननेका यदि दावा करते हैं तो त्रिदोषमीमांसामें दिये विषयका खंडन करके त्रिदोषके वास्तविक शास्त्रीय स्वरूपको संसारके सामने रख देना चाहिये। परन्तु अबतक आपने किया क्या? यही न कि मुझे गालियाँ देते रहे, और हृदयके फफोले फोड़ते रहे!

पाठकगण, यही बात नहीं, पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसीको आप सदा अपने प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें भी देखते हैं। क्योंकि आप उधर दयानन्द कालेज आयुर्वैदिक फार्मेसीके भी कर्त्ता, धर्त्ता, विधाता बने हुए हैं। इसी नाते जब-जब आपको अवसर मिला है फार्मेसीको हानि पहुँचानेकी चेष्टा की है। 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' इसी अंककी सार सूचनाकी अन्तिम पंक्तियोंमें जो विष-वमन किया है जरा वह भी देख लीजिये। आप लिखते हैं "स्वामी' शब्द और भगवे कपड़ेकी आड़में हरिशरणानन्द जी मूर्खोंको लूट रहे हैं।"

* विज्ञानके स्तंभ उचित प्रकारके उभयपक्षके ज्ञानवर्धक वाद-विवादके लिये सदा खुले हुए हैं। —रा० गौ०

आगे आप "औषधियोंकी दुर्गति" नामक शीर्षक देकर फर्माते हैं—"स्वामीजी च्यवन-प्राश एक रुपया सेर देते हैं, जो उनको ॥) या ॥।) सेर घरमें पड़ना चाहिये। अमृतसरके सब वैद्य, जो उन्हें अच्छी तरह जानते हैं, कहते हैं कि आंवलोंका मुरब्बा कूट त्रिकटु आदि डालकर चटनी बना लेते हैं और इसीको च्यवन-प्राश कहकर १) सेर बेचते हैं। एवम् लौहभस्म लौह-धातुसे न बनाकर पुराने कसीसको पुटें देकर बना लेते हैं, और अत्यन्त सस्ता बेच देते हैं। यह हैं हरिशरणानन्द जीके वैज्ञानिक कार्य।" पहली तो सबसे बड़ी झूठ यह है कि मैं भगवे कपड़े पहनता हूँ। १९२० में जब कांग्रेसके झंडे तले आया राजनीतिक विचारोंकी अभिवृद्धिके कारण मेरे विचारोंमें गहरा परिवर्तन हुआ, और लोक दिखावा भगवा वस्त्र तबसे धारण करना छोड़ दिया। तभीसे आजतक साधारण वस्त्रोंमें ही रहता हूँ। और प्रत्येक सम्मेलनोंपर वैद्य समुदाय और आप कई बार देख चुके हैं। दूसरी झूठ यह है कि स्वामी हरिशरणानन्द मूर्खोंको लूट रहे हैं। पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसीका व्यवहार आम जनतामें नहीं, प्रत्युत बड़ी-बड़ी भारतकी प्रसिद्ध आयुर्वैदिक फार्मेसियों, बड़े-बड़े धुरन्धर चिकित्सकों, म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट तथा लोकलबोर्डोंकी डिस्पेन्सरियोंसे है। उनमेंसे एक आपकी भी फार्मेसी है। काफी समयतक आपके यहाँ भी माल जाता रहा है। यदि हम मूर्खोंको लूटते हैं तो भगवन्! उन लुटनेवालोंमें आप भी शामिल हैं। इससे आगे "औषधियोंकी दुर्गति" में आपने लिखा है 'हम च्यवन-प्राशको आँवलोंके मुरब्बेसे बनाते हैं और सस्ता बेचते हैं।' यह ठीक है कि हम उन ऋतुओंमें जब कि हरे आँवले नहीं मिलते, एकबारका बनाया स्टाक समाप्त हो जाता है, तब बनाते हैं। जिसकी समस्त विधि आयुर्वेद-विज्ञानके वर्ष २ के किसी अंकमें प्रकाशित कर चुका हूँ। हमारी विधि चोरी छिपेकी नहीं है। यह काम धोखा देनेको और अधिक मुनाफेके लिये नहीं किया जाता। मुरब्बेका भाव १४)—१५) से लेकर २०)—२५) मनतक होता है सूखे आंवलोंका भाव ३) से ४) मनतक होता है। इसका च्यवन-प्राश अत्यन्त अम्लयुक्त होता है। इसके सेवनसे श्लेष्माके विकारमें, कासमें कभी लाभ नहीं होता, प्रत्युत हानिकी संभावना रहती है। अतः जो सूखे आँवलोंसे बनाते हैं, अवश्य ठगते हैं।

सहयोगी विज्ञान

१—वैज्ञानिक सामयिक साहित्य

कल्पवृक्ष—(हिन्दी) के अक्तूबरके अंकमें—१. उन्नतिका मार्ग, २. भगवान् कृष्णके दर्शन, ३. आश्वासन ४. मनकी बाधा, ५. उपवास करना भूखों मरना नहीं है, किन्तु उपवास एक महायज्ञ है, ६. मौन धारण करना ईश्वरसे वार्तालाप करना है, ७. आत्मदर्शनका मार्ग, ८. अस्तेय वृत्ति, ९. मानसिक शक्तिका विकास और १०. आध्यात्मिक विकास, लेख हैं।

८—प्रिंसिपलजीकी दूषित विधियाँ

और लीजिये, वसन्तमालती रसमें खर्पर पड़ता है। उस खर्परके अभावमें आप रामरज मिट्टी (calamine) डालते हैं। त्रायमाणके स्थानपर एक नयी ही वनस्पतिको आप डालते हैं। और भी इससे बड़ा अन्धेरखाता यह है कि डी० ए० वी० आयुर्वैदिक कालेज जबसे बना, उस समयसे विद्यार्थियोंको सिखानेके निमित्त कुछ क्रियात्मक रूपमें औषधनिर्म्माणका काम रखा गया। उस समयसे विद्यार्थियोंको सिखानेके निमित्त वहाँ ओषधि डाली जाती है जिसको बारी-बारीसे विद्यार्थी बनाते हैं। एक तो नवसिखे विद्यार्थी, तिसपर घुटाईका काम जैसे होता है उसको तो जाने ही दीजिये। अनेक बार विद्यार्थियोंसे बनाते-बनाते दवाइयाँ बिगड़ जाती हैं। विद्यार्थियोंको भट्टीपर बिठा देते हैं, कूर्पीपक्की कई बार शीशियाँ टूटती हैं, कभी आँच नहीं लगती, कई बार तेल, घृतका पाक जरा असावधानी होते ही खर ही नहीं होते प्रत्युत जलतक जाते हैं। आसवारिष्ट खट्टे हो जाते हैं। बने हुए आसवोंको बोतलोंमें भर रखनेपर बोतलें फटने लगती हैं, उनके कार्क उड़कर छतोंसे जा बजते हैं। इत्यादि दोषोंके हो जानेपर क्या वह दवाइयाँ फेक दी जाती हैं? हरगिज नहीं। इन्हीं दवाइयोंसे अपार लाभका यह परिणाम है कि आज कालेज कमेटीने इसे समुन्नत करने तथा कुछ घोटने-पीसनेकी मशीनोंको लगानेकी अनुमति दी है।

प्रिन्सिपल साहब फर्माते हैं—"स्वामी पुराने कसीससे लौहभस्म तैयार कर लेते हैं। लौहचूर्ण बड़ी मँहगी चीज हुई न? यह सच है कि कसीस ४)—५) मन और लोहा ७)—८) मन मिलता है। परन्तु कसीस जहाँ बीस पुट देनेपर पूर्ण भस्म नहीं बन सकता वहाँ लौहचूर्ण एक आँचमें ही मर जाता है। क्या बीसगुनी आँचके लिये ईंधन इस तीन रुपये मनके अन्तरकी अपेक्षा भी कम खर्च होता है? प्रिन्सिपल साहब किसी वैद्य पाठकको ऐसी अनर्गल बात कहकर धोखा नहीं दे सकते। अनभिज्ञ पाठक ही उनके इस वाक्छलसे ठगा जा सकता है। परन्तु उन्होंने तो झूठ-सच जैसे बने फार्मेसीको हानि पहुँचाना अपना एकमात्र उद्देश्य बना रखा है। उनको पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसीकी उन्नति हृदयको शूल होकर बींध रही है। तिसपर फार्मेसी एक वैज्ञानिक संस्थाके हाथ चली गयी, उससे इसका सम्बन्ध जुड़ गया, अब भारतीय वैज्ञानिक समुदायकी सहायतासे यह और समुन्नत होगी। यह विचार आपकी छातीपर साँप होकर लोट रहा है। यही भाव आपकी इस सार सूचनासे बहुत अच्छी तरह टपक रहा है।

पाठको, यह हैं त्रिदोष-मीमांसाकी आलोचनाएँ या विचार, जो आयुर्वेदका दम भरनेवालों, आयुर्वेदके नामपर रोटी खानेवालोंकी ओरसे हो रहे हैं। इन तीनों व्यक्तियोंकी लिखी उक्त पंक्तियोंसे आप अन्दाजा लगा लीजिये कि यह आयुर्वेदके मूल सिद्धान्तोंकी कितनी रक्षा कर सकेंगे? और यह कैसे आयुर्वेदके प्रेमी हैं? और यह क्या कुछ कर सकनेमें समर्थ हैं?

वास्तवमें देखा जाय तो इन विचारोंका कसूर कुछ भी नहीं, यह तो पराधीन हैं, पराधीन! आत्मिक दृष्टिसे, मानसिक दृष्टिसे, शारीरिक दृष्टिसे। आर्थिक दृष्टिसे जिस ओरसे इन्हें देखो गुलामीकी बेड़ियोंमें जकड़े हैं। पेटने इनकी आत्मस्वतन्त्रताको नष्ट कर दिया है और पराधीनताने समस्त शरीरको प्रभावित कर रखा है। इसीलिये तो स्वतन्त्र विचारोंकी आवाज कानमें पड़ते ही, विचारशक्तिको अवसर न दे, भड़कनी भैंस जैसे बिदक खड़े होते हैं, और उसी समय फूत्कार करने लगते हैं।

आयुर्वेद—(मराठी) के श्रावण शुद्ध १५ शके १८५६ के अंकमें—१. सांख्य-गर्भोत्पत्ति और उसकी वृद्धि, २. कंकुष्ट क्या है ? ३. ज्योतिष शास्त्रांतर्गत आयुर्वेद विज्ञान, ४. निवडुंग ? ४. पच्छाहीं चश्मेसे आर्य-आयुर्वेद और ५. आयुर्वेद चर्चा, लेख हैं।

वैद्य कल्पतरु—(गुजराती) के सितम्बरके अंकमें—१. बच्चोंकी पोषण क्रिया, २. अनुभवकी दृष्टिसे आँखके रोगियोंका इलाज, ३. समीरपन्नग रसनागुण, ४. देशी बीमा कम्पनियाँ और वैद्य, ५. अतिसार ६. शारीरिक और मानसिक बल तथा अकतूबरके अंकमें—१. बालकोंकी पोषण क्रिया, २. आयुर्वेदकी विजय, ३. निद्रा, ४. आयुर्वेदकी महत्ता, ५. पाराकी गोलीके विषयमें खुलासा, ६. अनुभूतियाँ, ७. चुनी हुई ओषधियोंके गुण, ८. अनुभूत उपाय और शारीरिक शुद्धि, लेख हैं।

प्रकृति—(बंगाला) के ग्रीष्म और वर्षाके अंकमें—१. डाईड्रोजेन वा भारी हाईड्रोजेन, २. संस्कृत काव्यमें उद्भिद्, हिमालयके गर्भमें उद्भिद्, ३. घूटिका, ४. भागलपुरके बच्चोंके प्रचलित लोरीके गीत······कथा, ५. जीव-विज्ञानकी परिभाषा, ६. विज्ञानका क्रम-विकास और उसका संक्षिप्त इतिहास, तथा ८. विविध, और शरत्के अंकमें—१. रसायन-विज्ञानको भारतका दान, २. ज्योतिष-परिचय, ३. पदानेकी वर्णरीति और वंशानुक्रमिक वर्णोत्पत्ति, ४. षट्पद प्राणी, ५. विज्ञानका क्रमविकास एवं उसका संक्षिप्त इतिहास, ६ प्राणि-विज्ञानकी परिभाषा, ७ कलकत्ताकी चिड़ि और ८. विविध, लेख हैं।

भूगोल—मई अगस्तके विहार अंकके प्रथम भागमें—१. स्थिति और विस्तार, २. पर्वत, ३. नदियाँ, ४. समुद्र-तट और तटीय व्यापार, ५. जलवायु, ६. वनस्पति और पशु, ७. भू-रचना, ८. विहार प्रांतमें सिंचाई, ९. विहारके किसान और उनकी खेती, १०. विहार प्रान्तके खनिज पदार्थ, ११. कारबार और व्यापार, १२. आने-जानेके मार्ग, १३. शिक्षा, १४. इतिहास, १५. विहार निवासियोंके उपनिवेश, १६. विहार प्रान्तकी कुछ विविध बातें, १७. उड़ीसाके देशी राज्य, और दूसरे भागमें, १८. सौ वर्ष पहले विहारकी कालीरात, १९. भूकम्पपर वैज्ञानिक दृष्टि, २०. भूकम्प और सिस्मोग्राफ, २१. पीड़ित विहारका दौरा, २२. विहारका पुनर्निर्माण और २३. सम्पादकीय, तथा सितम्बरके अंकमें—१. हवाई जहाज और भारतवर्ष, २. काश्मीरसे काश्गर, ३. अफ्रीकाकी एक कहानी, ४. भारतवर्षकी खनिजात्मिक संपत्ति, ५. मेरी विदेशयात्रा और ६. विविध-विषय, लेख हैं।

२—साधारण सामयिक साहित्य

क—मासिक

कल्याण—के ज्येष्ठ तथा आषाढ़के अंकमें—'रामराज्यका आदर्श' वैज्ञानिक लेख है।

हंस—के सितम्बरके अंकमें—१. शिक्षा मनोविज्ञानका विकास, २. वाइटेमिन बी. प्रभाव तथा भेद और ३. टेलिग्राफकी कथा, वैज्ञानिक लेख हैं।

विश्वमित्र—के सितम्बरके अंकमें—१. दुष्कृतियोंका वैज्ञानिक विश्लेषण २. आकस्मिक घटनाएँ और आविष्कार, ३ क्षयरोगकी भीषणता, तथा अकतूबरके अंकमें—१. हिमालयकी बलिवेदीपर, वैज्ञानिक लेख हैं।

सुधा—के सितम्बरके अंकमें—सौरभस्तंभमें-स्वस्थ रहनेके दस आवश्यक नियम, और अकतूबरके अंकमें—१. बुद्धि-परीक्षा, २. ब्रह्मतत्व, तथा ३. कल्पना, वैज्ञानिक लेख हैं।

गंगा—के श्रावणके अंकमें—१. हिन्दू-गणितका संक्षिप्त इतिहास, २. त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, ३. सार्वभौम शान्ति और समाज-विज्ञान, ४. सामुद्रिक विज्ञान, ५. आर्य भट्ट, ६. डा० शंकर ए० विसे, तथा ७. वानस्पतिक विज्ञानसे जीवोंका संबंध तथा भाद्रके अंकमें—१. स्वप्न; और आश्विनके अंकमें—विचारवल्लरीस्तंभमें—पौधे भोज्यपदार्थ कैसे बनाते हैं ?, ये वैज्ञानिक लेख हैं।

अलंकार—के भाद्रपदके अंकमें—भारतमें बाल-शिक्षणका सच्चा मार्ग, अध्यात्म-सुधा (स्तंभ) और कार्तिकके अंकमें—१. साम्यवाद और २. पं० गौरीशंकर भट्ट और नागरी-लिपि-विज्ञान, ये वैज्ञानिक लेख हैं।

विशालभारत—के आश्विनके अंकमें—१. पूँजीवादकी उत्पत्ति, २. अराजकता—उसका सिद्धान्त और आदर्श, ३. कवि-शिक्षाकी प्राचीन प्रणाली और कार्तिकके अंकमें—भारतमें चमड़ेका व्यवसाय, ये वैज्ञानिक लेख हैं।

चाँद—के सितम्बरके अंकमें—१. अंध-विश्वास, २. मुक्तिवादकी सारता, ३. कायस्थ जातिपर एक ऐतिहासिक दृष्टि, ४. विविध विषय स्तंभमें—रेशम, ५. स्वास्थ्य और सौंदर्यस्तंभमें—स्वास्थ्य और सौंदर्य्य-वृद्धिके सरल उपाय, तथा अकतूबरके अंकमें—१. कायस्थ जातिपर एक ऐतिहासिक दृष्टि, तथा २. स्वास्थ्य और सौंदर्यस्तंभमें 'मधुमेह' ये वैज्ञानिक लेख हैं।

वीणा—के सितम्बरके अंकमें—१. विज्ञानका दुरुपयोग और अर्थ-संकट, और अकतूबरके अंकमें—१. भूचाल और उसके कारण, २. बालकपर वंशानुसंक्रमणका प्रभाव, ३. मालव जाति और मालवदेश, ये वैज्ञानिक लेख हैं।

ख—साप्ताहिक साहित्य

प्रभात—के १८ सितम्बरके अंकमें—'भारतके वजन और नाप तथा सिगरेट-बीड़ी, वैज्ञानिक लेख हैं।'

स्वराज्य—के २८ अगस्तके अंकमें—स्वास्थ्य-विज्ञान-(यह स्तंभ हर अंकमें रहता है), ४ सितम्बरके अंकमें सबसे सस्ता और अच्छा खाद (कृषि-विज्ञान स्तंभमें), २१ सितंबरके अंकमें—पाठ्य-पुस्तकें कैसी हों? हैजा और उसका प्रतिकार, भारतमें सामूहिक शिक्षाका ह्रास, १८ सितम्बरके अंकमें—विषम ज्वर (आरोग्य-विज्ञान स्तम्भमें), २५ सितम्बरके अंकमें—सर्प और सर्प-दंश, और २ अकतूबरके अंकमें—देहातोंका सुधार वैज्ञानिक लेख हैं।

प्रताप—के ९ सितम्बरके अंकमें—विधाताका विश्व-स्तंभ, वैज्ञानिक हैं जो प्रायः हर अंकमें रहता है, ३० सितंबरके अंकमें—प्रजामन्त्र अथवा तानाशाही, और १४ अकतूबरके अंकमें—पूँजीवादका रहस्य, चर्खा ही क्यों?, ये वैज्ञानिक लेख हैं।

जयाजी प्रताप—३० अगस्तके अंकमें—श्रीजीवा जी वेधशाला उज्जैन, प्राचीन भारतमें वायुयान, संसारकी सैर स्तंभ (प्रत्येक अंकमें रहता है), १३ सितम्बरके अंकमें—टॉकी सिनेमा, २० सितम्बरके अंकमें—प्राचीन भारतमें वायुयान, २७ सितम्बरके अंकमें—क्षयरोगकी समस्या (स्वास्थ्य और आरोग्य स्तम्भमें), और ११ अकतूबरके अंकमें—मच्छर (स्वास्थ्य और आरोग्य-स्तंभमें), ये वैज्ञानिक लेख हैं।

३—चयन

(१) क्लोरोफार्मकी बेहोशीके अनुभव

"स्वराज्य" के १८।७।३३ के अंकमें यह मनोरंजक लेख छपा था। क्लोरोफार्म सुँघानेपर ऐसा अनुभव बहुधा लोगोंको हुआ करता है। —रा० गौ०

मृत्युके पूर्व-

क्या होता है?—हमारी आत्मा जब शरीरसे निकलने लगती हैं तब हमें क्या अनुभव होता है? अर्थात् वह शरीरसे निकलकर गगनमें विहार करती है या यहीं सड़कोंमें चलती-फिरती रहती है! स्वर्ग और नरक भी क्या कोई चीज है अथवा मृत्युके पश्चात् एक शून्य है जहाँ न निद्रा है और न स्वप्न? ये प्रश्न प्रायः प्रत्येक व्यक्तिके दिमागको उद्वेलित करते रहते हैं। उपर्युक्त प्रश्नोंपर एक स्त्री लेखिकाने अपने अनुभव-पूर्ण उत्तर लिखे हैं। ये महाशया आपरेशन-टेबलपर क्लोरोफार्म सूँघनेके पश्चात् डाक्टरोंकी रायमें "इस जीवनको त्यागकर अनन्तकी राह ले रही थीं"—दस मिनट-तक इनके प्राण गायब रहे थे। डाक्टरोंने बड़े प्रयत्नसे इन्हें जीवन-दान दिया। हम उनके मृत्युके अनुभवको उन्हींके शब्दोंमें यहाँ देते हैं—

"मैं आपरेशन-टेबलपर क्लोरोफार्म सूँघते ही 'मर गयी थी।' जब दस मिनट पश्चात् मैं होशमें आयी तब मुझे यह ज्ञात नहीं था कि मैं 'मर चुकी थी'। कई हफ्तों बाद मुझे ज्ञात कराया गया कि मैं मृत्युके मुँहसे निकाली गयी हूँ। मृत्युका अनुभव क्या कहूँ? वह तो अत्यन्त मधुर एवं आकर्षक है। मैं तो अब उससे भयभीत होनेवाली नहीं हूँ। मुझे अपने चिरन्तन अस्तित्वपर अब विश्वास जम गया है, मैं ईश्वरको भी मानने लगी हूँ।………"

मृत्युके मुँहमें

"हां, तो जब क्लोरोफार्म मुझे दिया गया उस समय मैंने सुना 'धीरे-धीरे गिनो-"एक, दो, तीन।" क्लोरोफार्मकी गंधने मेरी श्वास रुद्ध कर दी। "चार-पांच"—मेरे मस्तिष्क में एक अकथनीय बवण्डर-सा चलने लगा। 'छः-सात'—मैंने सुना, 'ज़रा इसे पकड़ो तो' 'आठ-नौ'—मैं उस समय भी सोच रही थी, हाथोंसे कुछ मरोड़-सी रही थी। उस

समय भी मुझपर बेहोशी नहीं छायी थी परन्तु मेरी आँखोंके सामने हरे पानीका 'प्रपात' सा झूल रहा था। एक पहियेकी ओर ऐसा प्रतीत होता था, मानों मैं चली जा रही थी। ऐसा मालूम हुआ कि मैं उस हरियाले झरनेकी ओर बढ़ती ही जा रही हूँ। फिर ऐसा मालूम हुआ, मानो मैं एक देहातकी सड़कसे जा रही हूँ और उज्ज्वल सूर्यका प्रकाश मुझपर बरस रहा है। पक्षी मधु-कंठसे कुछ गुनगुना रहे हैं। कहते हैं, डूबता हुआ आदमी अपने सारे जीवनकी स्मृति एक बार पुनः अपने मस्तिष्कमें ले आता है। यही हाल मेरा भी हुआ। मैं भी बचपनसे लेकर उस दिनतककी सारी बातोंके साथ घूमती रही। उसके पश्चात् पुनः मैं उसी सड़कपर चलने-सी लगी। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि उस समय मैं मनमें कह रही थी—'अरे! यह क्या हो गया? मैं कहाँ आ गयी? मेरी स्मरण शक्ति भी नष्ट-सी हो गयी थी। मेरा ज्ञान भी सब बह-सा गया था। मैं दो-दो = चार होते हैं, यह भी भूल गयी थी। उस समय मैं सचमुच एक नयी दुनियांमें प्रविष्ट हो गयी थी और पुनः अपने नये जीवनका श्री गणेश करने जा रही थी। मुझे यह ज्ञात नहीं है कि मैं उस समय कौन-सी पोशाक पहने हुए थी। मैं यही स्मरण कर रही हूँ कि 'मैं भौंचक्की-सी घूम रही थी।"

वहाँ क्या देखा ?

"जिस देशमें मैं घूम रही थी, वह बहुत सुन्दर था। सूर्यका प्रकाश इतना तेज था कि आंखोंमें चकाचौंधी-सी छा जाती थी। पहले किसीने मुझे मेरे नामसे पुकारा—मैं चौंकी! देखती हूँ तो एक पहचाना हुआ 'चेहरा' दिखलाई दिया। हँ, यह कहाँ? यह तो मेरी सखी है, जिसे मरे कुछ वर्ष हो गये हैं। यह? वह सूर्यकी परिधिसे उतरकर आयी थी। थोड़े आश्चर्यके बाद हम दोनों सड़कसे साथ-साथ जाने लगीं। हम एक दूसरेकी ओर देखती जातीं, कुछ बातें भी करती जाती थीं; पर इस समय मुझे वे याद नहीं हैं। हमें फूलोंकी खुशबू मस्त बना रही थी। दिन बड़ा भला लगता था। वह शायद यह कहती थी, 'तू मर गयी है!' पहले मैंने उसकी इस बातपर विश्वास नहीं किया। मैं सोचने लगी, शायद मैं ख्वाब देख रही 'तेरी मृत्यु हो गयी है'—सुन कर मुझे जरा भी भय नहीं मालूम हुआ! हाँ, कुछ विचित्र-सा जान पड़ा। हम एक समुद्रके किनारे खड़ी हुईं। नाव आयी। उस पर बैठ गयीं—दो बच्चे उसे खे रहे थे। वहाँ मुझे जापान-चीन सभीका नजारा दिखाई दिया। मेरे दो मित्र लड़ते भी दिखाई दिये। मैंने पुनः अपनी संगिनीसे पूछा, 'सखि! हम कहाँ हैं?'

"कहाँ! अरे मैं तो मर ही गयी हूँ, तू भी मर चुकी है!"

"सच?"

"सच?"

"हाँ!"

मैं ऐसा अनुभव करने लगी कि मेरे लिये ग्रह-तारे सभी आसान हैं। मैं जब चाहे वहाँ पहुँच सकती हूँ। मैं एक अच्छे मकानमें रह रही हूँ। और बड़ी सुखी हूँ।··· किन्तु डाक्टरोंने मेरा वह सुख दस मिनिटोंमें ही मुझसे छीन लिया। मैं पुनः इस दुनियाका प्राणी बन गयी हूँ!"

(२) ईश्वर है या नहीं ?

[ले० महात्मा गांधी]

दक्षिण भारतमें भ्रमण करते समय मेरी ऐसे हरिजनों तथा दूसरे लोगोंसे भेंट हुई, जो यह कहते थे, कि हमारा ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास नहीं। एक जगह हरिजनोंकी सभा हो रही थी। सभाके अध्यक्षका अनीश्वरवादपर भाषण हो रहा था—और सो भी उस मन्दिरमें, जिसे हरिजनोंने अपने पैसेसे अपने लिये तैयार कराया था! हरिजनोंके साथ सवर्णोंकी ओरसे जो दुर्व्यवहार होता है उससे हरिजन-सभापतिका दिल इतना दुखा, कि उसे ईश्वरकी हस्तीपर ही सन्देह होने लगा। वह सोचने लगा, कि 'करुणासिन्धु' कहलानेवाले ईश्वरका अगर अस्तित्व होता तो क्या ऐसी-ऐसी क्रूरताएँ दुनियामें हो सकतीं? इस अविश्वासका कुछ-न-कुछ कारण तो जरूर रहा होगा।

पर एक और ही प्रकारकी नास्तिकताका एक और नमूना मिला है, जो इस प्रश्नके रूपमें है—

"क्या आपका ऐसा खयाल नहीं है, कि ईश्वर, सत्य अथवा वास्तविकताके विषयमें पहलेसे ही कोई विचार स्थिर कर लेनेसे हमारी सारी अनुसंधान-प्रवृत्तिपर ही एक तरह रंग चढ़ जा सकता है, जो हमारे कार्यमें खासतौरपर

बाधक हो सकता है, और हमारे जीवनके उद्देशको ही नष्ट कर दे सकता है ? जैसे, आप यह मानते हैं, कि कुछ नैतिक विषय ऐसे हैं जो मौलिक सत्य हैं। लेकिन हम तो अभी खोज कर रहे हैं, और जबतक हमें वास्तविकताका पता नहीं लग जाता, तबतक हम यह कैसे मान सकते हैं कि नैतिकताका कोई खास नियम ही सत्य है और उसीसे हमें अपनी शोधमें सहायता मिलेगी ?"

जबतक किसी विषयके अस्तित्वकी कल्पना पहलेसे स्वीकार नहीं कर ली जाती, तबतक उसकी खोज करना संभव नहीं। अगर हम किसीका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, तो हमें कुछ प्राप्त भी नहीं हो सकता। सृष्टिके आदिसे ही यह जगत्, जिसमें ज्ञानी और मूढ़ दोनों ही शामिल हैं, यह मानता आया है, कि 'अगर हम हैं, तो ईश्वर भी है, और ईश्वर नहीं है तो हम भी नहीं हैं।' ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें हरेक मनुष्यके मनमें विश्वास बना हुआ है। इसलिये ईश्वरका अस्तित्व सूर्यके अस्तित्वसे भी अधिक निश्चित माना है। 'ईश्वर है'—इस जीते-जागते विश्वासने हमारे जीवनकी अनगिनती पहेलियोंको सुलझाया है। इस विश्वासने हमारी विपदाओंको हलका कर दिया है। हम जीते हैं तो इसी विश्वासके आधारपर; और परलोकमें भी हमारी शांतिका आधार हमारा यही विश्वास है। ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करनेसे ही सत्यके अनुसंधानमें भी मन लगता है। सत्यकी खोज ही ईश्वरकी खोज है। सत्य ही ईश्वर है। ईश्वर है, क्योंकि सत्य है। हम यह मानते हैं, कि सत्यका अस्तित्व है, और उसकी खोजके सम्बन्धमें सुविज्ञात और अनुभूत नियमोंके परिपालनसे उसकी प्राप्ति हो सकती है, इसीलिये तो हम सत्यकी खोजमें प्रवृत्त होते हैं। ऐसे शोधकी विफलताका कोई प्रमाण इतिहासमें नहीं मिलता। ईश्वरकी हस्तीमें विश्वास न करनेवाले नास्तिक भी सत्यमें विश्वास करते हैं—विशेषता यही है, कि उन्होंने ईश्वरको दूसरा ही नाम, सत्यका नाम दे दिया है। नाम तो उसके अनन्त हैं, पर सत्य उसका सिरमौर नाम है।

जो ईश्वरके विषयमें सत्य है वही, कुछ कम मात्रामें, नैतिकताके कतिपय मौलिक सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें भी सत्य है। असलमें, ईश्वर अथवा सत्यके अस्तित्वसे ही उनका सम्बन्ध है। इन नैतिक सिद्धान्तोंसे पीठ फेर लेनेके ही कारण सत्यसे जी चुरानेवाले लोग इतने अधिक कष्टमें रहते हैं। ईश्वर अथवा सत्यकी प्राप्ति-साधना कठिन है सही, पर इससे यह नहीं कह देना चाहिये, कि 'ईश्वर है ही नहीं।'

हिमालयपर वही चढ़ सकता है जो उसकी चढ़ाईके नियमोंका पालन करे। नियम-पालन करनेमें कठिनाई आती है, इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि हिमालयपर चढ़ना ही असंभव है। नियम पालन करनेसे खोजमें और भी अधिक रस मिलता है, और लगन बढ़ती है। ईश्वर या सत्यकी यह खोज हिमालयपर चढ़ाई करनेवाले अगणित अभियानोंसे कहीं बढ़कर है, और इसीसे यह खोज बहुत अधिक रसदायक भी है। हमें जो उसमें रस नहीं मिलता, उसका कारण है ईश्वरके अस्तित्वमें हमारी श्रद्धाकी शिथिलता। हम जो कुछ अपने चर्मचक्षुओंसे देख पाते हैं उसीको उस सतसे भी अधिक सत्य मानते हैं, जिसके सिवा और सब असत् है। हम जानते हैं, कि जो दृष्ट है, जो कुछ दिखाई पड़ता है वह भ्रम है, माया है। तो भी हम असत्‌को ही सत्य मानते हैं! तुच्छ पार्थिव वस्तुओंको माया समझने लग जानेसे तत्वानुसंधानमें आधी विजय प्राप्त हो चुकती है। मायाजालको तोड़ देनेसे ईश्वर या सत्यकी खोजका आधा काम हो चुकता है। जबतक हम मायामोहसे मुक्त नहीं होते, तबतक उस महान् अनुसंधान-कार्यके लिये हमें अवकास ही नहीं मिल सकता।

—'हरिजन सेवक'से

(३)—सच्चा साम्यवाद

[ले० श्रीमान् प्रो० ज० ब० कृपालानी, एम्. ए.]

आजकल 'सोश्यलिज्मकी' खूब धूम है। देशमें जहाँ देखो तहाँ समाजवादियोंकी सभा-समितियाँ बड़ी तेजीसे खुलती जा रही हैं। यह हवा सिर्फ भारतमें ही नहीं, बल्कि सारी दुनियामें बह रही है। समाजवाद या साम्यवाद इस युगका एक व्यापक विचार मालूम होता है। दुनियाके अच्छे-अच्छे विचारकोंको इस लहरने अपनी ओर खींच लिया है। साम्यवादके विरोधी 'फासिज्म' और नाजिज्म भी आज साम्यवादका बाना धारण करके उसीकी भाषा और

उसीकी दलीलोंमें हमारे सामने उपस्थित हो रहे हैं। इसलिये साम्यवादकी परिभाषाके दायरेमें हर नये सामूहिक सुधार और हर सामूहिक आन्दोलनको आना पड़ रहा है। हमें यह देखना है, कि क्या खादी-प्रवृत्तिको भी साम्यवादकी भाषामें उचित और न्यायसंगत ठहराया जा सकता है। यह भी आवश्यक है कि जिन दोनों आन्दोलनोंका एक ही लक्ष्य—जनताका उत्थान, हो उनमें कोई परस्पर संघर्ष हो ही नहीं सकता।

इस प्रश्नपर वैज्ञानिक और यथाक्रम विचार करनेके लिये यह जान लेना जरूरी है, कि साम्यवादका आखिर मुख्य उद्देश क्या है? अगर हम अपने मनमें बिना कोई पूर्व धारणा बनाये निष्पक्ष होकर विचार करें, तो हम निश्चय ही यह कबूल कर लेंगे, कि धर्म, ब्रह्मचर्य, कौटुम्बिक जीवन, राष्ट्र, व्यवसायीकरण और अन्य ऐसे कई प्रश्न, जिन्हें आज अर्द्ध शिक्षित और मोटी बुद्धिवाले साम्यवादसे संबद्ध मानते हैं, वस्तुतः वे साम्यवादके मूलतत्व नहीं हैं। साम्यवादका मूलतत्व तो उसके Surplus Vaiue 'अतिरिक्त मूल्य'के सिद्धान्तमें (वह सिद्धान्त सही हो या गलत) मौजूद है। यह अतिरिक्त मूल्य ही जनताका बेहद दोहन कर रहा है। मुनाफा, लगान, ब्याज आदि अनेक मायावी रूप अतिरिक्त मूल्य धारण कर लेता है। ऐसे किसी भी उद्योग या व्यवसायको, जिसमें अतिरिक्त मूल्य अर्थात् मुनाफे, लगान और ब्याजकी कोई गुञ्जाइश नहीं है, साम्यवादके अनुकूल मानना होगा। इस बातकी परीक्षाके लिये यह जानना जरूरी नहीं, कि उस व्यवसायका संचालक या व्यवस्थापक ईश्वर या खुदामें विश्वास रखता है अथवा वह प्रकृतिवादका माननेवाला है। हमें इस खोजबीनमें उतरनेकी जरूरत नहीं, कि वह आदमी स्त्री-पुरुष-संबन्धी इस विचारको मानता है या उस विचारको—अथवा राष्ट्रके व्यवसायीकरणमें उसका विश्वास है या नहीं। हमारा असल मतलब तो यह है, कि वह साम्यवादके मूलतत्वको स्वीकार करता है।

इस खरी कसौटीपर हम खादीके व्यवसायको कसते हैं, तो हम देखते हैं, कि उसमें लगान, ब्याज या मुनाफा किसी भी तरहके अतिरिक्त मूल्यकी गुञ्जाइश नहीं है। उसका तमाम मुनाफा उसके उत्पादक या उसमें काम करनेवालोंकी ही जेबमें जाता है। दूसरे लोगोंको, चाहे वे सच्ची सेवा करते हों या कागजी घोड़े दौड़ाते हों, खादीकी आयमेंसे उन्हें कुछ नहीं दिया जाता। काम करनेवालोंको पैसा करीब-करीब एक-सा मिलता है। यहाँ मैं कुछ आँकड़े देता हूँ, जो इस बातको और भी स्पष्ट कर देंगे—

बुनकरकी मासिक आय औसतन		१३) से १५) तक
धोबीकी	„ „ „	१२) से १५) तक
रंगरेज या छीपेकी	„ „	२५) से ३०) तक
बढ़ईकी	„ „	२५) से ३०) तक

कातनेवालेकी आय बेशक कम है, पर कताईका काम सारे दिनका पेशा तो है नहीं, यह तो खाली फुर्सतके समयका धंधा है। फिर खादीके व्यवस्थापकोंका भी पारिश्रमिक २५) मासिक ही है, हालांकि उनमें कुछ उच्च शिक्षित भी हैं। (ये गांधी-आश्रम मेरठके आंकड़े हैं।)

'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्तके परिणामस्वरूप ही समाजवादी समस्त उत्पत्ति-साधनोंके राष्ट्रीकरणपर जोर दे रहे हैं। जहाँतक खादीका सवाल है, चर्खा और कर्घा ही उसकी उत्पत्तिके साधन हैं। इनके राष्ट्रीकरणकी आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि इन बाबा आदमके जमानेके सादे यंत्रोंपर इतना कम खर्च पड़ता है, कि कोई भी साधारण ग्रामवासी उसे बरदाश्त कर सकता है। जहाँ भी कोई ग्रामवासी खादीका काम करना चाहता है, पर चर्खा और कर्घा नहीं ले सकता, वहाँ हमारा चर्खासंघ उसकी मदद करता है। इसलिये खादी-उत्पत्तिके ये मोटे-झोटे या सीधे-सादे औजार राष्ट्रीकरणके साधनोंसे किस बातमें कम हैं?

उत्पत्तिका दूसरा जबरदस्त साधन है पूँजी। सो यह भी, चर्खासंघके हाथमें होनेसे, राष्ट्रकी ही सम्पत्ति है। खादीकी पूँजी पब्लिककी संपत्ति है, जिसपर न लगान मिलता है, न ब्याज, न मुनाफा ही। खादी उत्पत्तिके जो थोड़ेसे निजी कारोबार हैं उन्हें चर्खा-संघद्वारा निर्धारित नियमोंपर चलना पड़ता है। उनके हिसाब-किताब और दर-दाम नियत करनेपर चर्खा संघका नियन्त्रण रहता है और समय-समयपर उनका मुआइना भी होता है। इसलिये उन्हें सिर्फ उतने ही लाभसे संतोष करना पड़ता है, जिसे वे अपनी बहुत मामूली मजूरीसे निकाल सकें। असलमें देखा जाय, तो खादीका सारा व्यवसाय ही साम्यवादका एक प्रयोग और साहसपूर्ण प्रयत्न है।

प्रत्यक्ष तथ्यों या घटनाओंपर साम्यवादकी फिलासफी निर्भर करती है। फिर भी भारतके समाजवादी पश्चिमसे उमड़ते हुए साम्यवादी या बोलशेविक साहित्यको कितनी ही अधीरता और लालचकी निगाहोंसे क्यों न देखते हों, यह तो किसी भी तरह नहीं कहा जा सकता, कि साम्यवाद-के तमाम सिद्धान्त एकदम प्रत्यक्ष या ठोस तथ्योंके अध्ययनपर ही निर्भर करते हैं। वे यथार्थवादी हैं—यही दावा सारी साम्यवादी फिलासफीका है। किन्हीं पूर्वनिर्धारित विचारों या पुरातन अथवा नूतन धार्मिक या वैज्ञानिक धारणाओंपर खादीका आन्दोलन निर्भर नहीं करता। उसका आधार तो उन प्रत्यक्ष घटनाओंका आकलन है, जो दरिद्र भारतके सात लाख गाँवोंमें नित्य घटती रहती हैं।

और बातोंके साथ-साथ क्रांतिमें भी साम्यवाद विश्वास करता है। चर्खा भी न सिर्फ खुद चक्कर लगाता रहता है, बल्कि वह अन्य अनेक दार्शनिक क्रांतियोंका भी प्रेरक कारण है। अपढ़ जनता तो सिर्फ मारकाटकी उथलपुथलको ही क्रांति समझती है। पर क्रांतिका सच्चा सारतत्व तो विचार-धाराके दृष्टि-परिवर्तनमें है। इस दृष्टिसे भारतमें खादी-आन्दोलनने जितनी व्यापक क्रांति की है, उतनी किसी दूसरे आन्दोलनने नहीं। और किसी एक क्षेत्रमें ही नहीं, इसने तो सभी क्षेत्रोंमें क्रांति की है। जिस वस्तुमें हम प्रतिष्ठा समझते थे उसमें अब अपमान समझने लगे हैं; जिसमें पहले अपमानका भाव था, उसमें अब हम सम्मान देखने लगे हैं। पहलेका सुन्दर अब असुन्दर दीखने लगा है और तबकी कुरूपतामें आज हम सुरूपता ढूँढ़ने लगे हैं। सुन्दर, कला, आवश्यकता और स्वस्थता सभीमें खादीने मानों कायाकल्प कर दिया है। चर्खेने न केवल साधारण जनताके ही, बल्कि वर्गोंके भी अर्थशास्त्र सम्बन्धी विचारोंमें खासा परिवर्तन कर दिया है। खादीकी बदौलत हरिजनोंकी ओर भी लोगोंका ध्यान गया है। खादी एक खास मनोवृत्ति और एक खास फिलासफी या विचार-धाराको हमारे सामने रखती है। हम उस विचार धारासे सहमत हों या न हों, पर यह तो निश्चित है, कि उसने एक ऐसी व्यापक क्रांति तो जरूर कर दी है, जिसकी कोई निष्पक्ष व्यक्ति कमकदरी या उपेक्षा नहीं कर सकता। जो व्यक्ति साम्यवादी, वैज्ञानिक और यथार्थवादकी मनोवृत्तिका है, वह खादीकी न तो कमकदरी ही कर सकता है, न उपेक्षा ही।

—'हरिजन सेवक'से

(४) पंचाङ्गमें सौर वर्षका संशोधन

[ले० श्री० पं० गंगाप्रसादजी एम्० ए०, चीफ जज, टिहरी।]

१३ अप्रैल १९३३ को हरिद्वारमें अर्द्ध कुम्भीका भारी मेला होगा जिसमें दूर-दूरके सहस्रों साधारण यात्री और साधु-संन्यासी इकट्ठे होंगे और विषुवत् संक्रान्तिको गंगा-स्नान करेंगे। जिस समय मीन राशिसे मेष राशिमें सूर्य आता है उस समय स्नान करनेका विशेष महत्व समझा जाता है और उस नियत समयपर स्नान करनेके लिये यात्रियोंकी और विशेषकर साधुओंकी हरकी पैड़ियोंपर इतनी अधिक भीड़ होती है कि बहुतसे मनुष्योंको शारीरिक चोट आ जाती है और कभी कुछ यात्रियोंकी मृत्यु भी हो जाती है। इस बार संक्रान्ति वा पर्वका समय सूर्योदयके ९ घड़ी ३६ पल बीतनेपर माना गया है। परन्तु बहुत कम लोग इस बातका विचार करते हैं कि यद्यपि ठीक समयपर स्नान करनेके लिये घड़ी वा पलतक ध्यान किया जाता है परन्तु वास्तवमें विषुवत् संक्रान्ति उस समयसे लगभग २२ दिन पहले बीत चुकी होगी।

संस्कृतमें "विषुवत्" शब्द "विषु" समान अर्थमें अव्यय और "मतुप्" प्रत्ययसे बनता है और उसका अर्थ दिन और रात समान होनेका है जैसा अमरकोशमें भी कहा है—"समरात्रि दिवे काले विषुवद् विषुवं च तत्" अर्थात् जब रात और दिन समान हों उस समयको "विषुवत्" या विषुवम्" कहते हैं। इसी कारणसे हमारे ज्योतिष-शास्त्रके ग्रन्थोंमें पृथिवीकी उस Equator मध्यरेखा या वृत्तको जहाँ दिन-रात सदा समान रहते हैं "विषुवत् वृत्त" कहा है।

यह सब लोग जानते हैं कि दिन-रात समान लगभग २२ मार्चको हुआ करते हैं। हमारे पञ्चांग और पत्रोंमें भी उस समयपर "मेषे भानुः" अथवा "सायन मेषेऽर्कः" शब्द लिखे रहते हैं जिसका अर्थ है कि उस समय वास्तव-में मेष राशिमें सूर्य आया। वही वास्तवमें विषुवत् संक्रा-

न्तिका समय है। परन्तु १३ अप्रैलको जब लौकिक पञ्चाङ्गके अनुसार संक्रान्ति मानी जाती है उस समय पंचाङ्गोंमें "मेषेऽर्कः" लिख दिया जाता है। उसका अर्थ भी यही है कि उस समय मेष राशिमें सूर्य आया। परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि सूर्य एक वर्षके भीतर एक राशिमें एक ही समय पदार्पण करता है। वही संक्रान्तिका ठीक समय है। "संक्रान्ति" शब्द "सम्" पूर्वक "क्रमु" (पाद विक्षेपे) धातु और क्तिन प्रत्ययसे बना है।

पञ्चागोंमें हर संक्रान्तिके वास्तविक समयपर इसी प्रकार "...भानुः" या "सायन...अर्कः" और माने हुए समयपर "...अर्कः" लिखा रहता है जैसे २१ दिसम्बर १९३२ को "मकरे भानुः" और १३ जनवरी १९३३ को "मकरे अर्कः" लिखा है। इनमेंसे पहला ठीक और दूसरा अशुद्ध है क्योंकि २१ दिसम्बरको ही सूर्य मकरमें प्रवेश करता है और उस समयसे दिन बढ़ने लगता है। इस प्रकार हमारे पंचाङ्गमें लगभग २२ दिनकी भूल हर संक्रान्तिमें चली आती है।

अर्द्ध कुम्भीके विचारको छोड़कर विषुवत् संक्रान्ति हमारे सौर वर्षका पहला दिन Newyear's day है और इसलिये विशेष महत्वका है। उस दिन अनेक स्थानोंमें प्रतिवर्ष ही एक पर्व वा त्यौहार माना जाता है।

हर संक्रान्तिमें यह २२ दिनकी भूल कैसे हुई? इसका कारण यह है कि सौर वर्षका ठीक परिमाण ३६५ दिन ५ घण्टे ४८ मिनट ४६ सेकण्ड है जैसा वैज्ञानिकोंने सिद्ध किया है। सूर्य सिद्धान्तादि हमारे ज्योतिषशास्त्रोंके ग्रन्थोंमें भी इसी प्रकार लिखा है। कुछ पल और विपलोंका फर्क है परन्तु पूरे ३६५। दिनका वर्ष नहीं माना गया—३६५। दिन से कुछ कमका माना है। पंचाङ्गोंमें साधारण सौर वर्ष ३६५ दिनका होता है। चौथे वर्ष एक दिन अधिक अर्थात् ३६६ दिनका वर्ष होता है, जैसे अंग्रेजी वर्षमें चौथे वर्ष फरवरी मासमें २८ दिनके स्थानमें २९ दिन होते हैं इस प्रकार पंचाङ्गके अनुसार सौर वर्ष ३६५। दिनका हुआ जो वर्षके ठीक परिमाणसे ११ मिनट १४ सेकण्ड अधिक होता है। इससे १२८ वर्षमें एक दिनका अन्तर पड़ता है। इस समय हमारे पंचाङ्गमें लगभग २२ दिनका अन्तर है। इससे स्पष्ट है कि लगभग ३००० वर्षसे हमारे पंचाङ्गमें इस भूलका संशोधन नहीं हुआ।

यूरोपके पंचाङ्गमें भी इस प्रकारकी भूल चली आती थी। उसकी निवृत्ति किस प्रकार हुई उसका वर्णन उपयोगी होगा।

प्राचीन यूरोपमें Greeks यूनानियोंने विद्या आदिमें सबसे पहले उन्नति की। उनका भारतके आर्योंसे विशेष सम्पर्क था और उन्होंने प्राचीन आर्यावर्त्तसे बहुत कुछ सीखा। यूरोपमें पहले यूनानियोंके ही पंचाङ्गका प्रचार था। अंग्रेजी भाषामें पंचाङ्गके लिये जो Calender शब्द है वह यूनानी Kalends शब्दका ही रूपान्तर है। यूनानकी अवनति होनेपर यूरोपमें Rome रोमका साम्राज्य हुआ। ईसवी सन् से लगभग १०० वर्ष पहले जूलियस सीज़र Julius Caesor, जो यूरोपके इतिहासमें बहुत प्रसिद्ध है और जिसने Great Britain ग्रेट ब्रिटेनको भी विजित करके रोम साम्राज्यमें मिलाया था, सम्राट् था उसने पहली बार यूरोपके पंचाङ्गका संशोधन कराया। उससे पहले यूरोपमें Luner year चान्द्रवर्षका प्रचार था जो ३५५ दिनका होता है और हर तीसरे वर्ष ३० दिनका एक अधिमास जोड़ा जाता था जिससे चान्द्रवर्षका मिलान सौरवर्षसे हो जाता था जो उस समय ३६५ दिनका माना जाता था। जूलियस सीजरने चान्द्र वर्षको बन्द करके केवल सौरवर्षका प्रचार किया। उस समयके ज्योतिषी विद्वानोंने सौर वर्ष ३६५। दिनका बतलाया। इसलिये जूलियस सीजरने फरवरी मासमें हर चौथे वर्ष १ दिन अधिक जोड़नेका नियम किया। इसको जूलियसका संशोधन Julian Reform कहते हैं और इस संशोधित पंचांगको जूलियसका पंचांग Julion Caieuder कहते हैं। जूलियस सीजरने समान दिन-रातका समय २५ मार्चको रखा था।

जैसा ऊपर लिखा गया है सौर वर्षका ठीक परिमाण ३६५ दिन ५ घन्टे ४८ मि० ४६ सेकंड है। इसलिये हर वर्ष कुछ मिनटोंका अन्तर होता गया। सन् १५८२ में रोमके Pope Gregory पोप ग्रेगरीने जो स्वयम् ज्योतिर्विद्यामें निपुण था ज्योतिषके विद्वानोंकी सहायतासे पंचाङ्गका संशोधन किया उस समय यूरोपके वर्षमें १० दिनका अन्तर पड़ गया था। पोप ग्रेगरीने यह आज्ञा दी कि १० दिन छोड़ दिये जायँ, मानो १ जनवरीके पश्चात् १२ जनवरी

माना जाय। आगेके लिये इस भूलकी विवृतिका उपाय इस प्रकार किया गया। जूलियसके पंचाङ्गके अनुसार हर ऐसे वर्ष वा सन्में जिसका ४ से पूरा विभाग हो जाय फरवरी मास २९ दिनका रखा गया था। उसमें यह परिवर्तन किया गया कि जो ईसवी सन् १०० से विभाजित हो सके उसमें फरवरी मास २८ दिनका होगा। परन्तु जो ४०० से विभाजित हो सके उसमें फरवरी मास २९ दिनका होगा, इसके अनुसार सन् १६०० में फरवरी २९ दिनका हुआ परन्तु सन् १७००, सन् १८०० और सन् १९०० में फरवरी मासमें २८ दिन रहे। सन् २००० में वह मास फिर २९ दिनका होगा। इसका फल यह हुआ कि ४०० वर्षमें तीन दिन कम हो गये। इस हिसाबसे सौर वर्ष ३६५ दिन ५ घन्टे ४९ मिनट १२ सेकंडका हो जाता है। अर्थात् ठीक वर्षसे केवल २६ सेकेंडका अन्तर रह जाता है जो बहुत ही न्यून है। इससे ३३२३ वर्षमें एक दिनका अन्तर पड़ेगा इसका संशोधन भी इस प्रकार सोचा गया है कि ऐसा सन् जो ४००० से विभाजित हो जावे ३६५ दिनका रखा जाय अर्थात् उसमें फरवरी मास २८ दिनका हो।

ऊपर लिखे संशोधनको ग्रेगरीका संशोधन Gregorian Reform कहते हैं और संशोधित पंचाङ्गको ग्रेगरीका पंचाङ्ग Gregorian Calender कहते हैं। पोपका उस समय यूरोपमें बहुत प्रभाव होनेसे यह संशोधित पंचाङ्ग रूस छोड़कर सारे यूरोपमें प्रचलित हो गया। उस समय इंगलिस्तानने इसको स्वीकार नहीं किया था क्योंकि इंगलिस्तानके महाराज Henry VIII आठवें हेनरीका कुछ कारणोंसे जिनका इतिहासमें स्पष्ट वर्णन है पोप ग्रेगरीके साथ वैमनस्य था। लगभग १०० वर्षतक इंगलिस्तानमें दोनों पंचाङ्ग चलते रहे। उस समयके पत्र आदिमें दोनों तिथियाँ लिखी जाती थीं अर्थात् यदि कोई पत्र शुद्ध पंचाङ्गके अनुसार २१ अकतूबरको लिखा गया तो उसमें तिथि

11October (O.S) / 21October (N.S) अर्थात् ११अकतूबर (प्राचीन विधि) / २१ अकतूबर (नवीन विधि)

लिखी जाती थी। कुछ समयके पीछे इंगलिस्तानने भी संशोधित पंचाङ्गको पूर्णतया स्वीकार कर लिया।

हमारे पंचाङ्गोंका संशोधन भी ठीक ऊपर लिखे प्रकार हो सकता है। हमको लगभग २२ दिन छोड़ने होंगे। आगेके लिये भूल निवृत्तिका उपाय बिलकुल वही होगा जो ऊपर वर्णन किया गया है। कहा जाता है कि काशीके सुप्रसिद्ध ज्योतिषके आचार्य स्वर्गीय पं० बापूदेव शास्त्री पञ्चांगका संशोधन करके इस अन्तरको दूर करना चाहते थे परन्तु वे अपने जीवनमें ऐसा न कर सके। काशी हिन्दुओंका बड़ा तीर्थ और प्राचीन संस्कृत शिक्षाका अब भी मुख्य केन्द्र समझा जाता है। यदि पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय जी जिन्होंने काशीमें हिन्दू यूनिवर्सिटी स्थापित करके अमर कीर्ति प्राप्त की है और जो सनातनधर्मके एक स्तम्भ हैं पंचाङ्गका संशोधन करानेका उद्योग करें तो आशा की जा सकती है कि उसका हिन्दू जनतामें शीघ्र प्रचार हो जाय।

आर्य समाजने सौर वर्षको विशेष रूपसे अपनाया है। आगामी दीपावलीके समय १४ अकतूबरसे २० अकतूबर १९३३ ई० तक अजमेरमें ऋषि दयानन्दकी निर्वाण अर्द्ध-शताब्दी मनायी जायगी जिसमें आर्य-समाजके सब विद्वान् इकट्ठे होंगे और अन्य महत्त्वपूर्ण कार्योंके साथ एक आर्य-विद्वत्सम्मेलन भी किया जायगा। यदि ऐसे शुभ अवसरपर आर्य्य-विद्वत्सम्मेलनकी ओरसे पंचाङ्गका संशोधन किया जाय तो एक बड़ा उपयोगी कार्य हो जायगा। आर्य्य-समाज भारतवर्षमें धार्मिक, सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी सुधारोंमें अग्रसर रहा है। यदि इस सुधारका आरम्भ भी आर्य्य-समाजसे होवे तो आशा है कि अन्य हिन्दू जनता भी उसको शीघ्र अपना लेगी जैसा आर्य्य-समाजके बहुतसे सुधारोंको उसने अपना लिया है। यह विषय केवल गणितका है जिसमें कोई मतभेद भी नहीं हो सकता। आशा है कि दयानन्द-निर्वाण-अर्द्ध-शताब्दीकी प्रबन्ध-कारिणी सभा इसपर उचित विचार करेगी।

यह भी आशा की जाती है कि अन्य पत्र इस विषयपर विचार करेंगे और विशेषकर ज्योतिषके विद्वान् इसपर प्रकाश डालेंगे और अपना मत प्रकट करेंगे।

सम्पादकीय टिप्पणियां

१—खादीके उपयोगी आंकड़े

खादीका तुलनात्मक अध्ययन पाठक अन्यत्र दिये हुए लेखमें पढ़ेंगे। "हरिजन-सेवक"के १९ अक्तूबरके अंकमें खादीका उपजमें उसकी आयका वितरण देश के भीतर किस प्रकार होता है और खादीसे किस दशामें दरिद्र किसानोंको अधिकसे अधिक लाभ हो सकता है, इस बातको महात्मा गांधीने अपने लेखमें बड़ी स्पष्टतासे दिखाया है। वह लिखते हैं—

एक रुपयेकी खादी खरीदी जाय, तो उसे तैयार करनेवालों और बेचनेवालोंमें प्रत्येक मनुष्यके हिस्सेमें कितने पैसे पड़ेंगे इस सम्बन्धके कुछ अत्यन्त उपयोगी आँकड़े, मेरे निवेदनपर, अखिल भारतीय चरखा संघकी महाराष्ट्र शाखाने—जिसका प्रधान कार्यालय वर्धामें है—जुटाकर मुझे दिये हैं। १० से लेकर १४ नम्बरतकके पोतकी सफेद खादीके आँकड़े ये हैं—

किसानको कपासका दाम ।)॥, ओटाई)॥, धुलाई -), कताई ≈)॥, बुनाई ।), भाड़ा ८ पाई, धुलाई ८ पाई, व्यवस्था खर्च -) २ पाई—कुल १)

इस भंडारमें इस किस्मकी खादी अंदाजन ५० फी सदी है। इसलिये एक रुपयेकी इस खादीपर भंडारवालोंको तो सिर्फ -)२ पाई ही मिलता है; और मजदूरोंको, किसानसे लेकर बुनकरतक, एक रुपयेमें ॥-)॥ मिल जाते हैं। यह संतोषकी बात है, कि सबसे ज्यादा पैसा किसान, कतवैये और बुनकरको ही मिलता है। महीन पोतकी खादीमें किसानको कम और कतवैयेको सबसे अधिक मिलता है। मगर ऊपरी खर्च तो कभी-कभी २५ फी सदीतक पड़ जाता है। फिर खादीकी फैंसी चीजोंका दाम तो सौ फी सदीतक बढ़ जाता है। खादीका अगर हम एक रुपयेका फैंसी रूमाल खरीदें, तो 'दरिद्र नारायण'को तो सिर्फ आध आना या इससे कम ही मिलेगा। हाथके छोटे साँचेपर बुने हुए हथकते सूतके मोजोंको लीजिये इनमें सूतका दाम तो बहुत ही कम होता है। आन्ध्रकी साड़ी २५) की आती है, और उसपर बढ़िया बेल-बूटा काढ़ा जाय तो १५०) तक उसकी कीमत बढ़ जा सकती है। इसका स्पष्ट अर्थ यही हुआ, कि खादी जितनी ही सादी होगी, उतना ही अधिक पैसा गरीब से-गरीब मनुष्योंको मिलेगा। इसमें सन्देह नहीं, कि सुन्दर सजावटने खादीको उन घरोंमें भी सर्वप्रिय बना दिया है, जो शायद उसकी ओर देखते भी नहीं। कुछ ऐसी भी लोकप्रिय किस्मोंकी साड़ियाँ और धोतियाँ हैं, जो गरीब लोगोंके लिये ही बनाई जाती हैं। इनपर एक पैसा भी व्यवस्था-खर्च नहीं जोड़ा जाता। और चरखा-संघके किसी भी खादी-भण्डारमें खालिस मुनाफा-जैसी चीज तो होती ही नहीं। प्रबन्ध खर्च तो खादीको स्वावलम्बी बनानेके लिये ही जोड़ा जाता है। खादी अब भी स्वाश्रयी नहीं हो पायी है। अखिल भारतीय चरखा-संघकी समिति बराबर ही यह जी तोड़ प्रयत्न करती आ रही है, कि खादीके अधिक-से अधिक दाम घटा दिये जायँ और खादी-भंडारोंकी व्यवस्था इतनी अच्छी कर दी जाय, कि खर्च उसपर कम-से-कम पड़े।

अन्यत्र (उसी अंकमें) एक खादी-गुणगान करनेवाले पत्रकी यह कटिंग देकर—

"एक रुपयेका विदेशी कपड़ा खरीदा जाय, तो सिर्फ -)॥ हिन्दुस्थानीके पल्ले पड़ेगा और साढ़े चौदह आने सीधे विदेशी व्यापारकी वृद्धिमें चले जायँगे।

"एक रुपयेका देशी मिलका कपड़ा खरीदें, तो ॥) तो मिल-मालिककी जेबमें जायँगे, ।≈) मजदूरको मिलेंगे, और ≈) विदेशियोंकी पाकेटमें चले जायँगे।

"एक रुपयेकी खादी खरीदी जाय तो व्यवस्था-खर्चको बाद करके बाकीका सारा पैसा खादीके उत्पादकको ही मिलेगा।"

यथार्थताकी आवश्यकतापर विचार करते हुए आप लिखते हैं, कि—

"मुझे यदि यह विज्ञापन बनाना हो तो मैं इस तरह लिखूँ—

"आप जब एक रुपयेकी खादी खरीदें तो यह जान लें, कि खादीके उत्पादकको उसके परिश्रमका पूरा पूरा फल मिल रहा है; पर जब आप देशी मिलका बना हुआ कपड़ा खरीदते हैं, तो आप उत्पादकसे उसके हितकारी परिश्रमका काम छीन लेते हैं, और उसके बदलेमें उस बेचारेको कुछ भी नहीं देते। खादी-विक्रेताको सिर्फ पेट भरनेमात्रको ही पैसा मिलता है, और इसलिये वह उत्पादककी ही कोटिका है।"

इन बातोंपर विचार करनेवाला हर भारतीय जिसके हृदय है, मोटी और सादी खादीको ही अपनायेगा, क्योंकि दरिद्र भाइयोंकी सहज परन्तु प्रत्यक्ष सहायताका यही एकमात्र साधन है। —रा० गौ०

२—हिन्दी कैसी हो ?

इस प्रश्नको लेकर कई लेखकोंने हरिजनसेवकमें अपनी राय लिखी है। हम पं० रामनरेश त्रिपाठीकी इस रायसे पूरे तौरपर सहमत हैं कि हमें बनावटी भाषासे बचना चाहिये और भरसक ऐसी भाषा लिखनी चाहिये जो आमतौरसे हम बोलते हों। गोसाईं तुलसीदासने उस गँवार बोलीमें रामकथा लिखी है जो सरजूपार अवधसे लेकर चित्रकूटतक बोली जाती है। उनकी कविता कितनी लोकप्रिय हो गयी है। जिन गाँवोंके गीतोंका उन्होंने संग्रह किया है, वे आज भी देशके एक छोरसे दूसरी छोरतक गाये जाते हैं। "हरिऔध" कविने साधारण बोलचालकी भाषामें ही चोखे और चुभते चौपदे लिखे हैं। परन्तु उन्हींका "प्रियप्रवास" या त्रिपाठीजीके ही "पथिक" और "मिलन" जिस भाषामें लिखे गये हैं, क्या वह साधारण बोलचालकी भाषा है ?

काका कालेलकर हरिजन-सेवकमें (१९।१०।३४) ठीक ही कहते हैं—

"गरीब भोली जनताके मस्तिष्कपर यह बोझ लादना, कि "अगर तू शिक्षा-संस्कृति चाहती है, तो तमाम कष्टोंको झेलकर साहित्यके ऊँचे शिखरपर तुझे चढ़ना ही होगा"—ठीक है, या खुद भाषाका अपने उच्च साहित्यिक शिखरसे उतरकर सर्वसाधारणके बीचमें सेवाभाव तथा समानभावसे विचरण करना ? अगर जनताका उद्धार वाञ्छनीय है, तो भाषाको यह उच्च साहित्यिक शिखर छोड़ना ही होगा, और ऐसा करनेसे ही उसमें एक अनोखा तेज प्रकट होगा।

जब हम मनुष्य-मनुष्यके बीचका उच्च-नीचभाव दूर करना चाहते हैं, तो भाषाके क्षेत्रमें भी बुद्धि-पूर्वक ऐसा ही प्रयास होना चाहिये।

अगर गौरसे देखा जाय तो देहातके लोग कोई दो तीन हजार शब्दोंसे ही अपना तमाम वाग् व्यवहार चला लेते हैं। उनके सामान्य जीवनके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाव भी इतनी छोटी शब्द-संख्यामें भलीभाँति व्यक्त हो जाते हैं। देहातोंमें, जहाँ हमारी सभ्यता सर्वथा नष्ट नहीं हो गयी है वहाँके लोगोंकी वक्तृत्वशक्ति असाधारण होती है। उनके अथाह अर्थसे भरे चुने हुए शब्द सुननेके लिये अच्छे-अच्छे साहित्याचार्य भी लालायित रहते हैं। हमारी राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिये, कि उसमें सादगी, सच्चाई, संस्कारिता और सामर्थ्य ये चारों गुण समान भावसे दिखाई दें। अब तो सफेदपोश लोगोंकी सरदारी भाषा छोड़कर साधारण जनताकी स्वभाव सुन्दर भाषाका अर्थात् लोक-भाषाका सर्वत्र व्यवहार होना चाहिये।"

जनताके लिये साहित्य दर्शन और विज्ञानका विषय भी जब कभी लिखा जाय उसीकी आम बोलचालमें। तभी वह विषय रोचक भी होगा और सुबोध भी।

यह सच है कि शास्त्रकी भाषा कठिन और अपरिचित हुए बिना नहीं रह सकती। और वह तो रहेगी ही। पारिभाषिक शब्द इसीलिये गढ़े जाते हैं कि लम्बे-लम्बे वाक्योंका स्थान एक-एक शब्द ले लें और हम बहुत विस्तृत और गंभीर अर्थोंको छोटे-छोटे वाक्य-खंडों या सूत्रोंमें व्यक्त कर सकें। लाघव मनुष्यमात्रको प्रिय है। विद्वान् इस लाघवके लिये ही अपनी भाषाको बनावटी कर डालते हैं। यही कारण है कि सदासे शास्त्र और जनताकी भाषामें भेद रहा है। साधारण भाषामें इसी भेदको "लोक" और "वेद" कहते आये हैं। लोकभाषा सरस, सरल, सुबोध और रोचक होती है। वेदभाषा दुरूह, कठिन, दुर्बोध और अरोचक होती है।

पाठक जानते हैं कि यह विज्ञानका मुख्य उद्देश्य है कि शास्त्रोंके गहनसे गहन विषयोंको सुबोध और रोचक बनाया जाय। इसलिये हमारा तो सीधासादा उत्तर यही है कि **हिन्दी ऐसी हो कि ज्यादासे ज्यादा आदमी समझ सकें। हिंदी वेदभाषा न बने, लोक-भाषा बने।** —रा० गौ०

३—सौर पंचांगका संशोधन

सौर तिथियोंका सुभीता देखकर "विज्ञान"ने ही पहले-पहल संवत् १९७२ में सौर तिथियोंका प्रयोग आरंभ किया था और विज्ञानका पहला अंक उसी साल "मेष सं० १९७२" से निकला। विज्ञानका यही क्रम चला आ रहा है। सौर तिथियोंका प्रयोग तो पंजाब, बंगाल और मद्रास प्रान्तमें पहलेसे ही प्रचलित है, परन्तु कोई निरयण-संक्रांतिके दिनसे; कोई उसके बादसे और कोई कुछ पहलेसे मासारंभ मानते आये। मासारंभका दिन कौनसा समझा जाय इसमें मतभेद था और है। प्रत्येक राशिमें सूर्य्यका भोगकाल समान नहीं है, और संक्रमण काल अहोरात्रमें किसी समय पड़ सकता है। अतः चांद्र तिथियोंका जैसा झगड़ा नित्य पड़ता है लगभग वैसा ही झगड़ा सौर मासा-

रंभमें भी पड़ा करता है। इस झगड़ेसे छुटकारा पानेके लिये मैंने प्रत्येक मासकी दिन संख्या नियुक्त कर दी और वर्ष भरमें जो ३६५ दिनोंके बाद लगभग छः घंटे जो बढ़ते हैं, उनके लिये चौथे वर्ष एक दिन कुंभमासमें बढ़ा दिया। इस तरह अंग्रेजी तारीखोंकी तरह सौर तिथियोंकी गणना स्थायी हो गयी। हमारी परिषत्के स्थायी सदस्य श्रीमान् बाबू शिवप्रसाद गुप्तने ही मेरी इस योजनाको विधिवत् पंचांगका रूप दिया और संवत् १९७३ से ज्ञानमंडल सौर पंचांग बराबर निकाल रहा है।

तबसे इस विषयपर पत्रोंमें कई बार विचार हुआ और गत वर्ष "सार्वदेशिक" पत्रमें श्रीमान् पं० गंगाप्रसादजी, एम्० ए०, चीफ जज; टिहरीने एक लेख लिखा, जिसे पाठक इसी अंकमें अन्यत्र देख चुके हैं। वह चाहते हैं कि सायन संक्रान्तिके अनुसार यही तिथियाँ क्यों न बरती जायँ। फलतः जिसे हम आज पहली वैशाख या मेषार्क कहते हैं उसे २५ मेषार्क कहना पड़ेगा। इस लेखपर जान पड़ता है कि किसीने विशेष ध्यान नहीं दिया। जज महोदयने श्रीमान् गुप्तजीको हालमें २८।१०।३४ को एक पत्रमें लिखा है।

गत वर्ष अप्रैलमें मैंने इस विषयपर एक लेख आपके "आज" पत्रमें छपवाया था जो कई और पत्रोंमें भी छपा था, उसकी एक प्रति "सार्वदेशिक" पत्रमें छपी हुई इसके साथ भेजता हूँ। आशा है आप इसको देखेंगे। मैंने एक प्रति श्रीयुत मालवीयजीके पास भी उस समय भेजी थी और उनका उत्तर १५।५।३३ का आया था कि इस विषयपर पीछेसे कार्य किया जायगा। आपने अपने सौर पञ्चाङ्ग और सौर रोजनामचेमें सौर वर्षके सब मासोंके दिनोंकी संख्या नियत करके और हर चौथे वर्ष एक अधिक दिन कुम्भ मासमें नियत करके इस पञ्चाङ्गमें बहुत कुछ सुधार कर ही दिया है, परन्तु हमारे सौर पंचांगमें जो २१ या २२ दिनका अन्तर है जिसका मैंने अपने लेखमें वर्णन किया है वह भी दूर होना चाहिये। गत वर्ष दयानन्द निर्वाण अर्द्ध शताब्दीके अवसरपर जो आर्य-विद्वत्-सभा (धर्मार्य्य सभा) हुई थी उसमें इस सुधारकी आवश्यकताके विषय में सर्व सम्मतिसे निश्चय हुआ था। परन्तु सारे भारतवर्षसे प्रचार करनेके लिये यह आवश्यक है कि यह कार्य काशीसे आरम्भ किया जावे। श्रीयुत मालवीयजीका समय राजनीतिक तथा अन्य बड़े कार्योंमें लगा रहता है, परन्तु यदि आप उचित समयपर उनसे परामर्श करके इस कार्यको करनेका यत्न करें तो आशा है इसमें सफलता होगी।

पंचांग तो बदलना पड़ेगा ही चाहे हर साल बदलें चाहे कई हजार साल बाद। चान्द्रमाससे चलनेवाला मुसलमान अपना पंचांग नहीं बदलता। उसके दिन और मास सालभर चक्कर लगाते फिरते हैं। चान्द्र सौर तिथियोंका समन्वय करनेवाले हिन्दू पंचांग मलमास, क्षयमासादिसे यथेष्ट परिवर्त्तन करते रहते हैं। अयन-चलनके कारण संक्राति भी तो स्थायी नहीं है, चक्कर लगाती रहती है। अतः ऐहिक दृष्टिसे समयानुसार किसी दिनसे आरंभ मान लेनेमें हर्ज नहीं है। समयपर आवश्यकतानुसार बदलनेमें क्या कठिनाई है। प्रश्न गणना बदलनेका नहीं है किन्तु रूढ़ि बदलनेका है।

फिर भी इस विषयके समस्त विद्वानोंसे विनीत प्रार्थना है कि इस प्रश्नपर विचार करें और अपना निश्चित मत प्रकाशित करें। यदि इन स्तंभोंमें प्रकाशनार्थ ऐसे मत प्राप्त होंगे तो विज्ञान सादर सहर्ष स्थान देगा।—रा० गौ०

४—साहित्यिक अपहरण-कलामें "कमल" जीकी प्रसिद्धि

नायिकाके हाथ, पाँव, चेहरा, आँखें आदि प्रायः सभी अङ्गोंके सौन्दर्यका चुरानेवाला कवियोंका वह कमल तो बदनाम ही था, "कमल" उपनाम रखनेवाले श्रीकामेश्वर शर्म्माजी अपनी साहित्यिक चोरियोंके लिये कम बदनाम नहीं हुए। २३ अकतूबरके स्वराज्यमें श्री 'सूर्यनारायण" व्यास जीने भी ["रवि" वर्म्माजीकी तरह] लिखा है कि "कमल" ने उनके लेखोंकी भी चोरी की है। गरज कि "कमल" और "सूर्य" का सम्बन्ध नित्य और अविच्छिन्न है, फिर चाहे वह रागका हो या द्वेषका और 'कमल' की चोरी भी पेटेंट है, चाहे वह वास्तविक कमलकी हो और चाहे उपनामधारी "कमल" की।

इतना होनेपर भी 'गंगा' 'सुधा' 'प्रताप' आदि चुप ही हैं। उनकी नीति भर्त्सनावाली नहीं मालूम होती। वह दुर्गुणपर धूल डालनेवाले जान पड़ते हैं। परन्तु इतना तो सभी कर सकते हैं, कि "कमल" जीका लेख लेनेमें अब सावधान रहें। जो लोग चोरीका पुरस्कार दे चुके हैं, उनका अब बोलना भी ठीक नहीं है। —रा० गौ०

डिलेरीन

मन्थर ज्वर फुफ्फुस प्रदाह, प्रसूत ज्वर, इन्फ्लूएँजा आदि के होने पर जब अधिक ज्वर होकर मनुष्य को सरसाम या सन्निपात होजाता है और रोगी अधिक बकवास करता है, नींद नहीं आती, हाथ पैर मारता है या बेहोश पड़ा रहता है ऐसी हालत में हमारी यह दावानल वटी चार २ घण्टे के बाद खिलाने से रोगी की सन्निपातिक अवस्था जाती रहती है।

खुराक—१ गोली अद्रक रस शहद से दें। ऐसे बीमार को खुराक के लिये कोई दूध वगैरः गिजा तब तक नहीं देना चाहिये जब तक होश हवास दुरुस्त न हो जांय।

मूल्य १)

वर्टीगोन

जिन शख्सों को किसी दिमागी कमजोरी, आंख की कमजोरी, पेट की बीमारी या आम कमजोरी के कारण उठते बैठते चक्कर आते हों, सिर में धक्के लगते हों, घुमेर पड़ता हो, आंख के आगे अन्धेरा आ जाता हो ऐसों को यह दवा अत्यन्त फायदा करती है। पुराने सिर दर्द में भी इससे फायदा होता है।

सेवन बिधि--पानी के साथ १ गोली, दिन में दो दफा सुबह शाम सेवन करें मूल्य १)

एट्रोफील

यह दवा बच्चों के सूखा रोग (मसान) में अत्यन्त फायदा करती है। जिन बच्चों को किसी बुखार के पश्चत् या बुखार बने रहने की हालत में सूखा की बीमारी लग जाती हैं और बच्चा सूखता चला जाता है जिसको लोग मसान या परछावा भी कहते है। इस बीमारी में यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करने से बच्चा खूब मोटा ताजा हो जाता है।

प्रयोग--१ गोली सुबह और एक गोली शाम को पानी से सेवन करावें। खाने के लिये दूध फल रोटी बन्द कर दें। मूल्य १)

स्प्लीनीन

विषम ज्वर अथवा अन्य ज्वरों से प्लीहा प्रायः बढ़ जाया करती है और प्लीहा वृद्धि के कारण पेट बढ़ जाया करता है। खाना हज्म नहीं होता। हल्कासा ज्वर बना रहता है। हमारी यह औषध दस्त ला कर प्लीहा को छांटता जाता है और एक सप्ताह के प्रयोग से बिल्कुल ठीक कर देती हैं। ज्वर जाता रहता है भूख खूब लगने लगती है। नया रुधिर काफी बनने लगता है दो तीन सप्ताह में रोगी बिल्कुल स्वस्थ हो जाता है।

एक सप्ताह की औषधि का मूल्य १)

सेवन विधि--इस शीशी की औषधि किसी बड़ी बोतल में डाल दें और १० छटांक पानी मिला कर खूब अच्छी तरह मिला दें और दोपहर के भोजन के दो घण्टे बाद एक औंस पीवें। मूल्य १)

मिलने का पता—**मैनेजर दी पी० ए० वी० फार्मेसी,**

अमृतसर।

डिफनेस्सीन ऑयल

जिन भाइयों को अधिक क्वनैन, जमाल गोटा (जैपाल बीज) संखिया वगैरः अत्यन्त गर्म खुश्क चीजें खाने से कानों में खुश्की पंहुच कर बहरापन होजाता है और कानों में ज्यादा पपड़ीदार सूखी मैल बनती रहती है, या कान में सूखा दर्द रहता है कान की झिल्ली नरम पड़ जाती है, और किसी तिनका का स्पर्श भी असह्य होता है, उनके लिये यह तेल अत्यन्त लाभदायी है।

सेवन विधि--रात्री को सोते समय शीशी को हिला कर इस तेल की चार बूंद कान में डाल कर सो जांय, तेल कान में ही पड़ा रहे। दूसरे दिन दूसरे कान में छोड़ें। इस तरह कुछ दिन करने पर एक तो कान में झिल्ली या मैल का बना रहना बंद हो जाता है, दूसरे सुनाई देने लग जाता है। कुछ दिन के सेवन से कान खुल जाते हैं। मूल्य १)

कॅटारीन

दमा की बीमारी, पुरानी खांसी, या किसी और फेफड़े की बीमारी के कारण जब श्लेष्म अत्याधिक निकलती हो, सुबह के समय सेरों बलगम खारज होती हो, और बलगम की अधिकता से रोगी अधिक कमजोर हो चुका हो तो कॅटारीन के सेवन से अजह्द लाभ होता है। पहिले ही दिन बलगम घट कर बहुत कम होजाती है। बलगम घटने पर रोगी को बहुत आराम मिलने लगता है।

मात्रा--चौथाई ग्रेन पान पत्र पर लगाकर खायें।

फार्मूला--आर्सेनिक सल्फर मिश्रित वनस्पति तेल।

पथ्य--खटाई, तेल, कब्जकारी वस्तुएं मूल्य १)

आस्थमीन

यह दवा दमा के दौरे पर अच्छा काम देती है तथा दो तीन मास नित्य सेवन करते रहने पर दमा जाता रहता है।

सेवन विधि-१ गोली सुबह शाम पानी के साथ सेवन करें

मूल्य १)

डायसेण्ट्री पिल्स

यह औषधि पेचिश के लिये अत्यन्त लाभकारी है। नई बीमारी में सेवन से पहिले हलका सा जुलाब जरूर दें। जुलाब होजाने के तीन चार घण्टे बाद दही, जल या तक्र के साथ सेवन करें। दिन में दो दफा दें सुबह शाम।

पथ्य पेचिश के दिनों में दही से व छाछ से चावल खायें। मूल्य १)

Prurigon

नई खारश, पुरानी खारश, सूखी खारश, दाद, मसादाद मण्डल कुष्ठ, चर्म दल कुष्ठ आदि जिल्दी बीमारियों मे यह दवा अत्यन्त मुफीद है।

सेवन विधि-१ औंस कड़वे तेल में मिलाकर खूब घोटें, जब बारीक हो जाय तो ४ औंस तेल मिलाकर रख लें। इसकी खूब मालिश करें और एक घंटे के बाद स्नान कर डालें। दिन में एक या दो बार इस तरह मालिश करें। मूल्य १)

मिलने का पता—— पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर।

स्क्रोफोलीन

यह दवा उस कण्ठमाला में अच्छा लाभ करती है जो अभी तक फूटी न हो नई निकली हो। पेटकी कण्ठमाला में भी लाभदायी है, यदि गिलटियां दो चार महीनें की हों तो बहुत जल्द फायदा होता है और दो चार साल की हों तो दवा को कुछ दिन खाते रहने से गांठें अपने आप बैठ जाती हैं।

परहेज-खटाई, तेल व भारी भोजन नहीं करना चाहिये।

मात्रा—डेढ़ माशा दवा पानी से या अर्क कासनी से या तक्र से दोनों समय (सुबह शाम) लें।

मूल्य १)

आपथैलमीन

यह दवा आंख की नीचे लिखी बीमारियों में अत्यन्त फायदेमन्द है।

आंख आना या आंख दुखना, आंख की पुरानी लाली, आंख के गोलकों का दर्द, रोहे या कुकरे, धुन्ध जाला, आंख से पानी जाना, आंख में ज्यादा कीचड़ या मैल आना इत्यादि। आंख के आने पर या अभिष्यन्द होने पर फौरन लाभ दिखाती है।

सेवन विधि—दवा को शलाका (सुरमा लगाने की सलाई) पर लगाकर सुबह शाम दोनों समय आंख में डालनी चाहिये।

मूल्य १)

कारटीनीन

चौथे दिन चढ़ने वाला मलेरिया बुखार जिसको चौथा बुखार या चौथय्या कहते हैं चाहे पुराना हो या नया यह दवा हर एक को शर्तिया फायदा करती है।

सेवन विधि—५ रत्ती दवा को जल के साथ यह दिन में दो दफा (सुबह शाम) एक सप्ताह तक सेवन करावें।

पथ्य—एक सप्ताह तक दूध रोटी, दूध चावल चीनी मीठा युक्त।

मूल्य १)

डायरीन

बच्चों को या बूढ़ों को पेट की खराबी से या बदहजमी से बच्चों के दांत निकलने के कारण या किसी अन्य अज्ञात कारण से एक दम दस्त शुरू हो गये हों तो ऐसी अवस्था में इस औषध के प्रयोग से एक बार अवश्य ही दस्त बन्द होजाते हैं। पश्चात् विशेष कारण को देख कर चिकित्सा क्रम जारी कर सकते हैं। यह औषध तो जनरल तौर पर दस्त बन्द करने के काम आने वाली है।

मूल्य १)

मिलने का पता —**मैनेजर दी पी. ए. वी. फार्मेसी,**

अमृतसर।

विषय-सूची

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्के पदाधिकारी

संवत् १९९१–१९९२ वि०

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिये।

२—विज्ञान, विज्ञानपरिषत्, विज्ञापन तथा वैज्ञानिक साहित्यके प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र तथा मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञानपरिषत्, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिये।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्द, दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिये।

दत्तात्रय लक्ष्मण निघोजकरने श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयागके लिए वृन्दावन विहारीसिंहने विज्ञान कार्य्यालय काशीसे प्रकाशित किया।

वैज्ञानिक गोरक्षामें ही सच्ची रक्षा है

[१] स्वराज्य-प्राप्तिका सहज उपाय ⊛

[ले०—डाह्याभाई ह० जानी, बी. एजी. (अग्री. इका.) गोल्डमेडलिस्ट, राणपुर, काठियावाड़]
[हिन्दीकार—श्रीराधारमण याज्ञिक, काशी]
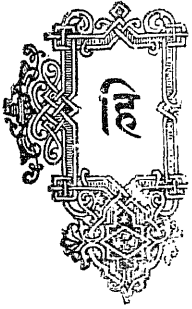
हिन्दुस्थानके गोरक्षाकी समस्याके विषयमें भावनाओं और शब्दजालकी दीवारें खड़ी करनेकी अपेक्षा, आँकड़ोंकी इमारत और बुद्धिका चबूतरा खड़ा करना अधिक आवश्यक है। इसलिये पौराणिक प्रकारके गौ-माहात्म्यकी लकीर पीटना अनावश्यक ठहरता है। 'हाथ कङ्गनको आरसी क्या है?' अतः अन्य किसी विचार-विनिमयके बिना सीधे गोप्रश्नके व्यावहार्य-स्वरूपके विचारसे हमें हाथ धोना पड़ेगा। आजकलकी ठोस बातों और प्रत्यक्ष प्रमाणको ही माननेवाले जमानेमें गायको दया और धर्मकी ही दृष्टिसे देखनेसे गाय और तत्प्रतिपालक प्रजा, दोनोंका कोई लाभ नहीं होनेका। किन्तु दोनोंका हित जैसा बिगड़ता आया है वैसा ही बिगड़ता रहेगा।

मूर्खतापूर्ण कोरी दया शुद्ध आत्मवंचना है

किसी कपोलकल्पित या मनगढ़न्त रीतिसे स्वर्गमें स्थान प्राप्त करनेके लिये या विमानका पाया पकड़नेके लिये, ऐरनकी चोरी करके सुईका दान करनेकी तरह, कसाईखानेसे गाय छुड़ाकर या किसी ब्राह्मणको दान देकर या गोशालेमें घास चारा देकर पुण्य प्राप्त करनेके दिन अब लद गये। आजकल तो मूर्खतायुक्त एवं आत्मवञ्चिका दयासे पशु और प्रजा दोनोंकी अवस्था बिगड़ती जा रही है। ऐसे अवसरपर जरा अधिक ध्यानपूर्वक इस प्रश्नपर विचार करना पड़ेगा।

धर्मादा

जब धर्मका अधःपतन होता है तब वह धर्मादाके रूपमें हो जाता है। जब धर्मके अङ्गकी तरह आर्यावर्तकी जीवन-योजनामें गायका स्थान था तब धर्म और गाय तथा दोनोंको पालन करनेवाली प्रजाकी आबादी और भव्यता भी थी। परन्तु धर्मका, सच्चे और उन्नतिकर धर्मका ही जब शतमुख ह्रास हो रहा है ऐसे समय साँपके गतिचिन्हकी तरह धर्म और धर्मादाने कोरी दया और निकृष्ट दानवृत्तिका रूप धारण कर लिया है और फलस्वरूप प्रजाका अधःपतन हो गया है।

जिसमें दोनों लोकोंका कल्याण हो, वही धर्म्म है

जो व्यवहार तथा संस्कार, स्वार्थ और परमार्थ, दोनोंको सुधारे वही धर्म है। जो केवल एकको सुधारे वह धर्म नहीं है। जो निश्रेयस् और अभ्युदय, इहलोक और परलोक, दोनोंका हित करे वही धर्म है। जिससे केवल परलोक ही बने वह उधार धर्म या शुष्क ब्रह्मवाद तथा मायाजाल होगा। जिसमें इसी लोकका विचार होगा वह संसारवाद या प्रपंच होगा। परन्तु जो दोनोंको साधे उसे सच्चा धर्म कह सकते हैं। किसी एक बातको साधनेवाला धर्म राक्षसी रूपकी तरह घृणास्पद एवं भयंकर हो जायगा। धर्मसे ही भारत टिका है, यदि यह बात सच्ची हो तो यह धर्म कौन

⊛ मूल लेख गुजराती भाषामें है। तत्सम्बन्धी ब्लाक लेखकने बड़े परिश्रमसे बनाये हैं जो कि इस अनुवादमें भी यथास्थान दिये जाते हैं। चित्रोंमें लिखे हुए शब्द गुजरातीमें हैं जिनको समझनेमें प्रायः पाठकोंको कठिनता होगी। इस असुविधाको दूर करनेके लिये यथाशक्ति सुपठ शब्दोंका हिन्दीमें यत्रतत्र अनुवाद कर दिया गया है। आशा है कि त्रुटियोंके लिये मूल लेखक तथा पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे।

—अनुवादक

है यह समझना चाहिये। भारतके इस संरक्षक धर्ममें इस जगतके कल्याण एवं व्यावहारिक सफलताकी प्रधान शर्त थी।

अर्थका विरोधी धर्म नहीं हो सकता

अर्थ-शास्त्रकी ठोस चट्टानपर ही खड़ा हुआ धर्म टिक सकता है और पाला जा सकता है। और सब प्रकारका धर्म पाखण्ड और दम्भरूप हो जाता है। यह धर्म इस प्रकार अर्थसिद्ध, स्वार्थसिद्ध, व्यावहार्य धर्म (Eco-religion) था। उस लोकजीवनका प्रासाद धर्मका था जिसकी नींवमें अर्थशास्त्ररूपी सीसा और पारा ढाल दिया गया था।

वह धर्म कोई ताशके पत्तोंका महल तो था नहीं कि वासना या विकारकी हवा लगते ही उड़ जाय। वे तो दृढ़ बुनियादपर बनायी गयी व्यवहार-सिद्ध वज्रकी दीवारें थीं जिसपर वह स्थित रह सका और देशको भी स्थित रख सका। नींवसे दीवारकी और दीवारसे नींवकी सार्थकता और शोभा है। धर्मसे अर्थशास्त्र और अर्थशास्त्रसे धर्म, दोनोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है और दोनों एक दूसरेके सहारे ही स्थित रहते और शोभा पाते हैं। अर्थशास्त्र जब धर्मसे नियन्त्रित एवं संयमित रहता है तब उसमें निरा स्वार्थ तथा तुच्छ पामर स्वार्थ नहीं घुस पाता है। इस तरह भारत सार्थ धर्म (इको-रिलीजन) अथवा (Spiritioeconomics) धर्मार्थ का पालन करता था और इसी कारण वह अनेक सभ्यताओं और सत्ताओंका विकास और नाश दोनों देख सका। किन्तु इतना होनेपर भी स्वयं वह एक पहाड़की तरह घुलता तथा क्षीण होता हुआ भी अभी हमारे सामने खड़ा है।

दरिद्रता बढ़ानेवाली गोरक्षा धार्मिक नहीं हो सकती

"धारण करे वह धर्म" व्याकरणकी इस व्युत्पत्तिके अनुसार वर्तमान गोरक्षाका प्रकार जो हमलोगोंको गरीबी, भोजनाभाव और निर्बलतारूपी खन्दकमें ढकेल रहा हो, कभी धर्मसिद्ध नहीं ठहर सकता है। इसलिये यदि गोरक्षाको धर्मसिद्ध बनाना हो—सच्ची उन्नति साधिका बनाना हो तो इसकी पद्धति सुधारे बिना छुटकारा नहीं हो सकता। हवाके अनुसार रुख बदलना ही पड़ता है। इसी प्रकार देश-काल और संयोगके बदलनेसे धर्मकी रीति, जीवनकी रीति, गोरक्षाकी रीति, बदलनी ही पड़ेगी। यदि नहीं बदलेंगे तो हम आत्मप्रवञ्चन और दम्भका ही पोषण करेंगे। जिससे अवनति और गरीबीका विस्तार हो वह धर्म चातुर्य्य या दया, कैसे हो सकता है ? यही कारण है कि इस धर्मादासे भारतका नाश हो रहा है। Charities have killed and chilled India and Bounties shall resurrect it.

अपना सोना ही खोटा है

ब्रिटिश राज्यके महसूलके इतना, डेढ़ पौनेदो अरब रुपये जितना धन तो हम अपने मन्दिरके पुजारियों और महंतोंके पाखण्ड-पोषणमें ही प्रतिवर्ष गँवा देते हैं। तो फिर यदि हम तन, मन और धनकी गरीबी भोगें तो कौनसी आश्चर्यकी बात है ? हम यह तो चिल्लाया करते हैं कि सेनामें पैंसठ करोड़ खर्च होता है, पर इस बातका विचार भी नहीं करते कि हम अपनी बेढंगी जीवन-सरणी तथा अन्ध-विश्वासोंमें पड़कर जितना खो देते हैं उसकी अपेक्षा सैन्य-व्यय नगण्य है। जब पशुशालाओंमें पशुओंको मृत्युके मुखमें ढकेल देनेके लिये प्रतिवर्ष बीस करोड़ रुपया बहा दिया जाता है तो दूसरे देशोंकी अपेक्षा यहाँ पचगुना बाल-मरण होता है इसमें आश्चर्य ही क्या ? जिस देशमें नब्बे लाख जन्म तथा साठ लाख मरण हों, जिस देशमें बुखार जैसे सहज एवं सुसाध्य रोगसे हारकर आधे करोड़ प्राणियोंका नाश होता हो—विश्वव्यापी महायुद्धमें १,५५,८७,२५८ मनुष्य मरे थे पर जिस देशमें 'इन्फ्लुएञ्जा' जैसे मामूली रोगसे, पोषणके अभावसे, निर्बलीभूत प्राण-शक्तिके कारण, महायुद्धकी संख्याके बराबर सवा करोड़ मनुष्य मृत्युघाट उतर जायँ; या एक शताब्दीमें संसार भरके युद्धोंमें जितनी प्राणहानि होती है, उतनी जिस देशमें अकाल और रोगके कारण दस वर्षके अन्दर ही हो जाय, यदि महायुद्धकी मृत्यु संख्यामें प्रति हजार १५ और जोड़ दिये जायँ उससे अढ़ाई गुनी संख्यामें जहाँ सूतिकामरण होता हो, जिस देशमें सवा चार करोड़ विधवाएँ हों, उन्नत देशोंमें ५०-५६की साधारणतया आयु होती है पर जिस देशमें

२३-२४ वर्षकी ही औसत आयु हो, उस देशमें सच्चा धर्म, सच्ची बुद्धि, सच्ची जीवनसरणी व्यवहृत होती है, ऐसा कौन मूर्ख कह सकता है ? और यदि कहा जाय कि सब बातोंमें अंग्रेजोंका या अंग्रेजी राज्यका दोष है तो मैं पूछता हूँ कि उनसे हमलोग क्या कम दोषी हैं ? अंग्रेजी राज्य अवश्य किसी अंशमें निमित्त कारण है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। पर क्या हमलोग उपादान कारण नहीं हैं ?

गैया विश्वकी प्रतीक है

रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी बहिन, अमृतकी नाभि
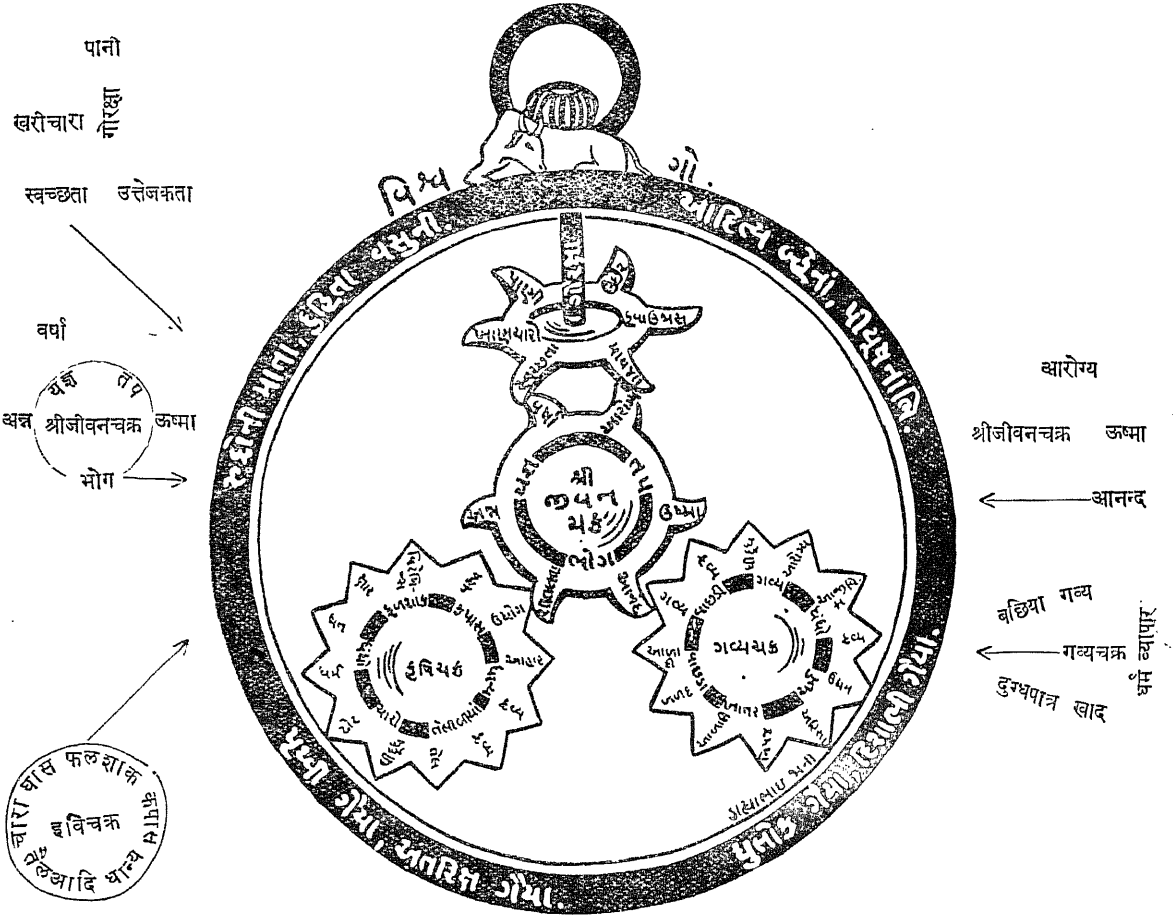
पृथ्वी गाय, आन्तरिक्ष गाय, भूलोक गाय, दिशायें गाय,

आँखें खोलो

हैं, तो जिस तरह आजकल जो बेढंगी और विचित्र दशा हो रही है उसकी जवाबदेहीसे हमलोग छूट नहीं सकते, उसी तरह उसका उपाय करनेका भार भी अधिकांशमें हमी लोगोंपर आ पड़ता है। इस देशमें गायकी महत्ताको यथार्थ वैज्ञानिक तथा आर्थिक स्वरूपसे समझनेवाले बहुत

कम लोग हैं। इसीसे हमारे नेत्र इस प्राणप्रश्नकी तरफ मुँदे हुए हैं और इसीसे इस प्राणप्रश्न विषयक साहित्यका हमारे यहाँ अभाव है। अब इस तरफ अभ्यास, मनन और खोज करनेकी अति शीघ्र आवश्यकता है।

दूसरे प्रश्नोंकी तरह महात्मा गांधीने भी गोप्रश्नपर नया प्रकाश डाला है और इस तरफ देशको ले जानेका अनुरोध भी कर रहे हैं। क्या समाजवादके साहित्यसे मुग्ध युवक, क्या गांवोंके भोलेभाले सैनिक, क्या कालेजमें पढ़नेवाले छात्र, क्या दयाधर्ममें डूबे हुए सज्जन अर्थात् सभीको इस प्रश्नको नूतन एवं सत्य दृष्टिबिन्दुसे देखना पड़ेगा। गायका प्रश्न भारतके लिये जीवन-मरणका प्रश्न है। गाय के लिये ही नहीं किन्तु मनुष्यके लिये स्वार्थकी दृष्टिसे भी यह प्रश्न आवश्यक प्रतीत होगा।

आज भी गायका कितना आदर है ?

'रास्ना गोः' गो = लम्बगलचर्मयुक्त प्राणी-विशेष, यह पाणिनीय व्याकरणकी व्याख्या नहीं चल सकती। जिस तरह पूर्वमें गायको 'रुद्रस्य माता दुहिता वसूनां स्वसादित्यानामभृतस्यनाभिः' माताहि सर्वभूतानां सर्वानन्दप्रदायिनी' अर्थात् 'रुद्रकी माता वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी बहन तथा अमृतकी नाभि (खान) या "सर्व भूतोंकी माता, सर्व सुखोंको देनेवाली" इत्यादि विशेषणोंसे पूजा है उसी तरह पश्चिमने माता नहीं तो पोषिणी, मानवजातिकी धाय (फास्टर मदर आव् मैनकाइन्ड) अवश्य गिना है। 'दूध पावेगा बड़ी ते विश्वनो शासन करे' अर्थात् 'गाय दूध पिलाती है, वह विश्वका शासन करती है।' इस तरह इस समयमें भी पूर्व और पश्चिममें गाय एक समान सम्मान पाती है।

पश्चिममें खेतीके लिये घोड़े तथा यंत्र हैं। उसे बैलकी आवश्यकता नहीं है, तो भी वह दूधके लिये भैंसको नहीं किन्तु गायको ही पालता है। हम लोगोंको तो खेतीके लिये बैल पैदा करनेके लिये तथा दुग्धान्नके लिये खुराकके हेतु गायकी दोहरी आवश्यकता रहती है। भैंसको पालकर हमलोगोंने गायका और अन्तमें अपना कितना अहित किया है यह ग्राम्य तथा कृषि शास्त्रद्वारा सरलता पूर्वक समझा जा सकता है। और भैंस पालनेसे गाय और विशेषतया बछड़ेकी हीनता बढ़नेके बाद भैंसोंकी हीनता भी ७५ प्रतिशत बढ़ गयी है। इस प्रकार क्षणिक एवं दिखाऊ लाभके चक्करमें हम लोगोंने शाश्वत एवं वास्तविक लाभसे हाथ धोया है। यह अपनी प्रथम श्रेणीकी मूर्खता ही है। वस्तुतः अन्तमें गाय भैंससे अधिक आर्थिक लाभकर होती है यह हम लोगोंको सीखना पड़ेगा। वैयक्तिक अर्थशास्त्र तथा सामूहिक अर्थशास्त्रमें जब अन्तर पड़ता है तब सामूहिक अर्थशास्त्रको ही ग्रहण करना धर्म है और वैयक्तिक स्वार्थको न छोड़ना यही स्वार्थ तथा समाजद्रोह कहलाता है।

गायका स्थान

अब देखना चाहिये कि भिन्न-भिन्न प्राणियोंसे प्रति १०० पौण्ड क्या-क्या बदला मिलता है।

प्राणी	बाजारू पैदाइश	ठोस खाद्य
	पौण्ड	पौण्ड
१ गाय (दूध)	१९९'०	१८'०
,, (पनीर)	१४'८	९'४
,, (मक्खन)	६'४	५'४
२ सुअर (तैयार मांस)	२५'०	१५'६
३ बछड़ा (मांस)	३६'५	८'१
४ बैल (,,)	८'३	२'८
५ मुर्गी (अंडा)	१९'६	५'१
,, (मांस)	१५'६	४'२
६ मेढ़ा (,,)	९'६	३'२
७ बकरा (,,)	७'०	२'६

जाईन नामक प्राणि-पोषण-विशारदके इस कोष्ठकसे जो बात अत्यन्त स्पष्ट रूपसे मालूम पड़ती है वह यह है कि गायका स्थान प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ है। मांसान्नकी अपेक्षा दुग्धान्नके रूपमें पशु प्राणियोंसे अधिक लाभ होता है, इसलिये ईश्वरने मारनेके लिये नहीं किन्तु पालनेके लिये पशुओंकी सृष्टि की है।

सारे लाभ तो पश्चिम उठा रहा है

सरस्वती स्तनेष्वग्र्या श्रीपुरीषे जगत्प्रिया।
मूत्रे कीर्तिश्च गंगा च, मेधा पयसि शाश्वती॥

महाभारतमें गायके वर्णनकी ये दो पङ्क्तियाँ हैं। हम लोग इसे मानें या न मानें सभी ठीक है क्योंकि हम

लोग जैसे पढ़े वैसे बेपढ़े सब बराबर हैं। बेपढ़े जानते नहीं और पढ़े लोग भ्रममें पड़े हैं, ऐसी स्थिति आजकल हो रही है। पाश्चात्य देश इस श्लोकके अन्तर्गत प्रत्येक गोबरमें जगत्प्रिय लक्ष्मीका वास है और मूत्रमें कीर्ति तथा गंगा है। और दूधमें अविनाशिनी बुद्धि भरी पड़ी है। इस वर्णनकी हम लोग विज्ञानके अभावसे तथा ईसाईयतकी

गो माताका पयःपीयूष
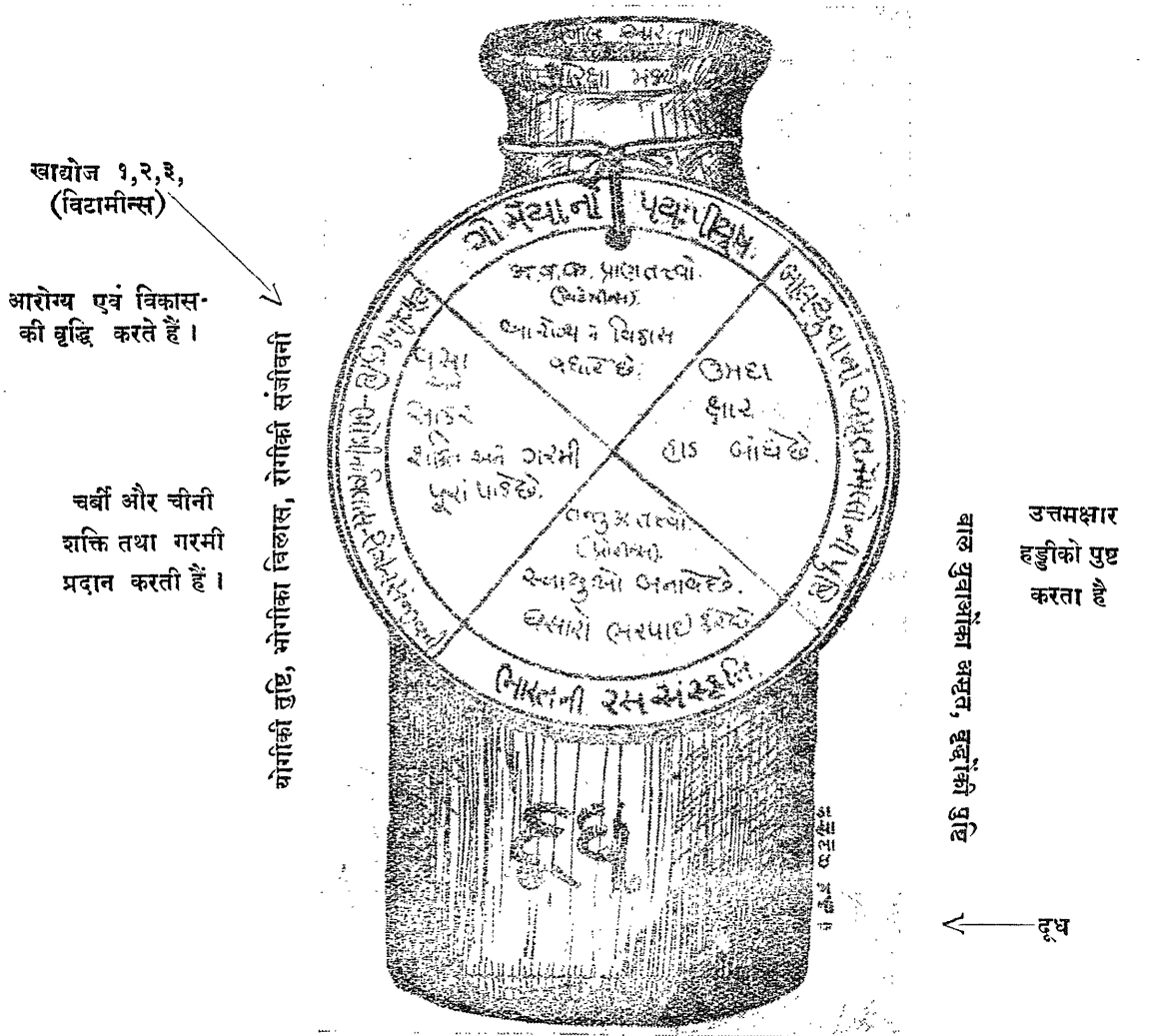
भारतकी धवल रस-संस्कृति, दूध

वस्तुको अपने जीवनमें अनुभव करके लाभ उठा रहे हैं।

गायके दूधमें जो बुद्धिवर्द्धक गुण, सरस्वतीका प्रसाद है वह भैंसके या और किसी पशुके दूधमें नहीं है। गायके कोरी नकल करनेमें ही अपनेको धन्य समझनेवाले होनेके कारण भले ही खिल्ली उड़ावें, पर सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेसे मालूम होगा कि गोबरकी खादसे धान्य और विशेषतया धनतुला

(मनीक्राप्स) अच्छा उतरता है तथा लक्ष्मी मिलती है। इस प्रकार गोबर क्या लक्ष्मीका श्रोत नहीं है? गायके मूत्रमें कार्बोलिक ऐसिड होनेके कारण मीसनेसे स्वच्छता एवं पवित्रता बढ़ती है और इसकी खादसे फल अच्छा होनेसे उसके दूधमें सूर्यसे तथा घास चारेमेंसे प्राप्त खाद्योज (Vitamine) प्राणतत्व, उत्तम क्षार, सुपाच्य नत्रिल और पाचक रस तथा भिन्न कीटाणुओंका जो उत्तम तथा अमूल्य खजाना है, वह दूसरे दूधोंमें कहाँ है?

इस समय

गायका अग्रभाग भारतकी ओर है और पृष्ठभाग पश्चिमकी ओर है और वह उसका लाभ ले रहा है।
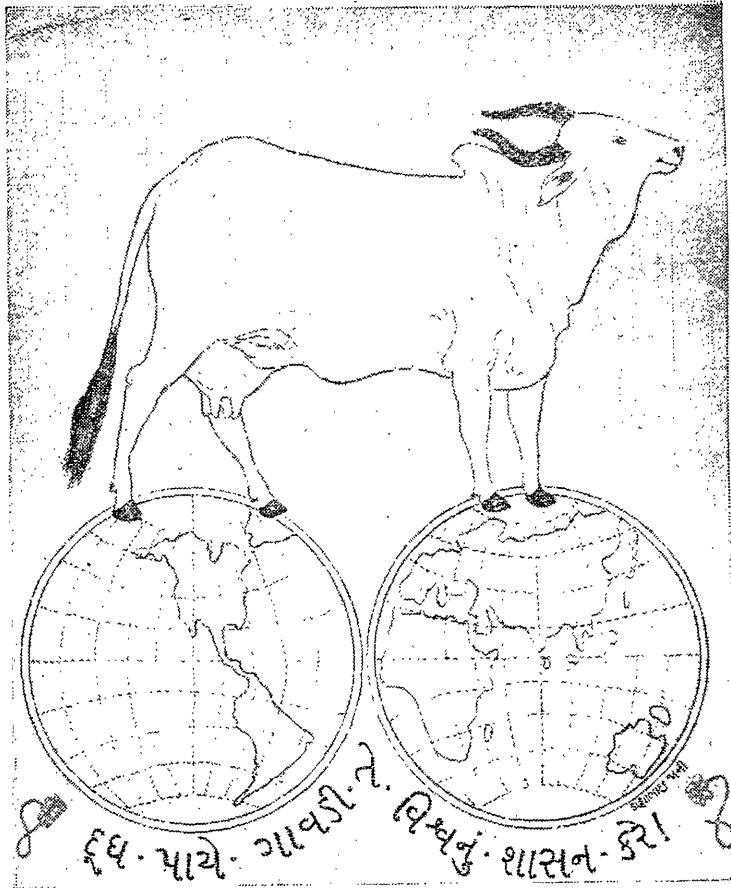
गो माता दूध पिलाकर संसारका शासन एवं पालन करती है।

उतरता है। क्या इसमें भी किसीको संदेह है? गायके मलमूत्रमें जो उद्भिज्जाणु (Bacteria) हानिकारक (Pathogenic) उद्भिज्जाणुओंके भक्षक (Bacterio-phages) होते हैं, उनकी कृपासे हम लोग बहुतसे रोगोंसे बचे रहते हैं। गायकी पतली खाल और अच्छा रंग

पृथ्वीके गोलार्धपर विश्वका शासन करनेवाली गाय है। भारतवर्षके पूर्व गोलार्धपर गायका मुख है और पश्चिम-की तरफ इसका पिछला हिस्सा है। भारतवर्षके हिस्सेमें गायका मुख पड़ा है इसलिये वह उसे हार, तोड़ा, रोली और अक्षत आदिसे पूजता है और खरी चारा भी खिलाता

है। पर उसमें उसे मिलता क्या है? पश्चिम तो गायके पीछेके अवयवोंका पूरा लाभ लेता है। वह दूध, सुरभि [सुगन्धियुक्त होनेसे गोबरको सुरभि कहते हैं] और गोमूत्रका त्रिविध लाभ लेता है। वह दूधसे स्वयं पलता तथा अपने पशुओंको पालता है। और गोबर तथा गोमूत्रसे धरतीको पोषता है। इस तरह पश्चिममें धरती, पशु और मनुष्य तीनों गोमाताके प्रसादसे परिपुष्ट तथा संतुष्ट रहते हैं।

ये लोग गायको संस्कृति तथा सम्पत्तिकी दाता कहते हैं और उसका पूर्ण लाभ लेते हैं। और उलटे हम लोग इसकी पूजामात्र करके अपनेको, अपनी जातिको, अपने छोटे-छोटे बच्चोंको तथा अपनी धरती और पशुओं सभीको कङ्गाल बना रहे हैं। इसे क्या पूजन कहा जा सकता है? गायका संपूर्ण लाभ लेना यही इसका पूरा मूल्य और सम्मान तथा पूजन है।

यदि अब भी न चेतो तो

जरा श्याम देशकी तरफ देखिये। वहाँ गायकी केवल पूजा ही की जाती है इसलिये वहाँ उसकी संख्या, कद और हासिल सभी हीन हो गया है और उसकी स्थिति वहाँ एक मूक पशु या जमीनसे खोदकर निकाली हुई विचित्र वस्तुके समान है। इस कारण न उसे ही कुछ लाभ हुआ न श्यामी प्रजाको ही। इसे पूजा नहीं किन्तु सजा कहनी चाहिये। अब क्या हम लोगोंकी यही इच्छा तो नहीं है कि गायको पूज-पूजकर श्याम देशकी सी दशामें पहुँचा दें?

गायके लिये वेद-साहित्यमें धेनु, रम्या, अघन्या, वशा, शतोदना, अदिति, काम्या, चन्द्रा, बहुमही, रोहिणी, कल्याणी, इज्या, इडा, पावनी, मही, बहुला, जगती, रन्ता, ज्योति, विश्रुति इत्यादि पर्याय प्रयुक्त किये गये हैं। इन सब शब्दोंके योगार्थको गाय क्या सार्थक नहीं करती?

पश्चिमकी साधना

शतोदनाका अर्थ यह है कि ऐसी गाय जो कि इतना दूध देती हो कि सौ मनुष्य खीर पूरी खाकर तृप्त हो जाँय। ऐसी गायें अपने यहाँ थीं। आजकल कहाँ हैं? अकबरके ज़मानेमें दस सेर दूध देनेवाली गाय १०) पर और बीस वर्ष पहले ५०) पर मिलती थी पर अब ४००) पर भी मिलनी दुर्लभ है। दुर्बल गायें तो १०) पर सैकड़ों मारी-मारी फिरती हैं। पचास वर्ष पहले पश्चिममें भी यही दुर्दशा थी। पश्चिमने दुग्धविज्ञान और पशु-विज्ञानकी उन्नति की और उससे लाभ उठाया। "जगतका दुग्धोद्योगका इतिहास" इस बृहद् ग्रन्थके लेखकने आंकड़ा देकर बताया है कि प्रति दस वर्षमें पश्चिमने दूधकी प्रतिवर्ष साधारणतया ५०० पौण्डकी वृद्धि की है। आजकल पश्चिममें प्रति गायकी वार्षिक दुग्धोत्पत्ति साधारणतया ४॥ हजार है, जब कि अर्ध शताब्दीके पूर्व कठिनतासे हजार डेढ़ हजार ही थी।

वहाँ इस समय २०,००० पौण्डसे अधिक दूध देनेवाली गायको प्रथम श्रेणीमें, ८ से २० हजार पौण्डतक दूध देनेवाली गायोंको द्वितीय श्रेणीमें, ४॥ से ८ हजारतक दूध देनेवाली गायोंको तृतीय श्रेणीमें और इससे कमवाली निकृष्ट श्रेणीमें गिनते हैं। वे लोग तृतीय या निकृष्ट श्रेणीकी गायोंको पैदा होने या जीने देते ही नहीं। ऐसी परावलम्बिनी—आजीवन सभ्योरभी (Boarder cows) गायोंको वहाँ स्थान नहीं है। पश्चिमने जीवनके सब क्षेत्रोंमें पुरुषार्थ और संशोधनके बलपर उत्साह और उद्योगसे जो साधना की है उसे सुनकर हम लोग दाँततले उँगली दबाते हैं। पशु पालनसे इन लोगोंने १० हजारसे एक-एक लाख रुपयोंतकके साँड़, तथा खरगोश, मुरगी, घोड़ा इत्यादि पैदा किये हैं। संसारप्रसिद्ध मल्ल गाय 'प्रास्पेक्ट' ने एक सालमें ३७३८१ पौण्ड दूध दिया है और संसारमें अपनी सानी नहीं रखती! कनाडाकी मक्खन पैदा करनेमें मशहूर गायसे एक सालमें १६०० पौण्ड मक्खन पैदा हुआ है। जगत्प्रसिद्ध भेड़से एक वर्षमें ३५ पौण्ड ऊन पैदा हुई है! प्रसिद्ध मुरगीने एक सालमें ३५४ अंडे दिये हैं। और 'सानन' बकरीने एक वर्षमें १९०० पौण्ड दूध और ११० पौण्ड मक्खन पैदा किया है।

यह सब विज्ञानका चमत्कार है या बातें बनानेका? सन् १९२२ में अमरीकाको पशुओंसे ४॥ अरब डालरका लाभ हुआ था। वहाँ प्रतिवर्ष ७॥ अरब रुपयोंका १०० अरब पौण्ड दूध पैदा होता है। कुल कृषिकी उत्पत्तिमें चौथाई हिस्सा तो केवल दूधकी ही उत्पत्ति होती है।

अथवा दूसरे शब्दोंमें, प्रत्येक भारतीयकी साधारण कमाईसे अधिक तो अमेरीकावालोंको दूधसे ही २२ डालरके रूपमें मिल रही है। वहाँकी २॥ करोड़ गायोंने घास चारासे कुल बारह अरब रुपया पैदा किया था! क्या मशीन गायकी बराबरी कर सकती है? जो कार्यक्षमता (Thermic efficiency) पेट्रोलसे चलनेवाले इञ्जिन नहीं

अमेरिकाकी लोहा, कोयला, सोना, चाँदी आदिकी खानोंसे प्रतिवर्ष जो आय होती है उससे अधिक आय तो उसे मुरगी, बत्तकसे उनके अंडोंके व्यापारसे हो रही है। अंडोंसे पौन अरब डालर उसे एक वर्षमें मिल जाते हैं। वहाँके ९० फी सदी किसान मुर्गी पाल लिया करते हैं और उन्हें अपनी आवश्यकतार्थ मांस अंडा ले लेनेके

पश्चिमकी साधना
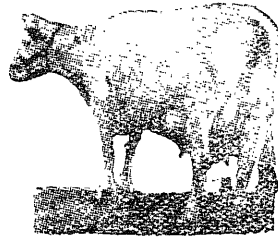
हमारी अर्थनाशिनी धर्म्म-भावनासे भारतीय गायका गोरस कितना सूख गया है!

रखते हैं उससे अधिक २९ से ३७ अंशतककी क्षमता गाय जैसा प्राणी पूरा करता है और वह भी केवल इधर-उधर घासके गुच्छे चर चरके!

यंत्र-मानव (Robot) बना-बना करके पश्चिम तरह-तरहके काम उनसे लेता है, पर यन्त्रधेनु (Tin-cow) नहीं बना सकता। उससे उन्होंने उन्नति की है, और खूब ही उन्नति की है!

बाद भी उनसे १०५ डालर हाथ खर्चके लिये मिल जाता है। वहाँ मांसकी अपेक्षा दुगुना रुपये लोग अंडासे निकाल लेते हैं। और प्रतिवर्ष ६२ लाख रुपया तो वे लोग शहदकी मक्खियोंसे पैदा कर लेते हैं।

वहाँ दूध, मक्खन तथा शहदकी भरमार है यह तो उपर्युक्त लेखसे ही विदित हो जायगा। पनीर ही करीब ढाई सौ प्रकारका वहाँ बनता है। मांस, मत्स्य, धान्य,

शाक तथा फलरसके उपरान्त केवल दुग्धान्न कितने अधिक परिमाणमें मिलता है उसे देखो। सन् १९२७ में प्रत्येक अमरीकनको सर्वसाधारणतया ५४७ सेर दूध, १७ पौण्ड मक्खन, ४–२६ पौण्ड पनीर (Cheese), १५ पौण्ड संघट्ट तथा वाष्पित दूध और २८ पौण्ड आइस्क्रीम मिली थी। भावार्थ यह कि १०१२ पौण्ड दूध प्रति मनुष्य (Per head) वहाँ मिलता है जहाँ उपर्युक्त मात्रामें दूध और दूधसे बनी वस्तुओंकी उत्पत्ति होती है।

ये मनुष्यको भौंचक्का कर देनेवाले आँकड़े क्या अमेरिका, क्या डेन्मार्क, क्या जर्मनी, क्या इङ्गलैंड और फ्रांस, क्या रूस और स्वीडन सभी जगह ऐसे ही हैं। अब जरा अपनी तरफ एक दृष्टि डालिये ? (अपूर्ण)

वैज्ञानिक एवं सामान्य दृष्टिसे गोदुग्धका परिस्करण

युरोपके महाराष्ट्र बर्बरता और नाशकी ओर

लोकतंत्रके शवपर अधिनायकवादकी इमारत

युद्धोन्मुख संसारके लिये महात्मागांधीका स्वर्गीय सन्देश

प्रयाग विश्वविद्यालयमें सर राधाकृष्णनका ओजपूर्ण भाषण

[प्रयाग विश्वविद्यालयके पदवीदानोत्सवके उपलक्ष्यमें आंध्र-विश्वविद्यालयके वाइस चांसलर प्रसिद्ध दार्शनिक सर एस० राधाकृष्णनने जो भाषण किया था उसका आशय नीचे दिया जाता है। उक्त अवसरपर विश्वविद्यालयके चांसलर सर मालकम हेली सभापतिके आसनपर वर्तमान थे।]

चांसलर महोदय, महिलाओ तथा सज्जनो !

आपके विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने कृपा करके मुझे यहाँ आकर भाषण करनेका जो निमन्त्रण दिया है उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि पदवीदान उत्सवके समय जो भाषण किया जाता है, वह उन विद्यार्थियोंके लिये होता है जो अपनी शिक्षा समाप्त करके बाहर जाते हैं, मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसा भाषण करना सरल काम नहीं है फिर भी इस अवसरपर मुझे बड़े-बड़े विद्वानों तथा विद्यार्थियोंसे मिलनेका जो सुअवसर प्राप्त होता था उस लोभको मेरे ऐसा आदमी, जो अपने जीवनके अधिकतर समयको अध्यापनमें बिता चुका है, संवरण नहीं कर सका। आजकी संध्याके समय मैं यहाँ उस दृढ़ सिद्धान्तके कारण ही उपस्थित हुआ हूँ जो हमारे देशमें बहुत दिनसे प्रचलित है, यद्यपि वह सिद्धान्त हालमें दार्शनिक क्षेत्रमें चला गया है। सिद्धान्त यह रहा है कि किसी कामनाके ऊपर विजय प्राप्त करनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि चुपचाप अपनेको उसके हवाले कर दे।

शिक्षितोंकी भयानक बेकारी

परम्परानुसार मैं उन सबको हार्दिक बधाई देता हूँ जो आज उपाधियोंसे विभूषित हुए हैं। आपने सफलतापूर्वक अपने निर्धारित शिक्षाक्रमको पूरा कर लिया है और अब जीवन-संग्राममें उतरने जा रहे हैं जिसकी तैयारीके लिये ही विश्वविद्यालयकी शिक्षा होती है। जीवनकी आवश्यकताओं तथा विश्वविद्यालयकी शिक्षाओंमें जो असंबद्धता आ गयी है उसपर टीका-टिप्पणियाँ पर्याप्तरूपेण होती रहती हैं और मैं उस सम्बन्धमें आपका समय लेना अनावश्यक समझता हूँ। मेरे नवयुवक मित्रो ! यदि मैं आज आपसे यह कहूँ कि आप विश्वविद्यालयके क्षेत्रसे बाहर निकल रहे हैं और आपके संमुख बड़ी नौकरियाँ तथा महान् कार्यक्षेत्र उपस्थित हैं तो आपके हृदयमें एक ऐसी आशाका संचार करना होगा जिसकी पूर्तिके अभावमें निराशा आपके संमुख आ खड़ी होगी। सारे संसारके विश्वविद्यालयोंसे निकलनेवाले लोगोंके भाग्यमें बेकारी बदी है। आजकी शिक्षा-प्रणालीमें कोई ऐसा दोष वर्तमान है जो ऐसे मनुष्योंकी पुष्टि कर रही है। समाजको जिनकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी समाजने उनकी शिक्षाका व्यय अपने सिर-पर उठाया है। विश्वविद्यालयोंका यह कर्तव्य नहीं है कि वे शिक्षितोंका एक ऐसा जनवर्ग उत्पन्न कर दें जो बेकार जीवन बितावें और इस प्रकार देशमें मानसिक क्षोभ तथा घबराहटको उत्तेजन दें। इस अवस्थाका सारा उत्तरदायित्व केवल शिक्षा-पद्धतिपर ही नहीं है। इसकी जिम्मेदारी वर्तमान आर्थिक अवस्थाके ऊपर भी है। पर यह एक अच्छा लक्षण दृष्टिगोचर हो रहा है कि आजके प्रायः सभी शिक्षा-विशेषज्ञ इस संबन्धमें एकमत हैं कि शिक्षापद्धतिमें क्रांतिकारी परिवर्तनोंकी आवश्यकता है। वे यह स्वीकार करते हैं कि यह शिक्षा वर्तमान युगके अयोग्य है और इसका काल समाप्त हो चुका है। अब इसमें बुद्धि तथा शक्तिका क्षय अपव्यय मात्र है।

शिक्षामें सुधार

माध्यमिक शिक्षा स्वतन्त्र और उपयुक्त होनी चाहिये

शिक्षाकी सभी अवस्थाओंमें—चाहे वह प्रारंभिक हो, माध्यमिक हो अथवा विश्वविद्यालयकी हो, नयी व्यवस्थाओंकी, नये दृष्टिकोणकी आवश्यकता है। सारे समाजका प्रत्येक व्यक्ति जो किसी लोकतंत्रात्मक सरकारका एक नागरिक है प्रारंभिक शिक्षा पानेका अधिकार रखता है। इसके साथ-साथ समाजके मुख्य आधार कृषकों तथा मजूरोंके वर्गकी माध्यमिक शिक्षाकी देखरेख होनी चाहिये। हमारी शिक्षापद्धतिमें माध्यमिक शिक्षा सबसे कमजोर अंग है जो अबतक केवल विश्वविद्यालयोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये ही काममें लायी गयी है। माध्यमिक शिक्षा तो ऐसी होनी चाहिये जो स्वतः पूर्ण हो तथा उन लोगोंको जो उससे लाभ उठाना चाहें अपने जीवन यापनके योग्य बना सके। अतः उसका संघटन ऐसा होना चाहिये जिससे देशका अधिकतर जन-समुदाय एक सांस्कृतिक योग्यता प्राप्त करनेके बाद व्यावहारिक जीवनकी विविध आवश्यकताओंका सामना करनेकी क्षमता प्राप्त कर सके।

उसका केवल इतना ही उद्देश्य नहीं होना चाहिये कि वह विश्वविद्यालयमें पढ़नेके इच्छुक विद्यार्थी उम्मेदवार तैयार करे। विश्वविद्यालयकी शिक्षाको उससे अत्यधिक हानि पहुँचती है क्योंकि वहाँ बहुतसे ऐसे लोग शिक्षा ग्रहण करनेके लिये पहुँच जाते हैं जो वास्तवमें उच्च साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय शिक्षाके अयोग्य होते हैं। औद्योगिक स्कूलोंकी शिक्षा केवल नागरिक व्यवसायोंके लिये ही नहीं होनी चाहिये, क्योंकि हमारा देश वास्तवमें देहाती है। भारतीय जीवनका आधार कृषि है और बहुत दिनोंतक भविष्यमें भी यही आधार बना रहेगा।

आज कृषिसे उत्पन्न पदार्थोंका मूल्य इतना घट गया है कि हमारे किसान जो वास्तवमें अन्नदाता तथा धन उपजानेवाले हैं अपने व्यवसायसे अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें सर्वथा असमर्थ हो गये हैं। जब दिन अच्छे थे उस समय भी वे अपनी जरूरतोंकी पूर्तिके बाद बहुत ही थोड़ी मात्रा अपनी उपजमेंसे बचा सकते थे। जबतक हम अपना खेतीका व्यवसाय पुराने प्रकारसे करते रहेंगे, पुराने हलसे काम लेते रहेंगे तबतक खेतीसे लाभ होनेवाला नहीं। यदि किसी प्रकारकी उन्नति चाहते हों तो यह आवश्यक है कि भारतीय ग्रामोंकी अवस्थाके अनुकूल कृषि-सम्बन्धी शिक्षाकी व्यवस्था की जाय। बहुतसे कृषि-स्कूल जो छोटे हों तथा आवश्यक शिक्षामात्र देनेवाले हों स्थापित किये जाने आवश्यक हैं।

इसके सिवा हमारे खेतिहर अपनी खेतीके कामोंसे फुरसत पानेपर और भी छोटे-मोटे व्यवसाय करते हैं। पुराने समयमें चर्खा कातना तथा कपड़ा बुनना इस प्रकारके व्यवसायोंका मुख्य अंग था। गांधीजीका इनका पुनरुद्धार करनेका प्रयत्न किसी पागलकी कोरी बहक नहीं है। ऐसे औद्योगिक स्कूलोंकी स्थापना, जिनका संचालन छोटे-छोटे कारखानोंके रूपमें हो, नितान्त आवश्यक है।

इन सबके बाद विश्वविद्यालयोंमें केवल उच्च शिक्षा देनेका काम होना चाहिये। इस शिक्षाद्वारा न केवल स्वेच्छासे मातहती करनेवालोंकी सृष्टि होनी चाहिये बल्कि उत्तरदायी नेता उत्पन्न किये जाने चाहियें जो अन्य व्यवसायोंमें, बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रोंमें तथा सार्वजनिक जीवनमें उच्च आवश्यक तथा प्रभावकारी पदोंकी पूर्ति कर सकें। इन विश्वविद्यालयोंमें ऐसी संस्थाओंकी स्थापना होनी चाहिये **जो कृषि तथा अन्य औद्योगिक बातोंके सम्बन्धमें नये आविष्कार तथा खोजकी चेष्टा करें।**

नेताओंकी भूल

पढ़ाने तथा आविष्कारके सिवा नेतृत्वकी शिक्षा देना युनिवर्सिटियोंका मुख्य कर्तव्य है। आज भी नैतिक शक्ति अथवा स्वार्थत्यागकी भावनाओंमें कमी नहीं है पर पथ-भ्रांतताके कारण वह अस्वाभाविक रूप ग्रहण कर रही है। बुद्धिमानोंकी जिम्मेदारी जो वास्तवमें जीवन तथा विचार-धाराओंके सहज नेता हैं अत्यन्त गम्भीर है। वर्तमान संसारके विभिन्न देशोंके मनीषियोंकी उत्सुकतापूर्ण विचार-तन्मयतासे सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रोंमें उत्पन्न संघर्ष आज मौलिक प्रश्नोंका सृजन कर रहा है। जो प्रश्न आज उठ खड़े हुए हैं वे व्यक्तिगत तथा मानवसमाज, दोनोंकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। युनिवर्सिटियाँ जो परंपरासे

मानवताके उत्तमोत्तम विचारों तथा आचरणोंके उद्गम तथा वितरण करनेवाली हैं इन प्रश्नोंके कारण सामाजिक पुनस्संघटनके प्राथमिक नैतिक सिद्धांतोंसे प्रभावित हुई हैं।

मेजिनीने लोकतन्त्रकी व्याख्या करते हुए कहा है कि "वह सबसे बुद्धिमान तथा सर्वोत्तम नेताओंके नेतृत्वमें सबको सबके संमिलित प्रयत्नकेद्वारा प्रगतिवान बनाता है।" लोकतन्त्रकी असफलता अवश्यम्भावी है यदि जनता बुद्धिमान नेताओंको चुननेके लिये पर्याप्तरूपेण जाग्रत न हो। आजके नेता न तो बुद्धिमान हैं और न चतुर हैं। अनिश्चितता तथा स्वार्थपरता उनके जीवनका मुख्य अंग हो रही है। लाभ उठानेवालोंकी अधिकारलिप्सा, जनवर्गकी अचेतनता, बुद्धिजीवियोंकी जड़ निराश्रयता तथा दास मनोवृत्ति उनका समर्थन कर रही हैं। ये बुद्धिजीवी मोहवश नाशकारी अन्धविश्वासोंका प्रचार करनेमें अपनी शक्ति लगा देते हैं यद्यपि उनका लक्ष्य वास्तवमें उन बातोंका उन्मूलन होना चाहिये। मानवताके लक्ष्यको स्पष्ट किये बिना ये नेता ऐसे कार्यक्रम संसारके सामने उपस्थित कर रहे हैं जिनका मूल्य वे अपने देशवासियोंके खूनसे भी अधिक समझते हैं। वे अपनेको ठीक मार्गपर चलनेवाला सिद्ध करनेके लिये लाखों प्राणियोंको मृत्युके मुखमें झोंक देनेमें भी संकोच नहीं करेंगे। उनका लक्ष्य चाहे किसी भी उपायसे अपना मतलब सिद्ध करना है फिर वह उपाय कितना ही बर्बरतापूर्ण तथा नृशंस क्यों न हो।

लोकतंत्रका नाश

पाश्चात्य जगतके कुछ ऐसे देशोंमें जिनका नाम उच्च सभ्यताके पोषकोंके साथ लिया जाता है, हम आज भयानक तथा अशुभ चिन्ह देख रहे हैं। ये देश आज ऐसे कार्यमें संलग्न हैं जो न केवल उनके धार्मिक सिद्धांतोंके विरुद्ध हैं बल्कि जो न्याय तथा मानवताके आरंभिक और नैसर्गिक भावनाओंकी जड़ खोदनेवाले हैं। आज अधिकांश युरोपमें लोकतंत्रका नाश हो रहा है। बहुत दिनोंतक युरोपीय लोकतंत्र संसारकी राजनीतिक विचारधाराके प्रवाहके लिये युरोपकी ओरसे एक विशाल देन समझा जाता था। पर आज पार्लमेंटरी शासन-पद्धतिकी हत्या कर डाली गयी है। समाचारपत्रोंका गला घोंट दिया गया है और बोलने, विचार करने तथा मिलनेकी स्वतंत्रता छीन ली गयी है। सार्वजनिक जीवनका साधारण सौजन्य, मानवसमाजको पशुताकी सतहसे ऊपर उठाये रखनेवाली साधारण परंपराएँ, व्यक्तिगत मित्रता तथा स्नेहके बन्धन, उन लोगोंद्वारा नष्ट कर दिये गये हैं जो न नियमोंका आदर करते हैं और न मानवताके सहज सिद्धान्तोंको स्वीकार करते हैं। अधिनायकोंका उत्साह किसी भी कर्मके लिये कम नहीं होता। यहाँतक कि वे अपने राजनीतिक विरोधियोंकी नृशंसतापूर्ण तथा पूर्व आयोजित हत्यासे भी नहीं हिचकते।

अधिनायकवादका दौर-दौरा

आर्थिक असमानताके प्रश्नको न्यायपूर्वक हल करनेमें सरकारोंकी असमर्थतासे जो असन्तोष भभक उठा उसीने लोकतंत्रके स्थानपर अधिनायकोंकी सृष्टि कर दी है। अनियंत्रित व्यापारस्वातंत्र्यके कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको चूसनेमें समर्थ हुआ। फलतः आर्थिक असमानता उत्पन्न हुई और समानताकी माँग उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। स्थिर स्वार्थवालोंने इसका विरोध किया जिसके फलस्वरूप वर्ग-युद्ध जोर पकड़ता गया।

व्यक्तिगत कल-कारखानोंपर सरकारोंने नियंत्रण करना आरम्भ किया पर यह काम उस शीघ्रतासे नहीं किया गया जिसकी आवश्यकता थी। अतः आर्थिक प्रश्नोंका मामला राजनीतिक नियंत्रणमें लाया गया। शांतिमय क्रमविकासके स्थानको जो लोकतंत्रका आवश्यक अंग है हिंसात्मक क्रान्तिने ले लिया।

इस प्रकार राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवनके नियंत्रणके लिये बल-प्रयोग एक मुख्य वस्तु हो गया। यदि व्यक्तिगत स्वतंत्रतामें रुकावट डाली गयी, यदि सन्तोषजनक और शांतिपूर्ण जीवन बितानेकी अवस्थाका अपहरण कर लिया गया तो यह समझना चाहिये कि आर्थिक समानता तथा न्यायकी प्राप्तिके लिये समाजने यह मूल्य प्रदान किया है। बहुतसे देशोंमें यह मूल्य दिया गया किंतु अबतक लक्ष्यका सान्निध्य प्राप्त नहीं हुआ। मानवसमाजके लिये नयी गुलामी पैदा कर दी गयी पर आर्थिक न्याय तथा समानताका पता नहीं लगा।

"जिसकी लाठी उसकी भैंस" का राज

राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टिसे विघटित वर्तमान संसारके स्वार्थी तथा संशयात्मा समुदायोंने जकात और प्रतिबन्धकी ऊँची दीवारें उठा रखी हैं जिनके फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा और कटुताका भाव तीव्र होता जा रहा है। यह अवस्था सर्वदा जारी रहनेवाले आर्थिक संघर्षकी उत्पादिका है।

जो लोग अपने आंतरिक मामलोंमें बलप्रयोग करनेकी नीतिमें विश्वास करते हैं उन्हें विदेशी मामलोंके संबन्धमें उसके प्रयोगमें कोई संकोच नहीं हो सकता। सैनिकवाद आज पूर्ण उन्नतिपर है। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की बात पहले किसी समयकी अपेक्षा आज सबसे अधिक सत्य है। आजके सब अधिनायक तलवार खड़खड़ानेवाले तथा लोगोंको भड़कानेवाले हैं। वे निरपराधोंके पसीने तथा खूनको चूसकर जो टैक्स ले रहे हैं उसका उपयोग शस्त्रीकरणके लिये हो रहा है। आज राष्ट्रका राष्ट्र केवल रक्त और लोहेके भोजनपर पाला जा रहा है। इटली अपने राष्ट्रको सेना बना देनेके लिये यत्नशील है। इटलीके बच्चे, आध्यात्मिक, भौतिक तथा सैनिक दृष्टिसे लड़ाकू बनाये जानेवाले हैं।

जर्मनी और आस्ट्रिया, फ्रांस और रूस, यहाँतक कि ग्रेटब्रिटेन भी, युद्धकी तैयारियाँ जोरोंसे कर रहे हैं यद्यपि मुखसे यह कहते जाते हैं कि वे शांतिके इच्छुक हैं। हवाई सेनाकी वृद्धिके प्रस्तावका समर्थन करते हुए पार्लमेंटकी साधारण सभामें श्री बाल्डविनने कहाकि "भविष्यमें हमें डोवरको नहीं वरंच राइनके बायें किनारेको अपनी सीमा समझना चाहिये।" यह किसीको नहीं मालूम है कि श्री बाल्डविनका तात्पर्य क्या था। बाल्डविन स्वयमेव उसका अर्थ जानते थे वा नहीं यह भी संदिग्ध ही है। पर फ्रांसने उसका यह अर्थ समझा कि अंतमें ब्रिटेन उसके साथ सैनिक मित्रता स्थापित करनेके लिये तैयार हो गया है।

पशुता और बर्बरताकी भयानक बाढ़ और जीत

चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य फैल रहा है। युरोपके महाराष्ट्र बड़ी तीव्र गतिसे युद्धकी ओर उसकी असीम भयंकरताओंके साथ दौड़े जा रहे हैं। भावी युद्ध अधिकांशमें आकाशमें होगा और फलतः निर्दयता, नाश तथा भयंकरतामें वह युद्धके अबतकके इतिहासमें सबसे आगे बढ़ जायगा। यह सब लोग स्वीकार करते हैं कि आकाशसे होनेवाले आक्रमणसे कोई अपनी रक्षा नहीं कर सकता। हाँ, दूसरा भी उसका उसी प्रकार उत्तर दे सकता है। किसी सेनाद्वारा आक्रमण होनेपर उसे रोकनेके लिये उससे जबर्दस्त सेना खड़ी कर दी जा सकती है। इसी प्रकार जल-सेनाका उत्तर भी दिया जा सकता है। पर बम बरसानेवाले हवाई जहाजोंसे रक्षा पानेका कोई विश्वसनीय तरीका अबतक नहीं मिला है।

चाहे हमारी हवाई सेना कितनी ही बड़ी क्यों न हो पर हवाई जहाजोंकी एक छोटीसी टुकड़ी भी बम बरसा सकती है और वह बम नागरिकोंको—जिनमें वृद्ध, युवा, स्त्रियाँ और बच्चे, अस्पताल तथा सेवा-संस्थाएँ सभी हैं—उड़ा दे सकता है। इसका बदला इसी प्रकार दिया जा सकता है। दूसरा पक्ष इसका उत्तर आकाशसे भयंकर विस्फोटक पदार्थ, विषमयी गैस तथा भयानक रोगोंके कीटाणु बरसाकर देगा। इस प्रकार बदला लेनेकी शक्ति ही रक्षाका एकमात्र उपाय बतायी जाती है।

जर्मन हवाई जहाजोंद्वारा होनेवाली बम वर्षासे यदि पेरिस अपनी रक्षा नहीं कर सकता तो कमसे कम वह भी उसके उत्तरमें बर्लिनको विध्वंस कर देनेकी क्षमता रखता है और परस्परकी शक्तिका यह ज्ञान ही एक दूसरेको रोके रह सकता है। पर इसके साथ-साथ यह भी समझ रखना चाहिये कि आकाशमें होनेवाले युद्धकी हारजीतका निपटारा इस बातसे होगा कि पहले किसने बम वर्षा करनेका मौका पाया। जब भावी युद्धका प्रारंभ होगा तब यदि सभ्यता विनष्ट न हो गयी तो कमसे कम बर्बरताका साम्राज्य अवश्य हो जायगा। यद्यपि वर्तमान सभ्यताने विज्ञान तथा संघटन, साहित्य और दर्शन, धर्म और कलाके क्षेत्रोंमें बहुत कुछ कर दिखाया है और इन बातोंका विकास धीरे-धीरे शताब्दियोंसे होता चला आ रहा है फिर भी हम आज अपनेको उस निस्सहाय तथा असभ्य अवस्थामें पाते हैं, उस विकट परिस्थितिमें पाते हैं, जिसका यदि शीघ्र ही तथा उचित सुधार न हुआ तो वह उस सभ्यताको नष्ट

किये बिना न छोड़ेगी । एक झक्की दार्शनिकने मानवसमाजको बन्दरोंकी जातिका बताया है जो आज अपनेको बड़ा सिद्ध करनेकी बीमारीसे पीड़ित हैं । शायद उनका कहना ठीक है ।

वर्तमान मोहांधकारमें गांधीजीका दिव्य सन्देश

वर्तमान संकट ऐसा बुरा और साथ ही इतना गम्भीर है कि उसके परिणामस्वरूप सारी सभ्यता नाशको प्राप्त हो सकती है । मानवसमाजको उस गड्ढेसे निकाल बाहर करना चाहिये जिसमें आज वह फँसनेको बाध्य हुआ है और साथ-साथ अपना निर्माण नये सिरेसे करनेके लिये दबाया जा रहा है । कोई समाज आपसे आप उन्नतिको प्राप्त नहीं होता । उसका विकास उस अल्पसंख्यक समुदायके प्रयत्नोंद्वारा होता है जो श्री मैथ्यू आरनल्डके शब्दोंमें "बचे खुचे" लोग होते हैं । यह समुदाय उन विशेष पुरुषोंकी तपस्यासे प्रेरित होता है जो दूरदर्शिता तथा बुद्धिमत्ताके क्षेत्रमें सर्वोत्तम तथा सबसे उच्च होते हैं । ये व्यक्तिविशेष साहस और शक्तिके क्षेत्रमें भी सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करते हैं । अपनी राष्ट्रीयताके संकुचित वृत्तसे अत्यन्त ऊँचे उठनेवाले, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सत्यसे सम्बन्ध स्थापित करनेवाले ये व्यक्तिविशेष वर्तमान सामाजिक अवस्थाको देखकर उसके भविष्यकी स्पष्ट झलक देखते हैं । ऐसे ही लोग वास्तवमें सभ्यताको आगे बढ़ानेवाले होते हैं ।

वर्तमान संसारके राजनीतिक अधिनायकोंकी युद्ध ललकार तथा भावावेशपूर्ण शब्दोंकी हुंकारके मुकाबलेमें गाँधीजीका वह सन्देश, जो उन्होंने बिदा होते समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको उसके महाधिवेशनके समय दिया है, घोर अन्धकाराच्छन्न संसारके लिये स्वर्गीय प्रकाशकी एक किरणके समान है । "मैं उस स्वातन्त्र्यको जो हिंसाद्वारा प्राप्त किया जाय कभी स्वीकार नहीं कर सकता ।" भारतीय स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिये परमोत्सुक रहनेवाले, उसकी प्राप्तिके लिये काम करनेवालोंमें सबसे अधिक शक्ति रखनेवाले गांधीजी हमसे कहते हैं कि राजनीतिक स्वतंत्रताकी प्राप्ति उन्हें परम प्रिय है पर सत्य और अहिंसा उससे भी अधिक प्रिय है । वे कांग्रेसके अपने साथियोंको यह चेतावनी देते हैं कि वे अपने भीतर मानवताके प्रति उस कोमल उत्तरदायित्वकी भावना जाग्रत करें और अपने समाजके किसी भी प्राणीके प्रति आदरको स्थान दें । संसारके राजनीतिक संघर्षोंमें यह भाव एक बेजोड़ प्रमाण है जिसकी तुलना नहीं की जा सकती । आप कांग्रेसवालोंको आज्ञा देते हैं कि वे स-सीम और सापेक्षताका त्याग करके जो राजनीतिका स्वाभाविक अंग हो गयी है, पूर्ण और अनन्त सत्यको अपनाने तथा पूर्ण निरपेक्ष कर्तव्यको अपनानेकी चेष्टा करें । इन्हीं बातोंका समावेश विचार और विवेक तथा सत्य और प्रेममें होता है ।

जब हम लोग इतिहासके पृष्ठोंमें अंकित घटनाओंका मनन करते हैं तो हमें भावोंकी शक्तिका पता लगता है । उसी प्रकार यह भी एक भाव है जिसे गांधीजी भारत समाजके मन तथा आत्मापर अंकित करना चाहते हैं । वे हमसे अपील करते हैं कि हम और ऊँचे उठें, हम अपने प्रयत्नोंको दूसरा रूप प्रदान करें, हम राष्ट्रीय पुनर्निर्माणके लिये एक नये मार्गका अनुगमन करें तथा नैतिकता और आध्यात्मिकताकी सुदृढ़ नींवपर नवभारतकी स्थापना करें । अनन्त सत्यको प्रथम तथा राष्ट्रीय राजनीतिको गौण स्थान देकर उन्होंने वह दीपक जलाया है जो आसानीसे बुझाया नहीं जा सकेगा । उस दीपकका प्रकाश अनन्तमें तीव्र गतिसे अपना तेज फैलाता जायगा । सारे संसारके ईमानदार तथा सद्भावयुक्त प्राणी इसका आदर और स्वागत करेंगे । **गांधीजीकी अपील पेरिक्लिस, और सिसेरो, वाशिंगटन और लिंकन ऐसे राष्ट्रनायकोंकी उक्तियोंके साथ ही न लिखी जायगी वरंच वह पृथ्वीके अमर सुधारकों तथा धर्मसंस्थापकोंकी वाणियोंके साथ लिखी जायगी जिनका इतिहास मानवसमाज तथा राष्ट्रोंके सर्वोत्तम प्रयत्नोंकी गाथा है ।**

ब्रिटेन और भारतका सम्मानयुक्त सम्बन्ध होना चाहिये

सभ्यता त्यागकी शक्तिका नाम है । सभ्यताका अर्थ स्वार्थपरताका नियंत्रण है फिर वह व्यक्तिगत हो अथवा

सामूहिक। उसका अर्थ शांतिमय सहयोग है। वर्तमान संसारमें संघर्षकी ज्वाला उठनेका कारण राष्ट्रोंमें समानता तथा न्यायके आधारपर परस्पर सहयोग करनेकी भावनाका अभाव ही है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय अराजकताका एक बड़ा कारण वार्सेईमें हुई वह भूल है जिसने संसारमें असंतुष्टोंका एक भारी समूह उत्पन्न कर दिया है। यह संभव नहीं कि हम किसीके स्वात्माभिमानको कुचल दें और एक महान राष्ट्रको सर्वदाके लिये अपमानकारी तथा दासताकी अवस्थामें रखें। इस अवस्थाके रहते कभी शांतिकी आशा नहीं की जा सकती, फिर ऐसा व्यवहार चाहे पश्चिममें किया जाय या पूर्वमें। वालटेयरने जब बड़े स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा कि "अवस्था ऐसी है कि अपने देशके बड़प्पनको चाहना अपने पड़ोसी राष्ट्रको हानि पहुँचाना है" तब वे उन विचारकोंकी श्रेणीमें पहुँच रहे थे जो मनुष्य-स्वभावके सत् अंशोंमें विश्वास नहीं करते। यदि आज भारतवर्ष अपनी स्वतंत्रता चाहता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह किसी दूसरेको कोई हानि पहुँचाना चाहता है।

अंगरेज लोग आज एक विचित्र भावमें पड़े हुए हैं। वे दोनों हाथमें लड्डू रखना चाहते हैं। एक ओर वे लोकतन्त्रके रक्षक और आदर्शवादी होनेकी प्रशंसा प्राप्त करना चाहते हैं और दूसरी ओर स्वार्थ और वस्तुस्थितिपर अपना कठोर पंजा जमाये रखना चाहते हैं। स्वार्थपरता तथा अस्थायी लाभकी भावनाका परित्याग करके किसी महान् आदर्शके प्रति अपनी सच्ची भक्ति प्रदर्शित करके राष्ट्र भी व्यक्तियोंकी भाँति मानवसमाजपर अपना स्थायी प्रभाव डालते हैं। ब्रिटेनको चाहिये कि वह संसारको यह कहनेका मौका न दे कि भाग्यके फेरसे भारत ब्रिटेनके हाथ आ गया और ब्रिटेनने इसके बदलेमें भारतको पुनः भाग्यके भरोसेपर ही फेंक दिया। यह आशा करनी चाहिये कि संसारकी शांतिके लिये तथा ब्रिटेनकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिये ग्रेटब्रिटेनका वह समुदाय जो शांतिका इच्छुक है और उदार है यह अनुभव कर लेगा कि रक्षक बननेका दम भरनेवाला समय बीत चुका है और साम्राज्यका औचित्य तभी सिद्ध होता है जब स्वतन्त्र राष्ट्र स्वेच्छासे समानताके आधारपर एक सूत्रके बन्धनमें बँधना पसन्द करते हैं।

समाजमें शान्ति और संघटन कैसे हो?

यह कहावत है कि हम जैसे हैं वैसी ही शासन प्रणाली हमको मिलती है। इसका अर्थ यह है कि जैसे लोग किसी सरकारमें होते हैं वह सरकार भी वैसी ही होगी। सामाजिक विवेक और राजनीतिक व्यवस्थामें बड़ा भारी संबन्ध है। अधिक स्थायी तथा अधिक प्रतिनिधिमूलक सरकारके लिये यह आवश्यक है कि सामाजिक व्यवस्था भी अधिक न्याययुक्त हो। जो समाज अस्पृश्यताके कलंक सहन कर सकता है उसे अपनेको सभ्य कहनेका कोई अधिकार नहीं है। किसी भी सच्चे, परिश्रमी तथा योग्य व्यक्तिके लिये उस पदपर पहुँचनेमें कोई बाधा न रहनी चाहिये जिसपर वह अपने चरित्र, अपनी बुद्धि तथा अपनी चतुरताके कारण पहुँच सकता हो। सार्वजनिक जीवनकी एकसूत्रताको जात-पाँत अथवा सांप्रदायिक भावनाओंके कारण विच्छिन्न होने देना नहीं चाहिये। घरोंमें तथा स्कूलोंमें जातपाँतसम्बन्धी ऊँचाईकी भावना तथा सांप्रदायिक द्वेषभावोंका जो घातक प्रभाव पड़ता है उसे बलपूर्वक उखाड़ फेंकना आवश्यक है। यह कहनेसे काम नहीं चलेगा कि लोग अपने अपने रीति-रिवाजोंके अनुसार चलें। सामाजिक जीवनकी सुन्दरताके लिये न केवल निरपेक्षताकी नीति बर्ती जानी चाहिये बल्कि समाजमें सक्रिय सहानुभूति तथा न्याययुक्त प्रबन्धकी जरूरत है। यह सच है कि हम किसीको न गोली मार देते हैं और न फाँसी दे देते हैं फिर भी हम अपने तरीकेसे उसी प्रकारके काम जातिबहिष्कृत करके अथवा सामाजिक बहिष्कारद्वारा करते हैं। हिंदू और मुसलमान आज शताब्दियोंसे एक साथ रहते चले आ रहे हैं पर फिर भी हम एक दूसरेके संबंधमें आश्चर्यजनक रूपसे भ्रमपूर्ण विचार रखते हैं।

दुराग्रहपूर्वक भेद बनाये रखनेका यत्न करके हम अपने भीतर उस भावको उत्पन्न कर देते हैं जिससे लाभ उठाकर स्वार्थी लोग अपना काम निकालते हैं। १९ वीं शताब्दीके आरंभमें एक बच्चेने अपनी माँ से जो व्हिग पार्टीकी थी पूछा था कि "माँ, टोरी लोग जन्मसे ही दुष्ट होते हैं अथवा वे जैसे बढ़ते हैं वैसे-वैसे दुष्ट होते जाते हैं?"

माँ ने कहा कि "मेरे बच्चे, वे जन्मके ही दुष्ट हैं और आगे दुष्ट ही होते जाते हैं।"*

अपने घरोंमें हम अपने निर्बोध बच्चोंके मन-मन्दिरमें इस प्रकारके घातक विचार बैठा देते हैं। हमारी शिक्षा यदि वास्तवमें सफल हुई है तो उसका फल यह होना चाहिये कि वह अन्धविश्वास तथा दुराग्रहसे हमारी रक्षा करे और हममें वह शक्ति भर दे जिसके सहारे हम उन पत्रों तथा उन लोगोंके प्रचारके प्रभावका जोरदार विरोध कर सकें जो आज हमारी कमजोरियोंको जानकर उसके आधारपर अपना खेल खेल रहे हैं।

समाजमें न्याय कैसे करते ?

जबतक सामाजिक न्याय नहीं होता तबतक सामाजिक संघटनमें स्थिरता नहीं आ सकती। लोकतंत्र केवल राजनीतिक ही नहीं होना चाहिये वरंच उसे आर्थिक भी होना चाहिये। श्रमकी चक्कीमें पिसनेवाले मजदूरोंका घोर दरिद्रता तथा भीषण कष्टसे उद्धार होना आवश्यक है जिससे कि वे स्वात्मोन्नति तथा स्वप्रकाशका अवसर प्राप्त कर सकें। अपने देशके करोड़ों भूखोंके प्रति हमारे हृदयमें अवश्य कोमल भावनाएँ हैं जिनका प्रमाण देशमें उन सेवा-संस्थाओंकी स्थापना है जो अनाथालयों, आश्रयगृहों, अस्पतालों तथा प्रसूतिकागृहोंके नामसे विख्यात हैं। ये सारी बातें अपने-अपने उद्देश्यके साथ अच्छी ही हैं पर फिर भी ये सब रोगका ऊपरी उपचार करनेवाली हैं और मौलिक निदान उपेक्षित ही रह जाता है। यदि मानवसमाज आजकी सामाजिक व्यवस्थासे अच्छी कोई वस्तु नहीं पैदा कर सकता तो ये अस्पताल और ये सेवा-संस्थाएँ केवल हमारे कष्टोंको बढ़ानेवाली होंगी और उस अवस्थामें यह अच्छा है कि हम भूखों मर जायँ।

लोकतन्त्रात्मक सरकारोंका यदि वे वास्तवमें जनताकी प्रतिनिधि हैं कर्तव्य है कि वे व्यक्तियोंद्वारा संचालित उद्योग-धन्धोंका नियन्त्रण करें। प्रकृतिप्रदत्त आर्थिक साधनोंको व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धाके लिये अनियन्त्रित छोड़ देना कभी हितकर नहीं है। व्यक्तिगत संचालनमें चलनेवाले व्यवसाय भी नाश होनेसे बचनेके लिये सरकारी सहायताकी माँग पेश करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि हमारे देशमें किसी व्यवसायके एकाधिकारपर सार्वजनिक नियन्त्रण स्थापित करनेके सम्बन्धमें अधिक विरोध नहीं है। जो कुछ भी थोड़ा विरोध है वह स्थिर स्वार्थवालोंकी ओरसे है। बिना व्यापक सामाजिक सहयोग तथा नियन्त्रणके किसी समाजका अस्तित्व बाकी नहीं रह सकता।

पर किसी भी अवस्थामें सामाजिक पुनः संघटनके मार्गमें आनेवाली बाधाओंका निराकरण करनेमें हमें सत्य तथा प्रेममय उपायोंका त्याग नहीं करना चाहिये। सामाजिक पुनरुद्धारका उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये समझाने-बुझानेका मार्ग ही ग्रहण करना चाहिये न कि बलप्रयोग होना चाहिये। किसी भी प्रकारसे विचार करने, भाषण करने तथा कार्य करनेकी स्वतन्त्रताका दमन न होना चाहिये जिसके बिना मानव-जीवन अपनी विशेषता तथा मूल्य खो बैठता है। सामाजिक परिवर्तन सुव्यवस्थित विकासके रूपमें होना चाहिये न कि हिंसात्मक तथा विघटनात्मक क्रांतिकेद्वारा। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उस नीतिका समर्थन होना चाहिये जो उचित भावोंका प्रचार करनेवाली हो तथा सार्वजनिक हित करनेवाली हो।

जीवन और समाजकी समस्यायें सामने हैं इन्हें हल करो

आज हम उस अवस्थासे पार हो रहे हैं जब इतिहासमें नया पृष्ठ जोड़ा जा रहा है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अशान्ति वर्तमान है। सर्वत्र विरोधी विचारों तथा विरोधी लक्ष्योंका संघर्ष हो रहा है। धर्मकी दृष्टिसे प्रचार करते समय हम ऊँचेसे ऊँचे सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हैं पर हमपर निकृष्टतम अन्धविश्वासोंका अधिकार जमा है। हम शंकर तथा प्लेटोकी उक्तियोंका उद्धरण उपस्थित किया करते हैं पर हमारा विश्वास "जंतर मंतर" में होता है और परीक्षा पास करने अथवा इनाम जीतनेके लिये मनौती मानी जाती है। राष्ट्रीय जागृतिकी वृद्धिका मार्ग साम्प्रदायिक भेदद्वारा रोक दिया जाता है। हम भारतीयों तथा अंगरेजोंकी समानताकी घोषणा करते फिरते हैं पर जातपाँतके ऊँच-नीच भावोंका संघर्ष प्रतिदिन तीव्रतर होता जा रहा है। अब

* इंग्लैण्डमें १९वीं शताब्दिमें टोरी तथा ह्विग नामकी दो पार्टियाँ थीं जो पार्लमेंटमें एक दूसरेकी विरोधिनी थीं।

विज्ञानके स्वर्णमय सदुपयोग, घरेलू धंधे

(१) रंगीन रोशनाइयाँ बनाइये

[लेखक—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस–सी० (प्रयाग विश्वविद्यालय), दयानिवास, प्रयाग]

भी कभी लेखों और पुस्तकोंमें शीर्षक आदि देनेके लिये रंगीन रोशनाइयों-की आवश्यकता पड़ती है। रसायन-ज्ञोंने अपनी रासायनिक विधिसे लगभग प्रत्येक तरहके रंगका संश्लेषण कर डाला है, और इसलिये इस समय किसी रंगकी स्याही तैयार कर लेना कोई कठिन काम नहीं है। हाँ, एक बात अवश्य है। काले या नीलकृष्ण रंगके मुकाबले और कोई रंग ठहरते ही नहीं। ये रंग कुछ समय पीछे ही पीले पड़ जाते हैं और इस कारण दस्तावेज आदि मूल्यवान पत्रोंमें इन रंगोंका व्यवहार नहीं किया जाता, पर देशी विधिसे बनाया हुआ लाल रंग जिसका प्रयोग जन्मपत्रियों और अन्य प्राचीन दस्तावेजों फर्मानों और लेखोंमें किया जाता रहा है, रासायनिक कोलतार रंगोंकी अपेक्षा बहुत ही अधिक स्थायी है।

यों तो बहुतसे रंगोंकी स्याहियाँ बनायी जा सकती हैं पर काली और नीलकृष्ण स्याहियोंके अतिरिक्त लाल, बैंगनी, नीली और पीली स्याहियोंका प्रचार अधिक है, हम इनमेंसे कुछका उल्लेख यहाँ करेंगे।

१. लाल रोशनाई

कई प्रकारकी लकड़ियोंकी छालोंमेंसे लाल रंग निकलता है; (रत्नज्योति) रतनजोतिमें भी लाल रंग होता है। विदेशी रंगोंमें ब्रेजिलकी लकड़ी जिसे 'रेडवुड' कहते हैं और

आर्थिक अवस्थाकी ओर ध्यान दीजिये। यदि कोई बड़े दिनके समय कलकत्तेकी शोभा देखे और शराब, आमोद, जुआ और खेलोंपर खर्च की जानेवाली रकमको देखे तो वह किसी प्रकार यह विश्वास नहीं कर सकता कि यहाँके निवासी गरीब हैं, फिर भी आज आर्थिक मन्दी तथा उसके असह्य बोझमें पिसनेवाले असंख्य प्राणियोंका अस्तित्व आर्थिक विघटन तथा अन्यायकी अवस्थाको सिद्ध कर देनेके लिये पर्याप्त है।

घोर दरिद्रता, व्यापक निरक्षरता, उन्नतिके मार्गमें प्रबल सामाजिक बाधाएँ, स्थिर स्वार्थवालोंका, जिनमें धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी क्षेत्रके लोग संमिलित हैं, धीरे-धीरे उत्थान, आदि अनेक समस्याएँ हैं जो हमारे संमुख उपस्थित हैं। हममेंसे बहुतसे लोग इस विशाल उलझनको काल्पनिक दृष्टिकोणसे देखते हैं पर वास्तवमें आवश्यकता वैज्ञानिक समीक्षाकी है। इनको हल करनेके लिये ऐसे रास्ते नहीं हैं जो फौरन हमें लक्ष्यके निकट पहुँचा दें।

विश्वविद्यालयोंकी उच्च शिक्षाप्राप्त युवक-युवतियोंके लिये यह विशाल कार्य-क्षेत्र उपस्थित है। उनके लिये उलझी समस्याओंको सुलझाने, विरोधी लक्ष्योंको एकात्म करने, सामूहिक भलाईके लिये विविध प्रकारकी शक्तियोंका सामंजस्य करनेका काम है जो समाजमें स्वार्थपरता, जबर्दस्ती तथा प्रमादकी भावनाको कम करनेके लिये आवश्यक है। यह युनिवर्सिटियोंका कर्तव्य है कि वे ऐसे मनुष्य उत्पन्न करें जो साधारण अहंभाव तथा स्वार्थका परित्याग करके सार्वजनिक हितके लिये अग्रसर हों और जिनमें सत्यका दर्शन करने तथा उसकी प्राप्तिके मार्गपर चलनेका साहस तथा मानसिक चेतनता वर्तमान हो। मनुष्य पृथ्वीपर केवल आमोदके लिये नहीं अवतरित हुआ है। वह यहाँ, ईमानदारीके लिये, भलाईके लिये तथा सचाईके लिये आया है। आप कोई नौकरी अथवा पारितोषिक पावें या न पावें पर आपके लिये अपने भाइयोंकी सेवा करने, सत्यके लिये कार्य करनेका मार्ग सर्वदा खुला है। आप विजयकी चिंता न करें पर आपका लक्ष्य न्याय हो।

(आजसे)

जो अमरीकाके उष्ण प्रधान प्रान्तोंमें बहुत पायी जाती है, लाल रंग निकालनेके काममें बहुत आती है। इस जातिकी लकड़ियोंमें पेरनाम्बुको वुड अधिक प्रसिद्ध है। इस लकड़ीको पानीके साथ उबालते हैं, और इस तरह इसका रंग घुलकर पानीमें चला आता है। यह रंग स्फटिक लवण (एलूमिना) और वंग (टिन) लवणोंके साथ बहुत अच्छा रंग देता है।

पर इससे भी अच्छा रंग (Cochineal) कोचिनियालसे बनाते हैं। कोचिनियाल बीरबहूटियों या उसीके समान अन्य कीड़ोंके मृत शरीरोंसे निकाला जाता है। रजतवर्णकी भूरी मृत शुष्क बीर बहूटियाँ इस कामके लिये अच्छी समझी जाती हैं न कि काले रंगकी। इनको पीसकर चूर्ण कर लिया जाता है। कोचिनियाल अमोनियाके तीव्र घोलके साथ चटकीला लाल रंग देता है।

रोशनाई तैयार करनेके लिये बीरबहूटियोंके बुरादेमेंसे पहले कारमाइन रंग निकाल लेते हैं। यह रंग इनके शरीरमें विद्यमान रहता है जो संभवतः इन्हें उन पौधोंसे मिलता है जिनके पत्तोंको ये खाती हैं। कारमाइन निकालनेकी विधि इस प्रकार है—बीरबहूटीके बहुत महीन बुरादेको पानीके साथ तीन घंटे तक उबालो। इस गरम घोलको फिर अति शीघ्रतासे किसी मोटे कपड़े (फलालेन आदि) में छान लो। इस छने हुए घोलमें अब आवश्यकतानुसार फिटकरी या वंग-लवण मिलाकर फिर उबालो। यह ध्यान रहे कि फिटकरीमें कोई भी लौह-लवण न मिला हो। इन लवणोंके मिलानेकी एक उचित मात्रा निम्न प्रकार है।

कोचिनियाल	२०
पानी	५००
फिटकरी	२
वंग (टिन) लवण	२

ये लवण उबलती हुई हालतमें ही छोड़े जाने चाहिये। बादको घोलको बड़ी बड़ी उथली नाँदोंमें भरकर और शीशेसे ढककर धूपमें रख देना चाहिये। कुछ दिनोंमें, घोलमेंसे अनघुल कारमाइन तलछटके रूपमें पृथक् हो जायगी (कुछ तो नीचे बैठ जायगी और कुछ पत्र ऊपर तैरते रहेंगे) अब इसे छान लो और फिर सोख्ता कागजमें दबाकर सुखा लो। इस प्रकार कारमाइन मिल गया, यदि इसे और शुद्ध करनेकी इच्छा हो, तो इसको दाहक अमोनियामें घोल लो और फिर सिरकाम्लसे अवक्षेपित कर लो। अब शुद्ध और स्वच्छ कारमाइन बन गयी जिससे लाल रोशनाइयाँ बनाई जा सकती हैं। स्याही बनानेके कुछ नुसखे इस प्रकार हैं—

कारमाइन	४
दाहक अमोनिया	५००
गोंद	१०

१. कारमाइन घोल

कारमाइन और गोंदको मिलाकर उसपर अमोनिया छोड़ो और फिर जलकुंडीपर उबालो, दस मिनट उबालके बाद इसे ठंडा करने रखदो, और ज्योंही ठंडा हो जाय, काग अच्छी तरह कसकर बोतलका मुँह बन्द कर दो, क्योंकि यदि अमोनिया उड़ जायगी तो कारमाइन अवक्षेपित हो जायगी। यह ठंडे पानीमें घुलनशील नहीं है। कारमाइनका यह अमोनिया घोल 'कारमाइन घोल' नामसे बेचा जाता है, और वाटर-पेंटिङ्गमें बहुत उपयुक्त होता है। इन घोलोंमें अमोनियाकी मात्रा अनुभवसे ठीक कर लेनी चाहिये। क्योंकि रंगकी चटक इसपर ही निर्भर है। अधिक अमोनिया पड़जानेपर रंग कुछ नारंगी या बैंगनी हो जाता है। ऐसी परिस्थितिमें थोड़ासा सिरका डाल कर ठीक कर लेना चाहिये।

२. सुपरफाइन कोचिनियाल स्याही

कोचीनियाल	४०
अमोनियमकर्बनेत	२
फिटकरी	२
पानी	२००

फिटकरी और कोचीनियालको बारीक पीसकर अमोनियम कार्बनेतके घोलमें मिलालो और १५-१५ मिनटकी अवधिपर ३-४ घंटेतक बराबर हिलाते जाओ। बस रोशनाई तैयार हो जायगी। इसे छानकर अलग कर लो। फिटकरीसे लाभ यह है कि इसकी उपस्थितिमें कोचीनियालमें विद्यमान अन्य अनावश्यक एवं हानिकर पदार्थ अवक्षेपित हो जाते हैं।

३. पेटेंट-रेड-रोशनाई

कोचीनियाल	१०
वंग (टिन) लवण	२
नौसादर	२
पानी	२००

कोचिनियालको पानीके साथ पहले उबालते हैं और गरम अवस्थामें ही अमोनिया डालकर छान लेते हैं। छने हुए गरम घोलमें पहले नौसादर मिलाते हैं और फिर वंग लवण।

रेडवुड या पेरनाम्बुको वुड के कुछ नुसखे भी यहाँ देते हैं—

४. रेड-ब्रेजिल रोशनाई

पेरनाम्बुको वुड	२८०
वंग (टिन) लवण	१०
गोंद	२०
पानी	३५००

लकड़ीके छोटे-छोटे टुकड़ोंको लगभग एक घंटेतक उबालो और घोलको फिर छान लो। टिन-लवणको पानीमें घोल लो। (यदि घोल धुंधला हो तो एक दो बूँदे नमकके तेज़ाबकी डालकर स्वच्छ कर लो) लकड़ीवाले लाल घोलमें गोंद घोलो और अब इसमें टिनलवणका घोल मिला दो। बस स्याही तैयार हो गयी। यदि यह अधिक हलकी हो गयी हो तो गरम करके इच्छानुसार इसे गाढ़ा कर लो।

५. ब्रेज़िल-निष्कर्ष-रोशनाई

पेरनाम्बुकोका सत या निष्कर्ष	१५
फिटकरी	३
वंग (टिन) लवण	२
इमलिकाम्ल (टारटेरिक एसिड)	२
पानी	१२०

लागवुडके समान ब्रेजिलवुडका सत भी बाजारमें बेचा जाता है। इस सतके घोलमें फिटकरी और वंग लवणके घोल उपर्युक्त मात्रामें मिला दो। छानकर अब इसे उबालो और उबलते हुएमें ही थोड़ा थोड़ा करके इमलिकाम्लका चूर्ण मिलाते जाओ। प्रत्येक बार अम्ल मिलानेके उपरान्त कुछ मिनटोंतक घोलको उबाल लो और अच्छी तरहसे हिलाओ। बस लिखने योग्य अच्छी रोशनाई बन जायगी।

६. लाल-मेजेण्टा रोशनाई

मेजेण्टा रंग एक प्रकारका कोलतार रंग है जिसे रसायनज्ञ रोज़ेनेलिन-समूहका मानते हैं और १८५६ में नेटेनसन महोदयने इसका आविष्कार किया था। इसका नाम फुक्सिन भी है। यह संश्लेषण विधियोंसे तैयार किया जाता है और विलायती लाल रंगोंमें प्रधान है।

मेजेण्टाको स्पिरिट (९० प्रतिशत मद्य) में गरम करके घोलो। गोंदका भी पृथक् जलमें घोल बनालो, और इसे छानकर गरम करो, जब उबाल आ जाय तो इसमें मेजेण्टा घोल पतली धारसे छोड़ते जाओ और घोलको बराबर टारते जाओ। बस लाल स्याही तैयार हो गयी।

मेजेण्टा	२
गोंद	५
स्पिरिट (९०%)	१०
पानी	१००

७. इयोसिन रोशनाई

मेजेण्टा स्याही तो बहुत सुन्दर होती ही है, पर इयोसिन स्याहीमें एक विशेषता यह है कि इसमें साथ-साथ चटकीली चमक भी होती है, इयोसिन रंग भी एक प्रकारसे मेजेण्टाका ही भाईबन्द है। थैलिकअम्ल (जो नफथलीनको गन्धकाम्ल और पारद लवणके साथ प्रतिकृत करके बनाया जाता है) रिसोर्सिनके साथ संयुक्त होकर फ्लोरोसीन नामक रंग देता है। इस फ्लोरोसीन रंगपर (ब्रोमीन) अरुणिज का प्रभाव डालनेसे इयोसिन रंग बनता है।

इस रंगकी लाल टिकियाँ बाजारमें मिलती हैं जिनमें थोड़ीसी सुनहली चमक होती है। पानीमें घोलनेसे ही इयोसिनकी स्याही तैयार हो जाती है। इसमें मेजेण्टा स्याहीकी तरह थोड़ासा गोंद भी मिलाया जा सकता है।

८. नीली रोशनाई

अधिकतर बाजारमें आनेवाली नीली स्याहियाँ या तो वाटरसोल्यूबिल-ब्लू, रंगकी या इंडियो कार्माइन रंगकी बनी होती हैं। इनका रंग बड़ा ही चटकीला होता है और लिखनेपर ये कागजमें इस प्रकार प्रविष्ट हो जाती हैं कि फिर इनका मिटना कठिन हो जाता है।

गोंदको पानीमें घोलो, और फिर इसमें इंडिगोकारमाइन रंग घोलो। पानीकी यथोचित मात्रा मिलाकर रोशनाईको इच्छानुसार हलका करलो—

इंडिगोकारमाइन	१०
गोंद	५
पानी	५०–१००

६. प्रशियन-ब्लू स्याहियाँ

नीली स्याहियोंमें प्रशियन-ब्लू स्याहियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। घुलनशील प्रशियन नील रंग बनानेकी विधि इस प्रकार है—

१ भाग (भारके हिसाबसे) नमकके तेजाबमें $\frac{1}{10}$ भाग शोरेका तेजाब मिलाओ और फिर १ भाग पानी और मिला दो। इस मिश्रणमें लोहेका चूर्ण अथवा छोटे-छोटे टुकड़े मिला दो। लोहा अम्लमें घुलने लगेगा। जब लोहेसे यह घोल संपृक्त हो जाय, और अधिक लोहा न घुल पावे तो इस लोह हरिदके घोल निथार लो। (इस काममें कई दिन लगेंगे, हलका या गरम करके यह काम शीघ्र भी किया जा सकता है) इस प्रकार लोह लवणका घोल तैयार हो गया।

१ भाग पांशुजलोहोश्यामिद (पोटाश फैरोसायनाइड) १० भाग पानीमें घोलो, और इस घोलको लौह लवणके घोलमें मिलाओ। ऐसा करनेसे नीला अवक्षेप आवेगा। जब और अधिक अवक्षेप आना बन्द हो जाय तो घोल मिलाना बन्द कर दो। इस अवक्षेपको कई बार पानीके साथ निथार कर धो लेना चाहिये, और फिर छान लो। यह अवक्षेप ही प्रशियन-ब्लू कहलाता है। यह स्वयं तो पानी में अनघुल है पर काष्ठिकाम्ल (औब्जेलिक एसिड)की विद्यमानतामें घुल जाता है। अतः छन्नेपरसे प्रशियन ब्लूको अलग कर लो और भारके हिसाबसे $\frac{1}{10}$ भाग काष्ठिकाम्लके चूर्णके साथ इसे घोटो, और थोड़ा-थोड़ा पानी मिलाते जाओ। बस नील आकाशके अनुरूप सुन्दर रंग तैयार हो जायगा जिससे स्याही तैयार की जा सकती है। प्रशियन-ब्लू बाजारमें बिकता भी है (पेरिस-ब्लू नामका रंग अधिक उपयुक्त है), पर इसे ऊपर दी गयी विधिके अनुसार काष्ठिकाम्लके साथ मिलाकर घुलनशील बनानेकी आवश्यकता होगी। यह बाजारू प्रशियन-ब्लू सूखा होता है अतः घोलनेके लिये इसमें काष्ठिकाम्ल अधिक मात्रामें छोड़ना पड़ता है। अम्लकी मात्रा अधिक हो जानेके कारण निब शीघ्र खराब हो जाते हैं, अतः अपने आप बनाया हुआ ताजा प्रशियन-ब्लू ही स्याहीके कामके लिये अधिक उपयोगी होता है।

प्रशियन-ब्लूके उपर्युक्त घोलमें गोंदकी उपयुक्त मात्रा मिलाकर बस स्याही तैयार की जा सकती है।

लोह लवण तैयार करनेमें कसीसका व्यवहार भी किया जा सकता है। कसीस (लोहस) गन्धेतको नमक और शोरेके तेज़ाबोंके साथ पहले प्रभावित करते हैं और फिर पोटाश फैरोसायनाइडसे प्रतिकृत करते हैं। अथवा निम्न प्रकार भी—

१७ भाग पोटाश फैरोसायनाइड, ५४ भाग पानीमें घोलो और १७ भाग कसीस १५४० भाग पानीमें। इन दोनोंको मिलानेपर नीला अवक्षेप मिलेगा। इस अवक्षेपको निम्न मिश्रणसे प्रतिकृत करो—

शोरेका तेजाब	१०
नमकका तेजाब	५
पानी	५००

२४ घंटेके बाद पानीको निथारकर अलग कर दो और अवक्षेपको ३$\frac{1}{2}$ भाग काष्ठिकाम्ल (ओब्जेलिक एसिड) के साथ घोटो। फिर ४००० भाग पानीमें १६० भाग श्वेत गोंद घोलकर उस घोलमें मिला दो। बस नीली स्याही तैयार हो गयी।

१०. बैंगनी रोशनाई

बैंगनी रोशनाईके बनानेकी एक सामान्य विधि तो यह हो सकती है कि किसी नीली रोशनाईको लाल रोशनाईके साथ मिला दो। पर रासायनिक विधिसे अनेक अनीलिन रंग (aniline dyes) इस प्रकारके बनाये गये हैं जिनमें बहुत अच्छी बैंगनी चमक होती है। इन रंगोंमें 'मिथाइल वायलेट' (methyl violet) बहुत ही प्रसिद्ध है और अधिकांश बैंगनी स्याहियाँ इसीसे तैयार की जाती हैं। इसे स्पिरिट या मद्यमें घोला जाता है। रंग हलका करनेके लिये इसमें सावधानीसे पानी मिलाना चाहिये और ज्योंही इसके घोलमें अवक्षेप आना प्रतीत होने लगे, पानी मिला देना बन्द कर देना चाहिये और इसके आगे थोड़ी-सी स्पिरिट और मिला देनी चाहिये।

दूसरी स्याही इस प्रकार बना सकते हैं। इंडिगो कारमाइनका गाढ़ा घोल बनाओ, और इसमें गोंदकी यथोचित मात्रा भी घोलकर मिला दो। अब इसमें लाल कारमाइन रंग, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है मिलाते जाओ, जबतक शुद्ध बैंगनी रंग न आ जावे। प्रशियन-ब्लू और कारमाइन मिलाकर भी बैंगनी रंगकी स्याही तैयार की जा सकती है।

११. पीली रोशनाई

सबसे अच्छी पीली रोशनाई प्रबलिकाम्ल (या पिक्रिक एसिड) से बनती है, पिक्रिक एसिड दिव्योल (फीनोल) को गन्धक और शोरेके तेजाबोंसे प्रतिकृत करनेपर बनता है, और इसमें चटकीला पीला रंग होता है। इसके पीले रवे विषैले और कटु स्वादके होते हैं, अतः खाद्य पदार्थोंको इस स्याहीसे बचाये रखना चाहिये।

पिक्रिक एसिड	१०
गोंद	२
पानी (स्रवित)	१००

तीनोंको मिलाकर उबालना चाहिये, बस स्याही तैयार।

गैम्बोजरालके १० भाग चूर्णको १० भाग स्पिरिटके साथ उबालो और फिर इसमें ५ भाग गोंद न्यूनतम पानीमें घोलकर मिलाओ। अब ३० भाग पानी और मिलादो, इस प्रकार भी पीली स्याही तैयार हो गयी।

हलदीका पीला रंग तो अति प्रचलित है ही।

१२. हरी रोशनाई

पीली और नीली रोशनाइयोंको मिला देनेसे हरी रोशनाई बनायी जा सकती है। इच्छानुसार दोनोंकी मात्राओंको घटा बढ़ाकर रोशनाईकी चटक बदली जा सकती है। अधिकतर इंडिगो कारमाइन या घुलनशील प्रशियन नीलमें पिक्रिक एसिडकी मात्राएँ मिलाकर हरी रोशनाई बनाते हैं।

(dichromate of potash) क्रोम पोटाशसे हरी रोशनाई बनानेकी एक विधि इस प्रकार भी है—

क्रोम पोटाश	१०
नमकका तेजाब	१०
स्पिरिट	१०
गोंद	१०
पानी	३०

क्रोम पोटाशका महीन चूर्ण नमकके तेजाबके संसर्गमें एक घंटेतक रखो। इस प्रकार लाल घोल मिलेगा, इस घोलमें धीरे-धीरे करते हुए स्पिरिट मिलाओ। प्रक्रिया जोरोंसे होती है, झाग और उबाल उठने लगता है और घोल गरम हो जाता है। इस घोलका रंग धीरे-धीरे हरा पड़ जाता है, (स्पिरिटकी मात्रा थोड़ी-थोड़ी करके सावधानीसे मिलानी चाहिये, यदि घोल बहुत गरम हो जाय तो थोड़ासा ठंढा पानी मिला देना चाहिये।) अब इसमें थोड़ा थोड़ा करके सोडाकार्ब छोड़ो जबतक कि सब अम्ल शिथिल न हो जाय (कर्बन द्विओषिद निकलनेकी बुदबुदाहट बंद न होजाय)। ज्योंही हरा अवक्षेप आना आरंभ हो जाय, सोडा कार्ब मिलाना बन्द कर दो। हरे घोलको कई दिन रख छोड़ो, और फिर छानकर शुद्ध कर लो। अब इसमें गोंद और पानी यथेष्ट मिला दो।

१३. सुनहली और रुपहली सच्ची रोशनाइयाँ

विशेष कलापूर्ण लेखोंके लिये इन स्याहियोंका उपयोग किया जाता है। इस कामके लिये सोने या चाँदीके अति पतले पत्र (वर्क) लिये जाते हैं। एक छोटेसे खरलमें इन पत्रोंको गोंद और पानीके साथ खूब घोंटा जाता है। (सूक्ष्मदर्शक तालद्वारा यह परीक्षा कर ली जाती है कि धातुके कोई कण तो नहीं चमक रहे हैं। जबतक धात्विक चमक प्रकट होती रहे, घोंटते जाना चाहिये)। अब इस स्याहीमें थोड़ासा यथोचित पानी मिलाया जा सकता है, पर घोल गाढ़ा ही रहना चाहिये नहीं तो धातु शीघ्र ही नीचे बैठ जायगी। सोनेकी स्याहीके लिये तो यह अच्छा है कि पानीके स्थानमें पिक्रिक एसिडका घोल मिलाया जाय। इस स्याहीमें अब लिखा जा सकता है, और लिखे हुए अक्षरोंमें सोने और चाँदीकी चमक होगी।

तांबे या कांसेके पत्र लेकर भी इसी प्रकार स्याहियाँ बनायी जा सकती हैं। पर ये स्याहियाँ वायुमंडलमें शीघ्र ही दूषित हो जाती हैं, या तो रंग फीका पड़ जाता है या नम वायुके संसर्गसे ये हरी पड़ जाती हैं।

विज्ञानकी करामात

[पं० रघुबर दयालु मिश्रद्वारा संकलित]

१–सूक्ष्म मानदण्ड क्रेस्कोग्राफ

प्रकाशवर्ष

अरबों कोसकी दूरी मापनेके लिये वैज्ञानिक प्रकाशवर्षसे काम लेते हैं। बड़ी-बड़ी संख्याओंको प्रकाशवर्ष घटाकर बहुत छोटी बना देता है। पर ऐसे मानदण्डसे सब जगह काम नहीं चलता। प्रकाशवर्ष तो बहुत बड़ी चीज है; हमारे गज, फुट, इंच, भी छोटी लम्बाइयोंके मापनेमें बेकार हो जाते हैं। पुराने जमानेमें भी इस कठिनाईका अनुभव हुआ था।

त्रसरेणु

उस समय छोटे परमाणुओंके लिये त्रसरेणुसे काम लेते थे। सूर्यकी किरणके प्रकाशमें धूलके जो कण उड़ते देख पड़ते हैं, उनको त्रसरेणु कहते हैं। यह नाम कुछ संतोषजनक नहीं है। इसमें सबसे बड़ा दोष यह है कि इस बातका कोई भी प्रमाण नहीं है कि सभी त्रसरेणु एक ही मापके होते हैं। दूसरे यह भी बहुत बड़ा है। इससे छोटा मिलीमीटर होता है। लगभग ढाई मिलीमीटरका एक इञ्च होता है; पर वैज्ञानिकोंको एक मिलीमीटरके लाखवें भागसे छोटी लम्बाइयोंको मापना पड़ता है। यह लम्बाइयाँ स्केल या गज या इञ्च रखकर सामान्य रीतिसे तो मापी नहीं जा सकतीं; इनके लिये बड़ी बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रियाओंसे काम लेना पड़ता है।

क्रेस्कोग्राफ

श्रीजगदीशचन्द्र बोसने इस प्रकारका बहुत ही सूक्ष्म यंत्र बनाया है। इसका नाम क्रेस्कोग्राफ है। यह हाथसे बना है और देशी कारीगरोंद्वारा ही बना है। जिस प्रकार ज्योतिषमें अरबों कोसों दूरियाँ होती हैं, उसी प्रकार

(२) वैज्ञानिक चुटकुले

(१) सेफ्टीरेजरके रद्दी ब्लेड

शीशेका एक गिलास लें। इसकी भीतरी सतह साफ और एकसा (हमवार) होनी चाहिये। रद्दी हो गये ब्लेडको इसकी भीतरी सतहपर रखकर गिलासको बायें हाथसे पकड़ लें और दायें हाथकी (तर्जनी) पहली उँगलीसे ब्लेडको गिलासके साथ दबावसे रगड़ें। तीन-चार मर्तबा एक तरफको रगड़कर ब्लेडको उलटकर दूसरी तरफको भी इसी तरहसे रगड़ें। इस तरकीबसे ब्लेड, जिसको फेंक देनेका खयाल कर रहे, थे बिलकुल नया-सा हो जायगा। और आप एक ही ब्लेडसे बरसों काम ले सकते हैं। डाढ़ी बनानेसे पहले दो मिनिट इसको घिस लिया और नया ब्लेड तैयार कर लिया।

—मिलापसे

(२) नकली कपूर

असली कपूर आधी छटाँक और फिटकरी सफेद डेढ़ छटाँक इनमेंसे हरेकको बारीक पीसकर ताँबेके पेचदार डिब्बेमें बन्द करके पकते हुए चावलोंमें रखदें। जब चावल पककर तैयार होकर ठंढे हो जायँ तो डिब्बेको निकालकर इसमेंसे कपूर निकाल लें। यह कपूर बिलकुल असलीकी तरह तैयार होगा।

—रोशनीसे

(३) वाशिंग पौडर

धोबी सोडा छः छटाँक, सोडा आश तीन छटाँक और साबुन एक छटाँक, इन सब चीजोंको बारीक पीसकर पैकटोंमें बंद करके बेचें। जरूरतके समय थोड़ा-सा पौडर निकालकर गरम पानीमें घोलकर इसमें कपड़े भिगो दें और बीस-पचीस मिनिटके बाद निकालकर साफ पानीसे धो डालें। सोडा आश तेज खार है। हाथके चमड़ेको खा जाता है।

—रोशनीसे

भौतिक विज्ञानको इंचके दस लाखवें भागसे भी छोटी दूरियाँ नापनी पड़ती हैं। क्रेस्कोग्राफसे ऐसी ही छोटी दूरियाँ नाप सकते हैं।

२–कैमरेका अद्भुत उपयोग

साधारण कैमरा

कैमरेके द्वारा मनुष्य जातिको कितना लाभ हुआ है यह हमसे छिपा नहीं है। किसी भी पदार्थ अथवा प्राणीकी हूबहू प्रतिलिपि उतार देना केवल इसीकेद्वारा सम्भव हो सका है। पच्छाहीं देशोंमें इसकेद्वारा बड़े-बड़े काम निकाले जाते हैं। बड़े-बड़े नामी अपराधी इसकेद्वारा सहजमें ही पकड़े जा सकते हैं। इसीके कुछ परिवर्द्धित और परिवर्त्तित रूपका फल हम सिनेमामें पाते हैं। कैसे-कैसे आश्चर्यजनक दृश्य यह बड़ी ही आसानीसे दिखला सकता है, इस बातको सिनेमा देखनेवाला हर एक व्यक्ति अच्छी तरह जानता है।

फोटो स्टेट

इधर इसके प्रयोगमें एक और उन्नति की गयी है। कानूनी (अदालती) कागजोंकी हूबहू नकल उतारनेमें इससे सहायता ली जा रही है। इस कैमरेको 'फोटोस्टेट' कहते हैं। यह एक विशेष प्रकारका बना होता है और देखनेमें बड़ा ही अद्भुत और आश्चर्य-जनक जान पड़ता है। 'सोमसेट' भवनमें इनका बड़े रूपमें प्रयोग किया जाता है और बर्मिंघमकी लाइब्रेरीमें भी यह रखा गया है।

प्रयोग कैसे करते हैं ?

किसी कानूनी कागज या अदालती कार्रवाइयोंके लिपिकी नकल लेनेके समय कागजको नीचे रखकर उसके ऊपर कैमरेको इस प्रकार रखते हैं कि उसका 'लेन्स' उस कागजकी ओर रहे। 'सब-मेरीन'के दूरबीनमें जिस प्रकारके शीशे लगे होते हैं, वैसे ही शीशे इसमें भी लगाये जाते हैं और वे उस कागजके लिपिकी छाया एक विशेष प्रकारके तैयार किये हुए कागजपर फेंकते हैं। तुरंत फोटो हो जाती है और तब उसे 'डेवेलप' करनेको भेज दिया जाता है। इतनी क्रियाओंके बाद उसकी 'नेगेटिव' तैयार होती है। इस नेगेटिवमें अक्षर तो सफेद रहते हैं; किन्तु पूरा कागज काला हो जाता है। सच्ची और स्थायी फोटो तैयार करनेके लिये उस नकलको टेबुलपर रखकर फिर उसकी फोटो लेते हैं। यह क्रिया केवल कानूनी कागजोंके लिये ही की जाती है। कला-कौशलके चित्रों और नकशोंके फोटो अधिकतर नेगेटिव रूपमें ही रखे जाते हैं, क्योंकि उनसे काम लेनेमें सहूलियत होती है।

जितना ही अच्छा और ठीक लेन्स होगा, उतनी ही सच्ची और पूरी फोटो आयगी।

३—संसारकी सबसे तेज रोशनी

एक ऐसे प्रकाशका पता लगा है जिसके बारेमें कहा जाता है कि उसमें तीन अरब मोमबत्तियोंकी शक्ति है। यह पृथ्वीसे तीन मीलसे अधिक या आकाशमें सोलह हजार फीट ऊपर प्रकाश फेंकती है। यह भी आशा की जाती है कि बहुत ही शीघ्र यह दूरी बढ़कर पच्चीस हजार फीट हो जायगी।

शत्रुसे रक्षा

शत्रुके वायुयानोंसे बचनेके लिये इससे बड़ा काम लिया जाता है। राशि-राशि प्रकाश पुंजोंको अपनी आँखोंसे उगलते हुए यह मुँह फाड़कर उनके सामने खड़ी रहती है। बड़ी भारी मैजिक लालटेनके समान यह 'सर्चलाइट' आजकल बड़ी ख्याति पा रही है। उसके सामने बड़ी-बड़ी सूराखोंवाली एक झँझरी लगा दी जाती है। इस प्रकार इसका प्रकाश सारे आकाश-मार्गको प्रकाशमय कर देता है और कोई भी वायुयान इस प्रकाशमें पड़कर बच नहीं सकता। उसकी पूरी-पूरी गति-विधि, उँचाई, दिशा सहज ही जान ली जाती है और वह चक्करमें फँस जाता है।

व्यापारमें सहायता

इससे व्यापार आदिमें भी खूब सहायता मिलती है। सामनेसे झंझरी हटाकर उसकी जगह कोई विज्ञापन लगा दिया जाता है। यह बहुत बड़े रूपमें आकाशमें विज्ञापन, प्रकाशद्वारा फेंकती है, जो बहुत बड़ी दूरीसे भी आसानीसे पढ़ा जा सकता है। एक सेकिंडमें प्रकाश त्रानबे हजार कोसतक जाता है। इस अनुपातसे सोलह हजार फीट जानेमें इस प्रकाशको कितनी देर लगती होगी, यह जानकर हँसी-सी आती है। धन्य है विज्ञान !

भोजनवाला नमक

[लेखक—श्री ओमदत्त, गवर्नमेंट कालेज, प्रयाग]

नमकपर पौराणिक रूपक

हात्मा गांधीके दांडीके मार्चने भारतके लिये नमकको एक नया महत्व प्रदान किया है। पृथ्वीपर नमक इस कसरतसे पाया जाता है और इतनी सरलतासे सुलभ है कि उसे देखते-देखते हमारी आँखें पथरा-सी गयी हैं। हम उसके बारेमें सोचनेका कुछ प्रयत्न ही नहीं करते। यदि आज नमक बोल सकता होता तो क्या-क्या आश्चर्यजनक घटनाएँ सुननेको मिलतीं यह सोचना हमारी कल्पनाशक्तिके परे है। हमको बताया जाता है कि एक दिन अगस्त्य मुनि जी किसी कारण समुद्रसे बिगड़ गये, इसलिये उन्होंने समुद्रको आचमन कर लिया जिससे सारा समुद्र सूख गया। तब तो समुद्रके जीव-जन्तु बड़े व्याकुल हुए और सब हाथ जोड़कर मुनि जीके पास आये और अपना दुःख रोया। इनको दया आ गयी। इन्होंने जल फिर विसर्जित कर दिया। इनके इस जलसे समुद्र फिर हरे-भरे होकर लहराने लगे। तभीसे समुद्रका पानी नमकीन या खारी हो गया। वास्तविकतासे यह बात कितनी दूर है* कहनेकी आवश्यकता नहीं। फिर समुद्रमें नमक आया कहाँ से? इसपर हमलोग कुछ विचार करेंगे। इससे यह जाननेकी कोशिश करेंगे कि संसारके भिन्न पहलुओंमें इसका क्या स्थान है और नमक है क्या वस्तु?

पृथ्वीका आरंभिक स्वरूप

यदि भूगर्भवेत्ताओंपर विश्वास किया जा सकता है तो किसी युगमें यह पृथ्वी एक आगका गोला थी। तब पृथ्वीपर पानी नहीं था बल्कि अति घनी भाप (Light pressure steam) इसके चारों ओर मँडराती थी। अत्यधिक दबाव होनेके कारण कभी-कभी यह भाप खौलता हुआ पानी हो जाता, और जब यह पानी आगके गोलेके ऊपर गिरता तो किस जोरका धड़ाका होता होगा इसकी कल्पना मनुष्य जातिके दिमागके बाहर है। यह पानी फिर भाप बन जाता होगा और फिर पानी गिरता होगा। इस तरह गोले बारूदसे कई जोरके धड़ाके रात-दिन हुआ करते होंगे। खैर, किसी तरहसे पृथ्वी ठंढी हुई। पानी उसके ऊपर जमना शुरू हुआ।

नमकका जन्म

पहले-पहल जब पानी पृथ्वीपर इकट्ठा हुआ उसमें नमककी मात्रा लगभग बिलकुल न थी। जैसे-जैसे समय बीतता गया नमक पानीमें धीरे-धीरे बढ़ने लगा। लोग कहते हैं नमक समुद्रमें अब भी बढ़ रहा है। सो कैसे? नमक पृथ्वीपर भिन्न-भिन्न वस्तुओंमें भिन्न-भिन्न मात्राओंमें पाया जाता है। पहाड़ी चट्टान आदिमें भी कुछ मात्रा नमककी होती है। इसलिये जब-जब इनपर पानी पड़ेगा कुछ-न-कुछ नमककी मात्रा अपने साथ जरूर बहा ले जायगा।

बूँदके खेल

अब हम जानते हैं कि पृथ्वीका पानी सूरजकी

---

* अगस्त्य (Canopus कुंभज) नामका दक्षिण खगोलमें एक तारा है। इसका उदय वर्षाऋतुके बीत जानेपर हुआ करता है। रामचरित मानसमें है—

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोखइ संतोषा

पुराणोंकी कथा कि अगस्त्यने समुद्र सोख लिया और फिर बहुत मनानेपर जल छोड़ दिया, इसी प्राकृतिक घटनाका रूपक है। इसी तरह दक्षिण जाकर फिर न लौटना और विंध्य पर्वतका प्रणामार्थ लेट जाना भी प्राकृतिक घटनाओंके रूपक हैं।

इसी प्रकार जलधिके खारे होनेकी एक अतिशयोक्ति रामचरितमानसमें है—

तवप्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी
तव रिपुनारि रुदन जलधारा। भरेउ बहोरि भयेउ तेहि खारा

—रा० गौ०

गर्मीसे भाप बनकर ऊपर उठता है और फिर भाप पानी बनकर पृथ्वीपर बरस जाती है। इस तरह जबसे पानीका पहला बूँद पृथ्वीपर आया तभीसे यह चक्र निरन्तर प्रतिक्षण जारी है। यह चक्र न कभी रुका है और जबतक पृथ्वीमें आखीरी बूँद पानी बाकी रहेगा यह चक्र न रुकेगा। इस दौरेने न जाने कितने पहाड़ोंको मैदानमें बदल दिया, न जाने कितने मैदानोंको घाटियोंमें !

समुद्र और बादलोंका अद्भुत विनिमय

भूगर्भवेत्ताओंने हिसाब लगाया है कि हर कुछ हजार वर्षोंमें जितने समुद्र पृथ्वीपर हैं, सबका तमाम पानी एक दफा भाप बनकर ऊपर उठ जाता है और बादलसे फिर बरसकर वापस आ जाता है। जब हम सोचते हैं कि पृथ्वी लाखों करोड़ों वर्ष पुरानी है तब हमें मालूम होता है कि सैकड़ों दफे नहीं बल्कि हजारों दफे ये सारे समुद्र बादल बनकर बरस चुके होंगे और यह पानी फिर वापस जाकर बड़े-बड़े समुद्रोंको भर चुका होगा।

नमकवृद्धिमें पानीके काम

पाठकोंको ध्यान रखना चाहिये कि हर दफे जब पानी बरसता होगा कुछ-न-कुछ नमक ले जाकर समुद्रमें अवश्य जमा करता होगा। इस तरह यह नमक न जाने कितने पहाड़ी देशोंका सत्यानाश करके बना होगा। पृथ्वीके जन्मकालसे अबतक न जाने कितने देश बह गये होंगे, न जाने कितने पहाड़ नेस्तनाबूद हो गये होंगे।

पानीकी शक्ति

कुछ लोगोंको खयाल हो सकता है कि पत्थर तो पानीमें घुलता ही नहीं है तथा पानीका पत्थरपर तो कुछ असर होता ही नहीं है सो बात नहीं है। दुनियाके परदेपर कोई ऐसी चीज नहीं है जो पानीमें घुलती न हो, यह बात दूसरी है कि वह इतनी कम घुलती हो कि नहींके बराबर हो।

समुद्र नमकीन कैसे हुआ ?

प्रत्येक बार जब पानी किसी चट्टानके ऊपर गिरता है तो कुछ-न-कुछ उसका भाग अवश्य ही बहा ले जाता है, वह मात्रा चाहे कितनी ही कम क्यों न हो। इस तरह पानी और भापके निरंतर चक्रने इतना नमक समुद्रमें लाकर इकट्ठा कर दिया। और आजकल समुद्र नमकीन है।

नमकसे पृथ्वीकी आयुका अनुमान

क्या आप लोगोंने कभी इस बातको सोचा है कि नमकसे इस पृथ्वीकी उम्रका अन्दाजा लगाया जा सकता है? प्रो० जोलीने सामुद्रिक नमकसे पृथ्वीकी उम्रका अन्दाज बड़े ही सरल तरीकेसे किया है। वह मानते हैं कि सबसे पहले जब पानी पृथ्वीपर आया लगभग बेनमक था। अब धीरे-धीरे हर साल थोड़ा-थोड़ा नमक नदी-नालोंद्वारा समुद्रमें जाने लगा। अगर यह मान लिया जाय कि प्रत्येक वर्ष समुद्रमें नमक जानेकी गति (rate) एक ही है अर्थात् हर साल 'क' मन ही नमक समुद्रमें जाता है तो आजकल समुद्रमें कुल कितना नमक है जाननेसे पृथ्वीकी उम्रका पता चल जायगा। यदि आजकल समुद्रमें 'ख' मन नमक है तो पृथ्वीकी उम्र $\frac{ख}{क}$ साल हुई। हर साल समुद्रमें कितना नमक जाता है यह भिन्न-भिन्न नदी-नालोंके पानीकी जाँच करके पता लगाया गया है। आजकल कितना नमक समुद्रमें है सो भी मालूम किया गया है जिसको कि हम आगे चलकर बतलायेंगे। इस रीतिसे हिसाब लगानेसे पृथ्वीकी उम्र १००, ०००, ००० और २००, ०००, ००० वर्षोंके बीचमें आती है। सम्भव है कुछ लोग सोचें कि इतने दिनोंसे नमक समुद्रमें आ रहा है और अब समुद्रका पानी नमकसे बिलकुल संपृक्त हो गया होगा। लेकिन यह बात नहीं है। नमक बहुत ही धीरे-धीरे समुद्रमें जाता है।

समुद्रमें जानेवाले नमकका अनुपात

आजकल १०० हिस्से पानीमें केवल २.७ हिस्सा नमक है। यदि पानी नमकसे संपृक्त होता तो १०० हिस्से पानीमें ३० से ४० भागतक नमक होता। तो भी कुछ समुद्रोंमें नमककी मात्रा बहुत अधिक है जैसे 'डेडसी'में।

सागर मृतक क्यों ?

इसके पानीमें २४.५% नमक है। नमककी इतनी अधिक मात्रा होनेकी वजहसे इसमें कोई जीव-जन्तु

नहीं रह सकता। इसीलिये इसे मुर्दा सागर कहते हैं। इसी तरह अमेरिकामें भी दो एक ऐसी झीले हैं जिनमें नमककी मात्रा बहुत अधिक है।

हमारी सभ्यताके विकासमें नमकका स्थान

अब हमें देखना चाहिये कि हमारी सभ्यताके विकासमें नमकका क्या स्थान है। हम लोग जानते हैं कि सबसे आदिकालकी मनुष्य-जाति बिलकुल जंगली अवस्थामें रहती थी। लोग कन्द, मूल, फल, मांस, मछलियाँ आदि जहाँ जैसे पाते थे वैसे ही खाकर गुजर-बसर कर लेते थे। वे अपना भोजन पकाते नहीं थे। जो खाद्य पदार्थ उबाले नहीं जाते उनमें साधारणतः नमककी आवश्यकता नहीं होती।

पदार्थोंमें नमककी मात्रा

फलादिमें प्राकृतिक रूपसे ही कुछ-न-कुछ नमक होता है। मांस आदिमें तो नमककी मात्रा बहुत काफी होती है। जले हुए मांसकी राखमें लगभग ४६% नमक पाया जाता है। (भोजन) खानेके साथ नमकका इस्तेमाल, सभ्यताके इतिहासका एक नया पन्ना उलटता है। सम्भवतः जब-तक कि सभ्यताका वह काल नहीं आ गया जब कि मिट्टीके बर्तन बनाये जाने लगे थे, नमकका खानेकी चीजोंके साथ इस्तेमाल नहीं हुआ। नमकके इस्तेमालके पहले शायद कुछ अनाजादि बोनेका भी ज्ञान हो गया होगा। क्योंकि अनाज और शाक-भाजीको पकानेके अलावा और भी जिस चीजकी जरूरत होती है वह नमक है। उनको नमक चाहिये।

पशु नमकके भक्त क्यों ?

प्राकृतिक रूपसे ही हरे खाद्य पदार्थोंमें नमक बहुत कम होता है। इसीलिये जानवरोंको हमेशा नमककी जरूरत बनी रहती है क्योंकि वे अधिकतर घास-पात ही खाते हैं।

साग-भाजीमें नमक डालना

शाक-पात बिना उबाले मनुष्य नहीं खा सकता, और जब कोई चीज उबाली जाती है तो पानीके साथ उसका नमक निकल जाता है। इसलिये शाक-पातमें नमक उबालनेके बाद बहुत ही न्यून रह जाता है। इसी तरह मांसके उबालनेसे उसका ७०% नमक कम हो जाता है। तो जब मनुष्यने चीजें उबालना शुरू किया होगा तो उन्हें नमककी अवश्य ही आवश्यकता पड़ी होगी। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वे नमकसे पहलेसे ही परिचित न होंगे।

नमकके चलनका अनुमान

प्रत्येक मनुष्यको हर साल लगभग १५ सेर नमककी जरूरत होती है। सम्भव है कि ये लोग कन्द-मूल खानेके बाद जानवरोंकी तरह नमक या नमकीन मिट्टी चाट लिया करते हों और यह भी बहुत मुमकिन है कि नमकका चाटना मनुष्यने जानवरोंसे ही सीखा हो। या जो लोग समुद्रके किनारे रहते होंगे वे लोग खानेकी चीजोंको समुद्रके पानीमें डुबोकर खाते हों। खानेके साथ नमकका इस्तेमाल करनेके बाद लोगोंने इसका कीटाणुनाशक गुण पहचाना होगा। जब इन लोगोंने नमककी झीलों या समुद्रके नमकके दलदलोंमें मुर्दा जानवरोंको बिना सड़ा पाया होगा तब इन्हें यह जरूर सूझा होगा कि नमकमें रखनेसे चीजें सड़ती नहीं हैं। इसलिये खानेकी ऐसी चीजोंका, जिनका कि सड़नेका डर होता होगा, ये लोग नमकके दलदलोंमें गाड़ रखते होंगे। नमकके इन गुणोंके कारण नमकका व्यापार अवश्य ही शुरू हो गया होगा। अर्थात् नमक ऐसी जगह पहुँचाया जाता होगा जहाँ न होता हो और उसके बदले वह चीज लायी जाती हो जो कि इन लोगोंके पास न हो। इस तरह हम देखते हैं कि नमकने सभ्यताके विकासमें कई तरहसे मदद पहुँचायी है।

साहित्यमें नमक

शायद इतने पहलेसे इस्तेमाल होनेकी वजहसे ही हर एक देशके साहित्यमें भी नमकका खासा स्थान हो गया है, क्योंकि साहित्यका श्रीगणेश तो तभी हुआ होगा जब कि जंगली जातियाँ कुछ-कुछ सभ्य हो चली होंगी। 'किसीका नमक खाना, नमकहराम या हलाल, कटेपर नमक छिड़कना, नमक अदा करना' आदि ऐसे वाक्य हैं जिनको कि सभी लोग जानते हैं। परन्तु यह कुछ अचंभेकी बात है कि नमक जैसी आवश्यक और उपयोगी वस्तुके नामको

हिन्दू लोग अपशकुनसूचक मानते हैं। यदि कोई कहीं जानेवाला हो और उस समय नमकका नाम ले दिया जाय तो यह समझा जाता है कि यात्रा असफल होगी। ऐसे-ही-ऐसे कितने ही रीति-रिवाज प्रचलित हैं।

सैन्धकम् और हरिन्

अब हमें नमकका अध्ययन कुछ रासायनिक दृष्टिकोणसे भी करना चाहिये। इसके पहले कि हम लोगोंको यह मालूम हो कि नमक क्या-क्या मिलकर बना है हमें दो चीजोंसे परिचय करना होगा (१) सैन्धकम् और (२) हरिन्।

सैन्धकम् या सोडियम्

सैंधकम् या सोडियम् चाँदी-सी सफेद एक धातु है। यह बहुत ही मुलायम होता है। एक मामूली चाकूसे साबुनकी तरह काटा जा सकता है। इसको पेट्रोल या मिट्टी-के तेल वगैरहमें डुबोकर रखते हैं क्योंकि यदि भीनी हवामें रख दिया जाय तो जल उठनेकी सम्भावना है।

पानीमें आग जलाना

यदि सोडियम्के कुछ टुकड़े पानीमें छोड़ दिये जायँ तो अपने आप जल उठेंगे और हमें पानीके अन्दर लपटें उठती हुई दिखाई देंगी। सैन्धकम्को कभी हाथसे नहीं छूते कि कहीं जल न जाय। इसके जलनेका घाव बहुत खतरनाक होता है। हमारे ऋषि-मुनि तो यज्ञशालामें ही बिना आगके मंत्रकेद्वारा आग उत्पन्न कर लिया करते थे लेकिन यहाँ हम देखते हैं कि पानीके अन्दर भी बिना आग लगाये आग लग जाती है।

हरिन्

ऐसी ही बात हम हरिन्के बारेमें भी देखेंगे। यद्यपि हरिन्से पानीके अन्दर आग नहीं लगती तो भी बिना जलाये तो आग लग ही जाती है।

सूँघनेसे मौत

हरिन् पीले रंगकी एक जहरीली गैस होती है इसके सूँघनेसे दम घुटने लगती है और बुरी तरहकी खांसी-सी आने लगती है। यदि काफी मात्रामें खालिस हरिन् सूंघ ली जाय तो सूंघनेवाला मर जायगा। लोग कहते हैं कि जर्मनी-ने १९१४ के महायुद्धमें अपने दुश्मनोंके डेरोंमें यह गैस छोड़ी थी जिससे सिपाहियोंको बड़ी तकलीफ हुई और बहुतसे सैनिक मर गये।

हरिन्के चमत्कार

हरिन् एक जहरीली गैस होते हुए भी बड़े फायदेकी चीज है। यदि यह गैस किसी कमरेमें बहुत ही थोड़ी मात्रा-में छोड़ दी जाय तो उस कमरेकी वायु शुद्ध हो जाती है और कमरेमें एक तरहकी सुगंधि आने लगती है। रंग विनाशक (bleaching) गुण होनेके कारण यह गैस और भी फायदेकी है। यदि कोई रंगीन कपड़ा या रंगीन फूल इस गैसमें छोड़ दिया जाय तो रंग तुरत गायब हो जायगा और कपड़ा या फूल जो कुछ हो सफेद हो जायगा। लिखने-वाली स्याहीके दाग या धब्बे भी इससे दूर किये जा सकते हैं लेकिन छापेवाली स्याहीपर इसका कोई असर नहीं होता। इसलिये यदि किसी किताबमें लिखनेवाली स्याहीका धब्बा पड़ गया हो तो वह बिना किताबके अक्षरोंको नुक-सान पहुँचाये दूर किया जा सकता है। रंगविनाशक चूर्ण इस गैसको चूनाके साथ मिलाकर तैयार किया जाता है जिसको धोबी लोग इस्तेमाल करते हैं।

जादूके खेल

हरिन् या क्लोरीनसे कुछ चमत्कार भी दिखाये जा सकते हैं। एक काँचके बर्तनमें इस गैसको भर लीजिये फिर एक सोख्तेको गरम-गरम तारपीनके तेलमें डुबोकर इस गैस-के बर्तनमें छोड़ दीजिये तुरंत ही काले-काले धुएँदार लपट निकल पड़ेंगे। इसी तरह हरिन्के बर्तनमें थोड़ी-सी पिसी हुई संखिया छोड़ देनेसे जहरीले धुएँदार लपट अपने आप ही निकल उठेंगे।

नमकका तेजाब

यदि हरिन्के साथ उदजन गैस मिला दी जाय और तेज रोशनीके सामने रख दी जाय तो बड़े जोरका धड़ाका होगा और एक नई गैस तैयार होगी जिसे नमकका तेजाब कहते हैं।

गैससे नमक

यदि सैन्धकम्को एक कांचकी नलीमें रखकर खूब गरम

किया जाय और उस नलीके अन्दर हरिन् गैस प्रवाहित कर दी जाय तो हमें एक तीसरी चीज मिलेगी। इसे नमक कहते हैं। ताज्जुबकी बात है कि सैन्धकम् और हरिन् जैसी दो घातक चीजें मिलकर एक ऐसी चीज बन जाती है जो इतनी लाभदायक तथा सर्वप्रिय है।

नमकमें सैन्धकम् और हरिन्का अनुपात

नमकके १०० हिस्सोंमें ६०·४ हिस्सा हरिन् और ३९·६ हिस्सा सैन्धकम् होता है। रासायनिक भाषामें इसे सैन्धकहरिद (Sodium Chloride) कहते हैं।

भोजनवाले नमककी जातियाँ

नमक जो हमलोग इस्तेमाल करते हैं कई तरहसे पाया जाता है। कुछ नमक तो नमककी खदानों तथा पहाड़ोंसे आता है। जहाँ झीलें हैं वहाँ झीलोंसे और कुछ नमक समुद्रके पानीसे तैयार किया जाता है।

शुद्ध नमककी पहचान

मामूली नमक जो हम लोग बाजारमें देखते हैं बरसातके दिनोंमें पसीज उठता है। कुछ नमक तो ऐसा होता है कि पसीजनेके बाद नमकके ऊपर ओस जैसी बूँदें बन जाती हैं फिर नमक घुल-घुलकर पानी होने लगता है। इससे शायद कुछ लोग यह समझते हों कि नमकमें (moist) भीनी हवामें पसीजनेका गुण होता है। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। (Pure sodium Chloride) खालिस नमकमें पसीजनेका गुण बिलकुल नहीं होता। पसीजनेका कारण यह है कि नमकमें 'मैगनीशियम् कोराइड' (मगनीस हरिद) थोड़ा-न-थोड़ा हमेशा मिला रहता है और यह पदार्थ पसीजनेवाली चीजोंमें सबसे जियादा तेज है। जो नमक बहुत जियादा पसीजता है तो यह समझ लेना चाहिये कि इसमें मगनीसहरिद अधिक है और नमक ठीक तरहसे तैयार नहीं किया गया। इस पदार्थके होनेकी वजहसे नमकमें खारापन भी बढ़ जाता है।

शुद्ध नमक तैयार कर लेना

अगर हम चाहें तो बाजारू नमकसे बिलकुल शुद्ध नमक भी तैयार कर सकते हैं। नमकका गाढ़ा घोल बना लीजिये और उसमें नमकके तेजाबकी गैसको पास करनेसे शुद्ध नमक नीचे जम जायगा जो छान करके निकाला जा सकता है।

नमकके तेजाबकी गैस बनाना

नमकके तेजाबकी गैस (Hydrochloric acid gas) तैयार करनेके लिये एक कांचके बर्तनमें नमक और गंधकका तेजाब रखना चाहिये। इन दोनोंके सम्पर्कसे वाञ्छित गैस अपने आप निकलने लगेगी।

व्यापारिक उपयोग

नमक खानेमें तो इस्तेमाल होता ही है परन्तु हम देखेंगे कि और भी किन-किन बातोंमें इसका इस्तेमाल होता है। इसके लिये हमें अपने यहांकी देहातोंसे चलना चाहिये।

आँवामें नमक क्यों डाला जाता है ?

कुम्हार जब मिट्टीके बर्तनोंको पक्का करनेके लिये आँवा लगाते हैं तो उस समय उसमें थोड़ा नमक भी छोड़ देते हैं। आँवामें आग तो तेज रहती ही है यह नमक जमीनकी बालूके साथ एक नयी चीज बन जाता है जिसे सैन्धक शैलेत (Sodium silicate) कहते हैं। आगकी तेजीकी वजहसे यह भाप बनकर सारे आँवामें फैल जाता है और जब आँवा ठंढा होने लगता है तो यह बर्तनोंके ऊपर जम जाता है जिससे बर्तन चमकदार (Glazed) हो जाते हैं।

घुलनेवाला शीशा और उसका उपयोग

सोडियम् सिलिकेट कांचका एक मुख्य भाग है। इसे घुलनेवाला शीशा भी कहते हैं (Soluble glass)। यह चीज शीशेके टूटे हुए बर्तनोंके जोड़नेमें भी काम आती है।

सड़कोंपर नमक छिड़कना

ठंढे देशोंमें नमक सड़कोंसे बरफ पिघलानेके काममें भी आता है। सड़कोंपर नमक छिड़कनेसे वहांका बरफ पिघलने लगता है।

क्षार-व्यवसायमें नमकका प्राधान्य

कपड़ा धोनेवाला सोडा

नमकका सबसे जियादा इस्तेमाल,(Alkali Industry) क्षार-व्यवसायमें होता है। (Leblanc process) लीब्लांग विधिद्वारा नमकसे कपड़ा धोनेवाला सोडा (Sodium carbonate) तैयार किया जाता है। फिर इस सोडाके घोल और चूनेके पानीके साथ दाहक सोडा (caustic soda) तैयार किया जाता है जिससे कि तमाम साबुन बनता है।

साबुन बनानेमें नमक

चर्बियां (या तेल) दाहक सोडाके साथ उबाली जाती हैं। एक खास अवस्थामें पहुँचनेपर उसमें थोड़ा-थोड़ा नमक छोड़ा जाता है ('Salting Out') जिससे साबुन ऊपर आ जाता है। इसे अलग करके सुगंधि वगैरह मिलाकर बट्टियोंके रूपमें बना देते हैं।

खानेवाला सोडा

(Ammonia-soda process) अमोनिया-सोडा-विधि से खानेवाला सोडा तैयार किया जाता है (Sodium Bicarbonate or soda bicarb.) जो कि दवाइयोंमें बहुत इस्तेमाल होता है। गांधीजी इसी सोडाको खाते हैं। अधिक खा लेनेसे जब पेटमें बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं तो इसके खानेसे बहुत लाभ होता है। आज कल लीब्लांग-विधि अधिक काममें नहीं लायी जाती बल्कि अमोनिया-सोडाविधिसे ही दोनों तरहके सोडा तैयार किये जाते हैं।

नमकके पानीमें बिजलीका उपयोग

आजकल बिजली सस्ती होनेकी वजहसे (Castner-Kellner cell) 'कास्टनर-केलनरसेलका इस्तेमाल खासकर निआगरा प्रपातोंमें बहुत होता है। नमकके पानीमें बिजली प्रवाहित करते हैं जिससे हमें (दाहक सोडा) Caustic Soda, (हरिन्) Chlorine और उदजन मिलते हैं (तीसरी चीज अर्थात् उदजन पानीसे निकलता है)। जैसा कहा जा चुका है दाहक सोडाको साबुन बनानेमें इस्तेमाल करते हैं और जो हरिन् मिलता है उसे चूनाके साथ रंगविनाशक चूर्णके बनानेमें इस्तेमाल करते हैं। उदजन भी बहुतसे कामोंमें इस्तेमाल होता है। जैसे, ओपोदजन ज्वाला (Oxy-hydrogen flame या lime-light) वगैरह पहले जेपलिनमें भरनेके लिये इस्तेमाल होता था।

नमक और कोयलेकी डांड़ा-मेड़ी

आजकलकी सभ्यतामें कोयलेकी तरह नमकका भी खासा इस्तेमाल है। कोयलेके लिये तो लोग सोचने लगे हैं कि वह दिन दूर नहीं है जब कोयला चुक जायगा और उसकी जगह दूसरी चीजें इस्तेमाल करनेकी बातें सोचने लगे हैं। क्या नमकका भी यही हाल है? कदापि नहीं। नमक पृथ्वीपर इतनी मात्रामें है कि जिसे सोचकर हम लोगोंके होश हवास फाख्ता हो जाते हैं। यदि अटलांटिक तथा शान्त महासागरोंकी औसत गहराई २¾ मील ली जाय तो (Surface) धरातलके प्रत्येक वर्गमीलके नीचे पानीमें ३१३,०००,००० टन नमक होता है। पृथ्वीका वह हिस्सा जो समुद्रसे ढका है वह लगभग १४५,०००,००० वर्गमील है तो सामुद्रिक नमक ४५, ४००,०००,०००,०००,००० टन होता है। फिर कुछ समुद्रों (जैसे मुर्दा-सागर) में नमककी मात्रा बहुत है इससे ऊपरकी तादादसे नमक कुछ और बढ़ गया। इसके अलावा अभी खुश्कीके नमकके पहाड़ और खानें बाकी हैं। वैसे तो पृथ्वीपर बहुतसी खानें तथा पहाड़ हैं पर उनमेंसे स्टेस्फर्ट (Stassfurt deposit) कार्डोना [Cardona in Spain)] और वीलिक्जिका (Wieliczka in Poland) विशेष वर्णनीय हैं।

विश्वकी सबसे बड़ी नमक की खदानें

(Stassfurt deposits) स्टेस्फर्टमें नमकके सिवाय और भी तरह-तरहके खनिज पदार्थ मिलते हैं। तमाम युरोपकी आंखें इसपर रहती हैं। जर्मनीके महायुद्धका यह खदान भी एक कारण थी। वीलिक्जिका (Wieliczka) दुनियामें सबसे बड़ी नमककी खान है यह ५०० मील लम्बी २०० मील चौड़ी और १२०० फीट मोटी है। कहीं-कहींपर ४६०० फीटतक मोटी है। इस खानके अन्दर बड़े ही सुन्दर मेहराबदार कमरे, जीने वगैरह बने हुए हैं। इसमें कहीं-कहींपर तालाब वगैरह भी हैं। जिनमें नावें आदि तैरा करती हैं।

भावी नमकागार

आजकल एक और बड़ा भारी नमकागार तैयार हो रहा है। कैस्पियन सागरके पूर्वी किनारेपर कारा बोग्राज खाड़ी (Kara Bograz gulf) है जिसमें कैस्पियन सागरसे एक ३ से ५ फीट गहरे और १५० गज चौड़े रास्तेसे पानी जाता है। इस पानीमें १% नमक होता है और १२८०००,००० टन नमक हर साल इसमें इकट्ठा होता है। इस तरह तमाम नमक इसकी तरीमें जमा हो गया है।

समुद्रमें हलचल क्यों होता है ?

ज्वार-भाटाका मुख्य हेतु

[लेखक—श्री भगवानदास तोषनीवाल, प्रयाग विश्वविद्यालय]

समुद्र-जलके उतार-चढ़ावके विभिन्न कारण

समुद्र-तटपर रहनेवाले मनुष्य समुद्रके जलके उतार-चढ़ावसे भलीभाँति परिचित हैं। इस प्राकृतिक दृश्यके कई कारण हो सकते हैं। पहले तो यह उतार-चढ़ाव वायुके रुखके हेर-फेरसे सम्बन्ध रख सकता है। दूसरे यह वायुके दबावसे भी पैदा हो सकता है, क्योंकि यह मालूम किया गया है कि वायु-मंडलके सबसे अधिक और सबसे न्यून दबावमें करीब पारेकी ५ सेंटीमीटर लम्बी उँचाईके दबावके बराबर अन्तर होता है जो जलके ६८ सेंटीमीटर दबावके बराबर है। इसलिये समुद्रके जलकी सतह सबसे अधिक वायुमंडलके दबावके वक्त उस जलकी सतहसे जो सबसे कम वायु-मंडलके दबावके वक्त होती है ६८ सेंटीमीटर नीचे होनी चाहिये। लेकिन हम समुद्रकी सतह पृथ्वीकी सतहसे नापते हैं और इसलिये यह कमी ५७ सेंटीमीटर ही पायी जाती है क्योंकि पृथ्वीकी सतह भी करीब ९ सेंटीमीटर दब जाती है। तीसरे यह उतार-चढ़ाव प्राकृतिक ऋतुओंसे भी सम्बन्ध रख सकता है क्योंकि ग्रीष्मऋतुमें बर्फ पिघलता है और शीतकालमें पानी जम जाता है। यह रचना सूर्य और चन्द्रमाकी आकर्षण-शक्तिसे भी प्रभावित हो सकती है।

हम ज्वारभाटाके शब्दका प्रयोग केवल समुद्रके पानीके उसी उतार-चढ़ावके लिये करेंगे जो सूर्य और चन्द्रमाकी वजहसे पैदा होता है।

ज्वार और भाटाकी परिभाषा

यह देखा गया है कि समुद्रके ढालू तटपर पानी करीब छः घंटेतक लगातार बढ़ता रहता है। और फिर करीब उतने ही कालतक घटता रहता है। उस कालको जब कि सामुद्रिक जल बढ़ता है ज्वार (High Tide) और उस कालको जब कि वह घटता है भाटा (Low tide) कहते हैं। उस खास वक्तको जब कि पानी सबसे अधिक बढ़ा हुआ होता है **अधिकतम ज्वार** (High Water) और जब कि सबसे अधिक घटा हुआ होता है **अधिकतम भाटा** (Low Water) कहते हैं।

बृहद् ज्वार और लघु ज्वार

प्रतिदिन उँचाई और अधिकतम ज्वार (High Water) अथवा (Low Water) अधिकतम भाटाका समय एक ही नहीं होता है क्योंकि औसतसे दो ज्वारों (High Waters) अथवा (Low Waters) भाटोंमें बारह घंटे और पचीस मिनटका अन्तर पाया गया है, और ज्वारोंकी उँचाई चन्द्रमाकी (Phase) कलाके साथ-साथ बदलती रहती है। जब कि चन्द्रमा पूर्ण, (पूर्णमासी) या नवीन (अमावस्या) होता है यह उँचाई अत्यधिक पायी जाती है और अष्टमीके रोज यह उँचाई लघुत्तम पायी जाती है। प्रथम प्रकारके ज्वारको बृहद् ज्वार (Spring Tides) और द्वितीय प्रकारके ज्वारको लघु ज्वार (Neap Tides) कहते हैं।

ज्वारकी उँचाईमें न्यूनाधिकताके कुछ कारण

ज्वार की उँचाई सब जगह एकसी नहीं होती। यह उँचाई समुद्रकी स्थिति और (Latitude) अक्षांशपर निर्भर होती है। खुले महासागरोंमें ज्वार प्रायः ऊँचा उठता है। भूमध्य सागरसे घिरे हुए समुद्रोंमें ज्वार बहुत ही कम उठता है। लेकिन कुछ कम घिरे हुए और उथले समुद्रोंमें ज्वार बहुत ऊँचा आता है।

ज्वार-भाटोंके संबंधमें विविध सिद्धान्त

इन ज्वारभाटोंको समझानेके लिये अति प्राचीनकालसे बहुतसे सिद्धान्त प्रचलित हैं। यह सिद्धान्त भिन्न-भिन्न

देशोंमें भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं और उनमेंसे कुछ तो मनोरञ्जनसे भी परिपूर्ण हैं।

मनोरंजक चीनी सिद्धान्त

चीनी सिद्धान्तके अनुसार सामुद्रिक जल पृथ्वीका रक्त है और ज्वार-भाटा पृथ्वीकी नाडियोंकी धड़कन है और जब पृथ्वी साँस लेती है तो ज्वार-भाटे पैदा होते हैं। (Ko Haung 4th Centuary A. D.) कोहांग नामी एक चीनी व्यक्तिका मत है कि आकाश क्रमसे पूर्व और पश्चिमको आता-जाता रहता है जिससे बृहद् और लघु ज्वार बनते रहते हैं।

अरबी सिद्धान्त

अरबी सिद्धान्त जो जकरिया इब्न महमूद उल गजनवीकी लिखित पुस्तक "Wonder of Creation" में पाया जाता है, यह है कि जब सूर्यकी गर्मी पानीपर गिरती है तो पानी हलका होकर (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और उर्ध्व) पांचों दिशाओंमें बढ़नेका प्रयत्न करता है और उसी समय समुद्रपर कई प्रकारके पवन भी चलने लगते हैं। और यह भी माना गया है कि चन्द्रमाके उदय होनेपर उसका प्रकाश पानीके भीतर प्रवेश करता है और जलके नीचे जो पहाड़ी चट्टाने हैं उनसे यह प्रकाशकी रेखायें प्रतिबिम्बित होती हैं जिसके फल-स्वरूप पानी गरम होकर फैलने लगता है और जब चन्द्रमा छिप जाता है तो पानी फिर अपनी जगहपर लौटनेकी कोशिश करता है।

खुदाके पैगम्बरका मजेदार मत

खुदाके पैगम्बरने यह बात एक मनोरंजक तरीकेपर इस प्रकारसे कही है "जब समुद्रपर तैनात किया हुआ फरिश्ता समुद्रमें अपना पैर रखता है तो ज्वार पैदा होता है और जब वह अपना पैर हटा लेता है तो भाटा होता है।"

आइसलैंडका सिद्धान्त

(Iceland) आइसलैण्डके सिद्धान्तके अनुसार अमावस्याके रोज चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वीके मध्यमें आ जाता है और जलको सूखनेसे बचाता है और उसके साथ-साथ अपनी ओस (Moisture) भी समुद्रपर गिरा देता है जिससे बृहद् ज्वार पैदा होते हैं। और जब चन्द्रमा सूर्यसे हट जाता है तो सूर्यकी गर्मी जलपर गिरती है जिससे पानीकी चालकता (Fluidity) कम हो जाती है और ज्वार घट जाते हैं। लेकिन जब चन्द्रमा सूर्यके दूसरी तरफ होता है तो सूर्यकी तमाम उष्णता पानीको गर्म करती है जिससे पानी खौलने लगता है और ज्वार और भी ज्यादा वेगसे होते हैं।

लेकिन यह दोनों बातें एक दूसरेके सर्वथा प्रतिकूल हैं और प्रत्येक समझदार आदमी उनको माननेसे इनकार करेगा।

भारत और यूनानके मत

भारतवर्षमें कोई ऐसा सिद्धान्त प्रचलित नहीं है क्योंकि इस प्रदेशमें सभ्यता (Civilisation) अधिकतर समुद्रसे दूरीके हिस्सोंमें उन्नत हुई और इसलिये हम रोमवासियों और यूनानियोंमें भी कोई खास मत नहीं पाते हैं क्योंकि यह प्रदेश भूमध्य सागरके तटपर बसे हैं जहां कि ज्वार-भाटेका वेग बहुत ही कम होता है।

पोसीं डोनियसकी मान्य पहली खोज

लेकिन फिर भी पोसीं डोनियस (Posidonius) प्रथम पुरुष था जिसने कि इस प्रश्नपर अच्छी तरहसे विचार किया। उसने कहा कि ज्वार-भाटे चन्द्रमाकी आकर्षण-शक्तिसे पैदा होते हैं लेकिन वह गणित विद्याका व्यवहार न कर सका।

विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके निर्माता

इन (Classical Theories) प्राचीन सिद्धान्तोंके कई सदियोंके पश्चात् इसपर वैज्ञानिक ढंगसे विचार होने लगे। केपलर (Kepler) नामी वैज्ञानिकने सर्व प्रथम यह माना कि जल सूर्य और चन्द्रमाकी तरफ बढ़नेकी कोशिश करता है। (Galileo) गैलीलियोका मत भिन्न था। उसका कहना था कि ज्वार-भाटा पृथ्वीके (Rotation) घूमनेसे पैदा होता है। सन् १८३७ ई० में (Newton) न्यूटनने गणित विद्याके आधारपर इनको समझानेका प्रयत्न किया। इसके पश्चात् इस मार्गपर काम करनेवाले वैज्ञानिकोंमेंसे लैपलैस (Laplace), सर जॉन लबैक (Sir John

Lubbock) ह्वैवल (Whewell), ऐरी (Airy) और लार्ड केलविन (Lord Kelvin) प्रमुख हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त

अब हम ज्वार-भाटेके आधुनिक सिद्धान्तका वर्णन संक्षिप्त रूपमें करते हैं।

ज्वारोत्पादक शक्तियां

(The tide-generating forces) पृथ्वी और चन्द्रमा प्रतिवर्ष सूर्यके चारों तरफका चक्कर पूरा करते हैं
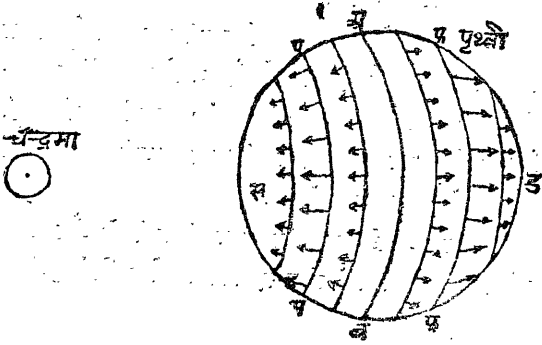
चित्र नं० १

लेकिन पृथ्वी और चन्द्रमाके बीच जो शक्तियां हैं उनपर इस गतिसे कोई खास असर नहीं होता है। इसलिये चन्द्रमासे पैदा होनेवाले (Lunar tides) ज्वार-भाटोंके लिये हम यह मान लेते हैं कि केवल पृथ्वी और चन्द्रमा ही मौजूद हैं और चन्द्रमा पृथ्वीके चारों तरफ (Equator) भूमध्यरेखा-पर घूमता हैं। तो उस हालतमें जब कि पृथ्वी और चन्द्रमा चित्र १ में बतायी हुई परिस्थितिमें हों तो आकर्षणशक्तियाँ पृथ्वीके भिन्न-भिन्न भागपर तीरोंद्वारा बतायी गयी हैं। स और ड के स्थानपर यह शक्तियाँ बराबर हैं लेकिन इनका रुख एक दूसरेसे विपरीत है। अ और ब के स्थानपर यह शक्तियाँ स और ड की शक्तियोंसे आधी हैं और उनका रुख पृथ्वीके (Centre) केन्द्रकी तरफ है।

खड़ी हुई शक्तिका पड़ी दिशामें प्रभाव

हम भली प्रकार जानते हैं कि एक (vertical force) खड़ी हुई शक्तिका (horizontal direction) पड़ी हुई दिशामें कोई असर नहीं होता है और यह ज्वार-भाटा पैदा करनेवाली शक्तियाँ पृथ्वीकी आकर्षणशक्तिके मुकाबलेमें बहुत कमजोर होती हैं इसलिये इन शक्तियोंका (vertical component) ऊर्ध्व भाग बेकार रहता है और केवल (horizontal components) दैर्घ्य भाग ही ज्वारभाटा पैदा करता है। यह शक्तियाँ चित्र नं० २ में दिखाई गयी हैं। यह शक्तियाँ स और ड के स्थानोंपर और अ ब रेखापर शून्य हैं। और सबसे जियादा शक्तिशाली पप और फफ रेखाओंपर हैं।

सूर्य-चन्द्रकी आकर्षण-शक्तिका संबन्ध और ज्वारोंपर प्रभाव

यह शक्तियाँ गणित-विद्यासे मालूम की जा सकती हैं और यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि सूर्यकी आकर्षण-शक्ति चन्द्रमाकी आकर्षण-शक्तिसे करीब आधी है। इसलिये बृहद् ज्वारके वक्त जब कि सूर्य और चन्द्रमा एक ही रेखा में होते हैं यह शक्ति चन्द्रमाकी शक्तिसे ड्योढ़ी होती है। लघु ज्वारके वक्त चन्द्रमाकी शक्तिसे केवल आधी रह जाती है। इसलिये बृहद् ज्वार लघु ज्वारसे तिगुने ऊँचे होते हैं।

चित्र नं० २

साम्य सिद्धान्त

ऊपर दिये गये सिद्धान्तको **साम्य सिद्धान्त** (Equilibrium Theory) कहते हैं क्योंकि इसमें यह मान

लिया जाता है कि समुद्रका जल प्रतिक्षण उस साम्यावस्थामें होता है जो कि वह अनन्त समयके पश्चात् ही प्राप्त कर सकता है ।

अक्सर ऐसा भी देखा गया है जब कि हम एक जगह ज्वारकी आशा रखते हैं तो वहाँ भाटा होता है और जहाँ भाटा होना चाहिये वहाँ ज्वार होता है। यह अपवाद (anomaly) गत्यर्थक (dynamical theory) सिद्धान्तद्वारा समझाया जा सकता है जो इस प्रकारसे संक्षेपरूप में रखा जा सकता है ।

लहरोंकी गतिका सिद्धान्त

गणितज्ञोंने यह बताया है कि साधारणतया पानीकी लहरोंकी गति (ग ह) $\frac{1}{2}$ के बराबर होती है जहाँ ग पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति है और ह समुद्रकी गहराई। इस सिद्धान्तसे अगर सागरकी गहराई १३ मील हो तो लहरोंकी गति १००० मील प्रति घंटा होगी जो कि चन्द्रमाकी गति है, लेकिन समुद्रकी गहराई अधिकसे अधिक करीब ५$\frac{1}{2}$ मील पायी जाती है और इसलिये लहरोंकी गति भी बहुत कम है ।

चन्द्रमाकी चाल और प्रभाव

चन्द्रमा पृथ्वीके चारों तरफ १००० मील प्रति घंटेकी रफ्तारसे घूमता हुआ ज्वार-भाटा पैदा करनेवाली शक्तियोंका निर्माण करता रहता है और चूंकि यह लहरें चन्द्रमाका साथ नहीं दे सकती हैं, पीछे रह जाती हैं और असलमें इन सब शक्तियोंका फलक (resultant) ही ज्वार-भाटा पैदा करता है।

ज्वार-भाटेपर समुद्रकी गहराईका प्रभाव

इससे यह स्पष्ट है कि किसी जगहपर ज्वार या भाटेका होना वहांके पानीकी गहराईपर भी निर्भर रहता है जैसा कि पहले बताया जा चुका है ।

दैनिक ज्वार

अबतक हमने यह माना है कि चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा (Equator) भूमध्यरेखापर करता है लेकिन हकीकतमें यह हमेशा ऐसा नहीं रहता है। इसलिये चन्द्रमाकी दूरी पृथ्वीके प्रत्येक स्थानसे बदलती रहती है और इसलिये एकके बाद दूसरा अधिकतम ज्वार (high water) बराबर नहीं होता। और इस उँचाईकी असमानताको **दैनिक ज्वार** (Diurnal Tides) कहते हैं। यह असमानता हर पक्षमें एक दफा शून्य हो जाती है और दैनिक ज्वार (Diurnal Tides) भी लोप हो जाते हैं।

सौर ज्वार-भाटे

इसी प्रकार अगर (Solar tides) सौर ज्वारभाटेपर विचार करेंगे तो मालूम होगा कि ग्रीष्म और शीतकालमें क्रमागत (successive) ज्वारभाटे समान उँचाईके नहीं होंगे और वसंत और (autumn) पतझड़कालमें ये समान होंगे।

ज्वार-घर्षण (Tidal Friction)

अबतक हमने सरलताके विचारसे यह मान लिया था कि पानी एक पूर्ण द्रव पदार्थ है अर्थात् उसमें गत्यवरोधकशक्ति (Force of viscosity) नहीं पायी जाती है। लेकिन जब हम इसका भी ख्याल करते हैं तो हमें यह संशोधन करना पड़ेगा।

अगर पृथ्वीकी तमाम सतह जलसे ढकी हो और गत्यवरोधक शक्ति भी न हो तो चन्द्रमाकी आकर्षणशक्तिसे पृथ्वीकी
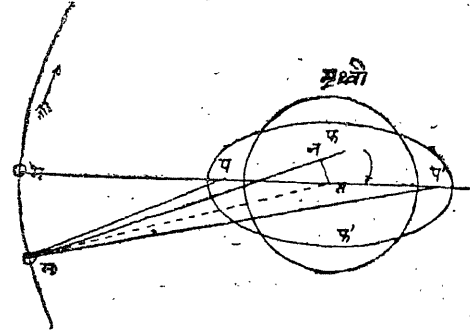
चित्र नं० ३

शकल गोलाकारसे बदलकर चित्र ३ में दी हुई अंडाकार (Prolate Ellipsoid of revolution) शकलकी बन जायगी। और अगर गत्यवरोधक शक्ति भी मौजूद हो तो खिंचे हुए प, प', और सिकुड़े हुए फ, फ', भाग पीछे रह जायँगे। इस हालतमें पृथ्वीकी शकल ठीक वैसी ही होगी जब कि चन्द्रमा म' से हटाकर म पर रख दिया जाय। और क्योंकि प फ चन्द्रमासे करीब और प', फ' दूर हैं पृथ्वीकी वजहसे चन्द्रमापर शक्ति म न रेखापर होगी। और क्योंकि पृथ्वीपर शक्ति समान और विपरीत होगी यह शक्ति न म रेखापर मानी जायगी। यह रेखा पृथ्वीके

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

शिक्षाका माध्यम हिन्दी

कलकत्ता-विश्वविद्यालयने मैट्रिकतकके लिये शिक्षाकी भाषा बँगला कर दी है। इसपर आज हम प्रसन्न हों या उसे बधाई दें, यह भाव हमारे मनमें उत्पन्न नहीं होता। मातृभाषाके सिवा किसी अन्य भाषाका शिक्षाकी भाषा बनना माँका दूध छुड़ाकर धायके दूधपर बच्चेको पालनेसे भी अधिक अस्वाभाविक और राष्ट्रकी शक्तियोंका

(Centre) केन्द्रसे नहीं गुजरती है इसलिये पृथ्वीकी गतिको रोकनेकी चेष्टा करेगी।

चन्द्रमापर इस शक्तिका असर इस प्रकार होगा। म न शक्ति अगर हम दो भागोंमें म स के समानान्तर और लम्बरूप विभाजित (Resolve) करें तो लम्ब भाग (Perpendicular Component) चन्द्रमाकी गतिको तेज करनेका प्रयत्न करेगा और इसके साथही उसको पृथ्वीसे दूर भी ले जायगा। और इसलिये चन्द्रमाका रास्ता सर्पाकार (Spiral) होगा। अब अगर हम स म रेखापर काम करनेवाली शक्तिको (Spiral) सर्पाकृतिके स्पर्शदिक् और अब लम्बदिक्में विभाजित करें तो इस शक्तिका स्पर्शदिक् भाग (Tangential Component) चन्द्रमाकी गतिको कम करनेकी कोशिश करेगा और हम पहले लिख चुके हैं कि म न शक्तिका लम्बदिक् भाग (Perpendicular Component) चन्द्रमाकी चालको बढ़ानेकी कोशिश करेगा और चूंकि स्पर्शदिक् भाग (Tangential Component) इन दोनोंमेंसे बड़ा है चन्द्रमाकी गति कम होती जायगी।

ज्वार-घर्षणका प्रभाव

इस प्रकार हम इस नतीजेको पहुँचते हैं कि (Tidal Friction) ज्वार-घर्षणसे पृथ्वीकी गति धीरे-धीरे कम होती है चन्द्रमा पृथ्वीसे दूर होता जाता है और चन्द्रमाका कोणीय वेग (Angular Velocity) भी कम होता जाता है।

चन्द्रमा क्या है?

इससे हम खयाल कर सकते हैं चन्द्रमा किसी कालमें पृथ्वीका ही एक हिस्सा रहा होगा और फिर उससे पृथक् होकर लाखों वर्षोंपश्चात् वर्तमान स्थितिमें पहुँच गया है। कई लोगोंका तो यह भी मत है कि प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) चन्द्रमाके पृथ्वीसे टूट जानेसे ही बना है।

ज्वार-भाटेकी शक्तिका उपयोग

कुछ मनुष्योंका यह खयाल हो चला है कि जब पृथ्वीकी तमाम कोयलेकी खानें काममें आ चुकेंगी तो हमें ज्वार-भाटेकी शक्तिपर ही निर्भर रहना पड़ेगा। लेकिन अगर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि यह शक्ति हमारी कमीकी पूर्ति नहीं कर सकती, क्योंकि प्रथम तो जलका उठान अगर औसतके खयालसे लिया जाय तो १० फीट आता है जो बहुत ही कम है और दूसरे ज्वार और भाटेमें काफी समयका अन्तर रहता है और अगर हम पानीको रोककर उसकी शक्तिका उपयोग करना चाहें तो हमें विशाल जैटीयाँ (Jetties) बनानी होंगी और उसके लिये बहुत रुपया खर्च करना पड़ेगा। लेकिन फिर भी जहाँ प्रकृति हमारी मदद करनेको तैयार है पानी रोकनेके साधन बनाये गये हैं, और ज्वार-भाटेकी शक्ति काममें लायी जाती है।

मल्लाहोंका मददगार

कुछ भी कहिये यह ज्वार-भाटा मल्लाहोंके बड़े कामकी वस्तु है क्योंकि वह ज्वारके साथ बगैर किसी तकलीफके बहुत दूरतक अपनी किश्तियों और जहाजोंको ऐसी जगहतक ले जा सकते हैं जहाँ पानी छिछला रहता है फिर जब पानी उतरने लगता है तो लंगर डालकर जहाँ रुकना होता है रुक जाते हैं।

प्रत्येक दिन क्रमशः बढ़ रहा है

इस प्रश्नका उठना कि यह शक्ति जो हम इस प्रकार काममें लेते हैं कहाँसे आती है, स्वाभाविक है। यह शक्ति हम पानीके वेगको रोककर प्राप्त करते हैं जिससे घर्षण (Friction) पैदा होता है और घर्षणशक्ति (Force of Friction) पृथ्वीकी गतिको कम करती रहती है। और इस प्रकार हम पृथ्वीकी चालको हमेशा कम करते रहते हैं और प्रत्येक दिनको क्रमसे बढ़ाते रहते हैं।

विनाशक है। परन्तु हम इस कुप्रथाको तीन पीढ़ियोंसे सहते आये और मातृभाषाका अबतक निरादर करते आये। यदि आज इस मुद्दतके बाद हमने उसे प्रवेशिकाके द्वारपर आकर खड़े होने दिया तो कौनसा मैदान मार लिया, कौनसा सागर पार कर लिया ? पूज्यवर पंडित मदनमोहन मालवीय जीने आजसे उनतीस बरस पहले, १२ मार्च, सन् १९०६ को--प्रस्तावित हिंदू-विश्वविद्यालयके योजना-पत्रमें, ये वाक्य लिखे हैं * —

MEDIUM OF INSTRUCTION

Instruction will be imparted in Sanskrit to all who desire it. It will be insisted on in the case of those who wish to qualify themselves to be teachers of religion, and those who wish to obtain the highest degree in medicine. In the case of others, only such knowledge of Sanskrit will be required as will enable them to easily understand simple religious texts and to acquire a mastery over the vernacular. For the rest, instruction will be imparted wholly through the medium of the Indian vernacular which is most widely understood in the country, *viz*, Hindi. It is hoped that Indian students who willingly learn Japanese in order to attend lectures at the Tokyo University will not regard it a hardship if they are required to pick up a sufficient knowledge of Hindi in order to receive instruction at the proposed University. Even at present a considerable number of students come to Benares from Madras, which is the only part of India where Hindi is not understood by most people. They come to learn Sanskrit, and, as a rule, they acquire a knowledge of Hindi in a short time As the resources of our community are at present limited, it seems wise to concentrate all energies and resources to build up one great institution at a central place, where the knowledge of the various arts and sciences, needed to promote prosperity among the people, should be made available to as large a number of the youth of the country as possible. When this institution has been well established and fully equipped, it will be time to consider the desirability of establishing branches of the University at one or more centres in each presidency or province.

It may be asked why not employ English as the medium of instruction, at least in the beginning, as it will be easier for the professors, not only for such of them as will be foreigners, but also for those who may come from Bengal or Madras, to teach through it. The reason is that, as the object is to make the benefits of the lectures available to the largest possible number of the youth of the country, that language should be the medium of instruction which the majority of them will be familiar with, or will find it easy to acquire. It is felt that the time which Indian students have to spend in acquiring that degree of familiarity with a difficult language like the English which is necessary to enable them to follow lectures in that language, would suffice to enable them to acquire a fair practical knowledge of the subject of their study if it is pursued through the medium of the vernacular. Another reason is that if lectures are not required to be delivered in the vernacular from the beginning, the preparation of text-books in Indian vernaculars will be delayed, which will lead practically to a continued use of English as the means of instruction.

भाव यह कि हिंदूविश्वविद्यालयमें धार्मिक विषयोंकी शिक्षाकी भाषा संस्कृत और ऐहिक विषयोंकी हिन्दी होगी। लोग विद्याके लिये जब जापानी आदि विदेशी भाषा सीख लेते हैं तो राष्ट्रभाषा तो अपने ही देशकी है। इसके समझने-वाले यों ही भारतमें अत्यधिक हैं, अतः अधिकांशका लाभ भी इसीमें है। जो अन्यभाषा-भाषी हैं, उन्हें सीखते देर न लगेगी। हिन्दीद्वारा ही शिक्षकोंको पढ़ानेमें भी शिक्षितोंका अधिक सुभीता है, और किफायत भी है, पाठ्य-ग्रंथ भी सहजमें ही बन जायँगे, और कम ही समयमें अधिक विषय भी पढ़े जा सकेंगे। यह बातें जैसे तीस बरस पहले सत्य थीं, आज भी हैं। परन्तु हा हन्त! हिन्दू-विश्व-विद्यालय आज भी इस आदर्शसे कोसों दूर है। उसके स्थापित हुए अठारह बरस हो गये, परन्तु फिर भी पूज्य मालवीय जीका वह तीस बरस पहलेका स्वप्न भविष्यके गर्भमें ही है। यह भी नहीं कि विश्वविद्यालयपर किसी औरका अधिकार हो। पूज्य मालवीयजी उसके गर्भाधानसे आज उसके बालिग होनेतक उसके सर्वेसर्वा रहे हैं। स्वप्न सच्चा न होनेकी जिम्मेदारी उन्हींपर है। परन्तु कठिनाई

*Prospectus of a Proposed Hindu University, for the Promotion of Scientific, Technical and Artistic Education Combined with Religious Instruction and Classical Culture. (Indian Press, Allahabad). p. 34-36.

यह है कि वह काली कमलिया बाबाजीके ही अंगसे बेतरह चिपट गयी है। छोड़े तब तो! —रा० गौ०

प्रयाग-विश्वविद्यालयमें हिन्दी-उर्दू

प्रयाग-विश्वविद्यालयके अकाडमिक कौंसिलने कोर्टसे यह सिफारिश की है कि बी० ए० के विद्यार्थियोंके लिये हिन्दी या उर्दू अनिवार्य विषय कर दिया जाय। इस मुद्दतके बाद बड़ी हिम्मत करके ऐसा प्रस्ताव किया गया है। वह भी अभी सायंस और वाणिज्य-विभागके लिये नहीं है। कमालकी रिआयत की। आक्सफर्ड युनिवर्सिटीमें सारी पढ़ाई और परीक्षा हिन्दीमें मुद्दतसे होती आयी हो, और आज वहाँकी अकेडेमिक कौंसिल वहाँकी कोर्टसे दबी जबानसे सिफारिश करती हो कि बी० ए० के शिक्षार्थीके लिये अंग्रेजीका जानना आक्सफर्डमें अनिवार्य्य कर दिया जाय। ऐसी घटना जितनी लज्जाका कारण अंग्रेजोंके लिये होगी, प्रयागकी यह घटना हमारे लिये उससे कम लज्जाकी बात नहीं है। दूसरोंके सामने तो यह उपहास और मूर्खताकी बात होगी। सारी शिक्षा और परीक्षा होनी चाहिये राष्ट्र-भाषामें और बिना एक क्षणकी देरके। परन्तु कमली बाबाजीको छोड़े तब ना?

परिषत्‌ने अपनी गत बीस बरसोंकी सेवासे इस मोहके परदेको फाड़ फेंका है कि अपनी भाषाद्वारा शिक्षा नहीं हो सकती। उसमानिया विश्वविद्यालय, गुरुकुल विश्वविद्यालय और गुजरात, बिहार और काशी विद्यापीठ, जामिया मिल्लिया, देशकी भाषाद्वारा शिक्षा दे रहे हैं, परीक्षा ले रहे हैं। यह सब देखकर भी अर्ध सरकारी विश्वविद्यालयोंकी आँखें नहीं खुलतीं, इसमें किसका दोष है? —रा० गौ०

युरोपमें गणितकी खोजमें देशी भाषाओंका प्रयोग

गत २ मार्गशीर्ष (१८ नवम्बर) रविवारको परिषत्‌के वार्षिकोत्सवमें उसके सभापति विद्वद्वर डा० गणेशप्रसाद साहबने "युरोपमें गणितकी खोजमें वहाँकी देशी भाषाओंके प्रयोग" पर एक अत्यन्त शिक्षाप्रद व्याख्यान दिया। उन्होंने प्रमाणसहित यह दिखलाया कि युरोपमें जब पहले लाटिन भाषाका बोल बाला था, सभी विद्वान अपने खोजके निबन्ध लाटिनमें लिखते थे। फलतः विद्याका प्रचार न हो पाता था। इंग्लिस्तान आदि सभी देश लगभग ७५ बरस पहले इसी दोषसे पिछड़े हुए थे। यह देखकर विद्वानोंने अपनी प्रवृत्ति बदली और देशीभाषाओंमें प्रामाणिक ग्रंथोंके अनुवाद हुए, मौलिक ग्रंथ भी लिखे जाने लगे। फलतः विद्याका प्रचार बढ़ा। प्रत्येक देशमें अपनी-अपनी भाषाओंमें सभी तरहका साहित्य तैयार होने लगा, छापेके सहारे प्रकाशन बढ़ा, सर्व-साधारणमें विद्याको उत्तेजना मिली उसकी औसत गहराई और विस्तार दोनों ही बढ़ गये। डाक्टर साहबने सद्यःपतित छाया चित्रद्वारा अनेक मूलप्रकाशनोंके प्रत्यक्ष दर्शन कराये। इनमेंसे एक जापानी भाषाका निबन्ध था जो ऐंस्टैनके सापेक्षवादके खंडनमें था। जापानके इस विद्वानने ऐसे महत्वके विषयपर जर्म्मन या अंग्रेजीमें नहीं लिखा।

हमारे देशकी दशा अंग्रेजीके अस्वाभाविक प्रचारके कारण क्या है, इसपर भी विचार कीजिये। साक्षरोंकी संख्या सौमें सात है, तो अंग्रेजी जाननेवालोंकी संख्या तो सौमें एक भी नहीं है, परन्तु विद्या प्रचारका साधन विश्वविद्यालयोंमें अंग्रेजी भाषा बनी हुई है। इससे विद्याकी गहराई और विस्तारमें कितनी भारी रुकावट पड़ी हुई है, क्या हमारे देशके विद्वान् और शिक्षा शैलीके-कर्णधार सोचनेका कष्ट उठावेंगे? विद्वत्ता और अनुभवका सहारा लेकर इस जुएको अपनी गर्दनोंसे क्यों नहीं उतार फेंकते? इस आवश्यक काममें कबतक आगा पीछा देखेंगे और कबतक विकराल कालके सांटे सहते रहेंगे? —रा० गौ०

क्या प्रोफेसरोंकी कठिनाइयाँ सच्ची हैं?

कभी-कभी यह कहा जाता है कि पढ़ाईका सुभीता विद्वानोंके विनिमयमें है। जब विश्वविद्यालयोंमें अपनी-अपनी भाषाओंद्वारा पढ़ाई होने लगेगी तब दूसरे प्रान्तके विद्वान् पढ़ानेको कैसे मिलेंगे? यह कष्ट-कल्पना भी विद्वत्ताका उपहास है। जब अपनी विद्याके गांभीर्य्य और विस्तारके लिये विद्वानोंको आधे दरजन विदेशी भाषाओंके सीख लेनेमें कठिनाई नहीं होती तो अपने देशकी किसी प्रान्तीय भाषाके सीखनेमें रुकावट पड़ेगी, यह सोचना तो उन विद्वानोंकी खिल्ली उड़ाना है। फिर, राष्ट्रभाषा हिन्दीके सीखनेमें तो अधिक सुभीते हैं। वह सरल भी है, और प्रायः व्यापक भी। उसके सीखने समझनेके

साधन बहुत हैं। हिन्दी-उर्दूका झगड़ा बाधक नहीं हो सकता क्योंकि यह भाषाभेद नहीं, लिपिभेद है। उर्दू-वालोंको इस भ्रममें न रहना चाहिये कि हिन्दी गैर-जुबान है। "हिन्दी" शब्द ही फारसी-अरबी है। संस्कृतमें हिन्दी, हिन्दू शब्द है ही नहीं। हम लोगोंने जैसे सैकड़ों अरबी-फारसी शब्द अपनाये, वैसे ही अपने अरबी-फारसी-तुरकी बोलनेवाले भाइयोंका रखा हुआ अपनी ही भाषाका और जातिका नाम अपना लिया। हमारे पास अपनी लिपि और भाषा मौजूद होते भी हम इतने हिलमिल गये। विदेशी भी जब हमारे यहाँ आये तो अपने देशकी भाषा-भूषाका त्याग किया और हमारे देशके अनुकूल भरसक बने। उनकी संस्कृति भी हमारी संस्कृतिसे घुल मिल गयी। अब हिन्दी और हिन्द सबकी चीज है और जो हजार बरस पहले विदेशी थे आज हमसे ऐसे मिल गये हैं कि उनके विदेशीपनका अत्यन्ताभाव हो गया है। वह इतिहासकी वस्तु रह गयी है। लिपिभेद कोई भेद नहीं है। अतः अन्य प्रान्तवासी विद्वान चाहे हिन्दीके नामसे राष्ट्रभाषा सीखें चाहे हिन्दुस्तानीके नामसे। चीज तो एक ही है। परिश्रम तो एक-सा ही पड़ेगा। इसीलिये हम प्रोफेसरोंकी कठिनाइयाँ भी मोहजनित और उत्साह-हीनताका परिचायक मानते हैं। —रा० गौ०

साधारण व्यवहारकी भाषा और हमारे माथेपर कलंकका टीका

सर राधाकृष्णनकी जो वक्तृता प्रयाग-विश्वविद्यालयके पदवीदानके अवसरपर हुई थी, वह बड़ी शिक्षापूर्ण, तथ्योंसे भरी और सदालोचनापूर्ण थी *। परन्तु उसमें आधुनिक भारतीय विश्वविद्यालयोंमें शिक्षाके माध्यम और उसके खोटे परिणामोंपर पूरा प्रकाश डालना चाहिये था। कुशिक्षाके इस कुपरिणामकी ओर देशका ध्यान इसलिये नहीं जाता कि इस कुपरिणामसे देश ओतप्रोत भर गया है। जैसे हमारे देशके आधेपेट खाकर गुजर करनेवाले भुक्खड़ भाइयोंके निकट कँगलेपनका जीवन आज स्वाभाविकसा हो गया है, प्रत्यक्ष भोगते हुए भी वे उसकी बुराइयोंको नहीं देखते, उसी तरह अंग्रेजीका व्यवहार और प्रचार पढ़े-लिखोंमें इतना बढ़ा हुआ है कि उसकी बुराइयोंको प्रत्यक्ष भोगते हुए भी उन्हें यह अराष्ट्रीयता सूझ नहीं पड़ती। अँगरेजीकी थोड़ी भी तालीमसे ऐसे मस्त हो जाते हैं कि अपनेको भूल जाते हैं, वेशभूषाकी और भाषाकी नकलके साथ ही अवगुणोंकी नकल भी करते नहीं शरमाते। हमें तो विशेषतः अपनी भाषा बिगाड़ना खलता है। विश्वविद्यालयतक पहुँचे हुए लोगोंकी भाषा ऐसी खिचड़ी हो गयी है कि उसका समझना सबके लिये असंभव है। फिर साधारण व्यवहारमें तो अंग्रेजी ही माध्यम हो गयी है। "पूज्य पितृ चरणों"को भूलकर बेटा "माइ डिअर पापा" से पत्र आरंभ करता है और अंग्रेजीमें पत्र लिखते नहीं लजाता। गाड़ीमें "जेंटिलमैनों" के बीच बात-चीतका आरंभ कमसे कम अंग्रेजीमें ही होता है। घरमें, बाहर, समाजमें, सभी जगह अंग्रेजी और हिन्दीकी खिचड़ी बोली जाती है। इस भ्रष्ट भाषाका पिता कौन है? हमारे शिक्षालय। वहीं यह कुशिक्षा मिलती है। परीक्षालयोंमें उर्दू, हिन्दी, फारसी, अरबी, संस्कृतके जितने प्रश्नपत्र आते हैं, सभी अंग्रेजीमें होते हैं। मानों परीक्षाओंमें बैठनेवालोंकी "मातृभाषा" अंग्रेजी है! इस असंगतिका भी कुछ ठिकाना है! शायद प्रयाग-विश्वविद्यालयकी अकेडेमिक कौंसिलको अपने छात्रोंकी मातृभाषाके प्रति इस दरजेकी उपेक्षा और उसकी अनभिज्ञता प्रतीत हो गयी, इसीलिये हिन्दी उर्दूमें परीक्षा अनिवार्य्य करनेकी सिफारिश की। मगर डाल-डाल पात-पात पानी देनेसे लाभ नहीं। जड़ सींचिये। रोगके एक उपलक्षणके शमनसे क्या होगा? उसका निदान ठीक-ठीक कीजिये और मूल कारणोंके निवारणके उपाय कीजिये। शिक्षा और परीक्षाका मध्यम देशी भाषा कर दीजिये। विश्वविद्यालयके सभी दफ्तर और सारे काम अपनी भाषामें हों, उसकी परिषदों और सभाओंमें अपनी भाषामें वक्तृत्व और विचार हो, अपनी भाषामें पुस्तकें और लेख लिखिये; और लिखाइये पढ़ाइये, एड़ीसे चोटीतक निज भाषामय होकर जगतको दिखा दीजिये कि आप बेजबान जानवर नहीं हैं, बल्कि अहले-जबान विद्वान हैं और आप अपनी भाषासे सारे काम चला सकते हैं। यह कोई नहीं कहता कि अंग्रेजीकी शिक्षा न दीजिये। अंग्रेजीकी अच्छीसे अच्छी शिक्षा दीजिये, परन्तु उसे शिक्षाका माध्यम बनाये रखना

* पाठक उसका आशय इसी अंकमें अन्यत्र पढ़ चुके हैं। —रा० गौ०

और हर काममें उससे चिपके रहना आपकी वह भूल है जिसपर हर विदेशी टीकाकार आपके दिमागके सही होनेपर शुबहा करता है। विदेशी-भाषाद्वारा शिक्षादान और साधारण व्यवहार असंगति और अवैज्ञानिकताकी हद है, और देशके विद्वानोंके माथेपर क्रूर कलंकका टीका है। —रा० गौ०

महाराष्ट्रमें प्रचंड पशुताका प्रचार

सिनेमाकेद्वारा जिस घोर दुर्नीतिका प्रचार हो रहा है उसकी ओर हम कई बार अपने सुज्ञ पाठकोंका ध्यान दिला चुके हैं। देशमें इस तरहके तमाशोंका जो कुछ बुरा प्रभाव पड़ता है, वह पंजाब और युक्तप्रान्तमें तो देखा ही जा रहा है। हम यह नहीं कहते कि हमारे युवकों और युवतियोंमें सारी दुर्नीति सिनेमा ही फैला रहा है। परन्तु वर्त्तमान कुशिक्षाके वातावरणके बनानेमें निस्सन्देह ऐसे तमाशोंका बहुत बड़ा हाथ है। अब महाराष्ट्र जैसे हिन्दू संस्कृतिके पालक शिक्षित समाजमें भी उसी प्रकारकी दुर्नीति फैलायी जा रही है। इसका पता श्री सातवलेकरजीके पत्रके निम्नांशसे पाठकोंको लगेगा—

"आजकल महाराष्ट्रके कई नवयुवक प्राचीन आर्यनीतिके विरोधक अश्लील विचारोंका प्रचार खूब कर रहे हैं और सतीत्व तथा ब्रह्मचर्यका उपहास कर रहे हैं। इन नवयुवकोंने अपने बहुत ही वृत्तपत्रों और मासिकोंद्वारा अनैतिक विचारोंका प्रचार करनेका उद्योग जोरसे चलाया है। ये महाराष्ट्रके नवयुवक जिन विचारोंका प्रचार कर रहे हैं वे विचार संक्षेपसे ये हैं—

१—सतीत्व और ब्रह्मचर्यकी रक्षाके विचार पागलपनके हैं।

२—व्यभिचारमें कोई दोष नहीं।

३—जैसा नदीमें जाकर हरएक पानी पीता है, वैसीही नदी जैसी स्त्री है।

४—कालेजोंके कुमार और कुमारिकाओंको कालेजोंमें शिक्षा पाते हुए परस्पर प्रेमसंबंध करके विषयोपभोग करना चाहिये। संतति प्रतिबंधक उपायोंका उपयोग करनेसे ऐसे संबंध गुप्त रह सकते हैं।

५—विवाह होनेके पूर्व इस तरहके प्रेमसंबंध तरुण और तरुणियाँ करें, क्योंकि आजकल विवाह-समय देरीसे होता है और उससे पूर्वही भोगका समय व्यतीत होता है।

इत्यादि-इत्यादि, कहाँतक लिखें? स्थालीपुलाकन्यायसे आप इनकी कल्पना कर सकते हैं। संभवतः आप पूछेंगे कि ऐसे कुविचारोंके प्रचारक कौन हैं?

आपको विदित होनेके लिये केवल दोही नाम लिखता हूँ कि (१) प्रो० र० धों० कर्वे, संपादक "समाज-स्वास्थ्य" मासिक; और (२) म० शं० वा० किर्लोस्कर, संपादक "किर्लोस्कर" मासिक, ये उक्त विचार को प्रकाशित करनेमें विशेष बल लगाते हैं। 'समाजस्वास्थ' वालेके ऊपर तो दो बार सरकारने इसी अश्लील विचारको प्रकाशित करनेके कारण अभियोग भी चलाया था और कुछ दण्ड भी उनको हुआ था।

'किर्लोस्कर' मासिकके संपादकने मुझे साफ शब्दोंमें लिखा था कि—'स्त्री पुरुषोंमें प्रेमका विकास होनेके पश्चात् उनको वैषयिक संबंधकी आवश्यकता प्रतीत हुई, तो वे अपनी इच्छानुसार विवाहके पूर्व भी वैषयिक संबंध करें'।"

विज्ञानके आविष्कारोंके प्रयोग और प्रचारसे मानव समाजका जीवन इधर सौ बरसोंमें धड़ल्लेके साथ अस्वाभाविक एवं कृत्रिम बनता जा रहा है। हम इसे विज्ञानका "दारुण दुरुपयोग" कहते आये हैं। विज्ञानका इसमें कोई दोष नहीं। वह तो स्वातीकी बूँद है जो चातकके मुखमें अमृत और साँपके मुखमें विष हो जाती है। सदुपयोगसे मनुष्य देवता बनकर ऊँचे उठता है, दुरुपयोगसे दानव और पशु बनकर नीचे गिर जाता है। विज्ञानकी प्रतिक्रियारूपमें ही यह विचार फैला है कि जंगलोंमें बिना पकाया भोजन करके नंगे जीवन बिताना ही वैज्ञानिक और स्वाभाविक जीवन है, क्योंकि पशु भी भोजन नहीं पकाता और कपड़े नहीं पहिनता और स्वस्थ रहता है। यही तपस्याके भावसे किया जाता तो देवत्व था। परन्तु इसमें तपस्या और देवत्वका कोई भाव नहीं है। शुद्ध पशुत्व है। मनुष्यमें पशु और देव दोनोंके भाव हैं, उसे पशुता छोड़कर देवत्व ग्रहण करना चाहिये, यही उसके विकासका मार्ग है। काम-क्रोध-लोभ आदि विकारोंपर पशु कोई अंकुश नहीं रखता। मनुष्य रखता है। यही तो भारी अन्तर है। कामपर अंकुश है ब्रह्मचर्य्य और

विवाह यह मनुष्योंमें होता है, पशुओंमें नहीं। क्रोधपर अंकुश है, अक्रोध और नीति-विधान जो मनुष्योंमें है, पशुओंमें नहीं। लोभपर अंकुश है अस्तेय और समाज-द्वारा दमन, यह भी मनुष्योंमें है, पशुओंमें नहीं। ब्रह्मचर्य्य और विवाहका तिरस्कार पशुत्वको अंगीकार करना है, समाजको विच्छृंखलित और छिन्न-भिन्न करना है। अपना वैयक्तिक स्वास्थ्य बिगाड़ना अलग है। सन्तति-निरोधके उपायोंसे काम लेकर पाप छिपानेकी चेष्टा विज्ञानका घोर दुरुपयोग और आत्यन्तिक दुर्नीति है। साथ ही पातककी ओर प्रेरित और प्रवृत्त करनेकी चेष्टा पूरी शैतानीका काम है। सुराज्य और समाजके रक्षकोंका धर्म्म है कि इस पतनोन्मुखतासे उसकी रक्षा करे। —रा० गौ०

सतजुगी मानवकी दूसरी ठटरी

विज्ञानके एक पिछले अंकमें हमने मध्यप्रान्तमें एक जगह सतजुगी इक्कीस हाथवाले मनुष्यकी ठटरी मिलनेका समाचार दिया था। अब वैसे ही एक और नरकंकालके पाये जानेका समाचार इलाहाबाद जिलेके दैयाराज्यसे असोशियेटेड प्रेसको मिला है। इसकी टाँगें ही १० फुटकी हैं। दैया प्रयागसे लगभग ५० मीलपर है। वहाँके राजा जब शिकार खेलने गये तो कुछ देहातियोंने उन्हें वह जगह दिखायी जहाँ वह ठटरी खोदनेसे मिली। वह जाँचके लिये राजमहलमें सुरक्षित रखी गयी। शायद किसी युगमें इतने ऊँचे मानव होते होंगे और शायद पुराणोंकी यह कथा ठीक ही हो। —रा० गौ०

मासिक "इन्दु"का स्वागत

"विज्ञान"से अधिक पुराने सामयिक पत्र बहुत थोड़े हैं। "इन्दु" विज्ञानसे पाँच बरस पुराना है। यह सात ही बरस चलकर बन्द हो गया था। अब फिर अट्ठारह बरस पीछे राहुके कुयोग-ग्राससे मुक्त होकर उदय हुआ चाहता है। हम उसका सहर्ष स्वागत करते हैं और परमात्मासे यह हार्दिक कामना करते हैं इसे सर्वकला पूर्ण करे। इसके व्यवस्थापक महोदयने लिखा है कि वे उन विज्ञानके ग्राहकोंको जो १० जनवरीके पूर्व उन्हें २॥) मनीआर्डरसे भेज देंगे, सालभर पूरे इस "इन्दु"के दर्शन करावेंगे। साधारण ग्राहकोंसे मूल्य ३॥) लिया जायगा। विज्ञानके ग्राहक ३) मात्र देकर ग्राहक हो सकेंगे। —रा० गौ०

स्वाभाविक नेत्र चिकित्सा

स्वाभाविक नेत्र चिकित्साका अस्पताल जो पहले बुलन्दशहरमें था अब दिल्लीमें चला गया है और नं० १५, दरयागंजमें Dr. Agrawal's Eye Institute के नामसे प्रसिद्ध है। जिन डा० रघुबीरसरन अग्रवालके "आँखोंका अचूक इलाज"वाले कई लेख विज्ञानके पाठक पिछले एक अंकमें पढ़ चुके हैं, उनका पता अब उपर्युक्त है। हमें आशा है कि भारतकी राजधानीमें जाकर उनका चिकित्सालय सारे देशकी निगाहोंको स्वभावसे ही आकृष्ट कर लेगा। —रा० गौ०

विज्ञान-परिषत् समाचार

प्रयाग-विश्वविद्यालयके भौतिक-विज्ञान-प्रयोगशालामें रविवार २ मार्गशीर्ष, १८ नवम्बरके सायंकालमें परिषत्का इक्कीसवाँ वार्षिकोत्सव मनाया गया। इस अवसरपर आगरा-विश्वविद्यालयके भूतपूर्व वैसचान्सेलर डा० नारायणप्रसाद अष्ठानाने सभापतिका आसन सुशोभित किया। प्रो० सालिगराम भार्गव प्रधान मंत्रीने कौंसिल-द्वारा स्वीकृत वार्षिक विवरण पढ़ा। फिर आय-व्ययका लेखा और अनुमानपत्र पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ। इसके अनन्तर डाक्टर गणेशप्रसाद साहबने अपना अत्यन्त रोचक और महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया और प्रमाणमें छाया-पटपर उन लेखों और पुस्तकोंके चित्र दिखाये जो गणितके अनुसन्धानियोंने अपनी-अपनी देशी भाषाओंमें छपवाये थे। विषय था "गणितके अनुसन्धानमें युरोपमें देशी भाषाओंका प्रयोग"। इस व्याख्यानके अन्तमें सभापति महोदयने योग्य व्याख्याताको परिषत्की ओरसे धन्यवाद दिये।

इसके अनन्तर पदाधिकारियोंका चुनाव हुआ। पदाधिकारी और कौंसिलर सभी वे ही चुने गये जो गत वर्ष थे। केवल प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्माकी जगह स्वामी हरिशरणानन्दजी प्रयागसे बाहर रहनेवाले कौंसिलरोंमें चुने गये। श्रीरामदास गौड़के प्रस्ताव, श्री प्रो० सालिगराम भार्गवके अनुमोदन एवं सर्व सम्मतिसे अजमेरके श्री पं० ओंकारनाथ शर्माजी परिषत्के सदस्य (फेलो) चुने गये। परिषत्का वार्षिक विवरण पाठक अगले अंकमें पढ़ेंगे। —वि० सं०

डिलेरीन

मन्थर ज्वर फुफ्फुस प्रदाह, प्रसूत ज्वर, इन्फ्लूएँजा आदि के होने पर जब अधिक ज्वर होकर मनुष्य को सरसाम या सन्निपात होजाता है और रोगी अधिक बकवास करता है, नींद नहीं आती, हाथ पैर मारता है या बेहोश पड़ा रहता है ऐसी हालत में हमारी यह दावानल वटी चार २ घण्टे के बाद खिलाने से रोगी की सन्निपातिक अवस्था जाती रहती है।

खुराक—१ गोली अद्रक रस शहद से दें। ऐसे बीमार को खुराक के लिये कोई दूध वगैरः गिजा तब तक नहीं देना चाहिये जब तक होश हवास दुरुस्त न हो जांय।

मूल्य १)

वर्टीगोन

जिन शख्सों को किसी दिमागी कमजोरी, आंख की कमजोरी, पेट की बीमारी या आम कमजोरी के कारण उठते बैठते चक्कर आते हों, सिर में धक्के लगते हों, घुमेर पड़ता हो, आंख के आगे अन्धेरा आ जाता हो ऐसों को यह दवा अत्यन्त फायदा करती है। पुराने सिर दर्द में भी इससे फायदा होता है।

सेवन बिधि--पानी के साथ १ गोली, दिन में दो दफा सुबह शाम सेवन करें मूल्य १)

एट्रोफील

यह दवा बच्चों के सूखा रोग (मसान) में अत्यन्त फायदा करती है। जिन बच्चों को किसी बुखार के पश्चात् या बुखार बने रहने की हालत में सूखा की बीमारी लग जाती है और बच्चा सूखता चला जाता है जिसको लोग मसान या परछावा भी कहते है। इस बीमारी में यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करने से बच्चा खूब मोटा ताजा हो जाता है।

प्रयोग--१ गोली सुबह और एक गोली शाम को पानी से सेवन करावें। खाने के लिये दूध फल रोटी बन्द कर दें। मूल्य १)

स्प्लीनीन

विषम ज्वर अथवा अन्य ज्वरों से प्लीही प्रायः बढ़ जाया करती है और प्लीहा वृद्धि के कारण पेट बढ़ जाया करता है। खाना हज्म नहीं होता। हल्कासा ज्वर बना रहता है। हमारी यह औषध दस्त ला कर प्लीहा को छांटता जाता है और एक सप्ताह के प्रयोग से बिल्कुल ठीक कर देती है। ज्वर जाता रहता है भूख खूब लगने लगती है। नया रुधिर काफी बनने लगता है दो तीन सप्ताह में रोगी बिल्कुल स्वस्थ हो जाता है।

एक सप्ताह की औषधि का मूल्य १)

सेवन विधि--इस शीशी की औषधि किसी बड़ी बोतल में डाल दें और १० छटांक पानी मिला कर खूब अच्छी तरह मिला दें और दोपहर के भोजन के दो घण्टे बाद एक औंस पीवें। मूल्य १)

मिलने का पता—**मैनेजर दी पी० ए० वी० फार्मेसी,**

अमृतसर।

वैज्ञानिक गोरक्षामें ही सच्ची रक्षा है

[२] स्वराज्य-प्राप्तिका सहज उपाय

[गताङ्कसे आगे]

[ले०—डाह्याभाई ह० जानी, बी० एजी० (अग्री० इका०) गोल्डमेडलिस्ट, राणपुर, काठियावाड़]

[हिन्दीकार—श्रीराधारमण याज्ञिक, काशी]

अपनी बुरी हालत

अमेरिकाकी सानन बकरियाँ जितना दूध देती हैं उससे तिहाई हिस्सा भी बड़ी कठिनतासे हिन्दुस्थानी गायें दे पाती हैं। और **पश्चिममें एक हजारसे पन्द्रह सौ पौंड तक मक्खन पैदा करनेवाली गायें हैं, पर अपने यहाँकी गायें बड़ी कठिनतासे इसका आधा या तिहाई हिस्सा दूध** देती हैं। कहलाती तो हैं अमृतखान (अमृत = दूध) पर अमृतखान या विभिन्न प्रकारकी गायें ऐसी हैं कि जिनके (Lactation Period) दुग्धदानकालमें २०० पौंड दूध

प्रास्पेक्ट नामकी अमेरिकाकी जगद्विजयिनी गैया

प्रास्पेक्ट नामकी अमेरिकाकी यह जगद्विजयी गाय सालमें १८६४२ सेर दूध देती है अर्थात् हमारी भारतीय ७५ गायोंके बराबर यह एक गाय है।

भी बड़ी मुश्किलसे होता है। अथवा जिस प्रकार कपासका पेड़ इतना बिगड़ जाय कि उसके फलसे कपासकी जगह बिनौलामात्र भी मुश्किलसे मिले, बस उसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्थानी गायोंसे दूधका नहीं किन्तु किसी अल्प अंशमें गोबरका ही खाद रूपसे कुछ आर्थिक लाभ मिल जाया करता है! क्या यही उन्नति है?

भारतीयोंमें मांस, मत्स्य और अंडा तो खपता नहीं; और फल मेवाकी बात तो जाने दीजिये, जहाँ पेटभर अन्न मिलता नहीं वहाँ

दूधकी कितनी आवश्यकता होगी ? इतनेपर भी ७५ प्रतिशत भारतीय दूधका मुँह देखने तथा घीकी सुगन्धतक नहीं पाते । केवल जिस चतुर्थांशको मिलता है उन बेचारोंको रोज पूरा एक तोला घी तथा आधा पाव भी दूध नहीं मिलता। प्रति वर्ष ८ सेर घी ११५ पौंड दूध किस गिनतीमें है और फिर भी चौथाई भागको ही ! जिस प्रजाके चौथे भागको चुल्लूभर दूध और बूंदभर घीपर ही निर्वाह करना पड़ता हो वह प्रजा सांसारिक समरमें सबसे पीछे पड़ी हो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

भारतीय गौओंकी समस्या

एक तरफ लोग चिल्लाते हैं कि "सबके सब पशु कसाई-खानोंमें मौतके घाट उतारे जा रहे हैं !" दूसरी तरफ घास-चारेके अभावसे गायें मारी-मारी फिरती हैं और वे ही चिल्लानेवाले टुकुर-टुकुर निहारते नहीं शर्माते हैं और हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते हैं। तीसरी ओरसे आवाज आती है कि "हम लोगोंको पूरा दूध, घीकी कौन कहे मट्ठा भी भर पेट नहीं मिलता है।" चौथी तरफ देखनेसे मालूम पड़ता है कि पशुशालाओंमें अधिकांश दिखाऊ आडंबरका ही साम्राज्य है। यदि इन पशु शालाओं को 'पशु-यातना-गृह' की उपाधि दे दी जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं हो सकती। आह! यह रोमाञ्चकारी दृश्य ! और यह अकर्मण्यता ! इसका भी कहीं अन्त है ?

भारी "संख्या" ही भारी शाप है

संसार भरके पशुओंमें ५३ प्रतिशत तो भारतमें ही हैं तिसपर भी यह मजा कि वह दूध और मट्ठेके लिये तरसता है ! भारतवासी, भारतीय पशु तथा भारतीय पृथ्वी सभी पोषणके लिये व्याकुल हैं। आजकी पशु-संख्याकी अपेक्षा उपयुक्त शक्ति, उत्पत्ति तथा पोषणके लिये ६ से ८ गुनेतक पशु और चाहिये। पर जहाँ इतने ही पशुओंको घास-चारा पूरा नहीं पड़ता वहाँ अठगुनी संख्या हो ही कैसे सकती है ? जहाँ एक पशु मरता है तो उसके चमड़े तथा हड्डीसे जीवित पशुके बराबर [बल्कि अधिक —रा० गौ०] उसमें कीमत मिल जाती है वहाँ पशु हिंसाको रोक कौन सकता है? किस प्रकारकी जीवदया !— कौनसी जाति फटे आकाशमें थेगड़ी लगा सकती है ? और कबतक लगा सकती है ?

भारतीय गायोंका अभाग्य कैसे दूर हो ? नस्ल सुधारिये।

"मुसलमान लोग गायके मांसका इसलिये अधिक व्यवहार करते हैं कि उन्हें वह बकरी, भेड़ आदिके मांससे सस्ता पड़ता है।" मौ० मुहम्मद अलीका यह कथन क्या असत्य है ? अपनी विचित्र गोदयासे ही न गोमांस सस्ता पड़ता है ? जहाँपर जीवित और मृत दोनोंका मूल्य बराबर है वहाँ मारनेवालेको महँगा क्यों पड़ेगा ? और पालनेवालेको कितनी कठिनता होगी ? उद्योगवादके इस जमानेमें मृतावशेषसे ही जीवित पशुके मूल्य जितना पैसा चमड़ेवाले कमा लेते हैं। और उनके पाससे ही चमड़ा, हड्डी, सूखा हुआ खून, रक्तचूर्ण, सरेस बनानेके लिये सींग, ब्रश बनानेके लिये बाल, रेनेट बनानेके लिये कोमल झिल्लियाँ खरीद कर उद्योगवादी लोग चमड़ेका बाक्स, मनीबेग, पट्टा, फर्नीचर, अपहोल्स्टरी आदि और हड्डीसे चाकूकी डंडी, खाँड़ आदि धोनेके लिये हड्डीका चूर्ण और सरेस आदि कितनी बहुमूल्य वस्तुएँ बनाते हैं और कितना रुपया कमा लेते हैं इसका कुछ ख्याल है ?

आजकल रसायनशास्त्र तथा शिल्पशास्त्रकी सहायतासे जीवित गायकी अपेक्षा कमसे कम दस गुना लाभ उद्योग-वादीको मिल सकता है। और दूसरी ओर जीवित गौ योग्य उत्पादकताके अभाव तथा अधूरे उपयोगसे भाररूप हो जाती है। तब जीवदयाकी रस्सीसे बंधी हुई गाय कसाईघरके यन्त्रोंकी भेट हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? गायकी उपयोगिता न बढ़े, जीवितावस्था तथा मृतावस्था दोनों समय यदि उसका आर्थिक लाभ न उठाया जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसे मौतके घाट उतरना होगा और उसकी कोई रक्षा कर ही नहीं सकता ! यह बात सबको बुरी लग सकती है, पर क्या हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे रहनेसे यह गोहत्या बन्द हो सकती है ? इसके लिये हमें व्यावहारिक तथा दीर्घदृष्टिवाला उपाय करना पड़ेगा।

प्रति वर्ष पन्द्रहसे लेकर बीस करोड़तक रुपया पशु-शालाओंमें खर्च कर दिया जाता है। उसमेंसे यदि एक अंश भी नेकनीयतीसे गायोंकी नस्ल सुधारनेमें खर्च किया जाता तो यह दशा कदापि न होती। अभी भी क्या बिगड़ा है? ये गोपालनका झंडा लिये फिरनेवाली संस्थायें और पशुशालायें यदि अपने खर्चका पञ्चमांश भी दुग्धालय तथा चर्मालयको उत्तेजन देनेमें खर्च करें और बाकीका ईमानदारीके साथ खर्च करें तो कुछ-न-कुछ स्थिति अवश्यमेव सुधरे।

क्रूर दयासे ही भारतका अधःपतन हुआ है

पशुशालायें नामके बराबर काम नहीं करतीं। इनमें वह सच्ची लगन ही कहाँ है जो मनुष्यकी सफलताका आधारस्तम्भ है? इनके दिमागमें सच्ची बुद्धि ही कहाँ है? इनमें दृष्टि नहीं है, वास्तविक दया नहीं है! ये तो भ्रममें पड़े हुए पामर जीव हैं! नहीं तो क्या 'दो और दो, चार' जैसी स्पष्ट बातोंको ये लोग हल न कर पावें? डॉ० बर्डीझोके केस्ट्रेटरसे बछड़ोंको बधिया करनेमें कोई दुःख, पीड़ा, या हानि नहीं होती; तो भी कितने लोग इसका लाभ उठाते हैं? पशुशालाएँ जो हजारों बछड़ोंको अधमरा बना देती हैं और बिलकुल निर्बल हो जानेके बाद उन्हें सबल बनानेकी चेष्टा करती हैं, यदि इसके बजाय उन्हें बैल बनावें तो क्या इसमें बछड़ोंका कल्याण न हो? संस्थाका, जातिका तथा देशका कल्याण तो है ही। परन्तु इन लोगोंको इतनी समझ कहाँ?

अच्छे-अच्छे सांड़ोंके पालनमें इन लोगोंने क्या किया है? क्या इन लोगोंने कभी दुग्धालय और चर्मालयसे पशुओंको, और उनकेद्वारा संस्थाको स्वाश्रयी एवं समाजोपकारक बनानेका कभी विचारतक किया है? नयी गोचर-भूमि बनाना, पशुक्षेत्र बसाना, नया-नया चारा पैदा करना आदि-आदि दिशाओंमें इन लोगोंने क्या किया है? याद रखना कि जीवदयाके जहाजमें खोखलेपन तथा नीचताका छेद हो गया है! जहाजमें पानी भरने लगा है! यह डूबता हुआ जहाज अपने साथ ही सबको डुबा देगा!

मुसलमान और गाय

मुसलमानोंके साथ गोवधका प्रश्न लेकर मारपीट करनेमें जितना मजा आता है उतना गायकी सच्ची स्थिति सुधारनेमें कहाँ मिलता है? भारतसे अन्यत्र तुर्किस्तान, सीरिया, अरबस्तान इत्यादि देशोंमें कुर्बानीके समयमें गोवध बहुत कम होता है। परन्तु भारतमें, आवेशमें आकर या मुगल-साम्राज्यके पुछल्लेके रूपमें हिन्दुओंको चिढ़ानेके लिये गोवध विशेष रूपसे किया जाता है। परन्तु इसकी उपेक्षा करके यदि सच्ची दिशामें काम करना प्रारम्भ किया जाय तो मुसलमानोंका आवेश और चिढ़ाना दोनों ही ठंढे पड़ जायँगे। भारतमें जहाँ प्रति मिनट पाँच गायोंका बध तथा एकका परदेश गमन होता है, वहाँ मुसलमानोंसे झगड़ा करके यदि सालमें हजार-पाँच सौ गाय बचा ही ली गयीं तो कौन बड़ा भारी लाभ हो जायगा? गोबध मुसलमानोंके लिये नहीं किन्तु युरोपियनोंके लिये और ब्रिटिश टामियोंके लिये होता है। और विशेषतया मांसके लिये नहीं किन्तु चमड़ेके लिये गोबध होता है, इसका भी कुछ खयाल है? चमड़ा ही गायें माँगता है। कसाई उन्हें खरीदकर चमड़ेकी आवश्यकतापूर्ति करता है। माँस तो सहोत्पत्ति या अन्तिमोत्पत्ति (By product or end proluct) है।

कुरान और गाय

मुसलमानोंको समझना चाहिये कि बकरीदके दिन जो (अलकुरान) में कुरबानी करनेको लिखा है, वह बक्र माने बकरा [बे, काफ्, रे = बक्र = बकरा* (?)] की कुरबानी न कि बक्र माने गायकी कुरबानी है। पर क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभीको यदि भारतभूमिसे धान्य उत्पन्न करना है और उन्हें दूध घी चाहिये तो गायकी उन्हें बड़ी भारी आवश्यकता है। यही नहीं किन्तु मांसाहारी और विशेषतया गोमांसाहारी कितनी लम्बी हानि करते हैं इसकी जरा कल्पना कीजिये। १४–१५ वर्षकी आयुमें एक गाय १२ सन्तानें देती है, और १५४४० मनुष्योंका एक दिनका पोषण, और २५६००० मनुष्योंका एक दिनका खेतीका काम पूरा करती है! सौ खोकर एकका लाभ करनेके समान भारतमें मांसाहारकी स्थिति है। फिर भी जहाँ मनुष्य और पशु दोनोंका जमीनपर अधिक विस्तार हो वहाँ गोबध कितना भयङ्कर हो जायगा। आस्ट्रेलिया जैसे

* अरबीमें बक्र "बकरे" को नहीं कहते। गाय बैलको ही कहते हैं। —रा० गौ०

देशमें जहाँ प्रति वर्गमील एक मनुष्य रहता है, वहाँ शायद गोवधको किसी तरह अवकास मिल सकता हो, पर भारतमें इस समय गोवधकी गुंजाइश कहाँसे हो सकती है ?

गोवध किन उपायोंसे रुकेगा ?

जीवनका पलड़ा (Balance of life) तो अर्थशास्त्रके काँटेपर हिलता डुलता ही रहेगा। स्थिरता तो तब आयगी जब संख्याका स्थान गुण लेगा। हिंसा तो बराबर होती रहेगी। यदि जीवहत्या रोकनेकी अर्थात् सर्वदाके लिये तथा सचमुच जीवोंको बचानेकी इच्छा हो तो (१) गायको उसके शत्रुओंसे बचाना, (२) उसकी संतानको सुधारना, (३) नया पोषण, नया खून देना तथा नवीन एवं ठोस प्रकारसे पालन करना और (४) बेकाम गायोंका सुधार (Heed, Feed, Breed and Feed), इन चार पायोंपर जब गोवंशको खड़ा किया जायगा तभी गोवंश चल सकेगा, अन्यथा नहीं।

१—वह गायके शत्रु कौन हैं ?

गायके शत्रु कौन हैं, यह मालूम है ? गायके शत्रु हैं, वनविभाग (जंगल विभाग Forest Department) धन तुला (Money crops), अकाल, पशुशालाएँ (खोटी जीव दया), कसाई, भैंस, रेलवे और गायका निर्यात करनेवाले धनलोलुप व्यापारी। इस दुष्ट एवं सारहीन जीवदयाके स्थानमें यदि विवेकी उत्तेजन, आवश्यक सहायता, ही मिले तो शीघ्र पशुओंकी स्थिति सुधर जाय।

स्मरण रखना कि स्वराज्यकी सड़क दुग्धालयरूपी गोमंदिरसे होकर जाती है। साइलो (तृणकूप, घास आदि), पूरा चारा, सुंदर बली साँड़ और गांधी छापकी विवेकी जीवदयासे और राष्ट्रिय तथा बुद्धिसिद्ध (National and Rational) पशुपालनसे ही जीवोंकी रक्षा, उत्थान या उद्धार होगा और किसीसे नहीं हो सकता।

स्वराज्यके तीन दुर्ग

जब शक्ति, श्री तथा सरस्वतीके तीन दुर्गोंको जीतोगे तभी इनमें बैठी हुई दुर्गा स्वातन्त्र्य देवी स्वराज्यका दान करेगी। स्वराज्य विलायतसे पार्सलद्वारा आनेवाली वस्तु नहीं है। स्वराज्य तो मनकी स्थिति और हृदयका रंग है। शक्तिदुर्ग उत्तम गोरक्षाद्वारा अच्छी फसल पैदा होनेसे जीता जा सकता है, क्योंकि इससे दूध, घी और अनाज अधिक मात्रामें मिलेगा और इसके पोषणसे हमलोग बलवान बनेंगे। बलवान होनेसे सैनिक शक्तिको उत्तेजन मिलेगा और हस्तकौशल आदिसे वैज्ञानिक शक्ति चमक निकलेगी जिससे यथार्थ लाभ होगा। बौद्धिक शक्ति तो गोरस,—गोदुग्ध-पान करनेसे ही मिलेगी। अच्छी खेती ही उद्योगकी जड़ (Key–industry) है, उसकी उत्पत्तिसे उद्योग-धंधा चलेगा और उससे आयी हुई संपत्तिसे जो समृद्ध, संतुष्ट और संस्कारी जीवन मिलेगा वही अथवा उसमेंसे ही स्वराज्य प्राप्त होगा।

संसारका केंद्र गाय

'भारतके भविष्यके ऊपर जगत् निर्भर है।' यह आवाज राष्ट्रिय केंद्रोंसे निकल रही है। इसमें जितनी सत्यता है उतनी ही सत्यता इस बातमें भी है कि 'गायके भविष्यके ऊपर ही भारतका भविष्य निर्भर है'। इसलिये तात्विक दृष्टिसे देखनेपर ज्ञात होगा कि भारतीय गो-समस्याके ऊपर ही सारा संसार निर्भर है।

राजकीय आन्दोलन एसेम्बली तथा इसी प्रकारकी अन्य मनोरञ्जक प्रयत्नोंकी अपेक्षा राष्ट्रिय एवं बौद्धिक—अर्थात् अर्थसिद्ध एवं कार्यसाधक,—प्रकारसे गायके हितके लिये यथाशक्ति प्रयत्न करना क्या कम देशसेवा है? भारतका राज्य-कारण गायकी नीतिमें है और गायकी नीति ही जगतकी नीति है, यह सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जा सकता है। पर देखे कौन ? और करे कौन ?

यह तो अरबों रुपयेका प्रश्न है

उपर्युक्त बातकी पुष्टिके लिये थोड़ेसे आँकड़े देखिये। सन् १९२८ में २२९७ करोड़ रुपया कुल खेतीसे मिला था। उसमें ६०६ करोड़ रु० केवल पशुओंके दूध, ऊन, बाल आदिसे मिला था। साधारणतया पशुद्वारा लाभ और उनके श्रमका मूल्य १५४० करोड़ रुपया माना जाता है। इस प्रकार २३ अरब रुपयेके खेतीके प्रश्नमें, प्रधानतया

स्वराज्यका मार्ग

शक्ति-दुर्ग (उत्तम गाय)

१—सिंहद्वार (कृषि विषयक उन्नति)। २-सिंहद्वार (आर्थिक सुधार)। ३-सिंहद्वार (स्वराज्य)
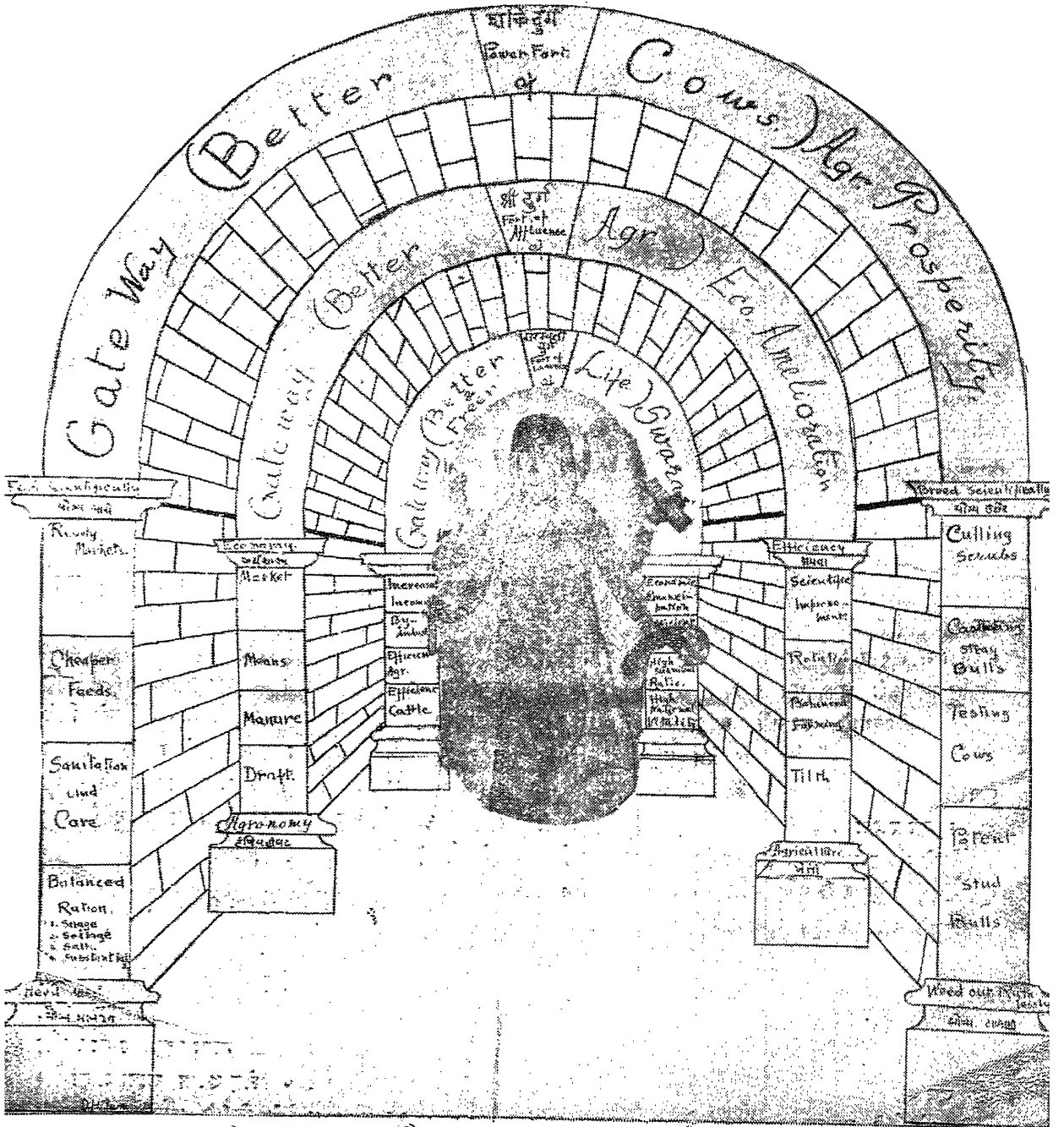
श्री-दुर्ग (उत्तम कृषि)

सरस्वती-दुर्ग (उत्तम तथा स्वतन्त्र जीवन)

नान्यः पन्था विद्यते अयनाय

भारत सरीखे देशमें बैलका कितना महत्वपूर्ण स्थान गिना जायगा ? १५ अरब रुपयोंमें ६ अरब दूध, घी आदि और ९ अरबका परिश्रम, यह प्रश्न क्या कम महत्त्व रखता है ?

भारतमें पचास वर्ष पहले २७ करोड़ गोवंश था। उसमें आजकल ९ करोड़ रह गया है। इस न्यूनतामें आश्चर्य ही क्या है ? जीवनके संग्राममें निर्बल मारा जायगा और जो सबल होगा उसीकी जान बचेगी। अभी भी लाखों जीवोंकी हत्या होती है। क्योंकि आर्थिक दृष्टिसे उनकी रक्षा करनेकी हमलोगोंमें सामर्थ्य ही नहीं है। जब उनका आर्थिक महत्त्व बढ़ेगा तभी पशु बचेंगे। और महत्त्व तभी बढ़ेगा जब कि सुपालन, सुभोजन, बलिष्ठ पशुओंका उत्पादन और निर्बलोंका सबलीकरण, यह चतुष्पदी कार्यरूपमें परिणत की जायगी।

(१) भारतमें यदि ३ करोड़ ही दूधारू गायोंकी संख्या ली जाय और उनमें उपर्युक्त चतुष्पदी आजमायी जाय तो साधारणतया ५०० पौंड दूध एक दशाब्दीमें अत्यन्त सरल कार्य है। और खास करके जब गायें इतनी उतर गयी हैं, तब। अब इस दूधका यदि सर्व साधारणतया एक आना ही भाव मान लें तो भी भारतके राष्ट्रिय धनमें प्रतिवर्ष १८५ करोड़ रुपयोंकी वृद्धि की जा सकती है।

(२) मजेकी बात तो यह है कि भारतमें करोड़ रुपयाका मक्खन, पनीर, दूध, घी आदि प्रतिवर्ष आता है।

अब हम लोगोंको, कमाये हुए तथा बिन कमाये हुए चमड़ेका जो बृहद्व्यापार भारतमें भारतके हितके विरुद्ध, अपनी बुद्धिहीनता एवं कर्तव्यविमुखताके कारण चल रहा है उसके आँकड़े देखने चाहिये।

(१) भारतमें ४० से पचास करोड़तक मूल्यके चमड़ेका व्यापार होता है। भारतका चमड़ेके व्यापारमें, संसारमें तीसरा नंबर है।

(२) भारतसे सन् १९२४-२५ ई० में ६७७ लाखका कमाया हुआ तथा ७०० लाखका सूखा चमड़ा परदेश गया था। और साधारणतया तो १३-१४ करोड़ रुपयेका चमड़ा प्रतिवर्ष परदेश जाता ही है।

१३ करोड़ रुपयोंके लिये ३३ करोड़ मूल्यके पशुओंका बध! यही पशु यदि जियें तो इनके दूध, खाद और खेतीकी उत्पत्तिसे एक अरब रूपयोंका लाभ हो। भारतको (Scrubs) निर्बल पशुओंकी शुश्रूषामें ६६ करोड़ रुपयेका व्यय भोगना पड़ता है। इसलिये यदि बध किये जानेवाले पशुओंका सदुपयोग किया जाय तो इन निर्बल पशुओंके पोषणमें सरलता हो तथा भार कम हो।

पशुओंका मोक्षद्वार, चर्मालय

चर्मालयका उद्योग करोड़ोंका है। चर्मालयकी जो उन्नति हो तो चमड़ेकी उत्पत्ति तथा व्यापार दोनोंकी सदुन्नति हो। निर्बल पशुओंकी रक्षा हो। वे बधसे बचें और बधालयोंका वेग कम हो। जो कुछ करना है सो तो यह है कि निर्बल पशुओंको अपनी दया तथा अनुत्पादक दानसे बचावे और पशुओंसे ही पशुओंकी रक्षा करावे। निर्बल पशुओंका निर्वाह चर्मालयसे चले और निर्बलोंको सबल बनाने तथा सबलोंको आगे बढ़ानेका काम दुग्धालय उठा ले। इस प्रकारके सुप्रबन्ध तथा विवेकयुक्त दान करना प्रारम्भ कर दिया जाय तो गोप्रश्न देखते-देखते ही हल होने लगे।

खेतीको बढ़ावा देना। खादी और गाय

गायकी रक्षासे भारतीयोंका आयुष्य और आरोग्य, और उसका पोषण किस प्रकार बढ़ेगा इसके दोहरानेकी जरूरत नहीं है। जिस प्रकार खादी १२ से २५ अंशतक रक्षा करती है उसी प्रकार यदि गायका उद्धार हो जाय, तो इतनी ही रक्षा गायद्वारा हो और उसके पुत्रद्वारा भी उतनी ही रक्षा प्राप्त हो। यह दूना लाभ होगा। जबतक स्वराज्यरूपी पक्षीके खादी तथा गायरूपी दोनों पंख सबल नहीं होंगे तबतक वह भारतीयोंके जीवनरूपी उद्यानमें कभी स्वच्छन्द विचर ही नहीं सकता। और भी

(१) भारत सरकारके पशु-विद्या विशारद विलियम स्मिथके 'जर्नल आव डेरिङ्ग ऐन्ड डेरी फार्मिङ्ग इन् इन्डिया' के प्रथम वर्षके द्वितीय भागमेंसे, १९१४ई०।

(२) इलाहाबाद फार्मर अंक २, मार्च १९३३ ई०।

(१) हाइड सेस इन्क्वायरी कमेटीकी २८ सितम्बर १९२९ ई० की रिपोर्टमेंसे।

(२) सर अतुल चटर्जी इन्डस्ट्रीज इन यू० पी०।

आजकल एक ओर तो बेकार मनुष्य (Jobless men) अधिक संख्यामें दीख पड़ रहे हैं और दूसरी ओर बिना करनेवालेके धंधे (Menless jobs) भी बुरी अवस्थामें हमारे दृष्टिपथकी ओटमें पड़े हैं। इन व्यापारोंको यदि उत्तेजन मिले तो इतनी बेकारी न दीख पड़े।

संख्याके स्थानमें सत्व

भारतमें अनुत्पादक एवं निर्बल पशु तथा निर्बल मनुष्योंके कारणसे ही जमीनपर अधिक कर (Pressure on hand) बढ़ा है। उत्पादकताकी अपेक्षा संख्य अधिक है। दूसरे देशोंके साथ तुलना करनेसे संख्या अधिक

दूधका जादू

दूधका पाचकरस विषघ्न एवं अन्तर ग्रन्थियोंका उत्तेजक होता है
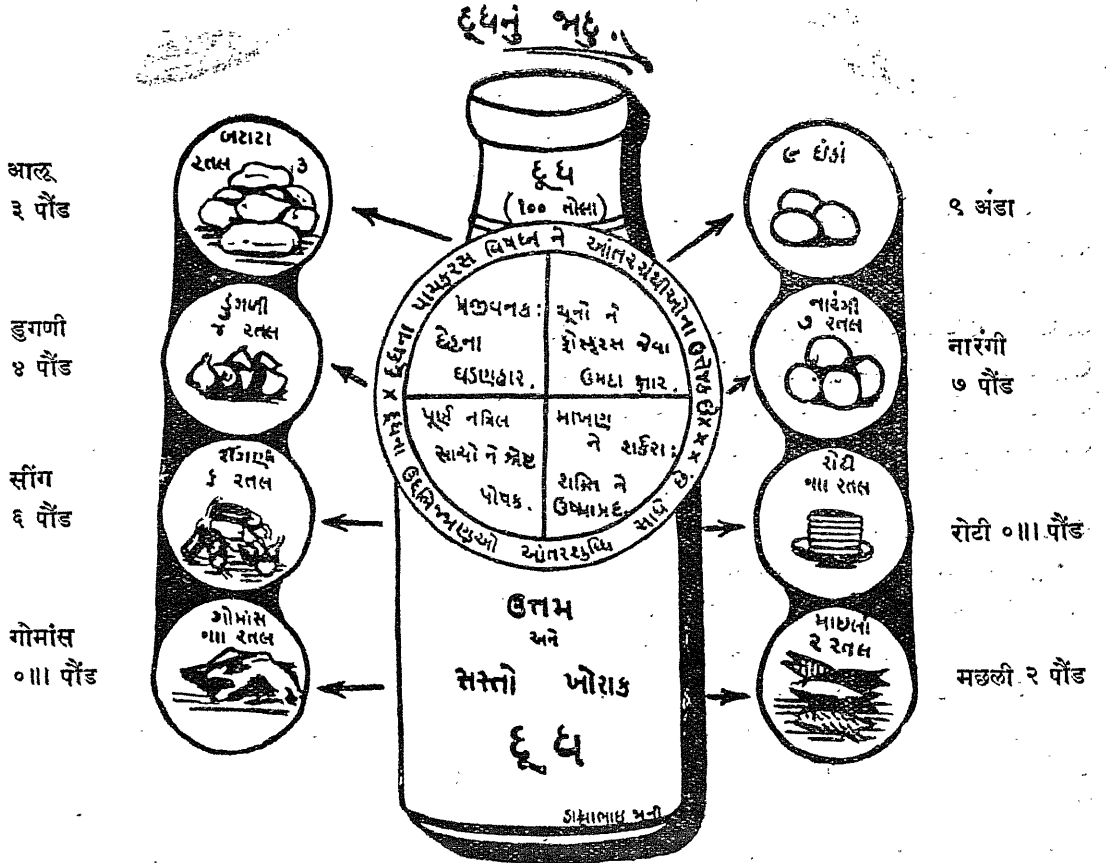
दूधके उद्भिज्जाणु आन्तरिक शुद्धिकर होते हैं। उत्तम तथा सस्ता आहार और सात्विक उत्तेजनाप्रद दूध ही है।

खाद्योज देह पालक हैं	चूना तथा फास्फोरस जैसे उत्तम क्षार
पूर्ण प्रत्यामिनें सच्ची एवं श्रेष्ठ पोषक हैं	मक्खन और शकर शक्ति एवं ऊष्मादप्रद हैं

नहीं कही जा सकती। क्योंकि वहाँपर तुलनाका आधार गुण एवं उत्पादकता रहती है, संख्या नहीं। यहाँ गुणकी (Quality) कमी है, उसीको पूरा करना चाहिये। प्रमाणमें नहीं किन्तु प्रकारमें, संख्यामें नहीं किन्तु गुणमें, जबतक सुधार नहीं होगा तबतक आज कलकी हाय-हाय बनी ही रहेगी, इसमें रंचमात्र भी शंका नहीं है। जितना दो गायें पोषण देती हैं उतना एक गाय दे तो काम बने, और निर्बल गायोंकी रक्षा हो। और यह कोई अशक्य बात भी नहीं है।

अनुत्पादकताका शाप

आजकल प्रति सौ मनुष्य ६७ पशु पृथ्वीके भाररूप हो रहे हैं। पशुओंके पीछे प्रतिवर्ष एक अरब रुपयोंकी रोकड़ और इससे आठ-नव गुने मूल्यके घास-चारेकी आवश्यकता पड़ती होगी। प्रति वर्ष १० अरब रुपया पशुओंके पीछे खर्च किया जाता है। भारतके दानसे यदि ५% ही फल और वह भी बड़ी कठिनतासे निकलता हो, तब !

भारतमें तीन वर्षके बैलका मूल्य ६०) तक समझा जाता है। परन्तु ६०) तो यह पहले वर्षमें ही खा जाता होगा।

ब्रिटिश भारतमें ४५८ लाख बैल, और ३८० लाख गायें होंगी। ९०% बैल खेतीमें ९ वर्ष काम देते हैं, इस हिसाबसे प्रतिवर्ष ४६ लाख बैल और १४ लाख गायें बढ़नी चाहियें। इस हिसाबसे २४० लाख गायें बैलोंकी दृष्टिसे ओछी पड़ती हैं। अब ये बढ़ी हुई गायें यदि दूधकी उत्पत्तिसे स्वाश्रयी न हों तो मौतके घाट उतरेंगी ही। २॥ करोड़ निकम्मी गायोंको कौन खिला सकता है और कितने कालतक रक्षा कर सकता है? यदि रक्षा करनी चाहिये तो पशुओंकी अपनी पराधीनता तथा लाचारीकी?

भारतके २६ करोड़ पशुओंमेंसे २४॥ करोड़ पशु भारभूत हो रहे हैं। प्रति पशु ३०) रख लें तो भारतको प्रतिवर्ष ७ अरब रु० का बोझा व्यर्थ उठाना पड़ता है। महासभा, सत्याग्रह इत्यादिमें अमुक लाख रुपया समुचित रूपसे खर्च कर दिया जाता है तो देशका कितना यश और कितनी शक्ति और योग्यता बढ़ती है? जब कि ७ अरब रुपया इस तरहसे नष्ट हो जाता है तो देशकी कितनी तेज तथा शक्तिकी हानि होती होगी? इस ७ अरब रु० के मूल्यके सामने २० करोड़के धर्मादेकी क्या गिनती? यह तो प्यासेके लिये एक बूंद भी नहीं है! इससे तो कुछ भी काम नहीं चल सकता यह तो सौमें कठिनतासे तीन अंश कहा जा सकता है। भारतको इतनी आकांक्षा है इससे अधिक एवं वाहियातकी नहीं। भारतको तो इसका थोड़ासा सूत्र चाहिये। ओ, नीच एवं क्षुद्र दान तथा दयारूपी द्रौपदी, ओ पामर पाञ्चाली! तू अपने उद्धारक कृष्ण भगवानकी अंगुलीमें यदि एक टुकड़ा भी बाँध सके तो तेरा कृष्ण ९९९ तन्तुओंको गिनकर तुझे ९९९ साड़ियाँ अवश्य देगा। दुःशासन पीड़ित द्रौपदीने स्नेह एवं सत्पात्ररूपी कृष्णके द्वारपर जितने सूत जमा कराये थे उतनी साड़ियाँ उसे मिलीं। इसी प्रकार यह दान जितना सक्रिय फलवान होगा उतना ही लाभ भी होगा।

यह प्रश्न अत्यन्त विवेक और दूरदर्शिताका है। या तो दान देना ही बन्द हो जाना चाहिये, या तो यह अच्छा होगा कि सत्य मार्गमें दान दें। हमारी पशुशालाएँ, हमारे महाजन और हमारे दानी लोग जो राह चलती चींटियोंको शकर, कुत्तोंको रोटी और पक्षियों-कबूतरोंको चना आदि देनेमें दया-भाव दर्शाते हैं, क्या ध्यान देंगे कि इन चींटियों, कुत्तों तथा कबूतरोंसे लाखगुना अच्छे, दूधके बिना बिलखते हुए छोटे-छोटे बच्चों, पेटके दावानल बुझानेको अपने ही बन्धु-बान्धव, अपना शील, अपनी पवित्रता, आबरू तथा धर्मको बेचते हुए आसाम, उड़ीसा और बिहारके कंगाल लोग, ज्ञानचक्षुके बिना भटकनेवाले ९२% अन्नके बिना कलपते हुए अपने भाई (भूखे नारायण और दरिद्री विष्णुओं) को सत्कारने तथा पालनेकी ओर आप लोगोंका ध्यान कब जायगा?

जो दरिद्रताकी वृद्धि करे उसे दान नहीं कहा जा सकता। इसे तो दरिद्रता फैलाना कह सकते हैं। जो स्वाश्रय, सशक्तता तथा स्वतंत्रताका दान करना हो तो हमें इसका प्रकार बदलना होगा। गोरक्षाके बारेमें हम लोग बुद्धि एवं हृदयका उपयोग नहीं करते और इसीसे यह खराब दशा हुई है। भारतको अब जागना होगा और इसी तरह जागना पड़ेगा।

(इति)

व्याधियोंका मूल कारण

(गत अगस्त मास संख्या ५ से आगे)

[ले० स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य]

शरीरकी व्यवस्था कैसे बिगड़ती है ?

शरीरमें परिवर्त्तनव्यापार

हम बतला चुके हैं कि जो हम खाते हैं उस खाद्य सामग्रीमें शरीरकी भिन्न-भिन्न ग्रन्थियोंके रस अन्न-प्रणालीमें आकर मिलते हैं और उन रसोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके सन्धानी-कीटाणु विद्यमान रहते हैं। उनके भुक्तद्रव्योंमें मिलनेसे,—अथवा यों कहिये कि उक्त भुक्त-द्रव्योंमें उनकी खाद्य सामग्रीकी विद्यमानतासे वह उसपर अपनी खाद्य क्रिया आरम्भ कर देते हैं। इसीसे भुक्तद्रव्यमें सन्धान उठ खड़ा होता है और वह कण टूट-टूटकर एक रूपसे दूसरे रूपमें बदलने लगते हैं। परिवर्तनका यह व्यापार मुखसे आरम्भ होकर गुदापर्यन्त चलता रहता है।

दोपहरको अधिक खा जानेपर शामको भूख न लगना

मान लो कि हम चौबीस घंटेमें समस्त खाद्य, पेय द्रव्य दो सेरके लगभग खा जाते हैं, नित्य ही इतनी मात्राके लगभग खाया करते हैं। पर किसी दिन जब अच्छा स्वादिष्ट भोजन मिल जाय तो उसका स्वाद हमें अधिक खानेके लिये विवश कर देता है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो नित्यके एकमात्रिक अहारसे कभी-कभी द्विगुणतक खा जाते हैं, पर उनको कोई विकार नहीं होता। उन्हें अधिक परिमाणमें खाया हुआ भोजन भी पच जाता है। कई ऐसे भी व्यक्ति देखे जाते हैं जो अधिक मात्रामें खा तो लेते हैं पर उन्हें समयके भीतर पचा नहीं सकते। उनको अजीर्ण, दर्द, अरुचि आदिकी शिकायत हो जाती है।

ऐसा क्यों होता है ? इसका प्रधान कारण तो यह है कि जितने परिमाणमें जो ग्रन्थियां रसनिर्म्माण करती हैं तथा उस रसके साथ जितने परिमाणमें पाचक क्रीटाणुओंकी वृद्धि हो सकती है, उससे अधिक वृद्धि वह कभी नहीं कर सकतीं। मान लो, मुखकी लालाग्रन्थी एक बारके भोजनार्थ एक सेरके लगभग रस निर्म्माण करती है जिसमें लालीन नामक एक तोला पाचक कीटाणु होते हैं। वह आध सेर मण्डमय और शार्करी द्रव्योंको तीन घंटेके भीतर द्राक्षोज और फलोज शर्करामें बदल देते हैं। यह इनकी मात्राके अनुसार कार्यसीमा है। नित्य तो हम इसी मात्रामें शार्करी पदार्थोंको खाते रहते हैं। हमारे नियमित आहारसे लाला-ग्रन्थियां इसी मात्रामें लाला रस तथा लालीन नामक कीटाणुओंको बनाने या परिवर्द्धन करनेकी अभ्यासी हैं। परन्तु, किसी दिन अच्छे सारवान् स्वादिष्ट पदार्थ खानेको मिल जायँ तो हम स्वादके मारे या लालचके मारे अधिक खा जाते हैं। जिस दिन ऐसा होता है उस ही दिन यदि अधिक भोजन दिनमें किया हो तो सायंकालको, समय आनेपर, क्षुधा नहीं लगती।

अधिक खा जानेसे पचानेमें तिगुने-चौगुने समयका लगना

ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण यह है कि ग्रन्थिसे जो लाला रस एक सेर निकलता था वह तो उतना ही निकला, लालीन नामक पाचक कीटाणु भी एक तोलाकी ही मात्रामें, दैनिक चर्याके अनुसार ही बने, बढ़े, और उस सारवान भोजनमें मिले। परन्तु आज भुक्त द्रव्यकी मात्रा आधसेरकी अपेक्षा एक सेर थी। आधा सेर मण्डमय और शार्करी पदार्थोंको द्राक्षा शार्करामें बदलनेके लिये तो तीन घंटे लगते थे। आज उसी हिसाबसे दूनी मात्रामें भोजन होनेके कारण स्वभावतः दूना समय लगना चाहिये। परन्तु परीक्षाओंसे देखा गया है कि ऐसे अवसरपर दूना समय न लगकर, तिगुना, चौगुना समय और कभी-कभी इससे भी अधिक लग जाता है। इसका भी कारण सुनिये, जो बड़े महत्वका है। परीक्षाओंसे देखा गया है कि भोजन जबतक मुँहमें रहता है जहां कि लाला रस सीधे ग्रन्थियोंसे

आकर मिलता है, मण्डमय पदार्थोंके विश्लेषणकी क्रिया बड़े वेगसे होती है। गलेसे नीचे उतरकर जबतक अन्न ओझरी (आमाशय) में पहुँचता है और वहां जबतक ओक्षरीका रस उस भुक्त द्रव्यमें नहीं मिलता यह व्यापार अच्छी प्रकार चलता रहता है। परन्तु, जहाँ ओक्षरीरस उक्त भुक्तमें मिलने लगता है, लालीन कीटाणुओंकी क्रिया मन्द पड़ने लगती है। इस स्थितिमें यहाँतक परिवर्तन होता है कि तीन घंटेके पश्चात् उक्त लालीन कीटाणु ओझरीरसके ओझरीन कीटाणुओंद्वारा इतने प्रभावित होते हैं कि वह मृत हो जाते हैं। ऐसे समय यदि भुक्त द्रव्यका मण्डमय भाग द्राक्षोजमें न बदला हो तो वह फिर शरीरके उत्ताप और उसके विद्यमान रसोंसे मिलकर लेईरूपमें परिवर्तित होने लगता है।

पेटमें दर्द होना

कभी-कभी यह लेई गाढ़ी हो जाती है और इसका कोई भाग आमाशयमें लग जाता है अथवा चिपक जाता है। इससे पेटमें भार मालूम देने लगता है। दूसरे आमाशयमें दर्द भी होने लगता है। वैद्य ऐसी स्थितिमें लवणाम्लसंयुक्त चूरन, चटनी आदि इसलिये चटाते हैं कि मुखकी लाला वेगसे श्रव पड़े और वह उदरमें जा पहुँचे। इस ताजी लालामें जो लालीन नामक कीटाणु विद्यमान होते हैं, वह ओझरीमें पड़े या चिपके मण्डमय पदार्थको जब पाते हैं, तो उसपर वही अपना पूर्वका जीवन व्यापार आरम्भ कर देते हैं, इसीसे कुछ ही समयमें वह लगा हुआ या विद्यमान मण्डमय भाग द्राक्षोजमें परिवर्त्तित हो जाता है। उसी समय देहका दर्द बन्द हो जाता है।

कोई व्यक्ति यह न समझ ले कि समस्त मांड़ीका द्राक्षोजमें परिवर्त्तन यहीं पूर्ण हो जाता है। यह बात नहीं है। इसका कुछ-न-कुछ अंश बच भी जाता है। परन्तु जब वह भुक्त द्रव्य ग्रहणी-पथको पार करने लगता है तो उस समय क्लोमग्रन्थिसे भी कई प्रकारके पाचक रस निकलते हैं। जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकारके पाचक कीटाणुओंका मिश्रण पाया जाता है। जिनमें एक लालीन नामक कीटाणुकी जातिकेसे होते हैं जिनका नाम सारपाचीन है। वह रहे हुए मण्डमय पदार्थोंपर उसी प्रकारकी क्रिया आरम्भकर देते हैं जो कुछ पूर्वमें लालीन कीटाणु करते थे। इनका जीवन व्यापार भी एक निश्चित समयतक ही रहता है। यदि भुक्त मांड़ी एक निश्चित मात्राके भीतर हो तो वह समयके भीतर ही द्राक्षोज या फलोजमें परिवर्त्तित हो जाती है। यदि मांड़ीकी मात्रा अधिक हो तो यहाँ भी वही बात होती है जो ओझरीमें हुई थी। पेट-दर्द, गुरुता, अतिसार आदि उपद्रव देखे जाते हैं। अरुचि, बदहज्मी आदिकी शिकायत तबतक बनी रहती है, जबतक उक्त मांड़ी अपने असली रूपमें बनी रहती है।

कोई-कोई द्विगुण भोजन भी पचा जाते हैं ?

इस बातकी भी परीक्षा की गयी है कि कई व्यक्तियोंके रसोंमें पाचक कीटाणु इतने बलवान् और अच्छी मात्रामें पाये जाते हैं कि नैतिक खाद्यकी अपेक्षा वह कभी-कभी द्विगुण भी खा लें तो उसे वह अच्छी प्रकार पचा जाते हैं। पर उनकी यह बलवती-शक्ति सदा ही ऐसी नहीं देखी जाती। जिस प्रकार मांड़ी या शार्करी पदार्थोंका परिवर्त्तन इस उदरीय पाकशालामें या विश्लेषणशालामें होता है, ठीक इसी प्रकारका व्यापार भिन्न-भिन्न उदरग्रन्थिके रस कीटाणुओंके मिश्रणसे प्रत्यामिनीय और स्नेही पदार्थोंके विभाजन और विश्लेषणका होता है। इन समस्त पाचक कीटाणुओंका वर्णन करूँ तो बहुतसे पृष्ठ इसीके लिये चाहिये।

मानव जातिकी लिप्सा

मानव जातिने अपने बुद्धि-कौशलसे अनेक खाद्य सामग्रियोंमेंसे ऐसी चीजोंको चुनते-चुनते चुन लिया है, जिनमें भोजनके सारवान् अंशोंकी मात्राएँ सबसे अधिक हैं। दूसरे, जबसे यह भोजनीय द्रव्योंको पका, भून, सेंक, तलकर खानेका अभ्यासी हुआ, उनमें नमक, मिर्च मसालोंका उपयोग करना सीखा, उससे जिह्वाने रसास्वादनका विशेष आनन्द पाया। इसकी खाद्य-लिप्सा बढ़ती ही चली गयी। आज इसीका परिणाम यह है कि एक-एक वस्तुको हम अनेकों रूपमें बनाकर खाते हैं।

नगर-निवासी प्रायः अस्वस्थ क्यों रहते हैं ?

लोग कहते हैं कि शहरोंमें रहनेवालोंका स्वास्थ्य अधिकाधिक बिगड़ता चला जा रहा है। वैद्य और डाक्टर

इसके कई कारण बताते हैं। और कारण चाहे हों या न हों किन्तु एक कारण—भोजनका अधिक खाना, स्वादकी वस्तुएँ मिलते रहनेके कारण इच्छा न होनेपर भी खाना, दिनमें कई-कई बार खाना, भूख न लगनेपर भी घरवालों या दोस्तोंके आग्रहसे कुछ-न-कुछ अवश्य खाना, यही अस्वस्थताको उत्पन्न करनेवाला, जीवनशक्तिको नष्ट करनेवाला, अनेक प्रचंड रोगोंको निमन्त्रण देनेवाला प्रधान कारण है। एक सहस्र नगरके व्यक्तियोंको एकत्र कर लीजिये, उनमेंसे शायद ही एक आधा संयमी मिले जो मिताहारी हो या जिह्वाके वशीभूत होकर न खाता हो।

ग्राम-निवासी स्वस्थ क्यों रहते हैं ?

ग्रामीण व्यक्तियोंका स्वास्थ्य क्यों अच्छा होता है ? इसमें सबसे प्रधान बात यही है कि उनके दैनिक भोजनमें बहुत ही कम परिवर्त्तन होता है। जो व्यक्ति एक दो शाक और एक दो दाल नित्य खाते हैं वह सदा ही या कई-कई मास एकसा ही भोजन करते रहते हैं। कई व्यक्ति वर्षों ही एकसे भोजनपर जीवननिर्वाह करते हैं। पर नगरके व्यक्तियोंकी कथा ही निराली है। यदि नित्य नयी भाजी, नित्य नयी दाल न मिले, तो रोटी नहीं खायी जाती। फिर उसके साथ अनेक प्रकारकी चटनी, अचार, मसाले, बड़े, पकौड़ी और चाहिये। एक तो प्रथम ही सर्वोत्तम खाद्य फिर वह भी तला हुआ, खूब घीमें भुना हुआ तरबतर। उसपर चटोरी जिह्वा हो जिनके मुँहमें ! बीमारी या रोग, दुःख बिना निमन्त्रणके न आवे तो आवे कौन ?

डाक्टर-वैद्योंकी बाढ़

अभी तो एक-एक घरके साथ एक-एक डाक्टर या वैद्य सदा विद्यमान रहता है। डाक्टरोंकी दवाइयाँ क्या होंगी ? वैद्य डाक्टर भी दिन-रात इस बातका ढिंढोरा पीटते रहते हैं। "मेरा चूरन सेरों खुराकको क्षणमें भस्मीभूत कर देगा। लोगो घबराओ मत ! खूब खाओ ! दिनमें चार-चार पाँच-पाँच बार खाओ ! परवा न करो ! गाँठ मजबूत रखो। हम तन्दुरुस्तीके ठीकेदार तुम्हारे द्वारके पास इसी लिये बैठे हैं। ऐसे ही अनेक बाह्य और आन्तरिक कारणोंको पाकर मनुष्य अधिकसे अधिक खाता रहता है। और वर्षके ३६० दिनोंमें शायद ही दस दिन सुखी रहता हो।

खाने-पीनेमें चटोरेपनकी शिक्षाका आरंभ

एक तो शहरोंमें इस बातका सबसे बड़ा दुःख यह है कि बालकोंको कोई ऐसी शिक्षा देनेका प्रबन्ध नहीं कि तुम्हें भोजन कैसा करना चाहिये। किस प्रकार करना चाहिये तथा कितनी बार करना चाहिये। और कौन-कौनसे भोजनकी मात्रा किस शक्तिके व्यक्तिके लिये कितनी होनी चाहिये। दूसरे इसके विपरीत बालकोंको चटोरा बनानेकी स्वाभाविकतया शिक्षा अवश्य मिलती रहती है। इसीसे हमारे खान पानकी व्यवस्था सदाके लिये बिगड़ जाती है और हम जल्दी ही स्वास्थ्यसे हाथ धो बैठते हैं।

शरीरकी स्थूलता

हम सब शहरकी बिगड़ी परिस्थितिके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि हमें शारीरिक प्रबन्धका कोई ध्यान नहीं रहता। सदा कृत्रिम-अकृत्रिम प्रत्येक विधिसे इस बातको ढूँढ़ते रहते हैं कि जिस तरह बने हम अधिक खुराक खा सकें, तो ठीक है। यह कभी नहीं देखते कि हमारी शारीरिक शक्ति कितनी है, उसकी कार्यशक्ति कितनी है। हमारे अन्दर इस बातका विश्वास जमा दिया गया है और दिन-रात जमाया जाता है, कि जितना अधिक अच्छे पौष्टिक भोजन खाओगे उतने ही मोटे-ताजे तन्दुरुस्त रहोगे। गाँवोंमें ढूँढ़ो तो हजारमें एक भी शायद कोई मोटा आदमी मिले पर शहरमें जो जरा आसूद हालत हैं उनमें सौमें पचास तो अवश्य ही मोटे मिलेंगे, जिनमें दो तीन तो ऐसे भी मिलेंगे जिनके लिये उठना-बैठना ही कठिन होगा।

विषय-वासनाओंके शिकार

यह लोग यह नहीं समझते कि शरीरको कितने स्नेही पदार्थोंकी आवश्यकता होती है ? हमें कितना खाना चाहिये ? वह तो सदा यह चाहते हैं कि हमारी विषय-वासनाएँ सदा पूर्ण ही न होती रहें बल्कि बढ़ती जाँय। फिर शरीर भी हृष्ट-पुष्ट, मोटा, ताजा सदा बना रहे।

तुच्छ कीड़े आत्मरक्षा कैसे करते हैं ?

साँप बननेवाली इल्लियोंकी चालें

[ले०—ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालङ्कार, एम्० एस्-सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार, तहसील हाटा, गोरखपुर]

कीड़ों-मकोड़ों और अन्य जीवोंके नवजात बच्चोंमें अन्तर

धिकांश कीड़ोंकी परिवृद्धि-क्रममें अंडेसे निकले हुए कीटको इल्ली, भुड़ली अथवा कैटरपिलर (Caterpiller) कहते हैं। पक्षी, भेड़, मनुष्य आदि प्राणियोंके नवजात बच्चे पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए पक्षी, भेड़ और मनुष्यके समान ही प्रतीत होते हैं, वे अपने पैतृकोंके लघु स्वरूपमात्र (Miniature) होते हैं। किन्तु कीड़ोंके विषयमें यह बात लागू नहीं होती। उन्हें अंडेसे पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए कीड़ेके समान बननेमें कई अवस्थाओंको पार करना पड़ता है कई बार चोला बदलना पड़ता है—काया-पलट होती है। इल्लियोंको देखकर कोई साधारण पुरुष यह नहीं कह सकता है कि उनका कीड़ोंसे किसी प्रकारका परस्पर सम्बन्ध है। बरसातके दिनोंमें पशुओंके गोबर अथवा अन्य गंदे और सड़े पदार्थोंमें बजबजाते हुए अनगिनत छोटे-छोटे सफेद कीटोंको देखकर यह किसे अनुमान हो सकता है कि ये सारे-के-सारे प्राणी कल ही घरेलू मक्खियाँ (House-flies) होकर हमें सब भाँति सतावेंगे।

इल्लीकी बनावट

शरीर

यदि हम पाठकोंको इल्लीकी बनावटका थोड़ा-बहुत दिग्दर्शन कराना चाहें तो हम कहेंगे कि उनके शरीर क्या हैं मानो अर्द्ध-द्रव पदार्थसे परिपूर्ण छोटी-छोटी अतीव मृदुल और सुकोमल नलिकाएँ (tubes) हैं। केंचुएकी भाँति उनके शरीर भी अंगूठीके समान गोल-गोल(segments)

भोजनकी वस्तुओंमेंसे चाहे शार्करी वस्तुएँ अधिक खाओ, चाहे प्रत्यामिनी अथवा स्नेही सभी कोई-न-कोई अस्वस्थताका कारण होती हैं।

समयसे पूर्व ही शारीरिक शक्तिका क्षीण होना

इसमें कोई संशय नहीं कि भोजन खानेके कुछ समय पीछे पाचक यन्त्रमें जितनी अधिक खराबी मंडमय और नोषजनीय पदार्थ करते हैं उतनी स्नेही नहीं करते। इन्हींके कुपाच्य या अविश्लेषितरूपमें रहनेपर उस समय होनेवाले—अजीर्ण, अध्मान, उदरपीड़ा, शूल, वमन, अम्लोद्गार, अतीसार आदि कई कष्ट होते हैं। तथा इन्हीं अविश्लेषित पदार्थोंके अन्न प्रणालीमें कई-कई दिन पड़े रहनेपर उसमें जो अयोग्य अहितकर सन्धान उठने लगता है। उससे जो तरल विष और विष-वायव्य-जनित होते हैं वह शिरः शूल, प्रतिश्याय, ज्वर, सर्वांग पीड़ा, सन्धिवात, रक्त विकार आदि कोई ४५—५० के लगभग ऐसी व्याधियाँ होती हैं जिनका कभी-कभी क्षावर्त्त होता ही रहता है। और जीवनमें इनके बारम्बार दौरे होते रहनेके कारण शरीरकी शक्ति समयसे पूर्व ही क्षीण हो जाती है।

पेट खराब रहना

जिन व्यक्तियोंका खान-पान ठीक नहीं रहता निश्चय ही उनका पेट खराब रहता है। ऐसे व्यक्तियोंकी अन्न प्रणालीमें अयोग्य, अविश्लेषित पदार्थ बने ही रहते हैं—और उसमें अनेक प्रकारके जीवाणु, कीटाणुओंद्वारा अहितकर सन्धान उठते ही रहते हैं और उस सन्धानमें सदा ऐसे पदार्थ या विषोंका समूह बनता रहता है जो शरीरको स्थानिक हानि तो नहीं पहुँचाता प्रत्युत, उनसे शरीरके अन्य अवयवोंको अधिक हानि पहुँचती है जो निर्बल होते हैं।

(क्रमशः)

मणियोंके बने होते हैं। हाँ मणियोंकी संख्या दस-बारहसे अधिक नहीं होती है। बहुतोंमें ये मणियाँ स्पष्ट होती हैं, औरोंमें वे अलग-अलग नहीं जान पड़तीं; पर होती अवश्य हैं।

सिर और मुँह

वैसे तो इनका सारा शरीर अत्यंत नाजुक होता है और तनिकसा धक्का लगनेपर विदीर्ण हो जाता है अथवा दबाव पड़नेपर पिच्चा हो जाता है परन्तु शरीरकी अपेक्षा इनका
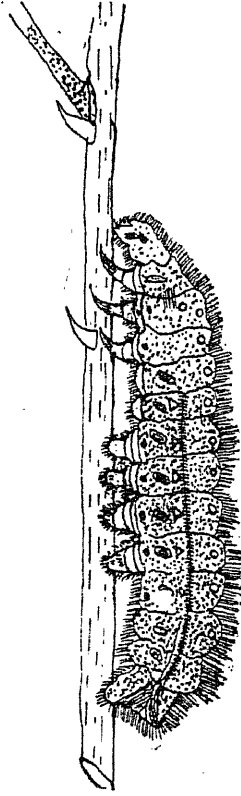
सिर अधिक कड़ा और मजबूत होता है। इनके मुख भी होता है किन्तु उसका चीरा हम लोगोंकी भाँति दायें-बायें न होकर सिरकी ओरसे ठुड्डीकी ओर—खड़ा होता है। कुछके शरीरपर बाल होते हैं पर बहुधा नग्न ही रहती हैं।

पैरोंके भेद—असली और नकली

पैर भी होते हैं जिनकी संख्या आठ-दसतक पहुँच जाती है। ये दो प्रकारके होते हैं—असली और नकली। प्रथम तीन मणियोंमें एक-एक जोड़ा पैरोंका लगाव होता है और वे 'असली पैर' कहलाते हैं। संभवतः वे असली इस हेतु कहलाते हैं कि वे स्थायी होते हैं; कीड़ेकी पूर्ण अवस्था प्राप्त होनेतक वे बने रहते हैं। शेष पैर 'नकली' कहलाते हैं क्योंकि कीड़ेकी 'इल्ली-अवस्था'के नाम शेष होते ही इनका अस्तित्व भी मिट जाता है।

नकली पैरोंका उपयोग

वास्तवमें कीड़ेकी यह अवस्था (growth) 'बाढ़' की अवस्था है। इस समय इसे भूख खूब लगती है और जिस वृक्ष या पौधेपर ये आसन जमाकर बैठ गयीं, जानो उसके कुदिन आ गये। पत्तियोंको कुतर-कुतरकर चलनी कर देती हैं। किसी स्थान विशेषपर डटकर बैठनेके हेतु परमात्माने इन्हें 'नकली पैर' प्रदान किये हैं। इस काममें इनसे भारी मदद मिलती है।

इल्लियोंकी आत्मरक्षाका विवेचन

निस्सहाय इल्लियाँ

आत्मरक्षाका जहाँतक उदरपूर्तिसे सम्बन्ध है वहाँतक तो परमात्माने उन्हें यथेष्ट साधन मुहैया कर दिये हैं किन्तु अपने शत्रुओंसे आत्म-रक्षा करनेके हेतु उनके पास कोई साधन नहीं दिखाई देते। न तो वे इतनी द्रुतगामी ही हैं कि भागकर अपनी रक्षा कर सकें और न उनके पास कोई ऐसे संहारक अंग होते हैं जिनकी सहायतासे शत्रुओंसे लड़कर अपनी जान बचा सकें। पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए कीड़ोंकी भाँति उनके शरीर (chitinous armour) कड़े आवरणसे भी नहीं आच्छादित होते हैं ताकि अपने शत्रुओंके दो-एक आघात तो सह सकें। ऐसी अवस्थामें शत्रुओंसे अपनी रक्षा करनेमें वे नितान्त अयोग्य और असमर्थ जान पड़ती हैं। पर ऐसी हालतमें तो उनका नामोनिशान मिट जाना चाहिये क्योंकि जो प्राणी योग्यतासे शून्य हैं अथवा जिनमें कोई चमत्कार नहीं—यहाँतक कि अपनी रक्षा करनेतककी क्षमता नहीं तो फिर ऐसे भारभूत प्राणियोंकी आवश्यकता भी क्या? उनका तो न होना ही संसारके लिये कल्याणप्रद है। संसारमें जीवन-स्पर्धा चल रही है उसका भी यही रहस्य है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' का भी अभिप्राय यही है। सृष्टिमें कमजोरोंकी

गुजर नहीं । कोई-न-कोई बलवान शत्रु उन्हें हड़प जानेकी ताकमें निरन्तर बैठा ही रहता है ।

इल्लियोंकी रक्षाका प्रमाण

पर हम देखते हैं कि इल्लियोंके पुरखे करोड़ों वर्षोंसे संसारमें बड़े वेगसे फूलते-फलते चले आ रहे हैं। यही नहीं, तुच्छ श्रेणीके प्राणी होते हुए भी 'उन्नति'की दौड़में किसी अन्य जातिके प्राणियोंसे पीछे भी नहीं हैं । जब पुरखोंकी यह गति है तो अतीव जीर्ण-शीर्ण उनके बच्चोंमें कोई-न-कोई ऐसे गुण अवश्य होंगे जिनकी बदौलत अनेकों शक्तिशाली शत्रुओंके होते हुए भी इतने कालसे वे चैनकी बंशी बजाते चले आ रहे हैं । यदि जीवन-संग्राममें कहीं सारी इल्लियाँ खा डाली गयी होतीं तो ये कीड़े कहाँसे आते? क्योंकि बच्चा मनुष्यका जनक होता है (child is the father of man) । इस बातको दृष्टि-बिन्दुमें रखते हुए तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि हो-न-हो इन दुर्बल और निस्सहाय प्रतीत होनेवाली इल्लियोंके पास कोई-न-कोई ऐसे साधन अवश्य मौजूद हैं जिनके बलपर अपार शत्रुओंके होते हुए भी वे अपने अस्तित्वको बड़ी खूबीके साथ कायम रखे हुए हैं। वे कौनसे साधन हैं ? अब हमें इस प्रश्नपर विचार करना है ।

भगवद्भक्तोंकी सूक्तियाँ

धार्मिक प्रवृतिके कोई सज्जन कह सकते हैं कि उनकी रक्षा ईश्वर करता है और अपने कथनकी पुष्टिमें 'पूर्णजी' का यह छन्द पेश कर सकते हैं—

भएहू सुरच्छित सो नसत अवश्य जापै,
होति प्रतिकूल है नजरि भगवानकी ।
रच्छा बिनु कीन्हें हू सुछन्द ठहरात जापै,
दयादृष्टि होति हरि करुनानिधानकी ॥
सूखत तड़ागनके तीर तरु बागनके,
करिए सिंचाई बरु उत्तम बिधानकी ।
'पूरन' भनत पै पहारवारे पादपको,
आतप सुखावत ना ग्रीसमके भानकी ॥

या इसीसे मिलता-जुलता बाबा तुलसीदासजीका यह दोहा पेश कर सकते हैं—

तुलसी बिरवा बागके, सींचे ते कुम्हिलायँ,
रामभरोसे जो रहैं, परबत पै हरियायँ ॥

वैज्ञानिक तर्कवाद

किन्तु निशि-वासर 'क्यों-कैसे' और 'क्या प्रमाण'के चक्करमें पड़े रहनेवाले सज्जनोंको, संभव है, इस उत्तरसे सन्तोष न हो । क्योंकि वे इस बातको समझते हैं कि सृष्टिके चतुर सिरजनहारने उसके संचालनकी बागडोर अपने हाथमें रखते हुए भी सभी प्राणियोंको स्वावलम्बी बनाया है; उनकी जरूरत भरको समस्त साधन प्रदान कर दिये हैं । उन साधनोंसे वक्तपर काम लेना-न-लेना उसकी मर्जीपर निर्भर है । कर्तव्याकर्तव्यका विचार न रखनेवाले आलसी और अकर्मण्य पुरुष हानि या दुख उठानेपर इसका दोष 'दैव' या प्रारब्धके माथे मढ़ते हैं जो सरासर उनकी भूल है ।

नकली बाघ

पञ्चतन्त्रमें एक गधेकी कहानी है । शुद्धपट नामक धोबीका गधा चारेके बिना अत्यंत क्षीण और दुर्बल हो गया था । इस कारण उसका स्वामी बड़ा चिन्तित रहता था । अनायास एक दिन उसके स्वामीको किसी वनमें मरे हुए व्याघ्रका चमड़ा मिल गया । उसने सोचा कि यदि गधेको वह इस चमड़ेसे ढँककर जौके खेतमें रात्रिको छोड़ दे तो खेतवाला उसे व्याघ्र समझकर उसके निकटतक न आयेगा । शुद्धपट अपने मनोरथमें सफल हुआ । इस भाँतिका भयंकर आच्छादन पाकर गधेको मनचाहा एवं यथेष्ट मात्रामें भोजन मिलने लगा, धोबीने खेतवालेको धोखेमें डालकर अपने गधेकी आत्मरक्षा की ।

धोखेधड़ीकी तूती

शुद्धपटने ही इस भाँति धोखा-धड़ीसे दूसरेकी आँखमें धूल झोंककर अपना मतलब साधा हो, सो बात नहीं है । हमें इस भाँतिकी धोखेबाजी और कपटपूर्ण व्यवहारका सिद्धान्त अत्यन्त व्यापक दिखाई देता है । कृषकगण अपनी फसलके खेतोंमें लकड़ी गाड़कर उसके ऊपर काली हाँडी उलटकर रख देते हैं ताकि रात्रिको वन्य पशु इस 'धोखे' को 'खड़ा हुआ मनुष्य' समझकर फसलको न चरें । साधुका वेश धारण करके कितने ही छिछोरे और लफंगे आजकल भोलेभाले भले आदमियों को ठगते हुए दिखाई पड़ते हैं । विदेशी मालपर आजकल म० गांधीकी छाप (Trade Mark) लगी हुई हम प्रायः देखते हैं ।

इसका शायद यही अभिप्राय है कि भारतीय अपने नेताकी छापके आकर्षणमें पड़कर उस वस्तुको भारतीय समझें और उसे मोल लें। पिछले स्वदेशी-प्रचार-आन्दोलनके समयमें लाखों और करोड़ों रुपयोंका जापानी गाढ़ा स्वदेशी नामपर भारतमें खप गया था। जिस भाँति विदेशी व्यापारियोंने अपनी चतुरता और धोखेबाजीसे भोले-भाले भारतीयोंको ठगा, उसी भाँति अहीर लोग अपनी भैंसोंको किस भाँति धोखेमें डालकर उनको दुहते हैं, इसे 'पूर्णजी' के शब्दोंमें सुनिये—

स्वदेशी पर 'पूर्णजी' की अन्योक्ति

भैंसीकी जब मर गई पड़िया, चतुर अहीर।
कम्मलकी पड़िया दिखा लगा काढ़ने छीर।
लगा काढ़ने छीर, भैंस भेसड़ बेचारी।
यही समझती रही यही पुत्री है प्यारी।
नहीं स्वदेशी बन्धु, बात यह ऐसी-वैसी।
हौ मानुष तुम सही किन्तु हौ सोई भैंसी॥

कीड़ोंके संबंधमें प्रकृतिकी धोखेधड़ीपर पाश्चात्योंकी खोज

समस्त चालाकियों और धोखेबाजियोंकी ये आयोजनाएँ तो मनुष्यके दिमागकी उपज हैं। अब हमें यह देखना है कि मनुष्यके सिरजनहार परमपिता परमात्माने अपने दीन और दुर्बल बच्चोंकी आत्मरक्षाके हेतु इस सिद्धांतके आधारपर कौन-कौनसे उपाय किये हैं और वे बच्चे उनका किस भाँति उपयोग करते हैं। सृष्टिमें छलबलके आधारपर आत्मरक्षा करनेके कुछ विचित्र ढंगोंकी ओर पहले-पहले सन् १८६३ ई० में (H. W. Bates) श्री एच० डब्ल्यू० बेट्सने एक लेखद्वारा जनताका ध्यान आकर्षित किया था। उस समय वे दक्षिणी अमेरिकाकी अमेजन-घाटीमें कीड़ोंका निरीक्षण और संचयका कार्य कर रहे थे। फिर सन् १८७९ ई० में (Fritz Mullar) श्री फ्रिट्ज मूलरने भी इस विश्व-व्यापी विषयपर बहुत कुछ प्रकाश डाला।

शत्रुओंसे बचनेके लिये इल्लियोंके विविध वेश

सच तो यह है कि परमात्माकी अनुपम कृतियोंका दिग्दर्शन तो हमें तभी होता है जब हम उन विलक्षण एवं मनमोहक ढंगोंका अनुशीलन करते हैं जो उसने अपने निस्सहाय एवं निर्बल बच्चोंको सबल शत्रुओंसे अपनी रक्षा करनेके हेतु प्रदान किये हैं। प्रमुखतः ये ढंग सबल प्राणियों अथवा दूसरे पदार्थोंकी आकृति, वर्ण, हाव-भाव आदिके अनुकरण करने अथवा साम्य-प्रदर्शनमें ही सीमित हैं। इन ईश्वरप्रदत्त उपायोंका अभिप्राय यह होता है कि या तो अनुकरणकर्त्ता अपने शत्रुकी क्रूर दृष्टिसे छिपा रहे अथवा अपनी नकली भयंकरताकी ओर दूरसे ही उसका ध्यान आकर्षित करे ताकि वह उसे किसी भाँति की हानि न पहुँचा सके।

भूमापक कीड़े पत्तियों, टहनियों और कूबड़ आदिके वेशमें

कुछ कीड़े विशेषकर भूमापक (Geometrids) तो पत्तियों और टहनियोंके आकार-प्रकारको धारण करते हैं। कुछके नन्हे-नन्हे कूबड़ (humps) होते हैं जो वृक्षोंकी छालकी गांठोंसे मिलते-जुलते हैं। कुछकी बनावट काई और सिवार जैसी होती है।

टहनीनुमा इल्लीकी विचित्रता

एक (Selenia tetralunaria) भूमापक कीड़ेकी टहनीनुमा इल्लीकी बड़ी विचित्र दशा है। शत्रुके सन्निकट आनेपर यह आधार-शाखासे कोण बनाती हुई

इस भाँति अपने पैरोंके सहारे तनकर सतर हो जाती है मानो योगका कोई आसन कर रही हो, यही नहीं कि यह

इल्ली जिस शाखापर खड़ी है उसके रंग-रूपके ही सदृश हो वरन् उसके शरीरपर जहाँ-तहाँ नन्हीं-नन्हीं गाँठेसी होती हैं जो टहनीकी विलीन कलिकाएँ (Lateral buds) जान पड़ती हैं। उसके नुकीले पैर और सिर टहनीकी अन्तिम कलिकाएँ (Terminal buds) प्रतीत होती हैं। यह बहुत देरतक इसी भाँति अकड़ी खड़ी रहती है। उसके छद्म-वेशको पहचाननेमें बड़े-बड़े साइंसदांतक चक्कर खा जाते हैं तो फिर भोले-भाले कीट-भक्षी पक्षियों या छिपकलियोंकी कौन गिनती ? वे तो अवश्य ही उसे टहनीका टुकड़ा समझकर छोड़ देते होंगे। वास्तवमें टहनीके समान रंग-रूपका होना तो परमात्माकी देन है किन्तु छेड़े जानेपर उसका अकड़कर खड़ा हो जाना उसकी इच्छाके अधीन (Conscious) होता है।

अस्तु, पत्तियों, टहनियों आदिका रूप धारण करके ये प्राणी अपनेको शत्रु-दृष्टिसे गुप्त रखनेका प्रयत्न करते हैं; उनकी निगाहसे लुक-छिपकर अपनी रक्षा करते हैं।

इल्लियोंकी घने बालों और अपने काँटोंसे आत्मरक्षा

किन्तु इनसे कहीं विचित्र और मनोरंजक तो वे साधन और उपाय हैं जिनके फलःस्वरूप उनके शत्रु उन्हें देखते ही डर जाते हैं और पासतक नहीं फटकते। ये साधन ऐसी (साइन बोर्ड) तख्तीका काम देते हैं जिसपर [Touch-me-not] 'मुझे छूना नहीं' का आदेश लिखा होता है। कुछ कीड़ोंके शरीरपर घने बाले और काँटे होते हैं। इन बालों और काँटोंके मूलमें प्रायः विष-ग्रन्थियाँ भी होती हैं। विष-ग्रन्थियाँ न भी हों, तब भी किसी प्राणीके मुँहमें बालों और काँटोंका चला जाना अरुचिकर ही होता है। यदि कहीं एक बार धोखेसे किसी बालदार अथवा काँटेदार कीड़ेको उसने खा लिया तो फिर वह जीवन भरके लिये सबक पा जाता है। दुबारा इस भाँतिकी भूल फिर उससे नहीं होती। कुछ तो शत्रुके आहटमात्रसे अपनी शकल-सूरतको भयानक बनानेके हेतु अथवा दूरसे अपने बालों और काँटोंको दिखानेके हेतु उन्हें सतर करके बड़ा विचित्र आडम्बर रचते हैं।

लैसयो कैम्पिड्सका उदाहरण

(Lasio campids) लैसियो कैम्पिड्सका उदाहरण देकर हम इस बातका स्पष्टीकरण करेंगे। इसके सिरके ऊर्ध्व भागके पीछे दो आड़े चीरे (Transverse slits) होते हैं जिनके अंतर्गत बालोंकी एक-एक कूँची होती है जो सामान्यतः अगोचर रहती हैं। पर छेड़-छाड़ करनेपर या शत्रुके समीप पहुँच जानेपर उसमें विचित्र परिवर्तन होता है। आहट पाते ही दोनों चीरोंके द्वार खुल जाते हैं और उनमेंसे मखमली अयालोंके सदृश बालोंकी कूचियाँ तत्काल बाहर निकल आती हैं। ये कूचियाँ अत्यन्त भड़कीली होती हैं। कुछमें उनका रंग काला होता है, कुछमें नारंगी या गुलाबी और कुछमें नीला। निस्संदेह उनके एकाएक प्रदर्शनद्वारा प्राणीकी भयंकरतामें भीषण वृद्धि हो जाती है और उसके अवलोकन मात्रसे पक्षी आदि कीटभक्षी प्राणियोंके होश-हवास तो अवश्य ही उड़ जाते होंगे।

साँपके वेशमें इल्लियाँ

किन्तु इन समस्त उपायोंसे अनुपम और अचूक तो वे हैं जिनमें इल्लियाँ साँपोंके वेशका अनुकरण करती हैं। नकल करनेके हेतु साँपसे अधिक भयकर और कौन प्राणी मिलेगा ? इसकी भयंकरता जग-प्रसिद्ध है। इसे 'भयकी मनौ संतान' कहा है। साँपकी भयंकरताका अनुमान पाठक इसीसे कर सकते हैं कि एक गणनाके अनुसार भारतवर्षमें ही इनके कारण २९००० मनुष्य प्रतिवर्ष मरते हैं और चीता, भेड़िया, बाघ, घड़ियाल, हाथी, रीछ और बनैले सुअरोंके आक्रमणसे इस संख्याके कुल दशमांश ही! ऐसे भयंकर प्राणीकी नकल करनेकी शक्ति जिन इल्लियोंको परमात्माने प्रदान की है, उन्हें किस बातकी खटका! वे सभी भाँति निर्द्वंद्व हैं, जिन्होंने इन छल-कपट भरे उदाहरणोंका प्रत्यक्ष अवलोकन नहीं किया है, उन्हें संभव है, इस भाँतिके प्राणियोंकी सत्तामें ही सन्देह हो। किन्तु जिन्होंने खुद उनका निरीक्षण एवं परीक्षण किया है वे इस बातसे भलीभाँति सन्तुष्ट हैं कि प्राणिवर्गमें साँपोंका अनुकरण करनेवाले प्राणी पाये जाते हैं। खोजनेपर इस भाँतिके उदाहरण तो संसारके प्रायः समस्त भागोंमें मिल सकते हैं किन्तु ऊष्ण कटिबन्धके प्रदेशोंमें ऐसी इल्लियोंकी भरमार है।

(क्रमशः)

क्षयरोगका सहज इलाज

सूर्य्यकी किरणोंका अद्भुत प्रभाव

[ले० डा० कमलाप्रसाद, एम्०, बी०, हजारीबाग]

ऐतिहासिक तथ्य

भारतीय धार्मिक जगत्‌में सूर्यका स्थान

आदिकालसे ही आर्यौंकी सूर्य-पूजा जगद्विख्यात है। इनके अति प्राचीन ग्रंथ-वेदोंमें सूर्यको एक प्रधान देवताका स्थान प्राप्त है। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन आर्य-पण्डित सूर्य देवताके असंख्य गुणोंसे परिचित थे तथा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करनेके लिये उन्हें देवताका स्थान दे रखा था। आधुनिक अनुसंधान केवल उन्हींकी अभिज्ञताकी पुनरावृत्ति-सी जान पड़ता है। केवल वे ही बातें दुहरायी जा रही हैं जिन्हें इन महापुरुषोंने हजारों वर्ष पहले अनुभूत कर संसारके कल्याणके लिये एक दूसरे ही सांचेमें ढाला था।

अन्य देशोंमें सूर्यपर धार्मिक श्रद्धा

केवल भारतमें ही नहीं अन्य देशोंमें भी सूर्यको देवताका स्थान दिया गया है। उदाहरणार्थ मिश्रमें राका अर्थ है सूर्य्य देवता, तथा उनके राजाका भी नाम (फा-रा-ओ) इसीके आधारपर पड़ा है। वैविलनमें इन्हें वील मारडक, मेरियल और जिविल आदि नामोंसे पुकारते थे। फारसमें सर्वश्रेष्ठ देवताको ओर्मुज्द कहते हैं, इनके बाद सूर्य वा मिथ्राका स्थान है। युनानमें सूर्य्य देवताका नाम है हिलियन, और जापानमें इन्हें अनासरेनन कहते हैं। अर्थात् सभी समयमें एवं सभी देशोंमें मनुष्यने सूर्य्यकी शक्ति मान तथा उपयोगिताका ध्यान रखकर उन्हें देवताका स्थान दिया है।

सूर्य-चिकित्साकी खोजका इतिहास

ये हुईं पुरानी बातें। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाले जेनाने सन् १८१६ में सूर्य्य-रश्मियोंकी उपयोगिताका पता पाया। इस ज्ञानके विस्तारका श्रेय फ्रांसीसियोंको है। तुर्कोंने सन् १८५२ में "सूर्य एवं वायु-स्नान" की वैज्ञानिक पद्धति निर्धारित की। १८५५ में आर्णल्ड रिकली नामक एक स्विसने एक ऐसी संस्था स्थापित की जिसमें सूर्य्यद्वारा चिकित्सा होती थी।

रौलियरका आविष्कार

किन्तु इस रीतिसे चिकित्साका वास्तविक रूप वैज्ञानिकोंको तबतक पूर्णतः ज्ञात नहीं हुआ जबतक रौलियरने (Leysin) लेजिनमें संसारके आधुनिक सबसे बड़े सूर्य्य-चिकित्सालयका १९०३ में निर्माण नहीं किया। इस महानुभावने अपने निरन्तर अध्यवसायसे सिद्ध कर दिया कि फुफ्फुस-यक्ष्माके* अतिरिक्त अन्य अवयवोंके यक्ष्मामें सूर्य्य-रश्मियोंसे बढ़कर और कोई उपादेय पदार्थ है ही नहीं।

रसेल बन्धुओंकी आलोचनाएँ

इङ्गलैण्डके सम्बन्धमें रसेल बंधुओंकी आलोचनाएँ उल्लेख्य हैं। ये लिखते हैं "मनुष्य" जातिके सूर्य-रश्मिकी संजीवन उपयोगिताकी अवहेला करनेमें यह देश विशेषरूपसे पटु रहा है—विशेषतः व्यवसायकी उन्नतिके प्रारम्भ कालसे जिसका आगमन उत्पादक शक्तिकी प्राप्तिके लिये कोयलेके सर्व प्रथम व्यवहारके साथ-साथ हुआ था। नये-नये शहर शीघ्रातिशीघ्र प्रादुर्भूत हुए, जिनका सिलसिला बहुत खराब था, और जिनमें नगर-निर्माणकी कुछ भी चेष्टा नहीं की गयी थी। बहुत जल्द फैक्टरियाँ तय्यार होती गयीं, जिनमें बहुत कोयला नुकसान किया जाता था, जिसके फलस्वरूप ढेरका ढेर धुँआ बनता था अथच सूर्यकी बहुतसी बहुमूल्य किरणोंको रोक लेता था।

* इस प्रकारकी चिकित्साके आरम्भमें, जब इसके सम्बन्धके बहुतसे लेख अँग्रेजी पत्रोंमें प्रकाशित हुए थे, बहुतसे फुफ्फुस-यक्ष्माके रोगी, रोगमुक्त होनेकी आकांक्षासे छाती खोल-खोलकर सूर्य-रश्मि ग्रहण करने लगे। फल—जैसा कि आगे कहा जायगा—विपरीत हुआ। बहुतसे रोगियोंको जीवनसे ही मुक्ति मिल गयी।

"खिड़कियोंपर जो टैक्स बैठाये गये थे, वे सन् १८५१ में हटाये गये, और अभीतक ईंटोंसे बन्द की गयी खिड़कियाँ देखी जा सकती हैं जिनसे यह पता चलता है कि टैक्सका भार कम करनेके लिये क्या-क्या उपाय किये गये थे।"

"पतली सड़कें बनायी गयी थीं, जिनमें सूर्य्य शायद ही कभी चमक सकता था।" इत्यादि।

सूर्यमें अनेक शक्तियाँ

आगे चलकर सूर्य-रश्मियोंके विषयमें ये ही महाशय बतलाते हैं "इस बातको बहुधा हम लोग भूल जाते हैं सूर्य्यालोकमें ताप एवं प्रकाश-किरणोंके अतिरिक्त दूसरी भासमान शक्तियाँ रहती हैं जो हमारी वृद्धिके बहुतसे आवश्यकीय अंशोंको अत्यधिक सहायता पहुँचाती हैं।"*

सूर्य्य-किरणोंका विश्लेषण

यदि सूर्यकी किरणोंको एक (Prism) त्रिकोण-काँचके माध्यमसे एक परदेपर ग्रहण करें तो उनमें निम्न-लिखित रंगकी किरणें पायी जायँगी-

विभिन्न किरणोंके ज्ञानका इतिहास
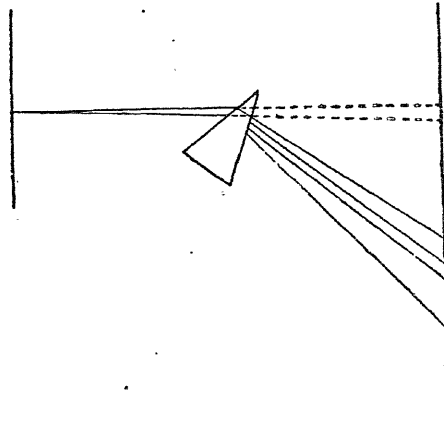
इनमें कुछ किरणें तापोत्पादक होती हैं और कुछ रासायनिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं, अथच ये सभी किरणें नग्न चक्षुद्वारा दीख पड़ती हैं। इनके अतिरिक्त दो किरणें और होती हैं, जो आँखोंद्वारा देखी नहीं जा सकतीं, किन्तु जिनकी सत्ता प्रयोगोंद्वारा सिद्ध की गयी है। सन् १८०० में (Sir William Herschel) सर विलियम हर्शेलने उपर्युक्त प्रत्येक किरणोंके सामने एक तापमापक (Thermometer) रखा। इस प्रयोगके करते समय यह पता लगा कि लाल किरण (जो किरण समूहोंके एक छोरपर है) के परे भी कोई किरण है, जो है तो अदृश्य किन्तु परदेपर तापाधिक्य सूचित करती है। स्थितिके कारण इस किरणको अधिरक्त किरण (Jnfra-red ays) कहते हैं, तथा गुणके कारण तापोत्पादक मानते हैं। इस आविष्कारके दूसरे वर्ष (Richter) रिट्टरने एक दूसरा प्रयोग किया। उसने सूर्यकी विश्लेषित किरणोंके सामने (Silver chloride) रजत हरिदको रखा। यह रासायनिक वस्तु प्रकाश लगनेपर भूरेसे काले रंगकी हो जाती है। अस्तु रिट्टरके प्रयोगसे यह सिद्ध हुआ कि कासनी किरणोंके परे भी कुछ किरणें आती हैं जिन्हें नग्न चक्षुसे तो देख नहीं सकते, पर जो रजत हरिदको काला कर देनेमें समर्थ हैं इन किरणोंका स्थानानुसार पराकासनी किरण नाम रखा गया और बादको यह भी सिद्ध हुआ कि यही पराकासनी किरणें यक्ष्माजनित अंगविकृतियोंको सुधारनेमें काम आती हैं।

* "Ultraviolet Radiation and Actinotherapy"—by E. H. Russel & W. R. Russel of the Sun-ray Clinic, Newcastle-on-Tyne.

कृत्रिम आलोक और उसकी आवश्यकता

सूर्यालोकके अतिरिक्त अन्य कृत्रिम आलोकोंमें भी पराकासनी किरणे पायी जाती हैं। वास्तवमें योरपको इन कृत्रिम उपायोंकी आवश्यकता इसलिये थी कि वहांके अधिकांश स्थानोंमें वर्षके बहुत समयतक सूर्य्यका दर्शन होना असम्भव हो जाता है। अस्तु इन कृत्रिम आलोकोंका अन्वेषण किया गया। निम्न-लिखित तालिकासे यह पता चलेगा कि किस-किस भाँतिके आलोकमें इन किरणोंका अंश कितना-कितना रहता है।

प्रत्येक आलोकमें किरणअंशाका गणित

आलोका उद्गम स्थान	परारक्त किरण	प्रकाश किरण	पराकासनी किरण
सूर्य्य	८०%	१३%	७%
पारद वाष्प लैम्प	५२%	२०%	२८%
आर्क लैम्प	८५%	१०%	५%
इन्कैन्डीसेन्ट लैम्प	८३%	६%	१%

सूर्य किरणोंका उपयोग क्यों श्रेयस्कर है ?

इस तालिकामें यह देखा जायगा कि सूर्य्य-रश्मियोंकी अपेक्षा (Mercury-Vapour Lamp) पारद-वाष्प लैम्पके आलोकमें पराकासनी किरणोंका अंश अधिक है। वास्तवमें यह लैम्प मानव-बुद्धिके चमत्कारोंमेंसे एक है। किन्तु दो कारणोंसे सूर्य-रश्मियोंका उपयोग करना ही श्रेयस्कर जान पड़ता है। एक तो ये किरणें बिना पैसेके प्राप्त होती हैं, दूसरे सम्भव है कि भविष्य में सूर्य-रश्मियोंमें कुछ और ऐसी किरणोंका पता लगे जो मानव स्वास्थके लिये लाभदायक हों।

रसेल बन्धुओंका मत

इसके सम्बन्धमें रसेल बन्धुओंकी राय सुनिये। "इस बातपर बहुत मतभेद है कि सूर्यालोक अथवा कृत्रिम आलोक, इन दोनोंमेंसे कौनसा अधिक स्वास्थ्य हितकारी है। डाक्टर रौलियर पूर्वकथित (सूर्य्य) आलोकके पक्षमें हैं, तथा हम सभी इस बातका अनुभव कते हैं कि शुद्ध, ताजी, शुष्क एवं धूल और धुएंसे रहित वायुके साथ-साथ सूर्यालोक-जैसा कि आलपस्के निकटवर्त्ती (लेजिनके) स्वास्थ्यालयोंमें प्राप्त होता है--साधारण चिकित्साके लिये हमारे धूलमंडित शहरोंके मध्यवर्त्ती गर्म कौठरियोंके भीतर दी गयी कृत्रिम आलोककी मात्राओंसे श्रेयस्कर है।"

हमें कृत्रिम आलोक नहीं चाहिये

पुनरपि लेजिनके सूर्यालोक-चिकित्सालयों (Solariums) एवं फिन्सेन लाइट इन्स्टिट्यूट (कोपेन हेगन) के कृत्रिम आलोकचिकित्सालयोंसे प्राप्त आंकड़े प्रायः एकसे जान पड़ते हैं। ऐसी अवस्थामें इस दरिद्र देशके लिये कृत्रिम आलोकोंकी क्या आवश्यकता हो सकती है, जब कि भगवान अंशुमाली सहस्रों करोंद्वारा हमारी सहायता करनेके लिये सदैव तैयार हैं।

पराकासनी किरणोंके गुण

रसायनिक गुण

अपकर्षात्मक प्रक्रियाएँ (Reaction of Degeneration)

(क) (Hydriodic Acid) उज्जनैलिकाम्ल का उज्जन और नैलमें विभक्त होता।

(ख) धातुओंके लवणोंके घोलसे धातुओंका अधःपातन (Precipitation) इत्यादि।

संश्लेषणात्मक प्रक्रियाएँ (Reaction of Synthesis)

(क) उज्जन और हरिन्का मिलकर उज्जनहरिकाम्ल बनना।

(ख) अम्लजनका ओजोन (Ozone) बनना इत्यादि।

भौतिक गुण

ये किरणें बहुतसे कांचको पार कर सकती हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी कांच हैं जो इसकी गतिको रोकते हैं। इन्हें कुछ वैद्युतिक शक्तियां भी प्राप्त हैं और ये प्रत्यावर्त्तित भी होती हैं।

मानव शरीरपर इनकी क्रियाएँ

इस सम्बन्धमें बहुतसे सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं निम्न लिखित तीन मुख्य हैं—

पराकासनी किरणोंका हमपर प्रभाव

(क) पराकासनी किरणें त्वचा-स्थित बाततंतुओंको उत्तेजित करती हैं, जिसके फलस्वरूप सारा नाड़ी-मण्डल उत्तेजित हो जाता है।

(ख) ये किरणें त्वचाकी रक्त नलिकाओंमें प्रवेश कर पाती हैं और रक्तके माध्यमसे शरीरमें उत्तेजना उत्पन्न करती हैं।

(ग) ये (Epidermis) उपचर्ममें कुछ ऐसी चीजें प्रस्तुत करती हैं जो सारे शरीरमें उत्तेजक रसोंका काम करती हैं।

इनका त्वचापर प्रभाव

(ये किरणें त्वचाद्वारा बहुत शीघ्रही शोषित होती हैं)

(क) त्वचा-स्थित कोलेष्ट्रोल (Cholestrol) नामक पदार्थ (Vitamine) खाद्योजमें ही परिवर्त्तित हो जाता है।

(ख) पहले रक्त नलिकाओंका प्रसारण वा स्फालन होता है और पीछे वे संकुचित हो जाती हैं।

(ग) पहले अयनिका (Erythema—लाल छोटे चकते) देखी जाती है, तदनन्तर उस स्थानमें रंजक पदार्थ (Pigments) इकट्ठे हो जाते हैं। कभी-कभी तो त्वचा लाल होकर रह जाती है और कभी-कभी उसमें विगलन क्रियाएँ (Degeneration) उपस्थित होती हैं, अथवा फफोले पड़ जाते हैं। कालेकी अपेक्षा गोरे व्यक्तियोंमें ये प्रतिक्रियाएँ प्रबलतर होती हैं और बच्चोंमें अधिक जोर नहीं करतीं। त्वचाके उन अंशोंपर जो सदा कपड़ेसे ढँके रहते हैं, इनका अधिक प्रभाव पड़ता है। लोह, ताल इत्यादि द्रव्योंके सेवन करते रहनेपर भी इनका अधिक प्रभाव पड़ता है। अयनिका दो वा अधिक दिनोंमें देखी जाती है।

(घ) रंजक पदार्थोंका इकट्ठा होना। ये रंजक पदार्थ मेलैनिन (Melanin), एक प्रकारके काले दाने हैं, जो उपचर्मके आधारी भूत कोषोंके (Basal Cells of the Epidermis) शक्तिकेन्द्रोंके चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं और इन किरणोंकी अधिक मात्राओंसे शरीरकी रक्षा करते हैं। वास्तवमें इनके लक्षित होनेपर किरण-जनित भयोंकी पर्वा नहीं की जाती। ये रंजक पदार्थ बाहरसे आते हुए कीटाणु-आक्रमणोंके विरुद्ध भी शरीरकी रक्षा करते हैं, तथा बहुत वर्षोंतक वर्त्तमान रह सकते हैं किन्तु इनकी रक्षण-शक्ति कुछ ही दिनों (६ से ८ सप्ताह) तक वर्त्तमान रहती है।

किरणोंका कीटाणुओंपर प्रभाव

ये कीटाणुओंको नष्ट कर देती हैं, किन्तु माध्यम (जिनमें कीटाणु निवास करते तथा बढ़ते हैं) पर इनका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। काँचके टुकड़ेपर रखा हुआ यक्ष्मा कीटाणु सूर्य्यके प्रकाशमें केवल १० मिनटमें नष्ट हो जाता है। कुछ कालतक निरन्तर लगते रहनेपर इन किरणोंद्वारा कीटाणु-विष (Toxins) भी नष्ट हो जाते हैं, किन्तु कीटाणुओंकी गुठलियाँ (Spores) इनसे नष्ट नहीं होतीं। उष्णता-मापका इन क्रियायोंपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि बर्फानी जगहोंमें भी कीटाणु इन किरणों-द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

रक्त-संचालक संस्थानपर प्रभाव

रक्त चाप (Blood-pressure) कम जाता है। जिन-जिन अवयवोंमें रक्ताधिक्य रहता है, उनमें साधारण (स्वस्थ) रक्त-प्रवाह स्थापित हो जाता है। सिर दर्द और शरीरका भारीपन मिट जाते हैं।

रक्तपर प्रभाव

सारी किरणें रक्तमें सम्मिलित हो जाती हैं। रक्तके रक्ताणुओंकी संख्या बढ़ जाती है हीमोग्लोबिन (लौह-मिश्रित रक्तका एक पदार्थ) परिमाणमें बढ़ जाता है। रक्त-चक्रिकाएँ भी संख्यामें बढ़ जाती हैं। रक्तकी अवरोधिनी शक्तिकी वृद्धि होती है। रक्तमें स्फुर, खटिक और लौहकी मात्राएँ बढ़ जाती हैं, किन्तु (Blood-sugar) रक्तशर्करा-की कमी हो जाती है। रक्तके श्वेताणुओंपर इस प्रकार प्रभाव पड़ता है—

(साधारणतः ५,००० प्रतिघन शतांश मीटर रक्तमें)

श्वेताणु	साधारण संख्या,	किन-किन रोगोंमें इनकी वृद्धि होती है	पराकासनी किरणोंद्वारा
बहुशक्तिकेन्द्र श्वेताणु	६० से ७०%	प्रदाह (किसी प्रकारका क्यों न हो)	प्रायः २०% कम जाते हैं
बृहद् लसीकाणु	१%	{ कुक्कुर खाँसी, फिरंग रोग }	
क्षुद्र लसीकाणु	२० से २५%	{ रिकेट्स इत्यादि }	४५% वृद्धि होती है।
अम्लग्राही लसीकाणु	१ से ४%	चर्म एवं अंत्रके रोग	४९% बढ़ जाते हैं
क्षारग्राही लसीकाणु	०'५ से १%	×	ज्योंके त्यों रह जाते हैं

सबके लिये सरल बढ़ईगीरी

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, प्रयाग-विश्वविद्यालय]

बढ़ईगीरीमें यह बहुत जरूरी है कि औजार बराबर तेज रखा जाय। यदि आप किसी अच्छे बढ़ईको देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि रोज उसका करीब एक घंटा औजारोंके तेज करनेमें बीतता है। बात यह है कि कुन्द औजारसे जो काम दो घंटेमें होगा और भद्दा होगा, वही काम तेज औजारसे एक घंटेसे कममें हो जायगा और साफ होगा। इसलिये उस औजारको तेज करनेमें जो समय लग जाता है वह किसी प्रकार बेकार नहीं जाता। नौसिखिये और अनुभवी शौकीन भी औजार तेज करनेको झंझट समझते हैं, और काम करनेकी धुनमें औजारके कुन्द हो जानेपर भी उससे काम करते चले जाते हैं। परिणाम यह होता है कि समय बहुत लग जाता है, और काम साफ भी नहीं बनता। इस लिये ज्योंही जान पड़े कि औजार कुछ कुन्द हो चला, त्योंही इसको तेज कर लेना चाहिये।

औजारोंका तेज करना औजारोंके प्रयोग करनेकी अपेक्षा बहुत कठिन है। इसलिये यद्यपि छोटे-छोटे लड़के भी बढ़ईगीरी सीख सकते हैं और अच्छा काम बना सकते हैं, तो भी वे औजारको ठीक तरहसे तेज नहीं कर सकते। इसलिये छोटे लड़कोंको चाहिये कि वे किसी बढ़ईको कुछ देकर सब औजार तेज करवा लिया करें।

औजार तेज करनेमें बहुत समय न लगे इस खयालसे एक सान चढ़ानेकी मशीन यदि खरीद ली जाय तो अच्छा है। छोटे शहरोंमें शायद यह न मिल सकेगी और तब इसे कलकत्ता या बम्बईसे मँगाना पड़ेगा। सानमशीनपर औजारोंको तेज करनेके बाद उनको एक बार सिल्ली या नरम चिकने पत्थरपर भी तेज करना पड़ेगा क्योंकि सान-मशीनपर बढ़िया धार नहीं आती, पर सानमशीनपर

मांस पेशियोंपर प्रभाव

इनकी शक्ति एवं आयत बढ़ जाता है।

चक्षुओंपर प्रभाव

आँखोंपर इन किरणोंका बुरा प्रभाव पड़ता है। साधारण (Conjunctivitis) कनीनिका प्रदाहसे लेकर मोतियाबिन्दु अथवा चक्षुनाशतक सम्भव है।

आहार-पथपर प्रभाव

(stomach) पक्वाशयके अम्लकी मात्रा कम जाती है, किन्तु अन्त्रकी मांस पेशियाँ भलीभाँति सिकुड़ने लगती हैं, जिससे कोष्ठबद्धता नहीं रहने पाती। साथ ही यकृत (Liver) और क्लोम (Pancreas) भी उत्तेजित हो जाते, अस्तु भूख बढ़ जाती है। अन्त्रस्थ कीटाणुओंका नाश हो जाता है, जिससे अतीसार बन्द हो जाता है।

मूत्र एवं जननेन्द्रियपर प्रभाव

वृक्कपर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। अण्डकोष एवं डिम्बकोष अधिक उत्तेजित हो जाते हैं। अनिच्छित मूत्र-स्राव बन्द हो जाता है।

वात-संस्थानपर प्रभाव

(Central Nervous System) प्रधान वायु-मण्डलपर उत्तेजनात्मक प्रभाव पड़ता है। वातोत्पन्न कष्टोंका नाश हो जाता है। थकावट मिट जाती है और अनिद्रा दूर हो जाती है, तथा एक प्रकारकी शान्ति प्राप्त होती है।

किरणोंके विकृतिजनक प्रभाव (Pathological Effects)

ये बुरे प्रभाव सूर्य्यकी (Light Rays) आलोक–रश्मियोंके तथा ताप किरणोंके ही होते हैं। ये हैं, सिरमें चक्कर आना, मिलती, नाड़ीका कमजोर हो जाना, उष्णता-मापकी कमी, सिर दर्द, मानसिक कष्ट, ज्वर, वमन, मूर्च्छा इत्यादि। आँखोंपर इनके बुरे प्रभाव पहले ही कहे जा चुके हैं।

(क्रमशः)

पहले तेज कर लेनेके कारण औजारोंको सिल्लीपर बहुत कम समयतक रगड़ना पड़ता है ।

आरीको तेज करनेके लिये इसे वाइसमें दो लकड़ियोंके बीच इस प्रकार पकड़ना चाहिये कि आरीके दाँत लकड़ीसे ¼″ ही ऊपर निकले रहें (चित्र नं० ६१) ।
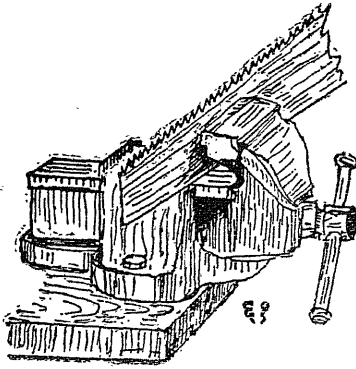
चित्र ६१—तेज करनेके लिये आरी वाइसमें दो लकड़ियोंके बीच पकड़ी जा सकती है ।

यदि वाइस न रहे तो किसी लकड़ीमें एक चीर काटकर उसीमें आरी धँसाकर इसे तेज करना चाहिये (चित्र ६२) ।
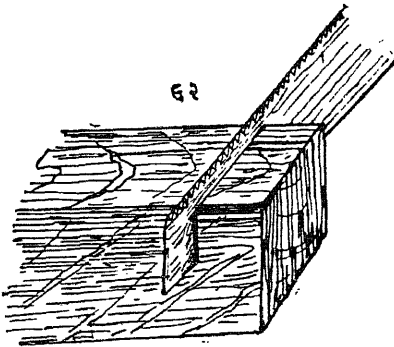
चित्र ६२—यदि वाइस न हो तो लकड़ीमें चीर काटकर उसीमें आरी फँसाना चाहिये । हो सके तो चीरको किसी दूसरी पतली या बिना चपरासकी आरीसे काटना चाहिये ।

आरीको खड़ी स्थितिमें दृढ़तासे रखकर इसके दाँतोंको तिकोनी रेतीसे रेतना चाहिये (चित्र ६३) ।
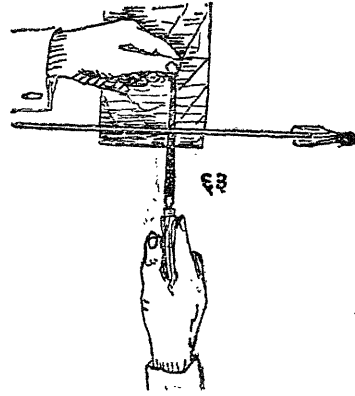
चित्र ६३—आरी तेज करना, यह काम तिकोनी रेतीसे किया जाता है ।

आरीके दांत अगल-बगल झुका दिये रहते हैं जिसमें आरी अपने फलकी मोटाईसे कुछ चौड़ी चीर काट सके और इसलिये यह अपनी ही चीरमें फँस न जाया करे ।

आरीके दाँत अगल बगल मुड़े रहते हैं । इसीको "चपरास" कहते हैं ।

यदि कई बार (बीस-पचीस या अधिक बार) तेज करते-करते आरीके दाँत इतने घिस जायँ कि इनको फिरसे अगल-बगल मोड़नेकी आवश्यकता पड़े तो यह काम किसी बढ़ईसे करा लेना चाहिये ।

बरमीके देसी चालके फलोंको रेतीसे रेतकर या पत्थरपर घिसकर चित्र ६५ में दिखलायी गयी शकलका कर देना चाहिये ।

चित्र ६५—बरमीके फलकी नोक । इसी चित्रके अनुसार बरमीको तेज करना चाहिये ।

पेंचकसकी धार बनाना बढ़ई लोगोंको भी ठीकसे नहीं

आता। इस खयालसे कि एक ही पेंचकससे छोटे-बड़े पेंच सभी कस दिये जा सकें वे इसमें तेज धार बना देते हैं (चित्र ६८)। यह गलत है। इससे पेंचकस अक्सर छटकता है। और पेंचके माथेको काट डालता है।
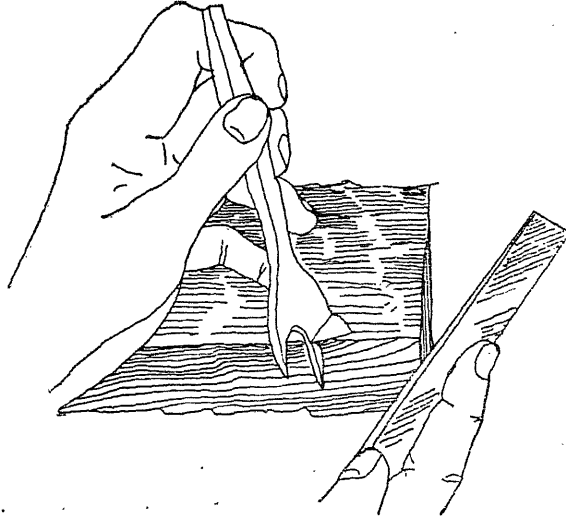
चित्र ६६—बरमाके फलके बीचके काटनेवालेको रेतीसे तेज किया जाता है।
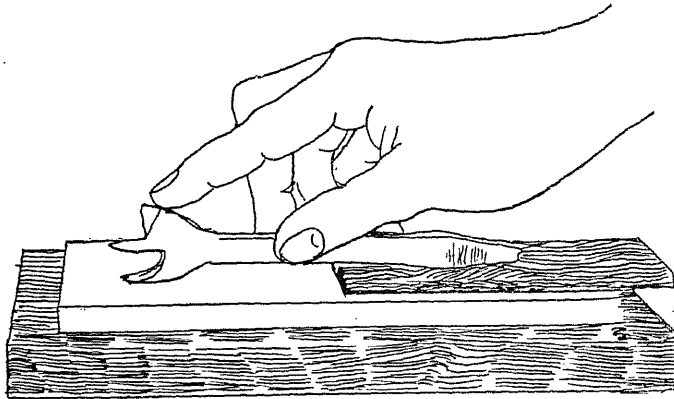
चित्र ६७—बरमीके फलके बगलका काटनेवाला पत्थरपर तेज किया जाता है।
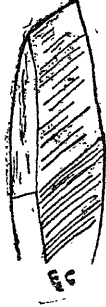
चित्र ६८—पेंचकसमें ऐसी धार बनानी ठीक नहीं है।

आवश्यकतानुसार छोटे-बड़े पेंचोंके लिये दो या तीन पेंचकस रखना चाहिये और अपने नापके अनुसार वे मोटे या पतले रहेंगे, परन्तु उन सबका सिरा चित्र ६९ की ही शकलका रहेगा।
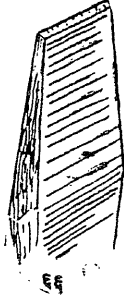
चित्र ६९—पेंचकसके सिरेकी शक्ल ऐसी होनी चाहिये।

रंदा या रुखानीकी धारको बगलसे देखनेमें चित्र ७४ के अनुसार रहना चाहिये।
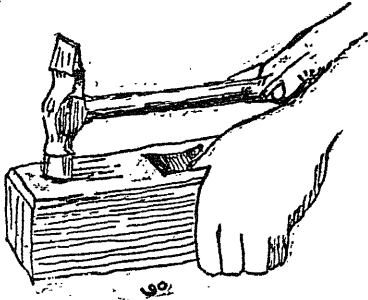
चित्र ७०—काठके रंदेको यों ठोकनेसे इसका लोहा निकल आता है।

बसूलेकी धार भी रुखानीकी ही तरह बनायी जाती है। छेनी दोनों ओरसे तेजकी जाती है। सुंभीका मुँह गोल और इसका किनारा तेज और चौकोर रहना चाहिये।

लकड़ी—छोटे कामोंके लिये आवश्यकतानुसार $\frac{1}{4}''$, $\frac{1}{2}''$, $\frac{3}{4}''$, या 1" मोटी लकड़ी चिरी हुई खरीदनी चाहिये। बहुतसा काम उन (पेटियों) बक्सोंकी लकड़ियोंसे किया जा सकता है जिनमें विदेशसे माल भरकर यहाँ आता है। ये लकड़ियाँ बहुत अच्छी तो नहीं होतीं, परन्तु बहुत सस्तेमें और सुगमतासे मिल जाती हैं। ये बक्स चीड़की लकड़ीके होते हैं।
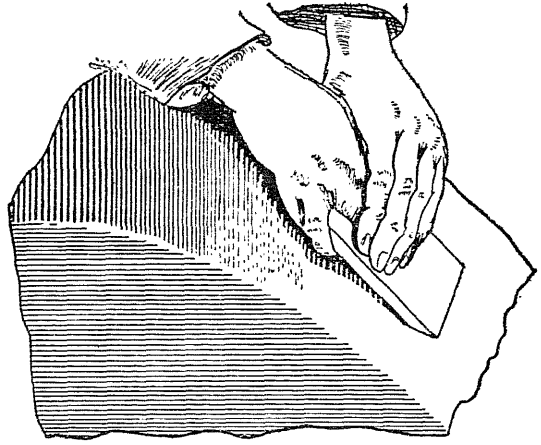
चित्र ७१—रंदेके लोहेको पहले एमरी ह्वीलसे तेज करना चाहिये।

शीशम अच्छी लकड़ी है और मजबूत भी होती है। यदि मिल सके तो इसका काम बनाना अच्छा है।

चित्र ७२—जब एमरी ह्वीलसे लोहेपर करीब-करीब धार आ जाय तब पत्थरपर घिसकर इसपर सान लानी चाहिये।

सागवान या (teak), टीककी लकड़ी, बरमा देशमें

दाँतोंकी रक्षा करो

तीसरा खाद्योज एक ही उपाय

[ले०—श्री ब्रजबिहारीलाल गौड़, मऊ नाट भंजन]

यह एक साधारण बात है कि तन्दुरुस्तीको कायम रखनेके लिये दाँतोंको साफ, सुन्दर और मजबूत रखना बहुत जरूरी है। पर तो भी लोग इधर बहुत कम ध्यान देते हैं। बहुत किया तो 'टूथपेस्ट' या 'टूथपाउडर' लगाकर ब्रशसे दाँतोंको मांज लिया। बस, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। एक तो ब्रशका प्रयोग ही गंदगीसे खाली नहीं। और यदि सावधानी भी बरती जाय तो भी ब्रश दँतुअनसे विशेष लाभदायक नहीं ठहर सकता। पर जो लोग ब्रश, दँतुअन तथा किसी भी प्रकार नियमित रूपसे दाँतोंको साफ और सुन्दर रखते हैं उनको भी पायरिया सदृश रोगोंके शिकार होते देखा गया है। कारण यह है कि ऊपरी सफाई तो कर लेते हैं पर दाँतोंको भीतरसे पुष्ट

पैदा हुई, सबसे अच्छी लकड़ी होती है। यह आसानीसे कटती है और काम भी साफ उतरता है, परन्तु यह महँगी मिलती है। एक सी० पी० टीक लकड़ी सेन्ट्रल प्रोविन्सेजमें पैदा हुई भी मिलती है, परन्तु यह गँठीली होती है और कई बातोंमें बरमा टीकके बराबर अच्छी नहीं होती।

चित्र ७३—अंतमें लोहेकी दूसरी ओरको एकदम पट रखकर पत्थरपर दो तीन बार रगड़ना चाहिये।

आम, नीम, इत्यादिकी लकड़ियाँ छोटे कामोंके लिये अच्छी नहीं होतीं।

❀ ❀ ❀

चित्र ७४—बगलसे देखनेमें रंदेका लोहा सान चढ़ानेके बाद ऐसा हो जाय।

चित्र ७५—यदि लोहा ऐसा हो जाय तो सान चढ़ानेका काम ठीक नहीं किया गया है।

चित्र ७६—यदि लोहा ऐसा हो जाय तो सान चढ़ानेका काम बिल्कुल गलत किया गया है।

आगे विज्ञानमें समय-समयपर जो काठके खिलौने इत्यादि बनानेका वर्णन दिया जायगा उसे बनानेसे खूब आनन्द भी मिलेगा और बढ़ईगीरी भी आ जायगी।
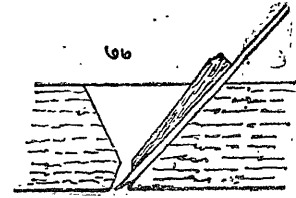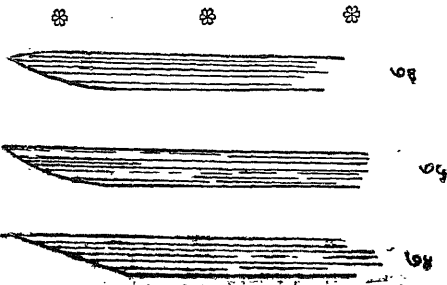
चित्र ७७—रंदेमें लोहेको इस प्रकार लगाना चाहिये।

नोट—यहाँ दिये गये चित्रोंमेंसे बहुतेरे W. Lestle & Co, 19 Chowringhee Road, Calcuttaके कैटलगसे हैं। यहाँसे कोई भी औजार मिल सकता है। इस दुकानपर जरमन चीजें ज्यादातर नहीं रहतीं। जरमन (और बिलायती भी) औजार मेसर्स किशुनप्रसाद सीताराम, नम्बर २२५।१।१ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्तासे मँगाये जा सकते हैं।

चेचक या शीतलाकी बीमारी

सुगम और आवश्यक उपचार

[लेखक—श्रीयुत गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इन्द्र', आगर]

आज कल सारे भारतमें शीतलाका बहुत जोर है। इसकेद्वारा सैकड़ों हजारों मनुष्य मर रहे हैं। यह एक बड़ा भयानक संक्रामक रोग है। आयुर्वेदमें इसकी ज्वरोंमें गणना है। इसे संस्कृतमें 'मसूरिका' या 'शीतला' रोग कहते हैं। चेचक इसका तुर्की नाम है। यह हमारे देशमें शीतला और चेचक नामसे प्रसिद्ध है। सर्व साधारण लोग इसे माता कहते हैं।

शीतला कैसे फैलती है

यह स्पर्शजन्य बीमारी तो है ही परन्तु यह हवाकेद्वारा भी एकसे दूसरेतक पहुँच जाती है। इसका विष हवाके साथ मिलकर उसे दूषित कर देता है और फिर यह

रखनेके लिये किन-किन तत्वोंकी जरूरत पड़ती है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं।

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न प्राणियोंको भिन्न-भिन्न प्रकारके भोजनकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार मनुष्यके किसी अवयव विशेषको भी विशेष प्रकारके भोजनकी जरूरत पड़ती है। जब वह खास किस्मका भोजन उस अवयवको नहीं मिलता तो वह कमजोर और रोगी हो जाता है।

दाँतोंको मजबूत और रोग-मुक्त रखनेके लिये बाहरी सफाईके सिवा भोजनमें विटामिन सी, तीसरे खाद्योजका होना बहुत जरूरी है। जब दाँतोंको यह तत्व नहीं मिलता तब वह कमजोर निकम्मे और रोगग्रस्त हो जाते हैं। विटामिन-सीका असर पाचन क्रियापर होता है। इसकी कमीसे पाचन-क्रियामें गड़बड़ी, उपयुक्त तत्वका रक्तवाहिनियोंद्वारा दाँतोंतक न पहुँचना जिससे मसूड़ोंका फूलना, रक्तका जाना, सन्धियोंमें कड़ापन, दुर्गन्धि और पायोरिया अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

यह तत्व विशेषतः ताजे फल मूल, कागजी नीबू, मीठा नीबू सन्तरा, अनार, ककड़ी, खीरा, तरबूज, खरबूजा, हरा नारियल, टमाटर, भीगे चने, अंगूर, केला, शलजम, प्याज, सलाद बंदगोभी, पालक, सेब, नासपाती आदिमें पाया जाता है। तरकारी उबालकर उसका पानी फेंक देनेसे यह निकल जाता है। हरी घास और पत्ते खानेवाली गाय तथा बकरीके दूधमें यह अधिक रहता है। यह गरमी नहीं सह सकता। अतएव विटामिन-सी-युत पदार्थोंको कच्चा ही व्यवहारमें लाना उचित है।

विटामिन-सीके अतिरिक्त दाँतोंकी मजबूतीके लिये चूना क्षार (Calcium) की भी आवश्यकता है। यह पदार्थ भी तरकारियोंमें पाया जाता है। पर जिस परिमाणमें इसकी आवश्यकता होती है उतना पानेके लिये दो सेर तरकारीको हजम करना पड़ेगा। यह असम्भव बात है। इस तत्वकी कमी भोजनके बाद एक पाइंट दूध पी लेनेसे हो सकती है।

बालक ही बड़े होते हैं। अतएव बालकोंके भोजनमें इन दोनों तत्वोंका उचित परिमाणमें होना बहुत आवश्यक है। और यह दोनों तत्व बालकोंको माताके दूधमें आसानीसे मिल सकते हैं। इसके अभावमें बाहर चरनेवाली तथा पत्ते और घास खानेवाली बकरीका दूध दिया जा सकता है। थोड़ा-थोड़ा टमाटरका रस भी देना हितकर है। अभ्यास बढ़नेपर मात्रा भी बढ़ायी जा सकती है। बड़ोंकी तन्दुरुस्ती ठीक करनेकी अपेक्षा बालकोंको मजबूत बनाना ज्यादा जरूरी है। दाँतोंको स्वच्छ और मजबूत रखनेसे मनुष्यकी सामान्य तन्दुरुस्ती भी अच्छी रहती है।

विटामिन-सी यकृतको बल देनेवाला, रक्तशोधक और रक्त-वर्धक है। यकृत और पित्ताशय जब ठीक काम करता है तो शरीरमें सौन्दर्यका विकास होता है और मनुष्य रूपवान दिखाई पड़ता है।

दूषित वायु साँसकेद्वारा शरीरमें प्रवेश करके विकार उत्पन्न कर देती है। लगभग ११–१२ दिन इसका प्रभाव शरीरपर केवल सुस्ती या जुकाम होता है। जब इस अवधिमें यह विष पूर्णतया शरीरपर अपना अधिकार कर लेता है तब यह एकदम फूट निकलता है। ऐसे रोगीके छूनेसे, उसका जूठा पानी पीनेसे, जूठा भोजन करनेसे, उसके बिछौनोंसे, चारपाईसे, शीतलाकी फुन्सीका चेंप लगनेसे भी यह रोग एक दूसरेको लग जाया करता है। अतएव शीतलाके बीमारसे सावधान रहनेकी जरूरत है। बच्चोंमें प्रायः यही होता है कि घरके एक बच्चेको चेचक निकली और यदि एहतियात न रखा तो घरके सब बालकोंको चेचक निकलती है। कभी-कभी छुआ-छूतका विशेष ध्यान न रखनेसे मोहल्ले भरके बालकोंको कष्ट उठाना पड़ता है।

शीतलाकी भयंकरता

यह रोग वैसे दिखनेमें साधारणसा है किन्तु अत्यन्त भयानक है। इससे रोगी बेचैन हो जाता है। सूरत शक्ल खराब हो जाती है। आँखोंपर इसका बुरा प्रभाव होता है। अनेक लोग इस रोगकेद्वारा अपनी आँखें खो बैठे हैं। अनेक मनुष्य काने हो गये और अनेकको आँखोंमें फूली पड़ गयी है। यह रोग काले रंगके आदमियोंको ज्यादा होता है। जवान और बूढ़ोंकी अपेक्षा बालकोंको अधिकांश होता है। शीतला रोग जीवनमें एक ही बार होता है। यदि संयोगवश दोबारा हो तो वह उतना भयानक नहीं होता। कभी-कभी तीसरी बार भी यह रोग हो जाता है परन्तु करोड़ोंमें किसी एकाधको। यह गर्म प्रांतोंमें तथा गर्म देशोंमें शीत प्रधान स्थानोंकी अपेक्षा अधिक होता है। रोगीके मर जानेपर भी उसके शरीरसे विष निकलता रहता है जो आसपासके लोगोंको हानि पहुँचा सकता है। कभी-कभी इसकी छूतका प्रभाव गर्भस्थ बालकतक पहुँच जाता है। एक वर्षकी उम्रतकके बालकोंको यह रोग कम होता है। परन्तु टीका लगवा लेना चाहिये। बेफिक्र रहनेसे बहुत संभव है कि किसी आपत्तिमें फँस जाना पड़े।

यह रोग कब, कहाँ और किन्हें प्रायः होता है ?

यह रोग जब दक्षिण दिशाकी हवा अधिक चलती है तब होता है। गर्म प्रकृतिके मनुष्योंको इस रोगके होनेकी अधिक संभावना रहती है। शहरमें उष्णता और तरी अधिक हो तो भी यह बीमारी फूट निकलती है। खुश्क मिजाजके मनुष्योंको यह बहुत ही कम निकलती है। वसन्त ऋतुमें और शरद ऋतुमें यह रोग अधिकतर फैलता है बशर्ते कि गर्मी थोड़ी बहुत अवश्य रोज पड़े।

चिकित्सकोंके मत

प्राकृतिक चिकित्सकोंका कहना है कि जो दूषित मवाद शरीरमें उत्पन्न होता रहता है अधिकता पाकर वह निकलता है। वह मवाद दानोंके रूपमें होता है, जिसे शीतला कहा जाता है। यूनानी चिकित्सकोंका मत है कि दुर्गन्धके कारण खूनमें एक तरहका उफान पैदा होता है, जिससे रक्त परिमाणु अलग-अलग हो जाते हैं। बालकोंका खून कच्चा और तर होता है, जिसका बदलना अनिवार्य है। इस रक्त विपाकके जोशसे फुन्सियाँ पैदा होती हैं जिसे चेचक कहते हैं। 'माधव निदान'में लिखा है—कड़वा, खारी, बासी, खट्टे, विरुद्ध भोजन, भोजन कर चुकनेपर फिर भोजन करना, लड्डू अधिक खाना, सड़े हुए फूलोंकी गन्ध लेना, सागपात अधिक खाना, इत्यादि बातोंसे वातादि दोष दूषित रक्तसे मिलकर यह रोग उत्पन्न होता है। इसका दूषित रक्तसे विशेष सम्बन्ध है।

शीतलाकी पहचान

चेचकके चिन्ह एकदम उठते हैं। शरीरमें दर्द होने लगता है। हड़फूटनसी होने लगती है। शीत ज्वर तत्काल हो जाता है। सिर और कमरमें दर्द होने लगता है। उबकाइयां आती हैं। ज्वरका तापमान थर्मामीटरसे नापनेपर १०२ से १०४ तक रहता है। अगले दिन ताप-क्रम और भी अधिक हो जाता है फिर ताप-क्रम घटने लगता है। १०० तक पहुँच जाता है। बादमें ७ वें दिनसे १२ वें—१३ वें दिनतक फिर गर्मी बढ़ने लगती है और १०४ तक पहुँच जाती है। इन दिनों इस रोगकी फुन्सियाँ जोरोंपर होती हैं। इस रोगमें कमजोरी बहुत आ जाती है। भूख नहीं लगती, प्यास बढ़ जाती है, कब्ज हो जाता है। बुखार चढ़नेके ४८ घंटे बाद इस बीमारीकी फुन्सियाँ नजर आने लगती हैं। इस रोगमें पीठ दर्द करने लगती है, नाक बहती

है, उसमें खुजलाहट होती है, आंसू बहते हैं, स्वप्नमें चमक होती है, साँस कम आने लगती है, आवाज बैठ जाती है, किसी-किसीको खाँसी भी होती है। इस रोगमें प्रायः ९ वें–१० वें दिनसे शरीरका तापमान कम होने लगता है और १८ से २० दिनतक बिलकुल आराम हो जाता है।

शीतलाकी फुन्सियाँ पहले मुखपर बादमें छाती और हाथोंपर निकली हैं। निचले भागोंपर सबसे बादमें दिखाई देती हैं। दो तीन दिनतक ये दाने बढ़ते हैं। चेहरा सूज जाता है। आँखोंकी पलकें इतनी सूज जाती हैं कि वे बन्द हो जाती हैं। नाक, कण्ठ और गलेकी झिल्ली अधिक रोग-युक्त होती है। मोह या मूर्च्छा होती है। यदि रोगी असाध्य हो गया तो १०–११ दिनमें ही वह मर जावेगा। (Malignant Small pox or Perpura variolae) असाध्य-शीतलाका रोगी प्रायः तीन दिनमें ही खत्म हो जाता है।

शीतलाके भेद

शीतला कई प्रकारकी होती हैं। साधारणसे साधारण और भयंकरसे भयंकर होती हैं। इसके विश्लेषण योग्य यहां स्थान नहीं है। वैद्यकमें इस रोगको भी वात मसूरिका, पित्तज मसूरिका, कफज मसूरिका, रक्तज मसूरिका और सन्निपातज मसूरिकामें विभक्त कर दिया है। इसके अतिरिक्त रक्तगत, मांसगत, मेदागत, अस्थिगत, वीर्यगत शीतलाका भी वर्णन है। मोटे रूपमें ७ प्रकारकी शीतला मानी गयी है। १. बड़ी, २. कोदवा, ३. पानिसहा, ४. दुखःकोदखा, ५. कुष्ट समान, ६. सर्षपिका और ७. चिर्मनि—(१) बड़ी शीतला जिसका वर्णन हम पीछे कर आये हैं, (२) यह कोदोंकी शक्लके दानेवाली होती है। १२ दिनमें बिना चिकित्साके ही जाती रहती है। औषधि देना हो तो खदरारिष्ट देवें। (३) यह गर्मीसे पैदा होती है। खुजली होती है। सातवें दिन अपने आप जाती रहती है। (४) बालकोंके मुँहपर राईके समान दाने गर्मीसे पैदा हो जाते हैं। कुछ दिनोंमें आप ही आप आराम हो जाती है, (५) कोढ़की तरह रक्त तथा ऊंचे दाने होते हैं इसमें ज्वर सिर्फ तीन दिन ही रहता है, (६) यह पीली सरसों सरीखी होती है इसे मसलना नहीं चाहिये और (७) इसके दाने स्याही मायल होते हैं।

निदानमें सावधानी

शीतलासे मिलते जुलते और भी कई रोग हैं। इस-लिये निदानमें सावधानी रखनी चाहिये। लालबुखार भी शीतलासे बहुत कुछ मिलता जुलता है। हुमीका, खसरा, आतशक, मोहारका आदि कई रोग इससे मिलते जुलते हैं।

रोगीकी सुश्रूषा

इस बीमारीमें रोगीको अलग रखना चाहिये। रोगीका कमरा अलग हो। उसमें प्रकाश न हो। अन्धकार शीतला रोगमें लाभदायक है। संभवतः डाक्टर इसके विरुद्ध मत प्रकट करें, परन्तु अनुभव यह बताता है कि अंधकार आवश्यक है। कमरेमें हवा न आने दी जाय। अर्थात् स्वच्छन्द वायु न आये अन्यथा चेचक अच्छी तरह नहीं निकलेगी। यदि कमरेमें गर्मी अधिक बढ़ जावे तो उसे शीतल कर देना चाहिए। कमरेकी हवा शीतोष्ण रखनी चाहिए। शुद्ध वायु-के निमित्त झरोखे खुले रखने चाहिए। शीतल वायुके झोके इस रोगमें विषतुल्य घातक होते हैं।

जलकी इस रोगमें सदैव आवश्यकता रहती है। अति तृषा शीतलाका एक लक्षण है। ठण्ढा पानी थोड़ा-थोड़ा देना चाहिए। एक ही बार अधिक न पिला देवें। गर्म पानी भूलकर भी नहीं देना चाहिए। लेमन, आरेंञ्ज् आदि पेय भी दिया जा सकता है। प्यास बुझानेके लिये दूध भी दिया जा सकता है। मूँगका रस इस रोगमें प्यासको मारता है। नमक नहीं देना चाहिए अन्यथा फुन्सियोंमें खाज उत्पन्न होगी। आरंभके ७ दिनतक दूध भी दिया जा सकता है। बादमें देनेसे यह फुन्सियोंमें पीव उत्पन्न करेगा और दोनोंको तर रखेगा। परिणाम यह होगा कि रोग देरीसे आराम होगा। दूधकी तरह ही घीके विषयमें समझा जाना चाहिये। तेलकी चीजें कभी न दो, तीक्ष्ण और अत्यन्त खट्टे पदार्थ न खिलाओ, अति शीतल वस्तु भी नहीं देना चाहिए। गुरुपाक और विष्टम्भी वस्तु कदापि न दो। मलमूत्रका वेग न रोका जाय।

रोगीके कमरेका पर्दा दारचिकनाके पानी या मरकरी लोशनसे भिगोकर लटकाना चाहिए। सुगन्धित द्रव्य बाहर

जलाना चाहिए। रोगीके थूक, मल, मूत्र आदिके लिये विशेष सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। एक पात्रमें मलमूत्रादि कराया जाय और उसपर फौरन राख अथवा कारबोलिक एसिड पानीमें घोलकर डाल देना चाहिए। बादमें इन्हें गड्ढा खुदवाकर उसमें गाड़ देना चाहिये। या ऐसे दूर स्थानपर डाले जहाँ किसीका भी आवागमन न हो। रोगी जब अच्छा हो जावे तो उसे बिना स्नान कराये किसीसे न मिलने देना चाहिए। स्नान कीटाणु नाशक जल जैसे मरकरी लोशन या नीमके पत्तोंके पानीसे कराना चाहिए।

पुराने खयालके लोगोंका मत

पुराने खयालके लोगोंका कहना है कि इस रोगमें दवा नहीं करनी चाहिए। परन्तु जब यह एक बीमारी है तो दवा भी जरूरी है। यह बात दूसरी है कि इस भयानक रोगके उचित चिकित्सक न मिलनेसे दवा न करनेका नियम बन गया हो। किन्तु माता और देवी मानकर दवा दारू ही न की जावे यह तो बिलकुल अनुचित है। पुराने ढर्रेके लोग दवा तो करते जाते हैं परन्तु उसे दवा कहते नहीं। माताकी प्रसादी वगैरह कहते हैं। हम यहाँ इस रोगमें उपयोगी कुछ चिकित्सा लिखेंगे।

उपयोगी चिकित्सा

१. इस रोगमें फस्द खुलवानेका विधान है। जोंकें लगवाकर खून निकलवाया जावे, परन्तु यह चिकित्सा चार दिन बाद हानिकारक है।

२. गुल नीलोफर, गुल बनफशा, सौंफ, शाहतर हरेक चार-चार माशा, उन्नाब ७ दाने इन सबको आधसेर पानीमें एक पहर भिगो दे। बादमें मसल कर छान ले। इसमें शर्बत नीलोफर डालकर ५ माशा धुली हुई खूब पकाकर यह पानी पिलादे। ठंढेका मोसम हो तो इसमें ३ माशा मुलेठी और ६ माशा अजमोद और मिला लेवे।

३. अंजीरका पानी इस रोगमें बहुत हितकारक है।

४. अंजीरजर्द ७, मसूरकी दाल बिना छिलका १ माशा, कतीरा, सौंफ हरेक आधा तोला। इन सबको १० तोला पानीमें उबाल ले, ४ तोला रहनेपर मसल छानकर पिलावे।

५. छोटा पंचमूल, बड़ा पंचमूल, आमला, रास्ना, खस, धमांसा, गिलोय, धनिया और नागरमोथा इनका क्वाथ इस रोगमें अत्यन्त उपयोगी है।

६. मजीठकी छाल, पिलखीकी छाल, सिरसव बड़की छालका क्वाथ भी लाभप्रद है।

७. जब शीतला पकनेपर हो तब गिलोय, मुलेठी, दाख, गन्नेकी जड़ और अनारका क्वाथ पिलाओ। जल्दी पक जावेगी।

८, बांसकी छाल, तलीस, लाख, बिनोले, मसूर, जौका आटा, बच, अतीस और घी इनकी धूनी देनी चाहिये।

९. खैरकी छाल, नीमपत्र, सिरसकी छाल, गूलरकी छाल, इनको पीसकर लेप करना भी हितकारी है।

१०. जब स्थिति असाध्य हो तो, नीमके पत्ते, पित्त पापड़ा, पाढ़ा, परवल कड़वा, कुटकी, श्वेत चन्दन, खस, आमला, अडूसा, धमांसाका काढ़ा देना चाहिये।

११. ज्वर जोरका हो तो, नागर मोथा, अडूसा, चन्दन, गिलोय और दाखका काढ़ा बड़ा ही हितकारी है।

१२. यदि शीतलाकी फुन्सियां निकलकर फिर अन्दर चली जावें तो कचनारकी छालका काढ़ा रत्ती सोना मक्खीके साथ देना चाहिये।

१३. करंजुआके पत्ते रोगीके कमरेमें रखनेसे बहुत लाभ होता है।

१४. धनियाका तत्काल निकाला हुआ पानी, और खट्टे अनारके पानीसे आंखोंको धोते रहो।

१५. अर्क गुलाबमें माजू घिसकर भी आंखमें टपकाना हितकर है।

१६. बोरिक एसिड एक ड्रामको १ औंस गुलाबजलमें घोल लो। सायं-प्रातः आंखोंमें टपकाते रहो। या इसमें तर गद्दियां आखोंपर रखो।

१७. शीतलाकेद्वारा शरीरपर जो दाग हो गये हों उन्हें हटानेके लिये यह नुसखा ठीक होगा—मुर्दार संग, पुराने बांसकी जड़, चने, आटा चांवलोंका, पुरानी हड्डी, खरबूजाके बीज, बकाइनके बीज, कूट, इन सबको मेथी और अलसीके लुआबमें मिलाकर उबटन बनाकर रातको रख दो और प्रातः लगाकर गर्म पानीसे धो डालो।

१८. कलौंजीके पत्तोंका काढ़ा बनाकर उसमें हल्दी

अल्युमिनियमका स्वास्थ्यसे संबन्ध

स्वार्थी व्यापारियोंद्वारा हानिकर प्रचार*

अल्युमिनियमके दोषोंसे बचिये

(ले०—आयुर्वेदमहामहोपाध्याय रसायनशास्त्री भागीरथस्वामी आयुर्वेदाचार्य्य, १४३ हरीसनरोड, कलकत्ता)

खान-पानके पुराने बरतन

जिस तरह पुराने जमानेके खान-पान रहन-सहन आदि व्यवहारोंमें इस समय अन्तर पड़ गया है उसी तरह खाने-पीनेके बरतनोंके व्यवहारमें भी अन्तर पड़ गया है। प्राचीन कालमें ताँबा, पीतल, काँसा, भरत, रांग, जस्तके बरतनोंका व्यवहार होता था।

नयी चालके बरतन

अब प्रायः जहाँ देखिये वहाँ पीतल आदिके बरतनों की जगह अल्युमिनियमके बरतनोंका बहुत चलन हो गया है।

प्रचारका कारण

इसका प्रधान कारण यही है कि इस धातुका बरतन देखनेमें सफेद, स्वच्छ, हल्का, अधिक काम देनेवाला, सस्ता प्रतीत होता है। जैसे-जैसे हम दरिद्रावस्थासम्पन्न होते जाते हैं वैसे ही हमको दरिद्र बनानेवाली तथा स्वास्थ्य खराब करनेवाली वस्तुओंका आविर्भाव होता जाता है।

हानियाँ

हमको अनेक वर्षोंके अनुभवद्वारा यह सिद्ध हो गया है कि अल्युमिनियमके बर्तन सस्ते होनेपर भी पीतल, ताँबा आदिके बर्तनोंसे अत्यन्त महँगे और जल्द खराब होते हैं। पीतल आदिके वर्तन बरसों चलनेपर भी टूट जानेसे फिर जुड़ सकते हैं। परन्तु अल्युमिनियमके

डालकर पीनेसे भयंकरसे भयंकर शीतलाका नाश होता है।

१९. फुन्सियोंमेंसे पीव वगैरह बहने लगे तो उनपर जंगली कण्डेकी राख भुरकानेसे घाव सूख जाते हैं।

२०. यदि व्रण पक जावें तो दूब और जलाशयके अन्दर-के कंकर पीसकर लेप करनेसे लाभ होता है।

आजकल शीतलासे बचनेका सहज सुगम उपाय इसका टीका लगवाना है। टीका लगवानेसे शीतलाका भय नहीं रहता। उसका जोश कम हो जाता है। जब निकलती है तब बहुत ही कम निकलती है। मृत्युकी बहुत कम संभावना रहती है। जो लोग टीका नहीं पसंद करते उन्हें निम्न उपाय काममें लाने चाहिये—

टीका न लगानेवालोंको क्या करना चाहिए?

१. बच्चा पैदा होनेपर नालका रुधिर बालकके उदरमें न जाने देना चाहिये, बाहरकी ओर सूतना चाहिये।

२. नाल काटकर उसमें १२ अनबिंधे मोती रखकर ऊपरसे बांध दो। नाल निकल जानेपर उसमेंसे वे मोती निकाल लो। एक मोती प्रतिदिन खिला देनेसे सारी उम्र चेचकका भय नहीं रहता। यदि नालमें न रखें तो वैसे ही १५ दिनतक एक-एक अनबिधा मोती खिला देवें।

३. गर्भ चिन्होंके प्रकट होनेपर गर्भिणीको २१ दिन-तक रसौतका पानी पिलाना चाहिये। एक माशा रसौतको पानीमें घोल लो और फिर पानीको निथारकर पिला दो।

४. जिस दिन गधीने बच्चा जना हो उसी दिनका दूध बच्चेको पिलानेसे चेचक नहीं निकलता।

इस रोगके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखना था, किन्तु स्थानाभावसे आवश्यक बातोंका ही यहाँ उल्लेख किया गया है। आशा है पाठक इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।

["जयाजी प्रताप" से]

---

* विज्ञानमें अल्युमिनियमसे होनेवाली हानियों और लाभोंपर पहले भी विचार किया गया है। विषय स्वार्थ-ग्रस्त भी है और विवादग्रस्त भी। —रा० गौ०

बरतन नहीं जुड़ सकते हैं और न पीछे बिक सकते हैं। दूसरी बात यह है कि भोजन तथा शाकादिमें क्षार वस्तुओंके संयोग होनेसे थोड़ेही दिनोंमें चलनीकी भाँति सैकड़ों छिद्र हो जाते हैं। अतः उसका जुड़ना असंभव हो जाता है। टूट-फूट जानेपर बड़े शहरोंमें रुपयोंकी वस्तु कौड़ियोंके मूल्यमें बिक सकती है। पर छोटे ग्रामोंमें तो वह भी नहीं बिक सकती।

स्वास्थ्यको हानि

अब रही स्वास्थ्यकी बात तो इस विषयमें भी कहा जा सकता है इससे स्वास्थ्यको लाभ नहीं हो सकता। हाँ, यह कह सकता हूँ कि इसके बरतनोंसे क्षारका सम्बन्ध न कर केवल बिना चिकनाई वा चिकनाईकी वस्तु साधारण आगसे पकानेपर इसमें बनी हुई वस्तु नहीं बिगड़ेगी और बरतन अधिक दिनतक टिक सकते हैं। चिकनी वस्तुओंके बनानेके समय तेज आँच देनेसे इसके जलकर खराब होनेका भय है। इसलिये ताँबा, पीतल आदिसे बने हुए बरतनोंके स्थानपर इसकी चाह सम्भव नहीं।

एक डाक्टरका मत

इस विषयमें केवल मेरा ही सिद्धान्त स्वास्थ्यसुधारके संबंधमें विरुद्ध नहीं है। किन्तु इस विषयमें लाहौरसे निकलनेवाले ट्रिब्यूनके किसी अङ्कमें डाक्टर विण्टरने अपनी सम्मति देकर यह बताया है कि अल्युमिनियमके बर्तन स्वास्थ्यको क्रमशः खराब करते हैं।

अल्युमिनियमके बरतनमें १५-२० मिनट पानी उबालकर काँचकी शुद्ध शीशीमें भरकर रख देनेसे पानीका रंग काले रंगका प्रतीत होगा। वही पानी पीतल आदिके शुद्ध बर्तनमें औटाकर उसी प्रकारकी शीशीमें रख देनेपर सफेद स्वच्छ होगा। हाँ, यदि ताम्रके पुराने बिना साफ किये हुए बर्तनमें औटाया जावेगा तो रंग बदलेगा तथा खराबी कर सकता है।

औटे पानीका काला होना

यह बात यों होती है कि अल्युमिनियममें परमाणु कुछ जलमें घुलकर आ जाते हैं। इसमें कुछ घुलनेकी शक्ति है। *

अनेक बीमारियाँ

इसी प्रकार क्षार खटाईयुक्त शाक बनानेपर भी अल्युमिनियमके परमाणु शाकमें आते हैं।

आम, नीबू आदिकी खटाई अल्युमिनियममें पकाकर खानेसे निरन्तर स्वास्थ्य खराब हो सकता है। † और वमन, जीका मचलाना आदि विकृति तथा अन्त्रदुष्टि-रोग भी अल्युमिनियमकी मात्रा पेटमें अधिक पहुँचनेपर हो सकते हैं। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' इस सिद्धान्तानुसार अधिकतासे आँतोंमें या अन्यत्र फोड़ा भी बन सकता है। आँतोंसे रक्त-स्रावका भी आरम्भ हो जाना साधारण बात है यदि इसका पाचन क्रियासे सम्बन्ध होकर रक्तसंचारमें विशेष प्रवृत्ति हो जावे तो अनेक प्रकारके रक्तविकार भी हो सकते हैं तथा अन्य विकार भी हो सकते हैं। क्षुधाकी मन्दता (भूख कम) हो जाना तो सामान्य बात है। किसी-किसी समय पाचक क्रियाकी विपरीततासे उत्पन्न विषको रोकता भी है। परन्तु वह कभी यदि औषधके रूपमें भस्म कर खाया जावे तो वह उसी समय रोकता है जब कि उस विकृतिकी क्रियाके ही समय दिया जावे। ‡

---

* अल्युमिनियम उसी जलमें अधिक घुलता है जिस जलमें पाशुज व सैंधकम् आदि क्षारोंकी मात्रा होती है, शुद्ध जलमें अल्युमिनियम नहीं घुलता।

† आम, नीबू आदिकी खटाई अल्युमिनियमके बर्तनपर कोई प्रभाव नहीं करती, न खट्टी चीज इसमें उबालनेसे उक्त खटाईमें ही इसका कोई विकार आता है। न इसके बर्तनमें दही अचार रखकर खानेसे स्वास्थ्यको कोई हानिका भय ही है (अम्लसे साधारणतः अल्युमिनियम प्रभावित नहीं होता न उसका कुछ अंश इसमें घुलकर मिलता ही है। हां, नमकका प्रभाव अवश्य होता है। और प्रायः बिना नमकके हम खटाई कम इस्तेमाल करते हैं।

‡ वैद्यजीने अल्युमिनियमके पात्रमें पकाकर या उसमें खानेसे जिन रोगोंके होनेका वर्णन उक्त पंक्तियोंमें किया है इसकी सचाईका प्रमाण हमें अपने चिकित्सा कालमें आजतक नहीं मिला। न आधुनिक गवेषणाओंसे इसकी पुष्टि होती है। —स० स० इ० शा०

पेटमें विशेष मात्राके एकत्रित होनेसे आँतोंपर अधिक प्रभाव पड़ता है। जिससे क्षुधा मंद, उदर पीड़ा, जी मत-लाना, बेचैनी, रक्तस्राव आदि भी रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इस विषयमें डा० 'एच्०ए० मुगन्स' तथा अमरीकाके स्वा-स्थ्य संघके सभापति डा० डबल्यू० एस्० ह्लेल्डर आदिने भी अपनी सम्मति दी है। इस विषयमें कुछ दिन हुए विश्वमित्रमें भी ट्रिब्यूनसे अनुवाद कर एक लेख छपा था।

मिस्टर ह्लेलरका मत और प्रमाण

अल्युमिनियमकी निर्दोषिता

इसके उत्तरमें बम्बईके मिस्टर ह्लेलरने लिखा है कि ४ जनवरी सन् १९१३ के 'लेनसेट' पत्रमें रसायनशास्त्रियों और डाक्टरोंकी एक स्पेशल कमेटीका निर्णय निकला था। जिसमें अल्युमिनियमके बर्तनोंमें भोजन पकानेकी आज्ञा प्रचलित की थी कि आज जिन प्रसिद्ध कारखानोंमें बरतन बनते हैं। उनमें खाना पकानेके लिये ठीक है और खानेकी चीजमें किसी तरहका सन्देह नहीं होना चाहिये। इसमें विषका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और अल्युमिनियमके निर्विकार सिद्ध करनेके लिये केलीफोर्निया युनिवर्सिटीके डा० स्मिट और होगलैण्ड, उजवर्ग-युनिवर्सिटीके डाक्टर 'कुनकेल' एडिन्बरायुनिवर्सिटीके डाक्टर 'कुशनी' और क्रिश्चिनिया-युनिवर्सिटीके डाक्टर डा० 'पोलसम'ने भी परीक्षा करके अल्यु-मिनियमको निर्दोष सिद्ध किया है। इसपर मुम्बईके ह्लेल्ड कहते हैं कि क्या इनका कथन संतोषप्रद नहीं है? आप यह भी कहते हैं कि गुजरात जेलमें अल्युमिनियमके बरतनोंका व्यवहार किया जाता है। वहाँ कौनसी नयी बीमारियाँ पैदा हुईं! क्या अमरीका और इगलैण्ड आदिने अल्युमिनियमके बर्तनोंसे काम लेना बन्द कर दिया है? क्या इसके कारखाने बन्द कर दिये हैं? वहाँ भी इसका काम बढ़ता ही जाता है, तथा बिक्री भी बढ़ती ही जाती है। खाने और पीनेके अधिकांश पदार्थोंमें अल्युमिनियम होता है। अंडोंमें फी पौंड १५६ ग्रेन अल्युमिनियम होता है और आटेमें तथा अन्य सभी वस्तुओंमें अल्युमिनियम होता है। आपने एक दाँतोंके विशेषज्ञकी भी बात लिखी है कि अल्युमिनियम-की तश्तरीको काममें लानेसे दाँतोंकी बीमारी नहीं हो सकी।

संदेह

मिस्टर ह्लेल्डरके लेखसे मालूम होता है आपका किसी अल्युमिनियके बरतन बनानेवाले किसी कारखानेसे सबन्ध है। इसीलिये आपने मनमानी कल्पना कर लेख लिखा है। कारखानेके मालिकोंकेद्वारा कारखाना चलाते समय अधिक विक्री होनेके लोभसे डाक्टरोंकी पूजा कर प्रमाणपत्र लेकर आपके कथनानुसार उनसे इस प्रकारकी बातें लिखाकर व्यापार बढ़ाना साधारण बात है। डाक्टर रसोइया नहीं है। घीमें तथा तेलमें पूरी-साग साधारण वस्तु बनाकर देखकर प्रमाण-पत्र दे दिया गया है।

हमारी चुनौती और सम्मति

हम इन डाक्टरोंको चेलेञ्ज देते हैं कि इसका पेटमें अधिक पहुँचना खराब नहीं है वह साबित करें। क्या उन डाक्टरोंको यह मालूम है कि समस्त संसारके पदार्थोंका बनाना तो कठिन परन्तु केवल यही बतावें कि भारतवर्षमें क्या-क्या पदार्थ किस प्रकारसे बनते हैं और किन पदार्थोंसे अल्युमिनियमका क्षार उतरकर स्वास्थ्य खराब कर सका है? डाक्टरोंने अपनी साधारण राय दी है कोई विशेष राय नहीं है। जिससे आप उनकी मिथ्या गवाही पेश करते हैं।

आप उत्तरदाता होकर स्वयं कहते हैं कि इन बरतनोंके बनानेवाले स्वयं कहते आ रहे हैं कि अल्युमिनियमके बरतनों-को साफ करनेके लिये बहुत ही अधिक सोडाका व्यवहार करना ठीक नहीं है। इसीसे उन्होंने साफ करनेके दूसरे चूर्णोंसे ही इन बरतनोंको साफ करनेका अनुरोध किया है। * आप सोचिये चिकने घृत, तैल आदि द्रव्य बिना राख या सोड़ेके कैसे साफ हो सकते हैं। जब सोडा या राख लगाकर साफ किये जाकर रखे जावेंगे तब एक प्रकारका आक्सिजन गैस तैयार होकर सफेद-सफेद चूनासा होकर उड़ने लगेगा और बर्तन फूट जावेगा। छेद हो जावेंगे। वही अल्युमिनियमका क्षार चूर्ण पेटमें नित्य जावेगा तब

* भस्म या राख या सोडासे अल्युमिनियमके बरतनका माँजना, साफ करना बरतनके जीवनको नष्ट करना है; उक्त पदार्थ बरतनको शीघ्र खा जाते हैं। इन बरतनोंको मिट्टी खड़िया आदिसे ही माँजना चाहिये तभी अच्छे स्वच्छ दीर्घजीवी रह सकते हैं। —स० ह० श०

उसका परिणाम क्या निकलेगा? क्या आपके गवाही देने-वाले किसी डाक्टरने यह व्यवस्था दे रखी है? रही इसकी वृद्धि यह दूसरी बात है जिस चोरी बदमाशी डकैतीको सब बुरा बताते हैं जिसके करनेसे सजा होती है। वही जब नहीं घटती है तो इसका न घटना तो साधारण बात है। संखिया, तूतिया आदि जहरोंसे अनेक मनुष्य मर जाते हैं। परन्तु वह बन्द क्यों नहीं हुए!

सम्मतियोंका अधूरापन

मान लिया जावे कि उन्होंने एक बार परीक्षा कर लिख दिया कि यह स्वास्थ्यको हानि नहीं करता है। एक बारमें उसने प्रत्यक्ष हानि नहीं की, तो क्या आप यह समझ लेंगे कि नित्यप्रति शरीरमें विशेष रूपमें जाकर प्राप्त होनेसे नुकसान नहीं करेगा? सोचिये कि सोना चाँदी नुकसान करनेवाले हैं ऐसा किसीने नहीं लिखा, न प्रत्यक्षमें हैं परन्तु किसी कारण बस चाँदी या सोना, किसी प्रकार नित्य पेटमें जाने लगे तो क्या वह नुकसान न करेगा? क्या कोई विशेष रोग नहीं उत्पन्न होगा?

रेडियमका प्रभाव

क्या आपको मालूम है कि रेडियम जरासी शरीरमें प्राप्त होनेसे उसका फल किसीको कुछ नहीं मालूम होता है। परन्तु इसके कारखानेमें काम करनेवाले न जाने कितने मनुष्य रेडियमकी कृपासे सूख-सूखकर यमराजके घर चले गये! क्या इसके पहले किसी डाक्टरने यह कहा था कि रेडियमके अन्दर ऐसा जबरदस्त विष है?

अंडेके सेवनका फल

यदि आप यह कहते हैं कि अल्युमिनियम अंडेमें प्रति-पौंड १५६ ग्रेन है वह नुकसान क्यों नहीं करता है? तो उसके संबंधमें मैं कहता हूँ कि क्या आपको मालूम है कि १५६ रत्तीका ७ मासेके लगभग होता है। वह पेटमें कितने दिनोंमें जाता है और वह प्राकृतिक विलक्षण संयोगके कारण क्या करता है? क्या अंडेके खानेवालेके पेटमें कभी अल्युमिनिय मिला है? प्राकृतिक संयोगसे विलक्षणता आ जाती है। फिर भी अन्तमें अंडा अधिक खानेवालोंकी दुर्दशा देखी जाती है।

विषका रस बनना

आपको मालूम है कि संयोगज अल्युमिनियम-के क्या गुण हैं? हीरे, नीलम, माणिक, पुखराज, गोमेद, लसनिया, फीरोजामें भी अल्युमिनियम होता है। इनका सत निकालनेसे वह पारेमें मिलनेसे नाना सिद्धि-योंका करनेवाला है। इसी प्रकार वज्राभ्रकसे भी सत्वरूपमें अल्युमिनियम निकलता है यह पारदको स्थिरकर जो पदार्थ बनाता है उसके अद्भुत गुण हैं। परन्तु आपके बरतनों-वाला अल्युमिनियम ऐसा अद्भुत कार्य्य करनेवाला नहीं है।

बरतनोंवाला अल्युमिनियम

आपका अल्युमिनियम सलफेट (Aluminium Sulphate स्फटी) (फिटकरी) से निकलता है। इसीमें पोटा-सियम गन्धित (Potassium Sulphate) द्रावणको मिलाकर उसके पानीको उड़ा देनेसे चमकीले रंग रहित दाने नीचे बैठ जाते हैं। उसको पुटासियम एलम् (Potash Alum) कहते हैं। पीछे साफ करके अल्यु-मिनियम बनाते हैं।

फिटकरीके विविधरूप और अल्युमिनियम

फिटकरी अन्य रंगोंसे मिलाकर पक्का रंग बना देती हैं। इससे चमड़ा रंगा जाता है। कागजके बनानेमें पानी साफ करनेसे लकड़ी और कपड़ेको अदह्य बनानेके काममें आती है। यह स्थान भेदसे लाल सफेद पीली काली होती है * यह २ कक्षामें गरम ३ कक्षामें रूक्ष है। फुफ्फुस आतोंको खराब करनेवाली है इसका दर्पनाशक घृत-दुग्ध हैं।

अल्युमिनियम क्या है?

अल्युमिनियम फिटकरीका सत्त्व है। आयुर्वेदमें भी इसके सत निकालनेकी क्रिया लिखी है। यह कसेली-कड़वी, चरपरी कसेली खट्टी लेखन ग्राहणी स्निग्ध तथा उष्ण है।

फिटकरीके विविध उपयोग

कुष्ट व्रण भगंदर प्रदर विषदोष, मूत्र-कृच्छ, त्रिदोष, प्रमेह, बात, विशूचिकाको मिटाती है।

* स्थान भेदसे नहीं, भिन्न तत्वोंके संयोगसे भिन्न यौगिकोंमें रहनेके कारण भिन्न-भिन्न वर्णोंवाली होती है। —स० ह० श०

१. इसको फुलाकर सुँघानेसे नकसीर बन्द हो जाती है।

२. मञ्जन करनेसे दातोंकी सड़न तथा पीड़ा मिटती है।

३. गदले पानीमें डालनेसे पानी शुद्ध हो जाता है।

४. इसको जलमें घोलकर कुल्ली करनेसे मसूढ़ेकी पीड़ा, गलेकी गाठें, लार गिरना बन्द हो जाता है।

५. इसके लेपसे बिच्छूका विष उतरता है।

६. नाभि टलनेसे उत्पन्न होनेवाला नाभीका फोड़ा लेप करनेसे मिट जाता है।

७. फुलाई हुई फिटकरी एक-एक मासामें थोड़ी शर्करा मिलाकर ४ पुड़िया बनाकर तीन-तीन घंटेपर पानीके साथ खानेसे छाती तथा फेफड़ोंसे रुधिरका आना बन्द हो जाता है।

८. गर्भपात होनेके पीछे गर्भाशयमें दूषित रक्तको पूरा निकालनेके लिये तथा विशेष रुधिरको बन्द करनेके लिये सुपारीके बराबर महीन कपड़ेमें पोटली बाँधकर उस पोटलीमें मजबूत एक डोरा बाँधकर डोरेको बाहर रखकर पोटलीको गर्भाशयके मुखपर २४ घंटेतक रख देवें। यदि कोई दाद खाज आदि उपद्रव हो तो निकालकर फिर रख देवें। इससे गर्भाशयके मुखपर समस्त बुरा रुधिर आकर निकल जावेगा।

९. बबूलकी छालके क्वाथमें फिटकरी चूर्ण डालकर पिचकारी देनेसे आमातिसार मिटता है।

१०. गुलाबजलमें लाल फिटकरी घोलकर आँखमें डालनेसे नेत्रकी लाली और पीड़ा मिटती है।

११. नीबूके रसमें फिटकरी फुलाकर लेप करनेसे नेत्र पीड़ा मिटती है।

१२. सूखी (कुत्ता खाँसी) में फूली हुई फिटकरी २ रत्ती मिश्री मिलाकर दिनमें पाँच छः बार खिलानेसे खाँसी मिटती है।

१३. ढाई रत्ती फिटकरी शर्करामें मिलाकर तीन बार देनेसे रक्तातिसार मिटता है।

१४. अफीमके साथ फुलाई हुई फिटकरीसे अतिसार खाँसी श्वास दमेकी पीड़ा मिटती है।

१५. मीठे दहीमें १ माशे फिटकरी खिलानेसे मूत्रकृच्छ मिटता है। रोटी बिना नमककी मूंगकी दाल सेंधा नमक काली मिर्चके अतिरिक्त कुछ भी न खाना चाहिये। स्वाद खराबके कारण प्रथम थोड़ेसे दहीके बीचमें रखकर पूर्व फिटकरी खाकर पीछे और दही खावे।

१६. मिश्री मिलाकर १ मासा फिटकरी कुछ दिन खानेसे मूत्रकृच्छ सुजाक मिटता है।

१७. इसके सत्वको रासायनिक क्रियासे ३०।४० अग्निद्वारा भस्म कर खिलानेसे मेलेरिया भाग जाता है।*

१८. ७ मासा फिटकरीको पानीमें घोलकर जबतक जहर नहीं शान्त हो जावे प्रति घंटा पिलानेसे सर्पमात्रका जहर नष्ट होता है।

१९ भुनी फिटकरी गेरू सम भाग द्विगुणी मिश्री मिलाकर ७ माशा नित्य खानेसे सुजाक मिटता है।

२०. थूहरकी लकड़ीका गूदा निकालकर उस लकड़ीमें गुलाबी फिटकरी भरकर कपड़मिट्टी कर फूक देनेसे भस्म बन जाती है। उसकी २ रत्ती मात्रा पानमें धरकर या मधुमें खानेसे श्वास कास मिटता है।

२१. माजू फलके साथ फिटकरी लगानेसे मुखके छाले मिटते हैं।

२२. इसकी पोटली नेत्रोंपर फेरनेसे नेत्र पीड़ा मिटती है।

२३. लवण फिटकरी मिलाकर मंजन करनेसे दाँत दृढ़ होते हैं।

२४. इससे घाव भी भर जाते हैं।

२५. चोटसे जमेहुए रुधिरको पिघलानेके लिये फिटकरी डालकर हलुवा बाँधना चाहिये।

२६. फिटकरीको बगलमें लगानेसे बगलकी दुर्गन्ध मिटती है।

२७. इसकी पोटली रखनेसे स्त्रीका स्मर-मंदिर संकुचित होता है।

---

* यदि कोई नहीं बना सके तो पुण्यार्थ बाँटनेके लिये एक रुपयाकी १०८ पुड़िया मिलती हैं। लेखक।

परिषत्‌का वार्षिक अधिवेशन

विज्ञान-परिषत्‌का वार्षिक अधिवेशन १८ नवम्बर १९३४ रविवारको शामके ५ बजे प्रयाग-विश्वविद्यालयके फिजिक्स लेक्चर थियेटरमें हुआ। डाक्टर गणेशप्रसादजी एम्० ए० डी० एस्-सी० कलकत्ता विश्वविद्यालयके गणितके हार्डिज प्रोफेसरने "युरोपीय देशोंमें गणित सम्बन्धी खोजोंमें देशी भाषाका प्रयोग" पर व्याख्यान दिया। व्याख्यानके समय डाक्टर नारायणप्रसाद अष्ठाना सभापतिके आसनपर थे। कौन्सिलकी स्वीकृत रिपोर्ट पढ़कर सुनायी गयी। व्याख्यान समाप्त होनेपर निम्नलिखित कार्य हुआ।

१—रिपोर्ट स्वीकृत है।

२—निम्नलिखित सज्जन अगले सालके लिये कार्यकर्ता और पदाधिकारी चुने जाते हैं—

सभापति—डाक्टर श्रीगणेशप्रसाद एम्० ए० डी० एस-सी० हार्डिज गणिताचार्य, कलकत्ता।

उपसभापति—१ डा० श्री नीलरत्नधर डी० एस्-सी० रसायनाचार्य प्रयाग-विश्वविद्यालय।

„ २ डा० श्री एस्० वी० दत्त डी० एस्-सी० रसायनाचार्य, प्रयाग-विश्वविद्यालय।

प्रधानमंत्री—प्रो० श्री सालिगराम भार्गव एम्० एस्-सी० भौतिकाचार्य प्रयाग-विश्वविद्यालय।

मंत्री—प्रो० श्री व्रजराज एम्० ए० बी० एस्-सी० एल्-एल्० बी० कायस्थ-पाठशाला कालिज।

कोषाध्यक्ष—डा० श्री सत्यप्रकाश डी० एस्-सी० प्रयाग-विश्वविद्यालय।

अन्तरङ्ग सभाके स्थानीय सभासद्

डा० श्री श्रीरंजन, एम्० एस्-सी०, पी० एच्-डी०, प्रयाग। प० श्रीकन्हैयालाल भार्गव, रईस, प्रयाग। डाक्टर श्रीगोरखप्रसाद, डी० एस-सी०, प्रयाग-विश्वविद्यालय। प्रो० श्रीगोपालस्वरूप भार्गव, एम्० एस् सी०, प्रयाग।

अंतरंग सभाके बाहरी सभासद्—

डा० श्रीनिहालकरण सेठी, डी० एस्-सी०, आगरा। बाबू श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस् सी०, एल० टी० बलिया। प्रो० श्री रामदास गौड़, एम्० ए०, बनारस। स्वामी श्री हरिशरणानन्द, अमृतसर। प्रिंसिपल श्री हीरालाल खन्ना, एम्० एस्-सी०, कानपुर।

३—अगले सालके लिये विज्ञान चलानेका आय-व्यय-का आनुमानिक चिट्ठा स्वीकार है—

आय		व्यय	
विज्ञानके ग्राहकोंसे	३००)	विज्ञानकी छपाई	७००)
सरकारसे	६००)	क्लर्क	१००)
परिषद्‌से	३००)	डाकव्यय	१००)
	१२००)	कागज	२००)
		ब्लाक	१००)
			१२००)

४—अजमेरनिवासी पं० ओंकारनाथ शर्मा परिषद्‌के सदस्य चुने गये।

परिषत्‌का इक्कीसवाँ वार्षिक विवरण

श्रीमान् सभापति महोदयकी सेवामें सादर निवेदन

श्रीमान्,

हर साल यह लिखते लज्जा आती है कि विज्ञान-परिषद्‌की ओरसे जनताका ध्यान हटता जाता है। कारण तो सिवाय इसके और कोई नहीं जान पड़ता है कि संस्थाएँ स्थापित होती जाती हैं और लोगोंका ध्यान बँट जाता है। नयी चीज या संस्थाकी ओर ध्यान बहुधा शीघ्र ही खिंचता है, परन्तु यह खेदकी बात है क्योंकि इन इक्कीस वर्षोंके बाद आज अब वह समय निकट आता जान पड़ता है जिसके स्वागतके लिये यह परिषद् स्थापित की गयी थी। इतने बरसों बाद आज अब चारों ओरसे यह आवाज उठने लगी है कि पढ़ाई मातृभाषामें होनी चाहिए। पहले तो यही समझा जाता था कि हिन्दी ऐसी भाषा है कि जिसमें सब विषय नहीं पढ़ाये जा सकते। परन्तु गत बीस वर्षोंमें विज्ञानपरिषद्‌ने "विज्ञान" द्वारा यह साबित कर दिया

कि कोई विषय ऐसा नहीं है जिसकी पढ़ाई इस भाषा-द्वारा न हो सके। यदि इस बातको जनता और सरकार दोनों मान लें कि पढ़ाई भाषामें ही होनी चाहिए और तदनुकूल आचरण हो तो परिषद्‌का एक प्रधान उद्देश्य पूरा हो जाता है।

विज्ञानके सम्पादनका काम श्रीयुत रामदास गौड़ करते हैं। भाषाका जाननेवाला इस समय इस कामके लिये उनसे अच्छा मिलना भी दुर्लभ है और उन्होंने विज्ञानको रोचक बनानेके प्रयत्न भी बहुत किये हैं जिसका फल प्रत्यक्ष है। हमारी प्रचारकी कोशिशोंके होते भी ग्राहक संख्या पिछले सालोंसे फिर भी कम ही जान पड़ती थी। ऐसी अवस्थाको देखकर अमृतसरके स्वामी हरिशरणानन्दजी जो आयुर्वेद-विज्ञानके संपादक और संचालक थे, विज्ञानपरिषद्‌की सहायताके लिये आगे बढ़े। वह नामी वैद्य हैं और पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसीके नामसे एक औषधालय भी खोले हुए हैं। बहुत ही उदार-चित और त्यागी पुरुष हैं। उन्होंने उक्त फार्मेसी सब सम्पत्ति सहित 'विज्ञानपरिषद' को अर्पण करना निश्चित किया और आयुर्वेदविज्ञानको विज्ञानमें मिला देनेका प्रस्ताव पेश किया। विज्ञानपरिषद्‌की कौंसिलने उनके दोनों प्रस्तावोंको स्वीकार कर लिया है। पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसीके दानपत्रकी रजिस्ट्री परिषद्‌के नाम अभी नहीं हुई है। समयपर यह काम भी कर लिया जायगा। फार्मेसीका संचालन अभी स्वामीजी ही करते हैं। आशा की जाती है कि आयुर्वेदविज्ञानके सभी ग्राहक विज्ञानके ग्राहक हो जायँगे। यह सब बातें कुछ समयमें ही तै होंगी और आशा की जाती है कि अगले साल हम बता सकेंगे कि फार्मेसीके मिल जानेका और आयुर्वेदविज्ञान मिलानेका विज्ञान और विज्ञानपरिषद्‌पर क्या असर पड़ा। गवर्नमेंटसे ६००) वार्षिक सहायता मिलती जाती है, जिसके लिये हम धन्यवाद दोहराते हैं।

सालभरका हिसाब नीचे दिया जाता है—

आय

	रु०	आ०	पा०
ग्राहकोंसे चन्दा	२७०	६	०
सदस्योंसे	२८६	०	०
पुस्तकोंकी बिक्री	१३४	४	६
डा० गणेशप्रसादजीने दान दिया	५०	०	०
पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसीसे	५००	०	०
विज्ञापनसे	२०	०	०
फुटकर आय	९	१४	०
जोड़	१२७०	८	६

व्यय

	रु०	आ०	पा०
टिकट	२२५	०	०
ब्लाक बनवाये	१३२	३	०
क्लर्कको तनखाह	६९	०	०
विज्ञानकी छपाई	९३९	१४	६
प्रधान सम्पादकको प्रूफ पढ़ाने और फुटकर खर्चके लिये	१०४	१२	६
कागज	२५	१५	४
कार्ड व बैलटिंग लिस्टकी छपाई	१६	१४	०
बैंकको कमीशन		८	०
फुटकर व्यय	६३	७	६
जोड़	१४७७	१०	१०

ह० सालिगराम भार्गव, मंत्री।

साहित्य-विश्लेषण

मानसोपचार शास्त्र एवं पद्धति*

[समालोचनार्थ साहित्यकी दो-दो प्रतियाँ प्रधान सम्पादकके बनारस शहरके पतेसे आनी चाहियें। —रा० गौ०]

यह चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी एक अति उत्तम पुस्तक है। सैंतीस अध्यायोंमें लिखी गयी है। प्रत्येक अध्याय अपने विषयका एक पूर्ण ग्रंथ है। पुस्तकमें भरतीका एक पृष्ठ भी नहीं है। आदिसे अंततक ठोस मजमूनसे भरी सर्वांगसुंदर पुस्तकके लिये लेखक बधाईके पात्र हैं।

पुस्तकका विषय नामसे स्पष्ट है। मानसोपचार क्या वस्तु है? इसको लेखकोंने विषयप्रवेशके साथ पुस्तकके पहले ही अध्यायमें समझाया है। शरीरके रोग पीड़ित अंगको योग्य रीतिसे मानसिक सूचना या संदेश भेजकर रोग निवारण करनेको ही "मानसोपचार" कहते हैं। इस पद्धतिका निर्माण नीचे लिखे पांच तत्वोंके आधारपर हुआ है।

(१) मनुष्यके शरीरके व्यापार पूर्णतया उसके मनके नियंत्रणमें होते हैं।

(२) प्रत्येक मनुष्यके मनमें प्रकृतिने यह शक्ति रखी है कि वह शरीरके किसी छोटे बड़े अंगको किसी क्रियाके करने अथवा किसी विशेष अवस्थामें रहनेकी अधिकार-पूर्ण प्रेरणा कर सके।

(३) यह शक्ति निद्रित अवस्थामें हो तो दूसरे किसी मनकी प्रेरणासे वह जाग्रत हो सकती है।

(४) यदि मनद्वारा शरीरको रोगोत्पादक अथवा रोग सहायक प्रेरणा मिलती रहे; तो शरीरका स्वाभाविक स्वास्थ्य घट जाता है अथवा नष्ट हो जाता है।

(५) यदि शरीरको रोग-प्रतिबंधक अथवा रोग-निवारक प्रेरणाएँ मनद्वारा मिलती रहें, तो शरीरमें रोग प्रवेश नहीं कर सकता और देह-प्रविष्ट रोग नष्ट हो सकता है।

संसारकी समस्त प्रचलित चिकित्सापद्धतियोंका आधारभूत तत्त्व क्या है? आयुर्वेदी, एलोपैथी, इक्लोपैथी, होमियोपैथी, हायड्रोपैथी सभी पद्धतियोंद्वारा रोग निवारण होता है। एक पद्धतिका अनुयायी दूसरी पद्धतिसे भले ही मतभेद रखता हो परन्तु वह यह नहीं कह सकता कि अन्य सभी पद्धतियाँ बेकार हैं। और उनसे कोई लाभ नहीं होता। मानसोपचारी इस पचड़ेमें नहीं पड़ता। वह इस बातको मानता है कि रोग निवारणमें सभी पद्धतियां काममें आ सकती हैं और आती हैं, जनता उनसे लाभ भी उठाती है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए सभी पद्धतियोंको कुछ मामूली घटी-बढ़ीके साथ समान रूपसे सफल और विफल देखकर मानसोपचारी इस निष्कर्षपर पहुँचता है कि इन सभी पद्धतियोंमें साधारणतया कोई व्यापक नियम अहैतुक-रीतिसे समाविष्ट अवश्य है जिसके कारण 'मिक्सचर' देनेवाला डाक्टर, गोलियां देनेवाला होमियोपैथ, पानीमें डुबोनेवाला हायड्रोपैथ, नुसखे लिखनेवाला वैद्य अथवा हकीम तथा अन्य सभी प्रकारके चिकित्सक सफल होते हैं। इतना तो सभी जानते हैं कि विश्वासका चिकित्सा-शास्त्रमें एक बहुत बड़ा स्थान है। सभी पद्धतियाँ इससे घना सम्बंध रखती हैं। अतः यह निश्चय हुआ कि रोग निवारणके कार्य्यमें उपयोगी सिद्ध होनेवाली शक्ति 'रोगीके मनकी प्राकृतिक शक्ति' ही है। रोगीके इसी मानसिक शक्तिको भिन्न-भिन्न रूपसे जाग्रत करके रोग निवारणार्थ काममें किस प्रकार ला सकते हैं? संक्षेपमें यही इस पुस्तकका मूल विषय है।

मूल विषयको समझानेके बाद लेखकोंने आवश्यकतानुसार दूसरे अध्यायमें शरीररचनाका स्थूल रूपसे संक्षेपमें सचित्र वर्णन किया है। बादके चार अध्यायोंमें अर्थात् तीसरेसे छठे तक मनके स्वरूप और कार्य्य तथा उसके गुण और धर्मपर दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टिसे बहुत ही विस्तृत रूपसे सुंदर विवेचन है, जिसके पढ़ लेनेके

* मानसिक उपायोंसे ही सब तरहकी चिकित्साका अपूर्व ग्रंथ। मूल मराठी लेखक, डा० गोपाल भास्कर गणपुले तथा प्रो० नारायण सीताराम फड़के, हिन्दीकार, श्री सिद्धनाथ माधव आगरकर, प्रकाशक डा० गोपालभास्कर गणपुले, ६६५ शुक्रवार पेठ, पूना शहर। डबलक्रौन १६ पेजीके ६४४ पृ०, सजिल्द, मूल्य चार रुपये, प्रकाशकसे प्राप्य।

बाद यह बात भलीभाँति समजमें आजाती है कि अंत-र्मन समस्त शरीरमें व्यापक होनेके कारण चिकित्सककी सूचनाको किस प्रकार ग्रहण करके शरीरको आरोग्य लाभ देनेमें सहायक होता है। मनके इस लीलामय रहस्यका बर्णन बड़े ही मोहक रूपसे किया गया है, जिसका आनन्द बिना पुस्तक पढ़े प्राप्त होना नितांत असम्भव है।

रोगीके मनकी प्राकृतिक शक्तिको रोग निवारणार्थ जाग्रत करनेके लिये जिन शब्दोंका प्रयोग मानसोपचार-शास्त्रमें समय-समयपर करनेका आदेश है उन्हें 'सूचना' कहा गया है। इस 'सूचना' के दो विभाग किये गये हैं 'स्व' और 'पर'। अपने शरीरपर प्रयोग करनेको 'स्व' तथा दूसरेपर प्रयोग करनेको 'पर' सूचना कहते हैं। बादके अधिकांश अध्याय इसी सूचना-नियम 'Lau ogEuggestion' के विषयमें लिखे गये हैं। पुस्तकका यह भाग सबसे अधिक उपयोगी और पठनीय है।

पुस्तकमें रोगपरिहारका नमूना, भिन्न-भिन्न मर्ज और उनकी मानसोपचारद्वारा चिकित्साका बड़ा ही रोचक वर्णन है। जिसे ध्यानपूर्वक पढ़नेसे चिकित्सकके सिवा साधारण जनता भी बहुत बड़ा लाभ उठा सकती है। अंतमें स्वास्थ्यके साधारण नियम, जल, वायु, अन्न तीनों प्राण द्रव्योंका महत्व, अंतः स्नानविधि, अन्न-सेवन नियम, आहार-चिकित्सा, आहार-शास्त्र तथा उपवासपर बड़े सुंदर-सुंदर और उपयोगी परिच्छेद दिये गये हैं। चिकित्साशास्त्रके लिये ये बातें ऐसी जरूरी हैं कि इनके बिना कोई पद्धति पूर्ण नहीं कही जा सकती।

मानसोपचार-पद्धति है तो बड़ी सुन्दर पर यह सर्व-साधारणके लिये सुलभ और साध्य नहीं है। इस कारण मेरे विचारसे इसका व्यावहारिक महत्व उतना नहीं है जितना कि सैद्धान्तिक। इस पद्धतिमें जितने समयकी और रोगीके साथ जिस स्वाधीनताको आवश्यकता है वह शायद ही किसी पेशेवर चिकित्सकको प्राप्त हो सके। साधारण सफल चिकित्सकके पास न तो इतना समय होता है कि वह प्रत्येक रोगीके साथ घंटों बैठकर 'सूचनोपचार करता रहे और न तो दवा करानेवालेके पास हतना अवकास और द्रव्य कि वह चिकित्सककी सेवाओंका समुचित उपयोग कर सके। इसके सिवा भारी अड़चन यह है कि सामान्य रोगी तो इस शास्त्रके गूढ़ विषयकी जानकारी नहीं रखता, अतएव बिना किसी औषधिके केवल 'सूचना' पर ही धैर्य धारण कर सके यह सम्भव नहीं। चाहे औषधोपचारका भले ही कोई प्रभाव न होता हो, तो भी 'सूचना' को पुष्ट करनेके लिये इसकी बहुत बड़ी जरूरत है। औषधि-विहीन सूचना व्यवहारतः उतनी ही असफल हो सकती है जितनी कि सूचना-विहीन औषधि। मेरे विचारसे दोनों अन्योन्या-श्रित हैं। एकके बिना दूसरेका काम नहीं चल सकता। प्रत्येक चिकित्सकको साधारणतया दोनोंसे ही काम लेना चाहिये।

लेखकोंने १४२ वें पृष्ठपर दो रोगियोंका वर्णन करते हुए दमेके दौरेसे ग्रस्त ३२ वर्षकी एक स्त्रीका यों वर्णन किया है।

"मैं उसके विस्तरेके पास बैठ गया और उसका हाथ अपने हाथमें लेकर बोला, "तुमको आराम पहुँचानेके लिये मैं यहाँ आया हूँ मुझे विश्वास है कि मेरे उपचारसे, थोड़े ही समयमें तुम स्वतंत्रता-पूर्वक श्वासोच्छ्वास करने लगोगी। इस समय मैं तुमसे कोई भी प्रश्न नहीं करता। मैं जो कुछ कहूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनती रहो। आखें बंद करो। थोड़े ही समयमें तुम्हे अपना शरीर शिथिल होगया सा मालूम होगा और तुम दीर्घ निश्वास ले सकोगी। अब मैं तुम्हारा सीना मलता हूँ। अभी तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा श्वासोच्छ्वास स्वतंत्रता पूर्वक हो रहा है।" इतना कहकर, मैं उस स्त्रीके सीने और फेफड़ोंके उलटी तरफ वाला पीठका भाग जोरसे मलने लगा, साथ साथ फेफड़ोंकी क्रिया और श्वसनक्रिया अधिक सुव्यवस्थित रीतिसे होनेकी सूचनाएँ देने लगा।" लेखकको भले ही कहीं ऐसा मौका मिला हो पर स्त्रियोंके रोगनिवारणार्थ इस प्रकारकी सूचनामें स्पष्ट भद्दापन है।

पुस्तकमें कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें लिखकर लेखकने अनधिकार चेष्टा की है। पृष्ठ १७१ पर मंत्र-तंत्रका रहस्य लिखते हुए आपने लिखा है कि--"इन तंत्रोंमें कोई अर्थ नहीं होता, तथापि उनकी अवस्था इस ढंगसे की जाती है कि उससे रोगीके मनमें श्रद्धा उत्पन्न होती है।" पर यदि रोगी उस व्यवस्थाको जाने ही नहीं तो उसके मनमें कैसे श्रद्धा उत्पन्न होगी? इसका आपने कहीं जिक्र न किया। क्योंकि आपका तो मत है कि "रोगीकी श्रद्धा प्राप्त किये बिना कोई भी मांत्रिक अपना प्रयोग सफल नहीं कर सकता।" (पृष्ठ १७४) यदि कोई श्रद्धाहीन रोगी किसी मांत्रिकके पास उपचारार्थ जावे तो अत्यन्त बलवान मंत्र भी निष्फल होगा।" (पृष्ठ १७५) इस सम्बन्धमें अधिक न कहकर इतना ही कहना अलम् होगा कि यदि लेखकोंको इस विषयकी पूरी जानकारी होती तो वह इस प्रकारकी निराधार बातें न लिखते। शायद उनको नहीं मालूम कि

यंत्र, मंत्र, तंत्रका प्रभाव उन्हीं व्यक्तियोंपर अधिक खूबीसे होता है जिन्हें उसकी व्यवस्थाका ज्ञान नहीं होता, फिर श्रद्धा तो दूरकी बात है। मंत्रोपचारमें तो रोगीको बतानेके बजाय उससे सारी व्यवस्थाके छिपानेका ही प्रयत्न किया जाता है। यदि रोगीको व्यवस्थाका ज्ञान हो जाय तो मंत्रोपचारके निष्फल हो जानेका डर रहता है। रोगीके मनमें मंत्रोपचारके प्रति श्रद्धाकी बात व्यर्थ है।

इसी प्रकारकी कुछ निराधार बातें लेखकोंने प्रेतबाधाके सम्बन्धमें भी लिखी हैं। पृष्ठ १७७ पर वे लिखते हैं कि "जब किसी मनुष्यके इष्ट-मित्रादि कहने लगते हैं कि उसे भूत लग गया है और जब वह स्वयं भी मानने लगता है कि मुझे भूत-बाधा होगयी है तब मनुष्यके शरीरमें रोगोंका उद्भव होता है।" पर इसके विपरीत यह देखा गया है कि उपचारक तथा अन्य लोग रोगीके भ्रमको दूर करते हैं और रोगी अपनेको प्रेतग्रस्त मानता भी नहीं। फिर भी वास्तविक प्रेतग्रस्त रोग किसी इलाजसे नहीं जाता। किन्तु प्रेतोन्मादके लक्षण अधिकाधिक स्पष्ट होते जाते हैं और अन्तमें प्रेतबाधा सिद्ध हो जाती है। भौतिकबाधाचिकित्साके विशेषज्ञोंका तो यह कहना है कि प्रेतग्रस्त व्यक्ति प्रेतके अस्तित्वको ही प्रायः नहीं मानता। ऐसी दशामें श्रद्धाके कारण प्रेतबाधाका होना, जैसा कि लेखकका मत है, कैसे माना जा सकता है?

लेखककी युक्तियोंसे पाठकके मनपर यह प्रभाव पड़ता है कि सारे रोग मनकी ही भूलसे होते हैं और मनके ही उपचारसे नष्ट हो सकते हैं। मानो बाहरसे कोई कष्ट पहुँचानेवाला है ही नहीं। परन्तु पर-सूचना जिस तरह किसी बाहरी और पराये मनका प्रभाव है उसी तरह पराया मन कष्ट भी पहुँचा सकता है। जैसे जीवित स्थूल देहधारी किसीको अपनी इन्द्रियों द्वारा चोट पहुँचा सकता है उसी तरह सूक्ष्म देहधारी प्रेत भी अपनी इन्द्रियोंद्वारा सूक्ष्म देह और मनको चोट पहुँचा सकता है। जैसे, लाख मनको दृढ़ रखें पर बाहरी चोट लगती जाय, घाव होता जाय तो वास्तविक क्षति तो होती ही है, पीड़ा चाहे मालूम भले ही न हो। औषधोपचारसे प्रकृतिको सहायता न भी दी जाय तो घाव तो पुरेगा ही। उसी तरह सूक्ष्म देहधारी प्रेत कष्ट पहुँचाता रहे, तो सूचनाद्वारा चाहे पीड़ा भले ही न प्रतीत हो, परन्तु कष्टसे वास्तविक हानि तो होती ही रहेगा। कोई बाहरसे पीटता रहे और आप उस चोटका इलाज करते रहें परन्तु पीटना बन्द न हो तो इलाज क्या करेगा? बाहरसे आक्रमण ही भौतिक बाधा है, वह चाहे किसी योनिके प्राणीसे क्यों न पहुँचे। केवल मानसोपचारसे यहाँ काम नहीं चल सकता। और यदि कहो कि प्रेतयोनि कल्पनामात्र है, तो आज इस बीसवीं शताब्दीके अन्तमें जब कि परलोक-विद्यापर इतनी अधिक वैज्ञानिक खोज हो चुकी है, विज्ञानसे नितान्त अनभिज्ञ ही प्रेतयोनिको कल्पनामात्र कहनेका साहस करेगा। अतः शुद्ध दैहिक रोग तो मानसोपचारसे मिट सकते हैं, परन्तु आगन्तुज भौतिक या या दैविक रोगोंसे रक्षा, कारणोंका निवारण और क्षतिका पूरण तभी संभव है जब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे मानसोपचारको बाहरी सहायता भी पर्याप्त परिमाणमें मिले। योग्य लेखकने विषयके इस पक्षके साथ न्याय नहीं किया है।

यंत्र, मंत्र, तंत्र या टोटके आदि विषयोंपर अभीतक वैज्ञानिक खोज नहीं हुई है। कल्पनाके घोड़े दौड़ाकर असिद्ध बातें कहनेके बदले उत्तरदायी विद्वान् यही कहता है कि हम इन विषयोंको नहीं जानते।

यत्रतत्र छापेकी कुछ भूलें भी पायी जाती हैं। परन्तु ये ऐसी नहीं हैं कि पाठकोंको लेखकका आशय समझनेमें भ्रांति हो।

६४४ पृष्ठोंकी इस घनी छपी पोथीमें हमने विषय और छापेकी भूलें जितनी पायीं उतनी थोड़ी मानवोचित भूलोंको हम दोष नहीं मानते। ऐसी ठोस, सुसंस्कृतोंके लिये इतनी उपयोगी, पोथी सौभाग्यसे ही कभी प्रकाशित होती है। यह मराठीसे अनूदित है। जहाँ हम योग्य ग्रंथकारोंको ऐसा ठोस साहित्य तैयार करनेके लिये अभिनन्दनका पात्र समझते हैं, वहां सफल हिन्दीकार श्री सिद्धनाथ आगरकरजीको भी उनके सफल उल्थाकार होनेके लिये बधाइयाँ दिये बिना नहीं रह सकते। चार रुपयेको यह पुस्तक सस्ती है और प्रत्येक प्राकृतोपचारी एवं चिकित्सकको इसकी एक-एक प्रति अपने पास समयपर काम देनेके लिये अवश्य रखनी चाहिये। छपाई, सफाई और जिल्द अच्छी है।

लेखनशैली स्पष्ट और रोचक है। गम्भीरसे गम्भीर विषयका ज्ञान साधारण बोलचालकी भाषामें लिखकर हिन्दीकारने हिन्दीभाषियोंकी बहुत बड़ी सेवा की है। पुस्तक सर्वोपयोगी और पठनीय है। —ब्रजबिहारीलाल गौड़

विज्ञानके जनवरी १९३५ के अंकका क्रोड़पत्र

जगत्-प्रसिद्ध और अ० भारतीय वैद्य-सम्मेलनद्वारा सम्मानित

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी

का

त्रैमासिक सूची-पत्र

अध्यक्ष और सञ्चालक

आसव-विज्ञान, क्षार-विज्ञान, मन्थरज्वरकी अनुभूत-चिकित्सा, त्रिदोष-मीमांसा, सृष्टि-रचना-शास्त्र, व्याधिमूल-विज्ञान, कूपीपकरस-निर्माण-विज्ञान, रोग-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, औषध-परीक्षा-विज्ञान आदि ग्रन्थोंके

लेखक

और

आयुर्वेद-विज्ञानके सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी,

अकाली-मार्केट

अमृतसर

५३ वीं आवृत्ति ५०००]

[१ जनवरी १९३५

व्यापारिक-नियम

इस सूचीपत्रके पूर्व प्रकाशित सूचीपत्रोंके भाव अमान्य (रद्द) किये गये।

प्रत्येक व्यक्तिको आर्डर देते समय निम्नलिखित व्यापारिक नियमोंको अवश्य पढ़ लेना चाहिये।

(१) इस सूची-पत्रमें वनस्पतियों व किरानेकी औषधयोंके जो भाव दिये गये हैं वह इस समयके बाजार भाव हैं इसलिये, उक्त वस्तुओंपर कोई कमीशन नहीं दिया जाता।

(२) फार्मेसीद्वारा निर्म्मित रस, भस्मों, आसव, तैल अवलेहोंपर भी कोई कमीशन नहीं दिया जाता क्योंकि प्रत्येक प्रस्तुत औषधको आधुनिक नयी पद्धतियोंसे चूर्ण करने, गोली, टिकी बनानेका प्रबन्ध कर सबको भिन्न-भिन्न मात्राके उत्तम पैकटोंमें बन्द कर दिया गया है। रसभस्म १ तोला, २॥ तोला, ५ तोलाके उत्तम पैकटोंमें बन्द हैं। इस नये विधिविधानके कारण औषधका मूल्य बढ़ जाना चाहिये था, किन्तु, हमने औषधका मूल्य नहीं बढ़ाया। बल्कि अनेकोंका मूल्य घटा दिया है। ग्राहकोंको भविष्यमें ६ माशा या १ तोला रस भस्म न भेजा जाकर पूरा पैकट ही भेजा जाया करेगा। इसी प्रकार तेल, आसव भी बन्द पैकेटोंमें होंगे।

(३) फार्मेसीद्वारा पेटेण्ट औषधियोंपर निम्नलिखित दरोंपर कमीशन दिया जायगा—६) से ऊपर -) प्रति रुपया, १२) से ऊपरके मालपर =) प्रति रुपया, २५) से ५०) तकके मालपर ≡) प्रति रुपया तथा १००) रुपयाका प्रथमवार माल लेनेपर ३० प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। जो व्यक्ति एकबार १००) रुपयाका माल खरीदेगा वह फार्मेसीका एजेंट समझा जायगा, इसको रेलके मालपर बशर्ते गुड्सट्रेनका आर्डर हो फ्री डिलेवरी तथा पैकिंग खर्च माफ होगा।

(४) २) रुपयासे न्यून मूल्यका कोई आर्डर नहीं भेजा जायगा। यह नियम पेटेण्ट औषधियों व पुस्तकोंपर लागू न होगा।

(५) प्रत्येक ग्राहकको औषधि मूल्यसे भिन्न पैकिंग खर्च वी० पी० रजिष्ट्री खर्च आदि भी देना होगा।

(६) जिन चीजोंका भाव मनोंमें दिया गया है वह २॥ सेर तक मनोंके भावमें भेजी जायँगी, जिनका भाव सेरोंमें दिया है वह १० तोला तक सेरोंके भावमें भेजी जायँगी। ५ तोलाका भाव सेरोंके भावसे भिन्न होगा तथा ५ तोलासे कम लेनेपर प्रत्येक वस्तुकी कीमत सवायी लगेगी।

(७) वनौषधियों व किरानेकी चीजोंका मूल्य घटता बढ़ता रहता है। यदि किसी आर्डरकी एकाध वस्तुका मूल्य न्यूनाधिक लगा हो तो उसका कारण बाजार भाव चढ़ा या गिरा समझना चाहिये। वनौषधि प्रायः सूखी ही भेजी जाती हैं।

(८) प्रत्येक आर्डरकी चीजें प्रबन्धकर्त्ताके निरीक्षणमें जाँचकर भेजी जाती हैं। इसके सम्बन्धमें कोई भूल हो जाय तो पार्सल छुड़ा लेनेपर पुनः लिखनेसे उस भूलका प्रतिकार किया जायगा। और हमारी गलती होगी तो हम क्षति पूर्त्ति भी करेंगे। ऐसे समय पार्सल न लौटाकर एक सप्ताह तक पोस्टमें पार्सल रोककर पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

(९) यहाँसे प्रत्येक पार्सल अच्छी तरह सावधानीसे बन्द करके भेजा जाता है। कईबार पार्सल पोस्टमैनों व रेलवे-कर्मचारियोंकी लापरवाहीसे-धरने, उठानेमें टूट जाते हैं। ऐसे पार्सलोंके टूटनेके हम जिम्मेदार नहीं। तथापि कोई पार्सल पोस्टका टूट जाय और वह पार्सल ग्राहक छुड़ा ले तथा पार्सलको पोष्ट मास्टरके सामने खोलकर नष्ट हुई वस्तुका प्रमाणपत्र पोस्टमास्टरसे भिजवा देगा तो हम उसको उक्त वस्तुका मूल्य या उक्त वस्तु भेज देंगे।

(१०) हमारे यहाँ औषधि तोलनेका मान निम्न है—१२ मासेका तोला (१ रुपया कलदार = भरी) ८० रुपयाका सेर, ४० सेरका मन। इसी तोलसे प्रत्येक माल भेजा जाता है।

(११) नये ग्राहक तथा वह ग्राहक जो माल मँगाकर एक-आध बार वापस कर चुके हैं उन्हें आर्डरके साथ पोस्टके मालपर कमसे कम २) रु० तथा रेलके मालपर ५) रु० पेशगी अवश्य भेजना चाहिये। बिना पेशगी आये माल नहीं भेजा जाता।

(१२) प्रत्येक पार्सलपर एक आना -) लाला लाजपतराय धमार्थ औषधालयके लिये काटा जाता है। जो आज तीन माससे जारी है।

(१३) जो व्यक्ति हमारे स्थाई ग्राहक बने रहना चाहते हों वह हमारे कार्यालयमें २) पेशगी जमा करा दें तो, उनको स्थायी ग्राहक नम्बर दे दिया जायगा। ऐसे ग्राहकोंका आर्डर सबसे पूर्व बिना पेशगीके भेजा जाता है। उन्हें कभी मनीआर्डरसे पुनः रुपया भेजनेकी जरूरत न होगी। और वह जब स्थायी ग्राहकोंसे अपना नाम हटाना चाहें तो उक्त रुपया उन्हें लौटा दिया जायगा।

नोट—प्रत्येक प्रकारके आर्डर, रजिस्ट्री, बीमा, मनीआर्डर निम्नलिखित पतेपर आने चाहिये।

मैनेजर—पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अमृतसर

हमारी आशा और योजनापूर्त्ति

आज १५ वर्षसे यह कार्यालय जो कुछ भी वैद्यों-की सेवा करता चला आ रहा है यह किसी भारतीय वैद्यसे छिपा नहीं। आजतक इस कार्यालयने रास्ना, मूर्वा, तालीसपत्र, निसोत, देवदारु, चव्य, नागकेसर, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि अनेक अलभ्य वनस्पतियोंको खोजकर उन्हें काफी मात्रामें संग्रह किया है, जिनको प्रत्येक वैद्य मँगाकर अनेक कठिनतासे बननेवाले योगोंको बनाकर जनता-को काफी लाभ पहुँचा रहे हैं। इस प्रकार हम प्रति-वर्ष कोई-न-कोई शास्त्रीय वनस्पतियों, खनिज-द्रव्यों-की खोज करके उनके संग्रह करनेका प्रबन्ध करते हैं। परन्तु, हम देखते हैं कि इसमें हमें वैद्योंसे बहुत ही कम सहायता मिलती है।

आज हम तीन वर्षसे आयुर्वेद-विज्ञान इस इच्छासे निकाल रहे थे कि इस पत्रके द्वारा वैद्योंसे विचार-विनिमय होता रहेगा और वैद्योंद्वारा अनेक सन्दिग्ध व नूतन बातों पर प्रकाश पड़ता रहेगा। किन्तु, दुःखसे कहना पड़ता है कि वैद्य-समुदाय इतना अकमर्ण्य व विचारशैथिल्यतामें पिछड़ गया है कि किसीको लिखनेके लिये नयी बात सूझती ही नहीं, प्रायः पत्रके लिये मुझे या मेरे दो-चार मित्रोंको ही लिखना पड़ता है।

खैर, हमने जो कुछ निश्चय किया था उसके अनुसार हमारी नयी योजना तय्यार हो गयी है। कार्यालयको एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था "विज्ञान-परिषत्" के अधीन कर दिया है और आयुर्वेद-विज्ञानको परिषत्के पत्र "विज्ञान" में मिला दिया है।

फामसीमें औषधनिर्म्माणके लिये एक बड़ी प्रयोगशाला बन गई है। इसमें कूटने-पीसने घोंटने और टिकियाँ, गोलियाँ बनानेकी मशीनें लग रही हैं। यह कार्य भी पूर्ण होनेको है। इससे भिन्न एक रासा-यनिक प्रयोगशालाका भी आयोजन हो रहा है। अबतक जो धर्मफण्डमें हमारे पास रुपया पड़ा था उससे लाला लाजपतरायजीकी चिरस्मृतिमें एक धर्मार्थ औषधालय खोल दिया गया है।

वैद्य-संसार जिस प्रकार हमारे कार्यालयकी निर्मित औषधियाँ मँगाकर लाभ उठा रहा है। इस नये प्रबन्धसे उसे बहुत अधिक लाभकी आशा रखनी चाहिये। क्योंकि, जो भी औषधि भविष्यमें बना करेगी प्रत्येककी वैज्ञानिक जाँच हुआ करेगी, और उनके गुणागुणकी अच्छी प्रकार जाँच करके ही उन्हें विक्रयार्थ रखा जायगा। आशा है हमारी इस योजनाकी पूर्त्तिमें वैद्य-बन्धु अधिक सहयोग देकर आयुर्वेदकी उन्नतिमें हमारा हाथ बटावेंगे।

—हरिशरणानन्द

ग्रंथ संकेत

जिन-जिन ग्रन्थोंके योग तय्यार किये गये हैं उनके संकेतयुक्त नाम—

यू० वि०	(यूनानी विधि)
आ० प्र०	(आयुर्वेद प्रकाश)
भा० प्र०	भावप्रकाश
र० सु०	रसराज सुन्दर
वै० मृ०	वैद्यामृत
र० का०	रसकामधेनु
फा० वि०	फार्मेसी विधि
वृ० यो०	वृहद्‌योग-तरंगिणी
र० र० स०	रसरत्न समुच्चय
शा० ध०	शार्ङ्गधर
यो० र०	योग रत्नाकर
यो० त०	योगतरंगिणी
सि० भै० म०	सिद्धभैषज्य मणिमाला
र० स० सं०	रसेन्द्रसार संग्रह
भै० र०	भैषज्य रत्नावली
वै० सा०	वैद्यकसार संग्रह
र० चं०	रसचण्डांशु
च० द०	चक्रदत्त
र० चि०	रस चिन्तामणि
यो० चि०	योग चिन्तामणि
नि० र०	निघण्टु-रत्नाकर
र० यो० सा०	रसयोग-सागर
र० सा०	रसायनसार
च०	चरक
वै० जी०	वैद्यजीवन

पी० ए० वी० फार्मेसी अमृतसरद्वारा निर्मित

भस्में और उनके थोक भाव

भस्में	१ सेरका भाव	५ तोला	१ तोला
अकीक (यू० वि०)	२८)	२)	॥)
वज्राभ्रक (आ० प्र०) ६० पुटी	६०)	५)	१।)
वज्राभ्रक (आ० प्र०) २१ पुटी	३२)	२॥)	॥।)
अभ्रक श्वेत (र० सु०)	८)	॥।)	≡)
कान्तलोह भस्म (र० सु०)	२८)	२)	॥)
कांस्य भस्म (आ० प्र०)	८)	॥।)	≡)
कपर्दिका (कौड़ी) भस्म आ० प्र०	६)	॥)	=)
कुक्कुटाण्डत्वक् (वै० मृ०)	५०)	४)	१)
खर्पर भस्म (यो० र०)	३२)	२॥)	॥।)
गोमेद भस्म (र० का०)			१५)
जहरमोहरा भस्म (यू० वि०)	४)	=)	-)॥
ताम्र सोमनाथी (र० सु०)	४८)	३॥)	॥।)
ताम्र कूपीपक्व (र० सु०)	४८)	३॥)	॥।)
ताम्र भस्म श्वेत (फा० वि०)			८)
तीक्ष्ण लोह (फा० वि०)	१००)	८)	२)
तुत्थ भस्म (र० सु०)	६)	॥)	=)
त्रिवंग (आ० प्रा०) १२ पुटी	३२)	२॥)	॥।)
नाग (आ० प्र०) ५० पुटीलाल	६०)	५)	१।)
नागपीत (वृ० यो०)	८)	॥।)	≡)
नाकश्याम (र० का०)	२२)	१॥)	।=)
नीलमभस्म (र० का०)			२४)
पन्ना भस्म (जमुर्रद) (यू० वि०)			१२)
पुखराजभस्म (र० का०)			१६)
प्रवाल भस्म श्वेत (आ० प्र०)	६)	॥)	=)
प्रवाल चन्द्रपुटी (फा० वि०)	६)	॥)	=)
पीतल भस्म (आ० प्र०)	८)	॥।)	≡)
फिरोजा भस्म (यू० वि०)			४)
फौलाद, अपूर्व (फा० वि०)			१५)
बंग हरितालेन (आ० प्र०)	२८)	२)	॥)
बंगश्वेत वनस्पतिसे (र० सु०)	१६)	१।)	।-)

भस्में	भाव १ सेर	५ तोले	१ तोला
बेर पत्थर भस्म (यू० वि०)	८)	॥।)	≡)
माणिक्य भस्म (यू० वि०)			१२)
मण्डूर भस्म (र० र० स०)	८)	॥।)	≡)
मुक्ता भस्म (र० का०)			३६)
मुक्ता भस्म चन्द्रपुटी (यू० वि०)			३०)
मृगशृङ्ग भस्म (शा० ध०)	६)	॥)	=)
यशद सस्म (यो० र०)	८)	॥।)	≡)
राजावर्त भस्म (वृ० यो०)		१०)	२॥)
रौप्यमाक्षिक (र० का०)	१२)	१)	।)
रौप्य भस्म श्याम (चाँदी) हरितालयोग		१२॥)	३)
रौप्य भस्म श्वेत (चाँदी) (फा० वि०)		१०)	३)
रौप्य भस्म लाल (चाँदी भ०)		१५)	३॥)
लौह भस्म हिंगुल (आ० प्र०)	२४)	२)	॥)
लौह भस्म स्वमाग्नि, (र० सु०)	२०)	१॥)	।=)
लौह भस्म वनस्पति (फा० वि०)	१६)	१।)	।-)
वैक्रान्त भस्म उत्तम (र० स०)		८)	२)
शंख भस्म (र० क०)	४)	।=)	-)॥
संगयसब (यू० वि)	२८)	२)	॥)
सीप भस्म (मोती) (र० सु०)	६)	॥)	=)
साधारण शुक्ति (र० सु०)	४)	।=)	-)॥
संगजराहत भस्म (आ० प्र०)	४)	।=)	-)॥
स्वर्णमाक्षिक भस्म (र० सु०)	१२)	१)	।)
स्वर्णभस्म (शा० ध०)	५॥)	माशा	६०)
सोमल भस्म (संखिया) (फा० वि०)		१२॥)	३)
सौवीरांजन भस्म (फा० वि०)	१२)	१)	।)
सुरमा श्वेतभस्म (फा० वि०)	६)	॥)	=)
हरताल वंशपत्री भस्म (फा० वि०)		१२॥)	३)
गोदन्ती भस्म (आ० प्र०)	२॥)	।)	-)
हिंगुल भस्म (फा० वि०)		१२॥)	३)
हीरा भस्म	२०)	रु० रत्ती	१५००)

रस, रसायन, गुटिका

	भाव २० तो० का	५ तोले	१ तोला
अमीर रस (सि० भै० म०) उपदंश रोगे		७॥)	२)
अपचिविनाशी रस (फा०) अपचिरो०	१२)	४)	१)
अग्नितुण्डी रस (भै० र०) उदररोगे	३॥)	१)	।)
अग्निकुमार वृहत् (रसेन्द्र) अजीर्णरोगे	४)	१।)	।-)
अभयादिमोदक (शा० ध०) उदररोगे	४)	१।)	।-)
अजीर्णकंटक (रसेन्द्र) अजीर्ण रोगे	४)	१।)	।-)
अश्वकंचुकी (वै० सा०) बहुरोगे	५)	१॥)	।≈)
अर्शोघ्नी वटी (भै० र०) अर्श रोगे	२)	॥≈)	≡)
आनन्द भैरव (रसेन्द्र) ज्वर-अतिसारे	३॥)	१)	।)
आरोग्यवर्धनी (र० चं०) कुष्ठाधिकारे	३॥)	१)	।)
इच्छाभेदी (रसेन्द्र) उदर रोगे	३॥)	१)	।)
उपदंशहर (फा० वि०) आतशक रोगे		७॥)	२)
उदयादित्य रस (शा० ध०) श्वित्रकुष्ठे		१६)	४)
एलादि वटी (च० द०) कासाधिकारे	१)	।-)	-)॥
एकाङ्ग वीर (र० सु०) वात रोगे	३५)	१०)	२॥)
कनकसुन्दर (रसेन्द्र) अतिसारे	३॥)	१)	।)
कफकेतु (यो० र०) कफाधिकारे	३॥)	१)	।)
कस्तूरी भैरव वृहत् (भै० र०) ज्वराधिकारे		४२)	९)
कस्तूरी भैरव (भै० र०) ज्वराधिकारे		३०)	७)
कस्तूरी भूषण (भै० र०) बहुरोगे		२५)	६)
क्रव्यादि रस वृ० (र० सु०) अजीर्णे	८)	२॥)	१॥)
कांचनार गुग्गुल (शा० ध०) कण्ठमाला	१)	।-)	-)॥
कर्पूर रस (भै० र०) ज्वरातिसारे	८)	२॥)	॥।)
कामदुघा (र० सं०) अम्लपित्ते	३॥)	१)	।)
कासहर (फा० वि०) कास रोगे	२)	॥≈)	≡)
कैशोर गुग्गुल (भै० र०) वातरक्ते	२)	॥≈)	≡)
कालारि रस (यो० चि०) वातव्याधि०	६)	२)	॥)
कृष्णमाणिक्य (र० रा० सु०) कुष्ठे		१७)	२॥)
कृमिकुठार (नि० र०) कृमि रोगे	८)	२॥)	॥।)
कृमिमुद्गर (र० सा०) क्रिमिरोगे	३॥)	१)	।)
कुमारकल्याण (भै० र०) वातरोगे		७०)	१५)
गर्भपाल रस (र० चं०) गर्भिणी रोगे	८)	२॥)	॥।)
गर्भविनोद रस (रसेन्द्र) ,,	४)	१।)	।-)

रस, गुटिका	भाव २० तोलेका	५ तोले	१ तोला
गंगाधर (र० रा० सु०) अतिसारे	१०)	३)	॥।)
गन्धकवटी (र० सु०) जठर रोगे	२)	॥≈)	≡)
गुल्मकालानल (भै० र०) गुल्मे	६)	२)	॥)
गन्धकरसायन (रसेन्द्र) रसायने	६)	२)	॥)
ग्रहणी कपाट (र० चं०) ग्रहण्यां	१०)	३)	॥।)
चन्दनादिलोह (भै० र०) विषमज्वरे	१०)	३)	॥।)
चन्द्रप्रभा (शा० ध०) प्रमेहाधिकारे	४)	१।)	।-)
चतुर्मुखरस (र० सं०) वातव्याध्याधिकारे		३५)	८)
चन्द्रकला (भै० र०) प्रमेहाधिकारे	१०)	३)	॥।)
चन्द्रोदयावर्ती (शा० ध०) नेत्ररोगे	३॥)	१)	।)
चन्द्रामृत रस (र० सा० सं०) कासे	३॥)	१)	।)
श्रीजयमंगल (भै० र०) ज्वराधिकारे		३०)	७)
ज्वरांकुश (भै० र०) ज्वरे	३)	१)	।)
ताप्यादिलोह (र० स०) रसायने		७॥)	२)
त्रिभुवन कीर्ति (र० चं०) ज्वरे	४)	१।)	।-)
तालसिन्दूर (र० सा०) कुष्ठे		५)	१।)
ताम्रसिन्दूर (र० सा०) श्वासेकासे		५)	१।)
दुग्धवटी (भै० र०) नं० १ ग्रहण्यां		५)	१।)
दुग्धवटी नं० २ ,,	३॥)	१)	।)
नागसिन्दूर (र० सा०)प्रमेहेस्वरोगे	१४)	४)	१)
नवायसलोह (र० रा० सु०) पांडुरोगे	५)	१॥)	।≈)
नयनामृत सुरमा (शा० ध०) नेत्र रोगे		४)	१)
नृपतिवल्लभ रस (र० रा० सु०) ग्रहण्यां	७)	२)	॥)
नाराचरस (र० चं०) उदररोगे	४)	१।)	।-)
नित्यानन्द (र० चं०) रसायने	८)	२॥)	॥।)
प्रदरान्तक रस (रसेन्द्र) प्रदर	८)	२॥)	॥।)
प्रदरारि वटी (फा० वि०) प्रदरे	५)	१॥)	।≈)
पूर्णचन्द्र रस वृ० (रसेन्द्र) रसायनाधिकारे		२०)	५)
प्रतापलंकेश्वर (वृ० यो०) सूतिकारोगे	५)	१॥)	।≈)
प्लीहारिरस (भै० र०) प्लीहारोगे	५)	१॥)	।≈)
प्रवाल पञ्चामृत (यो० र०) गुल्मे		२८)	७)
प्रदरान्तक लोह (र० यो० स०) प्रदरे	७)	२)	॥)
पुटपक्व विषम ज्वरांतक लोह (भै० र०)		३५)	८)
वृ० बंगेश्वर (भै० र०) प्रमेहे		४५)	१०)
बालशोषान्तक वटी (फा० वि०) शोषरोगे		४)	१)
भल्लातकवटी (फा० वि०) गठिया रोगे		४)	१)

रस, गुटी	भाव २० तो०	५ तोले	१ तोला
त्रिविक्रमरस अश्मरीरोगे	१४)	४)	१)
मण्डूरवटी (भै० र०) पाण्डु रोगे	६)	२)	॥)
मल्लसिन्दूर (र० सा०) सर्व रोगे		५)	१।)
मृत्युंजय (भै० र०) सन्निपाते	३॥)	१)	।)
मृगाङ्क स्वर्णयुक्त (शा० ध०) क्षये		२००)	४५)
मरिचादिवटी (शा० ध०) कास रोगे	१॥)	॥)	=)
महाज्वरांकुश (भै० र०) ज्वराधिकारे	५)	१॥)	।=)
महाशंखवटी (भै० र०) अग्निमांद्ये	३॥)	१)	।)
योगराज गुगुल (शा० ध०) वातव्याध्यौ	८)	२॥)	।॥)
रजत सिन्दूर (र० सा० सं०) रसायने		१०)	२॥)
रसचन्द्रिका वटी (रसेन्द्र) शिरःशूले	७)	२)	॥)
रससिन्दूर द्विगुण (र० का०) सर्वरोगे	७)	२)	॥)
रससिन्दूर चतुर्गुण (र० का०) ,,	१४)	४)	१)
रससिन्दूर षटगुण (र० का०) ,,	२०)	६)	१॥)
रस माणिक्य (र० रा० सु०) कुष्ठे	२०)	६)	१॥)
रस कर्पूर (र० का०) फिरंग रोगे		५)	१।)
राजमृगांक (शा० ध०) क्षये		१००)	२४)
लवंगादिवटी (वै० जी०) कास रोगे	४)	१।)	।-)
वृ० लक्ष्मी विलास नारदीय (र०र०सु)	१०)	३)	१)
लशुनादि वटी (शा०ध०) वातरोगे	१)	।-)	-)॥
लवणार्क (भै०र०) उदररोगे	४)	१)	।-)
लोकनाथ रस वृहत् (शा०ध०) क्षये	४)	१।)	।-)
लोकनाथ रस लघु (शा० ध०) ,,	२॥)	।॥)	≡)
वज्रक्षार (भै०र०) अग्निमांद्ये	४)	१।)	।-)
वसन्तकुसुमाकर (शा०ध०) बहुरोगे		५०)	१२)
व्याधिहरण (र०सा०सं०) रसायने		७॥)	२)
विषमज्वरान्तकलौह (भै०र०) जीर्णज्वरे		२०)	४॥)
विषमुष्टि वटी (फा०वि०) दर्द पर	५)	१॥)	।=)
शिरः शूल वज्रारि (शिरः शूले)	३॥)	१)	।-)
सुरमा ज्योतिवर्द्धक (फा०वि०)			१)
श्वासकुठार वृ० (र०रा०सु०) श्वांसे	४)	१।)	-)
सर्वज्वरहरलौह (रसेन्द्र) ज्वराधिकारे	८)	२॥)	।॥)
संजीवनी वटी (शा०ध०) अजीर्णे	१।॥)	॥)	=)
सुखविरेचनी (फा०वि०) सुख रेचने	३॥)	१)	।)

रस, गुटी	भाव २० तो० का	५ तोले	१ तोला
शूलगजकेसरी वटी (फा०वि०)पार्श्वशूले	५)	१॥)	।=)
शूलगजकेसरी ताम्र (शा०ध०) शूले	१४)	४)	१)
सुधानिधि (यो० र०) रक्तपित्ते		४)	१)
सूतिका विनोद सूतिकारोगे	५)	१॥)	।=)
सूतशेखर (यो० र०) अम्लपित्ते		१०)	२॥)
समीरपन्नग (ऊर्ध्व लग्न) वातरोग	१८)	५)	१।)
समीरपन्नग (तलस्थ) ,,	१५)	४)	१)
समीरगजकेसरीवटी(रसेन्द्र) बातव्याधौ	१८)	५)	१।)
स्मृति सागर (यो० र०) अपस्मारे	१८)	५)	१।)
सिर-चक्र-विनासी वटी शिरः घूर्णने	६)	२)	॥)
स्वच्छन्द भैरव (र०रा०सु०) ज्वराधिकारे	१८)	५)	१।)
स्वर्णघटितचन्द्रोदय(षट्गुणवलिजारित)		४०)	९)
स्वर्णवसन्तमालती (खर्परयुक्त) क्षयरोगे		३५)	८)
स्वर्णवसन्त मालती (अकीकयुक्त) ,,		३५)	८)
सिद्धमकरध्वज (स्वर्णभस्मयुक्त) रसायने			३०)
स्वर्णवंग नं० १ (र०र०स०) प्रमेहरोगे		५)	१।)
स्वर्णवंग नं० २ (र०र०स०) ,,		३)	॥।)
सिद्ध प्राणेश्वर (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	६)	२)	॥)
सौभाग्यवटी वृ० (भै०र०) कासज्वरे	४)	१।)	।-)
स्तम्भनवटी (र०यो०सा०) स्तम्भने	२८)	८)	२)
हुताशनरस (र०यो०सा०) श्लेष्मरोगे	४)	१।)	।-)

लेप

	१ सेरका भाव	१० तोला का भाव
दशांग लेप, विसर्प रोगे	५)	॥।)
श्वेतकुष्ठ लेप, श्वित्रकुष्ठे	१०)	१॥)
सिध्महर लेप, सिध्मरोगे	१०)	१॥)

चूर्ण

	१ सेरका भाव	१० तोला का भाव
अग्निमुख (वं०से०) अजीर्णाधिकारे	५)	॥।)
अपचिविनाशी चूर्ण, कंठमाला रोगे	८)	१।)
अविपत्ति कर (वं०से०) अम्लपित्ते	२॥)	।=)
अश्वगन्धादि (शा०) वाजीकरणे	३)	॥)
कामदेव चूर्ण (यो०) क्लीवत्वे	५)	॥।)
चातुर्थिक ज्वरहर चूर्ण (चातुर्थिकज्वरे)	२०)	३)
तालीसादि (शा०) ज्वरकासे	३)	॥)

(चूर्ण)	१ सेरका	१० तोलेका भाव
दाडिमाष्टक चूर्ण (शा०) अरुची	२॥)	।≠)
नारसिंह चूर्ण (च० द०) क्लीवत्वे	६)	१)
नारायण चूर्ण (शा०) उदरविकारे	२॥)	।≠)
प्रदरान्तक चूर्ण प्रदररोगे	३)	॥)
पुष्यानुग चूर्ण (भै० र०) प्रदरे	८)	१।)
वृ॰ गंगाधर (शा०) अतिसारे	२॥)	।≠)
वृ. लवंगादि (शा०) ज्वर, कासे	४)	॥≠)
वृ. सुदर्शन (शा०) ज्वराधिकारे	२॥)	।≠)
महा खाण्डव (शा०) अजीर्ण रोगे	२॥)	।≠)
लवभास्कर चूर्ण (शा०) अग्निमांध्ये	२)	-)
लाई चूर्ण (शा०) अतिसारे	२)	।-)
सारस्वत चूर्ण (भै० र०) मस्तिष्क रोगे	५)	॥।)
सितोपलादि (शा०) कासक्षये	६)	१)
हिंग्वाष्टक चूर्ण (शा०) उदररोगे	२॥)	।≠)
हिंग्वादि चूर्ण (शा०) "	३)	॥)
त्रिफला चूर्ण	१)	≡)
त्रिकुटा चूर्ण	१॥)	।)

अरिष्ट

नाम वस्तु	५ सेरका मू०	१ सेरका मू०
अमृतारिष्ट (आ० वे० सं०) ज्वरे	४)	१)
अशोकारिष्ट " प्रदरे	५)	१।)
दशमूलारिष्ट (शां० ध०) बहुरोगे	७॥)	२)
दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त) "	१६)	४)
द्राक्षारिष्ट (शां० ध०) क्षये	५)	१।)
रोहितकारिष्ट (भै० र०) प्लीहारोगे	५)	१।)
सारस्वतारिष्ट मानसिक रोगे	१०)	२॥)
सारिवाद्यारिष्ट, कुष्टे	७॥)	२)

आसव

नाम वस्तु	५ तो०	१ तो०
अरविन्दासव (आ० वे० सं०) बालरोगे	५)	१।)
अहिफेनासव (भै० र०) अतिसारे	८)	२)
कर्पूरासव (भै० र०) विशूचिके	३)	।॥)
मृगमदासव (भै० र०) सन्निपाते	४५)	१०)
कनकासव (भै० र०) हिक्का श्वांसे	५)	१।)
कुमार्यासव लाल (शा०) उदर रोगे	१०)	२॥)
कुमारी आसव श्यामवर्ण (शा०)	७॥)	२)
	५ सेरका मू०	१ सेरका मू०
चन्दनासव (शा०) प्रमेहे	४)	१)
द्राक्षासव (शा०) अर्शोदरे	५	१।)
पुनर्नवासव (शा०) श्वोथे	५)	१।)
लोहासव (शा०) पाण्डु रोगे	५)	१।)
शंखद्राव (र० का०) गुल्म	१० तो० ३)	१ तो० ।≠)

प्रसिद्ध अवलेह पाक

नाम वस्तु	५ सेर	१ सेर	२० तो०
कूष्माण्डावलेह (शां० ध०) रक्तपित्ते	१०)	२॥)	॥।)
कंटकार्य्यावलेह (वं० से०) कासे	१०)	२॥)	॥।)
च्यवनप्राशावलेह (च० सं०) रसायने	१०)	२॥)	॥।)
वासावलेह (भै० र०) क्षयकासे	१०)	२॥)	॥।)
मदनानन्द मोदक वाजीकरणे	१५)	३॥)	१।)
मूसली पाक (यो० चि०) क्लीबे	१२)	३)	१)
सौभाग्य शुंठी पाक प्रसूति रोगे	१०)	२॥)	॥।)
सुपारी पाक प्रदर रोगे	१०)	२॥)	।॥)

प्रसिद्ध घृत तैल

कामदेव घृत	५०)	१२)	४)
जात्यादि घृत	५०)	१२)	४)
फल घृत	४०)	१०)	३)
पंचतिक्तादि घृत	३५)	८)	२॥)
ब्राह्मी घृत	३५)	८)	२॥)
महात्रिफलादि घृत	३५)	८)	२॥)
अंगार तैल	१६)	४)	१।)
चन्दनादि तैल	३५)	८)	२॥)
विषगर्भ तैल	१६)	४)	१।)
मारिचादि तैल	१६)	४)	१।)
लाक्षादि तैल	१६)	४)	१।)
कासीसादि तैल	३५)	८)	२॥)
नारायण तैल	३५)	८)	२॥)
षट्बिन्दु तैल	१६)	४)	१।)
भृङ्गराज तैल	१६)	४)	१।)

पर्पटी

नाम वस्तु	२० तो०	५ तो०	१ तो०
ताम्र पर्पटी	११)	३)	१)
पंचामृत पर्पटी	१८)	५)	१।)
लोह पर्पटी	११)	३)	१)
विशुद्ध रस पर्पटी	१८)	५)	१।)
बोल पर्पटी	११)	३)	१)
विजय पर्पटी	१३०)	३५)	८)
स्वर्ण पर्पटी	१३०)	३५)	८)
हिंगुलोत्थ रस-पर्पटी	९)	२॥)	॥।)

फार्मेसीद्वारा प्रस्तुत शुद्ध वस्तुएँ

शुद्ध वस्तु नाम	१ सेर	५ तो०
कज्जली अष्ट संस्कृत पारदसे	१६)	१।)
कज्जली शुद्ध पारदसे	१२)	१)
अष्ट संस्कारपूर्ण शुद्ध पारद	३६)	२॥)
हिंगलोत्थ पारद	१६)	१।)
कांस्य चूर्ण शुद्ध	२॥)	≡)
कांतलोह „	२॥)	≡)
कुचला शुद्ध	१॥)	=)
कुचला चूर्ण „	३)	।)
खपर्र शुद्ध	२०)	१।=)
गंधक आंवलासार शुद्ध	१॥)	=)
शंख नाभि शुद्ध	।॥)	-)
कपर्दिका शुद्ध	२)	=)॥
प्रवाल शुद्ध	१।)	-)॥
गुग्गुल शुद्ध	२)	=)॥
जमालगोटा शुद्ध	१०)	॥।)
ताम्र चूर्ण शुद्ध	२)	=)॥
तुत्थ शुद्ध	१)	-)॥
दालचिकना शुद्ध	१२)	१)
धतूर बीज श्याम शुद्ध	१)	-)।
नाग शुद्ध	१॥)	=)
पित्तल चूर्ण शुद्ध	१॥)	=)
वंग शुद्ध	५)	।=)
श्रृंगिक शुद्ध	२॥)	≡)

	१ सेर	५ तोलाका भाव
वज्राभ्रक (धान्याभ्रक) शुद्ध	४)	।-)
भल्लातक शुद्ध	१)	-)।
मण्डूर „	२)	=)॥
मैनशिल „	४)	।-)
यशद „	२)	=)॥
रस कर्पूर „	१६)	१।)
रसौत „	१।)	-)॥
रौप्य माक्षिक शुद्ध	५)	।=)
रौप्य (चाँदी) शुद्ध	६०)	४)
राजावर्त (मशगूल) शुद्ध	६०)	४)
लोह चूर्ण (मुंडलोह) „	२)	=)॥
लोह चूर्ण रेतीका „	४)	।-)
संखिया शुद्ध	४)	।-)
स्वर्णमाक्षिक शुद्ध	५)	।=)
सिंगरफ „	१०)	॥।)
हरताल वर्की „	१६)	१।)
संखिया जौहर		२) तोला
हरताल जौहर		१) तोला

क्षार

	१ सेर	५ तोलाका भाव
अर्क क्षार	६)	॥)
अपामार्ग क्षार	६)	॥)
कटेली क्षार	६)	॥)
गोमूत्र क्षार	५)	।=)
चना क्षार (ओसजलका)	१२)	१।)
चनाक्षार (भस्मसे)	६)	॥)
तिल क्षार	६)	॥)
मूली क्षार	६)	॥)
यव क्षार	६)	॥)
वांसा क्षार	६)	॥)
स्नुही क्षार	८)	॥।)
कदली क्षार	६)	॥)
वज्र-क्षार काला	१२)	१।)
सज्जी क्षार	॥)	-)

सत्व और घनसत्व

सत्व और घनसत्व	१ सेर	५ तोला
अद्रक सत्व	८)	॥।)
अजवायन सत्व	११॥)	॥।)
अमलतास घनसत्व	१)	=)
कुटकी घनसत्व	३)	।–)
गिलोय सत्व	५)	।=)
चोक घन सत्व	२)	≡)
नींबू सत्व	२।)	≡)
त्रिफला घन सत्व	९)	॥।)
पुदीना सत्व (पिपरमेन्ट)	११) पौं०	१।≡)
विरोजा सत्व	।=)	
मुलहठी सत्व	३।)	≡)॥
रसौंत घन सत्व	२)	≡)
लोबान सत्व	१२)	१)
हरीतकी घन सत्व	३)	।)
मुलहठी सत्व लाल	३)	।)
मुलहठी सत्व कालीबत्ती	३।)	≡)॥

क्वाथ

नाम वस्तु	१ से० का मू०	२० तो० का मू०
देवदार्व्यादि क्वाथ, (शा०)	१।)	।=)
लघुमंजिष्टादि "	१।)	।=)
महामंजिष्टादि „	२)	॥=)
रास्नादि क्वाथ	१॥)	॥)
महारास्नादि	२)	॥=)

थोक लाइसेन्स विषोपविष

निम्नलिखित विष मँगाते समय लाइसेन्सदार अपने नम्बर, और वैद्य पूरा-पूरा पता डिविज़नके साथ दें तथा डाक्टर व वैद्य समुदाय पत्रमें यह शब्द अवश्य लिखें कि "हम व्यवहारके लिये मँगाते हैं" तभी माल भेजा जायगा।

	लाइसेन्सदारोंके लिये	वैद्योंके लिये भाव	
नाम वस्तु	१ सेरका भा.	१ सेरका भा.	५ तो का भा.
संखिया खनिज	५)	७)	॥)
संखिया श्वेत	१=)	२)	≡)
संखिया काला असली	१२)	१५)	१।)

	५ सेरका	१ सेरका	५ तोलेका भाव
संखिया पीला	१।)	२)	≡)
संखिया लाल	२॥)	४)	।–)
हरताल वर्की चूरा	४)	५)	।=)
हरताल वर्की छोटे पत्र की	६)	७)	॥)
हरताल वर्की बड़े पत्र की	९)	१०)	॥।)
रस कपूर	७॥)	८॥)	॥=)
रस कपूर पापड़ीका	१२)	१४)	१)
दालचिकना	५॥)	७)	॥)
श्रृंगिक श्वेत	१॥।)	२)	≡)
श्रृंगिक पीला	२।)	२॥।)	≡)
मीठा तेलिया	२)	२॥)	≡)
धतूर बीज श्याम	।–)	।=)	)॥।
धतूर बीज सफेद	॥।)	१)	–)।
कुचला	।)	।=)	)॥।

नोट-वैद्य महानुभावोंको उक्त विषोंके भावमें अन्तर देखकर विचिलित न होना चाहिये। लाइसेन्सदार बिक्रीके लिये मनोंकी तादादमें खरीदते हैं। वैद्य सेरों छटाँकोंकी मात्रामें लेते हैं इसलिये यह अन्तर है। फिर भी अब काफी रियायत की गयी है।

वर्क (पत्र) सोना-चाँदी

वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	५ रत्ती	२।=)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	१ माशा	३॥।)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	१। माशा	४॥।)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	१॥ माशा	५॥।=)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	२॥ माशा	९।)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	३ माशा	१३)
वर्क स्वर्ण	१ दफ्तरी	६ माशा	२१॥।)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	३ माशा	॥)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	५ माशा	।॥)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	६ माशा	॥।=)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	७ माशा	१=)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	९ माशा	१॥)
वर्क चाँदी	१ दफ्तरी	१ तोला	१॥।)
वर्क चाँदी चूरा साफ नं. १		१ तोला	१=)
वर्क सोनेका चूरा		१ तोला	४२)

गुलकन्द मुरब्बे

नाम वस्तु	मनका भाव	सेरका भाव
मुरब्बा आम	१६)	।≡)
मुरब्बा आँवला बरेली नं. १, २	१८) १४),	॥) ।=)
मुरब्बा अद्रक	१६)	॥)
मुरब्बा आँवला बनारसी नं. १, २	३५) ३०),	१)॥।=)
मुरब्बा आँवला नं. ३	२०)	॥-)
मुरब्बा आँवला नं. ४	१४)	।=)
मुरब्बा आँवला नं. ५	११)	।-)
गुलकन्द नकली फूल	१२)	।=)
गुलकन्द असली फूल	१६)	।≡)
मुरब्बा गाजर	१२)	।=)
मुरब्बा बिल्व	१९)	॥-)
मुरब्बा बीह	१२)	॥)
मुरब्बा सेव नं० १	१६)	॥)
मुरब्बा हरड़ नं. १	३५)	॥।=)
मुरब्बा हरड़ नं. २	२०)	॥=)
मुरब्बा हरड़ नं. ३	१६)	।≡)
मुरब्बा हरड़ नं. ४	१२)	।=)
मुरब्बा हरड़ नं. ५	१०)	।-)

हरीतकी-भेद

अभया हरड़ (पञ्चरेखा) कपित्थ वर्ण २॥), ४), ७), सेर
विजया (गोल) १ हरड़ २ तोलेकी है २५),४०),५५) सेर
विजया छोटी १॥ तोलावाली १०), १५) सेर
रोहणी (साधारण गोल) ।), ॥), ।।।) सेर
अमृता लम्बी (काबली) १॥) ३) ५), ७), १०) सेर
जीवन्ती (लम्बी वीणाकृति पीतवर्ण) २०), २८) सेर
साधारण हरड़ २), ३॥), ५), १२) मन
हरड़ छोटी १०) मन ।-) सेर

रोगन अथवा तेल

	भाव सेरका	५ तोलेका
तेल अजवायन	३।।।)	।)
तेल अलसी	॥)	
तेल इलायची	११)	=)
तेल इलायची विलायती	२०)	१।=)
रोगन कद्दू, पेठा	२।।।)	≡)
तेल कुष्ट	४)	।-)

	सेरका भाव	५ तोलेका भाव
कस्ट्रायल (विलायती) ४॥) गैलन १।) सेर		
कस्ट्रायल (कलकत्ता) २।) ,, ।।।) ,,		
रोगन खसखस	१।)	-)॥ ,,
गुलरोगन	॥।=)	-)
तेल चवाल मोगरा	४)	।-)
तेल जैतून	१॥)	=)
तेल जमालगोटा असली	१५)	१।)
तेल दालचीनी	४॥)	।-)
तेल नारियल	।≡)	
तेल नीम	॥)	
तेल पिपरमैण्ट नं० १	१२।)	।।।=)
तेल पिपरमैंट नं० २	७)	॥)
तेल बाबूना	१।=)	-)॥
रोगन बादाम मीठा मशीनका	३।।।)	।)
रोगन बादाम मीठा हाथका	५॥)	।=)
तेल भिलावा	१२)	१)
तेल मालकंगनी	४)	।-)
तेल युक्लिप्टिस	२॥)	≡)
तेल लौंग	४॥)	।-)
तेल बिरोजा असली	४॥)	।-)
तेल सौंफ	४॥)	।-)
तेल सन्दल असली	३०)	२।)
तेल शीतलचीनी नं० १ लाल	३६)	२॥)
तेल शीतलचीनी नं० २ श्वेत	२८)	२।)
तेल धतूरा	८) छटांक २) तो०	

प्राणिज व खनिज द्रव्य

	१ मनका	१ सेरका,	१ तोलेका
अम्बर असहब नं० १ (अग्निजार)			२०)
अम्बर असहब नं० २ ,,			१६)
अभ्रक वज्र बड़े कणका श्याम	४०)	१।)	
अभ्रक वज्र छोटे कणका श्याम	३०)	॥।=)	
अभ्रक वज्र छोटे कणका भूरा	२०)	॥=)	
अभ्रक काला उत्तम पत्र	२०)	॥=)	
अभ्रक उत्तम श्वेत	१२)	।=)	
अकीक पत्थर नं० १		२२)	
अकीक पत्थर नं० २		१२)	

	भाव १ मनका	१ सेर	१ तोला
अकीक पत्थर नं० ३		८)	
अकीक खरड़		१॥)	
कसीस लाल	३३)	॥।=)	
कसीस हरा (विलायती)	५॥।)	=)॥	
कस्तूरी नैपाली उत्तम			१८)तोला
कस्तूरी (खुतन) दानेदार		२४)	,,
कस्तूरी काश्मीरी		१४)	,,
कछुआ खोपड़ी		१॥)	
कांत लोह नं० १			॥)
कांत लोह नं० २		२॥)	
कांस्य बुरादा	५५)	१॥)	
कैंचुवे धुले हुए साफ		१॥।-)	
कैंचुवे बिना धुले		१-)	
कौड़ी पीली छोटी	४५)	१।)	
कौड़ी पीली बड़ी मोटी	९२)	२॥)	
गोरोचन नकली			१)
गोरोचन असली नं० १			१२)
गंधक ठंडा	८॥)	।)	
खपरिया असली		८)	=)
गंधक आंवलासार	१८॥।= गुत्थी	५॥) गुत्थी	
गंधक आंवलासार (खुला)		॥।) से.	
गेरू साधारण	२॥)	-)।	
गिले अरमनी		।=)	
गिले मकतूम		॥=)	
जहर मोहरा नं० १		१॥)	
जहर मोहरा नं० २		॥)	
जहर मोहरा खताई नं० १		८५)	१॥)
जहर मोहरा खताई नं० २		३५)	।=)
जंगार नं० १		९।)	
जंगार नं० २		३॥)	
जस्त फूला हुआ आँखमें डालनेका		।॥)	
जस्ता मीठा पटड़ी का		१३)	।=)
जुंद बिदस्तर १० तोले की डब्बी		१२)	१॥=)
जोंक		८) सेर	॥=)
ताम्र बुरादा	४५)	९।)	

	भाव १ मनका	१ सेरका	१ तोलेका
नख		४।)	
नाग (सिक्का)	११)	।-)	
नमक सैन्धव	३)	-)॥	
नमक काला (सौंचर)	५॥)	≡)	
नमक बिड़ (कांच)	७)	।)	
नमक बिड़ असली		॥)	
निमक गूमा	५)	=)॥	
नमक समुद्र (साँभर)	६)	≡)	
नमक खारी (नालीदार)	२॥)	-)॥	
नीला थोथा	१७)	।≡)	
नौसादर देशी	३२)	॥।=)	
नौसादर ठंडा (विलायती)	२०)	॥-)	
नौसादर टिकिया	२०)	॥-)	
पन्ना			४) तोला
प्रवालशाखा	३५)	१)	
प्रवाल मूल	२६)	॥।)	
पारद		६=)	
पाह गुजराती		१)	
पीतल चूर्ण बुरादा	२८)	।॥)	
फादजहरहैवानी			॥)
फिटकरी लाल	७॥)	≡)॥	
फिटकरी श्वेत	७॥)	≡)॥	
बंग (ईंटकी)		३॥=)	
बंग (थालीकी)		३॥।)	
बराहका पित्ता			॥)
बराहकी चर्बी		८)	
बकरेका पित्ता			।)
बीरबहूटी		६)	=)
बन्दरकी इन्द्री			४)
मुर्दाशंख	१५)	।≡)	
मण्डूर पुराना	१२)	।=)	
मैनसिल नं० १	७५)	२)	
मैनसिल नं० २	५०)	१।=)	
माणिक्य "चूनी" नं० १			३॥)
माणिक्य "चूनी" नं० २			१॥)
माणिक्य खरड़			।=)

	भाव १ मनका,	१ सेरका	१ तोलेका
मयूर पित्ता			५)
आयेशुतर आबी असली			।॥)
मोतीबसरई नं० १			२६)
मोतीबसरई नं० २			२०)
मोती आस्ट्रेलिया नं० १			२०)
मोती आस्ट्रेलिया नं० २			१५)
मोती बेडौल बड़ा दाना			५)
मोती चावला छोटा दाना			९)
मोती बिधा हुआ			८)
मोमदेशी साफ		१॥=)	
मधुश्वेत नं० १	२५)	।॥)	
मधुलाल नं० १	२०)	॥=)	
मधुलाल नं० २	१५)	॥)	
रेगमाही		१।॥)	
रीछ (भालू) की इन्द्री			३)
रीछ (भालू) का पित्ता			२॥)
रीछकी चर्बी		२)	
रूपामक्खी चतुष्कोण		३)	
रूपामक्खी (गोलदाना)	३५)	१)	
रूपामक्खी ढलियाँ	५६)	१॥)	
राजावर्त्त नं० १			॥)
राजावर्त्त नं० २			।-)
लोहचूर्ण मुंड	१२)	।=)	
लोहचूर्णका रेती		१॥)	
लाखपीपल	३६)	१)	
लाख बेरी	२६)	।॥)	
बेर पत्थर		१।=)	
वैक्रान्त नं० १		३)	
वैक्रान्त नं० २		१।॥)	
शिलाजीत पत्थर ।	१६)	॥)	
शिलाजीत सूर्यतापी		१२)	≡)
शिलाजीत (अग्नितापी)		८)	=)
शंखनाभि	१५)	॥)	
शंख टुकड़े	१२)	।=)	
शंख कीट			॥=)

	भाव १ मनका,	१ सेरका,	१ तोलेका
शोरा कल्मी	१०॥)	।-)	
शेरकी इन्द्री			४॥)
शेरकी चर्बी		१६)	।)
शेरके दाँत			२॥)
शेरके नख छोटे १) प्रतिजोड़ा, बड़े २) प्रतिजोड़ा			
संगजराहत	३)	=)	
संग सरमाही		१०)	≡)
संगयशब नं० १		३॥)	
संगदानामुर्ग		२०)	
संग्रासक		२)	
सज्जीलोटा	५।)	=)॥	
सज्जीकाली	४)	=)	
सफेदा काशगरी	१३)	।=)	
समुद्रफेन		।≡)	
सरतान		२॥)	-)॥
बारहसिंगा	१२)	।=)	
सिन्दूर	१९)	॥-)	
सीप मोतीका असली नं० १		३)	
सीप मोती बाजारी	६६)	१।॥)	
सीप समुद्री पतली	१२)	।=)	
सीप तालाब	९)	।-)	
सुरमा श्वेत	४॥)	=)।	
सुरमा काला	१६)	।≡)	
सुरमा अस्फहानी (घृ. तुगैरिकाच्छाये)		५) सेर	=) तो०
सुहागा	१३)	।=)	
सोनामक्खी चौकोर		४)	-)
सोनामक्खी (गोलदाना)	२२)	॥=)	
सेलखड़ी	२॥)	-)॥	
सोनागेरू	८)	।)	
सिंगरफ रूमी (डली)		६॥)	=)
हरतालगोदन्ती नं० १	९)	।)	
हाथीका नख		१२)	≡)
हाँथी दाँतका बुरादा		२)	
हरताल गोदन्ती नं० २	६)	≡)	
हरताल पीली	२५)	।॥)	

आयुर्वेदिक यूनानी वनस्पतियाँ

	१ मनका भाव	१ सेरका	छटाँकका
अकरकरा नं० १, २		४), २॥)	।-), ≡)
अकाकिया		३)	।)
अखरोट छाल नं० १	२०)	॥=)	-)
अखरोट छाल नं० २	१५)	॥)	)॥।
अखरोट फल	८) ९)	।)	
अखरोट गिर		॥=)	
अगर भूरा (टुकड़े)	१७)	॥)	
अगर बुरादा	३०)	।॥=)	
अजमोद	८॥)	।)	
अजवायन देशी	६)	≡)	
अजवायन खुरासानी	१३)	।=)	
अजवायन दाना	६)	≡)	
अंजवार	५)	=)॥	
अंजरूत		१)	-)।
अंजीर	१५)	।≡)	
अतीस (श्वेत) नं० १		४।)	।-)
अतीस (श्वेत) नं० २		३)	।)
अतीस काली		३॥)	।-)
अतीस मीठी	२५)	॥।)	-)
अतीस आग	२२)	॥=)	
अतिबला पंचांग	१४)	।≡)	
अतिबला बीज	३०)	।॥=)	
अधोपुष्पी	१२)	।=)	
अनन्तमूल (बंगाल)	२०)	॥=)	
अनन्तमूल (देशी)	१०)	।-)	
अनारदाना नं० १	१२)	।=)	
अनारदाना नं० २	१०)	।-)	
अनीसून	६॥)	≡)	
अपामार्ग पंचांग	१०)	।-)	
अपामार्ग बीज	५५)	१॥)	-)॥।
अफतीमून		१-)	-)॥
अम्लबेद गुच्छी (चूका)	३२)	।॥=)	=)
अमलतासगूदा	६)	≡)	
अमलतास फली	४)	=)	

	१ मनका	१ सेरका	५ तोलेका
अस्थिसंघारी	२०)	॥=)	
अमर बेल	१२)	।=)	
अर्क त्वक्	१२)	।=)	
अर्क पुष्प		१)	-)।
अर्क दुग्ध		२)	≡)
अर्जुन त्वक्	१२)	।=)	
अरणी मूल	१०)	।-)	
अरणी छाल	१६)	॥)	
अलसी		।)	
अशोक त्वक् (बंगाल)	१८)	॥)	
असगंध नागौरी	१४।)	-।≡)	
आंबले सूखे	३)	-)॥	
आमकी गुठली	१०)	।-)	
आम्बा हल्दी	१२)	।=)	
आबनूस बुरादा	३५)	१)	-)।
आबरेशम		२॥) १॥।)	
आलुबुखारा	१६)	।≡)	
इंगुदी	१५)	॥)	
इन्द्रयव	१५)	।≡)	
इन्द्रायणमूल	१४)	।=)	
इन्द्रायणबीज	३५)	१)	-)।
इन्द्रायणफल	२०)	॥=)	
इन्द्रायणचूर्ण		१॥)	=)
इलाइची छोटी नं० १		४)	।-)
इलायची „ नं० २		३॥)	।)
इलायची „ नं० ३		२।॥)	≡)॥
इलायची „ सफेद		२॥)	≡)
इलायची बड़ी	२५)	॥≡)	
इलायची दाना		१=)	-)।
इश्कपेचा	८)	।)	
ईसबगोल	८॥)	।)	
ईसबगोल भूसी	२७)	॥।)	-)
इरिमेद छाल	१२)	।=)	
उटंगनबीज	२३)	॥=)	
उन्नाव नं० १	२२)	॥=)	
उन्नाव नं० २	१७)	॥)	

	भाव १मनका	१ सेरका	५ तोलेका
उशवामगरबी नं० १,२	२।),	१॥≡)	
उशक	२७)	।॥-)	
उस्तेखद्दूस		१॥)	-)।
ऊद बिलसाँ		१।=)	-)॥
ऊद सलीब		१८)	१।)
ऊट कटेरा	१५)	।≡)	
एरण्ड मूल	१२)	।=)	
एरण्ड बीज	१०)	।-)	
एलवालुक फल	५५)	१॥)	=)
एलुवा नं० १		।॥=)	
ऋषभक (वहमन स्वेत)	१७)	॥)	
ऋद्धि (चिड़ियाकन्द)	३६)	१)	-)।
कर्कोटी कन्द		१)	
कचूर	९)	।)॥	
कंकोलदाना	१७)	॥)	
कंटकारी लघु	८)	।)	
कंटकारी बृहद्	१०)	।-)	
कंकुष्ट		३॥)	
कदम्बत्वक्	१२)	।=)	
कपित्थ फल	१२)	।=)	
कपूर देशी		३॥)	।)
कपूर भीमसेनी असली			५)
कपूर भीमसेनी बाजारी		३॥) पौंड	
कपूर कचरी	१२)	।=) सेर	
कम्पिल्ल (छना)	३०)	।॥=)	
कमलगट्टे	१५)	।≡)	
कमरकस	१६)	।≡)॥	
कमल फूल	२५)	१)	-)।
कमल केसर		३)	।)
कमल मूलशुष्क		२॥)	≡)
कचनार छाल	१५)	॥)	
करंज बीज	१२)	।=)	
करंज पंचांग	१०)	।-)	
करफस		१।=) २।)	=)

	भाव मनका	सेरका	५ तोलेका
कनेर मूल		२)	=)॥
कलौंजी	१०॥)	।-)	
कसौंदी बीज		।॥)	
कहरवाशमई		४॥)	।-)
कलिहारी (लांगली)		५॥)	।=)
काकजंघा	१०)	।-)	
काकनासापंचांग	१०)	।-)	
काकनासा फल (काकनज)		२।॥)	≡)
काकोली (श्याममूसली)	२०)	॥=)	
काकोली (बंगाल)		५।॥)	।≡)
काकड़ासिंगी	१६)	।≡)	
कायफल	७।)	≡)॥	
काश्मीरी पत्ता	१३)	।=)	
कामराज	४५)	१।)	-)॥
काहीमूल (कास)		१)	-)।
कालीजीरी	७)	≡)॥	
काहू	१७)	।≡)॥	
कुटकी (कौड)	१७)	॥)	
कुष्ठ नकली (ठुठ)	२२॥)	।॥)	
कुष्ठ उत्तम (कूठ)		७)	॥)
कुष्ठ चूर्ण मोटा		४)	।-)
कुष्ठ चूर्ण बारीक		२)	≡)
कुटज छाल	९)	।-)	
कुकुन्ध्रक (कुकरौंधा)	१०)	।-)	
कुलंजन	११)	।-)	
कुंदरु गोंद	२२॥)	॥=)	
कुसामूल		१॥)	=)
कुसुम्भ बीज	९)	।)	
कुलफा	८)	।)	
कुलथी	१२)	।=)	
केसर मोगरा काश्मीरी			१।=)
केसर लच्छा			१)
केसर हिन्ददेवी छाप	२९) पौंड		१-) तोला
केसर हाथी छाप	१४) पौण्ड		॥)

	१ मनका भाव,	१ सेरका भाव,	१ छटाँकका भाव
केसर ईरानी	२२) पौण्ड	॥।) तोला	
कौंच जड़		३)	।) छ०
कौंच बीच	११) मन	।–) सेर	
कत्था नं० २-१		२) २॥)	
कत्था नं० ३		१॥)	=)
कासनी	८॥)	।)	
खसखास	८)	।)	
खत्मी	३२)	॥।=)	
खब्बाजी	११)	।–)	
खस देसी	९)	।)	
खस (बम्बई)	११)	।–)	
खदिर छाल	१२)	।=)	
खुरफा	९)	।)	
खूबकलां	१०)	।–)	
गन्दना	११)	।–)	
गगन धूल		३॥)	।)
गजपीपल (ताड़फूल)	११)	।–)	
गन्ध प्रसारणी	१२)	।=)	
गन्धाबिरोजा गीला	५)	≡)	
गम्भारीत्वक्	१२)	।=)	
गलगंडविनाशी पत्र		३)	।)
गावजवान नं० १	२७)	॥।)	
गावजवां नं० २	२२॥)	॥=)	
गाजर बीज		।=)	
गारीकून नं० २-१		२) २॥।)	≡)
गिलोय सूखी	७॥)	।)	
गिले मखतूम	१८)	॥)	
गुंजालाल	८॥)	।)	
गुंजाश्वेत	५०)	१।=)	=)
गुग्गुलमहिषाक्ष	२८)	॥।)	
गुग्गली	११)	।=)	
गुग्गुलबाजारी	१८)	॥)	
गुड़मार बूटी	२२)	॥=)	
गुड़हल फूल		२)	≡)

	१ मनका भाव	१ सेरका	५ तोलेका
गुलगावजवां	६२)	१=)	=)
गुल बाबूना	१५)	।≡)	
गुल पिस्ता		१॥)	=)
गुल सुपारी	२२)	॥=)	
गुलनार	४२)	१=)	
गुल सुर्खपेशावरी	१८)	॥)	
गुल खैरा	१२)	।=)	
गुलाब केसर		२॥)	≡)
गुलबनफशा नं० १		२॥।)	≡)
गुलबनफशा नं० २		२)	≡)
गुलबनफशा नं० ३		१॥=)	=)
गुल सेवती		२)	=)॥
गुल गाफिस	२७)	॥।)	
गुलसुर्खदेशी	१५)	॥)	
गूलर फल		॥)	
गूलर छाल		॥)	
गोंद छुहारा		२॥।)	≡)
गोंद कतीरा नं० १	३६)	१–)	–)॥
गोंद कतीरा नं० २	२०)	॥=)	
गोंद भीमरी	३५)	१)	
गोंद बबूल	२८)	॥।)	
गोरखमुण्डी	७)	≡)	
गोरख पान	१५)	॥)	
गोखरू पंचांग	८)	।)	
गोखरू फल लघु	११)	।–)	
गोखरू फल बृहद्	३०)	॥।=)	
गौरीसर	१३)	।=)	
गन्नाजड़	१५)	॥)	
चन्द्रसूर (हालौं)	८)	।)	
चक्रांगी		१)	–)।
चक्रमर्द बीज	१०)	।–)	
चन्दनकाष्ठ श्वेत		१॥।–)	=)
चन्दनबूराश्वेत		२–)	=)।
चन्दन काष्ठलाल		।≡)	

<table>
<tr><th></th><th>१ भाव मनका</th><th>१ सेरका</th><th>५ तोलेका</th></tr>
<tr><td>चन्दन बूरालाल</td><td></td><td>||-)</td><td></td></tr>
<tr><td>चव्य (कृष्ण मिर्चमूल)</td><td>२६)</td><td>|||)</td><td></td></tr>
<tr><td>चव्य (पिप्पलीमूल)</td><td>२०)</td><td>||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>चाकसू</td><td>१३)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>चावल मोगरावीज</td><td></td><td>१|)</td><td>-)||</td></tr>
<tr><td>चित्रकमूल</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>चित्रकमूलत्वक्</td><td>३५)</td><td>१)</td><td>-)|</td></tr>
<tr><td>चित्रकपंचांग</td><td>१०)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>चिरायता मीठा</td><td>१५)</td><td>|≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>चिरायता कडुआ</td><td>२८)</td><td>|||)</td><td></td></tr>
<tr><td>चिलगोजा</td><td>२५)</td><td>|≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>चिरौंजी</td><td></td><td>१||)</td><td>=)</td></tr>
<tr><td>चोकमूल पंजाब</td><td>१०)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>चोक (सत्यानाशीमूल)</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>चोपचीनी</td><td>३५)</td><td>|||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>चोरक</td><td></td><td>२)</td><td>=)||</td></tr>
<tr><td>चांगेरी</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>छरीला</td><td>८)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>छुहारा</td><td>१०)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>जलनिम्ब</td><td>२१)</td><td>||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>जलपिप्पली</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>जलापा नं० १</td><td></td><td>३)</td><td>=)||</td></tr>
<tr><td>जलापा नं० २</td><td></td><td>२|)</td><td>=)</td></tr>
<tr><td>जलापा नं० ३</td><td></td><td>१|)</td><td></td></tr>
<tr><td>जवासापंचांग</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>जरावन्दमदहरंज</td><td>१७)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>जरिश्क मीठा</td><td>३२)</td><td>|||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>जरिश्क खट्टा</td><td>११)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>जरूरद</td><td>३७)</td><td>१=)</td><td>-)|</td></tr>
<tr><td>जामुन गुठली</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>जायफल</td><td></td><td>१≡)</td><td>-)||</td></tr>
<tr><td>जावित्री</td><td></td><td>३|||)</td><td>≡)</td></tr>
<tr><td>जिमीकंद</td><td>१५)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>जियापोता</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
</table>

<table>
<tr><th></th><th>१ भाव मनका</th><th>१ सेरका</th><th>५ तोलेका</th></tr>
<tr><td>जीराश्वेन नं० १</td><td>२१)</td><td>||=)</td><td></td></tr>
<tr><td>जीराश्वेत नं० २</td><td>१७)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>जीरा काला नं० १</td><td></td><td>१|||)</td><td>=)</td></tr>
<tr><td>जीरा काला नं० २</td><td></td><td>१||)</td><td>-)|||</td></tr>
<tr><td>जीरा काला नं० ३</td><td></td><td>१=)</td><td>-)|</td></tr>
<tr><td>जीवक (लम्बासालव)</td><td>७५)</td><td>२)</td><td>=)|</td></tr>
<tr><td>जीवन्ती (बंगाल)</td><td>५०)</td><td>१|=)</td><td>=)</td></tr>
<tr><td>जीवन्ती पंचांग</td><td>१०)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>जूफा</td><td>१०)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>जैपालबीज (जमालगोटा)</td><td>३५)</td><td>१)</td><td>-)|</td></tr>
<tr><td>जख्य हैयात</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>तज</td><td>११)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>तगर (गन्धवालामूल)</td><td>१७)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>तालवखाना</td><td>१५)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>तालीसपत्र बाजारी</td><td>८)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>तालीसपत्र असली</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>तिन्तडीक</td><td>१५)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुगाक्षीर</td><td>३५)</td><td>१)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुखमरेहां</td><td>६)</td><td>≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुख्म तरबूज</td><td>३||)</td><td>=)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुख्म कसूस</td><td>१५)</td><td>|≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुख्म कद्दू</td><td>१७)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुख्म खीरा</td><td>१५)</td><td>|≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुख्म गंदनाँ</td><td>२०)</td><td>||-)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुख्म बालंगा</td><td>१२)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुख्म कासनी</td><td>९)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>तुख्म कलौंचा</td><td>१९)</td><td>||)||</td><td></td></tr>
<tr><td>तुरंजबीन असली नं० १</td><td></td><td>२||)</td><td>≡)</td></tr>
<tr><td>तेज पत्र</td><td>९)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>तेजबलबीज</td><td>२५)</td><td>|||)</td><td></td></tr>
<tr><td>तेजबलत्वक्</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>तोदरीलाल</td><td>२२)</td><td>||≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>तोदरी श्वेत</td><td>३२)</td><td>|||≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>तोदरी पीली</td><td>३२)</td><td>|||≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>दंतीमूललघु</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
</table>

	१ मनका भाव	१ सेरका भाव	५ तोलेका भाव
दंतीमूल वृहद	१०)	।–)	
दरुनज़ अकरबी	४०)	१≡)	–)।
दरियाई नारियल	४२)	१।)	=)
दशमूल चूर्ण	१५)	।≡)	
दशमूल मिश्रित	१२)	।=)	
दालचीनी	१५।)	।≡)	
दारुहल्दी	६॥)	≡)	
द्राक्षा (किशमिश) नं० १	१३)	।=)	
द्राक्षा " नं० २	१०)	।–)	
दुग्धीलघु	१५)	॥)	
दुग्धी वृहत्	१५)	॥)	
देवदारु असली	१०)	।–)	
देवदालीफल (बन्दाली)	१६)	॥)	
द्रोण पुष्पी	१२)	।=)	
दमडलखवीन नं० १		८)	॥=)
दमउलखवीन नं० २		२।)	≡)
धतूर पंचांग	१५)	॥)	
धनियां	८)	।)	
धमासा	१२)	।=)	
धातकी (धावेके) फूल	७॥)	।)	
धूप सामग्री	१५)	॥)	
धूपबत्ती	२२)	॥≡)	
धूपहवनकी	२०)	॥=)	
नागर मोथा	५)	≡)	
नक छिकनी	१२)	।=)	
नागकेसर असली		५)	।=)
नागकेसर बाजारी	२२)	॥=)	
नागवला	१२)	।=)	
नासपाल	५)	≡)	
निम्बत्वक्	१२)	।=)	
निम्बोली	१०)	।–)	
निम्बफूल	२८)	॥।)	
निर्गुण्डी पंचांग	१०)	।–)	
निर्गुण्डी बीज	१२)	।=)	
निर्मली	१७)	॥)	

	१ मनका भाव	१ सेरका भाव	५ तोलेका भाव
निर्विसी (जदवार)		१३)	॥=)
निसोत (त्रिवृता) नं० १		२॥)	≡)
निसोत " " २		२)	=)॥
निसोत " " ३		१॥)	=)
नीलकण्ठी	३५)	१)	–)।
नीलोफर फूल नं० १	२२)	॥=)	
नीलोफर " २	१७)	॥)	
पटोल पत्र	१२)	।=)	
पतंग चूर्ण	२६)	॥।)	
पद्म काष्ठ	१०)	।–)	
पपीता		२।)	=)॥
परस्योशाँ (हन्सराज)	११)	।–)	
पलाश पुष्प	४)	=)	
पलाश पापड़ा	७)	।)	
प्रसारणी	१२)	।=)	
पाताल गरुणी	२०)	॥=)	
पाटला त्वक्	१०)	।–)	
पाटला फली	१५)	॥)	
पाठा	१२)	।=)	
पानड़ी	२२)	॥=)	
पाषाण भेद	८)	।)	
पिप्पली लघु		३।)	।)
पिप्पली वृहद्	३५)	॥।=)	
पिप्पली मूल नं० १		२॥।)	≡)
पिप्पली मूल „ २		१॥)	=)
पित्त पापड़ा	६)	≡)	
पीपल जटा		२)	
पिया रांगा		२)	=)॥
पिया बांसा	१६)	॥)	
प्रियंगू फल (गोंदनी)	२०)	॥=)	
पिस्ता नं० १,		२।)	≡)
पुनर्णवा श्वेत मूल	३०)	॥।=)	
पुनर्णवा रक्तमूल	१८)	॥–)	
पुदीना सूखा देशी	७)	।)	
पुदीना जंगली	५)	≡)	
पंचतृण मूल		॥।)	

	१ मनका भाव	१ सेरका भाव	५ तोलेका भाव
पुष्कर मूल		६)	।≡)
पृश्नपर्णी लम्बेपत्र	५५)	१॥)	=)
पृश्नपर्णी बड़े पत्र	१२)	॥=)	
फारफीऊन विलायती		१।=)	–)॥
फालसा छाल	२२)	॥=)	
फिन्दक	१६)	॥)	
बनतमाकू	१२)	।=)	
बट जटा	१६)	॥)	
बकायन फल	१६)	॥)	
बन तुलसी	१२)	।=)	
बला पंचांग	१४)	॥)	
बबूल त्वक्	१०)	।–)	
बबूल फली	१२)	।=)	
बच तीक्ष्ण	७)	।)	
बच मधुर		५)	।=)
बहमन सफेद	१७)	॥)	
बहमन लाल	१३)	।=)	
बहुगुणी	१५)	॥)	
बहुफली	१०)	।–)	
बहेड़ा फल	३)	=)	
बालछड़ (जटामांसी)	२२)	॥=)	
बहेड़ा छाल	५)	≡)	
बराहीकंद	१५)	॥)	
बादरजंबूया	७)	।)	
बादावरद	२५)	॥)	
बादयान खताई	२५)	॥≡)	
बारतंग	२०)	॥=)	
बादाम कागजी	३७)	१)	–)।
बादाम पिशौरी	३२)	॥।–)	
बाकला	१२)	।=)	
बावची	७)	।)	
बाँसा मूलत्वक्	३०)	।॥=)	
बाँसा पुष्प		१॥)	=)
बाँसा पत्र	३॥)	=)	

	१ मनका भाव	१ सेरका भाव	५ तोलेका भाव
बाँसा मूल	१५)	॥)	
बिजयाबीव	२०)	॥=)	
बिहीदाना नं० १		१॥।)	=)
बिहीदाना नं० २		११)	–)॥।
बिस्फायज	३७)	१)	–)।
बिदारी कन्द	१६)	॥)	
बिधारा बीज		३)	।)
बिधारा मूल	१२)	।=)	
बीजाबोल (मुरमकी)		१।≡)	=)
बिडंग	७)	≡)॥	
बिल्वत्वक्	१०)	।–)	
बिल्व फल	५॥)	≡)	
बिच्छू बूटी	१६)	॥)	
बिजयसार छाल	२२)	॥=)	
बीजबन्द काले	१८)	॥)	
बीजबन्द लाल	१२)	।–)	
ब्राह्मी	२०)	॥=)	
ब्रह्मदण्डी	१०)	।–)	
वरुणत्वक्	१२)	।=)	
वायु दमनी मूल		१)	–)।
वंशलोचन नं० १ (तवाशीर)		११।)	॥।)
वंशलोचन नं० २ "		८॥)	॥–)
बूरा अरमनी		१)	
बेख सोसन	३२)	॥।=)	
बेख कासनी	१३॥)	।=)	
बेख बादयान	८)	।)	
बेख बाबूना	१२॥)	।–)	
भल्लातक (भिलावा)	७)	।)	
भारंगी	१०)	।–)	
भांअरा पंचांग	१२)	।≡)	
भू आँवला	१६)	॥)	
भूतकेशी	१२)	।=)	
भोजपत्र	११)	।–)	
मछेछी	१२)	।=)	

	१ मनका भाव	१ सेरका भाव	५ तोलेका भाव
मकोयदाना	१४)	।=)	
मकोयपंचांग	१०)	।-)	
मुनक्का काला	२२)	॥=)	
मुनक्का लाल	१७)	॥)	
मखाना	४२)	१।)	-)॥
मगज कद्दू	४२)	१=)	-)॥
मगज खरबूजा	४०)	१-)	-)।
मगज खीरा	३२)	॥।=)	
मगज तरबूज	१५)	।≡)	
मगज बादाम	५२)	१।=)	
मस्तगी रूमी असली		४।)	।-)
मरोड़ फली	६)	≡)	
मदन फल	५॥)	≡)	
मयूर शिखा	६५)	१॥।)	=)
ममीरी मूल नं० १		८)	॥=)
मँजीठ	१७)	॥)	
महाबला	२०)	॥-)	
महुआ फूल	१५)	॥)	
महुआ छाल	१२)	।=)	
माजूफल	५६)	१॥)	=)
माषपर्णी	१७)	॥)	
मिर्च श्वेत		१॥।≡)	-)॥
मिर्च काली	२७)	॥।)	
मुचकुन्द पुष्प	३५)	१)	-)॥
मुद्गपर्णी	१६)	॥)	
मूसली श्वेत नं० १		५)	।=)
मूसली श्वेत नं० २		३॥)	।)
मूसली श्वेत नं० ३		२)	=)॥
मूसली श्याम	२०)	॥-)	
मुलहटी	११)	।-)	
मालकंगनी	१२)	।=)	
मूर्वा	२०)	॥=)	
मुश्कतरामसी	१८)	॥)	
मांई	५)	=)॥	

	१ मनका भाव	१ सेरका भाव	५ तोलेका भाव
मेढ़ासिंगी	१६)	॥)	
मेथीबीज	५)	=)॥	
मेंहदीपत्र	६।)	≡)	
मेंहदीपीसी हुई नं० १	९॥)	।)	
मेंहदीपिसी नं० २	८)	≡)॥	
मैदा लकड़ी	६)	≡)	
मोचरस असली (फूल सुपारी)	२०)	॥=)	-)
मौलश्रीत्वक्	३५)	१)	
मेदा (शकाकल छोटी)	२०)	॥=)	
महामेदा(शकाकल बड़ी)	१५)	॥)	
रतनजोत	७)	।)	
रसांजन (रसौंन)	१८)	॥-)	
रामपत्री (नकली जावत्री)		॥≡)	
रास्ना पत्र असली	१५)	॥)	
रास्ना मूल बंगाल	२०)	॥=)	
राल	१७)	॥)	
राई	५)	=)॥	
रीठा	४)	=)	
रेणुका बीज गोल	३५)	१)	-)।
रेवन्द चीनी नं० १	२४)	॥≡)	-)
रेवन्द खताई		४॥), २)	।-), =)॥
रेवन्द उशारा		३॥।)	।)
रेशा खत्मी	१२॥)	।=)	
रोहिषतृण मूल	२०)	॥=)	
रुद्रवन्ती		२)	=)॥
रब्बुलसूस		३।)	≡)॥
रोहितक छाल	१५)	॥)	
लता कस्तूरी		२)	=)॥
लाजवन्ती (पंचांग)	१०)	।-)	
लाजवन्ती बीज	९)	।)	
लवंग (लौंग)		१≡)	-)।
लांगुली मूल		५।।)	।=)
लोध्र पठानी	८)	।)	
लोबान कौड़िया		१=)	-)।

	१ मनका भाव	१ सेरका भाव	५ तोलेका भाव
शकर तगयाल		।।।-)	-)
शंख पुष्पी	१५)	।।)	
शरपुखाँ	४)	=)	
शाल-पर्णी	१२)	।=)	
शिलारस		२)	=)।।
शिव लिंगीबीज		४।।)	।-)
शीरखिस्त देसी		३५)	३)
शीरखिस्त (विलायती)		१०)	।।≡)
श्योनाक छाल	१०)	।-)	
श्योनाक बीज		२)	
सपिस्तान (लसूढ़ियाँ)	५)	=)।।	
सतावर	१५)	।।)	
सातला	१२)	।=)	
सकमूनिया		३) पौण्ड	
समुद्रशोष	६) मन	≡) सेर	
सत्यानाशीबीज		१)	-)।
सत्यानाशी पञ्चाङ्ग	१२)	।=)	
समुद्रफल	१२)	।=)	
संप्तरंगी	३५)	१)	-)।
सप्तपर्णत्वक्	३५)	१)	-)।
सौंफ नं० १	१७)	।।)	
सौंफ नं० २	१२।।)	।=)	
सनाय	११।।)	।-)	
सालव मिश्री नं० १		५।।)	।=)
सालव मिश्री नं० २		४)	।-)
सालव मिश्री नं० ३		२।।)	≡)।
सालव पंजा (वृद्धि)		५)	।=)
सालव लहसुनी	३५)	१)	
सिंघाड़ा	९)	।-)	
सिरसछाल	१०)	।-)	
सिरस बीज	१८)	।।)	
सीतल चीनी (सर्दचीनी)		१।।=) १-)	

	१ मनका भाव	१ सेरका भाव	५ तोलेका भाव
सुपारी काढा	१२।।)	।=)	
सुपारी दक्षिणी		१।≡)	=)
सुगन्ध बाला	७।।)	।)	
सौभांजन छाल	१०)	।-)	
सौभांजन बीज		१।।)	=)
सिंवलकी मूसली	१७)	।।)	
सोया	६)	≡)	
सोंठ देसी	२८)	।।।)	
सोंठ पूर्वी	२०)	।।-)	
सुन्दरस	२७)	।।।)	
सुरंजाशीरीं		२।।)	≡)
सुरंजातलख	२३)	।।=)	
स्थौणेयक		२)	=)।।
स्नुहीक्षीर		२।।)	≡)
स्वेत कनेर पुष्प		२)	=)।।
स्वेत कनैर मूल		४)	
हब्बुल्लास	१२)	।=)	
हरमल	३।।)	=)	
हल्दी	१०।।)	।-)	
हरड़ जंग	१०)	।-)	
हाउबेर	७।।)	।)	
हाथी सुण्डी	७)	।)	
हिंगुपत्री	१२)	।=)	
हींग अंगुरी नं० १		८)	।।=)
हींग अंगुरी नं० २		६)	।≡)
हींग तालाव		३।।)	।)
हींग बाजारी नं० १		२)	=)।।
हींग बाजारी नं० २		१।।)	=)
हींग हीरा		५)	।=)
हुब्बविलसाँ		१।=)	-)।।
क्षीर काकोली (बंगाल)		२)	≡)
क्षीरबिदारी	२५)	।।।)	

दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मैसी

— द्वारा —

आविष्कृत

गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया

— द्वारा —

रजिस्टर्ड

हजारों बारकी परीक्षित औषधियाँ

आविष्कर्ता

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

दी पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी-

द्वारा आविष्कृत

हजारों बारकी परीक्षित औषधियाँ

अनेमीन

(पाण्डु कमला, हलीमककी बे नजीर औषध)

योग—मण्डूर, चित्रक, कुटकी, त्रिकुट, त्रिफलादि।

लाभ--विमज्वरके, पश्चात् यकृत, प्लीहा बढ़ जानेपर यह दवा लाभ करती है। शरीरमें रक्तकी कमीको दूर करती है। एक सप्ताहके सेवनसे ही इसका चमत्कारपूर्ण प्रभाव दिखायी देता है। कितनी भी निर्बलता क्यों न हो एक सप्ताहमें जाती रहती है।

सेवन--दही, तक्र या दूधसे सेवन करावें।

रक्त-कमी, शोथ, जलोदर आदि रोगोंमें रामबाण है।

१४ खुराकका पैकट १)

अलसोरीन

(मुँहके छालोंकी अजीब दवा)

योग--तवाशीर, इलायची, खुम्भीका आटा, गगनधूल, पृश्नपर्णीके बीज इत्यादि।

लाभ—उदर-विकार, गर्मी उपदंशविकार आदि किसी भी कठिनसे कठिन कारणसे मुँहमें छालेपड़ते हों और ज़ख्म बने रहते हों, उन ज़ख्मोंको भरनेमें बे नज़ीर वस्तु है। मुँहमें छिड़कते ही ठंडक मिलती है, और दर्द शीघ्र ही जाता रहता है।

१ औंसका पैकट १)

आस्थमीन

यह दवा दमाके दौरेपर अच्छा काम देती है तथा दो तीन मास नित्य सेवन करते रहनेपर दमा जाता रहता है।

सेवन विधि--१ गोली सुबह शाम पानीके साथ सेवन करे। मूल्य १)

औपथलमीन

यह दवा आँखकी नीचे लिखी बीमारियोंमें अत्यन्त फायदेमन्द है--

आँख आना या आँख दुखना, आँखकी पुरानी लाली, आँखके गोलकोंका दर्द, रोहे या कुकरे, धुन्ध, जाला, आँखसे पानी जाना, आँखमें ज्यादा कीचड़ या मैल आना इत्यादि। आँखके आनेपर या अभिष्यन्द होनेपर फौरन लाभ दिखाती है।

सेवन विधि--बहुत थोड़ी दवाको शलाका (सुरमा लगानेकी सलाई) पर लगाकर आँखमें लगावें। सुबह शाम दोनों समय आँखमें डालना चाहिये। मूल्य १)

एस. टुथ पावडर

(सर्वश्रेष्ठ सुगन्धित मंजन)

लाभ--दाँतोंका दर्द, दाँतोंमें पानी लगना, मसूड़ों में वरम हो जाना और दाँतोंका कमजोर होकर हिलने लगना, मुँससे दुर्गन्ध आना इत्यादि जितनी भी दाँतों व मसूढ़ोंकी बीमारियाँ हैं सबको दूर करके दाँतोंको मजबूत व चमकीला बना देता है।

सेवन विधि--बुरुश वा दन्तधावनके साथ उक्त मंजनको दाँतोंपर खूब मलना चाहिये। और पानीसे कुल्ला कर डालना चाहिये।

मूल्य ।=) प्रति पैकेट

एलोप्सीन

(बालचर की अद्भुत दवा)

कभी-कभी एकाएक सिरके तथा दाढ़ी मूँछके बाल गिरने लग जाते हैं और दुवन्नी-चवन्नीके बराबर जगह बिल्कुल साफ हो जाती है। इस रोगको बालचर या बालखोरा कहते हैं। इस लिये हमारी यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है। दो-तीन बारके लगानेपर नये बाल उत्पन्न हो जाते हैं।

सेवन विधि—जहाँसे बाल उड़ गये हों वहाँ उस्तरसे मामूली चोभा (पच्छ) लगाकर उसपर दवाई मल दें। चार-पाँच दिनके बाद फिर उसी प्रकार करें। मूल्य १)

ओज़ीना

(नये जुकाम, पीनसकी तत्काल फलप्रद औषध)

योग—बादाम, मगज चार मगज बादाम, गुलगावजवाँ, वनफशा, संगयस्व अकीक भस्म आदि।

यह औषध माजून (पाक) के रूपमें, तैय्यार की गयी है। खानेमें बड़ी स्वादिष्ट है।

गुण-जिन व्यक्तियोंको महीनेमें कई बार जुकाम हो जाता हो, जुकामके कारण दिमाग कमजोर हो गया हो, लिखने-पढ़नेका काम दिमागी थकावटसे न कर सकते हों, शिरमें दर्द रहता हो, याददाश्त (स्मृतिशक्ति) अत्यन्त निर्बल हो चुकी हो, जुकाम बिगड़कर पीनस बन गया हो, और शारीरिक प्रकृति बिगड़कर अत्यन्त निर्बल हो रही हो, साधारण लाल मिर्च, खटाईसे चट जुकाम हो जाता हो, कोई औषध शरीरके अनुकूल न बैठती हो। ऐसी दशाओंमेंसे कोई भी रोगकी दशा हो—उसमें ओजीनाका प्रयोग चमत्कार पूर्ण लाभ दिखाता है। और इसके कुछ कालके सेवनसे पुरानीसे पुरानी दिमागी कमजोरी जाती रहती है। सर्वसाधारणके लाभार्थ १० तोला माजूनका मूल्य बन्द पैकेट १) रखा है।

एट्रोफील

(मसान रोगकी अद्भुत दवा)

यह दवा बच्चोंको सूखा रोग (मसान) में अत्यन्त फायदा करती है। जिन बच्चोंको मोतीझरा बुखारके पश्चात् या बुखार बने रहनेकी हालतमें सूखाकी बीमारी लग जाती है और बच्चा सूखता चला जाता है, जिसको लोग मसान या परछायीं भी कहते हैं। इस बीमारीमें यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करनेसे बच्चेका सूखापन दूर होकर खूब मोटा ताजा हो जाता है।

प्रयोग—१ गोली सुबह और एक गोली शामको पानीसे सेवन करावें। खानेके लिये दूध, फल। रोटी बन्दकर दें। मूल्य १)

एस. वेजीटेबोल

(विष्टम्भहर और रेचक)

योग-हिंगुल, गन्धक, चोकसत्व, त्रिवृत्ता, त्रिकुटादि।

लाभ—रात्रिको सोते समय १ से २ गोलीतक यदि खायी जायँ तो सुबह को पायखाना साफ लाता है। और दिनमें तीनसे चार गोलीतक खायी जायँ तो चार-पाँच बार जुलाब आकर उदर साफ हो जाता है। इसके सेवनसे मरोड़, दाहादिका कोई कष्ट नहीं होता।

सेवन विधि—१, २ गोलीवाला केपसूल रात्रिको गर्म दूधसे और जुलाबके लिये दिनमें ३,४ गोलीवाला केपसूल गर्म पानीसे दें। पथ्य घृतयुक्त खिचड़ी।

८० गोली कैपसूलमें बन्द हैं, मूल्य १) प्रति पैकेट।

एस. डिस्पेपसोल

योग-लवण, त्रिकुटा, हींग, जीरा, सत्व अजवायन, पुदीना आदिका सम्मिश्रित सर्वश्रेष्ठ स्वादिष्ट चूर्ण।

लाभ—बदहजमी, खट्टे डकार, वमन, मतली,

अतिसार उदर पीड़ा आदिको दूर करता है।

स्वादिष्ट इतना है कि छोटे बच्चे भी बड़े प्रेमसे खा लेते हैं।

सेवन विधि—आवश्यकताके समय थोड़ा चूर्ण जबानपर रखकर चाटना चाहिये।

एक पावका पैकेट मूल्य १)

एस. पायोरीन

योग—चूना, हरताल, सज्जी, पारद, सिरका, क्रियाजोल इत्यादि।

लाभ—यह धारणा अब छोड़ दो कि पायोरिया दाँत निकलवाकर ही जा सकता है। दाँतको यदि स्थिर रखकर लाभ उठाना चाहते हो तो एकबार इस मंजनका अवश्य प्रयोग करो। इस मंजनके प्रयोगसे एक तो गला हुआ मांस ठीक होकर पुनः भरने लगता है, दूसरे हिलते हुए दाँत फिर मजबूत हो जाते हैं। इसका मूल्य २।) था किन्तु प्रचारार्थ मूल्य एकदम घटा दिया गया है।

सेवन विधि—ब्रश या दातौनसे मंजनको वहाँ पर अच्छी तरह मलो जहाँसे पाक निकलती हो। बादमें गर्म जलसे कुल्ली कर डालो। इस प्रकार दोनों समय करो। मू० १) प्रति पैकेट

कॅटारीन

दमाकी बीमारी, पुरानी खाँसी, या किसी और फेफड़ेकी बीमारियोंके कारण जब श्लेष्म अत्यधिक निकलती हो, सुबहके समय सेरों बलगम खारिज होती हो और बलगमकी अधिकतासे रोगी अधिक कमजोर हो चुका होतो कॅटारीनके सेवनसे अत्यन्त फायदा होता है। पहले ही दिन बलगम घटकर बहुत कम हो जाती है। बलगम घटनेपर रोगीको बहुत आराम मिलने लगता है।

मात्रा—चौथाई ग्रेन (½ रत्ती) पान-पत्रपर लगाकर खायें।

फ़ार्मूला—आर्सेनिक, सलफर मिश्रित वानस्पतिक तेल।

पथ्य—खटाई, तेल, कब्जकारी वस्तुओंसे बचें।

मू० १) प्रति पैकट

क्वारटीन

(चौथिया की उत्तम दवा)

चौथे दिन चढ़ने वाला मलेरिया बुखार जिसको चौथा बुखार या चौथय्या बुखार कहते हैं, चाहे पुराना हो या नया यह दवा हरएकको शर्तिया फायदा करती है।

सेवन विधि—५ रत्ती दवाको जलके साथ दिनमें दो दफ़ा सुबह शाम एक सप्ताहतक सेवन करावे।

पथ्य—एक सप्ताहतक दूध-रोटी, दूध, चावल चीनी मीठा युक्त। मू० १) प्रति पैकट

क्लो आज़मीन

(सिध्म की श्रेष्ठ दवा)

बहुतसे आदमियोंकी छाती या पीठपर हलके श्वेत या मटमैले दाग उत्पन्न हो जाते हैं और उनसे कभी-कभी भूसी भी उतरती रहती है, कभी-कभी गर्मीसे चिनगारियाँ-सी भी उठती हैं, कई इस व्याधिको सेहुँआ, कई छींप कहते हैं। इसके लिये यह दवा बहुत आश्चर्य-जनक लाभ दिखाती है। इस रोगका सफेद कोढ़ या फुलबहरीसे कोई सम्बन्ध नहीं।

सेवन विधि—आध तोला दवाको ५ तोला दहीमें मिलाकर दागोंपर खूब मलना चाहिये। जब दवा मलते-मलते सूख जाय तो पश्चात् स्नान कर लेना चाहिये। मू० १) प्रति पैकट

कफसोल

राजयक्ष्माकी खाँसीको त्यागकर बाकी प्रत्येक खाँसीमें इससे अवश्य लाभ होता है। श्लेष्मज श्वाँस, दौरेके श्वाँसको भी रोकती है। इसके सेवनसे पुरानीसे पुरानी खाँसी जाती रहती है।

सेवन-विधि—उष्ण प्रकृतिवालोंको किसी शीतल शर्बतसे और शीत प्रकृतिवालेको शहदसे दें। मात्रा ½ से १ रत्तीतक। १ औंस पैकेटका मू० १)

खोराञ्जन

(पड़वालका अद्भुत सुरमा)

योग—सुरमा अस्फहानी, (सौवीरांजन) अंजरूत, सुहागा, मनःशिलादि।

लाभ—जिन व्यक्तियोंकी पलकें सुर्ख और मोटी होकर उनमें फुंसी निकला करती हैं तथा आँखोंमें बाल चुभते रहते हैं, जिनको पड़वाल या पदमकोप भी कहते हैं, इस अंजनके लगानेसे उक्त रोग समूल जाता रहता है तथा पलक पतली हो जानेपर पड़वालोंका आँखोंमें पड़ना या चुभना जाता रहता है।

६ माशेकी शीशीका पैकेट, मूल्य १)

डाई सेन्ट्रोल

(पेचिश मरोड़की अचूक दवा)

योग—हरीतकी, भाँग, पोस्तडोडा, सौंफ, सुंठी, बनबकरी आदि।

लाभ—यह औषध ९९ प्रतिशत व्यक्तियोंको पेचिशमें अवश्य ही लाभ करती है। कैसा ही मरोड़ हो; आँव और खून जाता हो, दिनमें तीन चार मात्रा खाते ही आराम हो जाता है। पुरानेसे पुराने पेचिशवाले भी इसके सेवनसे निराश नहीं हुए।

४ औंसका पैकेट मूल्य १)

डिलेरीन

मन्थर ज्वर, फुफ्फुस प्रदाह, प्रसूत ज्वर, इन्फ्लूएञ्जा आदिके होनेपर जब अधिक ज्वर होकर मनुष्यको सरसाम या सन्निपात हो जाता है और रोगी अधिक बकवात करता है, नींद नहीं आती, हाथ-पैर मारता है या बेहोश पड़ा रहता है, ऐसी हालतमें हमारी यह औषध दो दो घण्टेके बाद खिलानेसे रोगीकी सन्निपातिक अवस्था जाती रहती है।

खुराक—१ गोली अद्रक रस या शहदसे दें। ऐसे बीमारको खुराकके लिये कोई दूध वगैरह गिज़ा तबतक नहीं देनो चाहिये जबतक होश-हवास दुरुस्त न हो जाय। १४ खुराक मूल्य २)

डायसेन्ट्री पिल्स्

यह औषधि पेचिशके लिये अत्यन्त लाभदायी है। नयी बीमारीमें सेवनसे पहले हलका-सा जुलाब जरूर दें। जुलाब हो जानेके तीन-चार घण्टे बाद दही, जल या तक्रके साथ इसको सेवन करें। दिनमें दो दफा दें—सुबह-शाम।

पथ्य—पेचिशकी दशामें दहीसे वा छाछसे चावल खायें। मूल्य १)

डिफनेस्सीन ऑइल

जिन लोगोंको अधिक कुनैन, जमाल गोटा (जैपाल बीज) संखिया वगैरह अत्यन्त गर्म, खुश्क चीजें खानेसे कानोंमें खुश्की पहुँचकर बहरापन हो जाता है और कानमें ज्यादा पपड़ीदार सूखा मैल बनता रहता है, या कानमें सूखा दर्द रहता है। कानकी झिल्ली नरम पड़ जाती है और किसी तिनकाका स्पर्श भी असह्य होता है; उनके लिये यह तेल अत्यन्त लाभदायी है।

सेवन विधि—रात्रिको सोते समय शीशीको हिलाकर इस तेलकी चार बूँदें कानमें डालकर सो जायें, तेल कानमें ही पड़ा रहे। दूसरे दिन दूसरे कानमें छोड़ें। इस तरह कुछ दिन करनेपर एक तो कानमें झिल्ली या मैलका बनना बन्द हो जाता है, दूसरे सुनाई देने लग जाता है। कुछ दिनके सेवनसे कान खुल जाते हैं। प्रति पैकेट मूल्य १)

डायेरीन

बच्चोंको या वृद्धोंको पेटकी खराबीसे या बदहजमीसे या बच्चोंके दाँत निकलनेके कारण या किसी और अज्ञात कारणसे एकदम दस्त शुरू हो जाते हैं तो ऐसी अवस्थामें इस औषधके प्रयोगसे एक बार अवश्य ही दस्त बन्द हो जाते हैं। पश्चात् विशेष कारणको देखकर चिकित्सा-क्रम जारी कर सकते हैं। यह औषध तो जनरल तौरपर दस्त बन्द करनेके काम आनेवाली अचूक वस्तु है।

मू० प्रति पैकेट ८० गोली १)

शास्त्रीय-सन्निपात और आधुनिक संचारी ज्वर

समयके प्रवाहका प्रभाव

[ले०—स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य]

आयुर्वेद-विज्ञान और हमारी श्रद्धा

भारतमें जबतक गौरांग महाप्रभुओं-के दर्शन नहीं हुए थे, विदेशी चिकित्सा-पद्धति नहीं आयी थी, भारतीय रोगियोंका कर-स्पर्श यूनानी चिकित्सक और डाक्टरोंने नहीं किया था। तबतक आयुर्वेद-विद्वान् यही समझते थे कि जितना ज्ञान-विज्ञान हमें ऋषि दे गये हैं वह सम्पूर्ण सत्य है उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं। शास्त्र भी इस बातका आदेश करता है कि समस्त विद्याओंकी तरह आयुर्वेद भी ईश्वरसे प्रकट हुआ। लिखा भी है "भिषक्तमम्त्वंभिषजम् शृणोमि" अर्थात्—"हे ईश्वर! मैं सुनता हूँ तू समस्त चिकित्सकोंमें श्रेष्ठ है।"

आयुर्वेद अनादि ज्ञान है इसीलिये इसके सिद्धान्त निर्भय, अचल, अटल हैं और यह सदा ही अचल, अटल रहेंगे।

समयका प्रभाव

किन्तु, कालचक्रकी गति बड़ी ही विलक्षण और बलपूर्ण है जिसने आर्य-जातिके चिकित्सकोंकी विचार-धारामें बहुत कुछ उलट-फेर कर दिया। अनेकोंके विचार बिलकुल बदल गये, अनेकोंको अपने अटल सिद्धान्तोंमें संशयात्मक बना दिया।

वास्तवमें इस प्रकारके उलट-फेर होनेमें कारण है विपरीत पक्षकी सचाईका सामने आना। जबतक अन्य चिकित्सा-पद्धतियाँ हमारे सामने नहीं आयी थीं तबतक हम सब परस्पर विचार-भेद रखते हुए भी सैद्धान्तिक भेद नहीं रखते थे। सभी आर्य-चिकित्सक आयुर्वेद-सिद्धान्तोंको अचल, अटल, सत्य मानते थे।

आयुर्वेदसे भिन्न सिद्धान्तोंका समावेश

पर जब एक ऐसे विपक्षी चिकित्सक हमारे सामने आये जो आयुर्वदिक चिकित्सा-क्रमका नाम भी नहीं जानते थे। जिनकी चिकित्साको हम आसुरी, जघन्य चिकित्सा-पद्धति समझते थे वह अपनी चिकित्सा-पद्धतिसे जनताको लाभ पहुँचाकर, रोगियोंके रोग निवृत्तकर, जनसमूहको अपनी ओर आकर्षित करने लगे, तब हमें भी उनके प्रभावको मानना पड़ा। और उनके आयुर्वेदविपरीत सिद्धान्तोंपर विचार करनेका अवसर हुआ। उन्हींके उक्त विपरीत सिद्धान्त—जो क्रियात्मक सचाई रखते थे—हमारे पुराने विश्वासकी दृढ़ भित्तिको हिलानेमें कारण हुए। इस प्रकार अनेक वैद्य सशंकित होते चले गये, अनेकोंने अपनेको उस अन्धविश्वासकी रज्जुसे उन्मुक्त कर सत्यतासे क्रिया-शील वायुका सुखानुभव लिया।

संसार परिवर्तनशील है

तब उन्हें ज्ञात हुआ कि इस परिवर्तनशील संसारमें कोई भी वस्तु सदा एक रूपमें स्थिर नहीं रह सकती। संसारकी गतिके साथ सबको किसी-न-किसी रूपमें बदलना ही पड़ता है। बहुत-सी चीजें तो बदलते-बदलते ऐसी बदल जाती हैं कि उनको अपने पूर्व नामसे सम्बोधित कर उनका रूप पहचानना कठिन हो जाता है।

ऐसी वस्तुओंमेंसे पाठकोंके सामने आज हम दृष्टान्त-स्वरूप सन्निपातकी चर्चा करेंगे और बतलावेंगे कि इसकी स्थितिमें कितना उलट-फेर हो गया है।

प्राचीन ज्वर और सन्निपात

ज्वर

शरीरका एक निश्चित उत्ताप जब किसी भी कारणसे बढ़ जाता है, हाथके स्पर्शसे समस्त शरीर उष्ण प्रतीत होता है, नाड़ीकी स्पन्दन-गति बढ़ जाती है ऐसी बढ़ी हुई उत्तापकी स्थितिका नाम ज्वर है। यह ज्वर मनुष्यतक ही सीमित नहीं, पशुओंको भी चढ़ता देखा जाता है। पशुओंमेंसे तो शायद ही यह किसी-किसीको चढ़ता हो,

पर मनुष्यको अपने जीवनमें एक बार नहीं कई-कई बार होते दिखाई देता है। इसीलिये तो आत्रेयजीने यहाँतक कह डाला है कि "सर्वप्राणभृताः सज्वरा एव जायन्ते सज्वरा एवम्रियन्ते" अर्थात्—"सम्पूर्ण देहधारी जीव ज्वरके साथ उत्पन्न होते और ज्वरके ही साथ मरते हैं।" इसमें कोई अत्युक्ति नहीं दिखाई देती।

ज्वरके अनेक कारण

ज्वरके अनेक कारण हैं, इसे आयुर्वेदने भी माना है। किसी भी कारणसे ज्वर हो, आरम्भमें उसकी साधारण संज्ञा होती है। इस बातको प्रत्येक चिकित्सक मानेगा कि ज्वरारम्भमें एकाएक ज्वरकी स्थिति और उसके रूपका निश्चय नहीं किया जा सकता। एक दो दिन या समय लेकर ही उसका लक्षण परिस्फुट होने लगता है। जभी उसका नामकरण करनेका चिकित्सक साहस करता है।

सन्निपात

और जब ज्वर कुछ अवधिके लिये ठहर जाता है तथा उसका वह रूप, लक्षणोंसे परिलक्षित होकर रोगीमें बढ़ता चला जाता है तथा इस भयंकर स्थितिके कारण जीवनपर संकट दिखाई देने लगता है तो उस भयंकर स्थितिका नाम "सन्निपात" कहा जाता है।

सन्निपातका शब्दार्थ ही इस भावको प्रकट करता है कि सन्निकट पतनावस्थाके जो ले आनेवाला है वह सन्निपात है।

दोष-वाद अथवा उल्वणता

आयुर्वेदज्ञ दोष-वादको मानते थे, इसीलिये उनके मतसे ज्वरके होनेका कारण शरीरमें दोषोंकी असात्म्य स्थिति कहा जाता रहा है। आज भी अनेक वैद्य कहते हैं। सन्निपातमें इन दोषोंकी स्थिति और भी असात्म्य रूपमें हो जाती है इसीको चरकमें "उल्वणता" कहा है। अर्थात् जिस ज्वरमें तीनों दोष असात्म्य होकर उनमें कोई एक दोष विशेष बढ़ जाय तो उसी दोषके लक्षणोंसे उसकी प्रधानता मानकर उसको वातोल्वण, पित्तोल्वण आदिके नामसे सम्बोधित करते हैं। उसके नाम विशेष कोई नहीं दिये। लक्षणोंसे दोषोल्वणता जाननेका संकेतमात्र है। सुश्रुतने किसी विशेष लक्षणको देखकर इस प्रकारका अन्तर नहीं किया। प्रत्युत भिन्न-भिन्न लक्षण देखकर भी इसे एक ही सन्निपात होता है, ऐसा अपना विचार निश्चित किया।

सन्निपात-भेद

इन दोनों महर्षियोंके पश्चात् समयमें कुछ परिवर्तन उत्पन्न हुआ, उक्त ऋषियोंके विचारोंका आश्रय लेकर पश्चात्के वैद्योंने कुछ विशेष-विशेष लक्षणोंयुक्त ज्वरोंको देख उनके नाम निश्चित किये। सन्निपातके भी नाम निश्चित किये। यहाँतक कि तेरह प्रकार इसके कर दिये। इन नामकरण करनेवालोंके समयसे लेकर आजतक तेरह प्रकारके सन्निपातभेदोंको वैद्य लोग मानते चले आते हैं। इनके नाम यह हैं, १. सन्धिक, २. अन्तक, ३. रुग्दाह, ४. चित्त-विभ्रम, ५. शीतांग, ६. तन्द्रिक, ७. कण्ठकुब्ज, ८. कर्णक, ९. भुग्ननेत्र, १०. रक्तष्ठीवी, ११. प्रलापक, १२. जिह्वक और १३. अभिन्यास। यह नाम वास्तवमें सन्निपात ज्वरमें बढ़े किसी लक्षणके द्योतक हैं इन तेरह प्रकारके सन्निपातोंके लक्षण जिस वैद्यने देखे होंगे उसने निश्चित किये थे।

सन्निपात लक्षणोंके सम्बन्धमें हमारी जानकारी

परन्तु, इस समय हमें इनके निश्चित लक्षण किसी भी सन्निपातिक रोगीमें नहीं मिलते। अनेक रोगियोंमें तो आधे लक्षण भी नहीं मिलते। इसीलिये तो नवसिखे वैद्य विचारेकी समझमें कुछ बात नहीं आती। दूसरे 'सन्निपातो दुश्चिकित्स्यानाम्' का जब पाठ याद आता है तब 'मृत्युना सह योधव्यं' समझकर घबरा जाता है।

सन्निपातके सम्बन्धमें आधुनिक वैद्य और डाक्टरोंका अधूरा ज्ञान

नये वैद्योंको जाने दीजिये। पुराने वैद्योंके सामने तो एक और बाधा भी आ खड़ी हुई है।

सन्निपातिक रोगीके एक ओर जब वह वैद्य बैठा होता है, दूसरी ओर डाक्टर आता है और फुफ्फुसकी परीक्षा करता है तत्पश्चात् कहता है रोगीको न्युमोनिया हो रहा है। वैद्य पूछता है डाक्टर साहब! कौनसे दोष इस रोगीमें बढ़े हैं

वह उत्तर देता है दोष-दासको तो हम जानते नहीं; हमें तो परीक्षासे इसकी श्वास-प्रणालीमें प्रदाह प्रतीत हो रहा है।

यदि डाक्टरकी चिकित्सासे समस्त सन्निपातिक रोगी मर जाया करते और वैद्योंकी चिकित्सासे बचते रहते, तब तो निःसंशय ही किसीका भी सत्य पक्ष होता, वैद्योंका ही सत्य माना जाता। पर बात ऐसी नहीं होती, वैद्योंके हाथसे भी उसी प्रकार रोगी मरते हैं जैसे डाक्टरोंके हाथसे। तब न हमारे सिद्धान्तकी विशेषता रही, न हमारे रोग-विनिश्चयकी, न हमारी चिकित्साकी।

इस समयइस पृथ्वी पर तीन अरबके लगभग आबादीमेंसे तेतीस करोड़ भारतीयोंको ही सन्निपात नहीं होता, प्रत्युत समस्त देशोंमें सन्निपात ज्वर होते हैं। और वह उसी प्रकार बचते और मरते हैं, जैसे भारतीय वैद्योंके हाथसे। फिर इस देशके रोगियोंमें ही विशेषकर वैद्योंके हाथ चिकित्सा करानेवालेको रोग (ज्वर) त्रिदोषसे हों अन्यको अन्य कारणोंसे। यह कभी हो नहीं सकता।

सन्निपात-परीक्षामें अपना अनुभव और समयका प्रभाव

मैं आज बीस वर्षसे चिकित्साका कार्य करता हूँ। एक समय वह था जब प्रत्येक रोगकी दशामें त्रिदोषकी स्थितिको लक्षणोंसे ढूँढ़ा करता था। और एक समय अब है जब कि रोगीके रोग-लक्षणोंमें त्रिदोषकी गन्धको भी नहीं देखता। इस परिवर्तनका कारण है सर्वप्रथम मेरा अपना क्रियात्मक अनुभव। दूसरा है (डाक्टरों) प्रतिद्वन्द्वियोंका रोग-निश्चयक्रम तथा उनकी स्पष्ट क्रियात्मक विधियाँ। जिसने मुझे ही प्रभावित नहीं किया बल्कि समस्त वैद्यसमाज परोक्ष-अपरोक्ष रूपमें—इसके प्रभावसे प्रभावित दिखाई पड़ता है।

समयका प्रवाह और हम

आज तो प्रत्येक नागरिक वैद्यकी यह दशा है कि वह वेगसे समयके प्रवाहमें बहा चला जा रहा है और अपने प्राचीन निश्चित विचारों, नामोंका स्पष्टीकरण न कर रोगीको देखते ही इसे मन्थर ज्वर है, प्लेग है, इन्फ्लूइञा है, फुफ्फुस सन्निपात है, गर्दन तोड़ (सुषुम्नमण्डल प्रदाह) बुखार है आदि, आदि नाम देकर ही सम्बोधित करता है। आयुर्वेदके ठेकेदार पत्र भी क्या करते हैं? यही कि इस एलोपैथी निदान-पद्धतिको खूब विस्तारके साथ अपने पत्रोंमें स्थान देकर बिना इच्छाके ही समयके प्रवाहमें बहे चले जाते हैं। कहावत सच है—कभी-न-कभी सचाई सिर चढ़कर बोल ही देती है।

सन्निपात नामका कोई स्वतंत्र ज्वर नहीं है

मैंने तो अबतक जिनमें ज्वर तीव्र होता है—यथा, प्रसूतिका ज्वर, फुफ्फुस प्रदाह, मन्थर ज्वर, प्लेग, (महामारी ज्वर) सुषुम्न मण्डल प्रदाह, शीर्ष प्रदाह, इनफ्लूइंजा आदि—उन निश्चित लक्षणवाली व्याधियोंमें ही सन्निपातके लक्षण देखे हैं। सन्निपात नामसे कोई स्वतन्त्र ज्वर नहीं दिखाई देता। इसमें कोई संशय नहीं कि दस प्रसूताज्वरके रोगीमें एकसे ही समस्त लक्षण नहीं मिलते; दस मन्थर ज्वरके रोगी एकसे चिन्होंसे परिलक्षित नहीं पाये जाते। कई रोगी प्रलाप करते हैं तो कई इसके विपरीत शान्त पड़े रहते हैं। कइयोंकी जिह्वा स्वरस्पर्शी होती है तो कइयोंकी नहीं, किसी-किसीके जिह्वांकुरोंमें प्रदाह हो जानेके कारण जिह्वापर काँटे निकल आते हैं। इस प्रकारके विपरीत लक्षण होनेपर भी रोगमें रोगके कुछ मुख्य लक्षण देखे जानेपर रोग वही रहता है। कुछ लक्षणोंके बदल जाने या न मिलनेपर सन्निपातिक नामावत् उसका नाम नहीं बदल जाता।

व्यावहारिक सन्निपात ज्वर

इसको देखकर यह कहा जा सकता है कि इस समयका वातावरण तो ऐसा बदल गया है कि प्राचीन तेरह सन्निपातोंका या तो अब पुस्तकोंमें ही नाम रह गया है या कहिये समयने उक्त सन्निपातिक चिन्होंको बदल दिया है, जिसके कारण उनके पूरे लक्षण न मिलनेसे वह अव्यवहार्य हो रहे हैं। इस समय तो वही व्यवहार्य सन्निपात ज्वर रह गये हैं जो सञ्चारी ज्वरोंके नामसे पुकारे जाते हैं।

विज्ञानके स्वर्णमय सदुपयोग, घरेलू धंधे

स्याहियोंके विविध रूप

[ले०—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, एफ़्० आइ० सी० एस्०, विशारद, प्रयाग-विश्वविद्यालय]

स्याहियोंके प्रकार

बाजारमें स्याहियाँ तीन प्रकारसे बिकती हैं। एक तो छोटी-छोटी बोतलोंमें जिनका व्यवहार बिना पानी मिलाये वैसे ही किया जाता है। पर कुछ स्याहियोंके गाढ़े घोल भी बाजारमें मिलते हैं। इनमें इच्छानुसार पानी मिलाकर लिखने योग्य स्याही तैयार कर लेते हैं। इस प्रकार एक छोटी-सी बोलतमें बहुत अधिक स्याही आ जाती है। इनसे भी अधिक सुविधा स्याहियोंके चूर्णमें होती है। ये चूर्ण दावातमें डालकर पानीमें घोल लिये जाते हैं। एक छोटी-सी पुड़ियामें इतनी स्याहीका चूर्ण आ जाता है कि कई बोतल स्याही आसानीसे तैयार हो सकती है। एक स्थानसे दूसरे स्थानतक भेजनेमें इनमें खर्चा भी कम पड़ता है। कभी-कभी चूर्णदार स्याहियाँ टिकियोंके रूपमें भी बेची जाती हैं। ये टिकियाँ पानीमें सरलतासे घुल जाती हैं। हम इनके तैयार करनेका सूक्ष्म विवरण यहाँ देंगे।

स्याहियोंके गाढ़े घोल

स्याहियोंके गाढ़े घोल तो साधारण घोलोंके पानीको भाप बनाकर उड़ा देनेसे ही बन जाते हैं। पर पानीको उड़ानेमें सावधानी रखनी पड़ती है। अधिक अच्छा तो यह है कि पानीको बिना उबाले ही उड़ा दिया जाय। इसके लिये क्वथनांकसे नीचे तापक्रमतक ही इसे गरम करना चाहिये और धीरे-धीरे जितना हो सके उतना पानी उड़ा देना चाहिये। बादको स्याहीकी गाढ़ी चासनी-सी रह जायगी जिसे बोतलोंमें बन्द करके रखा जा सकता है। ध्यान रखना चाहिये कि इतना पानी न उड़ा दिया जाय कि स्याही अवक्षेपित हो जाय (तलछट पृथक् हो जाय)। आँवला या माजूफलसे स्याही तैयार करनेमें यह विधि बहुत उपयोगी है। स्याहीकी इस चासनीमें व्यवहारके समय ५ से ८ गुनातक पानी मिलाया जा सकता है।

एलीजेरीन स्याहियोंके सत तैयार करनेके लिये मिट्टीके बर्तनोंका उपयोग करना चाहिये क्योंकि इन स्याहियोंमें सिरकाम्ल होता है, जो गाढ़े होनेपर लोहे या ताँबेके बर्तनों-को खा जाता है। पानी सुखाते समय इन स्याहियोंमेंसे कुछ सिरका भी उड़ जाता है, और ये स्याहियाँ धुंधली पड़ जाती हैं। इनमें ऊपरसे तीव्र सिरकाम्लकी कुछ मात्रा मिला देनी चाहिये। जितने कम तापक्रमपर पानी सुखाया जायगा, उतनी ही स्याही भी अच्छी होगी। गर्मीकी ऋतुमें तो बड़ी-बड़ी नाँदोंमें कई दिनतक स्याही खुली रख छोड़नेसे ही गाढ़ी हो जावेगी। लागवुड क्रोम स्याही तो इन विधियोंसे बहुत ही गाढ़ी की जा सकती है, और स्याही किसी भी प्रकार खराब नहीं होने पाती है।

स्याहियोंके चूर्ण

(१) टैनिन और गैलिक एसिड-स्याहियोंके चूर्ण

गरम पानीद्वारा पूर्व बतायी हुई विधियोंसे माजूफल, आँवला आदिका निष्कर्ष निकाल लो, और फिर इस घोलको सावधानीसे गरम करके चासनीदार कर लो। जब चासनी-वाली अवस्था आ जाय तो इसे बराबर चलाना आरंभ कर दो, और हलकी आँचसे गरम करते जाओ। तबतक चलाते जाओ जबतक कि सत बिलकुल सूख न जाय। तापक्रम इतना कम रखना चाहिये कि स्याही जल न जाय। इसी कालमें लोह-कसीस (हरा कसीस) और गोंदको अच्छी तरहसे सुखाकर पीस डालो। अब इस चूर्णको माजूफलके सूखे सतके साथ मिलाकर फिर पीस दो। इस प्रकार भूरे रंगका चूर्ण तैयार हो जायगा। इसे तत्काल ही बन्द बोतलोंमें भरकर रख दो क्योंकि इसमें हवासे पानी सोख

लेनेकी प्रवृत्ति होती है। इस चूर्णकी थोड़ी सी भी मात्रा पानीमें घोलकर सुन्दर स्याही तैयार की जा सकती है।

(२) लागवुड-क्रोम स्याहीका चूर्ण

यह या तो पहले बतायी गयी लागवुड स्याहियोंको सावधानीसे वाष्पीभूत करके बनाया जा सकता है, अथवा अच्छा तो यह हो कि लागवुडके सतको अलग पीसकर महीन मैदा-सा कर लो और फिर इसमें बारीक पिसाहुआ क्रोम पोटाश मिला दो। इस मिश्रणको भी अच्छी प्रकार बोतलोंमें बन्द करके रखना चाहिये नहीं तो स्याही पानी सोख लेगी और चूर्ण लिबलिबा हो जायगा और फिर बोतलमेंसे इसे निकालनेमें कठिनाई होगी।

इन चूर्णोंको नमीसे बचानेके लिये कागजके विशेष डिब्बे भी तैयार किये जाते हैं। मोटे कागज या पट्ठेके साधारण डिब्बे बनाओ, और फिर इनके अन्दर अच्छी प्रकार पिघलाया हुआ मोम छोड़कर अन्दर सब ओर मोमकी पतली सतह जमा दो। मोमदार कागजके ये डिब्बे स्याहीको नम हवासे बिल्कुल सुरक्षित रखेंगे।

चूर्ण तैयार करनेमें बस यह ध्यान रखना चाहिये कि तापक्रम जितना हो सके उतना कम रखा जाय जिससे स्याही जल न जाय, और मिश्रण भली प्रकार एक-रस पिसा हो।

फफूँदी आदिसे सुरक्षित रखनेके लिये फिटकरी, या बोरिक एसिड या सैलिसिलिक एसिड भी पीसकर इन चूर्णोंमें मिला दिया जाता है।

इन चूर्णोंके कुछ नुसखे इस प्रकार हैं—

(१) फ्रिक्स चूर्ण

गाल-चूर्ण (आँवलेके सतका चूर्ण)	४२	अच्छी प्रकार शुष्क
लोह कसीस	३०	
गोंद	१५	
फिटकरी	६	

(२) प्रेसिशन-इंक-पाउडर

गाल-चूर्ण	१५०
लोह कसीस	२५
नीला थोथा	५
फिटकरी	१०
गोंद	१०

(३) लागवुड-चूर्ण

लागवुड सत	५००
क्रोम पोटाश	१

स्याहियोंकी टिकियाँ

स्याहियोंके चूर्णोंकी कभी-कभी टिकियाँ बनाकर बेची जाती हैं। ये टिकियाँ अधिकांशतः उन स्याहियोंकी बनायी जाती हैं जो घुलनशील रंगसे बनती हैं। क्रोम स्याहियोंकी टिकियाँ इनमें विशेष हैं। स्याहीके घोलको उचित अवस्था-तक सुखाते हैं और फिर इन्हें टीनकी थालियोंमें जमाते हैं। जब स्याही जमकर ठोस हो जाय तो तेज चाकूसे इसके वर्गाकार टुकड़े काट लिये जाते हैं, अथवा मशीनसे गोल टिकियाँ बना ली जाती हैं। इन टिकियोंको टिनके पत्रोंमें लपेटकर रखा जाता है। यह जाननेके लिये कि स्याही टिकियाँ बनाने योग्य सूख गयी है या नहीं, इसकी चासनीकी एक बूंदको ठंढे लोहेके टुकड़ेपर डालो। यदि यह बूँद फौरन् गाढ़ी हो जाय तो समझना चाहिये कि यह ठीक हो गयी है और अब आँच अलग कर लेनी चाहिये।

क्रोम स्याहीकी टिकियाँ

(१) लागवुडका सत	५००
क्रोम पोटाश	१
फिटकरी	१०
गोंद	२०

पानीकी उतनी ही मात्रा डालनी चाहिये जितनी मिलानी आवश्यक हो। यह बेंगनी स्याही है।

अथवा (२) लागवुडका सत	१००
क्रोम पोटाश	१
गोंद	१०
इंडिगो कार्माइन	२०

यह बहुत सुन्दर स्याही है जो आरंभमें नीली पर बादको चटक काली हो जाती है।

लीथोकी स्याहियाँ

छापाखानेकी कलामें लीथोकी छपाई भी विशेष महत्व रखती है। इसे पत्थरकी छपाई भी कहते हैं। चिकने पत्थरों-पर या तो विशेष स्याहियोंसे अक्षर लिखे जाते हैं, अथवा बहुधा एक विशेष कागजपर पहले अक्षर लिखे जाते हैं

और फिर ये उलटकर पत्थरपर जमाये जाते हैं, इस विधिको चर्बा उठाना कहते हैं। लीथोकी ये स्याहियाँ इस प्रकारकी होती हैं कि उनपर हलके अम्लोंका बिलकुल प्रभाव नहीं पड़ता है। अम्ल पत्थरको तो काट देता है। इस प्रकार पत्थरपर जिस स्थानपर अक्षर नहीं लिखे होते वहाँ तो अम्लका प्रभाव पड़ता है और जहाँपर अक्षर लिखे होते हैं, वह स्थान अम्लकी प्रक्रियाके पश्चात् पूर्ववत् उठा रह जाता है। बेलनसे ये ऊँचे उठे स्थल स्याही पकड़ लेते हैं और छापनेपर ये अक्षर कागजपर उतर आते हैं।

लीथोके इस कामकी स्याहियाँ और पेन्सिलें दोनों बनायी जाती हैं। इनका मसाला अधिकतर चर्बी-युक्त (मेटस् द्रव्यों) पदार्थोंका बना होता है, जिनमें रोजिन और मोमकी भी मिलावट होती है। लीथोकी एक स्याहीका नुसखा इस प्रकार है—

पानी	१४०
लाख	१००
मैस्टिक गोंद	३०
रोजिन	१०
टैलो साबुन	७०
कारिख	३२

इसके तैयार करनेके लिये ताँबेकी देगची और ताँबेकी कड़ाही चाहिये। कड़ाहीमें मोमके अतिरिक्त सभी चीजें मिलाकर पिघलायी जाती हैं और चमचे या करछुलसे अच्छी तरह टारकर एक-रस कर ली जाती है। फिर मोमको अलग एक बड़े बर्तन (देगची) में इतना गरम करते हैं कि वह जलनेके निकट हो जाता है। मोममें आग लगा दी जाती है और कड़ाहीका गरम मिश्रण अब इस देगचीमें उंडेल दिया जाता है। जैसे ही सब मिश्रण देगचीमें गिर जावे, ढकनसे इसे बन्द कर देते हैं और इसकी आग बुझ जाती है। आंचको अब धीमा कर देते हैं, और फिर गले हुए पदार्थको धातुके सांचोंमें ढाल लिया जाता है। इस प्रकार लीथोकी स्याही तैयार हो जाती है।

लीथोकी इस स्याहीको गरम पानीके साथ घिसकर पतला कर लेते हैं और फिर लिखनेके काममें लाते हैं। एक बारकी घिसी स्याही कई दिनतक लिखनेके काममें नहीं लायी जा सकती क्योंकि सूखनेपर इसमें ढोके पड़ जाते हैं और फिर इसका एकरस घुलना कठिन हो जाता है। हर बार लिखनेके लिये नयी स्याही घिसना ही अच्छा होता है।

लीथोकी फ्रेंच स्याही

शेलाक लाख	३०
मैस्टिक गोंद	६
पोटाश कर्बनेत	६
टैलो (चर्बी) का सख्त साबुन	६
कारिख	२

इसमें साबुनको शेलाक और मैस्टिकके साथ पिघलाओ। इसमें फिर पोटाश कर्बनेत और कारिख खूब घोंट दो। जब सब मसाला एकरस हो जाय, सांचोंमें इसे ढाल लो।

लीथोकी वियना स्याही (Vienna ink)

मोम	१८
साबुन	१८
शेलाक	१४
रोजिन	६
टैलो	१०
इंडिया रबर	२
तारपीनका तैल	५
काजल	६

इनमें पहले पांचको साथ-साथ गला लो, और इतना गरम करो कि इसमें बुदबुदे निकलने लगें। तारपीनके तैलमें रबर घोल लो और फिर काजल और रबरके इस घोलको पूर्वोक्त गरम गले हुए मिश्रणमें अच्छी तरह मिला दो। जब तारपीनकी गन्ध आना बन्द हो जाय, ठंढा करके इसकी बट्टियां ढाल लो।

लीथोकी म्यूनिच स्याही

मोम	२०
टैलो	१०
शेलाक	२०
साबुन	२०
सोडा कार्ब	३०
काजल	१०

सबको मिलाकर एक साथ गलाओ और भली प्रकार चलाओ।

लीथोकी खड़िया (Chalk)

लीथोके पत्थरपर लिखनेके लिये लीथोकी स्याहीकी पैन्सिलसी बनाली जा सकती है। यह इतनी कठोर होनी चाहिये कि पैंसिलके समान इसमें पतली नोक निकाली जा सके और दूसरी बात यह है कि धीमेंसे लिखनेमें ही इससे पत्थरपर ठीक अक्षर उतर आवें। हम इसके तैयार करनेका एक नुसखा यहाँ देते हैं, पर इस स्याहीके तैयार करनेमें अनुभवकी बहुत आवश्यकता है।

लंडन बत्ती

मोम	३०
टैलो	२५
साबुन	२०
शैलाक	१५
काजल	६

इन सबको एक साथ गरम करो और इतना गरम करो कि यह आग पकड़ सके। इसे फिर थोड़ी देर जलने देते हैं। कितनी देर जलने देना चाहिये यह अनुभवसे मालूम होगा। बीच-बीचमें आग बुझाकर (ढक्कन बन्द करनेपर आग बुझ जावेगी) यह बात देखी जा सकती है कि इस मिश्रणकी बत्तीसे ठीक-ठीक लिखा जा सकता है या नहीं। अगर इसमें उपयुक्त कठोरता न आयी हो और पत्थर-पर इससे काली रेखा आसानीसे स्पष्ट न खिंचती हो तो इसमें फिर आग लगायी जा सकती है। कुछ मिनटों और जल लेने देनेके उपरान्त मिश्रणकी फिर जांच की जा सकती है। बादको इसकी पेंसिलें ३ इंचके लगभग लम्बी बनायी जा सकती हैं।

लीथोकी छपाईके अंग

लीथोके छपाईके मुख्य अङ्ग ये हैं—

(१) लीथोकी लिखाईके लिये कागज तैयार करना।

(२) लिखाईके लिये पत्थर तैयार करना।

(३) कागजपरके अक्षरोंको पत्थरपर उतारना।

(४) पत्थरपर अंकित इन अक्षरोंसे फिर छपाई करना।

(५) छपनेके बाद इन अक्षरोंको पत्थरपरसे फिर मिटाना।

इनका हम यहाँ बहुत सूक्ष्म विवरण देंगे। शेष विस्तारकी बातें किसी लीथोके प्रेसमें जाकर देखी जा सकती हैं।

लीथोकी लिखाईका कागज

मामूली कागज जिसके एक ओर कुछ रेखाएँ छपी होती हैं, इस कामके लिये लिया जाता है। अब इसपर पीले रंगका एक मसाला लगाया जाता है। कुछ लोग तो अंडेकी जरदी इसमें काम लाते हैं। पर इस मसालेको बनानेकी एक विधि इस प्रकार है। अरारोटको पानीमें पकाओ और इसमें इसिंग ग्लास (सोडा सिलीकेट) अलग पकाकर मिला दो। अब इसमें 'असारे रेवन' मिला दो। असारे-रेवन बाजारमें ६–७ रुपये सेर मिलता है जिसका रंग हलदी या मनःशिला-के समान गहरा पीला होता है। इसके पकानेमें अनुभव बहुत काम देता है, और इस मसालेपर ही पत्थरकी लिखाईका अच्छा बुरा होना बहुत कुछ निर्भर है। पानीकी मात्रा भी यथेच्छ ठीक की जा सकती है। अब स्पन्जसे इस मसालेको कागजपर लगाकर सुखा लो। बस लीथोका कागज तैयार हो गया। कातिब लोग इसी कागजपर अक्षर लिखते हैं। इन लिखनेवाले कातिबोंकी कलमें बहुत सधी होती हैं और इनको इतना अच्छा अभ्यास होता है कि ये घंटों लगातार लिखते रहते हैं, और तारीफ यह कि इनके सब अक्षर एकसे आते हैं। इन्हें उलटा और सीधा दोनों ही लिखनेका अभ्यास होता है।

लीथोका पत्थर

लीथोके पत्थरमें भी एक विशेषता होती है। यह पत्थर पानी बहुत सोख सकता है और पानी सोख लेनेपर स्याही पत्थरपर जमकर कड़ी बैठ जाती है। खेदकी बात है कि यह पत्थर हमारे देशमें विलायतसे तैयार होकर आता है और हमारे देशवासियोंका ध्यान इसके तैयार करनेकी ओर नहीं गया है। इस पत्थरके ऊपर पानी और बालू बिछा देते हैं और ऊपरसे एक दूसरा पत्थर और रख देते हैं। ऊपरवाले पत्थरको नीचेवाले पत्थरपर जोरोंसे रगड़ते हैं। इस प्रकारसे पत्थर चिकने पड़ जाते हैं। फिर इनपर पत्थरकी पालिश भी चढ़ाते हैं। यह पालिश भी घिसे हुए पत्थरका चूर्ण होती है। इस तरह लीथोका पत्थर तैयार हो गया।

बहुतसे प्रेसोंमें पत्थरोंके स्थानपर जस्ताके प्लेट काममें लाये जाते हैं।

पत्थरपर लेखका उतारना

लीथोकी जिस ओटोग्राफ स्याहीका वर्णन हम नीचे करेंगे उसको गरम पानीके साथ हलका घिस लेते हैं, और फिर इस स्याहीसे कातिब लोग लिखाई करते हैं। यह स्याही हमारे देशमें खास-खास जगह ही बनती है, और लीथो प्रेसवालोंको इसका ज्ञान नहीं है। कानपुरमें श्री औलादअली फटकापुरके यहाँ यह बनायी जाती है।

दूरकी आँचसे पत्थरको थोड़ा-सा गरम कर देते हैं और फिर पीले कागजपर जिसपर लेख लिखा हुआ है, इस पत्थरपर उलटकर रख देते हैं और थोड़ा-सा पानी भी डाल देते हैं। फिर विशेष 'प्रेस-मशीन' द्वारा जोरोंका दबाव धीरे-धीरे इसपर डाला जाता है। इस विधिको चर्बा उठाना कहा जाता है। बार बार दबानेपर कागजपर लिखी हुई स्याही पत्थरपर जम जाती है। ऊपरका कागज पानी और दबावद्वारा गल जाता है जिसे पोंछकर अलग कर देते हैं। लीथोकी स्याहीमें ही यह विशेष गुण है कि वह पत्थरपर जोरोंसे चिपटकर बैठ जाती है।

ऐसा भी होता है कि कभी-कभी कुछ अक्षर साफ नहीं उठते हैं। इनको छेनीसे घिसकर अलग कर दिया जाता है और इनके स्थानपर कातिब लोग उलटी लिपिमें उसी स्याही-से फिर लिख देते हैं। इस प्रकार संशोधित होकर पत्थर छपाईके योग्य तैयार हो जाता है।

लीथोकी छपाई करना

लीथोकी पत्थरवाली स्याहीमें छापेकी स्याहीको पकड़ने-का विशेष गुण होता है। छापेकी मशीनमें जिस प्रकार टाइपके फर्मोंका मैटर कसा जाता है उसी प्रकार प्रत्येक पत्थरको एक तैयार फर्मा समझना चाहिये। जहाँपर लीथो-वाली स्याही लगी हुई है, उसी स्थानपर छापेकी स्याही भी लगेगी और शेष पत्थरपर स्याही नहीं लगने पाती है। और जिस प्रकार चित्रोंके ब्लाकोंकी छपाई होती है, उसी प्रकार पत्थरपर लिखे हुए लेखकी भी छपाई हो जाती है।

पत्थर परसे लेखका मिटाना

एक पत्थर ही बारबार काममें लाया जा सकता है, पर इस परसे अक्षरोंको मिटानेमें काफी श्रम उठाना पड़ता है। इसकी विधि यह है कि इसपर पानी और बालू लगा-कर ऊपर दूसरे पत्थरको रखकर जोरोंसे घोटाई करना। प्रतिबारके लेखमें पत्थरपरसे कागजके बराबर मोटी तह घिसकर अलग हो जाती है, और धीरे-धीरे पत्थर पतले पड़ते जाते हैं।

लीथोके कागज बनानेकी अन्य विधि

यहाँ हम एक और अति विश्वसनीय विधि लीथोकी लिखाईके योग्य कागज बनानेकी देंगे।

एक मजबूत और पतला बिना चिकनाया हुआ कागज लकड़ीके एक तख्तेपर बिछाओ। और इसपर १०% जिले-टिनका घोल फैला दो। तख्तेको थोड़ासा टेढ़ा करके जिले-टिनका घोल अब तख्तेपरसे अलग कर लो। अब इसपर ५% टैनिनका घोल बिछा दो और फिर टेढ़ा करके टैनिनके घोलको अलग कर दो। कागजको अब सुखा डालो। इन दोनों बातोंको फिर दोबारा और तिबारा दोहरा लो। बस अति पारदर्शक बहुत सुन्दर कागज तैयार हो जायगा। इस प्रकार जो लिखाई की जायगी, वह पत्थरपर बहुत स्वच्छ उतारी जा सकेगी।

पत्थरपर उतारनेके लिये पूर्ववत् कागजको पत्थरपर उलटकर बिछाओ और प्रेसमशीनमें कई बार जोरोंसे दबाओ। कई बार दबानेपर ही अक्षर पत्थरपर ठीक जम पावेंगे।

लीथोके कामकी ओटोग्राफ स्याही

लीथोकी जिन स्याहियोंका हमने ऊपर उल्लेख किया था उनका गुण तो यह है कि अम्लका उनपर प्रभाव नहीं पड़ता है, अतः पत्थरपर उतार लेनेपर जब हलके अम्लसे धोया जायगा तो पत्थर उसी स्थानपर प्रभावित हो जायगा जहाँपर स्याही न होगी। अम्लसे प्रक्रिया करनेपर खुरदरा पत्थर रह जायगा जिसके अक्षर उभरे रहेंगे। ये उभरे हुए अक्षर छपाईकी स्याही पकड़ेंगे और छपाईका काम किया जा सकेगा।

अब हम ऐसी स्याहीका वर्णन करेंगे जिनमें स्वयं छापेकी स्याहीके पकड़नेका गुण होता है। इनके उपयोग करनेपर पत्थरको अम्लद्वारा प्रभावित करनेकी आवश्यकता नहीं होती है। इस स्याहीको स्व-लेखक स्याही (ओटो-ग्राफिक स्याही) कहते हैं। यह भी लीथोग्राफिक स्याहीके

क्षयरोगका सहज इलाज

सूर्य्यकी किरणोंसे कैसे इलाज करें ?

[ले०—डा० कमलाप्रसाद, हजारीबाग]

किरणोंको ग्रहण करनेकी रीति

इसके लिये एक मोटे कपड़ेके पर्देकी आवश्यकता होती है। यह पर्दा वैसा ही हो जैसे कि रंगशालाओंके पर्दे, अर्थात् चर्खियों और रस्सियोंके सहारे यह इच्छानुसार कम वा अधिक उठाया या गिराया जा सके। इसकी ऊँचाई मनुष्यकी ऊँचाईसे कुछ अधिक तथा चौड़ाई भी यथेष्ट हो। इसको एक ऐसे स्थानमें खड़ा करना चाहिये जहाँ धूप अच्छी तरह आती हो। यह स्थान एकदम एकान्त हो, अथवा किसी प्रकार घिरा हुआ हो जिसमें किरण ग्रहण करनेवाला व्यक्ति नग्नावस्थामें (यदि आवश्यकता हो) कुछ कालतक ठहर सकता है। स्थितिके अनुसार पर्दा घरके आँगनमें, खुली छतपर अथवा टिनसे घिरे एक स्थानमें खड़ा किया जा सकता है। इसको खड़ा करनेमें यह भी देखना होगा कि किसी समय सूर्यकी किरणें इस (पर्दे) के एक ओर तो पूर्णतः पड़ें किन्तु दूसरी ओर एकदम नहीं पड़ें। (यदि पर्दा खड़ा करनेमें असुविधा होती हो, तो इसके बिना भी काम चल सकता है, ध्यान केवल इस बातका रखना होगा कि आवश्यकतासे अधिक अंशोंपर सूर्य्यकी किरणें नहीं पड़ने पावें।) पर्देके पीछे (जिधर सूर्यकी किरणें नहीं पड़ती हों) एक तिपाईपर बैठा हुआ रोगी बहुत सरलतापूर्वक स्वयं पर्देको ऊपर वा नीचे कर इच्छानुसार पैर वा उसके ऊपरी भागद्वारा किरणोंको ग्रहण कर सकता है।

मात्रा कितनी हो ?

वास्तवमें यह चिकित्सा बाहरसे जितनी सरल मालूम होती है उतनी सरल नहीं है। अधिक मात्रामें सूर्य्य-किरणोंको ग्रहण करनेपर भयङ्कर बुराइयाँ हो सकती हैं। अस्तु, यह आवश्यक है कि किसी नियमित रीतिसे इनका सेवन किया जाय। इस चिकित्साके आधुनिक जन्मदाता रौलियरने जो मात्राएँ निर्धारित की हैं वे ये हैं—

प्रथम दिन—(Ankles) टखनेके नीचे दोनों पाँव धूपमें खुले रहें, और यह भी केवल ५ मिनटतक।

दूसरे दिन—टखनेके निम्न भाग १० मिनटतक और टखनेसे लेकर घुटनेतक ५ मिनटतक धूपमें रहें।

तीसरे दिन—टखनेतक १५ मिनट, घुटनेतक १० मिनट और कमरतक ५ मिनट किरण ग्रहण करना चाहिये।

चौथे दिन—टखनेतक २० मिनट, घुटनेतक १५ मिनट, कमरतक १० मिनट और नाभीतक ५ मिनट धूपमें रहें।

समान है। कागजपरसे पत्थरपर यह पूर्ववत् ही उतारी जा सकती है। स्याहीका एक सर्वोत्तम नुसखा इस प्रकार है—

मोम	११०
टैलो	३०
साबुन	११०
शेलाक	५०
मैस्टिक गोंद	४०
रोज़िन	१०
कारिख	३०
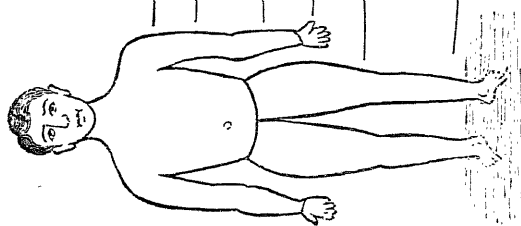
लोहेके बर्तनमें इन सबको मिलाकर गलाओ। तापक्रमको इतना बढ़ाकर गरम करो कि दुर्गन्धमय वाष्पें जोरोंसे निकलने लगें। इस पदार्थको फिर साँचोंमें ढाल लो।

ओटोग्राफिक स्याहीके अनेक नुसखे प्रचलित हैं इन सबमें मोम, चर्बी, गोंद, साबुन, कारिख, शेलाक आदिकी भिन्न-भिन्न मात्राएँ बतायी गयी हैं।

इस प्रकार प्रत्येक दिन ऊपरकी ओर पाँच-पाँच मिनट-तक बढ़ाते जाना होगा, किन्तु प्रायः तीन सप्ताहतक नाभीसे ऊपर बढ़नेकी अनुमति नहीं दी जाती, और अन्तमें सारी देह (सिर और गलेको छोड़कर) दोसे चार घन्टों-तक धूपमें रहती है। (चित्रद्वारा ये मात्राएँ स्पष्ट हो जाती हैं)

क्रमशः					मिनट
प्रथम दिन					५
दूसरा दिन				५	१०
तीसरा दिन			५	१०	१५
चौथा दिन		५	१०	१५	२०
पाँचवाँ दिन	५	१०	१५	२०	२५
छठा दिन	१०	१५	२०	२५	३०
सातवाँ दिन	१५	२०	२५	३०	३५

(इसके ऊपर ३ सप्ताहके पूर्व बढ़ाना उचित नहीं)

सिर या गलेके क्षतों या व्रणोंमें किरण-प्रवेशकी विधि

यदि सिर या गलेके क्षतों या व्रणोंको लाभ पहुँचाना ध्येय हो, तो पहले शरीरके अन्य सभी अंशोंको किरणसह्य बना लेना चाहिये। तब इन क्षतोंमें किरण प्रवेश करा सकते हैं।

भीषण प्रतिक्रियाओंसे बचना

अत्यधिक ज्वर, हृदयका स्पन्दनाधिक्य, श्वासकष्ट, सिरदर्द, अनिद्रा, अग्निमांद्य, शिथिलता इत्यादि। ये प्रतिक्रियाएँ श्वेतचर्म व्यक्तियोंमें और भी उग्र रूप धारण करती हैं, अस्तु, उन लोगोंकी चिकित्सा करते समय अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है।

प्रतिक्रियाओंसे कब भय नहीं रहता ?

रंजक पदार्थोंके प्रकट हो जानेपर प्रतिक्रियाओंका भय नहीं रहता। सूर्य-रश्मियोंकी मात्राएँ ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती हैं, रोगके लक्षण त्यों-त्यों कम होते जाते हैं और सर्व प्रथम पीड़ाएँ शान्त होने लगती हैं।

यक्ष्मा-जनित व्रणोंकी चिकित्सामें सावधानी

यक्ष्मा-जनित व्रणोंकी चिकित्सा करते समय यह आवश्यक है कि ये किरणें उनमें प्रवेश करें अस्तु, इन व्रणोंपरसे पट्टियाँ हटाकर इन्हें तारके बारीक जालसे ढँके रखना उचित है। इस प्रकार बाहरी आघातोंसे इनकी रक्षा होगी। अथच सूर्य-किरणें बिना रुकावट इनमें प्रवेश कर सकेंगी

सूर्य-चिकित्सा किस-किस प्रकारके यक्ष्मा-रोगियोंके लिये उपयुक्त है ?

(Exudative Pulmonary Tuberculosis)

केवल द्रवयुक्त फुफ्फुस-यक्ष्माको छोड़कर अन्य सभी अंगोंके यक्ष्माकी चिकित्सा इस रीतिसे की जा सकती है। भिन्न-भिन्न अवयवोंकी चिकित्साके लिये भिन्न-भिन्न रीतियोंका अवलम्बन करना उचित है।

मेरुदण्डके यक्ष्माकी चिकित्सा

ऐसे रोगी जिनकी केवल अस्थियाँ घिस गयी हों

रोगीको सदैव पीठके बल लिटाकर रखा जाता है। कड़े गद्देके विस्तरकी आवश्यकता होती है, और लेटे हुए इसी हालतमें उन्हें सूर्य रश्मियोंका सेवन कराया जाता है।

ऐसे रोगी जिनकी मांस-पेशियाँ भी क्षत-ग्रस्त हो जाती हैं

रोगीको मुलायम गद्देपर सुलाया जाता है। किन्तु उपर्युक्त दोनों ही प्रकारके रोगियोंको बैठने या चलने नहीं दिया जाता है क्योंकि अविरल विश्राम किसी प्रकारके यक्ष्माकी चिकित्साका मूल मन्त्र है। जब रोगीकी पीड़ा एकदम बन्द हो जाती है, तब उसे बड़ी सावधानीसे पेटके बल लिटा दिया जाता है, और आवश्यकतानुसार छाती तथा हाथोंके नीचे या अन्य स्थानोंमें भी तकिये रख दिये

जाते हैं, जिससे उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं हो। इस प्रकार लिटाये जानेपर रोगीको बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं—

सारा मेरुदण्ड सूर्य्य किरणोंको ग्रहण कर सकता है।

मेरुदण्डका कूबड़ापन दूर हो जाता है, तथा मांस-पेशियोंको सहायता मिलती है।

इस प्रकारकी चिकित्सा तबतक की जाती है, जबतक रोगी पूर्णतः रोग-मुक्त नहीं हो जाता।

घुटने, टखने, स्कंध, कलाई और उँगलियोंकी संधियोंके यक्ष्माकी सूर्य-चिकित्सा

यह आवश्यक है कि ये संधियाँ खुली रहें, किन्तु निश्चल रहें। अस्तु, क्षत-संधिके ऊपर और नीचे, पटरियों तथा पट्टियोंकी सहायतासे इस प्रकार बाँध देते हैं कि क्षत-स्थान खुला एवं अन्य अंगोंके संचालित होनेपर भी निश्चल रहे। इसी अवस्थामें सूर्य-किरणोंका व्यवहार किया जाता है। किरणें पाँवसे ही आरम्भ कर ऊपरकी ओर दिखायी जाती हैं।

यक्ष्मा-कृत खुले व्रणोंकी चिकित्सा

(Open Tubercular Sinuses)

इस प्रकारके रोगियोंका भविष्य प्रायः अच्छा नहीं होता। अस्तु, यक्ष्माकृत व्रणोंका मुँह खोल देना कदापि उचित नहीं है। यदि ऐसे व्रणोंमें पीब आ गया हो तो उसे सुईसे निकाल देना उचित है। सूर्य किरणोंको इन व्रणोंमें प्रत्यक्षरूपसे पड़ना चाहिये। चिकित्साके उपरान्त इन व्रणोंको पतले कपड़े वा महीन जालियोंसे ढँक देना चाहिये जिससे इनमें धूल इत्यादि नहीं पड़ने पावें, किन्तु इन्हें पट्टियोंसे जकड़कर रखना कदापि उचित नहीं है।

परिविस्तृत कला और उससे संलग्न अवयव

इन अवयवोंकी चिकित्सा सूर्य-किरणोंद्वारा बहुत ही लाभदायक होती है किन्तु किरणोंकी मात्राएँ बहुत क्रमानुसार बढ़नी चाहिये अन्यथा यह चिकित्सा सांघातिक हो जाती है।

लसीका ग्रन्थियाँ

ग्रन्थियोंको काटकर निकाल देना अनुचित होता है, अस्तु, उन्हें शरीरके भीतर रहने देकर ही सूर्य-किरण-प्रवेश कराना उचित है।

चिकित्साके फलस्वरूप—

इन ग्रन्थियोंका यक्ष्मा-जनित प्रदाह शांत हो जाता है।

क्षत-स्थानमें खटिक जमने लगता है।

कड़ी, बृहदाकार ग्रन्थियाँ विलीन हो जाती हैं।

ग्रंथियोंके मृतांश स्वयं बाहर निकल जाते हैं।

जिन ग्रन्थियोंमें खुले व्रण (open sinuses) हो जाते हैं उनमेंसे भी मृतांश बाहर निकल आते हैं और एक छोटा-सा (scar) क्षत-चिन्हमात्र रह जाता है।

विस्तृत यक्ष्मा या अन्य उपद्रवोंके होनेका भय नहीं रह जाता शरीरतलसे दूरस्थ ग्रन्थियाँ भी लाभान्वित होती हैं।

ग्रंथियोंयुक्त व्रणोंकी चिकित्सा

जिन ग्रन्थियोंमें व्रण हो जाते हैं उन्हें तारकी जालियोंसे ढँके रखना उचित है। इन क्षतोंमें किसी प्रकारकी दवाएँ लगाना या इनपर शल्य-चिकित्सा (operation) करना सर्वथा अनुचित है। केवल सूर्य-किरणें ही इन्हें स्वस्थ कर देती हैं।

श्लैष्मिक कला एवं त्वचाका यक्ष्मा

इनके लिये भी सूर्य-रश्मियाँ बहुत उपयोगी होती हैं किन्तु इसके साथ-साथ अन्य औषधियोंका व्यवहार अनुचित है।

वृक्क-यक्ष्मा

इसमें सूर्य-किरणोंका प्रभाव लाभदायक नहीं होता। इसका कारण यह नहीं है कि इस रोगमें ये किरणें निःशक्त हो जाती हैं, प्रत्युत बात यह है कि रोग जबतक वृक्कपर आक्रमण करता, उसके बहुत पहले मूत्र-प्रणाली (Ureter), वस्ति (Bladder) इत्यादिका सर्वनाश कर डालता है, अस्तु उस समय जब वृक्क-यक्ष्माके लक्षण उपस्थित होते हैं, रोग इतना बढ़ जाता है कि इसकी कोई चिकित्सा संभव नहीं रह जाती। अन्यथा प्रारम्भिक वृक्क-यक्ष्मामें सूर्य्य-किरणोंद्वारा निस्सन्देह लाभ पहुँचता है।

अंड एवं उपांडोंका यक्ष्मा

सूर्यकिरणोंद्वारा इनकी चिकित्सामें बहुत सहायता मिलती है, और रोगी बहुधा नपुंसक होनेसे बचा लिये जा सकते हैं।

फुफ्फुस-यक्ष्मा

अन्य अवयवोंके यक्ष्माके साथ-साथ फुफ्फुस भी न्यूनाधिक अवश्य ही आक्रांत रहता है, किन्तु यदि फुफ्फुस अधिक क्षतग्रस्त नहीं हुआ तो सूर्यकिरणोंद्वारा चिकित्सा हानिकारक नहीं होती प्रत्युत फुफ्फुसका यक्ष्माकेन्द्र भी रोगमुक्त होने लगता है।

इसके अतिरिक्त फुफ्फुसका सौत्रिक यक्ष्मा (Fibrinous Tuberculosis of the Lungs) भी इस चिकित्साद्वारा लाभान्वित होता है।

सूर्य-चिकित्सा कब हानिकर होगी ?

किन्तु ऐसे फुफ्फुस-यक्ष्मामें जिसमें द्रव निर्गत होता है—जैसे, यक्ष्माकृत नूतन प्रदाह इत्यादि—सूर्य्य-किरणोंसे भयङ्कर हानियाँ होती हैं। अधिक ज्वरकी अवस्थामें भी यह चिकित्सा हानिकारक होती है। विपक्षमें यक्ष्माकृत फुफ्फुसावरण प्रदाह—द्रवयुक्त वा शुष्क—इस चिकित्सासे अवश्य ही शांत हो जाता है।

निम्नलिखित अवस्थाओंमें भी इससे हानि

हृदयके कतिपय रोगोंमें।

वृक्क प्रदाहमें।

दोनों वृक्कके यक्ष्माक्रमणमें।

नूतन द्रवयुक्त फुफ्फुसयक्ष्मामें।

कुछ भयजनक अवस्थाओंमें सतर्कता

वृद्धावस्था—किरणोंकी मात्राएँ अधिक नहीं होने पावें।

सौत्रिक फुफ्फुस-यक्ष्मा।

ज्वर यदि अधिक न हो।

पराकासनी किरणोंके प्रभावको बढ़ाने-वाली औषधियाँ

अण्डकोष वा डिम्बकोषका सार।

यकृत सार।

वैक्सिन।

कौड मछलीका तेल।

पर्ण हरिन।

खटिक क्लोरिद।

खटिक दुग्धेत।

ताल (यक्ष्मामें)।

स्वर्ण प्रस्तुत औषधियाँ (यक्ष्मामें)।

कुनैन।

नैल।

जेन्सियन वायलेट।

इयोसिन।

किरणें पड़नेवाले स्थानमें किरणोंको प्रभावोत्पादक औषधियाँ

जिस स्थानमें किरणें पड़ती हैं, उस स्थानमें निम्नलिखित औषधियोंका लेप कर देनेपर, किरणोंका प्रभाव अधिक होता है—

ताम्र प्रस्तुत मरहम (विशेषकर चर्म-यक्ष्मामें)।

रजत नत्रेत।

सेंधा नमक।

इयोसिन।

जेन्सियन वायलेट।

मेथिलिन नील इत्यादि।

सूर्य-चिकित्सा और आहार

आहार-पथद्वारा ग्रहण किये गये भोजनके परिमाण और त्वचाके शोषण (Absorption) कार्यमें घनिष्ट सम्बन्ध है। ज्यों-ज्यों पहलेकी वृद्धि होती है, त्यों-त्यों दूसरेका ह्रास। उष्ण देशवासियोंके साधारण आहारसे उनकी निरन्तर नग्नावस्थाको ध्यानमें रखकर यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सूर्यके तीव्र आलोकमें निवास करते हुए ये लोग वायुसे प्राप्त पदार्थोंका शीघ्र शोषण कर अच्छा लाभ उठाते हैं।

अपनी प्राकृतिक अवस्थामें छोड़ दी जानेपर त्वचाकी ग्रहण-शक्तियाँ प्रखर हो उठती हैं, तथा (Vital Energy) जीवनीशक्तिकी वृद्धि होने लगती है। अस्तु, सूर्य-किरणोंको सेवन करते समय यह उचित है कि आहार बहुत कम कर दिया जाय, विशेषकर मांस-भोजन तो छोड़ देना ही उचित है; शाक-सब्जियाँ और नाज यथेष्ट हैं, तथा फल बहुत आवश्यक हैं। शराब और तम्बाकू भी इस चिकित्साके साथ नहीं चल सकते अस्तु, त्याज्य हैं।

वास्तवमें यक्ष्मा जैसे रोगसे मुक्त होनेका इतना सुलभ उपाय और नहीं हो सकता, उचित यह है कि प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन नहीं किया जाय तथा कृत्रिमताको छोड़ दिया जाय।

वेदोंका काल तीन लाख बरस पहले

एक भारतीय ज्योतिषीकी क्रान्तिकारी खोज

[ले०—पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस्-सी०, एल्० टी०, विशारद, हेडमास्टर गवर्नमेंट हाइस्कूल, बलिया]

वेदकाल-निर्णय*

वेद हिन्दुओंके सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। अधिकांश हिन्दू इनको अनादि और अपौरुषेय मानते हैं और इसके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं समझते। परन्तु जो लोग बिना प्रमाणके एक पग भी आगे नहीं बढ़ना चाहते उनकी दृष्टिमें वेदोंका काल छ हजार वर्षसे अधिक प्राचीन नहीं हो सकता। पचास वर्ष पहलेके पाश्चात्य विद्वान् तो वेदोंकी प्राचीनताको ईसासे दो हजार वर्षसे अधिक पूर्व नहीं मानते थे परन्तु जर्मनीके विद्वान् जैकोबी तथा भारतवर्षके लोकमान्य तिलक, दीक्षित आदिने ज्योतिषके आधारपर यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की कि वेदोंका काल ईसासे चार हजार वर्षसे लेकर छ हजार वर्ष पूर्वतक माना जा सकता है। परन्तु डाक्टर थीबो आदि अनेक विद्वानोंने इस तर्कको कोरी कल्पना ही समझा था। पीछेके विद्वान् इस विषयपर अधिकाधिक विचार करते गये और सौभाग्य-की बात है कि इस विषयको इस दृष्टिसे संस्कृतके विद्वानोंने भी विचार करना आरंभ कर दिया जिसका फल यह है कि **पं० दीनानाथशास्त्री चुलैटने** इन्दौरसे 'वेदकाल निर्णय' नामक ग्रन्थको प्रकाशित किया है जिसमें वे बड़ी युक्तिके साथ सिद्ध करते हैं कि वेदोंका समय कई लाख वर्ष प्राचीन है। शास्त्रीजीने इस बातको ऐसी विद्वत्ताके साथ सिद्ध किया है कि उसे कोई एकाएक काट नहीं सकता। इस पुस्तकमें जिन युक्तियोंसे यह सिद्ध किया गया है कि वेदोंका काल कई लाख वर्ष पुराना है वे सब ज्योतिष-शास्त्रसे सम्बन्ध रखती हैं इसलिये पहले संक्षेपमें ज्योतिष-शास्त्रके कुछ पारिभाषिक शब्दोंकी व्याख्या करना आवश्यक है।

* वेदकाल-निर्णय, पूर्वखंड, ग्रन्थकर्ता पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैट, विद्याभूषण, ज्योतिषरत्न। प्रकाशक—इन्दौरकी हिन्दी साहित्य-समिति। मूल्य ४)।

नक्षत्र—सबसे पहले पाठकोंको हिन्दू ज्योतिषमें बतलाये हुए सत्ताईस या अट्ठाईस नक्षत्रोंके नाम यादकर लेने चाहिए क्योंकि इन्हींके आधारपर वेदकालका निर्णय किया गया है। इन नक्षत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले मासोंके नाम भी साथ ही साथ दे देना उचित जान पड़ता है क्योंकि हिन्दू नक्षत्र और मासोंका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

आजकल नक्षत्रोंका आरंभ अश्विनीसे माना जाता है। परन्तु प्राचीनकालमें कृत्तिकासे माना जाता था।

प्रचलित क्रम	प्राचीन क्रम	नक्षत्र	मास
३	१	कृत्तिका	कार्तिक
४	२	रोहिणी	
५	३	मृगशिरा	मार्गशीर्ष
६	४	आर्द्रा	
७	५	पुनर्वसु	पौष
८	६	पुष्य	
९	७	आश्लेषा	माघ
१०	८	मघा	
११	९	पूर्वाफाल्गुनी	फाल्गुन
१२	१०	उत्तरा फाल्गुनी	
१३	११	हस्त	
१४	१२	चित्रा	चैत्र
१५	१३	स्वाती	
१६	१४	विशाखा	वैशाख
१७	१५	अनुराधा	
१८	१६	ज्येष्ठा	ज्येष्ठ
१९	१७	मूल	
२०	१८	पूर्वाषाढ़	आषाढ़
२१	१९	उत्तराषाढ़	
२२	२०	अभिजित	
२३	२१	श्रवण	श्रावण
२४	२२	धनिष्ठा	

२५	२३	शतभिषा	भाद्रपद
२६	२४	पूर्वा भाद्रपद	
२७	२५	उत्तरा भाद्रपद	
२८	२६	रेवती	आश्विन
१	२७	अश्विनी	
२	२८	भरणी	

इन नक्षत्रों और मासोंके नाम इस विचारसे रखे गये हैं कि किसी मासकी पूर्णिमाकी रातको चन्द्रमा उस मासके सामनेवाले नक्षत्रोंके पास रहता है। जैसे कार्तिकी पूर्णिमाकी रातको चन्द्रमा या तो कृत्तिका नक्षत्रमें रहेगा या रोहिणीमें। इसी प्रकार मार्गशीर्ष पूर्णिमाकी रातको चन्द्रमा मृगशिरा या आर्द्रा नक्षत्रोंके पास और भाद्रपदी पूर्णिमाकी रातको शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद या उत्तराभाद्रपदके पास देख पड़ेगा। आजकल कई कारणोंसे इसमें थोड़ा-सा अन्तर देख पड़ता है अर्थात् कार्तिक मासकी पूर्णिमा कभी-कभी अश्विनीमें हो जाती है और वैशाखकी पूर्णिमा कभी-कभी स्वाती नक्षत्रमें। परन्तु मलमास पड़नेपर नक्षत्रों और मासोंका फिर मेल हो जाता है। नक्षत्रों और मासोंका यह सम्बन्ध जान लेनेपर यदि नक्षत्रोंकी पहचान हो तो मनुष्य सूर्यास्तके उपरान्त पूर्वमें उदय होनेवाले नक्षत्रोंको देखकर ही यह जान सकता कि कौन मास है क्योंकि सूर्यास्त हो जानेपर पूर्वमें उन्हीं नक्षत्रोंका उदय होता है जिनपर उस मासकी पूर्णमासीके समय चन्द्रमा आता है। नक्षत्रों और मासोंका ज्ञान हो जानेपर रात्रिकालमें समयका पता भी अटकलसे लगाया जा सकता है। जैसे कार्तिक मासमें सूर्यास्त कालके निकट कृत्तिका पूर्वमें देख पड़ती है, मध्य रात्रिमें ठीक ऊपर यामोत्तर वृत्तपर और सूर्योदयके निकट पच्छिममें क्षितिजके पास दिखाई पड़ती है।

नक्षत्रोंका पहचानना बहुत उपयोगी है इसलिये आकाशके तीन चित्र यहाँ दिये जाते हैं। यह चित्र विज्ञानके २६ वें भाग संख्या ५, ६ में सूर्य-सिद्धान्तके विज्ञान-भाष्यमें दिये गये थे परन्तु संभव है कि वह भाग नये पाठकोंके पास न हो इसलिये उन्हींके सुभीतेके लिये तथा वेदकालके निर्णय करनेमें सुगमता उत्पन्न करनेके लिये उनका फिर वर्णन करना आवश्यक समझ पड़ता है। यह चित्र मार्गशीर्ष, फाल्गुन और ज्येष्ठ मासोंके हैं क्योंकि इन मासोंके संध्याकालमें ८, १० बजेके लगभग आकाशमें तारोंकी वही स्थिति होगी जो इन चित्रोंमें दिखलाये गये हैं। इनमें केवल वही तारे नहीं दिये गये हैं जिनकी चर्चा ऊपर आयी है वरन् कुछ अन्य तारे भी हैं जिनकी चर्चा अर्वाचीन पाश्चात्य ज्योतिषमें बहुत आयी है। इन चित्रोंमें आकाशके वह दृश्य दिखलाये गये हैं जो २५ उत्तर अक्षांशपर स्थित स्थानोंपर ८ से १० बजे राततक देख पड़ते हैं। महीनेका हिसाब संक्रान्तिसे रखा गया है। २५ उत्तर अक्षांशसे २, ४ अंश उत्तर या दक्खिनके स्थानोंसे देखनेपर भी कोई विशेष अंतर नहीं देख पड़ेगा। काशी, प्रयाग, कलकत्ता, बम्बई, लखनऊके सिवा आगरा, दिल्ली आदि स्थानोंपर भी इन चित्रोंसे काम लिया जा सकता है।

चित्रमें जो गोल रेखा खींची है वह २५ उत्तर अक्षांशका क्षितिज है। इस रेखाके केन्द्रमें धनका एक चिह्न इस प्रकार + बना हुआ है। यह आकाशका वह विन्दु है जो ठीक सिरके ऊपर रहता है। इसे खस्वस्तिक या ख-मध्य कहते हैं। गोल रेखाके पास उत्तर, दक्खिन आदि दिशाएँ दिखलायी गयी हैं। उत्तरसे दक्खिनतक जो सीधी रेखा दीख पड़ती है वह यामोत्तर वृत्त है। इसीके बीचमें **खस्वस्तिक** है। और उत्तर विन्दुके पास उत्तरी आकाशीय ध्रुव है जहाँ ध्रुवतारा लिखा हुआ है। मध्याह्नकालमें सूर्य इसी वृत्तपर रहता है। पूरबसे पश्चिमतक जो कटी हुई टेढ़ी रेखा दिखायी गयी है वह **विषुववृत्त है**। इस वृत्तको काटती हुई एक दूसरी टेढ़ी रेखा भी खिंची हुई है जिसे **क्रान्तिवृत्त** कहते हैं। पृथ्वी वर्ष भरमें सूर्यके चारों ओर इसी मार्गपर चलती हुई उसकी पूरी परिक्रमा कर लेती है, इस कारण हम लोगोंको सूर्य भी इसी वृत्तपर चलता हुआ देख पड़ता है। यह मार्ग बड़े महत्वका है। चन्द्रमा, मंगल, बुध इत्यादि इसीके आसपास चलते हुए आकाशमें चक्कर लगाते हैं। जिस समय यह चित्र खींचे गये थे उस समय गुरु ग्रह कन्या राशिमें और मंगल वृश्चिक राशिमें थे इसलिये ज्येष्ठ मासमें तारोंके साथ उनके चित्र भी दिखाये गये हैं। परन्तु अब इन ग्रहोंकी वह स्थिति नहीं है। क्रान्तिवृत्तके २७ समान भाग किये गये हैं जो नक्षत्र कहलाते हैं। इन्हीं भागोंके आसपास उत्तर या दक्खिनकी ओर उन तारा-पुंजोंके चित्र हैं जिनसे

उन नक्षत्रोंकी पहचान होती है। किसी-किसी चित्रमें नक्षत्रोंके अंकोंके साथ-साथ उनके नाम भी दे दिये गये हैं। चित्रमें जितनी रेखाएँ खींची हुई हैं वे सब काल्पनिक हैं आकाशमें तो केवल तारे ही तारे देख पड़ते हैं।

चित्र देखनेकी रीति—जिधर मुँह करके आकाश-को देखना हो चित्रमें अंकित उसी दिशाको नीचे करके चित्रको खड़ाकर लीजिये। सबसे नीचे वह तारा है जो क्षितिजके पास देख पड़ेगा। नीचेसे केन्द्रतक जो-जो

मार्गशीर्ष मासका आकाशचित्र

तारे चित्रमें दिखाये गये हैं क्षितिजसे खस्वस्तिकतक वही तारे उसी-उसी क्रमसे देख पड़ेंगे।

यह उस समयका चित्र है जब नाक्षत्रकाल १ घंटा ३० मिनट होता है। यदि आप सौर पौषकी १ली तारीखको अथवा दिसम्बरकी १६वीं तारीखको सूर्यास्तके बाद ८ बजेके लगभग आकाश देखें तो इस चित्रमें दिखलाये हुए तारे और नक्षत्र सब देख पड़ेंगे। यदि इससे १ दिन बाद देखें तो यह स्थिति ४ मिनट पहले ही आ जाती है। इसी प्रकार प्रतिदिन चार-चार मिनटका अंतर पड़ते-पड़ते सौर पौषकी १६वीं तारीखको अथवा दिसम्बरकी ३१वीं तारीखको यह स्थिति ७ ही बजे देख पड़ने लगती है। इस चित्रकी सहायतासे आप श्रवणसे लेकर पुनर्वसुतकके तारोंको पहचान सकते हैं। इस चित्रमें वह स्थान अच्छी तरह देख लीजिये जहाँ विषुववृत्त और क्रान्तिवृत्त परस्पर मिलते हैं। वहाँ 'वसंत-विन्दु' लिखा हुआ है। इस स्थानपर सूर्य सायन मेष संक्रान्ति अथवा २१ मार्चको आता है। उस दिन; दिन-रात समान होते हैं। अबसे ६ मासतक सूर्य बराबर विषुववृत्तके उत्तर रहता है। इसी दिन उत्तरी ध्रुव-प्रदेशपर सूर्योदय होता है और वहाँके ६ मासवाले दिनका आरंभ होता है। जहाँ वसंतविन्दु है प्रायः वहींसे उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रका आरंभ होता है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि जब सूर्य उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें आता है तब उत्तरी ध्रुवप्रदेशका दिन आरंभ होता है। इस चित्रमें अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी, अग्रहायण पुनर्वसु आदि तारा-पुंजोंको अच्छी तरह समझ लीजिये। इन नक्षत्रोंकी चर्चा प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें बहुत हुई है और इन्हींकेद्वारा हमें प्राचीन कालका समय स्थिर करना है।

वसंत-विन्दु सदा एक स्थानपर नहीं रहता। यह तारोंके मध्य बराबर पीछेकी ओर अथवा पश्चिमकी ओर खसक रहा है। इसकी गति बड़ी मंद है। एक वर्षमें ५० विकलाके लगभग अथवा ७२ वर्षमें एक अंशके लगभग पीछे हटता है। एक नक्षत्रमें १३ अंश २० कला होते हैं इसलिये एक नक्षत्र चलनेमें वसंतसंपातको ९६० वर्ष लग जाते हैं। वेदोंमें इस बातकी चर्चा है कि किसी समय कृत्तिका नक्षत्रका तारासमूह विषुववृत्तपर था। यह तभी संभव था जब बसंतविन्दु रोहिणी नक्षत्रके आरंभमें था। केवल इतनी बातसे यह बतलाया जा सकता है कि वह कौन-सा समय था क्योंकि जिस समय वसंतविन्दु रोहिणी नक्षत्रके आरंभमें था उस समयसे लेकर अबतक जब कि वसंतविन्दु उत्तरा भाद्रपदके आरम्भमें है यह विन्दु ५ नक्षत्र चल चुका, इसलिये ५×९६० वर्ष अथवा प्रायः ४८०० वष बीत चुके।

इसी चित्रमें आपको धनिष्ठा नक्षत्र भी दिखाई पड़ेगा। यह भी बड़े महत्वका नक्षत्र है। वेदांग ज्योतिष कालमें धनिष्ठा नक्षत्रका बड़ा महत्व था। जब सूर्य इस नक्षत्रमें आता था तब उत्तरायणका* आरम्भ होता था। शास्त्रीजीने इसीके आधारपर यह सिद्ध किया है कि जिस समय यह अवस्था थी उसके बीते १९००० वर्षके लगभग हो गये। पाद-टिप्पणीमें जो श्लोक उद्धृत हैं उनमें श्रविष्ठा और वासव शब्द धनिष्ठा नक्षत्रके लिये आये हैं।

धनिष्ठासे और उत्तरकी ओर आपको अभिजित नक्षत्र उत्तर पच्छिम क्षतिजके पास ही देख पड़ेगा। इस समय काश्यपमंडल ध्रुवताराके ऊपर यामोत्तर वृत्तपर अंग्रेजीके एम् अक्षरके आकारका देख पड़ता है। सिरके ऊपर कुछ पच्छिमकी ओर खसके हुए भाद्रपदके तारे वर्गाकार बनाते हुए देख पड़ते हैं। पूरबकी ओर ब्रह्महृदय और प्रजापति तथा परशुमण्डलके तारे भी देख पड़ेंगे।

यह जिस समयका चित्र है उसका नाक्षत्रकाल ७ घंटा ३० मिनट है। सौर पौषकी १ ली तारीख अथवा १६ दिसम्बरको यदि २ बजे रातको देखा जाय तो आकाशके तारे इसी स्थितिमें देख पड़ेंगे। सौर फाल्गुनकी १ ली तारीखको अथवा फरवरीकी १५ तारीखके लगभग यह स्थिति १० बजे रातको ही देख पड़ेगी। इस चित्रमें अश्विनीसे लेकर हस्ततकके तारे दिखलाई पड़ते हैं। पुनर्वसुके तारे ठीक सिरके ऊपर देख पड़ते हैं। अश्विनी और पुनर्वसुके बीचके नक्षत्र सब पच्छिमकी ओर चले गये

---

* स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्युदक्॥ ६॥
प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघ श्रावणयोः सदा॥ ७॥

याजुष ज्योतिष

हैं। आग्रहायण मंडल दक्षिण-पश्चिम दिशामें देख पड़ता है। आकाशका सबसे चमकीला तारा लुब्धक यामोत्तर-वृत्तसे कुछ ही पच्छिम हटा हुआ कोई ४५ अंश क्षितिजसे समय दक्षिणकी ओर अगस्त्यके साथवाले कई तारे देख पड़ते हैं। ब्रह्महृदय और प्रजापतिके मण्डल उत्तर-पश्चिम दिशामें बहुत उँचाईपर देख पड़ते हैं। काश्यप मण्डलके
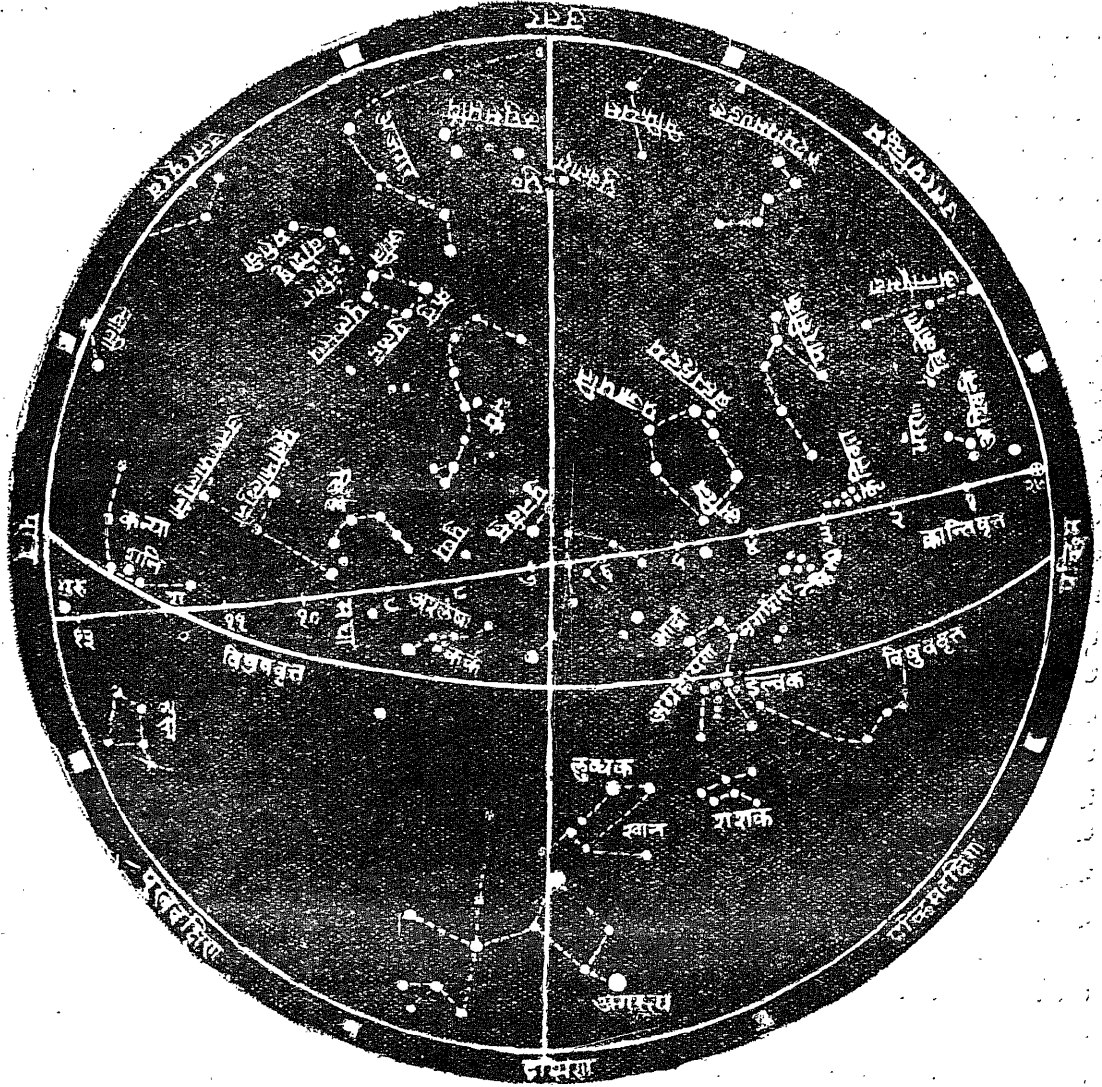
फाल्गुनमासका आकाश-चित्र

ऊपर देख पड़ता है। इसीके नीचे दक्षिण क्षितिजपर अगस्त्य नामक तारा भी देख पड़ता है। यह तारा चमकमें लुब्धकके नीचे है परन्तु अन्य सब तारोंसे ऊपर। इस तारे उत्तरसे कुछ पश्चिमकी ओर क्षितिजके पास दिखाई देते हैं। उत्तर-पूर्वके कोनेपर सप्तर्षि-मण्डलके सब तारे निकल आये हैं। पूर्व दिशामें सिंह राशिके तारे जिसमें

मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीके तारे हैं, पूरी तरह दिखाई पड़ते हैं। कन्या राशिके कुछ तारे भी निकल आये हैं। हस्तनक्षत्रके पाँचों तारे क्षितिजके पास देख पड़ते हैं। कन्या राशिका एक तारा चित्रा अभी ऊपर नहीं आया है परन्तु आध घंटेमें वह भी आ जायगा।

चित्रमें क्रान्तिवृत्त और विषुववृत्त १२ वें नक्षत्रमें फिर मिले हुए देख पड़ते हैं। उसके आगे पूर्वकी ओर क्रान्तिवृत्त विषुववृत्तसे दक्खिन हो जाता है। इसी विन्दुको शरदसम्पात या शरदविन्दु कहते हैं। जब सूर्य इस स्थानपर आता है तब फिर दिनरात समान हो जाते हैं। इसके बाद उत्तरी ध्रुवप्रदेशके लिये सूर्य ६ मासके लिये अस्त हो जाता है। अब ६ मासतक सूर्य विषुववृत्तसे दक्खिन ही रहेगा इसलिये इन ६ महीनोंमें उत्तरी ध्रुवप्रदेशवालोंके लिये रात तथा दक्षिणी ध्रुवप्रदेशवालोंके लिये दिन रहेगा। मार्गशीर्षके आकाश-चित्रमें देखा है कि वसंतसम्पात उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्रके आरंभमें है और इस आकाश-चित्रमें आप देखते हैं कि शरदसम्पात उत्तराफाल्गुनीके प्रायः अन्तमें है। इन दोनोंके बीच १३॥ नक्षत्र अथवा १८० अंशका अंतर रहता है। यह भी देखा जा सकता है कि उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका अधिकांश विषुववृत्तके उत्तर है। इसलिये जब सूर्य इन नक्षत्रोंमें रहता है तब उत्तरी ध्रुवप्रदेशमें दिन रहता है और दक्षिणी ध्रुवप्रदेशमें रात। परन्तु जब सूर्य उत्तराफाल्गुनीके आगे जाता है तब शेष १३ नक्षत्रोंमें वह विषुववृत्तके दक्षिण रहता है जब दक्षिणी ध्रुवप्रदेशमें ६ मासतक दिन और उत्तरी ध्रुवप्रदेशमें रात रहती है। उत्तरी ध्रुवप्रदेशमें देवताओंका निवास तथा दक्षिणी ध्रुवप्रदेशमें पितरोंका निवास बतलाया जाता है इसीलिये पहलेके १३ नक्षत्र देव-नक्षत्र तथा पिछले १३ नक्षत्र पितृनक्षत्र कहे जा सकते हैं।

इस चित्रमें एक बात और ध्यान देने योग्य है। क्रान्तिवृत्तका प्रायः आधा भाग विषुववृत्तके उत्तर देख पड़ता है। क्रान्तिवृत्तपर जहाँ ५ का अंक लिखा हुआ है वहीं मृगशिरा नक्षत्रका अंत होता है। इसी जगह क्रान्तिवृत्तका अंतर विषुववृत्तसे सबसे अधिक २३॥ अंशका हो जाता है। इसलिये जब सूर्य यहाँ आता है तब वह मध्याह्नकालमें सिरके ऊपर खस्वस्तिकके बिल्कुल निकट देख पड़ता है। इस दिन विषुवत् रेखासे उत्तरके देशोंमें सबसे बड़ा दिन और सबसे छोटी रात तथा दक्षिणके देशोंमें सबसे बड़ी रात और सबसे छोटा दिन होता है। इसके बाद सूर्यकी मध्याह्नकालकी ऊँचाई घटती जाती है। इसी विन्दुको आजकल दक्षिणायनविन्दु कहते हैं क्योंकि इस जगह पहुँचनेपर सूर्यका उत्तरकी ओरका बढ़ना रुक जाता है और दक्षिणकी ओर बढ़नेकी प्रवृत्ति हो जाती है। यह बात उदय होते हुए सूर्यको देखनेसे तुरंत समझमें आ जायगी जब कि इसके उदय होनेका स्थान प्रतिदिन दक्षिणकी ओर होता जाता है।

इन दोनों चित्रोंसे यह बात समझमें आ जाती है कि आजकल वसंतसम्पात उत्तरा भाद्रपदके आरंभमें, दक्षिणायन विन्दु मृगशिराके अंतमें तथा शरदसम्पात उत्तराफाल्गुनीके प्रायः अंतमें हैं। जिस प्रकार वसंतसम्पातसे ७ वें नक्षत्र मृगशिरामें दक्षिणायन विन्दु होता है उसी प्रकार शरदसम्पातसे ७ वें नक्षत्र मूलमें उत्तरायण विन्दु होता है जब सूर्य वहाँ पहुँचता है तब वह उत्तरकी ओर बढ़ने लगता है। उस दिन विषुवत्‌रेखासे दक्षिणके देशोंमें सबसे बड़ा दिन और सबसे छोटी रात, परन्तु उत्तरके देशोंमें सबसे छोटा दिन और सबसे बड़ी रात होती है। अभीतक जो कुछ कहा गया है उसका सार यह है—

वसंतसम्पात उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रके प्रायः आरंभमें,
दक्षिणायन विन्दु मृगशिराके अंतमें,
शरदसम्पात उत्तरा फाल्गुनीके प्रायः अंतमें,
और उत्तरायण विंदु मूल नक्षत्रके मध्यमें है।

इस मासका आकाशचित्र उस समयका है जिस समय नाक्षत्रकाल १३ घंटा ३० मिनट होता है। ज्येष्ठ मासमें यह स्थिति ८ से १० बजे राततक होती है परन्तु माघ मासमें भी प्रातःकाल आकाशका यह दृश्य देखा जा सकता है। सौर माघ मासके आरंभ होनेपर, मकर संक्रान्तिके लगभग, १४, १५ जनवरीको यदि ६ बजे प्रातःकाल देखा जाय तो इसी चित्रके अनुसार तारे देख पड़ेंगे। इस समय खस्वस्तिकके पास कुछ पूर्वकी ओर

स्वाती नक्षत्र चमकता हुआ देख पड़ता है, यामोत्तर वृत्तपर दक्खिनकी ओर चित्रा तारा अपनी चमकसे आकाशको शोभायमान करता है। इन दो तारोंको अच्छी तरह पहचान लीजिये आजकल चित्रा तारासे २३ अंश पश्चिम शरद-सम्पातका स्थान है। आजसे १६०० वर्ष पहले शरद-सम्पात ठीक चित्रा तारेके पास था। पूर्व-दक्षिण क्षितिजके ऊपर बहुतसे तारे देख पड़ेंगे। विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ नक्षत्रोंका जमघट यहीं देख पड़ेगा।

ज्येष्ठमासका आकाश-चित्र

अनुराधा और ज्येष्ठाके तारे मिलकर विच्छूके आकारके देख पड़ते हैं इसलिये इसीको वृश्चिक राशि कहते हैं। वृश्चिक राशिसे पूर्व क्षितिजसे लगे हुए धनु राशिके तारे दिखाई देते हैं। इनमें मूल, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हैं। इसीके पास आकाशगंगाकी लहर पूर्व क्षितिजको घेरे हुए देख पड़ती है जिसमें श्रवण नक्षत्र ठीक पूर्वमें उदय होता हुआ देख पड़ता है। श्रवणके और उत्तर आकाशगंगामें ही हंसमण्डलके तारे तथा उससे और उत्तर सिथियसके तारे देख पड़ते हैं। हंसमंडलसे कुछ ऊपर अभिजित नामका तारा उत्तर-पूर्व दिशामें देख पड़ता है इससे कुछ ऊपर अजगर तारामण्डलका सिर देख पड़ता है जिसकी लपेट यामोत्तर वृत्ततक चली गयी है। यही दोनों सप्तर्षियोंको अलग कर रहा है। बड़े सप्तर्षिके आधेसे अधिक तारे यामोत्तर वृत्तको लांघ चुके हैं केवल सातवाँ तारा यामोत्तर वृत्तके पास देख पड़ता है। छोटे सप्तर्षिके दो चमकीले तारे यामोत्तर वृत्तके पास पहुँच रहे हैं। प्रजापति तारा उत्तर-पश्चिम क्षितिजके बहुत पास देख पड़ता है। इससे कुछ दक्षिणकी ओर पुनर्वसुके दोनों तारे देख पड़ते हैं। इससे और दक्खिन, ठीक पच्छिम दिशामें प्रश्वाका चमकीला तारा दृष्टिगोचर होता है। प्रश्वाके ऊपर सिंह राशिके मघा, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी तारे दिखाई पड़ते हैं। हस्त नक्षत्रके पाँचों तारे चित्रासे कुछ पच्छिमकी ओर दक्षिण दिशामें देख पड़ते हैं। दक्षिण क्षितिजके पास दो चमकीले तारे प्रायः एक ही ऊँचाई-पर देख पड़ते हैं। इस चित्रमें गुरु और मंगल ग्रह भी कन्या तथा धनु राशिमें दिखाये गये हैं। परन्तु आजकल यह ग्रह वहाँ नहीं देख पड़ेंगे।

इन तीन चित्रोंकी सहायतासे आकाशके सब तारोंका ज्ञान आसानीसे हो सकता है। माघ मासमें जब रात १३ घंटेसे भी बड़ी होती है यह तीनों दृश्य एक ही रातमें देखे जा सकते हैं। संध्याके समय ६ बजेके लगभग मार्गशीर्ष-वाला दृश्य, १२ बजे रातके लगभग फाल्गुन मासवाला दृश्य और प्रातःकाल ६ बजेके लगभग ज्येष्ठवाला दृश्य देखा जा सकता है। यदि एक मासतक इन तीनों चित्रोंकी सहायतासे आकाशका दर्शन कर लिया जाय तो आकाशके तारोंका ज्ञान हस्तामलकवत् हो जायगा।

इस लेखमें कई स्थानपर नाक्षत्रकालकी चर्चा हुई है। परन्तु अभीतक उसकी परिभाषा नहीं बतलायी गयी है। यहाँ उसकी थोड़ी-सी चर्चा कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि नाक्षत्रकालके ज्ञानसे केवल तारोंको देखकर रात्रिका समय आसानीसे जान सकते हैं। वसंत-सम्पात-विन्दु जिस समय यामोत्तर वृत्तपर आता है उस समयका नाक्षत्रकाल शून्य माना जाता है। यदि इसी समय अपनी घड़ीकी सुई १२ पर कर लीजिये तो उस दिन इस घड़ीसे जब ४ बजेगा तब नाक्षत्रकाल भी ४ घंटा होगा और जब ८ बजेगा तब नाक्षत्रकाल आठ घंटा होगा। ऊपर बतलाया गया है कि सायनमेष संक्रान्तिके दिन २१ मार्च-को सूर्य वसंतसम्पातपर रहता है और मध्याह्नकालमें सूर्य सदैव यामोत्तर वृत्तपर रहता है। इसलिये इस दिन मध्याह्न कालका नाक्षत्रकाल शून्य होता है। इस दिन घड़ीका समय नाक्षत्रकालके अनुकूल रहता है, अर्थात् जिस समय सूर्यास्तके बाद घड़ीमें ७ बजकर ३० मिनट होता है उस समय नाक्षत्रकाल भी ७ घंटा ३० मिनट होता है। इसलिये २१ मार्चको ७॥ बजे संध्याके समय फाल्गुन मासके आकाशचित्रके अनुसार आकाशके सब तारे देख पड़ेंगे। डेढ़ बजे रातको नाक्षत्रकाल १३॥ घंटा होगा उस समय ज्येष्ठ मासके तारे वैसे ही देख पड़ेंगे जैसे चित्रमें दिखलाये गये हैं। परन्तु घड़ीकी यह दशा केवल उसी दिन रहेगी। इसके बाद घड़ीके समयमें और नाक्षत्रकालमें अंतर पड़ने लगेगा क्योंकि सूर्य वसंतसम्पातपर ही सदैव नहीं दिखलाई पड़ता, यह प्रतिदिन एक-एक अंश पूरब खसकता जाता है इसलिये दूसरे दिन २२ मार्चको जिस समय वसंतसम्पात यामोत्तर वृत्तपर आवेगा उससे ४ मिनट पीछे सूर्य यामोत्तर वृत्तपर आवेगा। यहाँतक कि २१ मार्चसे १५ दिन उपरान्त, ५ या ६ अप्रैलको जिस समय वसंतसम्पात यामोत्तर वृत्तपर आवेगा उससे एक घंटा बाद सूर्य वहाँ आवेगा, अर्थात् जब हमारी घड़ीमें १२ बजेगा तब नाक्षत्रकालका १ घंटा होगा। नाक्षत्रकाल और मध्याह्नकालका सम्बन्ध मोटे हिसाबसे संक्षेपमें इस प्रकार लिखा जा सकता है। स्मरण रखनेकी सुविधाके लिये तारीखोंकी संख्या एक-सी रखी गयी है। वास्तवमें इनमें दो एक दिनका अंतर हो जाता है।

स्वर्ण-भस्मकी शुद्धताकी समस्या

(१) समस्या

विद्वद् वैद्यसमाज तथा आयुर्वेदीय रसशालाध्यक्षोंसे निवेदन

इधर कुछ दिवस पूर्व हमने ५—७ स्थानोंकी स्वर्णभस्मका रासायनिक अन्वेषण यह जाननेके लिये करवाया कि शास्त्रीय दृष्टिसे भस्म हो जानेपर उसमें कौन-कौन पदार्थ किन-किन मात्राओंमें पाये जाते हैं। अन्वेषणसे ज्ञात हुआ कि प्रत्येक भस्ममें भिन्न-भिन्न परिमाणमें स्वर्ण, लौह और अन्य पदार्थ पाये गये। स्वर्णकी मात्रा ८ प्रतिशतसे लेकर ६२ प्रतिशत, लौहकी मात्रा ४ प्रतिशतसे २० प्रतिशत और अन्य पदार्थोंके परिमाणोंमें भी इसी प्रकार विभिन्नता पायी गयी। उपर्युक्त स्वर्ण भस्मों-मेंसे कुछकी कृतिमें पारद गंधक तथा किन्हींमें मनःशिला योग है।

स्वर्णभस्म-अन्वेषण-विवरण (रिपोर्ट) देखकर मनमें कई प्रश्नोंका प्रादुर्भाव होता है। क्या भारतवर्षका विद्वद् वैद्यसमाज तथा रसशालाध्यक्ष महानुभाव निम्नलिखित प्रश्नोंका आयुर्वेद-शास्त्रानुसार उत्तर देकर हमारी शंकाओंका समाधान कर हमें अनुग्रहीत करेंगे।

प्रश्न इस प्रकार हैं

१—प्रत्येक स्वर्ण-भस्ममें लौहके सदृश पदार्थ पाये गये हैं वह क्यों और क्या हैं?

२—स्वर्णकी भस्मावस्थामें स्वर्णके जीवित अंशका

सायनसंक्रान्ति	अंग्रेजी तारीख	मध्याह्नकालका नाक्षत्रकाल
मेष	२१ या २२ मार्च	० घंटा
वृष	२२ अप्रैल	२ ,,
मिथुन	२२ मई	४ ,,
कर्क	२२ जून	६ ,,
सिंह	२२ जुलाई	८ ,,
कन्या	२१ अगस्त	१० ,,
तुला	२२ सितम्बर	१२ ,,
वृश्चिक	२२ अक्टूबर	१४ ,,
धनु	२२ नवम्बर	१६ ,,
मकर	२२ दिसम्बर	१८ ,,
कुंभ	२२ जनवरी	२० ,,
मीन	२२ फरवरी	२२ ,,

मान लीजिये कि हमको जनवरी मासकी १० तारीखके ८ बजे रातका नाक्षत्रकाल जानना है। पहले यह देखना चाहिए कि इस दिनके मध्याह्नकालका नाक्षत्रकाल क्या है। ऊपरकी सारणीसे मालूम होता है कि २२ दिसम्बरके मध्याह्नकालका नाक्षत्रकाल १८ घंटा और २२ जनवरीके मध्याह्नकालका नाक्षत्रकाल २० घंटा है। २२ दिसम्बरसे १० जनवरीतक १९ दिन होते हैं और प्रतिदिन नाक्षत्रकाल ४ मिनटकी दरसे बढ़ता जाता है इसलिये १९ दिनमें १९ × ४ = ७६ मिनट अथवा १ घंटा १६ मिनट बढ़ जायगा। यह २२ दिसम्बरवाले नाक्षत्रकालमें जोड़ देनेसे १९ घंटा १६ मिनट होता है। इसलिये इस दिन मध्याह्नकालका नाक्षत्रकाल १९ घंटा १६ मिनट हुआ। अब हमें ८ बजे रातका नाक्षत्रकाल जानना है। बस इसको १९ घंटा १६ मिनटमें जोड़ दीजिये तो २७ घंटा १६ मिनट आ जाता है। इससे २४ घंटा घटा दीजिये तो हुआ ३ घंटा १६ मिनट। इसलिये १० जनवरीकी ८ बजे रातको नाक्षत्रकाल ३ घंटा १६ मिनट होता है। इसी प्रकार यदि किसी रातको तारोंको देखकर नाक्षत्रकाल मालूम कर लिया जाय और उससे उस दिनका मध्याह्नकालिक नाक्षत्रकाल घटा दिया जाय तो समयका ज्ञान सहज ही हो सकता है।

(क्रमशः)

निकलना क्या आयुर्वेदीय दृष्टिसे भस्मकी अपरिपक्वताका परिचायक है ?

३—जीवित स्वर्णअंश तथा लौह-सदृश पदार्थके अतिरिक्त जो शेष वस्तु पायी गयी है वह क्या है ?

४—रासायनिक अन्वेषणसे जिन भस्मोंमें स्वर्णका जीवित अंश पाया गया है वह आयुर्वेदीय दृष्टिसे व्यवहार होने योग्य है ? यदि योग्य है, तो जिनमें अधिक अंश सोनेके मिलते हैं वह अधिक योग्य है, अथवा जिनमें कम अंश मिलते हैं वह अधिक योग्य है ?

५—अन्वेषित भस्मोंकी कृतिमें पारद गंधक और मनःशिलाका योग है, पारद गंधकके योगसे बनी हुई स्वर्ण-भस्ममें जीवित स्वर्णांश अल्पातिअल्प मात्रामें पाया गया और मनःशिला योगसे बनी हुई भस्ममें अधिकाधिक मात्रामें; अतएव वैद्यवर यह भी सूचित कर अनुग्रहीत करेंगे कि इन दोनों योगोंमेंसे कौनसा विशेष गुणदायक और उपयोगी है और ऐसी परिणाम-भिन्नता क्यों होती है ?

भवदीय

हजारीलाल जैन, मंत्री,

श्रीदानवीर रायबहादुर राज्य-भूषण रावराजा सर सेठ सरूपचन्दजी हुकुमचन्दजी दिगम्बर जैन पारमार्थिक संस्थाएँ, जँवरीबाग, इन्दौर ।

(२) स्वर्ण-भस्मके सम्बन्धमें मेरे विचार

(ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

स्वर्णभस्मके सम्बन्धमें जो उपर्युद्धृत पत्र प्रकाशनार्थ मेरे पास आया है उसके सम्बन्धमें जो प्रश्न दिये गये हैं उनके यथाशक्य उत्तर देता हूँ ।

प्रथम प्रश्न

(१) स्वर्ण भस्ममें विश्लेषणके समय लौह-सदृश पदार्थ पाये गये हैं, वह क्यों और क्या हैं ?

इसके सम्बन्धमें जहाँतक मेरा अनुभव है, स्वर्णमें लौहकी मात्राकी विद्यमानताका कारण भस्म-निर्म्माणके समयकी त्रुटि है । शुद्ध स्वर्णमें लौह क्या किसी भी धातुका शतांश भी नहीं होता । किन्तु निर्म्माण-कालमें जब स्वर्णपत्र या स्वर्ण-चूर्णके साथ कज्जलिया मनःशिला डालकर खरल किया जाता है उस खरल-कालमें खरलके घिसनेसे या मनःशिलाके उत्तम न होनेसे—मनःशिलामें प्रस्तर-अंशकी विद्यमानतासे जो पार्थिव अंश स्वर्णमें संयुक्त होता रहता है उसीके कारण विश्लेषण समयमें स्वर्ण-भस्ममेंसे लौह-सदृश पदार्थ पाये जाते हैं । जिन व्यक्तियोंका स्वर्ण-भस्म अधिक बढ़ जाता है (मनःशिला योगका बहुतही अधिक बढ़ता है) मनःशिला योगके प्रतिबार पुट देनेके पश्चात् स्वर्णभस्मकी मात्रा प्रति दस तोलेमें ३ से ६ माशातक बढ़ती है । किन्तु पारद गन्धकके साथ खरल करके बनायी हुई स्वर्णभस्म प्रति दस तोलामें छः सात पुट दे देनेपर माशा-डेढ़-माशा ही बढ़ती है जब खरल घिसनेवाले लगाये जाते हैं, तब मात्रा निश्चित नहीं की जा सकती । खरल प्रायः बहुत ही कम ऐसे मिलते हैं जो घिसते नहीं, थोड़े बहुत तो सभी घिसते हैं ।

स्वर्णमें लौह या अन्य वस्तुएँ जितनी भी पायी जाती हैं निश्चित ही पार्थिवांशमेंसे वह हैं, जो खरल और मनःशिलाके साथ उसमें पहुँचती रहती हैं गन्धकमें भी (शुद्ध गन्धकमें भी), मिट्टी होती है । और अशुद्ध पारेमें लौहांश। पारा लौह बोतलोंमें आता है । इसलिये पारद जबतक ऊर्ध्व-पातनविधि आदिके साथ शुद्ध न कर लिया जाय पूर्ण शुद्ध नहीं होता । पारेकी वाष्प बनाकर उसे ठण्डा कर लेनेपर इस प्रकारका पारद अत्यन्त शुद्ध होता है । अनेक वैद्य इन त्रुटियोंकी ओर सूक्ष्मतासे दृष्टिपात नहीं करते । जिनके बने स्वर्णभस्मोंमें लौह-सदृश या अन्य पदार्थोंकी मात्रा अधिक पायी जाती है वह उतने ही अधिक असावधानीसे बने हैं, यह एक निश्चित बात है ।

स्वर्ण-भस्ममें विश्लेषणके समय ६० से ८० प्रतिशततक स्वर्ण निकलना चाहिये । क्योंकि, स्वर्णका भस्मके रूपमें परिणत होनेके समय गन्धकके साथ संयोग होता है और स्वर्ण गन्धित बनाता है । मनःशिलामें भी गन्धक होता है, वहाँ भी वह गन्धित ही बनाता है ।

द्वितीय प्रश्न

(२) स्वर्णकी भस्मावस्थामें स्वर्णके जीवित अंशका निकलना क्या आयुर्वेदीय दृष्टिसे भस्मकी अपरिपक्वताका परिचायक है? और क्या वह अपरिपक्व भस्म आयुर्वेदीय दृष्टिसे व्यवहारके योग्य है? यदि है तो, जिनमें अधिक स्वर्णांश है वह या न्यूनवाली?

वास्तवमें देखें तो आयुर्वेदके अन्तर्गत रस-शास्त्र नहीं आता। आयुर्वेदका रसशास्त्रसे वैसा ही सम्बन्ध है जैसा एलोपैथीका विज्ञानसे। एलोपैथी एक चिकित्सा-पद्धति है, आयुर्वेद भी। किन्तु रस-शास्त्र चिकित्सा-पद्धति नहीं प्रत्युत उसी प्रकारका एक स्वर्ण-प्रस्तुतीकरणके समय देहोपयोगी आविष्कार था, जिसे आयुर्वेद-ज्ञाताओंने उसके उस उपयोगी अंशको व्यावहार्य्य बना लिया। खैर! देहोपयोगी या व्यावहार्य भस्मोंके विकास-क्रमपर यदि विचार किया जाय तो पता चलता है कि सबसे प्रथम जो भस्में उपयोगमें लायी जाती थीं उनमें निरुत्थ स-उत्थका विचार नहीं किया जाता था, पश्चात् इस बातकी चर्चा चली। और निरुत्थ भस्मोंके लेनेपर जोर दिया गया।

वास्तवमें यदि हम रासायनिक दृष्टिसे देखें तो निरुत्थ भस्म कोई भी नहीं दीखती। जितनी भी निरुत्थ भस्में हैं इस समय जीवित करके दिखायी जा सकती हैं। जो भस्में जीवित हो जायँ अपने पूर्वरूपमें आ जायँ वह निरुत्थ नहीं कही जा सकतीं। इस समय सभी ऐसी ही सिद्ध होती हैं। किसी भस्मको, विश्लेषणशालाके निरीक्षकके पास भेज दो वह विश्लेषण करके बतला देगा कि इसमें अमुकामुक वस्तु है। कई वैद्य कहेंगे कि रस-शास्त्रमें वर्णित विधिसे मित्र-पंचक आदिद्वारा जो भस्में जिलानेपर न जीवें उन्हें निरुत्थ मानना चाहिये। हमें इस बातको देखनेके लिये आधुनिक नव्य विधियोंसे काम नहीं लेना चाहिये। यह शास्त्र-मर्य्यादाका उलंघन है। यह विचार पदार्थकी वास्तविक स्थितिकी ओर ले जानेमें साधक नहीं, प्रत्युत बाधक हैं। भस्म-निर्माण-क्रिया एक रासायनिक क्रिया है जिसको हमें रसायन-शास्त्रके निश्चित सिद्धान्तोंद्वारा ही समझना समझाना चाहिये।

धातुओंकी भस्मोंका बनना वास्तवमें उस धातुसे किसी अधातु और वायव्य आदिका रासायनिक रूपमें मिलना है। इस मिलनेका नाम आधुनिक रसायन-शास्त्रमें यौगिक है। क्योंकि सोना, चांदी, लोहा आदि धातुएँ मौलिक हैं। इसी प्रकार गन्धक कर्बन, ओषजन आदि अधातव पदार्थ भी मौलिक हैं जिनका हम घोट-पीट तथा अग्निकी पुट देकर मेल कराते हैं। यह धातु-अधातु रूप मौलिक जब परस्पर मिल जाते हैं तो दोनों ही अपने-अपने रूप, गुण, स्वभावको छोड़कर अन्य रूप, गुण स्वभावके बन जाते हैं उसीको हम सब भस्मके नामसे सम्बोधित करते हैं।

अब रहा यह प्रश्न कि जो भस्में जीवित हो जाती हैं अथवा जिनमें धातुओंका जीवित अंश पाया जाता है उनका उपयोग करना चाहिये कि नहीं? इस बातका उत्तर हमें केवल आयुर्वेदीय दृष्टिसे तथा आधुनिक अनुसन्धानोंसे प्राप्त करना चाहिये। तभी सही-सही उत्तर प्राप्त हो सकता है अन्य रीतिसे नहीं। इसके सम्बन्धमें सबसे प्रथम तो हमें शरीर-रचना-शास्त्र और शरीर-धर्म-शास्त्रसे यह मालूम करना चाहिये कि जिन-जिन भस्मोंका या धातु-अधातुओंका हम शरीरके रोग-निवारणार्थ या बलवर्द्धनार्थ उपयोग करते हैं उनका शरीरमें जाकर क्या-क्या बनता है तथा शरीर उनको किस रूपमें लेकर क्या बनाता या बिगाड़ता है और अन्तमें वह धातुएँ या भस्में शरीरमें किस रूपमें रहती हैं या निकलती हैं?

हम यहाँपर केवल स्वर्ण और उसकी भस्मके सम्बंधमें ही अपने विचार रखेंगे। शरीर-रचना-शास्त्र बतलाता है कि हमारा शरीर जिन धातुतत्वोंसे बना है उनमें स्वर्ण नहीं है। न स्वर्णके यौगिकोंसे शरीरके जीवन-व्यापारका कोई सम्बन्ध ही पाया जाता है। स्वर्ण एक ऐसी धातु है जिसका शरीर रचनासे कोई सीधा सम्बन्ध नहीं मिलता। परन्तु रस-शास्त्रके निर्माण-कर्त्ताओंने देखा कि विशेष-विशेष रोग-कालमें स्वर्णभस्म या *स्वर्णका उपयोग लाभदायी है। आधुनिक एलोपैथी-चिकित्सा भी इस बातकी साक्षी देती है कि स्वर्णके यौगिक कई रोगोंमें अच्छा लाभ करते हैं तो इस बातको जाननेकी चेष्टा हुई कि स्वर्ण क्यों और

* नानी चिकित्सक कच्चा ही स्वर्ण और चांदीके वरकका उपयोग करते हैं।

कैसे लाभ करता है? खोज करनेपर इसका उत्तर शरीर-धर्म-शास्त्रने बड़ी अच्छी प्रकार दिया। शरीर-धर्म-शास्त्रके अनुशीलनसे पता चला है कि शरीरको उन्हीं वस्तुओंकी ही आवश्यकता नहीं रहती जिनसे कि शरीरका निर्माण होता है प्रत्युत अनेक ऐसे पदार्थोंकी भी आवश्यकता रहती है जो मुख्यतया उसके घटकोंमें तो काम नहीं आते, पर उनका रहना उत्तेजनाके लिये उत्प्रेरणके लिये और क्रिया-विवर्द्धनके लिये अत्यन्त आवश्यक है। यह अच्छी प्रकार देखा और समझा जा चुका है कि शरीरमें जो अनेक प्रकारके लवण और क्षार पाये जाते हैं। इनमेंसे मग्नके, निकिलके, ताम्रके, स्वर्णके तथा अन्य धातुओंके लवण आदि यह सब शरीरमें रहकर या शरीरके भीतर पहुँचकर शरीरको उत्प्रेरण उत्तेजन और क्रिया-विवर्द्धनका काम देते हैं। और इनमेंसे कुछ तो बने ही रहते हैं कुछ उत्प्रेरण और उत्तेजन देकर निकल जाते हैं। जो धातुएँ या धातुलवण (यौगिक भस्म) इस प्रकारसे शरीरकी सहायता करते हैं उनको रसायन-शास्त्रमें उत्प्रेरक और योगवाहीका नाम दिया गया है।

स्वर्ण या स्वर्णभस्म (रसायन-शास्त्रमें हमारा भस्म एक प्रकारका स्वर्णलवण है) उत्प्रेरक वस्तुओंमेंसे है। यह शरीरमें जाकर खपता नहीं इसका सात्म्यीकरण नहीं होता। इसका बहुतसा अंश तो अन्नप्रणालीमें ही रह जाता है जो मलके साथ बाहर निकल जाता है। किन्तु, अन्न-प्रणालीमें भी इसकी विद्यमानता उत्प्रेरकका काम देती है उससे ही शरीरको काफी सहायता मिलती है।

यूनानी चिकित्सक स्वर्णवरकको मुरब्बा, सेब, गाजर आदि-में लगाकर खिलाते हैं इस प्रकार शुद्ध स्वर्ण उदरदरीमें जाकर उत्प्रेरकका काम करके मलकेद्वारा बाहर निकल जाता है। इस प्रकार खाया हुआ स्वर्ण अपने असली रूप-में ही रहता है। मलमेंसे इसके यथावत् कण प्राप्त होते हैं। आयुर्वेदीय स्वर्णभस्मका भी बहुत बड़ा हिस्सा उदरदरीमें पहुँचकर उत्प्रेरकका ही काम करता है। किन्तु इसके कुछ लवण मूत्रमें पाये जानेके कारण यह निश्चित किया जाता है कि इसका कुछ अंश अन्नके आचूषक प्ररोहोंद्वारा आचूषण होकर रक्तमें पहुँच जाता है और वहाँ वह उससे उत्प्रेरकका कार्य लेकर मूत्रके साथ बाहर कर देता है। इस प्रकार स्वर्णभस्म रोगावस्थामें उत्प्रेरक होकर शरीरकी सहायता करता है। इससे शरीरकी रोग-निवारणी कार्य-शक्ति बढ़ जाती है और इससे वह रोग क्षय-शक्ति प्राप्तकर जीवन-शक्तिको सुदृढ़ बनानेकी चेष्टा करता रहता है।

हमारा यह अपना अनुभव भी है कि स्वर्ण चाहे कच्चा खाया जाय या भस्मरूप। शरीरमें जाकर शरीरको कोई हानि नहीं पहुँचाता न इससे शरीरमें कोई नया यौगिक ही बनता है। इसलिये जिन भस्मोंमें स्वर्ण अधिक हो उसे ही उपयोगमें लाना श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

(२) सोनेसे गठिया रोगका इलाज

निरे पंगु लोग मजेसे चलने लगे

लंडनके एक अस्पतालमें प्रयोग और सफलता

लण्डनके रायल वाटरलू हास्पिटलके अधिकारियोंके कथनानुसार गठियाके इलाजमें सोना परीक्षासे बहुत ही गुणकारी पाया गया है। अस्पतालके एक विशेषज्ञ चिकित्सकने अस्पताल कमेटीको इस विषयमें जो रिपोर्ट भेजी है उसमें लिखा है कि अनेक रोगी, जो बिलकुल ही पंगु हो गये थे, अब मजेसे चलने फिरने लगे हैं। यह इलाज जो इस वर्षके पहले इस देशमें अज्ञात था, यह है कि रोगीको पांच-पांच दिनके अन्तरसे सोनेका इंजेक्शन दिया जाता है। इस समय लगभग ३० रोगियोंको यह इंजेक्शन दिया जा रहा है।

अस्पतालके सेक्रेटरी श्री जे० एच्० टीजडेलने एक पत्र-प्रतिनिधिसे कहा है कि उनके अस्पतालके इस प्रयोगसे सम्भव है कि देशभरमें इस चिकित्साके सम्बन्धमें और खोज की जाय। पर गठिया रोगके एक विशेषज्ञ चिकित्सकने कहा है कि अभी यह इलाज परीक्षात्मक प्रयोगकी ही अवस्थामें है। कुछ ही अवस्थाओंमें इस चिकित्साका उपयोग किया जा सकता है, पर इसमें विस्तृत सम्भावनाएं हैं।

(संकलित)

तुच्छ कीड़े आत्म-रक्षा कैसे करते हैं ?

साँप बननेवाली इल्लियोंकी चालें

(गतांकसे आगे)

[ले०—ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालङ्कार एम्० एस्-सी०, विशारद, सब रजिस्ट्रार, हाटा, गोरखपुर]

श्री मेजर हिंगस्टन साहबका कथन है कि साँपोंकी नकल करनेवाले जितने प्राणी उनके देखनेमें आये हैं उनमें सबसे उत्कृष्ट उदाहरण ल्यूकोरैम्फ़ा वंशकी स्फिजिड (Sphingid) इल्लीका था जिसे उन्होंने (Guiana) गायनाके जंगलोंमें पाया था। यह एक हरे रंगकी मोटी ताजी इल्ली होती है और उसकी पीठपर सिरसे पूंछ-पर्यंत दो काली धारियाँ होती हैं। साधारणतया ये किसी हरी लताकी शाखापर निश्चिन्त लेटी रहती हैं और वातावरणके अनुरूप रंग होनेके कारण वह शत्रुओंकी दृष्टिसे सुरक्षित रहती हैं। किन्तु ज्योंही मेजर साहब उसके समीप पहुँचे और लताकी पत्तियोंको हिलाया, त्योंही इल्ली कुछकी कुछ हो गयी। पीछेकी कुछ मणियोंके सहारे उसने अपने शरीरको तान लिया और शाखासे लगभग आड़ी (horizontal) हो गयी। इसके अतिरिक्त उसने अपने शरीरको इस भाँति ऐंठा कि उसके शरीरका अधिकांश निचला भाग मेजर साहबकी ओर हो गया। आगेकी कुछ मणियोंको फुलाकर साँपके फनके समान अंडाकार कर लिया। मणियोंके फूलनेसे एक जोड़ा (folds) झुर्रियोंका आविर्भाव हुआ जिनका अबतक कहीं पता भी न था। इस नकली फनके दोनों ओर काले रंगके दो भयानक 'चक्षु-विन्दु' (eye-spots) भी आ विराजे जिनमें यत्र-तत्र श्वेतचिह्न भी दृष्टिगोचर हो रहे थे। इन चक्षु-विन्दुओंके आसपास छल्लेके समान एक रेखा भी दिखाई दी जो दूरसे पलकसी जान पड़ती थी। कुछ कालतक यह इल्ली इसी भाँति तनी खड़ी रही। बादको शनैः-शनैः उसने अपने शरीरको ढीला और आकुंचित किया। अपने नकली फनको समेट लिया बनावटी 'नेत्र' भी अदृश्य हो गये और पुनः पहलेकी भाँति वह एक भोली-भाली और निष्कपट इल्ली हो गयी।

इल्लियोंमें वाइपर साँपके वेशका अभिनय

इस इल्लीके अवलोकनके अनंतर कोई बिरला ही मनुष्य होगा जो साँपके अनुकरण करनेवाले प्राणियोंमें उसकी परिगणना न करे। वास्तवमें उसका यह छद्म-भेस दर्शकोंको चकित कर देता है। गाइनाके उन निवासियोंने जो मेजर साहबके साथ थे, इल्लियोंके इस ढंगके वेशको पहले कभी नहीं देखा था। उसे देखते ही वे तो स्तब्ध और भयभीत हो गये। ये इल्लियाँ वहाँकी लताओंमें पाये जानेवाले (tree-viper) वाइपरका अभिनय करती हैं। वाइपर जातिके साँप अतीव विषैले होते हैं और प्रायः जंगलोंमें इल्लियोंके साथ-साथ हरी लताओंमें कालक्षेप करते पाये जाते हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि इल्लियोंके इस भाँतिके आचरणका अभीष्ट उनके शत्रुओंको भयभीत करके भगा देना है। पक्षी आदि प्राणी उन्हें दूरसे ही देखकर अवश्य साहस खो बैठते होंगे और आगे न बढ़नेमें ही अपना कल्याण समझते होंगे।

कुंजर-शिकरा तितलीकी इल्ली साँपके वेशमें

उष्ण-कटिबंधके अतिरिक्त इंगलैण्डमें भी एक अतीव प्रभावशाली उदाहरण पाया जाता है। (Choero-campa elpenor) कुंजर-शिकरा तितलीकी पूर्ण बाढ़को पहुँची हुई इल्लियाँ भूरे रंगकी होती हैं जो प्रायः सूखी पत्तियोंमें निवास करती हैं। वहाँ वे शत्रुओंकी दृष्टिसे सर्वथा गुप्त रहती हैं। उनके शरीरका नग्न और जीर्ण-शीर्ण आवरण आस-पास पायी जानेवाली भूरे रंगकी सूखी पत्तियोंमें खूब मिल-जुल जाता है। भूरा रंग भूरे रंगमें समा जाता है। उनके शरीरकी अधिकांश मणियाँ अस्पष्ट होती हैं किन्तु

उसके उदरकी प्रथम और द्वितीय मणियोंपर दायीं और बायीं ओर एक-एक चक्षु-विन्दु होता है। ये चारों चक्षुविन्दु सामान्य अवस्थामें दिखाई नहीं देते परन्तु छेड़-छाड़ कीजिये और देखिये, क्या परिणाम होता है ? छेड़खानी होते ही इल्ली अपने नुकीले सिरको सिकोड़ लेती है और आगेकी कुछ मणियोंको बटोरकर तर-ऊपर एकके ऊपर एक

स्फिजिड इल्ली शान्त अवस्थामें

स्फिजिड इल्ली साँपके वेशमें

कर लेती है। चक्षु-विन्दुयुक्त मणियाँ भी इस समेटा-बटोरीमें आ जाती हैं उसका यह कार्य देखनेमें ऐसा जान पड़ता है मानो किसीने टूटकी दुर्बीनको बन्द किया हो। उसके इस उद्योगका फल यह होता है कि उसका नुकीला सिर फूल-कर (Bulb) बल्बके आकारका हो जाता है। बल्बके सबसे चौड़े भागपर चारों चक्षु-विन्दु आ जाते हैं जो अब दीर्घाकार और बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। इस तरह इल्लीने अपने पूर्वभागको फुलाकर साँपके फनकी नक़ल की जिसमें उसे असाधारण सफलता मिली। साँपको मात करनेवाली इस इल्लीका रोब-दाब उसके शत्रुओंपर इतना गठ जाता है कि उसपर मुँह डालनेकी कौन कहे, निकट जानेतककी हिम्मत नहीं पड़ती। यही उसका मतलब भी था।

डिन्ड्रोफिसपिक्टस नामक सर्पकी शक्लमें इल्लियाँ

इसी वेशकी एक और (choerocampa mydon) इल्लीका परीक्षण श्री श्यफोर्ड साहबने बोर्नियोंमें किया

था। उन्होंने इस इल्लीकी तुलना डिन्ड्रोफिस पिक्टस (Dendrophis pictus) सर्पसे की है । इसके चक्षु-विन्दुओंके निचले किनारोंपर सुनहरी गोट-सी लगी होती है जिसके कारण वे ऊपरको निहारतेसे प्रतीत होते हैं। चक्षुओं-के काले भागका रंग बहुत गहरा और चमकीला होता है। इसके अतिरिक्त साँपके नेत्रोंके समान उनको काले रंगकी चौड़ी धाराएँ (stripes) होती हैं। दोनों ओरकी सिकुड़ी हुई झुर्रियोंको देखनेसे मालूम होता है कि मानो वह साँपके ऊर्ध्व और निम्न (Jaw) हनुका विभाग-स्थल है और सांपके खुले हुए मुँहका स्मरण दिलाती हैं। उनके बनावटी सिरके ऊपरी भागपर भूरे रंगकी रेखाओंसे सीमित जालीके समान छोटे-छोटे खाने होते है जो सांपके सिरके (scales) छिलकोंकी पूर्णरूपेण समता करते हैं। कौन कह सकता है कि इन समस्त प्रदर्शनोंका प्रधान उद्देश्य शत्रुओंको डरा-धमकाकर भगा देनेका नहीं है?

साँपकी अचरज भरी शक्लमें इल्लियाँ

ब्रेजिलमें भी सांपोंकी नकल करनेवाली इल्लियोंकी
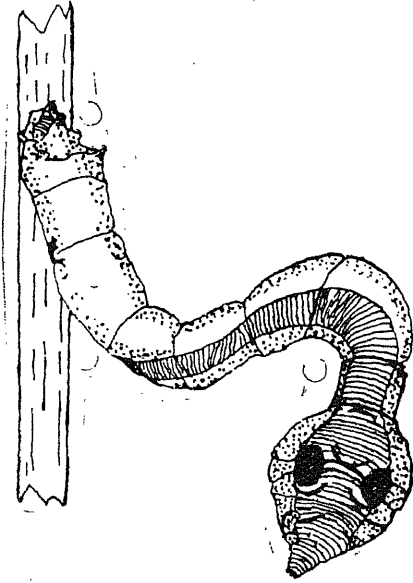
ल्यूकोरैम्फा सांपके वेशमें

कमी नहीं है सबसे कौतूहलोत्पादक और मनोहारी उदाहरण (Leucorhampha triptolemus) ल्यूकोरैम्फाट्रि-प्टोलीमसका है। इसका विवरण (Rev. Miles Moss) रिवरेंड मोसने अत्यंत सुन्दर और रोचक ढंगसे किया है। इस इल्लीकी तुलना वे उस छड़ीसे करते हैं जिसके आस-पास लिपटा हुआ सांप बना होता है। छड़ीके ऊपरी भागको सांपके सिरके समान और नीचेके भागको उसकी दुमके रूपमें बनाते हैं। ऐसी छड़ियाँ बाजारोंमें अक्सर बिकती हुई देखी जाती हैं, मोस साहबका कहना है कि उन्होंने जीवन भरमें इससे विचित्र प्राणी कभी नहीं देखा। साधारणतया यह अपने आश्रयदाता वृक्षकी किसी शाखासे लटकी रहती हैं पर आहट पाते ही अपने शरीरको घुमाकर निचले भागको आहट आनेवाली दिशाकी ओर कर देती हैं। साथ-ही-साथ शरीरके पूर्व भागको फुलाकर साँपके फनके समान कर देती हैं। काले और भयंकर चक्षु-विन्दु भी तत्काल ही अधिक स्पष्ट होकर नकली फनके दोनों ओर दिखाई देने लगते हैं। इन सारी क्रियाओंका प्रभाव यह होता है कि जो इल्ली पहले (protective colour) संरक्षक रंगसे विभूषित थी अब सर्पके सिर और गर्दनका स्वरूप धारण कर लेती है। इसके अतिरिक्त इल्लीका वक्राकार भी सभी भाँति साँपके समान हो जाता है। इस कौतुक-में कोई कसर न रह जाय, मानों इसी कारण इल्ली बड़े मस्ताने ढंगसे अपने दायें बांयें हिलने डुलने लगती है। खटका हट जानेपर वह अपने नकली फनको संकुचित कर लेती है। चक्षुओंका भी लोप हो जाता है और स्वयं इल्ली आसपासके वातावरणमें गायब हो जाती है।

मोस साहबकी सच्ची उक्ति

मोस साहबके इस कथनमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि ये प्राणी (Creative evolution) सृजनात्मक विकासके असली चमत्कार हैं। सच तो यह है कि इन तुच्छ प्राणियोंके व्यापारका ठीक-ठीक अनुमान उनके साङ्गोपाङ्ग वर्णन अथवा रंग-बिरंगे चित्रोंसे नहीं किया जा सकता है; उनकी करालाकृति-चमचचमाते नेत्र, वक्राकार शरीर और दायीं-बायीं ओरकी गतिका अनुभव तो उन्हें प्राकृतिक अवस्थामें देखनेसे ही हो सकता है।

भूमापक कीड़े

टहनीनुमा इल्लियोंकी करतूत

छद्मवेशी इल्लियोंमें सबसे बढ़ी-चढ़ी इल्ली

मिडारिक्स प्लैटो (Madoryx plato) नामक एक और इल्लीका वर्णन श्रीमोस महोदयने किया है। उनके मतमें छद्म-वेश प्रदर्शनमें यदि ल्यूकोरैम्फ़ा सब प्राणियोंसे अधिक पटु या प्रवीण है तो दूसरा नम्बर इस इल्लीका है। प्राकृतिक अवस्थामें यह इल्ली अपने आश्रयदाता वृक्षकी किसी टहनीका अनुकरण करती है। परन्तु किसी भांतिकी छेड़खानी होते ही यह सतर हो जाती है; अपने सिरको पैरों की ओर मोड़ लेती है; शरीरके पूर्वभागकी कुछ मणियोंको फुला लेती है। और फूले हुए भागके दोनों ओर दो काले और भयानक चक्षु-विन्दु जो अबतक अव्यक्त थे, दीर्घाकार होकर दूरसे स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि जो इल्ली अबतक देखनेमें पौधेकी एक साधारण टहनी प्रतीत होती थी, अब विकराल नेत्रोंसे समन्वित मुँह फैलाए हुए सांपके रूपमें परिवर्तित हो जाती है।
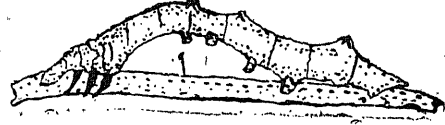
मैडरी प्लेटो सांपके भेसमें

जीभ लपलपाती हुई साँपके वेशमें इल्ली

किन्तु इससे भी अनोखा उदाहरण तो (Centroctena rutherfordi) स्यंट्रोक्टयना रुथर फोर्डायकी इल्लीका है जिसे (Dr. Van Someren) डाक्टर वान सोमरिनने पूर्वीय अफ्रीकामें पाया था। किसीकी आहट पाते ही यह इल्ली जब अपना विकराल रूप धारण करती है तो उसके नकली नेत्र बनावटी फनकी सतहसे ऊपरको उभड़ आते हैं जिसके फलस्वरूप वे दूरसे बिलकुल स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। इसके अतिरिक्त यह अपने पिछले भागको दबाकर अपने शरीरके पूर्व भागको पीछे समेटकर बल डाल लेती है जिसके कारण देखनेमें यह बिलकुल सांप जैसी वक्राकार हो जाती है। वह अपनी अगली दो टाँगोंको आगेकी ओर इस भांति बढ़ा देती है कि देखनेमें वह सांपकी (forked tongue) द्वि-जिह्वा-सी प्रतीत होती है। सांपके छिलकोंके समान इसके सिरपर नकली छिलके (sham scales) भी मौजूद होते हैं। डाक्टर साहबने इस इल्लीका जो फोटो लिया था यह चित्र उसीसे खींचा गया है। चित्रमें उभरे हुए नेत्र, बलखाये हुआ शरीर और नकली छिलकोंका जाल तो दिखाई देता है किन्तु अगले पैरोंद्वारा निर्मित द्वि-जिह्वाका प्रदर्शन नहीं किया जा सका क्योंकि वह डाक्टर साहबके फोटोमें नहीं आयी थी।

इल्लियोंके छद्म-वेशोंका मूल उद्देश्य सप्रमाण

प्रश्न हो सकता है कि इस बातका क्या प्रमाण है कि इल्लियोंके इन छद्म-प्रदर्शनोंका प्रधान उद्देश्य शत्रुओंको

भयभीत करके अपनी रक्षा करना है। परन्तु अब इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं रह गया है कि इल्लियोंके प्रदर्शनोंसे उनके शत्रु भयभीत हो जाते हैं। लोगोंने इस बातका प्रयोग किया है और वे भी इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं।

इल्लीके आगे मुर्गा और गौरैयाकी अवस्था

प्रोफेसर बीजमानका कथन है कि जब इल्लियाँ आक्रमित अवस्थामें होती हैं तब कुकुटोंको उन्हें पकड़नेका साहस नहीं होता। प्रोफेसर साहबने एक अतीव साहसी और लड़ाकू मुर्गेको स्वयं देखा है कि ऐसी अवस्थामें वह इल्लीपर आक्रमण करनेसे बहुत समयतक आगा-पीछा करता रहा। एकबार उन्होंने भोजनकी थालीमें एक इल्ली रख दी। थालीके भोजनको देखते ही एक गौरैया पक्षीके मुंहमें पानी भर आया और चटसे वह उसकी ओर बढ़ी। थालीके समीप पहुँचते ही उसने इल्लीको देखा, तब तो उसके भयका ठिकाना न रहा। वह बेचारी अपनी जान लेकर भागी।

छिपकली और छद्मिनी इल्ली

(Prof. Poulton) प्रोफेसर पाउल्टनने हरी छिपकलीके समक्ष एक इल्लीको रखा। छिपकलीको देखते ही इल्लीने सांपका छद्म-वेश धारण किया। उसे देख छिपकली बहुत सहमी। कभी आगे बढ़ती थी तो फिर भयके मारे पीछे हट जाती थी। पर इल्लीपर मुँह डालनेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। प्रोफेसर साहबका कहना है कि छिपकली डर गयी थी और डरका कारण इल्ली ही थी।

छद्मवेशी इल्ली और लंगूर

इस बातकी पुष्टिमें अफ्रीकासे भी प्रमाण मिले हैं। वहाँपर कीरोकैम्पा ओसिरिस (Choerocampa osiris) जातिकी इल्लियां पायी जाती हैं जो वहांके एक मोटे विषधरके रंगकी होती हैं। श्री मार्शल महोदयने (Sir Guy Marshall) कुछ जवान लंगूरोंको यह इल्ली प्रदान की। पहले तो एक मादा लंगूर अतीव सावधानीसे उसकी ओर बढ़ी किन्तु शीघ्रही चौंककर पीछेको भागी। वह इल्लीके विशाल नीले नेत्रोंको देखकर भयभीत हो गयी। तत्पश्चात् शेष लंगूर भी डरके मारे वहाँ से भाग गये। मार्शल साहबने तब एक बँधे हुए नर लंगूरको यह इल्ली दिखलायी। लंगूर डरके मारे चीख उठा। इस बातसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि सर्पके समान रूपको देख लंगूरमें उन्हीं भीरु भावोंका उदय हुआ जो किसी असली सांपके साक्षात्कार होनेसे उसमें उदय हुए होते।

सेंट्रोकेना, ऊपर शान्त, नीचे सांपके रूपमें

छद्मवेशी इल्ली और अफ्रिकन

डाक्टर नीव (Dr. Neave) इसी भांतिके एक और उदाहरणका उल्लेख करते हैं जो अफ्रीकाके निवासियोंको खूब भयभीत किये रहता है। वहांके निवासी इल्लियोंको बड़े चावसे खाते हैं पर इस इल्लीको वे हाथतकसे नहीं छूते। इल्लीके चक्षु-बिन्दुओंको वे नेत्र कहते हैं। इन्हीं 'नेत्रों'से वे बहुत डरते हैं। और यही इन समस्त कपट मुद्राओंका वास्तविक उद्देश्य भी है। एकाएक किसी सर्पके रूपको धारण कर लेनेकी बात, कुछ-कुछ असाधारण-सी होते हुए भी एक ऐसे सिद्धांतका पूर्ण विकसित रूप है जो समस्त भूमंडलमें व्याप रहा है।

इल्लियोंके परस्पर दो विरोधी रंग

इल्लियोंके रंगमें हम परस्पर विरोधी दो तरहके नमूनोंका समावेश पाते हैं। एक तो वह जो उनकी शांत-

गुदगुदे खिलौने बनाना

स्त्रियोंके लिये लाभदायक घरेलू व्यवसाय

स्त्री सुधार-विद्यालय बरेलीके सामने भाषण देते हुए श्री एस० बी० नायडूने गुदगुदे खिलौनोंके निर्माणको स्त्रियोंकी बेकारी कम करनेके लिये एक लाभदायक घरेलू व्यवसाय बतलाया। आप बरेलीके काष्ठ-विशेषज्ञ हैं।

इस देशमें लाखों रुपयेके खिलौने बाहरसे आते हैं। टीनके खिलौने जिनमें घड़ीके कल पुरजे लगे रहते हैं, सेलुलायडके खिलौने, शीशे और चीनी मिट्टीके खिलौने, गुदगुदी गुड़ियाँ और रोयेंदार जानवर जो साधारण दूकानोंपर बिकते हैं अधिकतर विदेशके बने होते हैं।

लड़कियों और स्त्रियोंके सीखने योग्य खिलौनोंकी शाखा

खिलौने बनानेके व्यवसायकी केवल एक ही शाखा ऐसी है कि उसे वर्तमान सुविधाओंसे ही इस प्रान्तकी लड़कियाँ और स्त्रियाँ सीख सकती हैं। यह गुदगुदी गुड़ियों और रोयेंदार जानवरोंका बनाना है। पाश्चात्य देशोंमें, जापानमें और चीनमें इस तरहकी गुड़ियों और खिलौनोंका बनाना घर बैठे काम करनेवाली स्त्रियोंके हाथमें पूर्णतया है, और पाश्चात्य देशों और जापानमें स्त्रियोंके हाथोंमें यह पक्वावस्थापर पहुँच गया है। सच

अवस्थामें अधिक स्पष्ट होता है और दूसरा वह जो छेड़-छाड़की अवस्थामें दूरसे दिखाई देने लगता है।

केहरी दो भिन्न वेशोंमें

हम अभी कह आये हैं कि इल्लियोंमें पाया जानेवाला गुण एक विश्वव्यापी सिद्धांतके अंतर्गत है। इल्ली जैसे तुच्छ प्राणियोंसे लेकर स्तनधारी प्राणियोंतकमें हम इसका प्रचार-प्रसार पाते हैं। केहरीका रंग प्रायः पीलाई लिये हुए भूरा (Tawny) होता है जो साधारणतः इसे खाकी रंगके मैदानोंमें छिपाये रहता है वातावरणके अनुरूप रंग होनेके कारण दोनों रंग परस्पर मिल जाते हैं और दर्शकोंकी दृष्टिसे प्राणी अगोचर बना रहता है। किन्तु उसके शरीरके तीन स्थलोंका रंग पीला-भूरा न होकर कत्थई होता है। ये तीन स्थल उसके अयाल, पूँछका गुच्छा, और दोनों कानोंके पिछले भाग हैं। किसी शत्रु अथवा प्रतिद्वन्द्वीसे मुठभेड़ हो जानेपर क्रोधातुर केहरी अपने अयालोंको खड़ा कर लेता है, पूँछके गुच्छेको उठाकर पीठके ऊपर हिलाने लगता है और कानोंको इस भांति घुमा देता है कि उनके पिछले भाग आगेको हो जाते हैं। इस भाँति वह अपने समस्त सुस्पष्ट स्थानोंका सम्यक् रूपसे प्रदर्शन करता है। शांत अवस्थामें उसका यह प्रयास होता है कि वातावरणमें उसे कोई देख न पावे। क्योंकि तब वह अयालोंको समेटे रहता है; पूंछ गिरी रहती है और कानोंके पिछले भाग छिपे रहते हैं। तात्पर्य यह कि केहरीका यह व्यवहार ठीक उसी समान होता है जिस भांति पत्ते या टहनीपर शांतिपूर्वक आसन जमाये हुए इल्लीका होता है। तनिक छेड़-छाड़ कीजिये और देखिये क्या होता है? तत्काल ही वह अपने समस्त सुस्पष्ट (Conspicuous) रंगोंका प्रदर्शन करता है। इस भांति इस उदाहरणसे भी उसी अटल सर्वव्यापी सिद्धांतकी पुष्टि होती है जिसका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं।

सृष्टिकर्त्ताकी अलौकिकता

क्या आत्म-रक्षाके ये ढंग मानव-समाजद्वारा आविष्कृत ढंगोंसे कहीं अधिक विलक्षण और उत्कर्षपूर्ण नहीं हैं? छद्मप्रदर्शनोंद्वारा शत्रुओंसे आत्म-रक्षा करनेके प्रयत्नोंसे सृष्टिके निर्माण-कर्ताकी अलौकिक बुद्धिका पता लग जाता है और विवशतः मुँहसे यह शब्द निकल पड़ते हैं—

हर एक काम उसका ऐसा है कि जिसको देख हैरत से।
हर एक आक़िलने अपने दांतोंमें उँगली दबाई है॥*

---

* इस लेखके लिखनेमें हमें *Discovery* (अप्रैल ३४) पत्रिकासे बड़ी सहायता मिली है। —शि० चौ०

पूछिये तो दरजनों अन्य व्यवसाय भी अन्य देशोंमें केवल स्त्री-कार्यकर्त्ताओंके ही हाथोंमें हैं, जैसे कुरसियों और कोचों-पर गद्दा लगाना, लकड़ीके सामानपर पालिश करना और घरकी भीतरी सजावटके फुटकर सामान। कोई भी कारण नहीं है कि इस देशकी स्त्रियाँ ऐसी बातोंमें अधिक दिल-चस्पी रखनेकी चेष्टा न करें और भारतीय गृहोंमें स्त्रियोंका जो बहुत-सा फालतू समय बचता है उसे काममें न लावें।

इसे कौन स्त्रियाँ करें ?

इस प्रकारके गुदगुदे खिलौनोंका बनाना वे स्त्रियाँ हाथमें ले सकती हैं जो इस समय सादे कामोंमें दरजियोंकी सहा-यता करके किसी प्रकार दो चार पैसे कमा लेती हैं। वे स्त्रियाँ भी इस कामको कर सकती हैं जो छोटे-छोटे बटुआ, टोपी और इस प्रकारकी अन्य चीजें बनाने और उनको छोटे दूकानदारोंकी मारफत बेंचनेका छोटा-सा रोज़गार करती हैं। केवल एक ही कठिनाई उन स्त्रियोंको जो इस व्यवसायको अपने घर बैठे करना चाहती हैं, आरम्भमें पड़ सकती है, वह यह कि किस प्रकार कपड़ेको उचित टुकड़ोंमें काटें कि तैयार होनेपर जानवर वांछित आकृतिसे भिन्न रूपका न हो जाय। श्री० नायडू जीका इरादा है कि वे पूरे नापके चित्र प्रत्येक जानवरके लिये बनाकर वितरण करें। यदि कपड़ा ठीक-ठीक इन नकशोंके अनुसार काटा जायगा और उनकी सिलाई भी ठीक की जायगी तो केवल उनको उचित वस्तुसे भरना ही शेष रह जायगा। विदेशसे आये वे गुदगुदे खिलौने जो जरा कड़े होते हैं साधारणतः लकड़ीके (wood-wool) घूएसे भरे रहते हैं। दि गवर्नमेन्ट सेंट्रल वुड वर्किंग इंस्टिट्यूट (The Government Central Wood Working Institute) बरेली, बहुत अधिक मात्रामें अपने निजी व्यवहारके लिये और फिर बाहर भेजे जानेवाले फलोंको पैक करनेके वास्ते फलवालोंके हाथ बेचनेकी गरज-से लकड़ीका घूआ तैयार करती है। इंस्टिट्यूट इस घूएको बहुत सस्तेमें बेंचती है।

सामग्री

एक सेर घूआ चार आनेमें मिल सकता है और एक खिलौनेके भरनेमें एक पाव भी घूआ नहीं लगेगा। लकड़ीके घूआके अतिरिक्त शीशेकी आँखोंकी आवश्यकता पड़ेगी। कुछ पक्के लोहेके तारकी भी आवश्यकता पड़ेगी। इसको टाँगोंके भीतर दिया जाता है जिससे टाँगे टूटने न पायें या बहुत पास-पास न हो जायँ। कभी-कभी सीटीकी भी आवश्यकता पड़ेगी। खिलौनोंको उचित रीतिसे भरना भी अत्यंत आवश्यक है। यदि यह काम सावधानीसे न किया जायगा तो खिलौना गँठीला हो जायगा और थोड़े ही दिनोंमें इसकी आकृति बिगड़ जायगी। इस तरहके खिलौनोंका बनाना बहुत-सी स्त्रियोंको रोचक जान पड़ेगा। किसी भी तरहका कपड़ा, जैसे फटे पुराने कपड़ोंके अच्छे भाग और किसी भी तरहकी भरनेकी चीज़ जैसे टुकड़े-टुकड़े फाड़े गये चिथड़ोंसे लेकर चिड़ियोंके परतक इस कामके लिये प्रयोग किये जा सकते हैं। परंतु गुड़ियाँ अंतमें छोटे बच्चोंके हाथमें जाकर पड़ेंगी; इसलिये इनमें कोई आरोग्यविघातक गंदी चीजका भरना पाप होगा।

बनानेका खर्च

बत्तक बनानेके लिये निम्न-लिखित सामग्रीकी आव-श्यकता पड़ेगी—

(१) ४ गिरह बड़े रोएँवाला मखमल, दर १॥) गज, दाम ।=)

(२) चोंच और पैरके लिये चमड़ेके टुकड़े)॥

नोट—इसके बदले नारंगी रंगके नकली फलालैनसे काम चलाया जा सकता है और वे स्त्रियाँ जिन्हें चमड़ेके उपयोगमें आपत्ति हो फलालैन लगा सकती हैं।

(३) लकड़ीका घूआ, भरनेके लिये -)

(४) एक जोड़ी आँख -)

इस प्रकारका बना विदेशी बत्तक बाजारमें कहीं भी १॥) से कममें नहीं मिलेगा। इससे स्पष्ट है कि मजदूरी और मुनाफाके लिये इसमें पूरी गुंजाइश है। कोई भी सीने-पिरोनेमें चतुर स्त्री सुगमतासे एक दिनमें तीन बत्तकें बना सकेगी। इसी प्रकार कुत्तेके बनानेमें आवश्यक सामानका खर्च १।) बैठेगा और बिल्लीके बनानेमें ॥।) । जब बहुतसे खिलौने बनाने हों तो 'कटपीस' मखमलसे खिलौनेके अंग काटे जा सकते हैं। इस प्रकारके कटपीस मखमल, प्लश, वेलवेटीन और फ़लालैन इत्यादि कटपीस बेचनेवालोंसे बहुतसा खरीदा जा सकता है। ये तौलकर और सस्ते बिकते हैं। यदि कटपीसका उपयोग किया जाय तो लागत-के और भी कम पड़नेकी संभावना है। —लीडरसे

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

भारतेन्दुको विज्ञानकी श्रद्धांजलि

पचास बरस हुए आधुनिक हिन्दी गद्यका जन्मदाता भारतेन्दु इस साहित्याकाशसे अस्त हो गया। परन्तु उसने अपनी जो ज्योत्स्ना फैलायी थी, वह आज भी अमन्द रूपसे विराज रही है, उसने आज भी खेत कर रखा है। "विज्ञान" उसीकी प्रभामें प्रकाशित हो रहा है। यद्यपि वह वैज्ञानिक न था तथापि वह साहित्यका निर्म्माता और इतिहासका अप्रतिम खोजी था। परिषत्का उद्देश्य उसकी जीवनाभिलाषाका ही एक रूपान्तर और अंश है। परिषत् जैसी संस्थायें उसके ही प्रोत्साहनका परिणाम हैं। उसके पचासवें सारस्वत श्राद्धके अवसरपर हम भी विज्ञान परिवारकी ओरसे अपनी विनीत श्रद्धाञ्जलि अर्पण करके अपनेको धन्य मानते हैं। रा० गौ०

गत पचास वर्षोंमें विज्ञान

भारतेन्दुके अल्प किन्तु अत्यन्त प्रतिभापूर्ण और उपयोगी जीवनकी यह भारी अभिलाषा थी कि हिन्दी साहित्य सर्वांगपूर्ण हो। उन्होंने वाङ्मयके अंगको स्वयं अपने उद्योगसे सर्वांगपूर्ण बनाकर ही छोड़ा। परन्तु विज्ञानका साहित्य तो अंग्रेजी भाषामें ही अपनी शैशवावस्थामें था। भारतेन्दुके गुरुकल्प राजाशिवप्रसादने फिर भी हिन्दीमें विद्यांकुर और भूगोल हस्तामलक तथा उर्दूमें हकायकुल मौजूदात नामकी पुस्तकें प्रकाशित करके उनके सामने ही हिन्दीमें विज्ञानकी कमी पूरी करनेकी कोशिश की। काशीपत्रिकामें, जो भारतेन्दुके सामने ही निकल रही थी, उनकी मृत्युके बाद वैज्ञानिक लेख भी निकले थे। परन्तु काशीपत्रिका बन्द हो गयी और कविवचन-सुधा और चन्द्रिका तो पहले ही बन्द हो चुकी थी। फिर भी स्व० पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र आदिने पदार्थ-विज्ञान विटप, जीव-विज्ञान-विटप, सरल त्रिकोणमिति आदि पुस्तकें लिखी थीं। श्रद्धेय रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए० ने भी वैज्ञानिक पुस्तकें लिखकर हिन्दीका भंडार भरनेका प्रयत्न किया। भारतेन्दुकी मृत्युके बाद भी कई वर्षोंतक बराबर इन प्रान्तोंमें मिडिलतक सभी विषयोंकी शिक्षा और परीक्षा हिन्दी उर्दूमें ही होती थी। उस समय इन पुस्तकोंको पाठ्य ग्रंथोंमें स्थान मिलता था। नहीं तो विज्ञानकी पुस्तकें खरीदता कौन? परन्तु जब मिडिलतक भी शिक्षा और परीक्षाकी भाषा अंग्रेजी बन गयी, तो इन पुस्तकोंका छपना भी बन्द हो गया। संवत् १९४७ से १९६७ विक्रमी तकके बीस बरसोंमें विज्ञानका एक भी ग्रंथ हिन्दीमें नहीं निकला! इन दो दशकोंके अन्तमें प्रो० महेशचरण सिंहने "हिन्दी केमिस्ट्री" प्रकाशित करके इस अकर्म्मण्यताका तिलिस्म तोड़ा। इसी समय गुरुकुल कांगड़ीने वैज्ञानिक पाठ्यग्रंथ भी प्रकाशित किये। इसी समयके लगभग संवत् १९७० में विज्ञान परिषत्की स्थापना हुई और इसके बाद "विज्ञान" निकला। विज्ञानसे वैज्ञानिक प्रकाशनोंका नयायुग आरंभ होता है। तबसे आजतकके दो दशकोंमें तो विज्ञानकी बहुत सी पुस्तकें निकल चुकीं और सुबोध विज्ञानके नाते तो हम कह सकते हैं, कि कोई विषय विज्ञानसे अछूता नहीं छूटा है।

आजसे पचास बरस पहले अंग्रेजीमें भी वैज्ञानिक साहित्यका शैशव ही समझना चाहिये। अतः हम कह सकते हैं कि भारतेन्दुकी प्रभामें काम करते हुए साहित्यका वैज्ञानिक अंग भी समुचित रीतिपर सजता सँवरता रहा है।

महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वतीकी वैज्ञानिक सेवाएँ

इस शीर्षकपर पाठकको आश्चर्य न होना चाहिये। स्वामीजीने वेदोंकी व्याख्यामें वैज्ञानिकताका प्रवेश कराकर विज्ञानकी ओर अपने अनुयायियोंका ध्यान आकृष्ट किया। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी प्रभृति विद्वानोंने वैज्ञानिक व्याख्याओंपर जोर दिया। लोगोंके मनमें विज्ञानके परिशीलनकी ओर प्रवृत्ति हुई। स्वामीजी और उनके अनुयायी राष्ट्रभाषाके पक्षपाती थे, अतः राष्ट्रभाषामें वैज्ञानिक साहित्यकी ओर सहज प्रवृत्ति हुई। यद्यपि आर्य्यसमाजने वैज्ञानिक साहित्यके प्रकाशन या निर्माणमें कोई विशेष सहायता न दी तथापि आर्य्यसमाजी तर्क करनेवाले जिस विज्ञानकी सच्ची या झूठी दुहाई देते थे, उसके जाननेके लिये

उत्सुक वायुमंडल अवश्य बन गया। इसके लिये हम स्वामीजीके ऋणी हैं।

संशोधन

इसी अंकमें पृ० १९१ पर छपा "गुदगुदे खिलौने" वाला लेख श्रीमान् डा० भोरखप्रसादजीने लीडरसे हिन्दी करके भेजा है। रा० गौ०

त्रिदोष-मीमासांकी समीक्षा

हमारे सहकारी सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्दजीने त्रिदोष-मीमांसा लिखकर अपनी विद्या और समझके अनुसार आयुर्वेदके त्रिदोष-सिद्धान्तका खंडन किया है और वह भी आधुनिक विज्ञानका सहारा लेकर। यह बात उस समुदाय-को स्वभावतः खलेगी जो ऋषियोंकी कृतियोंकी पूर्णता और अखंडतामें विश्वास करता है। स्वामी हरिशरणानन्दजी उन लोगोंमें हैं जो ब्रह्माको भी भूलचूकसे परे नहीं मानते। उन्होंने वैद्योंको चुनौती दी है कि वे त्रिदोषको वैज्ञानिक सिद्ध करें। परन्तु उनका यह दावा नहीं है कि इस सम्बन्धमें मैंने अन्तिम बात कही है। उनकी पुरस्कार-घोषणा ही इस बातको सिद्ध करती है कि जब सम्मेलन इस विषयपर कुछ न कर सका तो वे अपने बूतेपर ही इस महदुपकार कार्य्यके सम्पादनमें उद्यत हुए। उनकी चुनौती "वादे वादे जायते तत्त्वबोधः"के सिद्धान्तपर ही अवलंबित है।

इसपर कं० उपेन्द्रनाथदास, पं० हरदयालजी, और आयुर्वेदाचार्य्य सुरेन्द्र मोहनजी प्रमुख वैद्योंने इस पुस्तककी समीक्षाका प्रयत्न किया। खेद है कि इन विद्वानोंके इस सम्बन्धके लेखोंमें वैयक्तिक आक्षेप ही अधिक हैं और समालोचना या समीक्षाके बदले केवल शास्त्रार्थकी विधिका अनुसरण किया गया है। स्वामीजीके उत्तरमें भी अगत्या वैयक्तिक प्रत्याक्षेप ही प्रमुख रहे। बहुत अच्छा होता यदि ये विद्वान् व्यक्तियोंको भूलकर केवल मीमांसाके विषयकी समीक्षा करते। मेरा अपना अनुमान है कि विज्ञानसे पंच-महाभूतों और तीनों दोषोंका भलीभांति समन्वय हो सकता है। पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष दोनोंका वैयक्तिक विषयोंको लेकर परस्पर काकूक्ति और कटूक्ति करना दुर्बलता-का द्योतक है। —रा० गौ०

शास्त्रार्थ और समीक्षा

शास्त्रार्थ उस समयकी वस्तु है जब प्रकाशनकी यही एकमात्र और सर्वोत्तम विधि थी। परन्तु आज सामयिक पत्रोंकेद्वारा समीक्षा उन सब लोगोंकी निगाहोंसे थोड़े ही धन, प्रयास और कालके व्ययसे गुजर सकती है, जो उसके अधिकारी और पारखी हैं। समीक्षाकी इस लिखित विधिमें भी विद्वज्जनोंको शब्दोंके अपव्ययसे बचना चाहिये। एक दूसरेको नीचा दिखाना शास्त्रार्थ या समीक्षाका उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता। वैज्ञानिकोंकी परिषदोंमें नित्य नये सिद्धान्तोंका प्रतिपादन और प्राचीन एवं अर्वाचीन आचार्य्योंके सिद्धान्तोंका खंडन होता रहता है। वैसे मनमें चाहे उभय पक्ष परस्पर व्यक्तिगत द्वेष भले ही मान लें परन्तु वक्तता वा लेखमें कटुता लाना असज्जनता समझी जाती है और इसकी गंध भी आने नहीं पाती। हमारे विद्वान् बन्धुओंको भी इसी शैलीका अनुसरण करना चाहिये।

फिर यह शैली नयी भी नहीं है। जनकजी विद्वत्सभामें गौओंका पारितोषिक रखते हैं। याज्ञवल्क्य और गार्गीमें इस-पर जो शास्त्रार्थ होता है उसमें कहीं कटुता या काकूक्ति भी है?

यह सच है कि स्वामी हरिशरणानन्दकी आलोचना तीव्र है, परन्तु उनसे बहुत पहले महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने भी तो कहीं अधिक तीव्र और मनको भारी चोट पहुँचानेवाली समीक्षाएँ की थीं जिससे सारा भारत जग पड़ा। महर्षिको गाली देनेवाले भी असंख्य हुए और हैं, यह सही है; परन्तु वे क्या विद्वान् समझे गये या समझे जाते हैं? जो हो, जैसे महर्षिकी बदौलत भारत जग गया वैसे ही इन स्वामीकी बदौलत वैद्य-संसार जग जाय तो क्या बुरा है?

आयुर्वेदका व्यावहारिक खंडन

पुराने सिद्धान्तोंके खंडनसे हम कुढ़ते जरूर हैं पर व्यवहारमें ही हम बड़ी संख्यामें चुपचाप उन्हीं सिद्धान्तों-का खंडन किये जा रहे हैं। यह तो आयुर्वेदकी जड़ खोदना है। सचाई तो यह चाहती है कि या तो खुल्लम-खुल्ला आयुर्वेदको छोड़ दीजिये या उसके सत्यका प्रति-पादन करके उसका अनुसरण कीजिये, अथवा जो अंश सुधारने योग्य हो उसे सुधारकर शास्त्रका परिष्कार कीजिये,

और वह सब करें खुले बन्दों, सभी विद्वान् और अनुभवी वैद्य मिलकर। स्वामी हरिशरणानन्दजी दूसरा कुछ नहीं चाहते। शास्त्रार्थकी विधि भी वर्त्तिये, सामयिक पत्रोंमें समीक्षा कीजिये और खंडन मंडन संबन्धी ग्रन्थ लिख डालिये। सभी विधियों और उपायोंसे काम लीजिये।

समीक्षा-विषयक हमारी नीति

हम शास्त्रीय समीक्षाओंका सदा सहर्ष स्वागत करते हैं, परन्तु उसके साथ शर्त्त यह है कि वे भरसक विषयकी सीमाओंका अतिक्रमण न करें, माने हुए वैज्ञानिक सत्योंसे असंगत न हों, व्यर्थके शब्दाडम्बरसे बचकर कसी हुई भाषामें हों और व्यक्तिगत आक्षेपोंसे रहित हों। विज्ञान अगाध और अपार है, कोई एक व्यक्ति सभी विज्ञानोंकी जानकारीका दावा नहीं कर सकता। एक-एक शाखाका भी किसी एक मनुष्यको पूर्ण ज्ञान होना असंभव है। अतः वैज्ञानिक समीक्षा करनेमें बड़ी नम्रताकी आवश्यकता है। इसके सिवा विज्ञान सतत-वर्धमान शास्त्रोंका समूह है। आज कोई सिद्धान्त सर्वमान्य हो रहा है। कलको उसीमें इतना परिवर्त्तन और परिवर्धन हो सकता है कि वह अपने पूर्वरूपमें पहचाना ही न जा सके। परन्तु विज्ञानके अनेक सूत्र जो गणितके कांटेपर ठीक उतर चुके हैं, आज सर्वमान्य हैं। उनकी व्याख्या चाहे बदल जाय, परन्तु नित्य-सत्य बदलनेवाली चीज नहीं है। दो और दो चार होते हैं, यह सत्य बदल नहीं सकता। अतः कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिनपर दृढ़ निश्चय प्रकट किया जा सकता है और उनके आधारपर हम किसी विषयपर विचार कर सकते हैं।

संकीर्ण मनोवृत्ति और सहनशीलता

किसी विशेष क्षेत्रको अपनाकर उसका पक्षपोषण करनेके लिये उचित और अनुचित सभी तरहके उपायोंसे काम लेना बुद्धिके विकासके द्वारको बन्द कर देना है। कट्टर ईश्वरवादीका अपने सभी विपक्षियोंको नास्तिक ठहराना, नास्तिकोंका सभी ईश्वरवादियोंको मूर्ख, धूर्त और पागल ठहराना, समष्टिसत्तावादियोंका अपने सभी विपक्षियोंको पूंजीपतियोंका एजेंट ठहराना, और विज्ञान लव-दुर्विदग्धोंका विभिन्न विषयवालोंको बोलनेका अनधिकारी ठहराना वह संकीर्णता है जो अधिकांश सुपठित और सुश्रुत समाजमें बहुलतासे पायी जाती है। वास्तवमें विज्ञान ऐसी संकीर्णताका पोषक नहीं है। सच्चा विज्ञानी विपक्षको सहन करता है, विरोधीके मतको न मानते हुए भी उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखता है। उसपर कटुवाद या काकूक्तिका ओछापन वैज्ञानिक गंभीरताके विपरीत है। एक **ऐंस्टैन** न्यूटनतकके सर्वमान्य सिद्धान्तका बिना किसी कटुताके खंडन करता है और कोई अन्य विद्वान बिना किसी विरोधी भावके ऐंस्टैनके तर्कोंकी धज्जियाँ उड़ा देता है। यशकी लिप्सा और ममत्वके कारण मनमें द्वेषका भाव भले ही उपजे परन्तु सत्यान्वेषणकी शुद्धवृत्ति और विज्ञानकी गभीरता इस क्षुद्रभावकी भर्त्सना करती है और इस पवित्र काममें आड़े नहीं आने देती। —रा० गौ०

कमलजीका उपालंभ

कमलजीको अग्रहायणकी "गंगा" में "लाचार होकर" "कुछ वक्त जाया करना पड़ रहा है" इसका मुझे भी खेद है। आपने मुझसे यह व्यर्थ ही पूछा है कि **"कपूरजीने क्या-क्या सबूत दिये हैं कि, मैंने "सुधा" कार्य्यालयसे लेख उड़ा लिया है और महाशय कपूरका लेख ही" "प० वि० क० कु०" के नामसे छपा है।** पहले प्रश्नका उत्तर यह है कि यह मेरा अभियोग ही नहीं है और "विज्ञान" में कहीं इसकी चर्चा नहीं है। फिर आप मुझसे यह प्रश्न पूछकर "चोरकी दाढ़ीमें तिनका" वाली कहावतको क्यों चरितार्थ करते हैं? दूसरे प्रश्नका उत्तर यह है कि आधेके लगभग वह लेख मैंने स्वयं प्रताप-वाले लेखसे मिलाया था जिसका स्पष्ट विवरण इस पत्रके भाग ४० संख्या १ के पृ० ३२-३३ पर दिया है। उसके दोहरानेकी जरूरत नही है। "प्रताप" ३० अक्तूबर १९३२ के सतीशकुमारवसुके लेखको हीं नाममात्रके परिवर्त्तनके साथ विज्ञानांकमें दोहराया गया है।

आप आगे चलकर कपूरजीपर अन्य किसीकी चोरी करनेका अभियोग लगाते हैं। आपका यह अभियोग सही या गलत कुछ भी हो, दूसरेकी गंदगीसे आपकी सफाई तो हो नहीं जाती। जिसकी हमने चोरी की है, वह भी चोर ही है, ऐसा सिद्ध होनेपर भी हमारी चोरी असिद्ध नहीं हो जाती। आपने आगे चलकर बख्शीजीके "विश्वसाहित्य" को चोरीका माल ठहराया है। यह भी कोई असंभव बात नहीं है। साहित्यिक चोरीके सम्बन्धमें विज्ञानके उपर्युक्त

अंकमें जो मैंने लिखा था उसका छोटासा अंश फिर दोहराता हूँ। "ऐसे-ऐसे नामी और यशस्वी लेखक भी वास्तविक चोरीसे मुक्त नहीं हैं जिनका सिक्का जमा हुआ है, और जो आवश्यकता पड़नेपर साहित्य जगत्में विचारकका पद ग्रहण करने योग्य समझे जा सकते हैं।" कमलजी इसी विचारका पिष्ट-पेषण करके अपने अभियोगसे मुक्त नहीं हो सकते। चोर कहे कि मैंने चोरी नहीं की है, परन्तु और भी बहुतसे चोर हैं, उन्हें क्यों नहीं पकड़ते, तो उसकी यह दलील उसकी सफाई नहीं करा सकती। विज्ञानाचार्य्य सर जगदीश वसुके अन्वेषणकी लंडनकी रायल सोसैटीसे किसी प्रसिद्ध वैज्ञानिकने चोरी की थी। उसकी चोरी कई बरसों बाद सिद्ध हो गयी और सर जगदीशकी अन्तमें विजय हुई। चोर सभी क्षेत्रमें हैं और अनेक विद्वानोंकी इस जातिमें गिनती हो सकती है। कमलजीको एक उच्चसमाजके सदस्य होनेका गौरव प्राप्त है। परन्तु मैं कमलजीसे प्रार्थना करूँगा कि आप इस समाजसे भी ऊँचे उठ जाइये। चुप रहना कुछ अच्छा ही था। सफाईमें आगे बढ़नेसे अभियोगकी स्वीकृति और प्रायश्चित्त प्रकृतदोषीके भी व्यक्तित्वको ऊँचा और पवित्र बना देता है। सच्ची सफाई यही है।

रवि वर्म्मा या व्यासजीके अभियोगोंकी मैंने चर्चामात्र की थी। जब किसीपर एक चोरी सिद्ध हो जाती है, तो और अभियोगोंपर किया हुआ संदेह दृढ़ हो जाता है। परन्तु इससे और अभियोग सिद्ध नहीं हो जाते।

आपने सम्पादकोंको जो उपालंभ दिया है वह कमसे कम विज्ञान-सम्पादकके सम्बन्धमें निराधार है। मुझे पता नहीं कि "कमल" जीके पास विज्ञान जाता है, या नहीं। परन्तु न तो कमलजीका पता मुझे मालूम है कि उनसे पत्रव्यवहार करता और न "कमल" जीने कभी मुझसे पत्रव्यवहार किया, न "विज्ञान" का कोई अंक मांगा। "कमलजी" का पता मुझे नहीं मालूम, परन्तु मेरा पता "कमलजी" को अवश्य मालूम है।

"कपूर"जी, "कमल"जी, "दिनकर जी" प्रभृति सभी साहित्य-सेवियोंके लिये मेरे हृदयमें बराबर सम्मान है। साहित्यिक चोरी अच्छी बात नहीं है। उसीकी मैं निन्दा करता हूँ। जिस किसीकी कृति हो उसका नामोल्लेख करना आवश्यक है। इसमें भलमनसाहत और ईमानदारी है। भूलसे छूट जाय तो मालूम होनेपर अपनी भूल स्वीकार कर लेनी चाहिये।

"कमल"जीके लेखमें यह ध्वनित हुआ है कि मैंने किसीका पक्ष लिया है। "कपूर"जी "कमल जी" और "दिनकर जी"से भी मेरा कोई नाता नहीं है। जो कुछ मैं सत्य समझता हूँ उसके स्पष्ट लिखनेमें साहित्यिक बन्धुताका कोई प्रभाव नहीं पड़ता और न पड़ना चाहिये। मैंने इस संबन्धमें साहित्यक विनोदसे ही काम लिया है। कटुतासे नहीं। मेरा कभी यह उद्देश्य न था कि "कमलजी" या "दिनकर जी"का जी दुखाऊँ। यदि किसीका जी दुखा है और मेरे लेखसे दुखा है तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे इसका सच्चा पछतावा और खेद है। —रा० गौ०

"ईन" प्रत्ययवाले औषध

अमृतसरकी पंजाब आयुर्वैदिक फारमेसी अनेक ऐसे पेटेंट औषध बेचती है जिनके विशेष नाम ईनान्त रखे गये हैं। जैसे स्प्लीनीन (तिल्लीकी दवा), अनीमीन (पांडु रोगकी दवा), कटारीन (जुकामकी दवा), इत्यादि। इसमें ओषधियाँ देशी ही हैं, इनका नाम विदेशी रखा गया है। यहाँ "ईन" प्रत्यय स्पष्ट ही "क्लोरीन", "ब्रोमीन" आदिवाला है। संस्कृतके "ईन" प्रत्ययसे कोई सरोकार नहीं। ये नाम धोखा देनेके लिये नहीं रखे गये हैं। नामोंकी रजिस्ट्री हो जाती है तो दूसरे उन नामोंकी दवाएँ बेच नहीं सकते। विज्ञानके सभी पाठक ये बातें समझते हैं। "आयुर्वेद-संदेश" के पौषके अंकमें मुख्य सम्पादक महोदयने फिर भी यह आवश्यक समझा है कि अपने संस्कृतज्ञ पाठकोंको यह चेतावनी दे दें कि **"पाठकवृन्द यह संस्कृतका ईन प्रत्यय न समझें, यथा नवीन, प्रवीणादि शब्दोंमें होता है।"** अयँ! "प्रवीण" शब्दमें क्या ईन प्रत्यय है? इस संस्कृतज्ञताकी बलिहारी! भगवन्! भारतीय कलाके ह्रासके कारण वीणा बजानेकी कुशलताका तो अब अभाव ही है, परन्तु उसकी कहानी कहनेवाले बेचारे "प्रवीण"की व्युत्पत्ति भी लोग भूलकर आज आयुर्वेदाचार्य्योंके मतानुसार "ईन" प्रत्ययान्त बताने लगेंगे। फिर वीणाका तो लोप ही हो जायगा! परन्तु "प्रव्" कहाँसे आयेगा? लाहौर की डी० ए० वी० फारमेसीसे? एक फारमेसीके संचालकका दूसरी फारमेसीके विरुद्ध इस प्रकार लिखना कहाँतक सभ्य

और सज्जनोचित है, यह विचारणीय है।　　　　रा० गौ०

पंचमहाभूतोंपर विद्वानोंका विचार

हमें अपने सुज्ञ पाठकोंको यह सूचना देते हुए बड़ा हर्ष होता है कि आगामी जुलाई मासमें काशी-धामके हिन्दू-विश्वविद्यालयमें विद्वज्जन एकत्र होकर पंचमहाभूतोंपर विचार करेंगे। इस विमर्शमें सम्मिलित होनेके लिये देशके समस्त दार्शनिकों, वैद्यों एवं वैज्ञानिकोंको सादर निमंत्रण है। वे या तो श्रीमान् पंडितप्रवर यादवजी त्रिकमजी आचार्य्य, ३६६, कालबादेवी रोड, बम्बई, अथवा श्री पंडित वामनशास्त्री दातार वैद्यभूषण, नासिक, इनमेंसे किसी पतेसे यह सूचना देनेकी कृपा करें कि (१) आप दार्शनिक, आयुर्वेदीय या वैज्ञानिक किस मतसे किस बातका खंडन करेंगे, या किस बातका मंडन करेंगे, (२) आप संस्कृत भाषा या राष्ट्रभाषा हिन्दीमें अपना मत प्रकट करनेमें समर्थ हैं या नहीं, और (३) आप कुछ लिखकर या छपवाकर उपस्थित करा सकेंगे या नहीं। यह विषय भारतके लिये बड़े महत्त्वका है। इसमें विद्वज्जनोंको अपना सौ हर्ज करके सम्मिलित होना चाहिये।　　— रा० गौ०

क्या विज्ञानके सम्पादकोंमें आपसका मतभेद है?

विज्ञान भाग ३९ संख्या ६ के पृ० १९९ पर स्वामी हरिशरणानन्दके एक लेखपर टिप्पणी देते हुए कई वैज्ञानिक धारणाओंका मैंने स्पष्टीकरण किया है। इसपर कविराज उपेंद्रनाथदासको यह भ्रम हुआ है कि सम्पादकोंमें मतभेद है। उक्त लेख आयुर्वेद-सम्बन्धी वाद-विवादपर था जिससे मेरा सम्बन्ध न था न है। उस लेखके लेखक स्वामीजी हैं, उसके सम्पादक वे नहीं हैं। उस लेखका विशेष सम्बन्ध रसायन-विज्ञानसे था अतः सम्पादन मैंने किया है। विज्ञानमें जो लेख छपते हैं, विविध विषयोंपर होते हैं। कोई एक सम्पादक सभी विषयोंका विशेषज्ञ नहीं हो सकता। स्वामी हरिशरणानन्दजीने जो लेख आयुर्वेदपर लिखा था उसमें उन वैज्ञानिक तथ्यों और सिद्धान्तोंकी भी चर्चा थी जिनके वे विशेषज्ञ नहीं हैं। उनपर मैंने नोट देना आवश्यक समझा। जहाँ आयुर्वेदके विषयके साथ आधुनिक विज्ञानके विषयका समन्वय होगा वहाँ दोनों विषयोंका ज्ञातृत्व आवश्यक है। यदि लेखक इस सम्बन्धमें कोई भूल करता हो या उसके लेखसे पाठकोंको भ्रमकी संभावना हो तो उस विषयका विशेषज्ञ सम्पादक अपनी टिप्पणी देता है। इसमें लेखकसे मत-भेद हो सकता है। परन्तु सम्पादकोंमें मत-भेदका प्रश्न यहां नहीं आता।

कविराजजीने यह भी उपालंभ दिया है कि विज्ञानमें आयुर्वेद-विषयक लेख केवल स्वामी हरिशरणानन्दजीके छपते हैं। यह उपालंभ भी निराधार है। स्वामीजीसे संबन्ध होनेसे पहलेसे ही विज्ञानमें आयुर्विज्ञान संबन्धी लेख निकलते रहे हैं और अब भी औरोंके लेख निकलते हैं। चिकित्सा-सम्बन्धी लेख चाहे किसी उपचार सम्प्रदायके हों विज्ञान सबका स्वागत करता है। कविराजजी कृपा करें तो हम उनके भी कृतज्ञ हों।

असभ्यताका नंगा नाच

आजकल बोलते-चालते चित्रोंने असभ्यताका जो नंगा नाच जारी कर रखा है, उसके विरोधमें हम कई सालसे लिख रहे हैं। कलकत्तेके एक प्रसिद्ध मारवाड़ी पूँजीपति रायबहादुर रामदेव चोखानीजीने भी इस संबंधमें कलकत्ता गज़टमें सिनेमाके विरोधमें एक जोरदार लेख प्रकाशित कराया है। चोखानी जी भी इस भयानक दुर्नीतिके विरुद्ध आन्दोलन करना चाहते हैं। अमेरिकामें पहले कैथोलिक सम्प्रदाय वालोंने कनाडामें इस सिनेमा-विरोधी आन्दोलनको उठाया, अब कनाडाका सारा प्रोटेस्टेंट समाज उनके साथ हो गया है।

यह उस देशकी दशा है जहाँ हमारे यहाँ अनेक दुर्नीति समझी जानेवाली बातें नीतियुक्त समझी जाती हैं। परन्तु हम लाचार हैं। पाश्चात्य दुर्नीतिके इस भयानक आक्रमणका सामना करना हमारे लिये कठिन हो रहा है। कानून इस अश्लीलताके विरुद्ध है परन्तु न जाने क्यों वह पंगु हो रहा है। हमारे देशके नेताओं और सुधारकोंका ध्यान न जाने क्यों इस ओर नहीं जाता। अर्थशास्त्र, धर्म्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र तीनों सिनेमाके विरोधी हैं। परन्तु लोग कानोंमें तेल डाले बैठे हैं। शराबकी तरह दूषित सिनेमाके भी बहिष्कारके उपाय करने चाहिये। हमारे समाजके सुधारक कब सजग और सतर्क होंगे?

म्युनिसिपल गजट या हेरल्डमें श्रीचोखानीजीके लेखका छप जाना भी गनीमत है। **विज्ञान** और **रोशनी** ऐसे लेख छापते हैं। परन्तु और पत्र? प्रायः और सभी पत्र

सिनेमाके हाथ बिके हुए हैं। सिनेमाके विज्ञापनोंसे उनकी खासी आमदनी है। विरोधी लेख छापकर अपनी आमदनीसे हाथ धो बैठना कहाँकी बुद्धिमानी है? पैसेकी ताकतको देखिये कि हमारे अनेक नामी साहित्यिक अपने आप इस तिलिस्मके मकानमें हँसते-हँसते कूद पड़ते हैं और गायब हो जाते हैं। हमारा साहित्यिक परिवार कितने ही लालोंको इस भयानक प्रलोभनकी भूल-भुलैयामें खोकर आज क्षीण हो रहा है। इस भयानक विपत्तिसे उबारनेके लिये कोई प्रबल शक्तिशाली सुधारक और नेता चाहिये। है कोई?

—रा० गौ०

बाईसवां अखिल भारतीय विज्ञान-सम्मेलन, १९३५

[ले०—प्रो० चंद्रीप्रसाद, एम्० ए०, बी० एस्-सी०, काशी।]

इस ईसवी वर्षके आरंभके पहले सप्ताहभर कलकत्ता-विश्वविद्यालयके सेनेट हालसे आरंभ करके प्रेसिडेंसी कालेजकी विविध प्रयोगशालाओंमें अखिल भारतीय विज्ञान-सम्मेलनकी, तथा विज्ञानकी विविध शाखाओंकी बाईसवीं बैठकें हुईं। बड़े लाट साहबने इस सम्मेलनका पहले दिन, २ जनवरीको, उद्घाटन किया। इस अवसरपर बंगालके छोटे लाट साहब भी उपस्थित थे। उनके सिवा बाईसवें सम्मेलनके सभापति आसामके डिप्टी कमिश्नर डा० जे० एच्० हटन सी० आइ० ई०, पूर्व सभापतियोंमें सर जगदीशचन्द्र बोस, डा० एल्० एल्० फरमोर, प्रो० मेघनाथ साहा, बंगालके शिक्षा मंत्री खानबहादुर मौलाना अजीजुल-हक़, और विभाग सभापतियोंमें डा० शा, प्रो० सेन, डा० मित्र प्रभृति गण्यमान्य विद्वान् उपस्थित थे। इस उद्घाटनके स्वागताध्यक्ष श्रीश्यामाप्रसाद मुकरजी और उपाध्यक्ष सर ब्रह्मचारी और सर नीलरतन सरकार थे।

उद्घाटनके बाद सम्मेलनके नियमित अधिवेशन प्रेसिडेंसी कालेजकी बेकर प्रयोगशालाओंमें तथा कलकत्तेके अखिल भारतीय स्वास्थ्य-परिषत्के मंदिरमें हुए। कुल नौ विभागोंकी बैठकें हुईं। (१) कृषिविभागके सभापति डा० शा थे। (२) गणित और भौतिक विज्ञानके सभापति डा० सेन थे। (३) रसायन-विभागके सभापति डा० सरकार थे। (४) जंतु विज्ञानके सभापति पंजाबके दीवान आनन्दकुमार थे। (५) उद्भिजविज्ञानके सभापति प्रयाग विश्वविद्यालयके डा० मित्तर थे। (६) भूगर्भविज्ञानके डा० कृष्णन् सभापति थे। (७) भैषज्य और शालिहोत्र विभागके मेजर डा० अय्यङ्गर सभापति थे। (८) मानव-जाति-विज्ञान विभागके सभापति बम्बईके डा० घुर्ये थे। और मनोविज्ञान विभागके सभापति डा० मित्र थे।

विभागोंके अधिवेशन अलग-अलग हुए। ये प्रतिदिन लगभग १० बजेसे १ बजेतक होते थे। कई विभागोंकी सम्मिलित सभाएँ भी ऐसी समस्याओंपर विचार करनेके लिये हुईं, जैसे,

१. मृत्तिका-विज्ञानके लिये एक अखिल भारतीय परिषत्की स्थापना।

२. सन् १९३४के उत्तरी बिहारके भूकम्पपर विचार।

३. अनाजके रोगोंपर विचार।

४. भारतीय मध्यशालाओंमें प्रारंभिक जीव-विज्ञानकी पढ़ाईपर विचार।

५ खाद्योजों, विटामिनोंपर विचार, इत्यादि।

तीसरी, चौथी पाँचवीं और छठी जनवरीकी शामको प्रतिदिन ६—६॥ बजेके लगभग सेनेटहौसमें सुबोध सार्वजनिक व्याख्यान इस प्रकार हुए—

(१) विषय "सेल-बीजकी रचना", व्याख्याता, बंगलोरके भौतिक विज्ञानके आचार्य्य रावबहादुर प्रोफेसर बी० वेंकटेशाचार्य्य।

(२) विषय "तेलकी खोज", व्याख्याता, बरमा ओयल कम्पनीके भूविज्ञानी श्री पी० ईवान्स।

(३) विषय "रसायन-विज्ञान और आयात निर्यात-कर"। व्याख्याता, लाहौरके अनांगारिक रसायनके आचार्य्य डा० डनीक्लिफ़।

(४) विषय "एलेक्ट्रोकार्डिग्राफ़के प्रयोग और हृद्रोगोंके उपचारमें उसकी सहायता।" व्याख्याता कलकत्तेके डा० योगेन्द्रनाथ मैत्र, एम्० बी०, डी० पी० एच्०।

इस सम्मेलनके साथ ही विविध दर्शनीय स्थानोंकी सैरका भी प्रबन्ध किया गया था, जिससे विभिन्न प्रान्तोंके

भारतकी राष्ट्रिय विज्ञान महापरिषत्

[ले०—प्रो० चन्द्रीप्रसाद, एम्० ए०, बी० एस्-सी०, काशी ।]

७ जनवरी, सन् १९३५ की तारीख विज्ञानके भारतीय इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगी। उसी दिन कलकत्तेमें बंगालके छोटे लाटने भारतकी राष्ट्रियविज्ञान महापरिषत्की स्थापना की। यह परिषत् भारतवर्षके लिये वैसी ही संस्था होगी जैसी कि विलायतके लिये वहाँ लंडनकी रायल सोसैटी है। भारतीय सभी वैज्ञानिक संस्थाएँ इससे संबद्ध होंगी और इसकी सदस्यता वैज्ञानिक विद्वानके लिये उसकी योग्यताके वास्तविक सम्मानका कारण समझी जायगी। इस स्थापनावाली सभामें इस परिषत्के अपने सदस्योंके अतिरिक्त भारतकी विविध वैज्ञानिक संस्थाओंके प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए थे। ८ जनवरीको बंगालकी एशियाटिक सोसैटीके कमरेमें उसकी पहली साधारण सभा बैठी और परिषत्की नियमित कारवाइयाँ हुईं।

कुल आठ निबंध पढ़े गये और दो पढ़े समझे गये। गवेषणात्मक निबंध पढ़नेवालोंमें डा० गणेशप्रसाद, डा० मेघनाथ साहा, डा० हेरन, डा० होरा, डा० सेन और डा० मजूमदार भी थे। इसके सभापति डा० फरमोर हुए और मंत्री डा० आघरकर और डा० हेरोन हुए।

परिषत्का उद्देश्य अपनेसे सम्बद्ध सभी परिषदोंका समन्वय, गवेषणात्मक पत्रों और निबंधोंका प्रकाशन, और प्राकृत विज्ञानके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक विकासका प्रोत्साहन, होगा। इसमें कुल १२५ साधारण सदस्य होंगे, ५० तक सम्मान्य सदस्य होंगे और दसके लगभग प्रतिवर्ष चुने जायँगे।

विद्वान् वैज्ञानिकोंको आपसमें मिलने जुलने सलाह बात करनेके अच्छे अवसर मिले। पहले दिन तो हुगली नदीकी सैर हुई जिसमें स्वागतसमितिकी ओरसे सहभोज भी शामिल था। इसके दूसरे दिन ब्राडकास्टिंग स्टेशन और स्टुडियो, रायल बोटानिकल गार्डन (वनस्पति-शाला), इंजिनियरिंग कालेज, बसन्ती काटनमिल, टैनिंग इंस्टिट्यूट, एशियाटिक सोसैटी और इंडियनम्युजियमकी सैर हुई। तीसरे दिन विक्टोरिया मेमोरियल, सेंट जेवियर्स कालेज, ऋतु-विज्ञान-निरीक्षणालय, डक, चिड़ियाखाना, तार-कारखाना और प्रयोगशाला, आगरपारा जूटमिल और बटोकृष्टोपाल कम्पनीकी सैर हुई। तीसरे पहर सजाये हुए टौनहालमें कलकत्तेके मेयरने सबको दावत दी।

चौथे दिन दक्षिणेश्वर, बेलूरमठ, राधा फिल्म कम्पनी, इम्पीरियल लैब्रेरी, स्टेट्समैन प्रेस, इंडियन असोसिएशन फार कल्टिवेशन आफ़ सायंस, बोस रिसर्च इंस्टिट्यूट, बंगाल फ्लाइंग क्लब, इत्यादिकी सैर हुई। आज कलकत्ता विश्वविद्यालयने युनिवर्सिटी कालिज आफ सायंसके इमारतोंमें सम्मेलनवालोंकी दावत की। यहाँ विश्वविद्यालयके छात्रोंने अपने भांति-भांतिके खेल दिखाये और अपने बैंडको लाकर वहाँ बाजा सुनाया।

पाँचवें दिन रविवार था। दलके दल आज जमशेदपुरमें ताताका लोहेका कारखाना देखने गये। कोई दल पहाड़पुरकी पुरातत्त्ववाली खुदाई देखने गया। कोई बोलपुर शान्तिनिकेतन गया। कोई गोशाहा और कोई राजमहालके पहाड़ोंपर गये। उसी दिन कलकत्ता गणित परिषत्के सभापति डाक्टर गणेशप्रसाद और कौंसिलकी ओरसे उसके सदस्योंकी, और सर ब्रह्मचारीकी ओरसे भारतीय रसायनपरिषत्के सदस्योंकी, दावत हुई।

छठे दिन साधारण विभागीय अधिवेशनोंके बाद बंगालकेमिकल ऐंड फारमास्यूटिकल वर्क्सने सदस्योंको निमंत्रित करके अपना कारखाना दिखाया और दावत की। इसी दिन अखिल भारतीय राष्ट्रियविज्ञान-परिषत्की स्थापना हुई, जिसका विवरण अन्यत्र दिया गया है।

सातवाँ दिन अन्तिम दिन था। और सब सभाएँ थोड़ी ही थोड़ी देर हुईं, क्योंकि राष्ट्रियपरिषत्की भी पहली बैठक थी जिसमें कई बड़े रोचक परचे पढ़े गये।

कई संस्थाओंके वार्षिकोत्सव इस सम्मेलनके साथ ही साथ हो गये। जैसे, इंडियन बोटानिकल सोसैटी, इंडियन केमिकल सोसैटी, इंडियन फिजिकल सोसैटी, इंडियन सैकोलोजिकल असोसिएशन, फिजियोलोजिकल सोसैटी, सोसैटी आफ़ बायोलाजिकल केमिस्ट्स आफ इंडिया, और इंस्टिट्यूट आफ़ केमिस्ट्स (इंडियन सेक्शन)।

वैज्ञानिकोंके मतलबकी आवश्यक सूचनाएँ

(१) इन्दौरमें अखिल भारतवर्षीय ज्यौतिष-सम्मेलनकी आयोजना

(प्रधान मंत्रीसे प्राप्त)

इन्दौरमें ता० १८ जनवरीको हिन्दी-साहित्य-समिति-भवन तुकोगंजमें स्थानीय विद्वानोंकी एक सभा हुई। सरदार कीबे साहबने उपस्थित विद्वानोंका ध्यान एक ज्यौतिष सम्मेलनकी आवश्यकताकी ओर आकृष्ट करते हुए कहा कि आधुनिक पंचांगोंमें जो अनेक प्रकारके भेद दीखते हैं, उन्हें मिटानेके लिये संवत् १९६२ से अबतक भारतवर्षमें चार सम्मेलन हुए। किन्तु किसी सार्वदेशिक शुद्ध पंचांगका निर्माण अद्यापि नहीं हो सका। इस प्रकारके विवादास्पद विषयोंके निर्णयके लिए इन्दौरमें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके अवसरपर एक अखिल भारत वर्षीय ज्यौतिष-सम्मेलन किया जाय। इस प्रस्तावका समर्थन विद्याभूषण पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैटने विगत चारों सम्मेलनोंकी आलोचना करते हुए इस प्रकार किया। "पूर्वके चारों सम्मेलनोंमें १—आर्ष-अनार्षवाद, २—दृक्प्रत्ययवाद ३—बाण-वृद्धि-रस-क्षय-वाद, ४—अयनांशवाद। इन चारों वादोंका निर्णय हुआ और सूर्य सिद्धान्त और ग्रह-लाघवको कालान्तर संस्कार देकर दृक्प्रत्ययमें लाने लायक एक ऐसा करण ग्रन्थ तय्यार करनेका निश्चय हुआ था जिसके आधारसे मामूली ज्यौतिषी भी शुद्ध सूक्ष्म गणितका पंचांग तैयार कर सके। हर्षकी बात है कि इन्दौर सरकारकी पंचाग-निर्णय-कमेटीने उक्त चारों वादोंका विवेचन करके प्रत्यक्ष वेधसे सूर्य-सिद्धान्त और ग्रह-लाघवका संस्कार कर दिया है, और उसकी एक बृहत् रिपोर्ट दो भागोंमें प्रकाशित होनेवाली है। जिससे इस सम्मेलनमें एक सार्वभौम पंचांगके निर्माण हो जानेकी दृढ़ आशा है।" प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हुआ और स्वागतसमितिका चुनाव किया गया। स्वागताध्यक्ष सरदार माधवराव विनायक कीबे साहब, प्रधान मंत्री पंडित दीनानाथशास्त्री चुलैट, अध्यक्ष पंचांग संशोधक कमेटी इन्दौर, और प्रो० ज्वालाप्रसाद सिंहल, पं० पद्मनाभ कोठारी वकील तथा पं० शिवसेवक तिवारी सहायक मंत्री चुने गये। दूसरे पदाधिकारियोंका चुनाव अगली बैठकपर रखा गया।

(२) स्वर्गीय शंकरलालजी जैनका "वैद्य" फिर निकलेगा

मुरादाबादसे निकलनेवाले "वैद्य" के सुयोग्य सम्पादक वैद्यराज पं० शंकरलालजी जैनका १८ अकतूबर १९३४ को देहावसान हो गया। उनकी बीमारीसे ही "वैद्य" भी बन्द रहा। उनके योग्य पुत्र श्रीविष्णुकान्तजी "वैद्य" के पुनः प्रकाशनका आयोजन कर रहे हैं। "वैद्य" के उन्नीसवें वर्षका दसवाँ अंक "शोकांक" होगा और फरवरी मासके आरंभमें प्रकाशित हो जायगा और फिर नियमसे निकलता रहेगा। व्यवस्थापकजी सूचना देते हैं कि "वैद्य शंकरलालजी, सम्पादक 'वैद्य" की स्मृतिमें ३ मासतक "वैद्य" के ९—१०—११—१२—१३ और १४ वें वर्षके फायलोंमेंसे कोई सा भी एक फायल (जिसकी पृष्ठ संख्या साढ़े तीन सौसे अधिक है) स्कूलके विद्यार्थी, धर्मार्थ औषधालय और (लायब्रेरी) वाचनालयोंको केवल डाक-महसूलके लिये ।-) के टिकट भेजनेपर बिना मूल्य दिया जावेगा।" व्यवस्थापक "वैद्य" मुरादाबादको लिखिये। —ह० श०

(३) दृष्टिविधायक कैलेंडर

दिल्लीके चक्षुरोग विशेषज्ञ डा० रघुबीरसरन अग्रवालने हमारे पास एक कैलेंडर भेजा है जिसमें सालभरकी अंग्रेजी तारीखोंके सिवाय दृष्टि-परीक्षा-पट है, और साथ ही बिना चश्मेके निगाह ठीक रखनेकी विधियाँ हैं, जिनका सचित्र विवरण है। यह अत्यन्त उपयोगी है। इसपर दाम नहीं लिखा है। जो चाहे डा० अगरवालके आइ-इंस्टिट्यूट १५, दरियागंज, दिल्लीसे मँगवा लें। —रा०गौ०

(४) आयुर्वेद महामण्डल विद्यापीठ परीक्षाकी सूचना

निखिल भारतायुर्वेद विद्यापीठकी परीक्षाएँ इस वर्ष ता० २८ मार्च १९३५ से भिन्न-भिन्न केन्द्रोंमें शुरू होंगी। परीक्षामें प्रविष्ट होनेवाले छात्रका शुल्क सहित आवेदनपत्र नि० भा० आ० विद्यापीठ कार्यालयमें १००३ सदाशीवपेठ; पुना २, इस पतेपर ता० २८ फरवरी १९३५ के पहले आ जाय। ता० २८ फरवरीके बाद किसीका आवेदनपत्र या शुल्क आवेगा तो स्वीकार नहीं किया जायगा। आवेदन-पत्रका फार्म कार्यालयमें, केन्द्र व्यवस्थापकके पास, अथवा प्रांतीय मंत्रीके पास मिलेगा।

त्र्यंबकशास्त्री आपटे, विद्यापीठ मंत्री।

स्वर्गीय डाक्टर गणेशप्रसाद, एम्. ए. डी. एस्-सी
[संवत् १९३३—१९९१ वि०]

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ४० } प्रयाग, मीनार्क, संवत् १९९१ । मार्च, सन् १९३५ ई० { संख्या ६

मंगलाचरण

[ले०—स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक]

जगहु सकल सुभ-स्रोत, विमल विज्ञान-ज्योति, जग
रँगहु बहोरि बहोरि त्रिजग सरबोरि, प्रेम-रँग
खुलहु सुलभ सुख-ओक, विसद बिन रोक, प्रेम मग
परहु सतत सब ओर, प्रेम-दृग-कोर, प्रेम-पग

अहो चलहु फिरहु बैठहु उठहु
सोवहु जागहु चर अचर।
हे अमर-प्रेम, नर-देह-धर,
मूर्तिमान, विज्ञान वर ॥६॥६॥

धरतीके बिसराये हुए प्राचीन नक़्शे

धरातलका विकास

[लेखक—रामदास गौड़]

सृष्टि आरम्भका पहला स्थान

धरातलका विकास बहुत धीरे-धीरे अत्यन्त सुदीर्घ कालमें हुआ है। विज्ञानियोंका अनुमान है कि पृथ्वीपर एशिया या जम्बूद्वीप ही सबसे प्राचीन महाद्वीप है जिसपर जीवनकी सृष्टि आरम्भ हुई। अमेरिका जिसे पौराणिक पाताल कहते आये हैं और जो एशिया या जम्बूद्वीपके ठीक दूसरी ओर इसी धरतीसे गोलेपरका स्थल है, जो आज अमेरिकन महाद्वीपोंके नामसे प्रसिद्ध है, जम्बूद्वीपकी ही तरह आदि युगसे ही परिवर्त्तनशील रहा होगा, परन्तु उसके सम्बन्धमें प्रागैतिहासिक कालकी बातें बहुत कम मालूम हो पायी हैं।

धरातल-परिवर्तनके इतिहासमें चट्टानोंकी गवाही

धरातलका परिवर्त्तन तो वास्तवमें निरन्तर होता रहता है। सृष्टि-कालसे लेकर आजतक परिवर्त्तन होता आया है और होता रहेगा। परन्तु यह इतने धीरे-धीरे होता रहता है कि लाखों बरस लग जाते हैं और मनुष्य इतने बृहत्काल-के इतिहासको भूल जाता है। अनेक जातियोंका उत्थान, विकास और पतन देखनेवाली नदियों और पहाड़ोंमें जो परिवर्त्तन होते हैं उनको देखनेवाला तो उनसे भी अधिक आयुका होना चाहिये। फिर भी चट्टानोंपर प्रकृतिकी कलमसे अंकित कथा हमें कुछ पता बताती है और प्राचीन जातियोंके पुराणोंसे उनका समर्थन भी होता है।

आरंभमें धरती क्या थी?

जब धरती इतनी दृढ़ हो गयी थी कि समूचा गोला एक साथ अपनी धुरीपर पच्छिमसे पूरबकी ओर, या घड़ीकी सुईकी उलटी दिशामें घूमने लगा, उस समय यद्यपि उसका घूर्णन लगभग चौबीस घंटेका होने लगा था तो भी उसकी मँडलानेवाली गतिके कारण सभी देशों और कालोंमें दिनरात सदैव एक ही मानके नहीं हो सकते थे। लट्टू जिस तरह मँडलाता है उसी तरह यह धरती भी मँडलाती है। यह मँडलानेकी क्रिया इतनी सूक्ष्म है कि इसका चक्कर आजकलकी गतिके हिसाबसे छब्बीस हजार बरसोंमें पूरा होना चाहिये। इतने दीर्घ कालका इतिहास भी मानवजातिके पास कहाँ है और यह पता कैसे लगे कि इस मँडलानेसे इस भूतलपर क्या-क्या परिवर्त्तन हुए? सौभाग्यसे भूतलपरके चिन्ह पत्थरपरके अंकन और वैदिक और पौराणिक साहित्य इनका पता देते हैं।

जम्बूद्वीपके बारेमें वैज्ञानिकोंका मत

वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि अबसे आठ दस लाख बरस पहले जम्बूद्वीपमें अफ्रिका, अरब, शाम, पूर्व-दक्षिणी युरोपका अंश, तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन, भारतीय द्वीप-समूह, बरमा आदि सभी देश एकमें मिले हुए महाद्वीप थे। [देखो चित्र सं० १] इस समय भारतके उत्तरमें समुद्र नहीं था किन्तु बहुत दूरीपर अक्षांश ५५ तक धरती थी उसके उत्तरमें ध्रुवतक समुद्र था।

छ महीनेके रात-दिन होनेके कारण

ज्योतिषकी गणनासे पता लगता है कि उस कालमें सूर्य्यकी परम क्रान्ति ८० अंशसे अधिक होगी और इसी कारण सारे भूतलपर छ महीनेकी रात और छ महीनेका दिन होता होगा।

उस समयके जलमग्न देश

आजकलके मंगोलिया, सैबेरिया, मंचूरिया, युरोप आदि देश महासागरकी तलीमें थे।

हिमप्रलयके पहलेकी अवस्था

इस कालके बाद छ लाख बरसका धरतीका नक़्शा बदला हुआ था। भारतवर्षके उत्तरमें हिमालयप्रदेश उत्तरी महासागरका तट था। मंगोलियाका उत्तरी अंचल

और सैबेरियाका दक्षिणी भाग उभरकर स्थल बन गया था। पूरा तिब्बत और चीनका अधिकांश सागरके अन्दर था। मंचूरिया उभर ही रहा था। इस समय भारतमें जो नदियाँ हिमालयसे निकलकर दक्षिणी समुद्रोंमें गिरती हैं वे शायद उस समय उत्तर समुद्रमें गिरती होंगी। यह हिमप्रलयके पहलेकी अवस्था है। इस कालमें जम्बूद्वीपमें अहोरात्रका मान २४ घंटेके लगभगका रहा होगा। परन्तु उत्तरी प्रदेशोंमें छ-छ मासका अहोरात्र होता होगा। इस कालका आनुमानिक मानचित्र चित्र सं० २ में दिखाया गया है। हिमप्रलयसे पहले हिमालय पर्वत कम ऊँचा रहा होगा।

१--जम्बूद्वीपका चित्र दस लाखसे आठ लाख वर्ष पूर्वतकका

यह **उत्तरगिरि** कहलाता होगा और इसके उत्तरमें समुद्र होगा इसका प्रमाण ब्राह्मणग्रंथोंमें भी मिलता है।

अबसे अस्सी हजारसे लेकर दो लाख बरस पहलेका संसार

अबसे अस्सी हजारसे लेकर दो लाख बरस पहलेतक जैसे-जैसे हिमालयके उत्तरका समुद्र सूखता गया वैसे-ही-वैसे उसपर बरफ गिरती गयी। यह भूमंडल कुछ ऐसी स्थितिमें पहुँचा कि सारा उत्तरगिरि बरफसे ढक गया। इसी समय इसी उत्तरगिरिका उभार भी हुआ होगा जिससे इसकी ऊँचाई बढ़ गयी होगी और तिब्बतका

प्रदेश ऊँचा उठकर समुद्रके ऊपर हो गया होगा। उसके भी उत्तर समुद्रका अंश बड़ी लम्बी-चौड़ी झीलकी तरह रह गया होगा जिसकी जगह आज गोबीका बालुका-समुद्र है। इसी बालुकासमुद्रका वर्णन महाभारतमें आया है, जिससे पता चलता है कि बीस हजार बरस पहले यह महाझील भी सूख चुकी थी।

अस्सी हजार बरस पहलेके समयमें धरतीमें घोर परिवर्तन हुए होंगे। हिमालय उभरकर आजकल की-सी ऊँचाईका हो गया होगा। उसके दक्षिणका मैदान धँसकर नीचे चला गया होगा। राजस्थानवाली धरती भी नीचे चली गयी होगी। सारा भारत जलमय हो गया होगा। संसारका पूरा नक्शा बदल गया होगा। भारतमें सरहिन्दके आस-
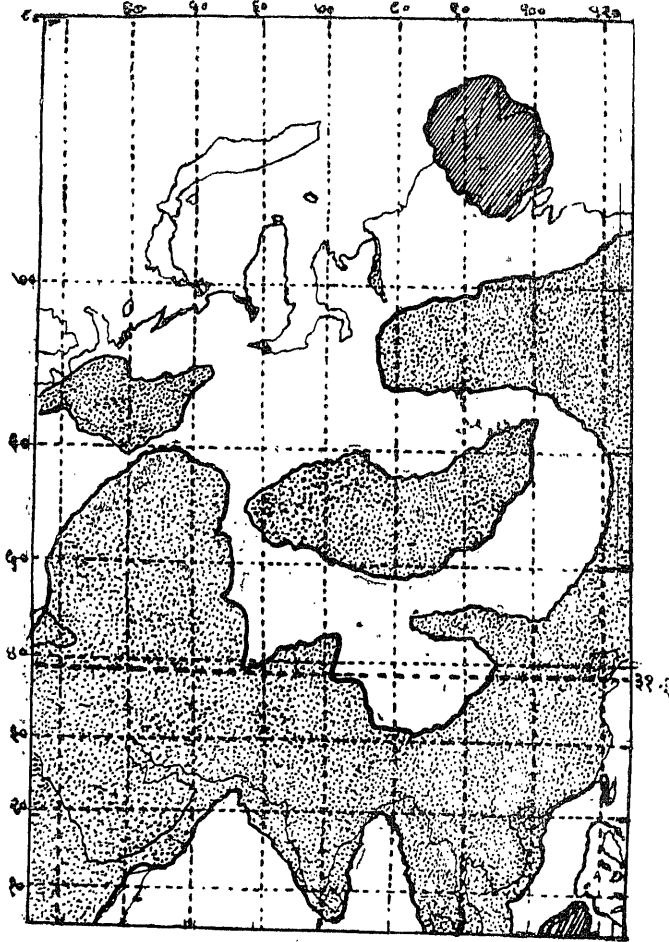
२—जंबूद्वीपका चित्र आठ लाखसे दोलाख वर्ष पहलेतक

ये परिवर्त्तन तीसरे और चौथे मानचित्रमें दिखाये गये हैं।

मत्स्यावतारके समय हमारे देशका नक्शा

अबसे पचीस हजार बरसोंसे लेकर अस्सी हजार बरसों-तकका समय अन्तिम हिमप्रलयके बादका है जब कि अन्तिम मत्स्यावतारका समय पुराणोंमें बतलाया जाता है।

पासकी धरती उभरकर ऊँची हो गयी होगी।

हिमालयके दक्षिणकी जल-प्लावन और हिमप्रलयके बादकी अवस्था

जब जल-प्लावन और हिम-प्रलय बीतनेपर आया तब भी हिमालयके दक्षिणका मैदान जलसे भरा था और गंगाजी

कहीं हरिद्वारसे नीचे ही समुद्रमें मिलती थीं। मथुरा, अयोध्या, प्रयाग, काशी आदि तीर्थ समुद्रके गर्भमें थे। आजसे सत्तर हजार बरस पहले यह समुद्र भी प्रायः बालूसे भर गया होगा। गंगा-जमुना आदि नदियाँ फिरसे अपने पुराने बहावके क्षेत्रोंसे बहने लगी होंगी। उधर दो-तीन हजार बरसमें उस बड़ी झीलके साथ-ही-साथ सूखती गयी होगी।

हमारा अनुमान

हमारा अनुमान है कि अबसे ६०,००० बरस पहले सरस्वती दृषद्वतीका लोप हो गया होगा और राजस्थानका
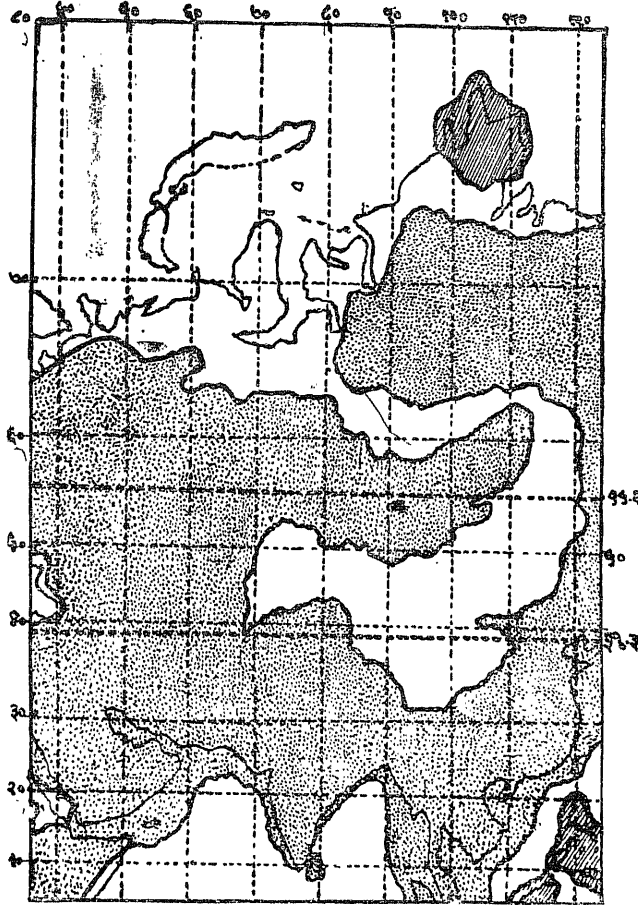
३—जंबूद्वीपका चित्र दो लाखसे अस्सी हजार वर्ष पहलेतक

राजस्थान जिस प्रदेशमें है वहाँ विशाल झील होगी जो धीरे-धीरे सूख रही होगी। सरस्वती और दृषद्वती नदियाँ उसीमें जाकर गिरती होंगी। हिम-प्रलयसे पहले यह सरस्वती प्रयागमें गंगा जमुनासे मिलती होगी, परन्तु बादको सरहिन्दवाले प्रदेशके उभारसे इसका रुख बदलकर पश्चिम-दक्षिणगामी हो गया होगा। यही सरस्वती कोई बालुका-क्षेत्र बनकर साँभर नामका एक विशाल झील बन गया होगा। उस समय ही हिमालयके दक्षिणका मैदान नदियोंसे लायी हुई रेतसे पटकर मैदान हो चुका होगा। संयुक्तप्रान्त और बिहारप्रदेश नये सिरेसे वनमय हो गया होगा। पुराणोंसे पता लगाकर अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थ फिरसे बसे होंगे। बहुत

संभव है कि आज जिस भूखंडपर यह बसे हैं ठीक-ठीक वेही भूखंड न हों जिनपर वे पहले बसे थे। बंगालका पूर्व दक्षिण भाग तो महाभारतकालमें भी सूखा स्थल न था जिसको कि सबसे नयी खोज आजसे २१,००० बरस पहले ठहराती है जो लगभग दो मानव चतुर्युगियोंसे कुछ ही कम समय होता है।

गिरती थीं। जब उधर धरती उभरी और समुद्रने बदलकर ऊँचे मैदानका रूप धारण किया तो नदियोंका रुख भी उलट गया। गंगा-जमुना आदि उलटकर अब दक्खिनकी ओर चली आयीं।

हमारा मत

हमारे मतसे ये वैज्ञानिक उलटी गंगा बहाते हैं। गंगा,
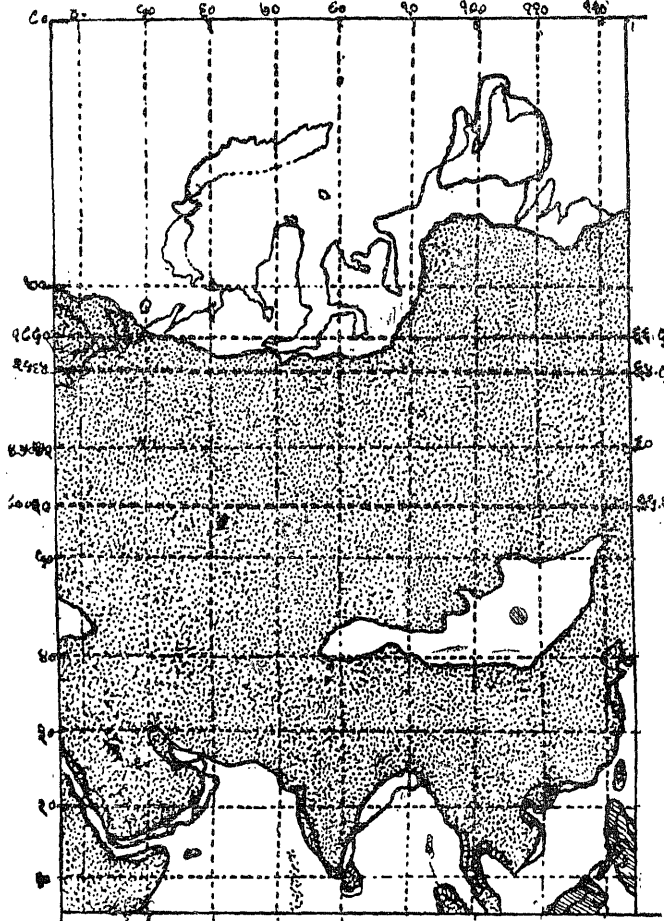
४– जंबूद्वीपका चित्र अस्सी हजारसे साढ़ेनौ हजार वर्ष पहलेतक।

जमुना आदि नदियोंके उलटे बहनेकी आवश्यकता नहीं। हिमालयके दक्षिणमें गहरे समुद्र होनेके प्रमाणसे और वैदिक प्राक्प्रालेय प्रमाणोंसे उनके अनुमान निराधार ठहरते हैं। हाँ, ब्रह्मपुत्र महानदका उलटकर इधर बहने लग जाना जरूर संभव है। इसी तरह हिमालयका नया

कुछ भूवैज्ञानिकोंका अनुमान

कुछ भूवैज्ञानिकोंका अनुमान है कि भारतमें जो नदियाँ आज हिमालयसे उतरकर पूरब और पश्चिमकी ओर बहकर सागरमें जा गिरती हैं वे पहले हिमालयसे उत्तरकी ओर पश्चिम-पूरब दिशाओंमें बहकर उत्तरसमुद्रमें

विज्ञानके स्वर्णमय सदुपयोग, घरेलू धंधे

स्याहियोंके विविध उपयोग

[ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, एफ्० आइ० सी० एस्०, विशारद, प्रयाग-विश्वविद्यालय]

कार्बन पेपर

उपयोग

लिखते समय ही प्रतिलिपियाँ उतरती जायँ, इस कामके लिये कार्बन पेपरका व्यवहार होता है। यह ऐसा कागज होता है जिसके एक ओर स्याही लगी होती है। जिस कागजपर लिपि उतारनी हो उसपर कार्बन पेपर उलटकर इस प्रकार रखते हैं कि स्याहीवाला पृष्ठ उस कागजपर हो। अब इसके ऊपर एक दूसरा कागज रखा जाता है जिसपर असली लेख हो। पैन्सिलसे लिखावट की जाती है।

कार्बन पेपरका कागज

कार्बन पेपरके लिये महीन पर मजबूत और चिकना कागज लिया जाता है।

कार्बन पेपरकी स्याही बनाना

इसकी स्याही पीला मोम, और अति महीन 'पेरिस ब्लू' बराबर-बराबर मात्रामें घोटकर बनायी जाती है, और

पर्वत होना भी निराधार सिद्ध होता है। यों तो सभी पर्वतोंके बननेका इतिहास अलग-अलग है, परन्तु किसी भूखंडका उभरने और धँसनेकी क्रियाका कोई निश्चित क्रम नहीं है, और न कालका ठीक अनुमान किया जा सकता है। अटकलपच्चू जो अनुमान किये जाते हैं, उनका भरोसा हम नहीं कर सकते।

हमारा और भी अनुमान

हमारा यह भी अनुमान है कि अन्तिम हिम-प्रलयके लगभग भूतलमें जो-जो परिवर्त्तन हुए होंगे वे परिवर्त्तन पहले-पहल नहीं हुए होंगे। ऐसे अनेक परिवर्त्तन पूर्व महायुगोंमें अनेक बार हो चुके होंगे। पृथ्वी धँसी होगी और फिर उभरी होगी। सृष्टि और प्रलयका इतिहास बार-बार दोहराया जाता है। इसीलिये हमारा अनुमान है कि इस विशाल भारतवर्ष देशमें सृष्टिके आदियुगमें किसी समय सरहिन्द और सहारनपुरसे लेकर कलकत्तेतककी उपजाऊ धरती समुद्रके भीतर थी। एक ओरसे हिमालय और दूसरी ओरसे विन्ध्यगिरि समुद्रके दो किनारे थे। सारा संयुक्तप्रान्त उस युगमें भी समुद्रके भीतर था। इस महाविशाल गड्ढेको भरनेका काम गंगा, जमुना आदि महानदियोंने तब भी किया होगा। नदियाँ ही आज भी बंगालकी खाड़ीके उत्तरी किनारेके सुन्दरबनकी जमीनको बढ़ाती जाती हैं और जलसे निकालकर थल रचती जाती हैं।

नदियोंका महत्व

सचमुच नदियोंने ही इस संसारको बसाया है और रहनेके योग्य बनाया है। जिस समय नदियाँ आजकलकी मिट्टीवाली धरती बना रही थीं उसी समय तिब्बतसे उत्तरमें रहनेवाले बालुका-समुद्र वा गोबीका मरुस्थल भारतके राजस्थान और अरबस्थानके मरुस्थल और अफ्रीकाका सहारावाला महामरुस्थल, थलसे चारों ओर घिरा हुआ समुद्र रह गया था जो लाखों बरसमें धीरे-धीरे सूखकर बालुका-समुद्र बन गया है।

संसारके बड़े-बड़े समुद्र क्या हैं ?

संसारके बहुत बड़े-बड़े समुद्र इसी तरहसे घिरे हुए जलाशय हैं जो सिकुड़ते-सिकुड़ते आज झीलका कम रुतबेवाला नाम पाये हुए हैं। जिसतरह आज समुद्रका जल भाप बनकर आकाशकी मेघ-मालाका पोषण करता है और मेघमाला बरसकर नदियोंका पोषण करती है और नदियाँ फिर समुद्रका पोषण करती हैं, ठीक यही क्रम कई लाख बरसोंसे धरतीकी रचनामें सहायक हो रहा है।

इस घुटे हुए मिश्रणमें १० गुना स्वच्छ टैलो (चर्बी) भी मिलाते हैं।

कार्बन पेपर तैयार करना

इस मिश्रणको अब गरम करके गलाते हैं। और अच्छी तरह टारते हैं। जब यह पिघलकर पतला पड़ जाय, तो गरम-गरम ही इसे कागजपर लगा देते हैं। सूखनेपर कार्बन पेपर तैयार हो जाता है।

रंग-रंगके कार्बन पेपर तैयार करना

कार्बन पेपरपर इच्छानुसार काली, नीली, हरी, या बैंगनी किसी प्रकारकी भी स्याही हो सकती है। ऊपर बताये गये पेरिस-ब्लूके स्थानमें 'मिथाइल वायलेट' रंग मिलानेसे बैंगनी रंगका कार्बन पेपर तैयार होगा। मैजण्टा या इयोसीनसे लाल रंग, और कारिख (कज्जली) मिलाकर काले रंगका कार्बन पेपर बनेगा।

कौपीइंग-पेन्सिल

बाजारमें कौपीइंग-पैंसिल इस प्रकारकी आती हैं जिनसे लिखा तो पैन्सिलकी तरह जाता है पर इनकी लिखावट अधिक समयतक स्थायी रहती है। पानी पड़नेसे इनके अक्षर बैंगनी रंगके हो जाते हैं। साधारण पैन्सिलोंमें ग्रेफाइटका प्रयोग किया जाता है, जिससे कागजपर काले निशान बन जाते हैं। इसमें थोड़ीसी केओलिन (सफेद मिट्टी) भी मिलायी जाती है। इस प्रकारकी पैन्सिलोंके मसालेमें यदि कोई घुलनशील एनीलिन रंग और मिला दिया जाय तो कौपीइंग-पैन्सिल बन जायगी। इस कामके लिये अधिकतर 'मिथाइल वायलेट' नामक बैंगनी रंगका उपयोग होता है।

लाल पैंसिल बनानेके लिये मैजण्टा और नीले रंगके लिये 'वाटर-सोल्यूबिल-ब्लू' रंग काममें लाते हैं। काले रंगके लिये निग्रोसिन। इन पैन्सिलोंके कुछ नुसखे नीचे दिये जाते हैं—

फाबरकी पैन्सिलें

	एनीलीन रंग	ग्रेफाइट	केओलिन
१	१००	७५	२५
२	४६	३४	२४
३	३०	३०	४०
४	२५	२४	५०

तीनों चीजोंको खूब घोटकर मिला लेते हैं, और फिर इस मसालेको चलनीके समान छेददार तख्तेपर रखकर जोरोंसे मशीनद्वारा दबाते हैं। दबाव पाकर पैन्सिलोंका 'लेड' छेदोंमेंसे नीचे निकलने लगता है। इसे सुखा लेते हैं और फिर इसे लकड़ीके दो खोलोंके बीचमें बन्द करके पैन्सिल तैयार कर लेते हैं।

ऊपरके नुसखोंमें पहले नुसखेवाली बहुत नरम है और चौथी बहुत सख्त। शेष दो बीचकी हैं।

काँच या चीनी मिट्टीके बर्तनोंपर लिखनेवाली पैन्सिलें

साधारण पैन्सिलोंसे काँचपर लिखना संभव नहीं है जबतक कि बर्तनका पृष्ठ घिसा हुआ (ground) न हो। इस कामके लिये अनेक रंगोंकी पैंसिलें बनायी गयी हैं जिनमें अधिकतर मोम, टैलो और कोई रंगीन पदार्थ होता है। ये रंगीन पदार्थ पानीमें नहीं घुलते हैं। कुछ नुसखे यहाँ दिये जाते हैं।

काँचपर लिखनेके लिये—

(१)	पानी	१६
	रेडलेड (सिन्दूर)	८
	टैलो, चर्बी	२–४

तीनोंको घोटकर पिघलाओ और फिर इनकी बत्तियां बनालो। चर्बीकी मात्रा न्यूनाधिक करके पैंसिल सख्त या नरम बनायी जा सकती है।

(२)	चर्बी	५
	मोम	१०
	चर्बीवाला साबुन	१०
	सिन्दूर	१०

पहले चर्बी, मोम और साबुनके मिश्रणको गला लेते हैं और फिर इसमें सिन्दूरको घोटते हैं। बिलकुल ठंढा पड़नेसे पूर्व ही इसकी बत्तियाँ बना ली जाती हैं।

काँच, चीनी या धातुके बर्तनपर लिखनेके लिये—

काली—	काजल	१०
	मोम	४०
	चर्बी	१०

सफेद—खड़िया	४०	
मोम	२०	
चर्बी	१०	
नीली—प्रशियन नील	१०	हलकी
मोम	२०	
चर्बी	१०	
प्रशियन नील	१५	गहरी
गोंद	५	
चर्बी	१०	
लाल—हिङ्गुल (cinnabar)	२०	
मोम	६०	
चर्बी	२०	
पीली—क्रोम-यलो	१०	
मोम	२०	
चर्बी	१०	

कपड़ोंपर लिखनेकी स्याही

धोबीको जरूरत पड़ती है कि पहचानके लिये वह सबके कपड़ोंपर अलग-अलग कोई निशान डाल ले और यह निशान इतना पक्का हो कि धुलनेसे भी न मिटे। यही नहीं, रंगीन कपड़ेपर भी यह निशान स्पष्ट प्रतीत होता रहे। निस्सन्देह काला ही एक ऐसा रंग है जो सब रंगोंपर चढ़ सकता है। हाँ, काले रंगपर किसी भी अन्य रंगसे लिखना कठिन है।

हमारे देशमें अधिकतर धोबी भिलावा (संस्कृत—भल्लातक) के फलका उपयोग करते हैं जिसके रससे कपड़ेपर पक्के काले दाग़ पड़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त (सिल्वर नाइट्रेट या रजत-नोषेत) चाँदीके लवणसे लिखनेपर भी कपड़ेपर पक्का निशान पड़ जाता है। चांदीका यह लवण शुद्ध चांदीको शोरेके तेजाबमें घोलकर बनाया जाता है। यह लवण पानीमें घुलनशील है। पर जबतक इसमें गोंद न मिलाया जायगा, कपड़ेपर लिखनेमें कठिनाई होगी, क्योंकि पानी फैल जायगा। पर इसके ठोस रवेसे भी सूखी लिखाई की जा सकती है। थोड़ी देरमें रोशनीके प्रभावसे काले अक्षर प्रकट होने लगते हैं। इन रवोंको हाथसे न छूना चाहिये, नहीं तो हाथ काले पड़ जायँगे जो धोनेसे भी न धुलेंगे।

कपड़ेके जिस स्थानपर लिखना हो उसे गोंद और सोडा (दोनोंकी बराबर मात्रामें) के घोलमें भिगोकर सुखा लो और फिर इसकी इस्तरी कर लो। सिलवर नाइट्रेटका घोल रंग-रहित होता है, अतः अक्षरोंके दिखाई पड़नेके लिये घोलमें कोई रंग छोड़ दो, और फिर इस घोलसे लिख दो। थोड़ी देर रोशनीमें रखनेपर सिलवरके काले अक्षर निकल आवेंगे।

इस स्याहीका एक नुसखा इस प्रकार है—

सिलवर नाइट्रेट	४
पानी	४०
गोंद	४
काजल	२

२० भाग पानीमें पहले गोंद घोल लो और फिर इसमें काजल मिला लो। शेष २० भाग पानीमें सिलवर नाइट्रेट घोल लो। अब दोनों घोलोंको मिला लो। काजलके स्थानमें कोई अन्य घुलनशील रंग भी लिया जा सकता है।

इस नुसखेद्वारा बनाया गया घोल बहुत दिनोंतक नहीं रखा जा सकता है क्योंकि कुछ दिनों बाद इसमें तलछट जमने लगती है। इसलिये सुरक्षित रखनेके लिये इसमें अमोनियाँका तीव्र घोल मिलाते हैं। मिलानेपर पहले तो अवक्षेप आवेगा और अमोनिया और मिलानेपर यह अवक्षेप घुल जावेगा।

कुछ नुसखे इसके इस प्रकार हैं—

सिलवर नाइट्रेट	६	१०
गोंद	६	२५
सोडा	८	२०
अमोनिया	१२	२०
स्रवित जल	१५	८०

पहले सिलवरको पानी में घोल लो और फिर इसमें अमोनिया मिला दो। गोंद और सोडाको अलग घोलकर फिर इसमें मिला दो।

जिस स्याहीमें गोंद और सोडा मिले रहते हैं उससे कपड़ेपर यों ही लिखा जा सकता है क्योंकि स्याही फैलने नहीं पाती।

कपड़ोंपर बेल-बूटे काढ़नेकी स्याही

नीचे दिये गये नुसखेसे तैयार की गयी स्याही पक्के

बेलबूटे काढ़नेमें अच्छी सिद्ध हुई है—

सिलवर नाइट्रेट	२०
सोडा कार्बनेट	३०
पानी	१००
टारटेरिक एसिड	७
लिटमस	५
गोंद	४०

सिलवर नाइट्रेटको ४० भाग पानीमें घोल लो और सोडाको शेष ६० भाग पानीमें। इस सोडाके घोलको सिलवरके घोलमें थोड़ा-थोड़ा मिलाते जाओ जबतक कि (रजत कर्बनेट) सिलवर कार्बनेटका अवक्षेप आता जाय। अवक्षेपको छानकर पानीसे छन्नेपर ही धो लो। अब इसे खरलमें (इमलिकाम्ल) टारटेरिक एसिडके साथ घोटो। ऐसा करनेपर इसमेंसे कर्बन द्विओषिद गैसके झाग उठेंगे। अब इसमें सावधानीसे अमोनिया मिलाओ, जबतक सब इसमें अवक्षेप घुल न जाय। इसे नीला रंग देनेके लिये लिटमसका घोल मिला दो (यह इसलिये मिलाया जाता है कि अक्षर दिखाई दें)। अब इसमें गोंद घोलकर मिला दो। बस स्याही तैयार हो गयी। इसे अब इच्छानुसार पानी मिलाकर हलका कर लो।

लिटमसकी जगह कोई भी नीला रंग इसमें मिलाया जा सकता है।

ऊपर दी गयी रजत-लवणोंकी स्याहियोंके अतिरिक्त स्वर्ण और पररौप्यम् (प्लेटिनम) लवणोंकी स्याहियाँ भी बनायी जा सकती हैं। यह स्याही होती तो बहुत अच्छी हैं पर इनका खर्चा इतना अधिक है कि साधारण कामोंमें इनका व्यवहार नहीं किया जा सकता है।

ताँबेकी स्याही

यह स्याही भी काले अक्षर लिखनेके काममें आ सकती है। तूतियाके घोलमें दाहक सोडाका घोल मिलाकर अवक्षेप प्राप्त कर लो। इस अवक्षेपको छानकर धो लो और इसे फिर अमोनियाँमें घोल लो। इसमें अब काफी मात्रामें गोंद, डेक्सट्रीन या माड़ी मिला दो जिससे लिखनेपर अक्षर फैल न जायँ। इस स्याहीसे लिखे गये अक्षर सूखनेपर काले पड़ जावेंगे।

बेल बूटे छापनेकी स्याही

नीचे दिये गये क और ख घोलोंको अलग-अलग बोतलोंमें बनाकर रखना चाहिये। काम करते समय दोनोंको मिलाना चाहिये।

	पहला नुसखा	दूसरा नुसखा
	क—घोल (१ भाग)	क—घोल (१ भाग)
ताम्र हरिद (कौपर क्लोराइड)	१५	८५
नौसादर	१०	५३
सोडा क्लोरेट	२०	१०६
पानी	१००	६००
	ख—घोल (५ भाग)	ख—घोल (४ भाग)
एनीलिनहाइड्रो क्लोराइड	२५	६० (९० भाग पानीमें)
गोंद	२०	२० (४० " ")
ग्लैसरीन	५	३०
पानी	५०	१३०

ऊपर दिये गये अनुपातमें क और ख घोलोंको मिलानेसे हरे रंगका घोल मिलता है, जो शीघ्र ही काला पड़ जाता है। यह स्याही पक्की है। इससे लिखे गये अक्षरोंपर फौरन ही गरम लोहेसे इस्तरी कर देनी चाहिये।

धातुकी वस्तुओंपर लिखनेकी स्याही

धातुकी चीजपर जिस स्थानपर लिखना हो उसे (सैण्ड पेपर) बलुआ कागजसे रगड़कर थोड़ासा खुरदरा कर लो। ये स्याहियाँ कोपल (copal) और तारपीनके तैलसे बनायी जाती हैं। कोपलको लोहेके बर्तनमें जिसमें ढीला ढकना लगा हो गरम करो। पहले यह पिघलेगा और फिर इसमें बहुतसा धुँआ निकलने लगेगा। इस प्रकार इसका कोई पांचवाँ हिस्सा जलाकर उड़ा दो। अब इसे थोड़ासा ठंडा करो और इसमें धीरे-धीरे तारपीनका तैल मिलाओ (कोपल बहुत गरम होगा तो तारपीनका तैल छनककर बाहर आ गिरेगा)। अब इसमें काजल या सिन्दूर मिला दो। बस स्याही तैयार हो गयी। तारपीनका तैल यथेच्छ मिलाकर स्याही लिखने योग्य हलकी की जा सकती है।

काली स्याही		लाल स्याही	
कोपल	१०	कोपल	२०
तारपीनका तेल	१२	तारपीनका तेल	२४
काजल	२	सिन्दूर (सिनेबार)	२

काजल या सिन्दूरके स्थानमें अल्ट्रामेरीन, प्रशियन ब्लू, क्रोम यलो, एनीलिन-वायलेट आदि रंगीन पदार्थ जो किसी भी पैण्टकी दूकानसे मिल सकते हैं, मिलानेपर, अन्य रंगोंकी स्याहियाँ बनायी जा सकती हैं।

चमड़ेपर लिखनेकी स्याही

इसके लिये दो घोलोंका (क और ख) व्यवहार होता है। जिस स्थानपर लिखना हो उसपर पहले क-घोल लगा दो। जब यह स्थान सूख जाय तो ख-घोलसे इसपर अक्षर लिखो। लिखनेसे पूर्व चमड़ेकी उलटी पीठको पानीसे थोड़ा-सा भिगो लेनेपर अक्षर अधिक पक्के हो जाते हैं। अक्षर काले रंगके होंगे।

क-घोल		ख-घोल	
माजूफल	२०	कसीस	४
गोंद	२	गोंद	८
पानी	१००	नीलरंग (कार्माइन)	२
		पानी	४०

हाथीदाँतके सामानपर लिखनेकी स्याही

हाथीदाँतके सामानपर सिलवर नाइट्रेटके घोलसे बहुत अच्छी लिखाई की जा सकती है। घोलको हलका करके तरह-तरहकी चटक स्याहीमें लायी जा सकती है। इस प्रकार चित्रकारी करनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

हाथीदाँतको साबुनके गाढ़े घोलमें या अमोनियामें पहले अच्छी तरह फूलने देना चाहिये। अब इसे अच्छी तरह धो डालो। जितनी देरमें यह काम हो उतनी देरमें सिलवर नाइट्रेटको १० गुने पानीमें घोल लो। इस पानीके १० भाग कर डालो। पहले भागको अलग रख दो और शेष भागोंमें क्रमशः १, २, ३, ४,…९, भाग पानी मिलाओ। इस तरह भिन्न-भिन्न शक्तिके १० घोल प्राप्त हो गये। सबसे हलके घोलसे लिखनेपर हलका खाकी रंग आवेगा और गाढ़े घोलसे चटक काला।

१ प्रतिशत स्वर्णहरिद और नमकके घोलमें रखनेसे अक्षरोंपर भूरा रंग आ जायगा। ऐसा करनेके उपरान्त पानीसे धो डालना चाहिये और फिर १०% हाइपोसलफाइट आव् सोडाके घोलमें फौरन रख देना चाहिये।

जादूकी स्याहियाँ

सिवाय तमाशेमें काम आनेके, इनका और कोई मूल्य नहीं है। मनोरंजनार्थ कुछ स्याहियाँ यहाँ दी जाती हैं।

पीले अक्षरोंवाली स्याही

(१) ताँबेको नमकके तेजाबमें जिसमें थोड़ा-सा शोरेका तेजाब भी पड़ा हो घोलो। पानीसे घोलको इतना हलका कर लो कि इससे लिखे जानेपर अक्षर दिखाई न पड़े। कागजको गरम करनेपर पीले अक्षर दिखाई देंगे। ठंढे पड़नेपर अक्षर फिर लुप्त हो जावेंगे।

हरे रंगवाली स्याही

(२) कोबल्ट और निकल नाइट्रेटके घोलोंके मिश्रणसे लिखनेपर अक्षर नहीं दिखाई पड़ते, पर गरम करनेपर सुन्दर हरे रंगके हो जायँगे। ठंढा पड़नेपर फिर मिट जावेंगे।

काले रंगवाली स्याही

(३) कागजपर लेड-एसीटेटसे लिखो। कागजपर अक्षर दिखाई न देंगे। अब हाइड्रोजन-सल्फाइडकी वाष्पोंमें रखनेपर काले रंगके अक्षर आ जायँगे।

स्याहीपर लिखे गये इन लेखोंमें लेखकने सिगमंड लेहनरकी ('Ink Manufacture') पुस्तकसे विशेष सहायता ली है। लेहनर महोदय इस विषयके विशेषज्ञ माने जाते थे, और इन्होंने स्याहियोंपर अनेक प्रामाणिक प्रयोग किये हैं।

पञ्चाङ्गमें सौरवर्षका संशोधन

(लेखक—चौधरी बलभद्रजी, बी० ए०, अध्यापक गवर्नमेंट हाई स्कूल, कमालिया)

सी शीर्षका एक लेख 'हिन्दी-मिलाप' के दिसम्बर १९३४ के परचेमें पढ़ा। यह लेख 'विज्ञान' से लिया गया है और इसके लेखक महोदय श्री० पं० गङ्गाप्रसादजी एम्० ए० चीफ जज टिहरी हैं। आपका यह लेख अत्युत्तम है। इसके सम्बन्धमें मैं भी अपने विचार प्रकट कर देना चाहता हूँ।

पण्डित जी लिखते हैं—'१३ अप्रैल सन् १९३२ को हरिद्वारमें अर्ध कुम्भीका बड़ा मेला हुआ। जिसमें दूर-दूरसे सहस्रों यात्री और साधु-संन्यासी इकट्ठे हुए और विषुवत् संक्रान्तिको गङ्गा-स्नान किया। जिस समय मीन राशिसे मेष राशिमें सूर्य आता है उस समय स्नान करनेका विशेष महत्त्व समझा जाता है और उस नियत समयपर स्नान करनेके लिये यात्रियोंकी विशेषकर साधुओंकी हरिकी पौड़ीपर इतनी अधिक भीड़ रहती है कि बहुतसे मनुष्योंको शारीरिक चोटें आ जाती हैं और कभी-कभी कुछ यात्रियोंकी मृत्यु भी हो जाती है। इस बार संक्रान्ति और पर्वका समय सूर्योदयके ९ घड़ी और ३६ पलपर माना गया है। परन्तु बहुत कम लोग इस बातका विचार करते हैं कि यद्यपि ठीक समयपर स्नान करनेके लिये घड़ी या पलतक ध्यान दिया जाता है परन्तु संक्रान्ति उस समयसे लगभग २२ दिन पहले बीत चुकी।'

पण्डितजीका कहना है विषुवत् संक्रान्ति वह सक्रान्ति है जिस दिन दिन और रात बराबर हों। और दिन रात २२ मार्चको बराबर होते हैं। उस दिन हमारे पञ्चाङ्गों और पत्रोंमें 'सायन मेषेऽर्कः' शब्द लिखे होते हैं और १३ अपरैलको लौकिक पञ्चाङ्गोंमें 'मेषेऽर्कः' शब्द लिखे होते हैं। दोनोंका अर्थ एक है कि सूर्य उसदिन मेष राशिमें आया। यह बात असंगत है। सूर्य एकबार ही एक राशिमें आ सकता है दो बार नहीं। इनमेंसे २२ मार्चको संक्रान्ति कहना ठीक और १३ अपरैलको कहना गलत है।

पण्डितजीको मालूम होना चाहिये कि २२ मार्चवाली संक्रान्तिके साथ 'सायन' शब्द अधिक है। उसके अर्थ हैं अयनके साथ अर्थात् अयनवाली। संक्रान्ति दो प्रकारकी मानी गयी है। एक सायन और दूसरी निरयण। इसका कारण यह है कि राशियें दो प्रकारकी हैं एक स्थिर (Zodiacal constellations) और दूसरी चल (Sign of Zodial constellations)। इनमेंसे प्रत्येक राशि ऐसा तारासमूह है जिसकी कोई शक्ल बनती है जैसे (leo) सिंहमें शेरकी शक्ल बनती है। इन्हीं राशियोंपर ही किसी समय बारह महीनोंके नाम रखे गये थे। इनमेंसे पहला महीना मेष (Aries) अर्थात् मेढ़ा था। जिस समय सूर्य मीन राशि (pisces) से मेष राशिमें प्रवेश करता था वर्षका पहला दिन समझा जाता था। उस दिन दिन और रात बराबर होते थे। उस समय संक्रान्तिमें सायन और निरयणका भेद नहीं होता था। परन्तु जब समय व्यतीत होता गया तो दिन रातका बराबर होना, मेष संक्रान्ति पर न रहा। इसका कारण अयनचल (Precession of equinoxes) है। जिस दिन सूर्य मेष राशिमें प्रवेश करता था उसे स्थिर मेष (Aries) और जिस दिन दिन और रात बराबर होते उस दिनसे चल मेषका आरम्भ मानते थे। इसी तरहका भेद प्रत्येक राशिमें पड़ता गया। जब सूर्य स्थिर राशिमें प्रवेश करता है उस दिनको निरयण संक्रान्ति और जब चल राशिमें प्रवेश करता है उसे सायन संक्रान्ति कहते हैं। इसीलिये २१ मार्चको सायन मेष संक्रान्ति और १३ अपरैलको मेष संक्रान्ति कहलाती है।

मेरे ऊपरके कथनसे पण्डितजीको यह ठीक प्रकारसे पता चल गया होगा कि किस प्रकारसे सूर्य एक राशिमें दो बार संक्रमण करता है। इसलिये जहाँ मैं पण्डितजीके साथ इसमें सहमत नहीं कि सूर्य २२ मार्चको मेष राशिमें प्रवेश करता है वहाँ **मैं इस बातमें उनसे पूरी तरहसे सहमत हूँ कि हमें विषुवत् संक्रान्ति १३ अपरैलके**

स्थानमें २२ मार्चको मनानी चाहिये। यह हमारे अज्ञानकी पराकाष्ठा है कि हम १३ अपरैलको विषुवत् संक्रान्ति समझते हैं इसी प्रकारसे हमें और भी संक्रान्तियोंके विषयमें जानना चाहिये। जैसे मकर संक्रान्तिका उत्सव आजकल १३ जनवरीको मनाया जाता है। पहले समयमें यह उत्सव इसलिये महत्व रखता था कि उस दिनसे दिन बड़े होने आरम्भ हो जाते थे और सूर्य उत्तरायणमें पदार्पण करता था। परन्तु आजकल सूर्य ८ पौष २२ दिसम्बरको ही उत्तरायणमें होने लगता है। परन्तु हम आजकल भी १३ जनवरी मकर संक्रान्तिको ही इस त्योहारको मनाते चले आ रहे हैं। इसी प्रकार हमें कार्तिक-स्नानके विषयमें भी जानना चाहिये। पहले तुला संक्रान्तिको ही दूसरी विषुवत् संक्रान्ति होती थी। इसलिये कार्तिकस्नानका महत्व था। परन्तु आजकल २३ सितम्बर ८ आश्विन कन्या राशिमें ही दिन-रात बराबर हो जाते हैं। इसलिये यह कार्तिकस्नान हमें आश्विनमें ही आरम्भ कर देना चाहिये। इस प्रकार और भी संक्रान्तियोंके विषयमें जानना चाहिये।

पण्डितजी आगे लिखते हैं—'अर्धकुम्भीके विचारको छोड़कर विषुवत् संक्रान्ति हमारे सौर वर्षका प्रथम दिन है। उस दिन प्रति वर्ष ही अनेक स्थानोंमें एक पर्व या त्योहार मनाया जाता है।' पण्डितजीकी यह बात भी भ्रममें डालनेवाली है। इसका कारण यह है कि पण्डितजी समझते हैं कि विषुवत् संक्रान्ति हमारे सौरवर्षका प्रथम दिन है। यह बात ठीक नहीं। जैसे मैं ऊपर कह आया हूँ हमारे सौरवर्षका आरम्भ पहले मेष संक्रान्तिसे लिया जाता था और मेष संक्रान्तिका दिन ही विषुवत् होता था फिर समय पाकर विषुवत् संक्रान्ति और मेष संक्रान्तिमें भेद होने लगा और हमारे ज्योतिषाचार्योंने सायन मेष और निरयण मेष आदि भेद किये परन्तु वर्षका आरम्भ स्थिर मेषसे ही रखा जिसकी संक्रान्ति आजकल १३ अपरैलको होती है।

अब मैं पण्डितजीकी इस बातकी ओर आता हूँ कि यह २२ दिनोंका अन्तर कितने समयमें पड़ा। पण्डितजीका कहना है—'सौर वर्षका परिमाण ठीक ३६५ दिन ५ घंटे ४८ मिनट और ४६ सैकण्ड है जैसा कि वैज्ञानिकोंने सिद्ध किया है। सूर्य-सिद्धान्त आदि हमारे ज्योतिष-शास्त्रोंके ग्रन्थोंमें भी इसी प्रकार लिखा है। कुछ पल और विपलोंका फर्क है परन्तु पूरे ३६५, दिनका वर्ष नहीं माना। पञ्चाङ्गोंमें साधारण सौरवर्ष ३६५। दिनका होता है। चौथे वर्ष एक दिन अधिक अर्थात् ३६६ दिनका वर्ष होता है जैसे चौथे वर्ष फरवरी मासमें २८ दिनके स्थानमें २९ दिन होते हैं। इस प्रकार पञ्चाङ्गोंके अनुसार सौरवर्ष ३६५। दिनका हुआ जो वर्षके परिमाणसे ११ मिनट १४ सैकण्ड अधिक होता है। इससे १२८ वर्षोंमें एक दिनका अन्तर पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि लगभग २००० वर्षमें इस भूलका संशोधन नहीं हुआ'।

जैसे मैं पहले कह चुका हूँ हमारा सौरवर्ष मेष संक्रान्तिसे माना गया है और यह कहना कि मेष संक्रान्ति अब १३ अपरैलके स्थानमें २२ मार्चको होती है बिलकुल ठीक नहीं। मेष संक्रान्तिको सूर्य मेष राशिमें उसी तरह प्रवेश करता है जैसे कि सहस्र वर्ष पहले। हमारे आचार्योंने जो सौरवर्ष माना है उसे Siderial Year अर्थात् तारोंसे सम्बन्ध रखनेवाला साल कहते हैं। पाश्चात्योंका जो आजकलका साल है उसे tropical year अर्थात् ऋतुओंसे सम्बन्ध रखनेवाला साल कहते हैं। प्राचीन आचार्यों और आधुनिक वैज्ञानिकोंके Siderial वर्षकी तुलना इस प्रकार है। आधुनिक सिद्धान्तके अनुसार वर्ष=३६५·२५६३७ दिन और सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ३६५·२५८७५ दिन। एक वर्षमें अन्तर = ·००२३८ दिन अर्थात् एक सहस्र वर्षमें जो अन्तर पड़ेगा=२·३८ दिन। यह ऐसा अन्तर नहीं जो अधिक माना जा सके। पण्डितजीने आधुनिक सिद्धान्तके अनुसार वर्ष ३६५ दिन ५ घंटे ४८ मिनट और ४६ सैकण्डका कहा है वह tropical year है। आधुनिक गणनाके अनुसार इन दो प्रकारके वर्षोंका अन्तर लगभग २० मिनटका है अर्थात् आजकलका साल हमारे सौरवर्षसे लगभग २० मिनट छोटा है। इस गणनाके अनुसार ७२ सालोंमें एक दिनका अन्तर पड़ता है और २२ दिनोंका अन्तर १५८४ वर्षोंमें पड़ा। इससे हमें यह भी पता लग सकता है कि कमसे कम इतने वर्ष पहले भारतवर्षमें राशियोंके नामपर महीनोंका नाम पड़ा।

अंतमें पण्डितजीने बताया है कि योरपके पञ्चाङ्गोंमें

कैसे संशोधन हुआ। इसमें पण्डितजीने बताया है कि योरपमें पहले-पहल Julius Caesar जूलियस सीजरने चान्द्रवर्षके बजाय सौरवर्षका प्रचार किया। उसने सालके ३६५ दिन और हर चौथे साल एक दिन बढ़ाकर ३६६ दिनका साल बनाया। इससे साल ३६५। दिनका हुआ जो ३६५ दिन ५ घंटे ४८ मिनट और ४६ सेकण्ड से ११ मिनट और १४ सेकण्ड अधिक था। इसका संशोधन १५८२ सन्में Pope Gregory पोपने किया जिसके अनुसार आजकलके योरपीय पञ्चाङ्ग बनते हैं। पण्डितजीका यह कहना तो ठीक है कि Julian Calender और आजकलके योरपीय वर्षमें ११ मिनट और १४ सेकंडका अन्तर होता था। परन्तु इसी आधारपर यह कहना कि हमारी मेष संक्रान्तिमें भी अन्तर पड़ गया है और मेष संक्रान्ति १३ अप्रैलके स्थानमें २२ मार्चको होने लग गयी है ठीक नहीं। २२ मार्चको तो विषुवत् संक्रान्ति अथवा सायन मेष संक्रान्ति होती है। जिस प्रकार मैं ऊपर कह आया हूँ मेष संक्रान्ति १३ अप्रैलको ठीक मनायी जाती है और हमारे सौरवर्षका आरम्भ भी मेष संक्रान्तिको मनाना प्राचीन सिद्धान्तोंके अनुसार है। हाँ, यदि यह कहा जावे कि हमारे सौरवर्ष Siderial अर्थात् तारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले न होकर पाश्चात्य लोगोंकी तरह tropical अर्थात् ऋतुओंसे सम्बन्ध रखनेवाले हों तो यह एक भिन्न बात है। इस अवस्थामें आप पञ्चाङ्गोंमें किसी प्रकारकी गलतीको नहीं बता रहे हैं। आप सिद्धान्तमें परिवर्तन चाहते हैं। किन्तु सिद्धान्तमें परिवर्तन करनेसे पहले हमें कई बातोंपर विचार करना होगा। एक ओर यदि हमने अपने सौरके स्थानमें पाश्चात्य साल लिया तो हमारे वह व्रत और त्योहार जो तिथियों और नक्षत्रोंपर अवलम्बित हैं कहाँ जावेंगे? क्योंकि राशियोंमें नक्षत्र हैं और जैसे राशियोंके नामपर सौरमास हैं उसी प्रकार नक्षत्रोंके नामपर चन्द्रमास। चन्द्रमासोंकी तिथि, मास और वर्ष आदिकी गणना अति प्राचीन कालसे चली आयी है। हमारे पूर्वजोंने चान्द्र तिथि, मास, वर्ष आदिकी गणनाको इतना आवश्यक समझा कि जब पीछे सौरवर्षोंकी गणनाको आवश्यक समझा गया तो उन्होंने चान्द्रवर्षोंका मिलान सौरवर्षोंके साथ कर दिया परन्तु पाश्चात्य लोगोंकी तरह इसका व्यवहार छोड़ नहीं दिया। इसलिये यदि हमने सौरवर्षका आरम्भ विषुवत् संक्रान्तिसे किया तो हम चल राशियोंका व्यवहार करेंगे जो केवल काल्पनिक हैं। फिर हम नक्षत्रों और उनपर निर्भर चान्द्र तिथियों वर्षों आदिके विषयमें चक्करमें पड़ जावेंगे। दूसरी ओर हमारे कई त्योहार जो ऋतुओंपर निर्भर थे जैसे विषुवत् संक्रान्तियाँ (मेष और तुला) सूर्यका उत्तरायण होना (मकर संक्रान्ति) आदि उनमें अब पहलेसे २२ दिनोंका अन्तर आ गया है। जिसको हम अज्ञान-वश नहीं समझते और ऐसे दिनोंपर मनाते चले आ रहे हैं जिनपर हमारे पूर्वज मनाया करते थे।

पण्डितजीने जो विषय छेड़ा है वह बड़े महत्वका है। यह प्रश्न मेरे मनमें भी चिरकालसे उठता रहा। पण्डितजी तथा दूसरे ज्योतिषाचार्योंसे साग्रह निवेदन कि वह इस प्रश्नको यहीं न छोड़ दें अपितु इसपर अधिक प्रकाश डालें जिससे सत्य अथवा असत्यका निर्णय हो सके और जनसाधारणको भी लाभ पहुँच सके।

कमालिया, २२-१२-३४ बलभद्र

सम्पादकीय टिप्पणी

[हर्षका विषय है कि श्री० बलभद्रजी भी श्री० गंगाप्रसादजीसे सहमत हैं कि विषुवत् संक्रान्तिका पर्व १३ अप्रैलके स्थानपर २२ मार्चको मानना चाहिये। खेद है कि इस देशमें कोई ऐसी संस्था नहीं है जो अपनी आज्ञासे एक ही बारमें पंचांगोंकी इस भारी भूलका सुधार कर दे। ऐसी संस्थाके अभावमें पत्र-पत्रिकाओंद्वारा जनताको सच्ची बात बतलाकर उनको भविष्यके सुधारको स्वागत करनेके लिये तैयार कर देना चाहिये।

श्री० बलभद्रजीने अपने लेखको श्री० गंगाप्रसादजीके लेखकी समालोचनाके रूपमें प्रस्तुत किया है और उनके लेखकी कुछ त्रुटियोंपर इस तरहसे आक्षेप किया है कि मूल बात, अर्थात् आप भी मकर संक्रान्ति आदि उत्सवोंको संशोधित गणनासे निकली तिथियोंपर ही मनाना उचित समझते हैं, दब जाती है।

कितने वर्षोंमें २२ दिनका अंतर पड़ा इसमें श्री० गंगाप्रसादजीकी गणनामें गलती अवश्य हो गयी है; परंतु स्मरण रखना चाहिये कि जो उत्तर (१५८४ वर्ष) श्री-

शब्द-चिन्तन

[ले०—श्रीमान् पं० किशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री, प्रधानमंत्री हरिद्वार-यूनियन सनातनधर्म-सभा, कनखल]

(१) छः या छह ?

संख्या-वाचक 'छह' शब्दकी हिन्दीमें बड़ी अनिश्चयात्मक दशा है, उच्चारणमें भी और लिखनेमें भी। कोई इसे 'छै' बोलता है और कोई 'छह'। खड़ीबोलीमें प्रथम उच्चारण और वैसा लिखना गलत है; क्योंकि समष्टि बतलानेके लिये 'छैओ' रूप नहीं, 'छहो' होता है। यह अर्थ द्योतित करनेके लिये संख्या-वाचक शब्दोंके आगे सिर्फ़ 'ओ' लगा देते हैं, जो संस्कृतके 'अपि' अव्ययके समान अर्थ रखता है; जैसे 'पाँचो' 'दसो' 'तीनो' 'दोनो' आदि। जब इस प्रकार 'छहो' रूप होता है, 'छैओ' नहीं, तब निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि खड़ीबोलीका शब्द 'छह' है 'छै' नहीं। हिन्दीकी किसी-किसी 'बोली' में 'छै' भी बोला जाता है, जिसका समष्टि-बोधक रूप 'छैओ' होता है और उच्चारण 'छइओ' या 'छइयो' जैसा। यह इसलिये कि पहले कभी, और किसी-किसी जगह अब भी 'ऐ' का उच्चारण 'अई'

बलभद्रजीने निकाला है वह भी केवल स्थूल रूपसे ही सत्य है। सूक्ष्मरूपसे गणना करनेपर उत्तर इससे कुछ भिन्न निकलेगा। गणितकी दृष्टिकोणसे बहस करनेपर बहुतसे पाठक श्रीबलभद्रजीके आक्षेपोंको समझ नहीं पायेंगे। इसलिये इस विषयको मैं एक कल्पित कथासे समझा देता हूँ।

प्राचीन कालके एक चतुर कारीगरने एक अद्भुत घड़ी बनाकर एक मंदिरमें स्थापित की जो सहस्रों वर्षोंसे आजतक बराबर चल रही है। उस प्राचीन कालमें मंदिरके पुजारियोंने देखा कि घड़ी बहुत ठीक चलती है। महीने भरके भीतर एक सेकंडका भी अंतर नहीं पड़ा। उन्होंने अपने शिष्योंको आज्ञा दे दी कि सब पूजापाठ इसी घड़ीके अनुसार किया करो। शिष्योंने देखा कि जाड़ेमें सूर्योदय सात बजे होता है और इसलिये वे जाड़ेमें सात बजे सूर्योदय संबंधी पूजा कर दिया करते थे।

वर्षों बीत गये। वे शिष्य बूढ़े हुए। उनके नवीन शिष्य भी गुरुजनोंकी आज्ञानुसार घड़ीमें सात बजनेपर सूर्योदयसंबंधी पूजा कर दिया करते थे। इस प्रकार शिष्योंकी कईएक पीढ़ियाँ उत्पन्न हुईं, और लोप हुईं, परंतु जाड़ेवाली सात बजेकी पूजा जारी रही। परंतु घड़ी घड़ी ही ठहरी। वह प्रतिवर्ष १ सेकंड सुस्त जाती थी। प्रथम पुजारियोंको इस बातका पता न चला क्योंकि उनके कालमें कुल मिलाकर एक मिनटका भी अंतर न पड़ पाया था।

परंतु घड़ीके स्थापित करनेसे लेकर आजतक कोई ७२०० वर्ष व्यतीत हो गये और इस प्रकार घड़ी ७२०० सेकंड याने २ घंटे सुस्त हो गयी है। तो भी उस मंदिरमें जाड़ेवाली पूजा उस घड़ीके सात बजनेपर ही होती है, जब और घड़ियोंमें ९ बजता है।

एक दिन एक पंडितजीने पुजारियोंसे पूछा कि अरे भलेमानुसो, सूर्योदय तो तब होता है जब और घड़ियोंमें सात बजता है। तुम अपनी घड़ीके सात बजनेपर सूर्योदय सबंधी पूजा क्यों करते हो? इस अज्ञानका त्याग अब तो करो।

पुजारियोंने उत्तर दिया कि पण्डित जी! आपको मालूम होना चाहिये कि अन्य घड़ियोंके सात बजेवाले समयमें हम "लौकिक" शब्द अधिक लगाते हैं। उसका अर्थ है अन्य घड़ियोंवाला। समय दो प्रकारका माना गया है। एक लौकिक; एक अलौकिक अर्थात् हमारे मंदिरका। हम तो पूजा उसी समय करेंगे जब हमारी घड़ीमें सात बजें। यदि आप इस अलौकिक समयके बदले लौकिक समय चाहते हैं तो वे व्रत और त्योहार जो हमारे मंदिरकी घड़ीपर अवलंबित हैं कहाँ जावेंगे? पूजा किसी न किसी समय होनी ही चाहिये। ठीक सूर्योदयपर नहीं हुई तो इससे क्या? वर्षारंभ भी तो आगेकी ओर खिसकता चला जाता है। प्राचीन कालमें यह सूर्यके उत्तरायण होनेके समय होता था। अब २२ दिन पीछे होता है। अभी क्या है—कुछ हज़ार वर्षोंमें जाड़ेके बदले गरमीमें वर्षारंभ होगा और गरमीमें ही तब मकर संक्रांति लगेगी। —गो० प्र०]

जैसा होता है। उसी 'बोली' वाले शायद 'छह' को 'छै' करके बोलने लिखने लगे, जो ठीक नहीं। खड़ीबोलीमें 'छह' उच्चारण ही शुद्ध है।

जो लोग 'छह' बोलते हैं, वे भी लिखने में गलती करते हैं। 'छह' को हकारान्त न लिखकर विसर्गान्त लिख देते हैं। यह भ्रम है। बात यह है कि 'ह' का और विसर्गोंका उच्चारण-साम्य (आजकल) प्रायः एकसा ही है। इसीलिये भ्रमसे 'छह' को लोग 'छः' लिख दिया करते हैं; जैसे छोटे लड़के (इमूला) श्रुतलेखमें 'प्रातः' को 'प्रातह' कर जाते हैं।

आशा है, राष्ट्र-भाषाके लेखक यह अक्षर-भ्रम दूर कर देंगे और ठीक-ठीक लिखा करेंगे।

(२)—संख्यावाचक शब्दोंके तद्धितान्तरूप और व्याकरण

प्रत्येक भाषामें अपनी खूबी होती है। हिन्दीमें भी यह बात है। जब कोई भाषा प्रारम्भिक दशामें होती है, तो उसमें अर्थाभिव्यञ्जन-शक्ति बहुत कम होती है। छोटे बच्चे अपने मनके सब भाव ठीक-ठीक और संक्षेपमें नहीं प्रकाशित कर सकते। धीरे-धीरे जब वही भाषा प्रौढ़ होने लगती है और उसमें अभिव्यञ्जनशक्ति बढ़ जाती है तब, बड़ी-बड़ी बातें थोड़ेमें कही जाने लगती हैं। किसी भी समुन्नत भाषाके अच्छे कालको उठाकर देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है। यह अर्थाभिव्यञ्जन शब्दोंके प्रयोग-वैचित्र्यपर तो होता ही है, जैसा कि कविजन करते हैं; परन्तु यह तो उनकी कला है, सर्व साधारणकी बात नहीं। इसके अतिरिक्त, साधारण जनतामें भी भाषा-गौरव बढ़ता है और भाँति-भाँतिके शब्द-प्रयोग प्रचलित हो जाते हैं, जिन्हें वैयाकरण लोग 'तद्धित' 'कृदन्त' आदि विभागसे समझाते हैं। व्याकरण भाषाका अनुगमन करता है, वह उसका सञ्चालक नहीं है। इसलिये जिस भाषामें जैसा बोला जाता है, उसके उसी प्रकारके विचारका नाम 'व्याकरण' है। दुर्भाग्य-वश हिन्दी व्याकरणमें अभी पूर्णता नहीं आ पायी है, न स्थिरता। जो शब्द सदियोंसे बोले जा रहे हैं, उनको भी 'अछूत' समझकर छोड़ दिया गया है! उधर ध्यान ही नहीं गया है।

हिन्दी में 'लगभग' अर्थमें संख्यावाचक शब्दोंके परे 'क' प्रत्ययका प्रयोग होता है 'आठक दिनमें वे भी आ जायँगे' 'दिन चारक मुझे वहाँ लगेंगे' ऐसा बोला जाता है। इस 'क' की कृपासे 'लगभग' 'करीब' 'प्रायः' आदि लगानेका बखेड़ा बच जाता है। और भाषा संक्षिप्त तथा चुस्त हो जाती है। अवधीभाषामें भी इस प्रत्ययका प्रयोग है। 'दिन द्वैक' आदि प्रयोग गोस्वामीजीके मिलते हैं। ब्रजभाषामें भी 'टूटि छसातक टूक भये' इत्यादि प्रयोग प्रसिद्ध हैं। खड़ीबोली या राष्ट्रभाषामें भी यह प्रत्यय बोला जाता है; हाँ, लोग लिखते नहीं हैं! सो, यह उनकी कमजोरी या अज्ञता है, जो अपने घरकी मणिको छोड़कर प्रकाशके लिये 'लगभग' आदिकी तेल-बत्ती आदि ढूँढ़ते फिरें। जहाँ जिससे काम चले, वहाँ उसे दो।

परन्तु खेदकी बात है कि हिन्दी-व्याकरणकारोंने ऐसे प्रत्ययोंका उल्लेख भी नहीं किया है! तद्धितमें वही 'ता' 'त्व' 'आई' की गिनी-चुनी बातें लिख दी गयी हैं। इसका कारण यह है कि हिन्दीके वैयाकरणोंने अपनी भाषापर खूब विचार किये बिना ही अन्यान्य भाषाओंके व्याकरणोंके रूपान्तरको ही 'हिन्दी व्याकरण' कहकर जनताको दे दिया है! अब इधर ध्यान जाना चाहिये और अपनी भाषाका पूर्ण व्याकरण बनना चाहिये।

(३)—सन्धि आदि

हिन्दी-व्याकरणमें अपनी शब्द-सन्धियोंका भी विचार नहीं किया गया है। सब + ही = सभी, यह + ही = यही आदिका उल्लेख किसने किया है? इसीलिये नवाभ्यासी लेखक 'यह ही' 'वह ही' आदि कर्ण-कटु प्रयोग किया करते हैं।

इसी प्रकार हिन्दीके 'अपने' समास आदिकोंका भी विचार इसके व्याकरणोंमें नहीं किया गया है। 'बारक नाथ उबारौ कर गहि' आदिमें 'बारक' आदि शब्द मिलते हैं। यहाँ 'बार' के आगे वह 'लगभग' का अर्थ देनेवाला 'क' प्रत्यय नहीं है। वस्तुतः 'बार' और 'एक' शब्दोंका यह समास है, जिसका विग्रह है—'एकबार'। एकबार—बारक। ऐसे स्थलोंमें 'एक' आदि संख्या-वाचक शब्दोंका पर-प्रयोग होता है। फिर, संख्यावाचक एक आदि शब्दोंके स्वरोंका लोप हो जाता है, बस 'बारक' आदि बन जाता है। हिन्दी-व्याकरणोंमें 'गतः = अत्र' का 'गतोऽत्र' तो बतलाया गया है; पर अपने शब्दोंमें वर्ण लोप आदिका कुछ भी विचार नहीं हुआ है! यह सब धाँधली नहीं, अज्ञान है।

आशा है, शब्द-ब्रह्मके उपासक इस ओर ध्यान देंगे।

हजारों कोससे बैठे-बैठे प्रत्यक्ष देखना और सुनना

[ले०—श्री बा० श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी० चित्रशाला, कानपुर]

बीसवीं शताब्दिके जितने क्रान्तिकारी आविष्कार हुए उनमें दूरदर्शनको प्रमुख स्थान प्राप्त है। हमारे देशमें ऐसी कथाएँ युगोंसे प्रचलित हैं कि अमुक ऋषिने योगमें इतनी सिद्धि प्राप्त कर ली थी कि हजारों कोसकी घटनाएँ अपने आश्रममें बैठे-बैठे देख और सुन सकते थे। हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें इस दिव्यदृष्टिके कितने ही उदाहरण भरे पड़े हैं। महाभारतमें महर्षि वेदव्यासने संजयको दिव्यदृष्टि प्रदान की थी। इसकी सहायतासे वे समस्त युद्धस्थलका हाल घर बैठे ही देखा करते थे। और उसका ब्यौरेवार वर्णन धृतराष्ट्रको सुनाते थे। आधुनिक दूरदर्शन और इस दिव्यदृष्टिमें बड़ा साम्यसा प्रतीत होता है। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि प्राचीनकालमें—जैसाकि साधारणतः विश्वास किया जाता है—दूरदर्शन आध्यात्मिक शक्तिकी सहायतासे सम्पन्न होता था और इस 'कलयुग' में नवीन निर्मित विद्युत्कलोंकेद्वारा।

दूरदर्शन क्या है ?

दूरदर्शनका तात्पर्य है, सैकड़ों और हजारों कोसकी दूरीपर होनेवाली घटनाओंको विद्युत्यंत्रोंकी सहायतासे, उनके घटित होते समय देख लेना। दूरदर्शनकी सहायतासे पाठक घर बैठे इस लेखके लेखकको यह वाक्य लिखते हुए देख सकते हैं। यही काम तारचित्रोंकी सहायतासे भी सम्पन्न हो सकता है परन्तु उसमें और दूरदर्शनमें बहुत अन्तर है। फिर भी तारचित्रण अथवा दूर-चित्रण (Picture telegraphy or telephoto) और दूरदर्शन (Television) इन दोनों ही विधियोंका विकास बहुत कुछ समान रीतिसे हुआ है। दूरदर्शनका प्रथम आभास सबसे पहले १९ वीं शताब्दिके अन्तिम वर्षोंमें एक आकस्मिक घटनासे हो गया था।

प्रकाशका बिजलीमें बदलना

आयर्लैंडके वेलेन्शिया (Valentia) नामक स्थानपर अमेरिकाको तार भेजनेके लिये मे नामक एक सज्जन

चित्र १—तारद्वारा फोटो भेजना। प्रेषित किये जानेवाले चित्र इन सिलंडरोंपर लपेटे जाते हैं।

काम करते थे। उन्हें सं० १९३० में प्रेषक यंत्रोंसे काम करते हुए एक दिन एका-एकी सेलेनियम (Selenium) शशिम नामक धातुके कुछ नवीन गुण मालूम हो गये। श्री मेने देखा कि जब उनके यंत्रोंमें लगे हुए सेलेनियमके बने हुए (Resistances) बाधादर्शकोंपर सूर्यका प्रकाश पड़ने लगता है तब यंत्रोंके आचरणमें कुछ विचित्रतासी आ जाती है। प्रकाशकी तीव्रताके साथ ही साथ (Electrical resistance) वैद्युतिक बाधामें भी परिवर्त्तन हो जाता है। बस इस आकस्मिक घटनाने वैज्ञानिकोंके लिये एक नितान्त नवीन कार्यक्षेत्रका मार्ग बतला दिया। वैज्ञानिकोंको फौरन ही एक नवीन बात मालूम हो गयी कि प्रकाशको विद्युत्में परिवर्त्तित किया जा सकता है। अर्थात् प्रकाशमें होनेवाले उतार-चढ़ाव विद्युत्धाराके उतार-चढ़ावोंमें बदले जा सकेंगे।

दूरदर्शन यंत्र बननेका आरंभ

इस सिद्धान्तके ज्ञात होते ही वैज्ञानिक दूरदर्शनके स्वप्न देखने लगे, परन्तु इसका सबसे पहला प्रयोग तारद्वारा चित्र भेजनेमें हुआ था। दूरदर्शनका नम्बर तो बहुत बादमें

आया। दूरदर्शनयंत्रोंके आविष्कारका श्रेय स्काटलैंडके सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीजेम्सलोगी बायर्डको प्राप्त है। श्रीबायर्डने संवत् १९८२ में इस यंत्रका आविष्कार करनेमें सफलता पायी। उन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध विज्ञान-विशारद श्रीनिकोलाटेसलाने भी दूरदर्शन यंत्रकी रचना की।

सेलेनियमकी सहायतासे काम करनेपर वैज्ञानिकोंको मालूम हुआ कि प्रकाशके उतार चढ़ावका विद्युत्की तरंगोंमें परिवर्त्तित होनेमें पूर्ण समकालीनता नहीं पैदा होती है। विद्युत्धाराका रूप धारण करनेमें कुछ देर लग जाती है। समकालीनताके बिना दूरदर्शनकी कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत करना असम्भव-सा ही था। इस समकालीनताको बनाये रखनेके लिये संवत् १९६४ में इंगलैंडके श्रीकेम्पवैल स्विंटन और रूसके वोरिस रोजिंगने दूरदर्शनको प्रेषित करने एवं ग्रहण करने इन दोनों ही कार्योंके लिये केथोड किरणोंके उपयोगकी सिफारिश की। परन्तु इससे भी कोई विशेष लाभ न हुआ। अब भी बहुतसे लोग इसी सिद्धान्तके अनुसार यंत्र बनानेमें लगे हुए हैं।

ताप-यावनिक पट

कुछ समयतक काम करनेके बाद मालूम हुआ कि प्रकाशको विद्युत्तरंगोंमें बदल देनेकी क्षमता लालम् (रुबीडियम Rubidium), (पाशुजम् पोटेसियम Potassium) और सैंधकम् (सोडियम Sodium) नामक धातुओंमें सेलेनियमसे कहीं अधिक मात्रामें विद्यमान है। इन धातुओंकी सहायतासे शीघ्र ही एक नयी तरकीब ढूँढ़ निकाली गयी और फोटोइलेक्ट्रिकसेल (Photo-electric cell) प्रकाश-विद्युत-घटकी रचना की गयी। इसकी सहायतासे समकालीनताकी समस्या तो हल हो गयी परन्तु एक नयी कठिनाई पैदा हो गयी। यह सेल शशिमके समान बहुत चैतन्य या तेज (Sensitive) न थी। थर्मायनिक वाल्व (Thermionic valve) ताप-यावनिक पटकी सहायतासे यह कठिनाई भी बहुत कुछ दूर हो गयी।

दूरदर्शकके विकासक

दूरदर्शनका मार्ग सुगम एवं प्रशस्त बनानेमें इन दोनों आविष्कारोंका बहुत कुछ हाथ है। प्रकाशविद्युत्घटकी सहायतासे प्रकाशका उतार-चढ़ाव तत्कालही विद्युत् तरंगोंमें परिणत किया जा सकता है और वाल्वकी सहायतासे विद्युत्तरंगोंको अत्यन्त शक्तिशाली बनाया जा सकता है। इन दोनोंके आविष्कार होते ही वैज्ञानिक और शौकीन लोग दूरदर्शनकी कल्पनाको व्यावहारिक रूप देनेमें जुट गये। इन लोगोंमें फ्रान्सके बेलिन हाल्वेक (Belin Holweck) और डाविलियर (Dauvillier) जर्मनीके केरोलस (Karolus) अमेरिकाके (Alexanderson) अलेक्ज़ेन्डरसन और आस्ट्रियाके (Mihlay) मिहले तथा स्काटलैंडके जोन्किन्स बायर्ड (Jenkins Biard) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वास्तविक सफलताका श्रेय बायर्ड महोदयको ही प्राप्त है।

इनमेंसे हरेकके कार्यकी विस्तृत विवेचना करना इस लेखकी क्षमताके बाहर है। अस्तु, यहां केवल दूरदर्शनकी कार्य-प्रणालीका संक्षिप्त उल्लेख किया जायगा।

दूरदर्शन कैसे कराया जाता है

प्रेषक स्थानपर अभीष्ट व्यक्ति, पदार्थ या दृश्यपर बहुत तेज प्रकाश डाला जाता है। प्रतिवर्त्तित प्रकाश (Reflected light) तालकी सहायतासे प्रकाशविद्युत्घटमें पहुँचाया जाता है। यहाँ पहुँचकर प्रकाश विद्युत्तरंगोंमें परिणत हो जाता है। ये तरंगें अभिवर्द्धक यंत्रोंमेंसे होकर ग्राहक स्थानकी ओर भेज दी जाती हैं। यदि तारद्वारा भेजना हुआ तो टेलिफोन—लाइनद्वारा अन्यथा बेतार या रेडिओयंत्रद्वारा। ग्राहक स्थानमें पहुँचकर ये तरंगें पुनः अभिवर्द्धित की जाती हैं और अभिवर्द्धनके बाद फिरसे प्रकाशमें परिणत की जाती हैं। और विशेष प्रकारके काँचके पर्देतक पहुँचकर दृश्य-पदार्थ अथवा व्यक्तिका बिम्ब अंकित कर देती हैं। दृश्य स्थिर हो या अस्थिर, उसका बिम्ब पर्देपर बराबर दिखाई पड़ता रहता है। बिम्ब बननेकी गति बहुत ही तीव्र होती है। और ऐसा मालूम होता है मानो पर्देपर बिम्ब बराबर बना रहता है। प्रेषक एवं ग्राहक यंत्रोंमें पूर्ण समकालीनता रखी जाती है।

प्रकाशविद्युत्घटकी सहायतासे प्रकाशका उतार-चढ़ाव, हल्कापन या गहरापन तत्क्षण ही विद्युत्तरंगोंमें परिणत किया जा सकता है। विद्युत्तरंगोंकी तीव्रता और शक्ति-प्रकाशके उतार-चढ़ावपर ही निर्भर रहती है। यदि

प्रकाशवान् पदार्थ पूर्णतया सफेद हो तो एक ही प्रकारकी स्थायी विद्युत्तरंगें उत्पन्न होती हैं। यदि पदार्थ काला हुआ तो सेलतक कोई प्रकाश नहीं पहुँचता। (कालेका तात्पर्य है प्रकाशहीन स्थान) अतः कोई विद्युत्तरंग उत्पन्न नहीं होती। यदि प्रकाशवान् पदार्थकी आभामें कोई कमी-बेशी पैदा होती है तो सेलद्वारा उत्पन्न विद्युत्-तरंगोंकी शक्ति भी उसीके अनुसार परिणत होती रहती है। कहनेका तात्पर्य यह है कि प्रकाश और विद्युत्तरंगोंमें पूर्ण साम्य होता है। इस घटकेद्वारा विद्युत्तरंगें प्रकाश-में भी परिणत हो जाती हैं। ताप—यावनिक पट अभिवर्द्धक यंत्रका काम करता है। इसकी सहायतासे विद्युत्तरंगोंको बहुत शक्तिशाली बनाया जा सकता है और उन्हें हजारों मीलकी दूरीतक भेजना सम्भव हो जाता है।

इन यंत्रोंकी सहायतासे सभी प्रकारकी दूरकी घटनाएँ और वस्तुएँ प्रत्यक्ष करायी जा सकती हैं, परन्तु पाण्डुवर्ण, स्वाभाविक गोरा रंग और सुर्ख रंगका ठीक ठीक दूरदर्शन अत्यन्त कठिन और कुछ हदतक असम्भव-सा है। ये यंत्र भूरे बाल और लाल पाउडरको भी ग्रहण नहीं करते। दूरदर्शन शालाओंके अभिनेताओंको अपने स्वाभाविक गोरे
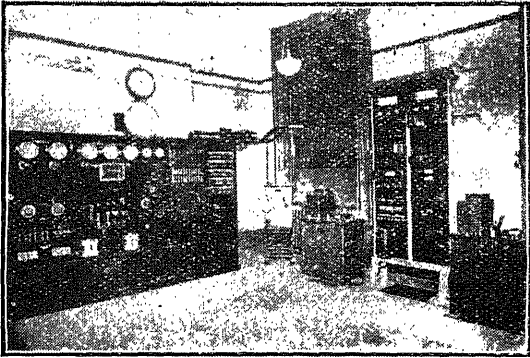
चित्र २—लन्दनके जनरल पोस्टआफिसमें 'तार-चित्र' भेजनेका कमरा

रंगको दूर करनेके लिये गहरा सफेद पाउडर लगाना आवश्यक है। इतना ही नहीं, उन्हें अपनी मूछोंमें हरा रंग लगाना पड़ेगा, अन्यथा बहुत सम्भव है कि उनकी मूछें ग्राहक पर्देपर बिलकुल दिखाई ही न पड़ें, परन्तु यदि बाल स्वयं ही गहरे काले रंगके होंगे तो शायद कोई बाधा न पड़ेगी।

अब जो यंत्र बने हैं उनमें बहुत सुधार हो गये हैं। परन्तु उन सबकी कार्य-प्रणालीका मूल सिद्धान्त एक ही है। बहुत दिनोंतक दूरदर्शन यंत्रोंकी सहायतासे जो दृश्य देखे जाते थे वे दूरदर्शनके वास्तविक उद्देश्योंको पूरा नहीं करते थे। वे वास्तवमें दृश्योंके प्रतिबिम्ब या छायामात्र होते थे। परन्तु किसी पदार्थको दूरदर्शन यंत्रोंद्वारा देखनेका सादृश्य उसका प्रतिबिम्ब शीशेमें देखनेसे दिया जा सकता है अबतक जो सफलता मिली थी, उससे प्रति-बिम्ब नहीं देखा जा सकता था। छायामात्र देखी जा सकती थी। दोनोंमें बड़ा अन्तर है। अब इन यंत्रोंमें बहुत काफी उन्नति हो गयी है। शीशेकी-सी अवस्था तो नहीं प्राप्त हुई, परन्तु जो कुछ हो सका है वह शैशवकालीन सिनेमाके चित्रोंकी याद दिलाता है।

रेडिओके रूपमें वैज्ञानिकोंको अलादीनका चिराग मिल गया है। इसकी सहायतासे ऐसी अनेक बातें सम्भव हो गयी हैं जो कुछ वर्षपूर्व नितान्त असम्भव ही नहीं, वरन् पागलके प्रलापतककी श्रेणीकी समझी जाती थीं। मार-कोनीके आविष्कारसे लेकर इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हो चुके हैं। टेलिविजन अथवा दूरदर्शनकी उन्नतिका श्रेय भी बहुत कुछ इसी रेडिओको ही प्राप्त है। दूरदर्शन विज्ञान संसारका सबसे नया चमत्कार है। इसकी सहायतासे आप संसारकी किसी भी घटनाको उसके घटित होते समय ही देख सकते हैं।

दूरदर्शनसे छिपे भेद नहीं खुल सकते

हजारों लाखों मीलपर घटित होनेवाली घटनाएँ घर बैठे ही देख लेनेसे यह तात्पर्य नहीं है कि आप अपने घरमें बैठे हुए दूसरे लोगोंकी गुप्तसे गुप्त एवं अत्यन्त प्राइवेट घटनाएँ भी देख सकते हैं। इस आविष्कारसे जन-साधा-रणके निजी जीवनका पर्दा फाश होनेकी आशंका नहीं है। जिस तरह हम रेडिओ यंत्रद्वारा केवल वे ही बातें सुन पाते हैं जो किसी स्थान-विशेषमें स्थित सूक्ष्मशब्दग्राही यंत्रके सामने बोली जाती हैं। उसी प्रकार दूरदर्शन यंत्रद्वारा हम केवल उन्हीं घटनाओंको देख सकते हैं। जिन्हें प्रेषक स्थानपर स्थित बिजलीकी आँख (Electric eye) भलीभाँति देख सकती है।

सृष्टिके आरम्भसे अबतक मनुष्य अपनी स्वाभाविक दृष्टिकी पहुँचतककी दूरीकी घटनाओंको देखता आ रहा है। दूरबीनके आविष्कारने मनुष्यकी दृष्टिकी स्वाभाविक पहुँचको बहुत कुछ बढ़ाया। परन्तु इस बढ़ी हुई दृष्टिका क्षेत्र भी बहुत कुछ सीमित रहा। अब टेलिविजनकी सहायतासे हम उन सब स्थानोंकी घटनाओंको बखूबी देख सकते हैं जहाँतक टेलिफोन और रेडिओकी पहुँच है। मजा यह है कि रास्तेमें पड़नेवाले विशालकाय गिरि-शृंग अथवा अथाह समुद्र, विस्तृत मरुभूमि एवं अत्यन्त घने जंगल-तक इस दूरदर्शनमें रुकावट नहीं डाल सकते।

तब और अबकी दिव्यदृष्टि

प्राचीन पुस्तकोंमें कुछ ऐसे अंजनोंका वर्णन मिलता है जिनके लगानेसे मनुष्य पृथ्वी एवं समुद्रके गर्भके दृश्य देख सकता था। परन्तु अब वे अंजन अप्राप्य हैं और जन-साधारण उन्हें कपोलकल्पित कहानियोंसे अधिक महत्व नहीं देता। अंजनोंके अलावा कुछ ऐसे ऋषि-मुनियोंका भी हाल मिलता है जिन्होंने अपनी कठिन तपस्याके बलपर ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली थी जिससे वे अपने आश्रममें बैठे-बैठे समस्त संसारका हाल देखा करते थे। और वह भी केवल वर्त्तमान कालका ही नहीं, वरन् भूत और भविष्यत् कालका भी। इस शक्तिको अक्सर दिव्यदृष्टिके नामसे पुकारा भी गया है। यह दिव्यदृष्टि केवल आध्यात्मिक एवं यौगिक क्रियाओंसे ही सम्भव थी। सर्वसाधारण इन शक्तियोंका कभी लाभ नहीं उठा सके। आधुनिक विज्ञानकी सहायतासे यह दिव्यदृष्टि फिरसे सम्भव हो अवश्य गयी है परन्तु यह सर्वसाधारणके लिये बिलकुल वैसी ही अलभ्य है, जैसे प्राचीन कालकी दिव्यदृष्टि। फर्क केवल इतना है कि पहलेके दिव्यदृष्टिका लाभ तपस्वी लोग उठा सकते थे और आजकलके दूरदर्शनका उपयोग तपस्वियोंके बजाय धनिकोंके लिये सुगम हो गया है। हाँ, वैज्ञानिक लोग इन यंत्रोंको अधिक लोकोपयोगी और सस्ते बनानेके प्रयत्न अवश्य कर रहे हैं।

प्रथम सफल प्रदर्शन

श्री जेम्स लोगी बायर्डने १४ सौर माघ, संवत् १९८२ को लन्दनमें दूरदर्शनका प्रथम सफल प्रदर्शन किया। प्रथम प्रदर्शनके लिये जो यंत्र व्यवहारमें लाये गये थे, वे आज दिन भी साउथ केन्सिंगटन म्यूजियममें सुरक्षित हैं। यंत्र-पर निम्नलिखित वाक्य अंकित हैं--

जे० एल्० बायर्डद्वारा निर्मित दूरदर्शनकी प्रथम भौतिक सामग्री

"इसी प्रेषकयंत्रकी सहायतासे मि० जे० एल्० बायर्ड-को अपने दूरदर्शनके प्रयोगोंमें सफलता प्राप्त हुई थी। इसीकी सहायतासे वे १९२५ में बेतारकेद्वारा चित्रोंका आकारमात्र (outlines) भेजनेमें सफल हुए थे। इसी यंत्रद्वारा उन्होंने २७ जनवरी १९२६ को रायल सोसाइटीके सदस्योंके सम्मुख दूरदर्शनका प्रथम वास्तविक प्रदर्शन किया था।"

प्रदर्शनके अगले दिन; अर्थात्—१५ माघ, १९८२ को लन्दनके टाइम्स नामक प्रमुख पत्रमें निम्नलिखित संवाद प्रकाशित हुआ था—

'मंगलवारको रायल सोसाइटीके सदस्यों और अन्य प्रतिष्ठित दर्शकोंने फर्म स्ट्रीट सोहोकी प्रयोगशालामें श्री जे० एल्० बायर्ड-द्वारा आविष्कृत नवीन यंत्रका प्रदर्शन देखा।'
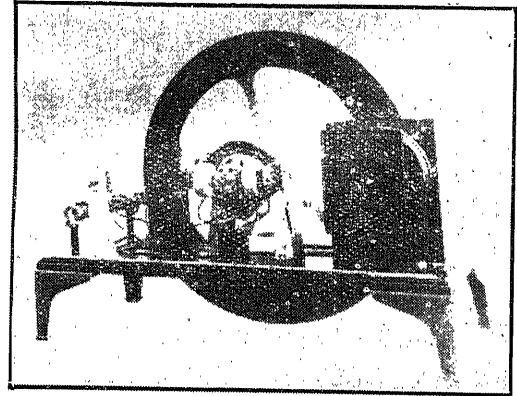
चित्र ३—बायर्डका दूरदर्शक यंत्र कमर्शियल माडेल (बिना कवरके)

दर्शकोंको एक मनुष्यका बोलता हुआ चेहरा दिखाया गया था। बिम्ब धुँधला था। और उसमें दीप्तिका अभाव था परन्तु उन्होंने

यह सिद्ध कर दिखाया था कि उनके यंत्रकी सहायतासे दूरस्थित मनुष्यके मुखकी हरकतें उसी समय देखी जा सकती हैं और उसकी आवाज़ भी सुनी जा सकती है।

इसी सम्बन्धमें फे राडे हाउसके प्रिंसिपल डा० अलेकज़ेण्डर रसल एफ्० आइ० एस्० ने ३ जुलाई १९२६ को निम्न-आशयका लेख प्रकाशित किया था—

'हमने दूरदर्शनद्वारा जीवित मनुष्यके चेहरेको देखा। चेहरेपर पड़नेवाले प्रकाशका उतार-चढ़ाव बहुत स्पष्ट था। सिर, मुँह और ओठोंकी सब हरकतें साफ-साफ मालूम होतीं थीं। उस व्यक्तिकी सिगरेट और उसका धुँआ भी बिलकुल साफ-साफ दिखाई देता था। यह सब बातें थियेटरमें देख रहे थे। प्रेषकयंत्र इमारतके दुमंजिलेपर एक कमरेमें था। वास्तवमें जो परिणाम प्राप्त हुआ हैं उसे बिल्कुल सम्पूर्ण तो नहीं कहा जा सकता, बिम्बकी तुलना आधुनिक सिनेमाचित्रोंसे भी नहीं की जा सकती; परन्तु फिर भी मुखका आकार बहुत स्पष्ट था और वह पहचाना जा सकता था। यह पहला अवसर था जब हमने दूरदर्शनका वास्तविक प्रदर्शन देखा। इसका सब श्रेय मि० बायर्डको ही प्राप्त है।'

अमेरिकाके प्रयोग

इन्हीं दिनों अमेरिकामें भी बराबर प्रयोग किये जा रहे थे। वहाँ भी २७ अप्रैल १९२७ को, लन्दनके प्रयोगके ठीक ३ मास बाद, अमेरिकन टेलिफोन और टेलिग्राफ कम्पनीने दूरदर्शन यंत्रोंकी सहायतासे न्यूयार्कसे एक दृश्य २०० मीलकी दूरीपर स्थित वासिंगटन नगरमें दिखलाया। दृश्यका आकार केवल ढाई वर्गइंच था। यंत्र और सामग्री भी बहुत मूल्यवान थी। प्रदर्शनका प्रबन्ध बड़े-बड़े विशेषज्ञ इंजीनियरोंने किया था। इस प्रदर्शनके खर्चको देखकर कम्पनीको दूरदर्शनको व्यावसायिक रूप देनेके सम्बन्धमें बड़ी निराशा हुई, परन्तु प्रयोग बराबर जारी रहे।

इधर बायर्डने भी अपनी कार्य-पद्धतिको बहुत उन्नत कर लिया था और वे अपने यंत्रकी सहायतासे लन्दनसे ४०० मीलकी दूरीपर स्थित ग्लासगो नगरमें चित्र दिखलाने लगे थे। उन्होंने बेतारके यंत्रोंद्वारा तरंगें भेजनेमें भी सफलता प्राप्त कर ली थी। प्रथम प्रदर्शनके एक वर्ष बाद ८ फरवरीको उन्होंने लॉंगएकर (लन्दन) से न्यूयार्कके एक उपनगर हरिस्डेलतकके दृश्य दिखलानेमें सफलता प्राप्त की। अगले महीनेमें इसी स्टेशनसे अटलांटिक महासागरके मध्यमें यात्रा करने वाले 'बरंगेरिया' नामक जहाजके यात्रियोंको लॉंगएकरमें उपस्थित व्यक्तियोंके प्रतिबिम्ब दिखानेमें भी सफल हुए। इस सम्बन्धमें उक्त जहाजके बेतारके यंत्रोंके प्रमुख निरीक्षक श्री ब्राउनने 'टेलिविजन' नामक पत्रिकामें लिखा था—

"एटलांटिक महासागरके मध्यमें यात्रा करते हुए लन्दनमें उपस्थित मिस सेलवीको देख सकना महान् आश्चर्य था। इससे मालूम होता है कि अब दूरदर्शन यंत्रमें अभूतपूर्व उन्नति हो गयी है।

दूरदर्शन और दूरश्रवण

परन्तु अभीतक दूरदर्शन सर्वसाधारणतक न पहुँच पाया था। उपर्युक्त सभी प्रयोग विशेषज्ञोंतक ही सीमित थे। सबसे पहला सार्वजनिक प्रदर्शन रेडिओ प्रदर्शिनीमें किया गया था। इस प्रदर्शनमें विद्युत्तारोंकी सहायता ली गयी थी। इसके बाद २१ सौर फाल्गुन, १९८५ को एक और सार्वजनिक प्रदर्शन किया गया। इस बार तारोंकी सहायता नहीं ली गयी। इस प्रदर्शनकी सफलताके बाद ब्रिटिश ब्राड कास्टिंग कम्पनीने अपने दैनिक कार्यक्रममें रेडिओके संवादोंके साथ ही साथ चित्र आदि दिखाना स्वीकार कर लिया। कम्पनीका सर्वप्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन १४ सौर आश्विन, सं० १९८६ को हुआ। प्रेषक स्थान बायर्ड टेलिविजन कम्पनीकी प्रयोगशाला ही रखी गयी थी।

उस समयतक शब्द और प्रकाशकी तरंगें एक साथ भेजनेका प्रबन्ध न हो सका था। अतः शब्द तरंगें पहले भेज दी गयी थीं और वक्ताकी बिम्ब-तरंगें बादको इसके ६ मास बाद अर्थात् १७ सौर चैत्र सं०, १९८६ को दूरदर्शन और दूरश्रवण दोनों ही कार्य एक साथ किये जा सकनेमें भी सफलता प्राप्त हो गयी। तबसे दूरश्रवणके ही साथ दूरदर्शन भी ब्रिटिश रेडिओ कम्पनीके कार्यक्रममें शामिल हो गया है। दूरदर्शनके इतिहासमें यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी घटना थी। सर सिडनी माल्सेने उद्घाटनके समय कहा—

'महिलाओ और सज्जनो, आज दूरदर्शन एक नवीन युगमें पदार्पण कर रहा है। दूरदर्शनके इतिहासमें पहली बार आज हम दूरदर्शनके साथ ही साथ शब्द सुननेमें भी समर्थ हो रहे हैं। यहाँ

क्या हो रहा है? इसे मैं बहुत ही सरल भाषामें समझानेकी कोशिश करूँगा मैं श्री बायर्डकी लांगएकरकी रंगशालामें बैठा हूँ। मेरे सामने एक सूक्ष्म शब्दग्राही यंत्र (microphone) और एक प्रेषक यंत्र है। मेरी आवाज और आकृति दो भिन्न-भिन्न लाइनोंके-द्वारा ब्रिटिश रेडिओ कम्पनीके (control room) नियंत्रण-स्थानमें पहुँचायी जा रही है। यह स्थान (Savoy Hill) सेवाय पहाड़ीपर स्थित है। वहाँपर शब्द और प्रकाशकी तरंगें ब्रुकमेत पार्कके रेडिओस्टेशनसे सम्बद्ध की जा रही हैं। वहाँसे वे दो विभिन्न तरंगोंद्वारा प्रेषित की जा रही हैं।

"आपमेंसे जो लोग दूरदर्शन यंत्रमें देख रहे हैं वे मुझे यह घोषणा करते हुए देख सकेंगे।"

और हुआ भी ऐसा ही। उस दिनसे दूरदर्शन इङ्गलैंड और अमेरिकामें सार्वजनिक मनोविनोदका साधन बन गया है। अमेरिकामें तो बहुत ज्यादा उन्नति हो चुकी है। अमेरिकन टेलिग्राफ और टेलिविजन कम्पनीने टेलिफोन यंत्र-द्वारा बातचीत करते समय बात-चीत करनेवालोंको एक दूसरेके प्रतिबिम्बको देख सकना भी सम्भव कर दिखाया है। कम्पनीने इस नवीन पद्धतिको (Ikonophone) इकानोफोनका नाम दिया है। पिछले दो तीन वर्षोंसे फ्रांसमें भी इस पद्धतिको कार्यरूपमें परिणत किया जाने लगा है।

चित्र ४—बायर्डका दूरदर्शनयंत्र काम कर रहा है। दर्शकगण क्रिकेटके सुप्रसिद्ध खिलाड़ी स्ट्रडविकको क्रिकेट खेलते देख रहे हैं।

दूरदर्शन और सिनेमा

दूरदर्शनयंत्र अब इतने सम्पन्न हो गये हैं जिससे यह अनुमान किया जाता है कि वे अमेरिकाके घरोंमें शीघ्र ही साधारण बेतारके यंत्रोंका स्थान ग्रहण कर लेंगे। इससे सिनेमा और थियेटरके व्यवसायोंमें क्रान्ति उत्पन्न होने ही की नहीं, वरन् उनके नष्ट हो जानेतककी आशंका है। परन्तु इसमें अभी काफी समय लगेगा। अमेरिकामें टेलिविजनके लिये अभिनेता और अभिनेत्री अभीसे तैयार हैं। बृहत् दूरदर्शन-शालाओंका निर्माण बड़े समारोहपूर्वक आरम्भ हो गया है। टेलिविजन नाट्यशालाएँ भी बनायी जा रही हैं।

वे यंत्र जिनसे दूरदर्शन और दूरश्रवण दोनों ही कार्य एक साथ सम्पन्न हो सकते हैं टेलिविजन टाकीज यंत्र कहलाते हैं। ये सहस्रों सिनेमाओं और नाट्यशालाओंके कारोबारको नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। सिनेमा फिल्म तैयार करनेका प्रधान केन्द्र हालीवुड भी इस नवीन आविष्कारसे भयभीत हो उठा है। वहाँकी कतिपय कम्पनियाँ अब अपनी फिल्मोंके दूरदर्शन एवं दूरश्रवणके अधिकार भी सुरक्षित रखने लगी हैं।

ज्येष्ठ, १९८७ में अमेरिकाकी जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनीने दूरदर्शनकी सहायतासे थियेटर दिखानेमें भी सफलता पायी है। कम्पनीकी प्रयोगशालामें नाटक खेला गया था। दर्शक लोग रंगमंचसे १ मीलसे अधिक दूरीपर थे। अभिनेताओंके प्रतिबिम्ब दूरदर्शन यंत्रद्वारा दर्शकोंके सामने दिखाई पड़ते थे। पर्दा लगभग ६ फीट लम्बा था लाउड-स्पीकर्सकी सहायतासे बातचीत भी साफ-साफ सुनाई दी थी।

इस दिव्यदृष्टिद्वारा क्या-क्या सम्भव है?

कुछ दिनोंके बाद इंगलिस्तानमें भी रेडिओकी ब्रिटिश-प्रयोगशालासे दूरदर्शनद्वारा नृत्य अभिनय, गायन और वाद्य प्रेषित किये गये थे और प्रदर्शन इङ्गलिस्तानके विभिन्न भागोंके अतिरिक्त विदेशोंमें भी देखा और सुना गया था। और अब तो इस प्रकारके प्रदर्शन आये दिनकी बात हो गयी है। (Filament lamps) तन्तुदीपोंकी सहायतासे बने हुए पर्दोंमें प्रतिबिम्ब सिनेमाके ही चित्रोंके सदृश आलोकमय और देदीप्यमान हो जाते हैं। इधर हालमें जो यंत्र बने हैं उनसे खेल-कूद, संगीत, नाटक, नृत्य और गायन, सार्वजनिक अनुष्ठान और अन्य बहुत-सी बातें दूरदर्शित करायी जा सकती हैं। शिकागोमें तो कुछ ऐसे यंत्र भी तैयार हुए हैं जिनकी सहायतासे किसी भी नगरकी कोई

घटना दूरदर्शित करायी जा सकेगी। उस नगरके बटनको दबाना होगा, परदा प्रकाशित हो उठेगा। जो घटना प्रदर्शित की जा रही है वह ग्राहक परदेपर देखी और सुनी जा सकेगी। अब घुड़दौड़ोंके प्रेमियोंको दौड़के मैदानमें जानेका कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। हमारे तीर्थप्रेमी भारतीय राजे-महाराजे और धनी-मानी सज्जन घर बैठे ही नित्यप्रति प्रत्येक तीर्थस्थानके दर्शन कर सकेंगे और मक्का मदीनेकी यात्रा करनेवाले मुसलमान भाइयोंको घर बैठे ही काबाके दर्शन हो जाया करेंगे?

गतवर्ष लन्दनके एक सिनेमा हालमें दूरदर्शन यंत्रोंके-द्वारा आयरलैंडकी सुप्रसिद्ध घुड़दौड़का दृश्य दिखाया भी गया था। उस प्रदर्शनको सब प्रकारसे पूर्ण तो नहीं बताया गया पर इतना जरूर कहा जा सकता है कि दूरदर्शनके पर्देपर दर्शकोंने समस्त घटनाको घटनास्थलपर जानेवाले दर्शकोंकी अपेक्षा अधिक सुगमता और सुविधापूर्वक देखा।

वास्तवमें दूरदर्शनके आविष्कारने विज्ञान-संसारमें एक अद्वितीय और अभूतपूर्व क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। यह आविष्कार इतनी जल्दी और इतनी तेजीके साथ उन्नत हुआ है कि सर्वसाधारण एकाएक इसके व्यावहारिक महत्वको भलीभाँति समझ भी न सके। इतने आश्चर्यजनक आविष्कारने उन्हें चौंधिया दिया। अब धीरे-धीरे लोग दूरदर्शनके व्यावसायिक महत्वको समझने लगे हैं। १॥-२ वर्ष पहले ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशनने नयेसे नये फैशनोंका प्रदर्शन किया था। उस प्रदर्शनको देखकर विज्ञापनके विशेषज्ञोंने कहा था कि टेलिविजनकी सहायतासे रेडिओद्वारा विज्ञापन करनेकी शक्तियाँ बहुत कुछ बढ़ जायँगी। रेडिओद्वारा अबतक जिन चीजोंका केवल वार्तिक वर्णन किया जा सकता था अब उनकी सूरत-शकल भी दिखायी जा सकेगी। इसके साथ ही बैंकोंको भेजे जानेवाले चेकोंपर किये गये हस्ताक्षरोंकी सत्यताकी भी जाँच की जा सकेगी। बैंक मैनेजर, चेकके ऊपरके हस्ताक्षरमें जरा भी सन्देह होनेपर फौरन ही हस्ताक्षर करनेवालेको उसका प्रतिबिम्ब दिखलाकर उसकी सत्यताकी जाँच कर लेगा,—वह व्यक्ति चाहे सैकड़ों कोसकी दूरीपर ही क्यों न हो।

दूरदर्शनके इस भावी व्यावहारिक रूपकी आशासे, अमेरिकाके अधिकारी वर्गने अभीसे कुछ विशेष लम्बाईकी तरंगें पुलिसके लिये सुरक्षित करवा ली हैं। दूरदर्शनसे पुलिसके कार्यमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी। किसी भी सन्दिग्ध व्यक्ति अथवा उसके चित्रको दूरदर्शन यंत्रके सामने खड़ा करके पुलिस हेड क्वार्टरको दिखाया जा सकेगा और अपराधियोंको रेल, जहाज अथवा वायुयान सभी जगह सहूलियतसे पकड़ा जा सकेगा।

इस समय यूरोपमें लगभग ३५,००० दूरदर्शन यंत्र काममें लाये जा रहे हैं। परन्तु अभीतक ये मध्यम श्रेणीके मनुष्योंकी पहुँचके बाहर हैं। जर्मनीका डाक-विभाग इन यंत्रोंकी उन्नतिमें विशेष दिलचस्पी ले रहा है। इंगलैंडमें भी टेलिविजन प्रेमियोंने एक टेलिविजन सोसाइटी बना ली है और सोसाइटीकी ओरसे नयेसे नये टेलिविजन यंत्रोंकी प्रतिवर्ष एक प्रदर्शिनी की जाती है।

दूरदर्शनको अन्तरराष्ट्रिय महत्वका आविष्कार बनानेमें अभी बहुत-सी कठिनाइयोंका सामना करना है। इन कठिनाइयोंसे फुर्सत मिलते ही दूरदर्शन यंत्र रेडिओकी ही तरह लोकप्रिय हो जायँगे। आजकल रेडिओके सिद्धान्तोंसे अनभिज्ञ लोग भी रेडिओ सेट खरीदकर संसार भरकी बातें सुन सकते हैं। इसी तरहसे वह दिन भी शीघ्र ही आनेवाला है जब कोई भी शौकीन आदमी संसार भरकी बातें सुननेके साथ ही साथ देश-देशान्तरमें घटित होनेवाली घटनाओंको उनके घटित होते समय ही देख सकेगा और इसके लिये उसे केवल एक बटनमात्र दबाना होगा।

इस समयतक दूरदर्शनकी जो उन्नति हो चुकी है लोग उतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हैं। नित्य नवीन और परिष्कृत यंत्र तैयार किये जा रहे हैं। अभी हालमें ही एक ऐसा यंत्र तैयार हुआ है जिसमें सिनेमाके चित्र लेनेके केमरेके साथ ही साथ दूरदर्शनके यंत्र भी लगे हुए हैं। इस यंत्रद्वारा फिल्मोंके तैयार होते ही उन्हें दूरदर्शित कर दिया जाता है। फिल्मोंके तैयार होने और उन्हें दूरदर्शित करानेमें अन्तर पड़ता है केवल आधे मिनटका! फिल्मको दूरदर्शित करानेके साथ ही साथ फिल्म सम्बन्धी शब्दोंको भेजनेका भी समुचित प्रबन्ध है। इस यंत्रकी सहायतासे फिल्म देखने और सुननेवालेको ऐसा मालूम होता है कि घटनाएँ

हमारी शिक्षा कैसी होनी चाहिये ?

[ले० श्री देवराजजी विद्यावाचस्पति, जयपुर]

वर्तमान शिक्षा-पद्धतिसे असन्तुष्टताके कारण

शिक्षणालयोंके अन्दर वर्तमान कालमें जो शिक्षा दी जा रही है उसके प्रति प्रत्येक विचार-शील व्यक्तिको असन्तोष हो रहा है, परन्तु उपयोगी शिक्षा क्या होनी चाहिए इसकी ओर बहुत ही कम विचारकोंका ध्यान गया है। सरकारी शिक्षणालयोंकी शिक्षाके प्रति असन्तोषके अनेक कारण हैं।

पहला कारण

यह है कि उनमें सदाचारकी शिक्षा और धार्मिक शिक्षाका अभाव है।

दूसरा कारण

यह है कि वह शिक्षा शिक्षितोंको भारतीय रहन-सहन-से हटा देती है।

तीसरा कारण

यह है कि उन्हें भारतीय आदर्शों और भारतीय गौरवसे विमुख कर देती है, इसके स्थानमें उनके दिलोंको पाश्चात्य आदर्शों और पाश्चात्य गौरवकी ओर झुका देती है, परिणाम यह होता है शिक्षित लोग शरीर मात्रसे भारतीय रहते हुए दिल और दिमाग दोनोंसे पाश्चात्य हो जाते हैं।

चौथा कारण

यह है कि शिक्षित लोग संसारमें आजीविका चलानेके लिये भी किसी भी प्रकारके श्रमी जीवनके सर्वथा अयोग्य हो जाते हैं। इञ्जीनियर, कृषिशास्त्रज्ञ आदि जो थोड़ेसे लोग श्रम-विभागमें उतरते हैं वे अपना कार्य चलानेके लिये विपुल धनकी अपेक्षा रखते हैं अतः गरीब भारतमें अपना स्थान न पाकर वे भी बेकार हो जाते हैं। अथवा वैध उपायोंसे गरीबोंके धनको खींचकर उन्हें अधिक गरीब करनेमें सहायक होते हैं।

शिक्षितोंमें बेकारी बढ़नेके कारण

जिस सरकारने शिक्षा दी उसी की मददसे अपना जीवन-निर्वाह करनेके लिये वे उसकी ओर ताकते हैं। सरकारके पास शिक्षितोंके लिये परिमित स्थान हैं। जितने शिक्षित होते हैं वह उन सबको स्थान नहीं दे सकती। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण संसारका व्यापार गिर जानेसे और संसारकी आमदनीमें कमी आ जानेसे सरकार उतने शिक्षितोंको भी अब स्थान नहीं दे सकती जितने शिक्षितोंको वह पहले दिया करती थी। इस कारण सरकारी शिक्षासे शिक्षितोंमें बेकारी बढ़ती चली जा रही है।

गैर सरकारी पाठशालाओंकी शिक्षण-पद्धति

यद्यपि गैर सरकारी शिक्षणालयोंने भी अपनी शिक्षा-पद्धतिमें इस बेकारीके प्रश्नका हल आरम्भ नहीं किया है और प्रायः उसी शिक्षणका अनुसरण किया है जो सरकारी शिक्षणालयोंमें दिया जा रहा है तो भी गैर-सरकारी शिक्षणालयोंसे अधिक आशा है, कि यदि वे अपने शिक्षणमें कुछ उचित परिवर्तन कर डालें और स्वावलम्बी

उसी समय उसके सामने ही हो रही हैं।

इस यंत्रके अलावा और भी कई एक यंत्र तैयार हुए हैं। इनमें नाक्टोवाइजर (Noctovisor) और फोनोविजन (Phonovision) नामक यंत्र विशेषतया उल्लेखनीय हैं इनकी सहायतासे अन्धेरे और कुहरेमें भी दूर-दूर तककी चीजें बखूबी देखी जा सकेंगी। नाक्टोवाइजर यंत्रकी सहायतासे वायुयानोंके घने कुहरे और मौसम खराब होनेपर भी एक दूसरेको देखनेकी सुविधा हो जायगी। फोनोविजनकी सहायतासे प्रकाशको शब्द-तरंगोंमें परिणत कर, स्थायी रूपसे अंकित किया जा सकेगा। दूरदर्शन यंत्रोंद्वारा देखे जानेवाले बिम्ब स्थायी भी बनाये जा सकेंगे। वास्तवमें दूरदर्शन यंत्रोंने जिस तेजीसे उन्नति की है और जो क्रम अभीतक जारी है उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि दूरदर्शनका भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

जीवनका शिक्षण भी आरम्भ कर दें तो आजकलके शिक्षणमें उठी हुई बेकारी आदिकी अनेक समस्याओंको निश्चयसे शीघ्र ही दूर कर सकते हैं ।

उत्तम शिक्षाकी परिभाषा

उत्तम शिक्षामें दिमाग (Head), दिल (Heart) और दस्त (Hand = हाथ) तीनोंकी शिक्षा समान भावसे होनी चाहिये । **उत्तम विचारोंके साथ सबके साथ प्रेम रखता हुआ हाथ चलाकर पुरुषार्थ करके परोपकारके लिये जो जीता है वह उत्तम शिक्षित है ।**

हमारा जीवन नीरस क्यों हो रहा है ?

शिक्षितोंमें हाथका हुनर बिलकुल छूट जानेसे मनुष्योंकी आजीविका टूट गयी है । भूखा दरिद्री मनुष्य क्या परोपकार करे ? दरिद्रताके कारण दिल भी मर गया है, इसीसे मनुष्योंका मनुष्योंके साथ सच्चा प्रेम भी नहीं रहा । दिमाग चलाकर कपोल-कल्पित बातें बनाना रह गया है । वे बातें भी कपोल-कल्पित हैं, अतः नीरस हैं क्योंकि विचारोंमें रस तो दिलके साथ हाथ चलानेसे पड़ता है अन्यथा नहीं । इसलिये आजकलकी शिक्षाको प्राप्त करके हम मनुष्योंका जीवन नीरस भारभूत हो रहा है ।

सरस जीवन कैसे बनाया जा सकता है ?

इसलिये जीवनको सरस करनेका इस समय एकमात्र उपाय यही दीखता है कि शिक्षा ऐसी दी जावे जो मनुष्यको श्रमी, उद्यमी, व्यवसायी बना दे । अपने श्रम, अपने उद्यम और अपने व्यवसायके साथ संघ बनाकर जीते हुए मनुष्य सत्य, अहिंसा आदि धार्मिक अंगोंके आचरणका अधिक क्रियात्मक अभ्यास कर सकेंगे और सच्चे धार्मिक बन सकेंगे ।

गैर सरकारी विद्यालयोंकी विशेषता और उनमें दोष

हमारे गैरसरकारी शिक्षणालय जो सरकारी शिक्षणालयोंकी अपेक्षा कुछ अधिक विशेषता रखते हैं वह विशेषता धार्मिक शिक्षाकी और राष्ट्रिय-भावनाकी है । शिक्षाका उद्योग-रहित होना तो जैसा सरकारी शिक्षणालयोंमें है वैसा ही इनमें भी है । विभिन्न सम्प्रदायोंके गैर सरकारी शिक्षणालय जो धार्मिक शिक्षा दे रहे हैं वह धार्मिक शिक्षा शिक्षितोंको एक सूत्रमें नहीं बाँध रही है प्रत्युत उनमें भेदभाव वा वैमनस्यका कारण बनती है । हमारी सम्मतिमें सच्ची धार्मिक शिक्षा साम्प्रदायिक वैमनस्योंको वा भेदोंको ढीला करके शिक्षितोंको एक सूत्रमें बाँधनेवाली होनी चाहिये न कि उन्हें पृथक्-पृथक् बनानेवाली ।

दोनों ओर दोष

इस प्रकार जहाँ सरकारी शिक्षणालयोंकी शिक्षा धार्मिक शिक्षाके अभावके कारण दूषित है वहाँ गैरसरकारी शिक्षणालयोंकी शिक्षा भी प्रायः (मानवधर्म) उदार धर्मकी शिक्षाके अभावके कारण दूषित है । उदार मानवधर्मकी शिक्षा ही समाजके लिये कल्याणकारक है, साम्प्रदायिक धर्मोंकी शिक्षा नहीं ।

शिक्षामें धर्मका सच्चा स्वरूप रखा जावे

जबतक शिक्षार्थी तत्वज्ञानको समझनेके योग्य नहीं हो जाते तबतक उन्हें (Ethical religion) सदाचार धर्ममें पक्का करना चाहिये और जब उनकी बुद्धिमें विकास हो जावे तब उन्हें (Religious philosophy) धार्मिक तत्वज्ञानकी शिक्षा देनी चाहिये । धार्मिक तत्वज्ञान सिखलाते हुए विभिन्न सम्प्रदायोंके अपने-अपने देशकालके साथ सम्बद्ध विभिन्न आचारोंका तत्वज्ञान भी (synthetic view) समन्वयकी दृष्टिसे सिखलाया जावे । धार्मिक इतिहास (History of Religion) सिखलाते हुए विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रवर्तकोंके अपने-अपने समयमें उद्भवके कारण तथा अपने-अपने समयमें उनके उपयोगी कार्य और फिर सम्प्रदायके ह्रासके कारण यह सब कुछ बतलाना चाहिये । किसी मतकी ओर झुकनेका अधिकार शिक्षार्थीको ही देना चाहिये । मत चुननेके लिये उसपर किसी प्रकारका दबाव न डाला जावे । साम्प्रदायिक निर्णयोंके आधारपर किसी राष्ट्रका निर्माण जितना दूषित है साम्प्रदायिक निर्णयोंके आधारपर शिक्षा-साम्राज्यका निर्माण उससे अधिक दूषित और हानिकारक है । इसलिये सबके लिये समानरूपसे ग्राह्य मानवधर्मका तत्वज्ञान (Natural Science) विज्ञानके आधारपर देना चाहिये । इस प्रकार चलनेसे हमारे देशका और संसारका अवश्य कल्याण होगा ।

शिक्षामें रटाई न हो क्रियाशीलता भी हो

मानवधर्मका अभ्यास केवल पुस्तकसे सम्भव नहीं है, इसके लिये श्रमी उद्योगी वा व्यवसायी-जीवनकी आवश्य-

कता है। क्रियात्मक जीवनमें ही क्रियात्मक धर्मका अभ्यास हो सकता है। हमारे शिक्षणालयोंमें क्रियात्मक जीवन (श्रम, उद्योग और व्यवसायका जीवन) नहीं है अतएव मानवधर्मका अभ्यास विभिन्न पुस्तकोंसे सिद्धान्तका याद कर लेना मात्र हो रहा है। धर्मका जान लेना और धर्मका आचरणमें लाना ये दोनों भिन्न बातें हैं। धर्मके जान लेने मात्रसे निस्सन्देह आचरणपर प्रभाव पड़ता है परन्तु जैसा चाहिये वैसा तो तभी होता है जब क्रियाशील जीवन हो। इसप्रकारकी पद्धति न होनेसे हमारी शिक्षा देशके लिये उपयोगी नहीं हो रही है। शिक्षाको उपयोगी बनानेके लिये शिक्षणालयोंमें शिक्षार्थियोंका जीवन शीघ्रसे शीघ्र क्रियाशील (श्रमी, उद्योगी, व्यवसायी) बनाना चाहिये।

शिक्षणालयोंमें शिक्षाका क्रम

चार अवस्थाएँ

यदि मान लिया जाय कि आठ वर्षका बालक शिक्षणालयमें शिक्षाके लिये भेजा जाता है और सोलह वर्षतक ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंका पालन करते हुए चौबीस वर्षका होकर व्रत और विद्यामें स्नातक बनता है तो इस सम्पूर्ण समयको चार-चार वर्षके चार भागोंमें बाँट देना चाहिये। मनुष्यके जीवन-विकासकी दृष्टिसे भी ये ही विभाग उचित हैं।

पहली अवस्था

छोटी आयुमें प्रायः १२ वर्षतक बच्चोंका स्वभाव-पदार्थोंके निरीक्षणद्वारा परिचय प्राप्त करनेका विशेष होता है।

दूसरी अवस्था

दूसरी बात जो बच्चोंमें स्वभावतः विशेष होती है वह स्मरण-शक्ति है। देखी, सुनी और पढ़ी चीजको शीघ्र और पक्की तरहसे अपनी स्मृतिमें रखते हैं। कुछ बड़ी आयु होनेपर, अर्थात् प्रायः १३ वर्षसे १६ वर्षतक, बालक अपने निरीक्षणके आधारपर प्रयोग करने लग जाते हैं और उन प्रयोगोंसे परिणाम निकाल-निकालकर अपने तजरबे बढ़ाया करते हैं अर्थात् उनमें वैज्ञानिक बुद्धिका विकास होता है।

तीसरी अवस्था

बालकोंकी, तीसरी अवस्था अपने निरीक्षण और परीक्षणके आधारपर, तर्कनाकी आती है। यह अवस्था प्रायः १७ से २० वर्षकी आयुतक रहती है। तर्कनाशक्तिसे वे दृश्य-जगतके सकारण और अकारण होनेपर विचार किया करते हैं—प्रत्येक बातमें 'क्यों ? क्यों ? किया करते हैं।

चौथी अवस्था

शिक्षाकालकी चौथी आयुमें पहुँचकर बालकोंको अपनी जिम्मेवारी अनुभव होने लगती है। २१ से २४ तक प्रायः ऐसी ही अवस्था रहती है। व्यष्टि समष्टि, जड़ चेतन, प्रकृति और ईश्वर आदिकी तरफ अपना जो कर्तव्य है उस कर्तव्यकी ओर उनका ध्यान खिंचता है। वे इस बातको जानना चाहते हैं कि संसारमें कैसे जीवन व्यतीत करें।

शिक्षार्थियोंकी मनोवृत्तियोंका विभाजन

शिक्षाकालके चारों विभागोंके अनुसार शिक्षार्थियोंकी मनोवृत्तिका विश्लेषण करें तो कह सकते हैं कि उनकी मनोवृत्तियां निम्नलिखित चार क्रमोंमेंसे क्रमशः गुजरती हैं—**क्या, कैसे, क्यों और कर्तव्य**। पहिले विभागमें बालककी वृत्ति प्रायः **'क्या है ? क्या है ?'** की रहती है अर्थात् वह प्रकृतिसे परिचय प्राप्त करना चाहता है, दूसरे विभागमें प्रायः **'कैसे ! कैसे !'** की रहती है अर्थात् वह उसकी रचनाको जानना चाहता है, तीसरे विभागमें प्रायः **'क्यों ? क्यों ?'** करने की रहती है अर्थात् वह कारणको जानना चाहता है, चौथे विभागमें वह प्रायः **कर्तव्य**को जानना चाहता है और कर्तव्य पालनकी ओर झुकता है।

वर्तमान शिक्षा-क्रममें त्रुटि और उससे बचना

आजकल शिक्षणलयोंमें बालकोंके स्वाभाविक मानसिक विकासके अनुसार शिक्षाक्रमका निर्माण नहीं है। विशेष बल केवल भाषाज्ञानपर दिया जा रहा है। भाषाज्ञानमें ही प्रायः सम्पूर्ण शिक्षाकाल समाप्त हो जाता है। परिमार्जित सुन्दर भाषाके लिये विविध नाटक, काव्य, उपन्यास साहित्यका आश्रय लिया जाता है। भाषा केवल भावोंके प्रकाश करनेका साधन है। भावोंके साथ भाषा रहती है। स्पष्ट, परिमार्जित और गूढ़ भावोंके अनुसार भाषा भी स्पष्ट, परिमार्जित और गूढ़ हो जाती है। भावोंमें सम्बद्धता वा सौन्दर्य होता है तो भाषामें भी सम्बद्धता वा सुन्दरता आ जाती है। भावोंमें उपर्युक्त गुणोंकी प्रबलता प्रकृतिके निरीक्षण, परीक्षण और अन्वेषणके आधारपर आती है। पूर्वोक्त कथनके अनुसार तीनों विभागोंमें क्रमशः निरीक्षण,

परीक्षण और अन्वेषणकी शक्ति प्रायः काममें आती और बढ़ती है। इस प्रकार शक्तिकी वृद्धि हो जानेपर चतुर्थ विभागमें किसी प्रकार बालक काव्य, नाटक आदि साहित्यिक ग्रन्थोंको यथार्थतः मनोवैज्ञानिक आधारपर समझनेका अधिकारी हो सकता है।

शिक्षारंभमें कैसा साहित्य पढ़ाया जाय ?

इसलिये काव्य नाटकादि, मध्यकालीन साहित्यका शिक्षणालयोंमें प्रारम्भसे पढ़ाना बन्द करके वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, नीति, स्मृतियाँ, धर्मसूत्र आदि वे ग्रन्थ पढ़ाने चाहिये जो मध्यकालीन साहित्य रचनाके आधार हैं और जो भारतीय संस्कृति, धर्म, इतिहासके गौरवकी निधि हैं। शिक्षाकालमें ही इन्हें पढ़ लिया तो पढ़ लिया, फिर तो विरला ही कोई इन्हें पढ़ता है। काव्य, नाटकादि जो प्रायः बड़ी आयुतक भी लोगोंसे नहीं छूटते शिक्षाकालसे पीछे भी स्वतन्त्रतासे पढ़े जा सकते हैं। इस प्रकारसे धर्मशिक्षाकी पृथक् पढ़ानेकी कुछ आवश्यकता न रहेगी। वह तो रामायण महाभारतादिकेद्वारा उदाहरणोंके आधारपर क्रियात्मक रूपसे स्वयं पढ़ायी जा सकेगी।

शिक्षारंभमें साहित्यिक ग्रन्थ पढ़ानेसे हानियाँ

शिक्षाका यह वैज्ञानिक क्रम ध्यानमें न रखकर आजकल प्रारम्भसे ही साहित्यिक ग्रन्थोंकी उलझनमें बालकको डालकर उसके जीवनको उथला बना दिया जाता है। वस्तुतः शिक्षाकालमें काव्य, नाटकादि साहित्यिक ग्रन्थोंके पढ़ानेकी कुछ आवश्यकता नहीं है।

साहित्यिक ग्रंथ कब पढ़ाये जा सकते हैं ?

यदि पढ़ाना उचित ही समझा जाय तो चतुर्थ विभागमें कुछ चुने हुए ग्रन्थ मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे पढ़ाये जा सकते हैं। रामायण, महाभारत, पुराणोंके चुने स्थल आदि ग्रन्थोंको ही यदि ऐतिहासिक दृष्टिसे और पात्रोंके आचरणोंकी तुलनात्मक दृष्टिसे अनुशीलन करा दिया जाय तो संस्कृत सिखलानेका और उदाहरणोंके साथ-साथ धर्मज्ञान करानेका कार्य निस्सन्देह पूरा होसकता है।

कर्तव्य ज्ञानके लिये ग्रंथ-विभाग

साक्षात् कर्तव्य-बोधक आदेशोंके लिये धर्मसूत्रोंका पढ़ाना अभीष्ट है। प्रथम विभागमें रामायण, द्वितीय विभागमें महाभारत, तृतीय विभागमें स्मृतियाँ, नीतिग्रन्थ, छन्दोज्ञान और चतुर्थ विभागमें पुराणोंके विशेष-विशेष अंश तथा धर्मसूत्र और पूर्वपठितपर आलोचना करना चाहिये।

संस्कृत कैसे सिखलायी जावे ?

संस्कृत सिखलानेके लिये अनुवाद, प्रत्युनुवाद, प्रस्ताव पत्रादि लेखनपर सर्वत्र बल दिया जाय और परीक्षामें अनुवादादि और उनके नियमोंकी परीक्षा ली जाय। व्याकरणमें शब्दसाधन-प्रक्रियाको छोड़ दिया जाय। शब्द-साधुत्वका ज्ञान साहित्यग्रन्थोंसे और कोषोंसे कराया जाय परन्तु वाक्योंमें शब्दोंके पारस्परिक सम्बन्धको ठीक-ठीक रखते हुए प्रयोग करनेके नियम व्याकरणसे सिखलाये जावें। इस प्रकार संस्कृत भाषामात्र सीखनेवालोंपर व्याकरणका बोझ नहीं पड़ेगा। आधे प्रथमविभागमें और आधे द्वितीय विभागमें व्याकरण समाप्त कर देना चाहिये।

गणितकी शिक्षाका क्रम

अङ्कगणितका व्यापारसे सम्बन्ध रखनेवाला स्टौक आदि विषय तीसरे विभागमें रखा जाय और इसके साथ ही बहीखाता सिखलाया जाय। साधारण गणित द्वितीय भागतक समाप्त किया जाय। बीजगणित द्वितीय विभागमें समाप्त किया जाय, इस दृष्टिसे कि गणितके सिद्धान्तोंका बोध हो जाय। इसके साथ यूक्लिड ज्यामितिके केवल ६ अध्याय भी दूसरे विभागमें समाप्त किये जावें। तीसरे विभागमें अक्षज्यामिति (Coordinate Geometry) ग्राफ और सरल त्रिकोणमिति सिखलायी जावें। चतुर्थ विभागमें यदि कोई ज्यौतिष पढ़े तो उसे गोल ज्यामिति (Spherical Geometry), चलन कलन (Calculus differential and integral), पञ्चाङ्ग ज्यौतिष और फलितके सिद्धान्तोंकी उपपत्ति सिखलायी जावे।

ऐच्छिक विषयोंकी शिक्षा

चतुर्थ विभागमें ऐच्छिक विषय--व्याकरण, साहित्य, ज्यौतिष, समाजशास्त्र (संसारका सामाजिक इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीतिके मूलतत्त्वोंके आधारपर), प्राणिशास्त्र (Biology) आदि रहें। तृतीय विभागमें उपनिषद् और दर्शनशास्त्र तथा चतुर्थ विभागमें वेद और ब्राह्मण रहें। प्रथम विभागमें साधारण संगीत और द्वितीय विभागमें चित्रकला रहे। चित्रकलाके साथ ही आलेख्य ज्यामिति Gill's Practical Geometry) हो। तृतीय

बच्चोंकी लकड़ीकी बनी स्कूटर साइकिल

[हॉबीज़से अनुवादित]

[अनुवादक—डा० गोरखप्रसाद डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्, प्रयाग-विश्वविद्यालय]

खेलका खेल और व्यायामका व्यायाम

यह "स्कूटर साइकल" बच्चोंके लिये वस्तुतः अच्छी चीज है, और इससे उनको बहुत मजा और स्वास्थ्य-वर्द्धक खेल मिलेगा। साइकलकी सच्ची सूरत चित्रमें दिखलायी गयी है, जिससे यह भी स्पष्ट है कि यह कैसे चलायी जाती है।
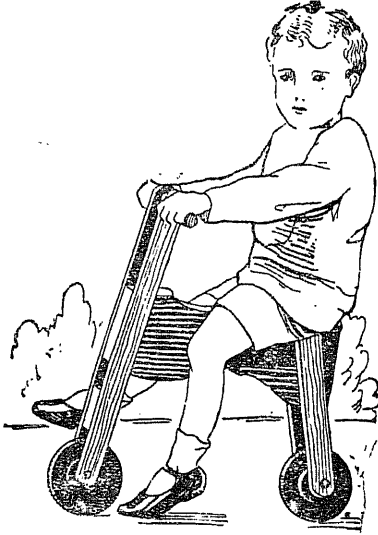
कड़ी लकड़ी इस्तेमाल करो

इस खिलौनेके बनानेके लिये अच्छी और कड़ी लकड़ीका इस्तेमाल करना चाहिये, जैसे शीशम।

चित्र १ में वे सब भाग जिनसे साइकलका प्रधान भाग बनता है अलग अलग परंतु उचित स्थानोंमें दिखलाये गये हैं। इनमेंसे भाग 'क' और 'ख' के लिये ¾ इञ्च मोटी
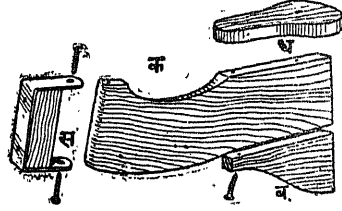
चित्र १—स्कूटरके भिन्न-भिन्न भाग

लकड़ी चाहिये, भाग 'ग' के लिये १ इञ्च मोटी लकड़ी और सीट 'घ' के लिसे ½ इंच मोटी लकड़ी काफ़ी होगी।

रूप रेखाएँ खींचना

लकड़ीपर रंदा कर लेनेके बाद, चित्र २ में दिखलाई गयी रीतिसे लकड़ीपर चारखाने खींच लो। प्रत्येक वर्ग-(चौखूटा) १ इंच लंबा और इतना ही चौड़ा हो। इन वर्गों-की सहायतासे अंगोंका चित्र सावधानीसे लकड़ीपर उतार लो।

विभागमें शास्त्रीय संगीत और विशेष चित्रकला ऐच्छिक हों। चित्रकला उद्योगके साथ सहायक रूपसे सम्बद्ध रहे। अंग्रेजी भाषाकी शिक्षा द्वितीय और तृतीय विभागोंमें समाप्त करनी चाहिये। राष्ट्रभाषाका ज्ञान और विद्यार्थीकी अपनी मातृभाषाका ज्ञान द्वितीय विभागतक समाप्त कर देना चाहिये।

प्रत्येक श्रेणीमें औद्योगिक शिक्षाका रखना

उद्योग तो प्रत्येक श्रेणीमें विद्यार्थीके शारीरिक सामर्थ्य और बुद्धिके विकासके अनुसार कराना ही चाहिये। शिक्षणालयोंमें इस प्रकार शिक्षणका क्रम रखनेसे पूर्ण आशा है कि शिक्षार्थी जहाँ उच्च ज्ञानको प्राप्त कर लेंगे वहाँ अपने जीवनके लिये भी पराश्रित नहीं रहेंगे।

गुरुकुल आदि ब्रह्मचर्याश्रमोंके उच्चतम और पवित्रतम स्वरूपको लक्ष्में रखकर अन्तमें इतना और कहा जा सकता है कि गुरु-शिष्यके संघ प्रयत्नसे सबको अपना-अपना वर्षभरका उपयोगी पदार्थ सम्पन्न करके गुरुकुलकी शिक्षा निश्शुल्क और अवैतनिक कर देनी चाहिये और संसारमें स्वावलम्बनका जीवन अपनी क्रियासे सबको सिखानेके लिये उसका अभ्यास ब्रह्मचर्याश्रमसे ही कराना चाहिये।

अब लकड़ीको काट लो। इसके लिए मोटे फ्रेटसॉकी आवश्यकता पड़ेगी। इतनी मोटी लकड़ीके काटनेमें रगड़-

चित्र २—इस चित्रसे भिन्न भिन्न भागोंका आकार लकड़ीपर उतारा जा सकता है। प्रत्येक वर्ग १ इंचका है।
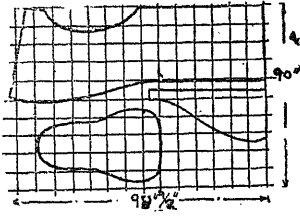
को कम करनेके लिये अक्सर किसी चिकनाहटके लगानेकी आवश्यकता पड़ती है। साधारण मोमबत्तीके किसी बचे-खुचे छोटे टुकड़ेसे यह काम बखूबी चल जायगा। बस, इसे कभी-कभी आरीकी दाँतियोंपर रगड़ देना चाहिये और तुरंत आरी अधिक आसानीसे काटने लगेगी। लकड़ीको काटनेके बाद इसके किनारोंको रेगमारसे रगड़कर चिकना कर देना चाहिये।

नीचे जड़े जानेवाले भाग 'ख' के ऊपरी किनारेको रंदेसे बिल्कुल सीधा और चिकना कर देना चाहिये। इसी प्रकार पीठ 'क' के नीचेवाले सीधे भागको भी। अब इन दोनोंपर सरेस लगा कर दोनों भागोंको जोड़ देना चाहिये। चित्र १ में दिखलाये गये स्थानमें एक लंबा पेंच कस देनेसे जोड़ अधिक मज़बूत हो जायगा।

पहियाँ

५ इंच व्यासके दो पहियोंकी आवश्यकता पड़ेगी। इनको १ इंच मोटी लकड़ीसे बनाना चाहिये। बीचमें १ इंच व्यासका छेद धुरीके लिये कर लेना चाहिये। यदि बीचमें पहिया मोटा रहे (अर्थात् पूरे १ इंचकी मोटाईका रहे) और किनारेपर कुछ कम मोटा (लगभग $\frac{3}{4}$ इंचकी मोटाईका) रहे, जैसा चित्र ५ और ६ में दिखलाया गया है, तो अच्छा है। यदि पहिये खरादपर बनाये जायँ तो बहुत अच्छा है। परंतु बिना खरादके भी काफी अच्छे पहिये बन सकते हैं।

चिमटे

भाग ग एक सादी लकड़ी है जो १ इंच मोटी, $1\frac{3}{4}$ इंच चौड़ी और ५ इंच लंबी है। एक दूसरी लकड़ी भी जो इतनी ही मोटी, इतनी ही चौड़ी, परंतु $2\frac{1}{4}$ इंच लंबी है अगले पहियोंके (fork) चिमटेकी दोनों टाँगोंके भीतर लगेगी। यह बात चित्र ४ से स्पष्ट हो जायगी। इस चिमटेके बनानेकी बात आगे लिखी गयी है।

अब पीछेके पहियोंके लिये चिमटा बनाना चाहिये। इसकी टाँगोंमेंसे प्रत्येक $12\frac{1}{2}$ इंच लंबा, $1\frac{3}{4}$ इंच चौड़ा और $\frac{1}{2}$ इंच मोटा है। टाँगोंके एक-एक सिरेको गोलाकार कर दो। तब इनको पीठपर रखो, जैसा कि चित्र ५ में दिखलाया गया है। इनके जड़नेका कोण चित्रमें दिखलाये गये कोणके यथासंभव बराबर रहे। फिर पीठके बाहर एक कोनेका जरासा भाग जो टाँगोंको तिरछा लगानेके कारण बढ़ेगा उसके काटनेके लिये सच्चा चिह्न लगा लो। फिर इस टाँगको दूसरेपर ठीक-ठीक रखकर दोनोंको (बाँक) वाइसमें साथ ही बाँधो और कोनोंको साथ ही काट डालो, और धुरीके लिये दूसरे सिरेपर छेद भी करो। छेदका व्यास एक इंचसे नाममात्र कम रहे।

पीठ और सीट
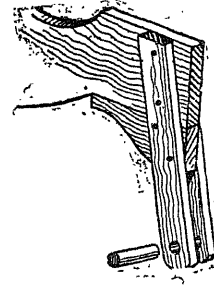
चित्र ३—पिछले पहियेके लिए चीमटा और धुरी

अब पीछेकी दोनों टाँगोंको पीठपर पेंचसे कस दो। पेंच मोटे और १ इंच लंबे रहें। उनको इस प्रकार जड़ो कि माथा उभड़ा न रहे। इसपर ध्यान दो कि दोनों ओरसे पेंचोंको जड़ते समय वे थोड़ा हटा बढ़ा दिये जायँ, जिसमें दोनों ओरके पेंच एक दूसरेसे लड़ न जायँ। पेंच कुछ लकड़ीमें धँस जायँ। फिर पेंचोंके सिरोंके इन गड्ढोंको पुटीन, या सरेस और लकड़ीके बुरादेसे भर दो। जड़ जानेके बाद पीठकी शक्ल चित्र ३ जैसी हो जायगी। इस चित्रमें गोल लकड़ीकी धुरी भी दिखला दी गयी है जो टाँगोंकी छेदोंमें पहिया लगानेके बाद ठोंक दी जायगी।

पीठपर सीटको लंबे पेचोंसे जड़ देना चाहिये और

इनके माथोंको लकड़ीमें कुछ धँसा देना चाहिये और गड्ढोंको भर देना चाहिये।

आगेका चिमटा

अब आगेके चिमटे और हैंडलको बनाना चाहिये। इनके बनानेकी रीति चित्र ४में दिखलायी गयी है।
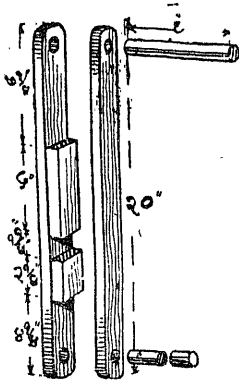
चित्र ४—घुमानेवाले खंभेकी बनावट

दो लकड़ियोंको रंदा करके ½ इंच मोटा, २० इंच लंबा और १¾ इंच चौड़ा बना लो। इनके सब सिरोंको गोलाकार कर लो और रेगमारसे चिकना कर लो। दिखलायी गयी दूरियोंपर (चित्र ४ देखो) बीचवाले टुकड़ोंको सरेससे चिपका दो और पेंचसे कस दो और अंतमें धुरी और हैंडलके लिये छेद कर लो (छेदोंका व्यास १ इंचसे नाममात्र कम हो)।
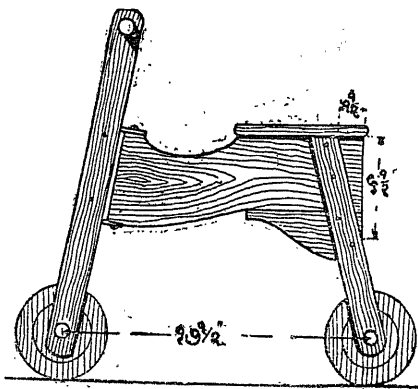
चित्र ५—बगलका दृश्य जिससे पता चलता है कि अंग-अंग कैसे जोड़े जाते हैं

१ इंच व्यासकी गोल लकड़ी खरादसे या रंदेसे बनालो। इसमेंसे एक छोटा टुकड़ा धुरीके लिये काट लो। इसको छेदोंमें छोड़ दो और पहिया भी पहना दो। चिमटेकी टाँगोंमें धुरी कसी रहे, परन्तु पहियाका छेद नाममात्र ढीला रहे। धुरीका जो भाग चिमटेकी टाँगोंके बाहर बढ़ा रहे उसे रेत डालो और साफ करके चिमटेकी टाँगोंकी सतहसे मिला दो।

साइकिल हलकी चलेगी

यदि पीतल या तांबेके पत्रके एक छोटे टुकड़ेको मोड़कर फोंफी बना ली जाय और धुरीको पहियोंमें पहनानेके पहले इसको धुरीपर चढ़ा दिया जाय तो "साइकल" अधिक आसानी और सर्राटेके साथ चलेगी। अगले पहियेके लिये यह फोंफी चित्र ४ में दिखलायी गयी है।

हैंडल १ इञ्च व्यासके डंडेसे बनाया जाता है। इसको छेदोंमें ठोंक दिया जाता है और खड़ी लकड़ियोंमें कील ठोंककर हैंडलको स्थायी कर दिया जाता है। चित्र ६ में संपूर्ण दिशा-परिवर्तनकारी स्तंभका (सैकिल घुमानेके खंभेका) स्वरूप दिखलाया गया है। इसमें केवल धातुपत्रका बेअरिंग(bearing) लगाना बाकी है जो चित्र १ में स्थान ग पर दिखलाया गया है।

चित्र ६—सैकिलको घुमानेका खंभा और पहिया
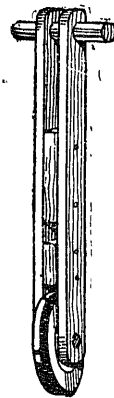
सैकिलको घुमानेका खंभा और पहिया

बेयरिंग मोटे लोहेका बना है जो करीब ⅞ इञ्च चौड़ा और ११ इंच लंबा है। प्रत्येक सिरेसे ३ इंचकी दूरीसे इसके किनारेके भाग मोड़ दिये जाते हैं। प्रत्येक सिरेपर एक छेद बर्मीसे कर दिया जाता है और लोहेके सिरेको रेतकर गोलकर दिया जाता है।

पीठको इस बेयरिंगमें लगाना सरल है जैसा चित्र १से स्पष्ट है। पीठके अग्र भागको लोहेके निकले हुए भागोंके बीच डाल दिया जाता है और दो मोटे गोल माथेवाले पेंचोंसे वहाँ फँसा दिया जाता है। अवश्य ही ये पेंच लोहेके छेदोंमें सुगमतासे घूम सकते हैं और लकड़ीमें काफी दूरतक घुस जाते हैं।

यदि लोहेके नीचेवाले छेद और पीठके बीचमें एक पतलासा पीतल या लोहेका वाशर लगाकर पेंच जड़ा जाय तो यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। बेयरिंगको दिशापरिवर्तनकारी स्तंभ अर्थात् फेरनेवाले अगले चिमटेके बीचवाले

सहयोगी विज्ञान

१. वैज्ञानिक सामयिक साहित्य

कल्पवृक्ष (हिन्दी) के दिसम्बरके अंकमें—१. मस्तिष्क शक्तिका उपयोग, २. दृढ़ता, ३, बीती बातको भुला देना चाहिए, ४. विचारोंका प्रभाव, ५. उपवास चिकित्साके नियमित प्रयोग, ६. मौन रहस्य, ७, जीवनके कुछ उपयोगी नियम, ८, बलवर्द्धक सुलभ साधन, ९, आत्मकल्याणका सच्चा मार्ग, १० आनंदका साधन, ११, प्रार्थनाका वैज्ञानिक स्वरूप। जनवरीके अंकमें—१. मस्तिष्कको विकसित करनेके नियम, २. मनुष्यका देवताओंसे संबंध, ३. तुम जैसा ध्यान करोगे वैसे ही बन जाओगे, ४. निराशाका भूत, ५. हमारी चेतनावस्था, ६. विजयी जीवन, ७. ईश्वरीय इच्छा, ८. क्रोध चिन्ता और चिड़चिड़ेपनका इलाज, ९. विचार करो, १०. हृदयकी अभिलाषा। और फरवरी १९३५के अंकमें—१. मस्तिष्कका उपयोग करनेसे ही मानसिक शक्तिका विकास होता है, २. घृतधूम महिमा, ३. दिव्य जीवात्मा, ४. पंचम आध्यात्मिक साधन समारंभ, ५. ईश्वरीय विश्वास, ६. प्रार्थनाकी प्रणाली, ७. महाशक्ति, ८. हमारी चेतनता, ९. भ्रमण वृत्तान्त और सिहोरामें नवीन विचारोंकी जागृति, १०. उपवास एक अमूल्य औषधि है, ये लेख हैं।

प्रकृति (बंगला) के हेमंतके अंकमें—१. पास्त्यर इन्स्टिटयूटकी प्रतिष्ठा और प्रसाद, जलातंक रोग और उसकी चिकित्सा, २. प्राणिविज्ञानकी परिभाषा, ३. भारतीय वर्णमालाकी सृष्टि, विकास, लिखनेकी चाल, उपकरण और उद्भिद, ४. उड़ीसाकी प्रचलित बासुली पूजा, ५. विज्ञानका क्रम विकास और उसका संक्षिप्त इतिहास, ६. षट्पद-प्राणी ये लेख हैं।

वनस्पति-विज्ञान—(हिन्दी) के अकतूबरके अंकमें—१. शिवलिंगी, २. स्वास्थ्यविज्ञान (तेलकी मालिश, टमाटो और प्याज) ३ जल-स्नान, ४. अनुभूत प्रयोग, ५. स्वास्थ्य और आरोग्य (शक्तिका अपव्यय), और ६. औषधि-विज्ञान (शिलाजीत) ये लेख हैं।

चिकित्सा-चमत्कारके अक्टूबर १९३४ के अंकमें—१. अंत भला तो सब भला, २. सूर्य-स्नान, ३. वर्षा ऋतुके कर्तव्याकर्तव्य, ४. चिकित्सा-जगतके अनुभव, ५. मिटिरिया-मेडिका, ६. बलिष्ठ सुंदर सुदृढ़ मांसपेशियाँ, ७. रोग-निदान, ८. हमारा शरीर, ९. स्वास्थ्य और नम्रता, १०.

लकड़ीके टुकड़ेमें दो पेंचोंसे जड़ दिया जाता है और इसके लिये पहले ही लोहेमें छेद कर लिये जाते हैं। पेंचके माथे उभड़े न रहें इस ख्यालसे लोहेमें किये गये छेदके सिरेको (rose-bit) रोजबिटसे फैला लेते हैं (Counter disc कर लेते हैं)।

रंग या वार्निश करना

कुल लकड़ीको अब रेगमारसे अच्छी तरह चिकना कर देना चाहिये, जहाँ कहीं भी तीक्ष्ण कोर हो उसे रेगमारसे मार देना चाहिये और तब कुलको रंग देना चाहिये या उसपर वार्निश कर देना चाहिये।

आवश्यक सामग्री

लकड़ीका एक टुकड़ा १५ इंच लंबा,
५ इंच चौड़ा, ३/४ इंच मोटा।

एक टुकड़ा ७ इंच लंबा,
४ इंच चौड़ा, ३/४ इंच मोटा।

एक टुकड़ा ८ इंच लंबा,
२ इंच चौड़ा, १ इंच मोटा।

एक टुकड़ा ७ इंच लंबा,
४ इंच चौड़ा, १/२ इंच मोटा।

दो टुकड़े १३ इंच लंबे,
२ इंच चौड़े, १/२ इंच मोटे।

दो टुकड़े २० इंच लंबे,
२ इंच चौड़े, १/२ इंच मोटे।

१ इंच व्यासकी गोल लकड़ी १५ इंच लंबी।

५ इंच व्यासके दो पहिये।

लोहेकी पट्टी, पेंच इत्यादि।

बिना अन्न-जलके उपवास, ११. स्वास्थ्य और उपयोगी काम १२. बलिष्ठ संतान ये वैज्ञानिक लेख हैं।

आचार्य धन्वन्तरि—जनवरीके अंकमें–१. प्रवाहिक, २. विटामिन क्या क्या हैं और प्राणीके लिये कितनी उपयोगी हैं? ३. सानुवाद नारिकेल वर्णनम्, ४. व्यायाम, ५. विद्यार्थियोंके विशेष-विशेष संक्रामक रोग, ६. स्वामी हरिशरणानन्दजीसे नम्र निवेदन, ७. रक्तचाप ये लेख हैं।

विज्ञान सागर—जनवरी १९३५ के अंकमें–१. उत्पत्ति और विकास, २. ग्रह नक्षत्र, ३. परमाणुवाद और विद्युत्, ४. पदार्थ-विज्ञान, ५. शरीर-रचना, ६. मलेरिया अर्थात् विषमज्वर, ७. औषधि-विज्ञान, ८. भारतीय विषैले सर्प, ९. विषम-ज्वर नाशक उत्तमोत्तम योग।

वनौषधि विज्ञान—जुलाई १९३४ के अंकमें—१. भारतीय वनस्पति-शास्त्रका अंग्रेजी साहित्य, २. वक पुष्पः अगस्त, ३. आकस्मिक घटनाएँ और उनका प्रतिकार, ४. गूलर, ५. रुद्रवन्ती ६. इसरोलियम, ७. अभिमत, ८. पुष्पस्तवक, ९. आत्मकथा, १०. चरक-संहिता, प्रारंभिक वक्तव्य ये लेख हैं।

रोशनी (उर्दू)—अक्तूबरके अंकमें—१. क्या विज्ञानने आवश्यकतासे अधिक उन्नति करली है? २. हवा, ३. नवादरात साइंस, ४. दिलचस्प मालूमात, ५. कूड़ा करकट और गलाजत (गंदगी) को कीमती खादमें बदलनेका नया वैज्ञानिक ढंग ६. पंजाबमें सालसी मजालिसका कयाम और बिजलीकी शक्तिको काममें लानेवालोंकी उपयोगी सूचनाएँ। नवम्बरके अंकमें—१. आस्मानेकीसियाके माहेताब डाक्टर एस्० एस्० भटनागरका पंजाब युनिवर्सिटीको डेढ़ लाखका शाहाना अतैया, २. हवा, ३. तकदीर और तदबीरकी तुलना, ४. स्वास्थ्यके कुछ नियम, ५. अखबार इलमिया (बिजलीकी कड़क, रेडियमकी शफा बख्शी) ६. आह! मुंशी ऊधोरामजी सूरी और ७. आह! डाक्टर शिवराम कश्यप।

दिसम्बरके अंकमें—१. डाक्टर शान्तिस्वरूप साहब भटनागर डी० एस्–सी०, २. टेलीग्राफका आविष्कर्त्ता कौन था और इसका किस प्रकार आविष्कार हुआ? ३. पानी, ४. बच्चोंका पृष्ठ—तीन उपदेश, शामकी सैर, ५. गुड़गाँवमें शिशु सप्ताह, ६. लाहौरमें फूलोंकी नुमाइश, ७. पंजाबमें ईंटें बनाना और राजगीरीकी शिक्षा, ८. पुख्ता खाद तैयार करनेके लिये गढे तैयार करना, ९. अखिल भारतीय प्रदर्शिनी लाहौरमें, १०. जंगलोंकी सरसब्जीपर मुल्ककी खुशहाली निर्भर है, ११. किसानोंकी गरीबीका इलाज, १२. इश्तमाले अराजीके मुअस्सर नतीजे, १३. मीनार्ड गंगाराम इनाम। और जनवरी १९३५ के अंकमें—१. चोर और खूंख्वार पौधे, २. रबर, ३. पानी, ४. मकान और ज़मानकी सैर, ५. हवाई दौड़ और ६. एक दरख्तकी कहानी अपनी ज़बानी, ये लेख हैं।

वैद्य कल्पतरु (गुजराती)—दिसम्बरके अंकमें—१. संतानके होनेका कारण स्त्री है या पुरुष?, २. स्त्रियोंके रोगकी फरियाद, ३. बालकोंके पोषणकी क्रिया, ४. पंचसुतका उपयोग ५. कुष्ट रोग, ६. मनका तनके ऊपर निश्चय असर होता है, ७. दाँतका ब्रश, ८. शीतला संबंधी खास उपयोगी सूचनाएँ, ९. आयुर्वेद ग्रंथलेखकों और संशोधकोंसे बिनती। जनवरी १९३५ के अंकमें—१. आरोग्य रहनेके नियम, २. स्त्री रोगियोंकी फरियाद, ३. चन्द्रप्रभा ४. बालकोंकी पोषण-क्रिया, मानवीशरीर, ५. वेदसुयाना, ७. रबरके जूतोंसे स्वास्थ्य-हानि, ८. आयुर्वेदका महान प्रयोग केमिकल गोल्डके बारेमें। ९. पारेकी गोलीके बारेमें। फरवरीके अंकमें—१. वनस्पतिका जगतपर उपकार, २. श्वास, दमा और पेटके दर्दमें उपयोगी, ३. आरोग्य रहनेके नियम, ४. अजीर्ण और मंदाग्नि, ५. बालकोंकी पोषण क्रिया, ६. मानवी शरीर लेख हैं।

२. साधारण सामयिक साहित्य

क—मासिक

कल्याणके आश्विनके अंकमें—शक्ति-तत्त्व यह वैज्ञानिक लेख है।

वीणाके दिसम्बरके अंकमें—ग्राम-संगठनकी योजना, जापानियोंका वैज्ञानिक साहित्य, और मैडमक्यूरी और रेडियम् (धूप-दीप स्तंभमें) तथा जनवरी सन् १९३५ के अंकमें—१. राष्ट्रसंघके विधानकी त्रुटि, २. समाज और सभ्यता तथा फरवरीके अंकमें–१. भारतमें पुरातत्वकी खोज २. विज्ञानके साधन ये वैज्ञानिक लेख हैं।

विद्याके नवम्बरके अंक १ में–१. ऐतिहासिक अना-

स्मवाद, २. सारे धर्मोंकी तात्विक एकता, और विज्ञानकी डींग, ये वैज्ञानिक लेख हैं।

गंगाके अग्रहायण १९९१ के अंकमें—हिन्दू रसायन, और पौषके अंकमें-१. भौतिक विज्ञान और शक्तिवाद, २. विज्ञानका वृत्तान्त, ३. फलोंका सेवन, ४. समुद्रकी विभूतियाँ, ये वैज्ञानिक लेख हैं।

सुधाके कातिकके अंकमें-गोदुग्ध-महत्व, मार्गशीर्ष १९९१ के अंकमें-हाथका कुटा चावल, ये वैज्ञानिक लेख हैं।

संजयके पौष १९९१ के अंकमें—१. मनचाही संतान २. हाजमा और हिफ़ाजत, वैज्ञानिक लेख हैं।

आर्य-महिलाके कार्तिक १९९१ के अंकमें—१. स्वास्थ्य और सौन्दर्य, २. घरका वैद्य ये दो स्तंभ वैज्ञानिक हैं।

चाँदके दिसम्बर १९३४ के अंकमें—'स्त्रियोंका स्वास्थ्य तथा भोजन', जनवरी १९३५ के अंकमें— १. 'राज्यका प्रकृत स्वरूप' २. पूँजीवाद, ३. परलोकवाद, ४. मासिक-धर्मका रजोदर्शन, ५. घरेलू दवाइयाँ स्तंभ और फरवरीके अंकमें-१. आधुनिक आर्थिक जगतकी एक झाँकी, २. राष्ट्रियता और अन्तर्राष्ट्रियता, ३. पानका स्वास्थ्यपर प्रभाव, वैज्ञानिक लेख हैं।

बालकके सितम्बर के अंकमें—वैज्ञानिक वार्तालाप, दिसम्बर सन् १९३४ के अंकमें 'दीर्घजीवनका रहस्य' और जनवरी १९३५ के अंकमें 'वायुमण्डल-वायुकी सत्ता, वैज्ञानिक लेख हैं।'

बाल-संदेशके दिसम्बर १९३४ के अंकमें १. 'जब घड़ियाँ न थीं तब' २. 'घरोंमें बीमारकी सेवा' और जनवरी १९३५ के अंकमें-१. मेस्मरेजिम, २. केला भोजन है, ३, बीमारकी साधारण सहायता, ४. जर्मनीमें बच्चेकी शिक्षा और ५. विज्ञानके खेल, वैज्ञानिक लेख हैं।

प्रेमके जुलाईके अंकमें 'प्रेम-सभा' वैज्ञानिक लेख है।

अलंकारके दिसम्बरके अंकमें—१. हमारा अनाचार, २. विद्यार्थियोंका मानस, ३. पनामाकी जल-प्रणाली ४. असली भारतवर्ष (क्रमशः) शीर्षक वैज्ञानिक लेख हैं।

विश्वमित्रके नवम्बरके अंकमें-१. आधुनिक सभ्यतामें धनका असम विभाजन, २. व्यवसाय तथा चरित्र ३. क्षयरोगका निवारण तथा ४. अर्थ-चक्र, ५. स्वास्थ्य-विज्ञान, और ६. चित्र-विचित्र (स्तंभ) और दिसम्बरके अंकमें— १. साम्राज्यवादका आर्थिक स्वरूप, २. फेफड़ेकी क्रियाएँ और प्रत्येक अंकमें रहनेवाले अर्थचक्र, स्वास्थ्य-विज्ञान और चित्र-विचित्र वैज्ञानिक लेख हैं।

हंसके अकतूबर १९३४ के अंकमें-मुक्ता मंजूषा (स्तंभ जो हर मासमें रहता है), नवम्बरके अंकमें १. टेलीग्राफीका नवीन चमत्कार, २. सूर्य, ३. कौमी भाषाके विषयमें कुछ विचार, जनवरी सन् १९३५ के अंकमें-बुध, वैज्ञानिक लेख है।

ख—साप्ताहिक साहित्य

नवशक्तिके ८ दिसम्बरके अंकमें—गरीबी कैसे दूर हो? २२ दिसम्बरके अंकमें-१, अ० भा० ग्राम्य औद्योगिक संघका संगठन, २. यंत्र क्यों नहीं? २९ दिसम्बरके अंकमें- १, साम्यवाद और बेहतर संतान, २, गाँवोंमें गुड़का व्यवसाय और जनवरी १९३५ के अंकमें-फलोंकी खेतीसे लाभ ये वैज्ञानिक लेख हैं।

कर्मवीरके ८ दिसम्बरके अंकमें—'हिन्दी-व्याकरणमें लिंग-भेद' वैज्ञानिक लेख हैं।

स्वराज्यके ११ दिसम्बरके अंकमें—१. नीबूके गुण, २. उपादान, १८ दिसम्बरके अंकमें—'मनोबलकी आश्चर्यमयी विभूतियाँ और २६ दिसम्बरके अंकमें—१. हरीशाक-भाजी, केला भोजन है, २. बच्चोंकी चिकित्सा वैज्ञानिक लेख हैं।

जयाजी प्रतापके ६ दिसम्बरके अंकमें-'सूर्य नमस्कार २० दिसम्बरके अंकमें—हेमंत ऋतुका आहार-विहार और १० जनवरी १९३५ के अंकमें—१. मृत्युके मुखसे, २. अनाजोंका महाराजाधिराज, वैज्ञानिक लेख हैं।

प्रतापके ११ नवम्बरके अंकमें—"सच्चा साम्यवाद" और १३ जनवरी १९३५ के अंकमें—सन् १९३४ में विज्ञान-जगत्ने कितनी उन्नतिकी और 'फोर्डट्रैक्टर बनाम हल' वैज्ञानिक लेख हैं।

३—चयन

(१) हरीतकी (हड़ें)

(ले०—वैद्यालंकार सूर्यनारायण जोशी, इन्दौर)

क समय देवराज इन्द्र अमृतपान कर रहे थे उस समय अमृतकी कुछ बूँदें पृथ्वीपर गिरीं और उनसे सात जातिकी हड़ें पैदा हुईं। ऐसी कथा है।

हरीतकी, अभया, पथ्या, कायस्था, पूतना, अमृता, हैमवती, अव्यथा, चेतकी, श्रेयसी शिवा, वयस्था, विजया, जीवंती, रोहिणी ये हड़ेंके नाम हैं।

जो हड़ें तुम्बीके समान गोल होती हैं उसे "विजया," जो गोल होती है उसे "रोहिणी", जिसमें गुठली छोटी होती है उसे "पूतना", जो गूदेदार हो उसे "अमृता", जिसमें पाँच रेखा हों उसे "अभया", जिसका वर्ण सोने-सरीखा हो उसे "जीवन्ती", जिसमें तीन रेखा हों उसे "चेतकी" हड़ें कहते हैं। चेतकी हड़ें दो प्रकारकी होती हैं। एक काली और दूसरी सफेद। सफेद छ अंगुल लंबी और काली एक अंगुल लम्बी होती है। इसके झाड़के नीचेसे यदि पशु-पक्षी कभी निकल जावे तो तत्काल ही दस्त कर देता है। इसको जबतक हाथमें मनुष्य रखता है तबतक दस्त होते ही जायँगे इसलिये सुकुमार अवस्थावाले पुरुषोंको, दुर्बलोंको और औषधियोंसे द्वेष रखनेवालोंको इसे धारण नहीं करना चाहिये।

लेपके समय पूतनाका, शोधनमें अमृताका, आँखके लिये अभयाका और संपूर्ण रोगोंमें जीवंतीका तथा चूर्णोंमें चेतकी हड़ेंका प्रयोग करना चाहिये। आजकल चेतकी हड़ें अप्राप्य-सी हो रही है। और चूर्णोंमें वैद्य लोग उसे नहीं डाल सकते। इसलिये चूर्णोंके जो गुण शास्त्रोंमें लिखे हैं वे मनुष्योंपर नहीं असर करते। वैद्य जनोंको इस चेतकी हड़ेंकी खोजकी ओर ध्यान देना चाहिये।

हरीतकीमें लवण रस छोड़कर पाँच रस विद्यमान हैं और कषाय गुण अधिक है।

हड़ें—रूखी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, पवित्र, मधुर पाकवाली, रसायन, आँखोंको हितकारी, हलकी, आयुष्य बढ़ानेवाली, बृंहण, दोषोंको अनुलोमन करनेवाली, श्वास, कास, प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ, सूजन, उदर, कृमी, स्वरभंग, ग्रहणी, विबंधता, (कब्जियत) विषमज्वर, गुल्म, आध्मान, प्यास, उल्टी, हिचकी, कुण्ड, हृदय रोग, कामला, शूल, आफरा, प्लीहा, यकृत, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्रघात इतने रोगोंका नाश करती है।

जो हड़ें नयी, चिकनी, मजबूत, गोल वजनदार हो और पानीमें डालनेसे डूब जाय, वजनमें दो तोला हो, एक साथ दो फल जुड़े हुए हों वह हड़ें उत्तम मानी गयी है।

चबाके खानेसे अग्निको बढ़ाती है। पीसकर लेनेसे मलको शोधन करती है। तलकर खानेसे संग्रह करती है। और भाड़में सेककर खानेसे तीनों दोषोंका नाश करती है।

हड़ोंको भोजनके साथ खानेसे बुद्धि, बल और इन्द्रियोंका प्रकाश बढ़ता है और दूषित, वात, पित्त, कफका नाश होता है। मूत्र-मलादिका समयपर निस्सरण होता है। और इसी हड़ेंको भोजनके बाद खानेसे अन्नपानसे पैदा होनेवाले दोषोंका तथा वात, पित्त, कफसे पैदा होनेवाले दोषोंका भय नहीं रहता और उनका नाश होता है।

हड़ें नमकके साथ खानेसे कफको, शक्करके साथ पित्तको, घीके साथ वायुको और गुड़के साथ खानेसे संपूर्ण रोगोंका नाश करती है।

बरसातमें नमकसे, शरदमें शक्करसे, हेमन्तमें सोंठसे, शिशिरमें पीपलसे, वसंतमें शहदसे और ग्रीष्ममें गुड़के साथ हड़ें खानेसे रसायनके गुण करती है और इसे ऋतु हरीतकी कहते हैं इसे बहुत लोग सेवन कर लाभ उठा रहे हैं।

जो लोग मार्ग अधिक चलनेसे खिन्न हो गये हों, बलसे रहित हों, कृश और रुक्ष प्रकृतिके हों, लंघन करनेसे दुर्बल हो गये हों, पित्त प्रकृतिवाले हों, गर्भवती स्त्री और जिनका रक्त निकल चुका हो उन्हें हड़ें नहीं खाना चाहिये।

आजकल मसालेपर बनी हड़ें खानेका अधिक प्रचार

हो रहा है। पर स्वादके कारण कई लोग हड़ें नहीं डालकर केवल मसालेपर बनाकर बेचते हैं इससे उनमें हड़ेंके कथित गुणोंका प्रभाव नहीं दिखाई देता। जिसके घरमें माता नहीं हैं उसके घरमें ये हड़ें माताका कार्य करती हैं। आयुर्वेदमें हड़ेंके बहुतसे प्रयोग लिखे हैं। हमारे औषधालयमें इसके सभी प्रयोग हर समय तैयार मिलते हैं और उन प्रयोगोंके अनुभवसे हमें यह विश्वास हो गया है कि सचमुच हरीतकी माताका काम करती है। लोगोंको इसे व्यवहारमें लाकर लाभ उठाना चाहिये।

—स्वराज्यसे

(२)—डेंग्यूफीवर, लंगड़ा बुखार हड्डीतोड़ बुखार

यह एक खास किस्मका बुखार है जो अक्सर गर्म मुल्कोंमें होता है और हवाकी रफ्तारसे गजबकी तेजीके साथ वक्तन-फवक्तन फैलता है। बुखार, जोड़ोंमें दर्द और कुल जिस्मपर सुर्ख दाने निकलना यह लंगड़े बुखारकी अलामतें हैं।

सबब

डेंग्यू बुखारका जहर मरीजके खूनमें रहता है। कितने ही डाक्टरोंने अपने तजुर्बोसे यह बात मालूम की है कि यह बुखार एक किस्मके मच्छरके काटनेसे फैलता है जिसको क्यूलैक्स फैटीनैंस कहते हैं। लेकिन इस बुखारकी तेज रफ्तारको देखते हुए यह बात निश्चयके साथ नहीं कही जा सकती कि लँगड़े बुखारका असली सबब ठीक मालूम हो चुका है।

यह बुखार उमूमन गर्मीके दिनोंमें या बर्सातके शुरूमें फैलता है। और हर उम्रके आदमी औरतों और बच्चोंको यह बुखार हो सकता है।

अलामतें

असर होनेके २४ से ७२ घंटे बाद बुखार शुरू हो जाता है। बुखार यकायक शुरू होता है। कभी-कभी सर्दी लगकर या कपकपीके साथ भी बुखार शुरू होता है और बाज औकात यकायक चेहरा सुर्ख होकर बुखार हो जाता है और तेजीके साथ बढ़ता है। सिर और आँखोंमें सख्त दर्दके अलावा जोड़ोंका दर्द इतना सख्त होता है कि हिलना-डुलना या करवट लेना भी दुश्वार हो जाता है। मरीज बयान करता है कि उसकी कमर फटी जाती है। चेहरा और आखें सुर्ख और बरम की हुई मालूम पड़ती हैं। चंद घंटोंमें ही बुखार १०३ डिग्री या कभी-कभी १०५ या १०६ तक भी पहुँच जाता है और मरीज सिर, कमर और जोड़ोंके दर्दके सबबसे चलने-फिरनेसे कतई मजबूर हो जाता है। कभी-कभी कै भी होती है जबान खुश्क और सफेद हो जाती है। तीसरे या चौथे दिन बुखार उतर जाता है और साथ ही दस्त या नक्सीरकी शिकायत होती है, जिससे सर दर्द कम हो जाता है और बनिस्बत पहलेके मरीजको बहुत आराम मालूम पड़ता है। ऐसी हालत चौथे-पाँचवें या छठे दिनतक रहती है जिसके बाद यकायक फिर बुखार हो आता है जो कभी हल्का और कभी तेज होता है। यह बुखार सिर्फ चंद घंटोंतक रहता है और इस बुखारके होते ही कुल जिस्मपर सुर्ख रंगके दाने निकल आते हैं। जोड़ोंका दर्द भी बढ़ जाता है, और अक्सर पहलेसे भी ज्यादे जोरका होता है। बुखार तो चंद घंटोंमें छोड़ जाता है, लेकिन यह दाने कई रोजतक बने रहते हैं। कभी-कभी दो-तीन हफ्तेतक दिखाई देते रहते हैं और भूसी-सी उड़कर साफ हो जाते हैं। ऐसा भी देखनेमें आया है कि कुछ मरीजोंको दाने नहीं निकलते या ऐसे खफीफ निकलते हैं कि दिखाई नहीं देते। दाने हाथ, कलाई, कोहनी और घुटनोंपर बहुतायतसे होते हैं। बुखार चले जानेके बाद अक्सर मरीजोंको दर्दकी शिकायत बाकी रहती है। उँगली या घुटनेके जोड़ या कलाई और कंधे या पैरका तला महीनोंतक तकलीफ देते रहते हैं, जिससे अक्सर मरीजको चारपाईकी शरण लेनी पड़ती है। दर्द आम तौरपर सुबहको ज्यादा मालूम पड़ता है।

इलाज

इस बुखारमें मौतें नहीं होती हैं और कमजोरी इतनी हो जाती है कि मरीज आसानीसे दूसरे मरजोंमें फँस जाता है। इसलिये यह बात निहायत जरूरी है कि बिलकुल शुरुसे ही मरीजको पूरा आराम दिया जावे और उठने-बैठनेतककी मुमानियत हो। कमसे कम १० रोजतक बिलकुल आराम लेना चाहिये। डेंग्यू एक मियादी बुखार है। इसलिये बुखार मियादसे ही उतरेगा और बीचमें

बुखार उतारनेकी कोशिश करना फिजूल होगा। मरीजको आराम देनेकी गरजसे अलामतोंके अनुसार इलाज करना चाहिये। हलका खाना, जैसे दूध खानेके लिये दिया जावे और सर्दीसे बचाया जावे। सिर दर्दके लिये सिरका पानीमें मिलाकर या कोलोन वाटरसे भीगा हुआ कपड़ा सिरपर रखना अच्छा है। दर्दके लिये एस्परीन अच्छी चीज है। इस बुखारमें जबतक कोई खास जरूरत न हो दस्तावर दवाइयाँ खिलाना ठीक नहीं क्योंकि हिलने-डुलने या उठने-बैठनेमें मरीजको निहायत तकलीफ होती है। ताजा नीबूका शरबत बनाकर देना अच्छा है। बुखार चले जानेके बाद दर्दके लिये कड़वे तेलमें अफीम, कपूर, रूमीमस्तगी मिलाकार मालिश की जावे और ताकतकी दवाइयाँ खानेके लिये दी जावें।

कुनेनका इस्तैमाल बीमारीके दिनोंमें मरीज और तन्दुरुस्त दोनोंके लिये मुफीद है।

नीचे लिखे हुए नुसखे इस्तैमाल किये जा सकते हैं—

(१) सनाय	...	...	छ माशे.
हड़	...	...	छ माशे.
सुरंजन	...	...	डेढ माशे.
अमरबेल	...	...	तीन माशे.
गावजुवाँ	...	...	चार माशे.
पित्त-पापड़ा	...	...	,, ,,
गुलकन्द	...	...	दो तोला.

पावभर पानीमें मिलाकर जोश दिया जाय और जब आधपाव रहे उतारकर छानकर पिला दिया जाय दिनमें दो बार।

(२) गिलोय	...	...	चार माशे.
चिरायता	...	...	,, ,,
सोंठ	...	...	,, ,,
त्रिफला	...	...	,, ,,
मुलैठी	...	...	,, ,,
शतावर	...	...	,, ,,
चन्दन	...	...	,, ,,
शहद	...	...	ढाई तोला.

आधसेर पानीमें जोश देकर एक चौथाई रह जानेपर दिनमें दो बार पिलावें।

(३) जोड़ोंके दर्दके लिये—

सोंठ	...	...	१ हिस्सा
जायफल	...	...	२ हिस्से
तिलका तेल	...	...	१६ ,,

औटाकर मालिशके लिये तेल बना लिया जाय।

—जयाजी प्रतापसे

(३) हाथका कुटा चावल

(ले०—महात्मा गांधी)

अपने शत-प्रति-शत स्वदेशीके लेखमें मैंने यह बताया है, कि उसके कुछ अंग तो तुरन्त हाथमें लिये जा सकते हैं, और इस तरह भूखों मरनेवाले देशके करोड़ों लोगोंको आर्थिक तथा आरोग्यकी दृष्टिसे लाभ पहुँच सकता है। देशके धनाढ्यसे धनाढ्य लोगोंको इस लाभमें भाग मिल सकता है। चावलको ही लीजिये। अगर धानको गाँवोंमें उसी पुरानी रीतिसे उखली-मूसलसे कूटा जाय तो कूटनेवाली बहिनोंको तो रोज़ी मिले ही, साथ ही करोड़ों मनुष्यों-को, जिन्हें मशीनका कुटा चावल खानेसे निरा 'स्टार्च' मिलता है, हाथके कुटे चावलसे कुछ पौष्टिक तत्व भी मिलने लगें। हमारे देशके जिन भागोंमें धानकी फसल होती है, वहाँ प्रायः सब जगह धान कूटनेके बड़े-बड़े कल-कारखाने खुल गये हैं—इसका कारण है मनुष्यकी लोभ-वृत्ति। मनुष्यकी यह भयानक लोभवृत्ति न तो स्वास्थ्य का विचार करती है, न संपत्तिका। अगर लोकमत प्रबल हो, तो वह हथकुटे ही चावलके उपयोगका आग्रह कायम रखे; चावलके मिल-मालिकोंसे वह लोकमत अनुरोध करे, कि उस हानिकर धन्धेको वे बन्द कर दें, जो कि राष्ट्रके स्वास्थ्यको चौपट कर रहा है, और गरीब लोगोंके हाथसे ईमानदारीसे गुजर-बसर करनेका एक जरिया छीन रहा है, और इस तरह वह धान कूटनेकी मिलोंका चलना असम्भव कर दे।

किंतु आहार-तत्वोंके मूल्यके विषयमें एक साधारण मनुष्यकी बात भला कौन सुनेगा? इसलिये मेरे एक डाक्टर मित्रने, जिनसे मैंने इस सम्बन्धमें सहायता माँगी थी, अपनी सम्मतिके साथ कॉलम और सिमण्ड्ज़की लिखी

'दिन्यूअर नॉलेज आफ् न्यूट्रीशन' (पोषणका नया ज्ञान) नामकी एक अंग्रेज़ी पुस्तक मेरे पास भेजी है। उसमेंका एक उद्धरण मैं यहाँ देता हूँ—

"आधीसे भी अधिक मनुष्य जातिके आहारमें चावल सबसे अधिक महत्वका अनाज है—खासकर उन प्रदेशोंमें चावलकी बहुत ज़्यादा खपत है, जहाँ सबसे ज्यादा नमी या तरी रहती है। अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें चावल ऐसा अधिक पसन्द तो कभी नहीं किया जाता, पर थोड़ी मात्रामें वहाँ भी लोग इसे काममें लाते हैं। जंगली और पिछड़ी हुई जातियोंमें हथकुटा चावल उपयोगमें लाया जाता है और उसे लाल चावल कहते हैं; पर साधारणतया उसे कुछ इस तरह कूटते हैं, कि उसके जीवाणुओंका अधिकांशमें नाश हो जाता है। यह जीवाणु-नाश धानको बड़ी-बड़ी कांड़ियों (ओखली) में कूटनेसे होता है। पर इस क्रियामें भूसीकी एक परत तो रही जाती है, जिसमें खनिज क्षार अधिक मात्रामें होते हैं।

जो चावल दूर-दूरके शहरोंमें बेचा या देसावरको भेजा जाता है, उसे मशीनोंसे कूटकर खूब मुलायम और चमकदार बना देते हैं। ऐसा करनेसे चावलकी तमाम भूसी और जीवाणुओंका सर्वनाश हो जाता है। गेहूँ या मकाईके जीवाणुकी तरह चावलका जीवाणु सूक्ष्म तहवाला होता है, और वहीं नये जीवतत्वकी सृष्टि होती है। चावलमें यही संपूर्ण आहारप्रद तत्व है। चावलमें जितनी चर्बी रहती है, वह करीब-करीब सब इसीमें होती है, और वह छोटे-छोटे जन्तुओं तथा बड़े-बड़े प्राणियोंका अधिक पोषण करता है। यह बात मशीमके कुटे चावलमें नहीं होती, उसमें तमाम पोषक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। १९२३ में हमाडाने कहा था, कि चावलके जीवाणुमें रहनेवाला 'प्रोटीन' बहुत ही पौष्टिक होता है। हाथका कुटा चावल जब गरम जल-वायुमें बहुत दिनोंतक रखा रहता है, तब उसकी चर्बी पुरानी पड़ जाती है, और गँधाने लगती है। मिलके कुटे चावलमें व्यापारीको इस तरहके नुकसानका कोई डर नहीं रहता।

मॅकफरी सन् (१९२३) इस निर्णयपर पहुँचे थे कि यंत्रमें कूटे जानेके पहले धानमें 'विटामिन ए' (एक पौष्टिक तत्व) होता है। वह कहते हैं, कि उसानेमें जब धानको भाप लगती है, तब उस तत्वका अधिकांशमें नाश हो जाता है।

चावलको मशीनमें पॉलिश करनेका यह काम इसीलिये शुरू हुआ, कि वह बहुत दिनोंतक ज्यों-का-त्यों ताजा रखा रहे; और उसमें जो दूधकी फेनकी तरह सफेदी आ गयी इससे उसकी माँग और भी कायम हो गयी। सफेद चावल, मैदा और मकाईका सफेद आटा लोगोंको जो इतना अधिक भा रहा है, इससे यही प्रकट होता है, कि आहारकी पसन्दगीमें मनुष्यकी मनोवृत्ति काम नहीं देती। उपर्युक्त दृष्टान्तोंमें कम-से-कम पुष्टिकर वस्तुओंकी बाहरी सुन्दरतासे ही मनुष्य मोहित हो जाता है।

मशीनकेद्वारा कृत्रिम सफेदी लानेका रिवाज इसी कारण चल निकला है, कि बाजारमें चाँदी जैसे सफेद चमकदार चावलकी ही खपत ज्यादा हो रही है। पॉलिश करनेके साथ-साथ चावलपर सफेदाकी बुकनी चढ़ायी जाती है, और 'ग्लुकोज'की पतली परतके सहारे वह सफेदा चावलपर चिपका रहता है। चावलको जब धोते हैं, तब दूध जैसा जो उसका धोवन दिखता है उसका कारण उसपर चढ़ा हुआ यह सफेदा ही है।

उस पोथीके एक चार्टमें बताया गया है, कि मिलके कुटे-बने चावलमें चारों पौष्टिक तत्व बहुत ही कम होते हैं। उसके 'प्रोटीन'में बहुत ही थोड़ा पौष्टिक तत्व होता है। शरीरकी बाढ़में जिन खनिज द्रव्योंकी जरूरत होती है, वे भी उसमें बहुत ही कम होते हैं और विटामिन 'ए' और विटामिन 'बी' तो करीब-करीब होते ही नहीं। इस बातका चूहोंपर प्रयोग किया गया तो उससे यह साबित नहीं हुआ, कि मिलके इस चावलमें विटामिन 'सी' नहीं है। इस चीजकी चूहेके आहारमें आवश्यकता नहीं।

१९२४ में केनेडीकी जंगली चावलमें दूसरे किसी भी अनाजकी अपेक्षा प्रोटीनकी मात्रा अधिक मालूम हुई, पर इस प्रोटीनमें पौष्टिक तत्व कुछ कम थे। दूसरे अनाजोंको देखते हुए इसमें कुछ ऐसे निरवयव द्रव्य भी हैं, जिनसे प्राणियोंके शरीरका विकास नहीं हो सकता। उसमें विटामिनकी मात्रा यद्यपि कम होती है, पर 'जेरोथॅलमिया' नामक रोग रोकनेके लिये वह काफ़ी है। असलमें मिलके कुटे चावलकी अपेक्षा इस जंगली चावलमें पौष्टिक तत्व अधिक हैं, क्योंकि उसका प्रोटीन उच्च कोटिका है। शरीरकी पुष्टिके लिए विटामिन 'बी' की मात्रा इसमें काफी है। —हरिजनसे

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

बुद्धिका विपर्य्यय

अस्वाभाविकताका प्रचार

हमारे हृदयको असोशियेटेड प्रेसकी इस सूचनाको पढ़कर बेतरह ठेस लगी कि लाहौरमें छात्रोंको उपदेश देतेहुए भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडूने उन लोगोंको कोसा है जो अंग्रेजी भाषाको शिक्षाका माध्यम नहीं रहने देना चाहते। हम तो इस समाचारका सर्वथा विश्वास नहीं कर सकते। विदेशी भाषाकेद्वारा शिक्षा तो नितान्त अस्वाभाविक और अवैज्ञानिक है और इसके समर्थकके,-चाहे वह प्रेसका कोई प्रेत हो और चाहे सचमुच देवी जी ही हों;-बुद्धिके विपर्य्ययमें तो रत्तीभर सन्देह नहीं हो सकता। कोई कहे कि खिचड़ी पकाना हम तुम्हें तभी सिखायेंगे जब तुम सोनेकी पतीली लाओगे, तो ऐसे सिखाने वालेकी बुद्धिमान लोग क्या कीमत लगावेंगे, कहनेकी जरूरत नहीं है। अंग्रेजी भाषा सोनेकी अनमोल पतीली जरूर है, मगर मिट्टीकी हाँडी हम दरिद्र भारतीयोंके लिये सहज सुलभ है, उसकी खिचड़ी हमें अधिक स्वादिष्ट और सोंधी लगती है। अंग्रेजी भाषाने हमारी शिक्षाको इतनी कीमती बना दिया है कि वह फैल नहीं सकती और सरकार जितने रुपये शिक्षामें लगाती है उसका भरपूर लाभ भारतीयोंको नहीं मिल पाता। देशी भाषाद्वारा शिक्षा दी जाय तो (१) उतने ही खर्चमें शिक्षाका प्रचार अत्यधिक बढ़ जाय, (२) कम दाममें शिक्षक मिलें, (३) सस्ती पोथियाँ मिलें, (४) कम समयमें अधिक काम हो, (५) लड़कोंका परिश्रम बचे, (६) विदेशी पुस्तकोंद्वारा देशका शोषण घटे और (७) शिक्षा स्वाभाविक हो जाय। अंग्रेजीका माध्यम रखनेके पक्षमें एक भी बुद्धि पुरःसर युक्ति नहीं है। इन सात लाभोंका निरादर करके कोई पतीलीकी कीमतपर जोर दे और खिचड़ी-का महत्व न समझे तो बुद्धिका विपर्य्यय नहीं तो क्या है?

भारतमें उल्थोंका वर्त्तमान युग

भारत ही विश्वमें वह अभागा देश है जहाँ विदेशी भाषाका अप्रतिम प्राधान्य है। यहाँ वर्तमान युग उन लोगों-का है जिन्होंने नितान्त अवैज्ञानिक और अस्वाभाविक रीतिसे शिक्षा पायी है। पढ़े-लिखोंमें ऐसे लोगोंकी बड़ी संख्या है जो पहले मनमें अंग्रेजीमें सोचकर पीछे मातृभाषामें अपने भावोंका अनुवाद करके बोलते हैं। इसका फल यह हुआ है कि अंग्रेजी मुहाविरोंतकके उल्थे हो गये हैं। हम किसी विषयपर "प्रकाश डालना" चाहते हैं तो अंग्रेजीके "माध्यम" से। हमारी "तरुणाई" खिचड़ी भाषाको अपनाती है। "स्वप्निल" "मदिर" "फेनिल" आदि अनेक विशेषणोंकी सृष्टि "ड्रीमी" इंटाक्सिकेटिंग" "फ़ोमी" आदि अंग्रेजी शब्दोंके उल्थेसे हुआ है। "तथोक्त" "छायावादी" या "रहस्यवादी" कवितामें इन्हीं उल्थोंकी भरमार है। हमें उल्था छोड़ साहित्यरचनामें कोई और उपाय सूझता ही नहीं। हम कविता करते हैं तो उल्था करते हैं, निबन्ध लिखते हैं तो भावों, पदों, शब्दोंका उल्था करते हैं, कोई नक्शा या फारम बनाते हैं तो उल्था करते हैं, कलातकमें हम विदेशियोंकी नकल करते हैं, हमारा रहन-सहन, पहिरावा, व्यवहार, शिष्टाचारतक विदेशीकी नकल, व्यावहारिक भाषाका उल्था हो गया है। विश्वविद्यालयोंतकमें पाठ्य-ग्रन्थोंकी आवश्यकता हुई तो अंग्रेजीसे उल्था करनेका ही पहले विचार किया जाता है।

वर्तमान पीढ़ीकी भाषा हमारी भाषा है, इसलिये उसके दोष हमें नहीं सूझते। परन्तु आगेकी वह पीढ़ियाँ जो अपनी भाषामें शिक्षित होंगी और अपने साहित्यको स्वयं उत्पन्न करेंगी और जो राष्ट्रजातसाहित्यसे ही परिप्लुत होंगी हमारी आजकी भाषाको किस दृष्टिसे देखेंगी यह हम आज समझ नहीं सकते।

सरोजिनी देवी भारतीया होते हुए भी अंग्रेजी भाषामें कविता करती हैं। यह अस्वाभाविक दृश्य भारतमें ही देखने-में आ सकता है। अंग्रेजी भाषामें उल्था होनेसे ही रवीन्द्र ठाकुर विश्वकवि हो जाते हैं। सर जगदीश वसुकी कृतियाँ अंग्रेजी भाषामें ही होनेसे जगतमें आदर पाती हैं। सर चन्द्रशेखर रमणको अँगरेजीकेद्वारा ही यश मिलता है। इन लोगोंकी कृतियाँ अंग्रेजीमें न होतीं तो इन्हें सुयश न मिलता। परन्तु सुयश तो व्यक्तिगत वस्तु है। वास्तविक सत्यको व्यक्त करना ही जिस वैज्ञानिक या कविका उद्देश्य है वह सुयशकी परवाह नहीं करता। उसे तो यह श्रेय मातृभाषाको ही देना चाहिये। इन विश्ववंद्य विद्वानोंमें अपवाद रूप कवि रवीन्द्र ही अकेले अपनी मातृभाषाको अपनाये हुए हैं। भारी भारी विद्वानोंने अपनी मातृभाषाको क्यों बिसराया? क्या इसका कारण यह नहीं है कि इनका संस्कार विदेशी हो गया है, और इन्होंने विदेशी भाषाके माध्यममें और विदेशीपनके वातावरणमें ही अपना व्यक्तिगत विकास किया है?

क्या वर्तमान स्थिति वाञ्छनीय है?

कहनेवाले यहाँतक कह डालते हैं कि स्व० तिलक श्री अरविन्द घोष, महात्मा गान्धी, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि नेता तो इसी अंग्रेजी शिक्षाके फल हैं। परन्तु वे भूल जाते हैं, कि पहले तो तैंतीस कोटि देवताओंमें इन्हीं थोड़ेसे गिने लोगोंके नाम आते हैं, और देशोंकी आबादीसे

इंदौरमें होनेवाले ज्यौतिष-सम्मेलनकी विशेषता

(ले०—विद्याभूषण पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैट, प्रधानमंत्री, ज्यौतिष-सम्मेलन, इन्दौर)

विद्वज्जन ऐसा सुअवसर न चूकें

इस बारका ज्यौतिष-सम्मेलन कई दृष्टियोंसे विशेष महत्त्व रखता है। प्रथम यह कि विगत चारों सम्मेलन दक्षिण भारतमें ही हुए। जिससे उनकी सारी कारवाई मराठी भाषामें लिखी जानेसे उत्तरभारतमें इस विषयकी महत्तापर लोगोंका ध्यान आकृष्ट ही नहीं हुआ। यद्यपि विवादास्पद विषयोंपर कोई अन्तिम निर्णय नहीं हुआ था और ग्रहलाघव और सूर्यसिद्धान्तको संस्कार भी किसीने नहीं दिया, फिर भी दक्षिण भारतमें सतत आन्दोलन चलते रहनेसे शके १८४० और ४१ में टिलक पंचांग, केतकी पंचांग, पंत प्रतिनिधि पंचांग, प्रभाकर पंचांग, गजानन, चित्रशाला पंचांग आदि वहाँसे निकलनेवाले पंचांग उत्तर भारतीय पंचांगोंकी अपेक्षा दृक्प्रत्यय गणितके बने हैं। उत्तर भारतमें यह सबसे पहला सम्मेलन है। इसकी समस्त कारवाई भी हिन्दी-भाषामें लिखी जायगी। और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर होनेसे समस्त हिन्दी-जगतका अनायास ही इस ओर ध्यान आकृष्ट हो सकेगा। दूसरे इस समय ज्योतिषशास्त्रके विवादास्पद विषयोंपर पूर्ण विवेचन युक्त रिपोर्ट होल्कर गवर्नमेंन्ट की ओरसे प्रकाशित हो गयी है, जो शीघ्र ही सरकारकी ओरसे राजा महाराजाओं, विद्वानों, पत्र-सम्पादकोंके पास समालोचनार्थ भेजी जा रही है। इस रिपोर्टके आधारपर एक शुद्ध सूक्ष्म गणितका पञ्चांग भी इन्दौर सरकार बनवा रही है जो सम्मेलनसे पूर्व छप जायगा और विचारार्थ सम्मेलनमें रखा जायगा। जिससे इस सम्मेलनमें विगत सम्मेलनोंके समान वादाविवादमें कोई समय व्यर्थ नष्ट नहीं होगा

वहाँके प्रमुखोंकी संख्या-निष्पत्ति निकालिये तो पता चले कि अंग्रेजीद्वारा शिक्षा पानेसे हमारे यहाँ कितने थोड़े प्रमुख लोग हैं। यह कौन कह सकता है कि मातृभाषा-द्वारा शिक्षा होती तो इनसे अधिक संख्यामें और भी अधिक तेजस्वी प्रमुख नेता और विद्वान् न होते? कौन कह सकता है कि सरोजिनी देवी मातृभाषाकी कोई अनुपम और अनुत्तम कवयित्री न होतीं? जिस देशने कणाद, पतंजलि, व्यास, शंकर सरीखे दार्शनिक, नागार्जुन, चरक अश्विनी-कुमार सरीखे रासायनिक, आर्यभटादि सरीखे ज्यौतिषी पूर्वकालमें पैदा किये वह आज क्यों अनुर्वर हो जाता, यह बात समझमें नहीं आती।

अंग्रेजीद्वारा शिक्षाके पहले भी मुसलमानी संस्कृतिके नक्काल थे जरूर परन्तु आजकी तरह उनकी संख्या भारी न थी। सात-आठ सौ बरसोंके संपर्कके बाद उनकी कुछ संख्या होनी आवश्यक थी। परन्तु डेढ़सौ बरसोंमें अंग्रेजीके नक्काल सारे देशमें व्याप गये। अपनी संस्कृति छोड़कर विदेशी संस्कृतिमें परिप्लुत हो जाना क्या वांछनीय है?

हम अंग्रेजी भाषाके, अथवा किसी विदेशी भाषाके विरोधी नहीं हैं। हम चाहते हैं कि अंग्रेजी और अंग्रेजोंमें जितने अच्छें गुण हों,—जो हममें न हों,—उन्हें हिन्दीभाषा और हिन्दी समाज जरूर अपना ले, परन्तु नक्काली छोड़ दे। बाप-बेटेमें, भाई-भाईमें, मित्र-मित्रमें पत्र-व्यवहार, बातचीत अपनी भाषामें हो, अंग्रेजीमें क्यों? देशमें आपसका व्यापार-व्यवहार लिखापढ़ी अपनी भाषा में हो, अंग्रेजीमें क्यों? दूकानदारोंके विज्ञापन, साइनबोर्ड आदि देशीभाषा या भाषाओंमें हो, अंग्रेजीमें क्यों? महल्लोंके नाम, पते, सड़कों-परके मीलोंके पत्थर, पता बतानेवाले खंभे आदि देशीभाषामें हों, अंग्रेजीमें क्यों? रेलोंके टैमटेबिल, डाकखानोंके नामोंकी सूची और दोनों विभागोंकी नियमावली देशीभाषामें हों, अंग्रेजीमें क्यों? हिसाब, भूगोल, विज्ञान, इतिहास, नीति, अर्थशास्त्र, आदि शिक्षालयोंमें पढ़ाये जानेवाले विषय देशी भाषाओंमें पढ़ाये जायँ, अंग्रेजीमें क्यों? सभी सार्वजनिक व्याख्यान देशीभाषामें हों, अंग्रेजीमें क्यों? क्या यह स्पष्ट नहीं है कि देशी भाषामें होनेसे करोड़ों आदमी लाभ उठा सकते हैं, अंग्रेजीमें होनेसे अत्यन्त थोड़ी संख्याको लाभ पहुँचता है? जो लोग अंग्रेजी हर काममें बर्तते हैं वह इस बातको सहज ही भूल जाते हैं कि हम अपने करोड़ों अंग्रेजी-से अनभिज्ञ बंधुओंके साथ अन्याय कर रहे हैं और हम उन लोगोंकी उपेक्षा कर रहे हैं, जिनके अभिमुख होन और जिनकी सेवा करना हमारा परम कर्त्तव्य है और ऐहिक और पारलौकिक सुख देनेवाला है। यह उपेक्षा और अन्याय हम भूल क्यों जाते हैं? क्योंकि हमारी हियेकी आँखोंपर विदेशीपनकी ऐनक चढ़ी हुई है, हम उसी दृष्टिसे देखते हैं। निश्चय ही यह अवस्था वांछनीय नहीं है। अपने आपेको भूलकर प्रेतग्रस्तकी तरह हम सबको अपनेको कुछ और न समझना चाहिये।

और न्याय-मंडलको आसानीसे निर्णय देनेमें सहूलियत हो सकेगी। बचतके समयका सदुपयोग सम्मेलन भारतीय-ज्यौतिष-शास्त्रको प्रगति देनेकी योजना बनानेमें करेगा।

रिपोर्टमें सिर्फ पंचांग शोधनका ही विषय नहीं प्रतिपादन किया गया है बल्कि उसमें और भी बहुतसे मौलिक शोध सम्मिलित हैं। यथा—

(१) मुंजालसे लेकर ज्यौतिष-शास्त्रके १० ग्रन्थोंके रवि संक्रमण और अयनांशादि मानोंकी दृग्गणितैक्य शुद्ध मानोंसे एक वाक्यता करके (रि० ख० २ पृ० ९०-१००) बतायी गयी है।

(२) पाश्चात्य विद्वानोंकी कही हुई परमक्रांतिकी गतिका विचार करते हुए, खगोलीय ऐतिहासिक पद्धतिसे यह सिद्ध किया गया है; कि **परमक्रांतिकी आन्दोलन गति नहीं है बल्कि चक्रगति है।**

(३) वेद, पुराण, छन्दावस्था खाल्दियन लेख और संसारकी प्राचीन दन्तकथाएं आकाशमें होनेवाली घटनाओं (तारका पुंजोंका संक्रमण आदि) पर बाँधे हुए रूपक हैं।

(४) मनुष्य जातिकी उत्पत्ति जैसा कि आजतक सब इतिहासवेत्ता मानते हैं कि उत्तर ध्रुव प्रदेशमें हुई, उसका खण्डन करते हुए यह साबित किया गया है कि **मनुष्य जातिकी उत्पत्ति भारतवर्षमें ही हुई है।** उस समय भारतके ३६ अक्षांश उत्तरके प्रदेशमें मेरुपर आजकल दीखनेवाले सभी दृश्य दिखलाई देते थे।

(५) चित्रा तारेसे गणना करनेकी प्राचीन वैदिक कालसे अबाधित रूपसे चलनेवाली परम्परासे लोगोंका मन हटाकर कुछ पाश्चात्य ज्योतिषी और उनका अनुसरण करते हुए कुछ भारतीय आंग्लविद्याविद विद्वान भी झीटा गणना चाहते हैं। उसका जोरदार खंडन करके **चित्रा परम्पराको शुद्धताका मंडन** किया गया है।

(६) सम्मेलनमें आए हुए विद्वानोंको घातांकगणित (लाग्रथम) के तुल्य गणितकी धारापद्धति और वेधक्रिया दिखानेके लिये राजवाड़ाके ऊपर स्थापित वैदिक वेधशालामें प्रबंध किया जा रहा है। उसमें प्राचीन कालमें जब अंकलेखन-कलाका प्रादुर्भाव भी नहीं हुआ था उस समयके दो लाख वर्षतकके कालमापन करनेवाले श्येनपक्षीके आकारके पंचांगोंके लकड़ीके मॉडल भी मौजूद रहेंगे। वैदिक कालमें ईंटोंके कई प्रकारके पंचांग बनाये जाते थे जैसे १—द्रोण-चिति, २—रथचक्र-चिति, ३—कंक-चिति, ४—प्राउग-चिति, ५-उभयतः प्राउग-चिति, ६—समुह्य पुरीष, तथा ७—सुपर्ण-चिति। इनकी रचना करनेकी शतपथ ब्राह्मण और शुल्व सूत्रोंमें विधि बतायी गयी है। ईंटोंकी रचनासे बना हुआ सुपर्णचिति ३ लाख वर्षका पंचांग है। इससे तिथि, नक्षत्र, योग, करण, दिनमान, रात्रिमान, सूर्यका उत्तरायण-दक्षिणायन और भुक्त वर्षोंकी संख्या मालूम हो जाती है।

(७) वार सप्तक चित्र होगा। उसमें देखने योग्य बात यह होगी कि प्राचीन वैदिक कालसे आजतक (अत्तवार, सोमवार नाम पड़नेतक) हरेक वारके आठ दस नाम पड़ चुके हैं। ज्योतिर्विज्ञानसे इनकी उपपत्ति बतायी जायगी।

इसके अलावा **(१) छंदो गणना चित्र, (२) दैवत गोल, (३) विज्यंधन्वी प्रक्रिया** तथा **(४) दीर्घ काल दर्शक राशि गोल** आदि कई प्रकारके नकशे वेधशालामें रहेंगे, जिन्हें देखनेसे प्राचीन कालका जीता जागता चित्र सामने आ जायगा। और तुरीय यंत्र दूरबीन आदिद्वारा सम्मेलनके समय पांच-पांच मिनटमें एक-एक तारेका वेध इस तरह आकाशके दृश्य-गोलार्धके करीब १०० तारोंके वेध बताकर शुद्ध सूक्ष्म गणितके ग्रह ताराओंका परिचय करा दिया जायगा। इस वेधशालामें पंचांगकार ज्योतिर्विद् जो कि वेधक्रिया जानते हैं वह जयपुर, जामनगर, काशी, उज्जैन, एलिचपुर, मऊ, बेलगांव, पूना, अकोला, अमरावती, जबलपुर आदिके पन्द्रह बाहरके और दस इन्दौरके इस प्रकार पच्चीस विद्वान् सम्मेलनके लगभग एक मास पूर्वही नित्य प्रति वेध लेनेका कार्य करेंगे। ऐसा करनेसे वेध लेनेके सम्बन्धमें सबकी एकवाक्यता हो जायगी। यही एक एकीकरणका मार्ग है कि सम्मेलनके समयमें भारतवर्षके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध बड़े-बड़े पंचांगकार ज्योतिषी एकत्र होकर वेध लेनेका कार्य करें जिसमें आगे पंचांगका विवाद स्वयं मिट जायगा और धर्मशास्त्रियोंकी भी सम्मति मिल जायगी।

यह सम्मेलन ऐतिहासिकों, पुरातत्ववेत्ताओं, वैज्ञानिकों, पंचांगकारों, फलितज्योतिषियों और भृगु—शास्त्रियों आदि सभीके लिये समान महत्वपूर्ण होगा। अतएव हम अपने समस्त सहयोगियोंसे इस ओर ध्यान देनेकी और पधारनेकी प्रार्थना करते हैं।

सभापति डाक्टर गणेशप्रसादका अचानक देहावसान

विज्ञान-परिषत्पर अनभ्र वज्रपात

(१) अन्तिम लीला

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति चक्रवालम्
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा ! हन्त ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार !!!

गणितके जगन्मान्य आचार्य्य अपने गुरुकल्प सहयोगी और परम मित्र, परिषत्के सभापति डाक्टर गणेशप्रसादके देहावसानका समाचार सुनकर काठ सा मार गया, वज्र-पात सा हो गया ! क्या ऐसी बात भी संभव है ! विश्वास न हुआ । तुरन्त अपने मित्र प्रो० चंदीप्रसादके पास गया । वह शवदाह करके आगरेसे लौटे थे । हृदयपर वज्र रखकर समाचार सुना । हा ! क्या क्या हौसले पस्त हो गये, क्या क्या आशाएँ धूलमें मिल गयीं, कितने अरमानोंका खून हो गया ! जितने दिन उनका सत्संग प्राप्त रहा उनको ही गनीमत न जाना, और अतृप्त रहकर मोहवश भविष्यकी झूठी आशा बाँधे रहा, और कालिदासकी इस उक्तिको भूला हुआ था—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां
विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्
यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ।

आज उनके परिवारमें उनका एकमात्र भाई और अनुजबधू, और एक मात्र अविवाहित भतीजा, तथा उनकी भतीजी और जामाता, येही रोनेवाले हैं, परन्तु उनके असख्य शिष्योंका एक बड़ा समुदाय जिनके लिये उनके हृदयमें अगाध वात्सल्य स्नेह था और जिनके लिये वे एक मात्र (Guide, philosopher and friend) आचार्य्य, सलाहकार और मित्र सब कुछ थे, आज अनाथ हो रो रहा है । अनेक छात्र जो उनकी सहायतासे इस जीवनकी कठिनाइयोंके समुद्रसे पार पा रहे थे रो रहे हैं और रो रही हैं वह संस्थाएं जिनके लिये उनका सर्वस्व रक्तका स्रोत था जो सूख गया ।

परन्तु, अब रोना ही हाथ रहा ।

उन्होंने ५ मार्चको कलकत्ता छोड़ा । तबसे बराबर यात्रामें रहे और काम करते रहे । वह ८ मार्चको ही परिषत्की कौंसिलकी बैठक करना चाहते थे । परन्तु उसकी सूचना नहीं निकल सकी थी । ८ मार्चको वह प्रयाग विश्वविद्यालयके कामसे प्रयाग आये और प्रधान मंत्री प्रो० सालिगराम भार्गवको आदेश दिया कि १६ मार्चको परिषत्की कौंसिलका अधिवेशन किया जाय । मैं आगरेके विश्वविद्यालयकी कौंसिलकी बैठकमें जा रहा हूँ । वहाँसे लखनऊ, लखनऊसे काशी और फिर काशीसे समयपर प्रयाग पहुँच जाऊँगा । उस समय वे खूब प्रसन्न और सुखी थे और काममें लगे थे । भावी कोई नहीं जानता । "मेरे मनमें और है कर्त्ताके कुछ और" । शनिवार ९ मार्चको वह आगरे पहुँचे । सबेरे भोजन करके सवा ग्यारह बजे आगरा युनिवर्सिटीकी एक्सीक्युटिव कौंसिलकी बैठकमें पहुँचे । सवा दो बजे तक उस बैठकमें विविध विषयोंपर विचार हुआ । इनके भाषण भी हुए । एकाएकी सवा दो बजे उनका सिर कुरसीके तकियेसे लटक गया और वह बेहोश हो गये । डा० बागची और आगरा मेडिकल कालिजके प्रिंसपलने तुरन्त देखा । स्ट्रेचरपर अस्पताल ले गये । वहाँ पाँच घंटेतक उपचार होता रहा, परन्तु बेहोशीमें कोई अन्तर नहीं आया । सवा सात बजे सांस भी बन्द हो गयी । नाड़ी छूट गयी । हृदयकी गति रुक गयी । आशालता मुरझा गयी ।

इस जीवनकी लीला समाप्त हो गयी !

इस सभामें डाक्टर साहबका एक भी शिष्य न था । परन्तु वहाँ एक ऐसे सज्जन थे जिन्होंने समीपतम कुटुम्बी और परम स्नेही मित्रका काम किया । यह थे उदारचेता **सहृदय सुहृद पंडित श्यामसुन्दर शर्म्मा, एम० ए०** आगरा विश्वविद्यालयके आधारस्तंभ रजिस्ट्रार । इन्होंने डा० साहेबके बेहोश होते ही तारोंका एक तार बाँध दिया । जहाँ जहाँ उनके शिष्यों कुटुम्बियों मित्रोंका उन्हें पता था उन्होंने तार दिये तथा टेलिफोनसे खबर पहुँचायी । पटनेसे उनकी भतीजी और उनके पति, बनारससे उनके भतीजे मोती बाबू तथा उनके सेवक नन्दूलालको साथ लेकर उनके शिष्य और मित्र प्रो० चंदीप्रसादजी, काशीकी हिन्दू विश्वविद्यालय कोर्टकी मीटिंगमें उपस्थित उनके शिष्य डा० बदरीनाथप्रसाद तथा काशीमें ही उस समय

उपस्थित उनके शिष्य विज्ञान-सम्पादक डा० गोरखप्रसाद दोनों साथ, तथा लखनऊसे श्री अवधेश नारायणजी, सभी तुरन्त रवाना हुए। उधर रविवार १० मार्चको सवेरे उन्हीं पंडित श्यामसुन्दर शर्म्माके प्रबन्धसे अर्थीका जुलूस निकला जिसमें युनिवर्सिटीके सभी गण्यमान्य सदस्य जो आगरेमें उपस्थित थे, शिक्षा-संस्थाओंके सभी विद्वान्, वहाँका छात्र-समुदाय, पढ़े-लिखे सज्जनोंका समूह, सबके सब बड़ी भीड़के साथ शामिल हुए और अर्थी जमुनाजी ले जायी गयी। फिर भी आनेवालोंके लिये लोग रुके रहे। एक बजेके लगभग इधरसे गाड़ी पहुँची। सबलोग जमुनाके तटपर गये। शोकातुर नन्दूलाल इस बातपर अड़ा था कि लाश काशी ले जायी जाय। परन्तु काफी देर हो चुकी थी। समझ बूझकर वहीं दाहकर्म हुआ। वहाँसे उनका फूल काशी लाया गया।

डाक्टरोंकी तात्कालिक परीक्षासे मालूम हुआ कि रक्तचाप इतना बढ़ गया था कि रक्तवाहिनियाँ मस्तिष्कके भीतर फूट गयीं, और दूसरे दिन एक बजे देखा गया कि मुँह रक्तसे भरा था।

यह महानपुरुष अपने जिस मस्तिष्क यंत्रसे निरन्तर काम लेता रहा शायद उससे उसकी समाईसे अधिक काम लेनेके कारण उसमें रक्तका प्रवाह अत्यधिक बढ़ गया था। इधर रक्तचापके बढ़नेकी शिकायत जबसे हुई तबसे अत्यधिक काम भी करते थे और प्रसन्न भी रहते थे। किसीने उन्हें इस उनसठ बरसकी अवस्थामें भी सुस्त और उदास नहीं देखा। उनकी यह श्रमशीलता और बुढ़ापेमें भी जवानीकी मुस्तैदी उनके ब्रह्मचर्य्यके कारण थी। उनका मस्तिष्क बलवान और हृदय विशाल और उदार था। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त ऊँचा था, वह किसीके सामने झुकनेवाले न थे। उनकी योग्यता इतनी बलवती थी कि ईर्षालु लोग न चाहते हुए भी उनके सामने लाचार हो झुकते थे। बड़ी विषम परिस्थितियोंमें भी वह अपनी मनचाही करा ही लेते थे। इनके चरित्रमें दोष ढूँढ़नेवाले अन्तमें अपने मुँहकी खाते थे। भूलसे उनका निरादर और अपमान करनेवाले अपनी मूर्खतापर पछताते थे और उनसे क्षमाप्रार्थी होते थे। उनका हृदय पवित्र था। वह कभी अपने विरोधीकी भी हानि नहीं चाहते थे। शिष्टाचार और सभ्यताके तो वह मूर्त्ति थे। जो कोई एक बार भी उनसे मिला है वह जानता है कि वह कितने शालीन कितने विनम्र कितने अमानी थे, परन्तु अभिमान करनेवालोंकी ओर वह निगाह उठाकर देखते भी न थे। मित्रों और शिष्योंके वह आदर्श सहायक थे और छात्रमात्रके वह सच्चे संरक्षक और सुहृद थे। उनका हृदय अत्यन्त दयालु था और उनकी थैली पात्रोंके लिये सदा खुली रहती थी। इधर पाँच छः बरसोंके भीतर उन्होंने अनेक संस्थाओंको अच्छी-अच्छी रकमें दान कीं। वह परोपकारमें इतना अधिक इसीलिये खर्च करनेमें समर्थ थे कि वह अपने और अपने आश्रितोंके लिये वास्तविक आवश्यकतासे अधिक खर्च नहीं करते थे। कहा जाता है कि केवल अध्यापनका काम करके जितने धनवान ये हुए, कोई अध्यापक नहीं हुआ। परन्तु सर प्रफुल्लचन्द्रायके अतिरिक्त शायद ही किसी औरने डाक्टर गणेशप्रसादके बराबर परार्थमें खर्च किया होगा। फिर भी डाक्टर साहब कलकत्ता और बनारस दो जगह गृहस्थीका पूरा बन्दोबस्त रखते थे। उनका खर्च भी काफी पड़ता था। परन्तु बँगलेमें अत्यन्त आवश्यक सामान थे। अमीरीके आडम्बरोंका नामोनिशान न था। मैंने डाक्टर साहबके गुरु प्रोफेसर होमर्शम काक्सकी जीवनवृत्ति भी देखी थी। काक्स साहबके बँगलेपर भी पुस्तकोंका ढेर था, उनसे भरी अल्मारियाँ थीं। चन्द कुर्सियाँ और दो एक नंगी मेजोंके सिवा और कुछ न था। गरीब निवाजी थी, उदारता थी, अपने काम और गणितमें लगन थी, ब्रह्मचर्य्य था और एकाकी जीवन था। डाक्टर साहब मिस्टर काक्सके ही ठीक अनुरूप थे। अपनी जानकारी भर उनकी संक्षिप्त जीवनी मैं यहाँ देता हूँ।

२, जन्म और छात्रावस्था

इस प्रान्तके शहरोंमें बलिया यद्यपि सबसे छोटा समझा जाता है, तथापि इसका सिर आज सबसे ऊँचा है, क्योंकि इसने उस जगन्मान्य गणितज्ञको जन्म दिया है। डाक्टर गणेशप्रसाद संसारके आज आधे दर्जन जीवित गिने-चुने गणितके पारङ्गत विद्वानोंमें समझे जाते थे। रसायनमें जैसे आचार्य राय, वैद्युतशरीरविज्ञानमें जैसे आचार्य बोस, भौतिक विज्ञानमें जैसे आचार्य रमण हैं, उसी तरह गणितशास्त्रमें आचार्य गणेशप्रसाद संसारमें भारतके गौरवकी रक्षा करनेवाले थे।

आपने बलियाके एक प्रतिष्ठित श्रीवास्तव्य ब्राह्मण कुल में २९ कार्तिक, सं० १९३३ (१५ नवम्बर १८७६) के पुण्य दिनमें स्वर्गीय श्रीयुत रामगोपालसिंहजीके घर जन्म लिया। बाल्यावस्थामें ही आपकी प्रतिभा चमक उठी। घरपर प्रथानुसार साधारण फारसीकी शिक्षा हुई और

साथ ही अंग्रेजी स्कूलमें भी पढ़ते रहे। १५ वर्षकी अवस्थामें बलियाके गवर्नमेंट स्कूलसे प्रथम श्रेणीमें (सन् १८९१ ई०) सं० १९४८ में, एंट्रेंस पास हुए। वहाँसे आप प्रयागमें, कालेजकी ऊँची शिक्षा प्राप्त करनेके लिये, म्योर कालेज-में प्रविष्ट हुए। यहाँ आपने विज्ञानका विशिष्ट अध्ययन किया और चार वर्षमें आपने बी० ए०की परीक्षा दी। उसमें सारे विश्वविद्यालयमें आपका सबसे ऊँचा नम्बर रहा, प्रथम हुए। आपकी विलक्षण प्रतिभासे आपकी छात्रावस्थामें आपके आचार्य्य एवं सम्पर्कमें आनेवाले समस्त विद्वज्जन मुग्ध थे। तीन वर्ष बाद आप विश्वविद्यालयके प्रथम "डाक्टर आफ सायंस" हुए और यह डिग्री आपने विशुद्ध गणितशास्त्रमें ली। आप तुरन्त ही कायस्थ पाठशाला कालिजमें गणितके प्रोफेसर नियुक्त होगये। वहाँ दो वर्ष तक अध्यापन करनेके उपरान्त इनकी योग्यतापर मुग्ध होकर प्रान्तीय सरकारने इन्हें विशेष छात्रवृत्ति दी। उस समय विलायत जाना भारी अपराध था। एक सज्जन विलायतसे हो आये थे। उनके कारण बिरादरीमें भारी झगड़ा पैदा हो चुका था। डाक्टर साहबने साहस-पूर्वक समाजके रोषकी परवाह न कर विद्याभ्यासके लिये विदेश-गमनके कष्ट और भावी अत्याचारोंको स्वीकार कर लिया।

देशकी दासताका ठीक अनुमान करना हो तो कोई विद्याभ्यासके लिये विदेश जाय। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय गणितके विशेष अध्ययनके लिये प्रसिद्ध है। न्यूटनने वहीं पढ़ा था और पढ़ाया भी था। वहाँके गणितका पाठ्यक्रम प्रायः उतना ही है, जितना कि प्रयाग विश्वविद्यालयका, परन्तु वहाँवाले यहाँकी डिग्रीको अपनी डिग्रीके बराबर नहीं मानते। यहाँके ग्रेजुएटको वहाँ जाकर उतने वर्षोंकी हाजिरी देनी पड़ती है, जितने बरसोंमें वहाँ डिग्री मिलती है। डाक्टर साहब यहाँके सर्वोच्च उपाधिधारी थे। वहाँके ग्रेजुएटसे कहीं अधिक योग्यता सम्पादन कर चुके थे। इसलिये वहाँ इतनी ही रिआयत हुई कि समय कुछ कम लगा। सन् १९०१ में वहाँके बी० ए० हुए। फिर सन् १९०२ से १९०४तक आपकी छात्रवृत्ति बढ़ी, विशेष अधिकार मिले। केम्ब्रिज और जर्मनीके गटिंगेनके विद्यापीठमें आपने विशेष अनुशीलन किया। वहाँ डाक्टर क्रैनसे आपकी मैत्री हो गयी।

डाक्टर साहबकी छात्रावस्था प्रायः आदर्श थी। आप भारतमें ही बाल्यावस्थासे एकान्त प्रेमी और अध्ययनशील रहे। लड़कोंमें मिल-जुलकर युवक-स्वभावोचित ऊधम और उपद्रव आपने कभी नहीं सीखा। आपका कुल-शील विशिष्ट रूपसे आपके स्वभावको साधारण छात्र-समाजसे भिन्न बनाये हुए था। डाक्टर साहबका अध्ययन अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें ही मर्यादित न था। परिशीलनकी परिधि अत्यन्त विस्तृत थी। परन्तु ऐसी बात न थी कि, साहित्यिक कूड़ा-करकटकी ओर आपका ध्यान गया हो। चुन-चुनकर उत्तम कोटिका अध्ययन ही आपका समय लेता था। धारणा ऐसी दृढ़ थी कि, एक बार जो कुछ पढ़ा, उसे सुन लीजिये। छात्रा-वस्थाकी धारणाकी दृढ़ता अन्त समय तक बनी रही। इसीकी बदौलत दिमागमें गणितका अगाध ज्ञान संचित था। इसीकी बदौलत वह तुरन्त बता सकते थे कि यह नया काम है, नयी खोज है, और अमुक काम अमुक विद्वान् ने मुद्दतों पहले कर रखा है। आप गणितके जंगम विश्व-कोष थे। परन्तु आपकी अगाध विद्वत्ता गणितमें ही मर्य्यादित न थी। वह सार्वभौम थी। संसारका कोई विद्या-विषय अछूता नहीं छूटा था। यह सब बड़ी दृढ़ और अद्भुत धारणा शक्तिका फल था। जब आप हिन्दू विश्व-विद्यालयमें प्रिंसिपल थे और हजारों लड़के आपके अधीन पढ़ते थे, आप हर लड़केको जानते पहचानते थे। इतना ही नहीं, लड़कोंसे उनके पिता, भाई आदिका नाम लेकर, उनका कुशल, रोजगार आदिका हाल पूछकर, चकित कर देते थे। दाखिलेके समय फार्म भरनेपर जितनी बातें पूछनेसे मालूम होती थीं, वे ही आपके इस तरहके प्रश्नोंका आधार थीं।

अपने दिमागमें ऐसी विलक्षण स्मृतिका सञ्चय किये हुए यह प्रतिभाशाली छात्र किसी सहाध्यायीसे मिलता-जुलता न था। अकेले टहलने जाना ही व्यायाम था। राहमें भी किसीसे साहब-सलामत नहीं होती थी। अपने कामसे काम था। ऐसे एकान्तवासी प्रतिभाशालीसे सहा-ध्यायियोंको ईर्ष्या-द्वेष होना कोई असाधारण बात न थी; परन्तु वे कर ही क्या सकते थे। आपने कई जगह ससम्मान डिग्रियाँ लीं और सन् १९०४ में ज्यों ही भारत लौटे, त्यों ही उसी म्योर सेंट्रल कालेजमें (जहाँ पहले डाक्टरकी पदवी पायी थी) प्रान्तीय सरकारने इन्हें गणितका आचार्य नियुक्त किया।

३. वज्रसे कठोर और कुसुमसे कोमल

जब आप भारत लौटे, तब दुर्भाग्यवशात् आपकी पत्नीका देहान्त हो चुका था। जब आप यहाँ पढ़ते थे, विवाह तभी हो चुका था और एक पुत्री भी उत्पन्न हो चुकी थी। आपने दृढ़ निश्चय कर लिया कि, "दूसरा

विवाह न करूँगा। आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत रखूँगा।" विलायतसे लौटनेपर पितृ-भक्तिवशात् आपने प्रायश्चित्तके ग्राह्य अंश स्वीकार कर लिये, परन्तु सहभोजमें स्वयम् शरीक होनेसे इनकार किया। आपके स्वागतमें अनेक सहभोज हुए; परन्तु आप कहीं मुश्किलसे फलाहार कर लेते थे! विवाह-सम्बन्धी आग्रह करके लोग हैरान हुए। आप राजी न हुए। प्रयागमें कुछ ही कालतक प्रोफेसरी की। १९०५ ई०-में आप काशीमें (क्वींस कालेजमें) गणितके विशेष प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहाँ आप आठ वर्षतक प्रोफेसर रहे। वहाँके प्रिंसिपल डा० वेनिस थे। आप कभी अपने अफसरसे मिलते-जुलते न थे। शहरमें कभी किसीके यहाँ आते-जाते न थे। तब तो यह हाल था कि उनके पास भी कोई मिलने-जुलने जाता था, तो जितने समय बातचीतकी पूर्वनियुक्ति हुई थी, घड़ी देखकर उससे एक मिनट अधिक बात न करते थे। अपने समयकी बड़ी कड़ाईसे पाबन्दी करते थे। निदान, समाजमें यह प्रसिद्ध था कि डाक्टर साहब बड़े रूखे-फीके आदमी हैं और समाजसे कोई वास्ता नहीं रखते।

सम्भव है कि समाजकी संकीर्णतासे डाक्टर साहबने अपना स्वभाव ऐसा कठोर बना लिया हो। क्योंकि डाक्टर साहबका कोमल हृदय कुटुम्बके भीतर छिपा न रह सकता था। अपनी प्यारी पुत्रीका लालन-पालन बड़े मनोयोगसे कर रहे थे और उसके विवाहके सम्बन्धमें मनमें बड़े-बड़े मंसूबे बाँध रखे थे। दैवके दुर्विपाकसे यह हौसले मनके मनमें ही रह गये। विवाहयोग्य होते-होते उस कन्याने डाक्टर साहबको वियोगके अथाह शोक-सागरमें डुबा दिया। इस घटनाके बाद तो डाक्टर साहबका जीवन ही बदल गया। अत्यन्त कठोर दीखनेवाले विद्वान्‌की कठोरता न जाने कहाँ चली गयी। तबसे डाक्टर साहबके स्वभावमें ऐसी कोमलता आ गयी कि, लोगोंको अत्यन्त आश्चर्य होने लगा। डाक्टर साहब हदसे ज्यादा मिलनसार हो गये। समाजके सभी कामोंमें सम्मिलित होने लगे। सबके सुख-दुःखमें दिलचस्पी लेने और शरीक होने लगे। इस परिवर्त्तनका कारण चाहे कुछ भी हो, परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि, डाक्टर साहबका पूर्व रूखापन उनकी प्रकृति न थी; बल्कि परिस्थिति-जनित कठोरता और आत्म-संयम था। वह कठोरता तो लुप्त हो गयी, परन्तु आत्म-संयम बना हुआ है।

४. सादा जीवन, उच्चतम विचार

डाक्टर साहबके सादे और संयमी जीवनके कारण अपने ऊपर उनका व्यय बहुत थोड़ा देखकर साधारण लोग समझते थे कि डाक्टर साहब कृपण हैं। परन्तु बात ठीक उलटी थी। डाक्टर साहब अपने लिये तो कम-से-कम खर्च करते थे। किन्तु अपनी विमाता और विमातृज बन्धुओंके परिवारके लिये, सार्वजनिक कामोंके लिये एवम् परोपकारके लिये उनका हृदय अत्यन्त उदार था, बड़े हौसलेके साथ खर्च करते थे। कई वर्ष हुए डाक्टर साहबकी भतीजीका विवाह पटना हाइकोर्टके जस्टिस ज्वालाप्रसादके पुत्रसे हुआ। उस विवाहमें डाक्टर साहबने अनुमानतः साठ-सत्तर हजार रुपये खर्च किये थे। काशीकी गणित-परिषत् उन्हींकी उदारतासे चलती थी। अब तो वह उजड़ गयी, अनाथ हो गयी। उनके मरनेसे सैकड़ों छात्र जो विविध सहायताओंके भाजन थे अनाथ हो गये। सार्वजनिक और परोपकारी कामोंमें उनकी सहज उदारता से प्रकट है कि वह धनका यथार्थ उपयोग अच्छी तरह जानते थे। उनका निजी रहन-सहन पाससे देखनेवालोंके लिये अत्यन्त सादा और वास्तविक तपस्वीका था। सदा अनुद्वेगकर, सत्य, प्रिय और हित बात बोलते थे। अहिंसा, समता, तुष्टि, निर्भीकता, दान, दम, ऋजुता, स्वाध्याय, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, मृदुता, तेजस्विता, क्षमा, धृति, दक्षता, अद्रोह आदिके साथ ब्रह्मचर्य्यका अत्यन्त सादा जीवन था। कितनी भारी तपस्या थी। ऊपरी वेष-भूषा रहन-सहन अमीरोंका था, भीतरी जीवन फकीरोंका और सच्चे तपस्वियोंका था। जनककी तरह वह भोगी होते हुए भी, विरागी थे। ऐसा जीवन व्यतीत करते हुए भी कोई दूसरा होता तो आस्तिकताका ढोंग करता। परन्तु वह अपनी तपस्याको मनोयोगपूर्वक छिपाये रहते थे और अत्यन्त निकटसे देखनेवालाही कुछ समझ सकता था।

डाक्टर साहबका रहन-सहन और भोजन अत्यन्त सादा और संयमशील था। बिछौनेकी जगह "स्टेट्समैन" अखबार बिछा है! तकिया नदारद। जाड़ोंमें ओढ़नेको एक कम्बल काफी है! गरमी इतनी कड़ी पड़ रही है, पंखा नदारद! आये-गयेको नौकर आकर पंखा झल देता है। अधिकांश खुले मैदान, छायामें हवामें धूपमें गुजर होता है। बूट, कोट, पतलून, हैट, कालरकी वेषभूषामें सेकंड या फर्स्ट क्लासमें यात्रा करनेवाले इस आजीवन ब्रह्मचारीको देखकर कौन कह सकता था कि आलीशान कोठीमें भी रहते हुए इसका जीवन बेतरह सादा है, हदसे ज्यादा फकीराना है! भोजनका बीसों वर्षतक यह हाल रहा कि, चौबीस घंटोंमें एक बार गिनी हुई चार पूरियाँ खाकर रह जाते थे। ज्वर १०४ अंशका चढ़ा हुआ है और आप धूम-

धामसे दर्जा पढ़ा रहे हैं, व्याख्यान दे रहे हैं! शरीर आपका इतना दुबला है—और हुआ ही चाहे—कि, एक बार, रेलकी यात्रामें, इसी दुबलेपनके आशीर्वादसे मरते-मरते बचे। कोई तीन सालकी ही बात है कि, बनारस छावनी स्टेशनपर उतरना था। असबाब उतर गया। छड़ी रह गयी थी। उसे लेकर उतरती बेर गाड़ी चल पड़ी थी। पाँव फिसलकर पावदान और प्लेटफार्मके बीच जा पड़े! आप प्लेटफार्मपर दोनों हाथ रखे उसके नीचे खड़े प्लेटफार्मकी भीतसे चिपक गये और गाड़ी कई कदम चली गयी! दुबले न होते, तो पिस गये होते। बारे, उसी दम किसी यात्रीने जंजीर खींचकर गाड़ी खड़ी कर दी और डाक्टर साहब साफ बच गये। कहीं खरोंच भी हीं नलगी!

सन् १९१४में काशीकी सरकारी नौकरी छोड़कर आपने कलकत्ता विश्वविद्यालयके अन्तर्गत नवस्थापित विज्ञान-विद्यालय (कालेज आफ सायंस) में सर रासबिहारी घोषद्वारा नियुक्त व्यवहारगणितके आचार्यकी गद्दीको सुशोभित किया। तीन वर्ष बाद आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय-में गणित-विभागके अध्यक्ष तथा गणितके आचार्य नियुक्त हुए। शीघ्र ही वहाँके प्रिंसिपल हो गये और इस पदपर तीन वर्षतक रहे। कुछ काल पीछे यहांके सभी पदोंका त्याग करके फिर कलकत्तेके उसी कालेजमें हार्डिजके नामसे नियुक्त गणिताचार्यके पदको सुशोभित करने लगे, और, अन्ततक उसी पदका भोग करते रहे। जबतक हिन्दू विश्वविद्यालयमें थे, आपका प्रभाव सर्वोपरि रहा। उसके पीछे प्रयाग विश्वविद्यालयकी ओरसे आप संयुक्त प्रान्तकी व्यवस्थापिका सभामें भी भेजे गये थे और तीन वर्षतक शिक्षा-सम्बन्धी अनेक महत्त्वके सुधार करवाये और आगरा विश्वविद्यालयकी स्थापना करायी।

५. गवेषणात्मक ठोस काम

विश्वविद्यालयमें आप जिस तरहका अध्यापन करते थे, वह बहुत उच्च कोटिका था। आपके अधीन छात्र विश्व-विद्यालयके चुने हुए उपाधिप्राप्त विद्वान् होते थे, जो केवल अनुसन्धानका कार्य करते थे। उनके अनुसन्धानोंके फल लेखके रूपमें संसारकी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक और गणितीय पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुआ करती थीं। अबतक डाक्टर साहबने और उनके शिष्योंने खोजके जो काम प्रकाशित कराये हैं, संगृहीत किये जायँ, तो कई जिल्दोंमें आवें।

आप सन् १९०८ से बराबर अन्ततक प्रयाग विश्व-विद्यालयके सदस्य रहे। कलकत्ता, आगरा, लखनऊ आदि विश्वविद्यालयोंसे भी आपके सदस्यता आदि अनेक तरहके सम्बन्ध अन्ततक रहे।

आपने पहले कलकत्तेमें और फिर काशीमें गणित-परिषत्की स्थापना की। आप दोनोंके सदस्य एवम् सभापति रहे हैं। काशीकी परिषत्के तो आप आजीवन सभापति थे। प्रयागकी विज्ञानपरिषत्के आप सम्मान्य आजीवन सदस्य थे और इधर दो बार लगातार सभापति चुने गये। परिषत्में आपने तत्कालीन प्रान्तीय गवर्नर सरजेम्स मेस्टनके सभापतित्वमें नवम्बर, सन् १९१६ संवत् १९७४में वार्षिकोत्सवके अवसरपर "गणितविषयक खोजोंकी साम्प्रतिक अवस्था" पर हिन्दीमें व्याख्यान दिया। ये मातृभाषा द्वारा उच्चसे उच्च शिक्षा देनेके सदा पक्षपाती रहे और जबसे उसमानिया युनिवर्सिटी स्थापित हुई बड़े शौकसे उच्च गणितके परचे वे उर्दूमें देते और परीक्षा लेते रहे। गतवर्ष वह परिषत्के सभापति हुए तबसे उन्होंने दो बड़े महत्त्वके व्याख्यान दिये। एकका विषय था **"महान् गणितज्ञोंकी विशेषताएँ"** और दूसरेका विषय था **"गणितकी गवेषणाओंमें राष्ट्रभाषाका प्रयोग।"** पहले व्याख्यानमें डा० साहबके ही पट्ट शिष्य सर जस्टिस शाह मुहम्मद सुलेमान सभाध्यक्ष थे, और दूसरे व्याख्यानमें डा० नारायणप्रसाद अष्ठाना।

आपने गणित-विषयक मौलिक अनुसन्धानका आरम्भ अपने छात्रकालसे ही किया है। अबतक उनकी संख्या अगणित हो चुकी है। पहला मौलिक अनुसन्धान सन् १९०० ई० में *Messenger of Mathematics* नामक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। डाक्टर रौट जैसे विद्वान्ने स्थिति-विद्यापर एक स्वरचित प्रसिद्ध ग्रन्थमें आपके उस लेखको आदरपूर्वक प्रमाण माना है। खोजके विषयका जो एक बृहत् लेख आपने लिखा था, उसे गटिंगेन (जर्मनी) की विज्ञान-परिषत्के मुखपत्र *Abhandlungen*में प्रो० क्लैनने छपवाया था। वह कई ग्रन्थोंमें प्रमाण माना गया है। इसी तरह तबसे अबतक अनुसन्धानके अनेक लेख *Nachrichten, Mathematische Annalen, Bulletin of the Calcutta Mathematical Society, Philosophical Magazine, Proceedings of the Palermo Mathematical Society, Bulletin of the Benares Mathematical Society* आदि गणितके सामयिक पत्रोंमें छपे हैं। आपने चलनकलन और चलराशिकलनपर दो प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं। इन दोनों ग्रन्थोंकी विस्तृत

एवम् प्रशंसात्मक समालोचना प्रो० विल्सनने अमेरिकाकी गणित-परिषत्के मुखपत्रमें प्रकाशित करायी थी। इधर संसारके प्रसिद्ध गणितशास्त्रियोंकी जीवनियोंपर तीन जिल्दें निकालनेवाले थे, जिनमेंसे दो जिल्दें निकल चुकी हैं, और अनेक भाषाओंमें उनका अनुवाद भी हो चुका है और हो रहा है। तीसरी जिल्द पूरी न हो पायी थी कि अकस्मात् उन्होंने अपनी ही जीवनी समाप्त कर दी।

इधर एक और पुस्तक अंशतः प्रकाशित हुई थी। यह (Fundamental Theorem of Complex Variables) "मिश्रित चलोंके प्रधान प्रमेयोपपाद्य" पर आपके कुछ व्याख्यान हैं। आपका एक अन्तिम गवेषणात्मक लेख है जो (Expansion of Arbitrary Functions)के नामसे उन्होंने भारतीय राष्ट्रिय विज्ञान महापरिषत्को दिया था। यह लगभग १०० पृष्ठोंका है और इसे उक्त महापरिषत् प्रकाशित करेगी। उनके अन्य अनेक प्रामाणिक ग्रंथ हैं जो संसारके अनेक विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाये जाते हैं। संभवतः उनके अनेक अपूर्ण कामोंका पता पीछे लगेगा।

६. परमात्मामें विश्वास

रेलवाली घटनामें दैवी चमत्कारिक रक्षाका डाक्टर साहबपर परिवर्त्तनकारी प्रभाव पड़ा। डाक्टर साहब कभी नास्तिक न थे, परन्तु भगद्भजनमें विश्वास न था। उनके जगत्का काम बिना ईश्वरके स्मरणके चल सकता था। वह अज्ञेयवादी थे। परन्तु इस घटनाने उनकी वृत्ति बदल दी। उनकी जेबमें माला रहने लगी। अपने चपरासीसे घण्टों बैठे भजन सुनने लगे। व्याख्यानोंमें कभी कभी कह बैठते थे कि आजकलके फैशनके विरुद्ध मैं अब किसी ऐसी शक्तिमें विश्वास करता हूँ जो मन और वचनसे अत्यन्त परे है। वह नाम जप करने लगे थे।

इधर उनका मन संसारसे कुछ विरक्त हो चला था। पिछली बार मिले तो बातों ही बातों कहने लगे कि "जीवनका कोई ठिकाना नहीं है। मुझे जीवनियोंका काम जल्दी पूरा करना है। मैंने डाक्टरोंसे अपने रक्तचापका परीक्षण कराया था। इस अवस्थामें भी मेरा रक्तचाप साधारणसे कम ही है। काम करनेमें कोई बाधा नहीं है।" डाक्टर साहब वैसे प्रसन्न थे और काम बड़े परिश्रमसे करते थे। फिर भी उनकी बातोंका अन्तर्प्रवाह आसन्न अन्तका सूचक दीखता था। मुझसे हिन्दीमें स्वरचित गणितज्ञोंकी जीवनियोंका अनुवाद करा रहे थे। उस पुस्तकको वह अपने माता पिताको समर्पण करना चाहते थे। उसके लिये दो दोहे लिखवाये थे। उन्हें सुना बड़े प्रसन्न हुए। फिर फिर पढ़वाया। बहुत सराहा। उसकी नकल ले गये। कई मित्रोंको सुनाया। कौन जानता था कि उनकी मेरी यह अन्तिम भेंट थी।

७ उनकी वसीयत, पटक्षेप

उनकी मृत्यु ऐसी अचानक हुई कि किसीको यह पता नहीं है कि उन्होंने अपनी सम्पत्तिका उत्तराधिकार किसीको दिया है या नहीं। कुछ भी हो उसके उत्तराधिकारी तो उनके एक मात्र भाई और एक मात्र भतीजे ही हो सकते हैं। परन्तु उन जैसे जगत्के अप्रतिम विद्वानकी सम्पत्ति तो उनका प्रदर्शित मार्ग और उनकी दी हुई विद्या है। उन्होंने अपने शिष्योंको मार्ग दिखाया है। वे उद्योग करें और उनके पद चिह्नोंपर चलें तो न केवल उनके यश और कीर्त्तिको जाग्रत रखेंगे बल्कि स्वयं अपनेको उनके शिष्य कहलाने योग्य बना लेंगे। उनकी अतुल धारणा अब नहीं मिलनेकी। अब अपने सहारे ही चलना पड़ेगा। उनकी अमर कृतियाँ और गवेषणाएँ तो गणित-संसारके लिये अक्षय्य-सम्पत्ति हैं जिनका वह सबको खुले हाथों दान कर गये हैं। उनकी कीमत कौन आँकनेमें समर्थ है? न्यूटनके सूत्रोंकी या अर्कमीदिसके सिद्धान्तकी कीमत कोई लगा सकता है? उन्होंने गणितमें अपना नाम अमर कर दिया है और साथ ही संसारमें भारतका नाम भी अमर कर दिया है। भारतीय नवयुवकोंके लिये उन्होंने फिर भी मुझे एक संदेश दे रखा है, और वह सचमुच स्वर्णाक्षरोंमें लिख रखने योग्य है, और वह है—

"अपना लक्ष्य ऊँचा रखो"

यह चार शब्द चारों पुरुषार्थोंकी ओर प्रेरक और चारों फलोंके देनेवाले हैं। वह तो उच्च आत्मा थे विष्णुपदको प्राप्त हुए। परमात्मा सभी शोकाकुलोंको उनके कठिन वियोगको सहने और उनके संदेशके अनुकूल चलनेकी शक्ति दे।

श्रीकाशी ३०।११।९१ } —व्यथित हृदय रामदास गौड़

नोट—विज्ञानका छपना समाप्त हो रहा था कि यह हृदयवेधक समाचार मिला। इसीलिये विज्ञान पाठकोंकी सेवामें देरसे जा रहा है।

रा० गौ०

(जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है)

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌का मुखपत्र

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी० (गणित और भौतिक विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस्-सी० (जीव-विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस्-सी० (उद्भिज्ज-विज्ञान)
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी० (जंतु-विज्ञान)
सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० (रसायन-विज्ञान)

भाग ४०

तुलाऽर्क—मीनार्क, संवत् १९९१

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

(१) आयुर्विज्ञान

(२) औद्योगिक

(३) गणित-ज्योतिष

(४) जीव—विज्ञान

(५) भौतिक-विज्ञान

अ. भा. व. हि. सा. स. २४ वाँ अधिवेशन इन्दौर

मंत्री स्वागतसमिति विज्ञान-विभागका वैज्ञानिकोंसे निवेदन

राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यको बढ़ाने और वैज्ञानिक विषयोंमें लोगोंकी रुचि उत्पन्न करनेके लिये विद्वानोंकी सेवामें साग्रह अनुरोध किया जाता है कि इस विषयके लेख लिखकर सम्मेलनके पूर्व भेजनेकी कृपा करें। जिससे राष्ट्र-भाषाकी सर्वाङ्गीण उन्नति हो। मराठी आदि देशी भाषाओंमें विज्ञानकी प्राथमिक शिक्षणकी जैसी पुस्तकें उपलब्ध होती हैं वैसी पुस्तकोंका अभाव भी हिन्दी भाषामें है। इस प्रकारके भी लेख यदि विद्वान लोग लिखेंगे तो उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया जावेगा। लेख जहाँ तक हों शुद्ध हों मिश्रित न हों।

लेख निम्न-लिखित विषयोंपर होने चाहिये—

१—किसी नवीन वैज्ञानिक खोज या आविष्कारके संबन्धमें हों अथवा किसी प्रसिद्ध खोज या आविष्कारको सुगम रीतिसे समझानेके सम्बन्धमें हों।

२—हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यको बढ़ानेके लिये क्या उपाय किये जा सकते हैं और सर्वमान्य वैज्ञानिक पारिभाषिक कोष किस प्रकार बनाया जा सकता है।

३—वैज्ञानिक ज्ञानकी वृद्धि और महत्वका ऐतिहासिक दृष्टिसे वर्णन।

सम्मेलनके लिये लेख लिखनेको नीचे लिखे शास्त्र वैज्ञानिक समझे जावेंगे—

१—पदार्थ-विज्ञान (फिजिक्स) २—रसायन-विज्ञान (केमिस्ट्री) ३—जीवन-विज्ञान-शास्त्र (जुआलॉजी) जीवजन्तु-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र ४—भूगर्भ-विज्ञान धातुशास्त्र (मिनिरालॉजी) यदि विस्तृत अर्थ लेंगे तो—

५—गणित और ज्योतिष ६—मानव शरीर रचना (अनाटमी) ७—शरीरके अंगोंके कार्य (फिज़ालॉजी) ८—औषधि-विज्ञान (अलाइड मेडिकल साइन्स) ९—अर्थ विज्ञान १०—आदर्श राजनीति ११—समाजशास्त्र १२—मानसिक शास्त्र (मेन्टल साइन्स) १३—मनोवृत्ति-विज्ञान (साइकलॉजी) १४—सत्-असत् न्याय (लाजिक) १५—नीतिशास्त्र (एथिक्स) १६—सुन्दर और असुन्दर (ईस्थेटिक्स)

—दीनानाथ शास्त्री चुलैट